॥ श्रीहरिः ॥

1432

श्रीमद्द्वैपायनमुनि वेदव्यासप्रणीत

श्रीवामनपुराण

सचित्र, हिन्दी-अनुवादसहित

गीताप्रेस, गोरखपुर

1432

॥ श्रीहरिः ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्द्वैपायनमुनि वेदव्यासप्रणीत

श्रीवामनपुराण

(सचित्र, हिन्दी-अनुवादसहित)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र-निवेदन

भारतीय संस्कृतिके मूलाधाररूपमें वेदोंके अनन्तर पुराणोंका ही सम्मानपूर्ण स्थान है। वेदोंमें वर्णित अगम रहस्योंतक जन-सामान्यकी पहुँच नहीं हो पाती, परंतु भक्तिरस-परिप्लुत पुराणोंकी मङ्गलमयी, शोकनिवारिणी, ज्ञानप्रदायिनी दिव्य कथाओंका श्रवण-मनन, पठन-पाठन कर जन-साधारण भी भक्तितत्त्वका अनुपम रहस्य सहज ही हृदयङ्गम कर लेते हैं। महाभारतमें कहा गया है—*'पुराणसंहिताः पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रिताः।'* (आदिपर्व १। १६) अर्थात् पुराणोंकी पवित्र कथाएँ धर्म और अर्थको देनेवाली हैं। परमात्म-दर्शन अथवा शारीरिक एवं मानसिक आधि-व्याधिसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त कल्याणकारी पुराणोंका श्रद्धापूर्वक पारायण करना चाहिये।

वामनपुराण मुख्यरूपसे भगवान् त्रिविक्रम विष्णुके दिव्य माहात्म्यका व्याख्याता है। इसमें कुरुक्षेत्र, कुरुजाङ्गल, पृथूदक आदि तीर्थोंका विस्तारसे विवेचन किया गया है। इस पुराणके अनुसार बलिका यज्ञ कुरुक्षेत्रमें ही हुआ था। इसके आदिवक्ता महर्षि पुलस्त्य हैं और आदि प्रश्नकर्ता तथा श्रोता देवर्षि नारद हैं। नारदजीने व्यासको, व्यासने अपने शिष्य लोमहर्षण सूतको और सूतजीने नैमिषारण्यमें शौनक आदि मुनियोंको इस पुराणकी कथा सुनायी थी। इसमें भगवान् वामन, नर-नारायण तथा भगवती दुर्गाके उत्तम चरित्रके साथ प्रह्लाद तथा श्रीदामा आदि भक्तोंके बड़े रम्य आख्यान हैं। मुख्यतः वैष्णवपुराण होते हुए भी इसमें शैव तथा शाक्तादि धर्मोंकी श्रेष्ठता एवं ऐक्यभावकी प्रतिष्ठा की गयी है। इस पुराणके उपक्रममें देवर्षि नारदके द्वारा प्रश्न और उसके उत्तरके रूपमें पुलस्त्यजीका वामनावतारका कथन, शिवजीका लीला-चरित्र, जीमूतवाहन-आख्यान, ब्रह्माका मस्तक-छेदन तथा कपालमोचन-आख्यानका वर्णन है। तदनन्तर दक्षयज्ञ-विध्वंस, हरिका कालरूप, कामदेव-दहन, अंधक-वध, बलिका आख्यान, लक्ष्मी-चरित्र, प्रेतोपाख्यान आदिका विस्तारसे निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रह्लादका नर-नारायणसे युद्ध, देवों, असुरोंके भिन्न-भिन्न वाहनोंका वर्णन, वामनके विविध स्वरूपों तथा निवास-स्थानोंका वर्णन, विभिन्न व्रत, स्तोत्र और अन्तमें विष्णुभक्तिके उपदेशोंके साथ इस पुराणका उपसंहार हुआ है। विभिन्न दृष्टियोंसे लोककल्याणकारी इस पुराणका प्रकाशन 'कल्याण' वर्ष ५६,सन् १९८२ के विशेषाङ्करूपमें गीताप्रेसद्वारा किया गया था। पाठकों तथा जिज्ञासुओंके द्वारा इसके पुनर्मुद्रणका बार-बार आग्रह किया जा रहा था। तदनुसार गीताप्रेसके द्वारा इसका पुनर्मुद्रण ऑफसेटकी सुन्दर छपाईद्वारा मोटे टाइपोंमें किया गया है। आशा है, पाठकगण गीताप्रेससे प्रकाशित अन्य पुराणोंकी भाँति इस पुराणको भी अपनाकर इसकी उपयोगी सामग्रीसे लाभ उठायेंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

क्रमाङ्क	विषय	पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीहरिः ॥

॥ ॐ नमो भगवते त्रिविक्रमाय ॥

अथ श्रीवामनपुराणम्

पहला अध्याय

श्रीनारदजीका पुलस्त्य ऋषिसे वामनाश्रयी प्रश्न; शिवजीका लीलाचरित्र और जीमूतवाहन होना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

भगवान् श्रीनारायण, मनुष्योंमें श्रेष्ठ नर, भगवती सरस्वतीदेवी और (पुराणोंके कर्ता) महर्षि व्यासजीको नमस्कार करके जय (पुराणों तथा महाभारत आदि ग्रन्थों)-का उच्चारण (पठन) करना चाहिये*।

त्रैलोक्यराज्यमाक्षिप्य बलेरिन्द्राय यो ददौ।
श्रीधराय नमस्तस्मै छद्मवामनरूपिणे॥ १

जिन्होंने बलिसे (भूमि, स्वर्ग और पाताल—इन) तीनों लोकोंके राज्यको छीनकर इन्द्रको दे दिया, उन मायामय वामनरूपधारी और लक्ष्मीको हृदयमें धारण करनेवाले विष्णुको नमस्कार है।

पुलस्त्यमृषिमासीनमाश्रमे वाग्विदां वरम्।
नारदः परिपप्रच्छ पुराणं वामनाश्रयम्॥ २

कथं भगवता ब्रह्मन् विष्णुना प्रभविष्णुना।
वामनत्वं धृतं पूर्वं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः॥ ३

कथं च वैष्णवो भूत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः।
त्रिदशैर्युयुधे सार्धमत्र मे संशयो महान्॥ ४

(एक बारकी बात है कि—) वाग्मियोंमें श्रेष्ठ विद्वद्वर पुलस्त्य ऋषि अपने आश्रममें बैठे हुए थे; (वहीं) नारदजीने उनसे वामनपुराणकी कथा—(इस प्रकार) पूछी। उन्होंने कहा—ब्रह्मन्! महाप्रभावशाली भगवान् विष्णुने कैसे वामनका अवतार ग्रहण किया था, इसे आप मुझ जिज्ञासुको बतलायें। एक तो मेरी यह शङ्का है कि दैत्यवर्य प्रह्लादने विष्णुभक्त होकर भी

---

* महाभारतके उल्लेखानुसार नर-नारायण ब्रह्मर्षिरूपमें विभक्त परमात्मा ही हैं, जो बादमें अर्जुन और कृष्ण हुए। ये ही नारायणीय या भागवतधर्मके प्रधान प्रचारक हैं, अतः भागवतीय ग्रन्थोंमें सर्वत्र इन दोनोंको नमस्कार किया गया है। पुराण-प्रवचनमें भी इस श्लोकको माङ्गलिक रूपमें पढ़नेकी प्राचीन प्रथा है।

महाभारतका प्राचीन नाम 'जय' है; पर उपलक्षणसे पुराणोंका भी ग्रहण किया जाता है। भविष्यपुराणका वचन है—

अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा। कार्त्स्न्यं वेदपञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः॥
जयेति नाम चैतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः॥ (भविष्यपुराण १।१।५-६)

अर्थात्—अठारहों पुराण, रामायण और सम्पूर्ण (वेदार्थ) पाँचवाँ वेद, जिसे महाभारत-रूपमें जानते हैं—इन सबको मनीषीलोग 'जय' कहते हैं।

श्रूयते च द्विजश्रेष्ठ दक्षस्य दुहिता सती।
शंकरस्य प्रिया भार्या बभूव वरवर्णिनी॥ ५

किमर्थं सा परित्यज्य स्वशरीरं वरानना।
जाता हिमवतो गेहे गिरीन्द्रस्य महात्मनः॥ ६

पुनश्च देवदेवस्य पत्नीत्वमगमच्छुभा।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्ववित् त्वं मतोऽसि मे॥ ७

तीर्थानां चैव माहात्म्यं दानानां चैव सत्तम।
व्रतानां विविधानां च विधिमाचक्ष्व मे द्विज॥ ८

एवमुक्तो नारदेन पुलस्त्यो मुनिसत्तमः।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो नारदं तपसो निधिम्॥ ९

पुलस्त्य उवाच

पुराणं वामनं वक्ष्ये क्रमान्निखिलमादितः।
अवधानं स्थिरं कृत्वा शृणुष्व मुनिसत्तम॥ १०

पुरा हैमवती देवी मन्दरस्थं महेश्वरम्।
उवाच वचनं दृष्ट्वा ग्रीष्मकालमुपस्थितम्॥ ११

ग्रीष्मः प्रवृत्तो देवेश न च ते विद्यते गृहम्।
यत्र वातातपौ ग्रीष्मे स्थितयोर्नौ गमिष्यतः॥ १२

एवमुक्तो भवान्या तु शंकरो वाक्यमब्रवीत्।
निराश्रयोऽहं सुदति सदारण्यचरः शुभे॥ १३
इत्युक्ता शंकरेणाथ वृक्षच्छायासु नारद।
निदाघकालमनयत् समं शर्वेण सा सती॥ १४

निदाघान्ते समुद्भूतो निर्जनाचरितोऽद्भुतः।
घनान्धकारिताशो वै प्रावृट्कालोऽतिरागवान्॥ १५

तं दृष्ट्वा दक्षतनुजा प्रावृट्कालमुपस्थितम्।
प्रोवाच वाक्यं देवेशं सती सप्रणयं तदा॥ १६

देवताओंके साथ युद्ध कैसे किया और ब्राह्मणश्रेष्ठ! दूसरी जिज्ञासा यह है कि दक्षप्रजापतिकी पुत्री भगवती सती, जो भगवान् शंकरकी प्रिय पत्नी थीं, उन श्रेष्ठ मुखवाली (सती)-ने अपना शरीर त्यागकर पर्वतराज हिमालयके घरमें किसलिये जन्म लिया? और पुनः वे कल्याणी देवदेव (महादेव)-की पत्नी कैसे बनीं? मैं मानता हूँ कि आपको सब कुछका ज्ञान है, अतः आप मेरी इस शंकाको दूर कर दें। साथ ही सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ हे द्विज! तीर्थों तथा दानोंकी महिमा और विविध व्रतोंकी अनुष्ठान-विधि भी मुझे बताइये॥ १—८॥

नारदजीके इस प्रकार कहनेपर मुनियोंमें मुख्य तथा वक्ताओंमें श्रेष्ठ तपोधन पुलस्त्यजी नारदजीसे कहने लगे॥ ९॥

पुलस्त्यजी बोले—नारद! आपसे मैं सम्पूर्ण वामनपुराणकी कथा आदिसे (अन्ततक) वर्णन करूँगा। मुनिश्रेष्ठ! आप मनको स्थिर कर ध्यानसे सुनें!* प्राचीन समयमें देवी हैमवती (सती)-ने ग्रीष्म-ऋतुका आगमन देखकर मन्दर पर्वतपर बैठे हुए भगवान् शंकरसे कहा— देवेश! ग्रीष्म-ऋतु तो आ गयी है, परंतु आपका कोई घर नहीं है, जहाँ हम दोनों ग्रीष्मकालमें निवास करते हुए वायु और तापजनित कठिन समयको बिता सकेंगे। सतीके ऐसा कहनेपर भगवान् शंकर बोले—हे सुन्दर दाँतोंवाली सति! मेरा कभी कोई घर नहीं रहा। मैं तो सदा वनोंमें ही घूमता रहता हूँ॥ १०—१३॥

नारदजी! भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर सती-देवीने उनके साथ वृक्षोंकी छायामें (जैसे-तैसे रहकर) निदाघ (गर्मी)-का समय बिताया। फिर ग्रीष्मके अन्तमें अद्भुत वर्षा-ऋतु आ गयी, जो अत्यधिक रागको बढ़ानेवाली होती है और जिसमें प्रायः सबका आवागमन अवरुद्ध हो जाता है। (उस समय) मेघोंसे आवृत हो जानेसे दिशाएँ अन्धकारमय हो जाती हैं। उस वर्षा-ऋतुको आयी देखकर दक्ष-पुत्री सतीने प्रेमसे महादेवजीसे यह वचन कहा—॥ १४—१६॥

---

* भविष्यपुराणके प्रमाणानुसार वामनपुराणके वक्ता चतुर्मुख (ब्रह्माजी) हैं, पर यहाँ पुलस्त्यजी ऐसा उल्लेख नहीं करते कि 'पुराणं वामनं वक्ष्ये ब्रह्मणा च मया श्रुतम्।' इससे प्रतीत होता है कि एतत्-सम्बन्धी श्लोक अनुपलब्ध है। मत्स्यपुराणमें भी चतुर्मुख (ब्रह्मा)-के वक्ता होनेका उल्लेख है—

'त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः। त्रिवर्गमभ्यधात् तच्च वामनं परिकीर्तितम्॥'

विवहन्ति वाता हृदयावदारणा
गर्जन्त्यमी तोयधरा महेश्वर।
स्फुरन्ति नीलाभ्रगणेषु विद्युतो
वाशन्ति केकारवमेव बर्हिणः॥ १७
पतन्ति धारा गगनात् परिच्युता
बका बलाकाश्च सरन्ति तोयदान्।
कदम्बसर्ज्जार्जुनकेतकीद्रुमाः
पुष्पाणि मुञ्चन्ति सुमारुताहताः॥ १८
श्रुत्वैव मेघस्य दृढं तु गर्जितं
त्यजन्ति हंसाश्च सरांसि तत्क्षणात्।
यथाश्रयान् योगिगणाः समन्तात्
प्रवृद्धमूलानपि संत्यजन्ति॥ १९
इमानि यूथानि वने मृगाणां
चरन्ति धावन्ति रमन्ति शंभो।
तथाचिराभाः सुतरां स्फुरन्ति
पश्येह नीलेषु घनेषु देव।
नूनं समृद्धिं सलिलस्य दृष्ट्वा
चरन्ति शूरास्तरुणद्रुमेषु॥ २०
उद्वृत्तवेगाः सहसैव निम्नगा
जाताः शशाङ्काङ्कितचारुमौले।
किमत्र चित्रं यदनुज्ज्वलं जनं
निषेव्य योषिद् भवति त्वशीला॥ २१

महेश्वर! हृदयको विदीर्ण करनेवाली वायु वेगसे चल रही है। ये मेघ भी गर्जन कर रहे हैं, नीले मेघोंमें बिजलियाँ कौंध रही हैं और मयूरगण केकाध्वनि कर रहे हैं। आकाशसे गिरती हुई जलधाराएँ नीचे आ रही हैं। बगुले तथा बगुलोंकी पंक्तियाँ जलाशयोंमें तैर रही हैं। प्रबल वायुके झोंके खाकर कदम्ब, सर्ज, अर्जुन तथा केतकीके वृक्ष पुष्पोंको गिरा रहे हैं—वृक्षोंसे फूल झड़ रहे हैं। मेघका गम्भीर गर्जन सुनकर हंस तुरंत जलाशयोंको छोड़कर चले जा रहे हैं, जिस प्रकार योगिजन अपने सब प्रकारसे समृद्ध घरको भी छोड़ देते हैं। शिवजी! वनमें मृगोंके ये यूथ आनन्दित होकर इधर-उधर दौड़ लगाकर, खेल-कूदकर आनन्दित हो रहे हैं और देव! देखिये, नीले बादलोंमें विद्युत् भलीभाँति चमक रही है। लगता है, जलकी वृद्धिको देखकर वीरगण हरे-भरे सुपुष्ट नये वृक्षोंपर विचरण कर रहे हैं। नदियाँ सहसा उद्दाम (बड़े) वेगसे बहने लगीं हैं। चन्द्रशेखर! ऐसे उत्तेजक समयमें यदि असुवृत्त व्यक्तिके फंदेमें आकर स्त्री दुःशील हो जाती है तो इसमें क्या आश्चर्य॥ १७—२१॥

नीलैश्च मेघैश्च समावृतं नभः
पुष्पैश्च सर्ज्जा मुकुलैश्च नीपाः।
फलैश्च बिल्वाः पयसा तथापगाः
पत्रैः सपद्मैश्च महासरांसि॥ २२
इतीदृशे शंकर दुःसहेऽद्भुते
काले सुरौद्रे ननु ते ब्रवीमि।
गृहं कुरुष्वात्र महाचलोत्तमे
सुनिर्वृता येन भवामि शंभो॥ २३
इत्थं त्रिनेत्रः श्रुतिरामणीयकं
श्रुत्वा वचो वाक्यमिदं बभाषे।
न मेऽस्ति वित्तं गृहसंचयार्थे
मृगारिचर्मावरणं मम प्रिये॥ २४
ममोपवीतं भुजगेश्वरः शुभे
कर्णेऽपि पद्मश्च तथैव पिङ्गलः।
केयूरमेकं मम कम्बलस्त्वहि-
र्द्वितीयमन्यो भुजगो धनंजयः॥ २५

आकाश नीले बादलोंसे घिर गया है। इसी प्रकार पुष्पोंके द्वारा सर्ज, मुकुलों (कलियों)-के द्वारा नीप (कदम्ब), फलोंके द्वारा बिल्व-वृक्ष एवं जलके द्वारा नदियाँ और कमल-पुष्पों एवं कमल-पत्रोंसे बड़े-बड़े सरोवर भी ढक गये हैं। हे शंकरजी! ऐसी दुःसह, अद्भुत तथा भयंकर दशामें आपसे प्रार्थना करती हूँ कि इस महान् तथा उत्तम पर्वतपर गृह-निर्माण कीजिये; हे शंभो! जिससे मैं सर्वथा निश्चिन्त हो जाऊँ। कानोंको प्रिय लगनेवाले सतीके इन वचनोंको सुनकर तीन नयनवाले भगवान् शंकरजी बोले—प्रिये! घर बनानेके लिये (और उसकी साज-सज्जाके लिये) मेरे पास धन नहीं है। मैं व्याघ्रके चर्ममात्रसे अपना शरीर ढकता हूँ। शुभे! (सूत्रोंके अभावमें) सर्पराज ही मेरा उपवीत (जनेऊ) बना है। पद्म और पिंगल नामके दो सर्प मेरे दोनों कानोंमें (कुण्डलका काम करते) हैं। कंबल और धनंजय नामके ये दो सर्प मेरी दोनों बाँहोंके बाजूबंद

नागस्तथैवाश्वतरो हि कङ्कणं
सव्येतरे तक्षक उत्तरे तथा।
नीलोऽपि नीलाञ्जनतुल्यवर्णः
श्रोणीतटे राजति सुप्रतिष्ठः॥ २६

हैं। मेरे दाहिने और बाँयें हाथोंमें भी क्रमशः अश्वतर तथा तक्षक नाग कङ्कण बने हुए हैं। इसी प्रकार मेरी कमरमें नीलाञ्जनके वर्णवाला नील नामका सर्प अवस्थित होकर सुशोभित हो रहा है॥ २२—२६॥

पुलस्त्य उवाच

इति वचनमथोग्रं शंकरात्सा मृडानी
ऋतमपि तदसत्यं श्रीमदाकर्ण्य भीता।
अवनितलमवेक्ष्य स्वामिनो वासकृच्छ्रात्
परिवदति सरोषं लज्जयोच्छ्वस्य चोष्णम्॥ २७

पुलस्त्यजी बोले— महादेवजीसे इस प्रकार कठोर तथा ओजस्वी एवं सत्य होनेपर भी असत्य प्रतीत हो रहे वचनको सुनकर सतीजी बहुत डर गयीं और स्वामीके निवासकष्टको देखकर गरम साँस छोड़ती हुई और पृथ्वीकी ओर देखती हुई (कुछ) क्रोध और लज्जासे इस प्रकार कहने लगीं—॥ २७॥

देव्युवाच

कथं हि देवदेवेश प्रावृट्कालो गमिष्यति।
वृक्षमूले स्थिताया मे सुदुःखेन वदाम्यतः॥ २८

सतीदेवी बोलीं— देवेश! वृक्षके मूलमें दुःखपूर्वक रहकर भी मेरा वर्षाकाल कैसे व्यतीत होगा! इसीलिये तो मैं आपसे (गृहके निर्माणकी बात) कहती हूँ॥ २८॥

शंकर उवाच

घनावस्थितदेहायाः प्रावृट्कालः प्रयास्यति।
यथाम्बुधारा न तव निपतिष्यन्ति विग्रहे॥ २९

शंकरजी बोले— देवि! मेघ-मण्डलके ऊपर अपने शरीरको स्थित कर तुम वर्षाकाल भलीभाँति व्यतीत कर सकोगी। इससे वर्षाकी जलधाराएँ तुम्हारे शरीरपर नहीं गिर पायेंगी॥ २९॥

पुलस्त्य उवाच

ततो हरस्तद्घनखण्डमुन्नत-
मारुह्य तस्थौ सह दक्षकन्यया।
ततोऽभवन्नाम महेश्वरस्य
जीमूतकेतुस्त्विति विश्रुतं दिवि॥ ३०

पुलस्त्यजी बोले— उसके बाद महादेवजी दक्षकन्या सतीके साथ आकाशमें उन्नत मेघमण्डलके ऊपर चढ़कर बैठ गये। तभीसे स्वर्गमें उन महादेवजीका नाम 'जीमूतकेतु' या 'जीमूतवाहन' विख्यात हो गया॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पहला अध्याय समाप्त हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

शरदागम होनेपर शंकरजीका मन्दरपर्वतपर जाना और दक्षका यज्ञ

पुलस्त्य उवाच

ततस्त्रिनेत्रस्य गतः प्रावृट्कालो घनोपरि।
लोकानन्दकरी रम्या शरत् समभवन्मुने॥ १

त्यजन्ति नीलाम्बुधरा नभस्तलं
वृक्षांश्च कङ्काः सरितस्तटानि।
पद्माः सुगन्धं निलयानि वायसा
रुरुर्विषाणं कलुषं जलाशयाः॥ २

पुलस्त्यजी बोले— इस प्रकार तीन नयनवाले भगवान् शिवका वर्षाकाल मेघोंपर बसते हुए ही व्यतीत हो गया। हे मुने! तत्पश्चात् लोगोंको आनन्द देनेवाली रमणीय शरद्-ऋतु आ गयी। इस ऋतुमें नीले मेघ आकाशको और बगुले वृक्षोंको छोड़कर अलग हो जाते हैं। नदियाँ भी तटको छोड़कर बहने लगती हैं। इसमें कमलपुष्प सुगन्ध फैलाते हैं, कौवे भी घोसलोंको छोड़ देते हैं। रुरुमृगोंके शृङ्ग गिर पड़ते हैं और जलाशय

विकासमायान्ति च पङ्कजानि
चन्द्रांशवो भान्ति लताः सुपुष्पाः।
नन्दन्ति हृष्टान्यपि गोकुलानि
सन्तश्च संतोषमनुव्रजन्ति॥ ३

सरःसु पद्मा गगने च तारका
जलाशयेष्वेव तथा पयांसि।
सतां च चित्तं हि दिशां मुखैः समं
वैमल्यमायान्ति शशाङ्ककान्तयः॥ ४

सर्वथा स्वच्छ हो जाते हैं। इस समय कमल विकसित होते हैं, शुभ्र चन्द्रमाकी किरणें आनन्ददायिनी होकर फैल जाती हैं, लताएँ पुष्पित हो जाती हैं, गौवें हृष्ट-पुष्ट होकर आनन्दसे विहरती हैं तथा संतोंको बड़ा सुख मिलता है। तालाबोंमें कमल, गगनमें तारागण, जलाशयोंमें निर्मल जल और दिशाओंके मुखमण्डलके साथ सज्जनोंका चित्त तथा चन्द्रमाकी ज्योति भी सर्वथा स्वच्छ एवं निर्मल हो जाती है॥ १—४॥

एतादृशे हरः काले मेघपृष्ठाधिवासिनीम्।
सतीमादाय शैलेन्द्रं मन्दरं समुपाययौ॥ ५

ततो मन्दरपृष्ठेऽसौ स्थितः समशिलातले।
रराम शंभुर्भगवान् सत्या सह महाद्युतिः॥ ६

ततो व्यतीते शरदि प्रतिबुद्धे च केशवे।
दक्षः प्रजापतिश्रेष्ठो यष्टुमारभत क्रतुम्॥ ७

द्वादशैव स चादित्याञ्शक्रादींश्च सुरोत्तमान्।
सकश्यपान् समामन्त्र्य सदस्यान् समचीकरत्॥ ८

ऐसी शरद्-ऋतुमें शंकरजी मेघके ऊपर वास करनेवाली सतीको साथ लेकर श्रेष्ठ मन्दरपर्वतपर पहुँचे और महातेजस्वी (महाकान्तिमान्) भगवान् शंकर मन्दराचलके ऊपरी भागमें एक समतल शिलापर अवस्थित होकर सतीके साथ विश्राम करने लगे। उसके बाद शरद्-ऋतुके बीत जानेपर तथा भगवान् विष्णुके जाग जानेपर प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ दक्षने एक विशाल यज्ञका आयोजन किया। उन्होंने द्वादश आदित्यों तथा कश्यप आदि (ऋषियों)-के साथ ही इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंको भी निमन्त्रित कर उन्हें यज्ञका सदस्य बनाया॥ ५—८॥

अरुन्धत्या च सहितं वसिष्ठं शंसितव्रतम्।
सहानसूययात्रिं च सह धृत्या च कौशिकम्॥ ९

अहल्यया गौतमं च भरद्वाजममायया।
चन्द्रया सहितं ब्रह्मन्नृषिमङ्गिरसं तथा॥ १०

आमन्त्र्य कृतवान्दक्षः सदस्यान् यज्ञसंसदि।
विद्वान् गुणसंपन्नान् वेदवेदाङ्गपारगान्॥ ११

धर्मं च स समाहूय भार्ययाऽहिंसया सह।
निमन्त्र्य यज्ञवाटस्य द्वारपालत्वमादिशत्॥ १२

नारदजी! उन्होंने अरुन्धतीसहित प्रशस्तव्रतधारी वसिष्ठको, अनसूयासहित अत्रिमुनिको, धृतिके सहित कौशिक (विश्वामित्र) मुनिको, अहल्याके साथ गौतमको, अमायाके सहित भरद्वाजको और चन्द्राके साथ अङ्गिरा ऋषिको आमन्त्रित किया। विद्वान् दक्षने इन गुणसम्पन्न वेद-वेदाङ्गपारगामी विद्वान् ऋषियोंको निमन्त्रितकर उन्हें अपने यज्ञमें सदस्य बनाया। और, उन्होंने (प्रजापति दक्षने) यज्ञमें धर्मको भी उनकी पत्नी अहिंसाके साथ निमन्त्रितकर यज्ञमण्डपका द्वारपाल नियुक्त किया॥ ९—१२॥

अरिष्टनेमिनं चक्रे इध्माहरणकारिणम्।
भृगुं च मन्त्रसंस्कारे सम्यग् दक्षः प्रयुक्तवान्॥ १३
तथा चन्द्रमसं देवं रोहिण्या सहितं शुचिम्।
धनानामाधिपत्ये च युक्तवान् हि प्रजापतिः॥ १४
जामातृदुहितृश्चैव दौहित्रांश्च प्रजापतिः।
सशंकरां सतीं मुक्त्वा मखे सर्वान् न्यमन्त्रयत्॥ १५

दक्षने अरिष्टनेमिको समिधा लानेका कार्य सौंपा और भृगुको समुचित मन्त्र-पाठमें नियुक्त किया। फिर दक्ष-प्रजापतिने रोहिणीसहित 'अर्थशुचि' चन्द्रमाको कोषाध्यक्षके पदपर नियुक्त किया। इस प्रकार दक्षप्रजापतिने केवल शंकरसहित सतीको छोड़कर अपने सभी जामाताओं, पुत्रियों एवं दौहित्रोंको यज्ञमें आमन्त्रित किया॥ १३—१५॥

नारद उवाच

किमथ लोकपतिना धनाध्यक्षो महेश्वरः।
ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि न निमन्त्रितः॥ १६

नारदजीने कहा (पूछा)—(पुलस्त्यजी महाराज!) लोकस्वामी दक्षने महेश्वरको सबसे बड़े, श्रेष्ठ, वरिष्ठ, सबके आदिमें रहनेवाले एवं समग्र ऐश्वर्योंके स्वामी होनेपर भी (यज्ञमें) क्यों नहीं निमन्त्रित किया?॥ १६॥

पुलस्त्य उवाच

ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि भगवाञ्शिवः।
कपालीति विदित्वेशो दक्षेण न निमन्त्रितः॥ १७

नारद उवाच

किमर्थं देवताश्रेष्ठः शूलपाणिस्त्रिलोचनः।
कपाली भगवान् जातः कर्मणा केन शंकरः॥ १८

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्।
प्रोक्तामादिपुराणे च ब्रह्मणाऽव्यक्तमूर्त्तिना॥ १९

पुरा त्वेकार्णवं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
नष्टचन्द्रार्कनक्षत्रं प्रणष्टपवनानलम्॥ २०

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं भावाभावविवर्जितम्।
निमग्नपर्वततरू तमोभूतं सुदुर्दशम्॥ २१

तस्मिन् स शेते भगवान् निद्रां वर्षसहस्त्रिकीम्।
रात्र्यन्ते सृजते लोकान् राजसं रूपमास्थितः॥ २२

राजसः पञ्चवदनो वेदवेदाङ्गपारगः।
स्त्रष्टा चराचरस्यास्य जगतोऽद्भुतदर्शनः॥ २३

तमोमयस्तथैवान्यः समुद्भूतस्त्रिलोचनः।
शूलपाणिः कपर्दी च अक्षमालां च दर्शयन्॥ २४

ततो महात्मा ह्यसृजदहंकारं सुदारुणम्।
येनाक्रान्तावुभौ देवौ तावेव ब्रह्मशंकरौ॥ २५

अहंकारावृतो रुद्रः प्रत्युवाच पितामहम्।
को भवानिह संप्राप्तः केन सृष्टोऽसि मां वद॥ २६

पितामहोऽप्यहंकारात् प्रत्युवाचाथ को भवान्।
भवतो जनकः कोऽत्र जननी वा तदुच्यताम्॥ २७

इत्यन्योन्यं पुरा ताभ्यां ब्रह्मेशाभ्यां कलिप्रिय।
परिवादोऽभवत् तत्र उत्पत्तिर्भवतोऽभवत्॥ २८

भवानप्यन्तरिक्षं हि जातमात्रस्तदोत्पतत्।
धारयन्नतुलां वीणां कुर्वन् किलकिलाध्वनिम्॥ २९

पुलस्त्यजीने कहा—(नारदजी!) ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ तथा अग्रगणी होनेपर भी भगवान् शिवको कपाली जानकर प्रजापति दक्षने उन्हें (यज्ञमें) निमन्त्रित नहीं किया॥ १७॥

नारदजीने (फिर) पूछा—(महाराज!) देवश्रेष्ठ शूलपाणि, त्रिलोचन भगवान् शंकर किस कर्मसे और किस प्रकार कपाली हो गये, यह बतलायें॥ १८॥

पुलस्त्यजीने कहा—नारदजी! आप ध्यान देकर सुनें। यह पुरानी कथा आदिपुराणमें अव्यक्तमूर्ति ब्रह्माजीके द्वारा कही गयी है। (मैं उसी प्राचीन कथाको आपसे कहता हूँ।) प्राचीन समयमें समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् एकीभूत महासमुद्रमें निमग्न (डूबा हुआ) था। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, वायु एवं अग्नि—किसीका भी कोई (अलग) अस्तित्व नहीं था। 'भाव' एवं 'अभाव'से रहित जगत्की उस समयकी अवस्थाका कोई ठीक-ठीक ज्ञान, विचार, तर्कना या वर्णन सम्भव नहीं है। सभी पर्वत एवं वृक्ष जलमें निमग्न थे तथा सम्पूर्ण जगत् अन्धकारसे व्याप्त एवं दुर्दशाग्रस्त था। ऐसे समयमें भगवान् विष्णु हजारों वर्षोंकी निद्रामें शयन करते हैं एवं रात्रिके अन्तमें राजस रूप ग्रहणकर वे सभी लोकोंकी रचना करते हैं॥ १९—२२॥

इस चराचरात्मक जगत्का स्त्रष्टा भगवान् विष्णुका वह अद्भुत राजस स्वरूप पञ्चमुख एवं वेद-वेदाङ्गोंका ज्ञाता था। उसी समय तमोमय, त्रिलोचन, शूलपाणि, कपर्दी तथा रुद्राक्षमाला धारण किया हुआ एक अन्य पुरुष भी प्रकट हुआ। उसके बाद भगवान्ने अतिदारुण अहंकारकी रचना की, जिससे ब्रह्मा तथा शंकर—वे दोनों ही देवता आक्रान्त हो गये। अहंकारसे व्याप्त शिवने ब्रह्मासे कहा—तुम कौन हो और यहाँ कैसे आये हो? तुम मुझे यह भी बतलाओ कि तुम्हारी सृष्टि किसने की है?॥ २३—२६॥

(फिर) इसपर ब्रह्माने भी अहंकारसे उत्तर दिया—आप भी बतलाइये कि आप कौन हैं तथा आपके माता-पिता कौन हैं? लोक-कल्याणके लिये कलहको प्रिय माननेवाले नारदजी! इस प्रकार प्राचीनकालमें ब्रह्मा और शंकरके बीच एक-दूसरेसे दुर्विवाद हुआ। उसी समय आपका भी प्रादुर्भाव हुआ। आप उत्पन्न होते ही अनुपम वीणा धारण किये किलकिला शब्द करते हुए अन्तरिक्षकी ओर ऊपर चले गये। इसके बाद भगवान् शिव मानो

ततो विनिर्जितः शंभुर्मानिना पद्मयोनिना।
तस्थावधोमुखो दीनो ग्रहाक्रान्तो यथा शशी॥ ३०
पराजिते लोकपतौ देवेन परमेष्ठिना।
क्रोधान्धकारितं रुद्रं पञ्चमोऽथ मुखोऽब्रवीत्॥ ३१
अहं ते प्रतिजानामि तमोमूर्ते त्रिलोचन।
दिग्वासा वृषभारूढो लोकक्षयकरो भवान्॥ ३२
इत्युक्तः शंकरः क्रुद्धो वदनं घोरचक्षुषा।
निर्दग्धुकामस्त्वनिशं ददर्श भगवानजः॥ ३३
ततस्त्रिनेत्रस्य समुद्भवन्ति
वक्त्राणि पञ्चाथ सुदर्शनानि।
श्वेतं च रक्तं कनकावदातं
नीलं तथा पिङ्गजटं च शुभ्रम्॥ ३४
वक्त्राणि दृष्ट्वाऽर्कसमानि सद्यः
पैतामहं वक्त्रमुवाच वाक्यम्।
समाहतस्याथ जलस्य बुद्बुदा
भवन्ति किं तेषु पराक्रमोऽस्ति॥ ३५
तच्छ्रुत्वा क्रोधयुक्तेन शंकरेण महात्मना।
नखाग्रेण शिरश्छिन्नं ब्राह्मं परुषवादिनम्॥ ३६
तच्छिन्नं शंकरस्यैव सव्ये करतलेऽपतत्।
पतते न कदाचिच्च तच्छंकरकराच्छिरः॥ ३७
अथ क्रोधावृतेनापि ब्रह्मणाद्भुतकर्मणा।
सृष्टस्तु पुरुषो धीमान् कवची कुण्डली शरी॥ ३८
धनुष्पाणिर्महाबाहुर्बाणशक्तिधरोऽव्ययः।
चतुर्भुजो महातूणी आदित्यसमदर्शनः॥ ३९
स प्राह गच्छ दुर्बुद्धे मा त्वां शूलिन् निपातये।
भवान् पापसमायुक्तः पापिष्ठं को जिघांसति॥ ४०
इत्युक्तः शंकरस्तेन पुरुषेण महात्मना।
त्रपायुक्तो जगामाथ रुद्रो बदरिकाश्रमम्॥ ४१
नरनारायणस्थानं पर्वते हि हिमाश्रये।
सरस्वती यत्र पुण्या स्यन्दते सरितां वरा॥ ४२
तत्र गत्वा च तं दृष्ट्वा नारायणमुवाच ह।
भिक्षां प्रयच्छ भगवन् महाकापालिकोऽस्मि भोः॥ ४३
इत्युक्तो धर्मपुत्रस्तु रुद्रं वचनमब्रवीत्।
सव्यं भुजं ताडयस्व त्रिशूलेन महेश्वर॥ ४४

ब्रह्माद्वारा पराजित-से होकर राहुग्रस्त चन्द्रमाके समान दीन एवं अधोमुख होकर खड़े हो गये॥ २७—३०॥

(ब्रह्माके द्वारा) लोकपति (शंकर)-के पराजित हो जानेपर क्रोधसे अन्धे हुए रुद्रसे (श्रीब्रह्माजीके) पाँचवें मुखने कहा—तमोमूर्ति त्रिलोचन! मैं आपको जानता हूँ। आप दिगम्बर, वृषारोही एवं लोकोंको नष्ट करनेवाले (प्रलयंकारी) हैं। इसपर अजन्मा भगवान् शंकर अपने तीसरे घोर नेत्रद्वारा भस्म करनेकी इच्छासे ब्रह्माके उस मुखको एकटक देखने लगे। तदनन्तर श्रीशंकरके श्वेत, रक्त, स्वर्णिम, नील एवं पिंगल वर्णके सुन्दर पाँच मुख समुद्भूत हो गये॥ ३१—३४॥

सूर्यके समान दीप्त (उन) मुखोंको देखकर पितामहके मुखने कहा—जलमें आघात करनेसे बुद्बुद तो उत्पन्न होते हैं, पर क्या उनमें कुछ शक्ति भी होती है? यह सुनकर क्रोधभरे भगवान् शंकरने ब्रह्माके कठोर भाषण करनेवाले सिरको अपने नखके अग्रभागसे काट डाला; पर वह कटा हुआ ब्रह्माजीका सिर शंकरजीके ही वाम हथेलीपर जा गिरा एवं वह कपाल श्रीशंकरके उस हथेलीसे (इस प्रकार चिपक गया कि गिरानेपर भी) किसी प्रकार न गिरा। इसपर अद्भुतकर्मी ब्रह्माजी अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने कवच-कुण्डल एवं शर धारण करनेवाले धनुर्धर विशाल बाहुवाले एक पुरुषकी रचना की। वह अव्यय, चतुर्भुज बाण, शक्ति और भारी तरकस धारण किये था तथा सूर्यके समान तेजस्वी दीख पड़ता था॥ ३५—३९॥

उस नये पुरुषने शिवजीसे कहा—दुर्बुद्धि शूलधारी शंकर! तुम शीघ्र (यहाँसे) चले जाओ, अन्यथा मैं तुम्हें मार डालूँगा। पर तुम पापयुक्त हो; भला, इतने बड़े पापीको कौन मारना चाहेगा? जब उस महापुरुषने शंकरसे इस प्रकार कहा, तब शिवजी लज्जित होकर हिमालय पर्वतपर स्थित बदरिकाश्रमको चले गये, जहाँ नर-नारायणका स्थान है और जहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ पवित्र सरस्वती नदी बहती है। वहाँ जाकर और उन नारायणको देखकर शंकरने कहा—भगवन्! मैं महाकापालिक हूँ। आप मुझे भिक्षा दें। ऐसा कहनेपर धर्मपुत्र (नारायण)-ने रुद्रसे कहा—महेश्वर! तुम अपने त्रिशूलके द्वारा मेरी बायीं भुजापर ताड़ना करो॥ ४०—४४॥

नारायणवचः श्रुत्वा त्रिशूलेन त्रिलोचनः।
सव्यं नारायणभुजं ताडयामास वेगवान्॥ ४५
त्रिशूलाभिहतान्मार्गात् तिस्रो धारा विनिर्ययुः।
एका गगनमाक्रम्य स्थिता ताराभिमण्डिता॥ ४६
द्वितीया न्यपतद् भूमौ तां जग्राह तपोधनः।
अत्रिस्तस्मात् समुद्भूतो दुर्वासा शंकरांशतः॥ ४७
तृतीया न्यपतद्धारा कपाले रौद्रदर्शने।
तस्माच्छिशुः समभवत् संनद्धकवचो युवा॥ ४८
श्यामावदातः शरचापपाणि-
र्गर्जन्यथा प्रावृषि तोयदोऽसौ।
इत्थं ब्रुवन् कस्य विशातयामि
स्कन्धाच्छिरस्तालफलं यथैव॥ ४९
तं शंकरोऽभ्येत्य वचो बभाषे
चरं हि नारायणबाहुजातम्।
निपातयैनं नर दुष्टवाक्यं
ब्रह्मात्मजं सूर्यशतप्रकाशम्॥ ५०
इत्येवमुक्तः स तु शंकरेण
आद्यं धनुस्त्वाजगवं प्रसिद्धम्।
जग्राह तूणानि तथाऽक्षयाणि
युद्धाय वीरः स मतिं चकार॥ ५१
ततः प्रयुद्धौ सुभृशं महाबलौ
ब्रह्मात्मजो बाहुभवश्च शार्वः।
दिव्यं सहस्रं परिवत्सराणां
ततो हरोऽभ्येत्य विरञ्चिमूचे॥ ५२
जितस्त्वदीयः पुरुषः पितामहं
नरेण दिव्याद्भुतकर्मणा बली।
महापृषत्कैरभिपत्य ताडित-
स्तदद्भुतं चेह दिशो दशैव॥ ५३
ब्रह्मा तमीशं वचनं बभाषे
नेहास्य जन्मान्यजितस्य शंभो।
पराजितश्चेष्यतेऽसौ त्वदीयो
नरो मदीयः पुरुषो महात्मा॥ ५४
इत्येवमुक्त्वा वचनं त्रिनेत्र-
श्चिक्षेप सूर्ये पुरुषं विरिञ्चेः।
नरं नरस्यैव तदा स विग्रहे
चिक्षेप धर्मप्रभवस्य देवः॥ ५५

शिवजीने नारायणकी बात सुनकर त्रिशूलद्वारा बड़े वेगसे उनकी वाम भुजापर आघात किया। त्रिशूलद्वारा (भुजापर) प्रताड़ित मार्गसे जलकी तीन धाराएँ निकल पड़ीं। एक धारा आकाशमें जाकर ताराओंसे मण्डित आकाशगङ्गा हुई; दूसरी धारा पृथ्वीपर गिरी, जिसे तपोधन अत्रिने (मन्दाकिनीके रूपमें) प्राप्त किया। शंकरके उसी अंशसे दुर्वासाका प्रादुर्भाव हुआ। तीसरी धारा भयानक दिखायी पड़नेवाले कपालपर गिरी, जिससे एक शिशु उत्पन्न हुआ। वह (जन्म लेते ही) कवच बाँधे, श्यामवर्णका युवक था। उसके हाथोंमें धनुष और बाण था। फिर वह वर्षाकालमें मेघ-गर्जनके समान कहने लगा—'मैं किसके स्कन्धसे सिरको तालफलके सदृश काट गिराऊँ?'॥ ४५—४९॥

श्रीनारायणकी बाहुसे उत्पन्न उस पुरुषके समीप जाकर श्रीशंकरने कहा—हे नर! तुम सूर्यके समान प्रकाशमान, पर कटुभाषी, ब्रह्मासे उत्पन्न इस पुरुषको मार डालो। शंकरजीके ऐसा कहनेपर उस वीर नरने प्रसिद्ध आजगव नामका धनुष एवं अक्षय तूणीर ग्रहणकर युद्धका निश्चय किया। उसके बाद ब्रह्मात्मज और नारायणकी भुजासे उत्पन्न दोनों नरोंमें सहस्र दिव्य वर्षोंतक प्रबल युद्ध होता रहा। तत्पश्चात् श्रीशंकरजीने ब्रह्माके पास जाकर कहा—पितामह! यह एक अद्भुत बात है कि दिव्य एवं अद्भुत कर्मवाले (मेरे) नरने दसों दिशाओंमें व्याप्त महान् बाणोंके प्रहारसे ताडित कर आपके पुरुषको जीत लिया। ब्रह्माने उस ईशसे कहा कि इस अजितका जन्म यहाँ दूसरोंद्वारा पराजित होनेके लिये नहीं हुआ है। यदि किसीको पराजित कहा जाना अभीष्ट है तो यह तेरा नर ही है। मेरा पुरुष तो महाबली है—ऐसा कहे जानेपर श्रीशंकरजीने ब्रह्माजीके पुरुषको सूर्यमण्डलमें फेंक दिया तथा उन्हीं शंकरने उस नरको धर्मपुत्र नरके शरीरमें फेंक दिया॥ ५०—५५॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें दूसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

शंकरजीका ब्रह्महत्यासे छूटनेके लिये तीर्थोंमें भ्रमण; बदरिकाश्रममें नारायणकी स्तुति; वाराणसीमें ब्रह्महत्यासे मुक्ति एवं कपाली नाम पड़ना

पुलस्त्य उवाच

ततः करतले रुद्रः कपाले दारुणे स्थिते।
संतापमगमद् ब्रह्मंश्चिन्तया व्याकुलेन्द्रियः॥ १

ततः समागता रौद्रा नीलाञ्जनचयप्रभा।
संरक्तमूर्द्धजा भीमा ब्रह्महत्या हरान्तिकम्॥ २

तामागतां हरो दृष्ट्वा पप्रच्छ विकरालिनीम्।
काऽसि त्वमागता रौद्रे केनाप्यर्थेन तद्वद॥ ३

कपालिनमथोवाच ब्रह्महत्या सुदारुणा।
ब्रह्मवध्याऽस्मि सम्प्राप्ता मां प्रतीच्छ त्रिलोचन॥ ४

पुलस्त्यजी बोले— नारदजी! तत्पश्चात् शिवजीको अपने करतलमें भयंकर कपालके सट जानेसे बड़ी चिन्ता हुई। उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं। उन्हें बड़ा संताप हुआ। उसके बाद कालिखके समान नीले रंगकी, रक्तवर्णके केशवाली भयंकर ब्रह्महत्या शंकरके निकट आयी। उस विकराल रूपवाली स्त्रीको आयी देखकर शंकरजीने पूछा—ओ भयावनी स्त्री! यह बतलाओ कि तुम कौन हो एवं किसलिये यहाँ आयी हो? इसपर उस अत्यन्त दारुण ब्रह्महत्याने उनसे कहा—मैं ब्रह्महत्या हूँ; हे त्रिलोचन! आप मुझे स्वीकार करें—इसलिये यहाँ आयी हूँ॥ १—४॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं ब्रह्महत्या विवेश ह।
त्रिशूलपाणिनं रुद्रं सम्प्रतापितविग्रहम्॥ ५

ब्रह्महत्याभिभूतश्च शर्वो बदरिकाश्रमम्।
आगच्छन्न ददर्शाथ नरनारायणावृषी॥ ६

अदृष्ट्वा धर्मतनयौ चिन्ताशोकसमन्वितः।
जगाम यमुनां स्नातुं साऽपि शुष्कजलाऽभवत्॥ ७

कालिन्दीं शुष्कसलिलां निरीक्ष्य वृषकेतनः।
प्लक्षजां स्नातुमगमदन्तर्द्धानं च सा गता॥ ८

ऐसा कहकर ब्रह्महत्या संतापसे जलते शरीरवाले त्रिशूलपाणि शिवके शरीरमें समा गयी। ब्रह्महत्यासे अभिभूत होकर श्रीशंकर बदरिकाश्रममें आये; किंतु वहाँ नर एवं नारायण ऋषियोंके उन्हें दर्शन नहीं हुए। धर्मके उन दोनों पुत्रोंको वहाँ न देखकर वे चिन्ता और शोकसे युक्त हो यमुनाजीमें स्नान करने गये; परंतु उसका जल भी सूख गया। यमुनाजीको निर्जल देखकर भगवान् शंकर सरस्वतीमें स्नान करने गये; किंतु वह भी लुप्त हो गयी॥ ५—८॥

ततो नु पुष्करारण्यं मागधारण्यमेव च।
सैन्धवारण्यमेवासौ गत्वा स्नातो यथेच्छया॥ ९

तथैव नैमिषारण्यं धर्मारण्यं तथेश्वरः।
स्नातो नैव च सा रौद्रा ब्रह्महत्या व्यमुञ्चत॥ १०

सरित्सु तीर्थेषु तथाश्रमेषु
पुण्येषु देवायतनेषु शर्वः।
समायुतो योगयुतोऽपि पापा-
न्नावाप मोक्षं जलदध्वजोऽसौ॥ ११

ततो जगाम निर्विण्णः शंकरः कुरुजाङ्गलम्।
तत्र गत्वा ददर्शाथ चक्रपाणिं खगध्वजम्॥ १२

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हरः स्तोत्रमुदीरयत्॥ १३

फिर पुष्करारण्य, मागधारण्य और सैन्धवारण्यमें जाकर उन्होंने बहुत समयतक स्नान किया। उसी प्रकार वे नैमिषारण्य तथा सिद्धपुरमें भी गये और स्नान किये; फिर भी उस भयंकर ब्रह्महत्याने उन्हें नहीं छोड़ा। जीमूतकेतु शंकरने अनेक नदियों, तीर्थों, आश्रमों एवं पवित्र देवायतनोंकी यात्रा की; पर योगी होनेपर भी वे पापसे मुक्ति न प्राप्त कर सके। तत्पश्चात् वे खिन्न होकर कुरुक्षेत्र गये। वहाँ जाकर उन्होंने गरुडध्वज चक्रपाणि (विष्णु)-को देखा और उन शङ्ख-चक्र-गदाधारी पुण्डरीकाक्ष (श्रीनारायण)-का दर्शनकर वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—॥ ९—१३॥

हर उवाच

नमस्ते देवतानाथ नमस्ते गरुडध्वज।
शङ्खचक्रगदापाणे वासुदेव नमोऽस्तु ते॥ १४
नमस्ते निर्गुणानन्त अप्रतर्क्याय वेधसे।
ज्ञानाज्ञान निरालम्ब सर्वालम्ब नमोऽस्तु ते॥ १५
रजोयुक्त नमस्तेऽस्तु ब्रह्ममूर्ते सनातन।
त्वया सर्वमिदं नाथ जगत्सृष्टं चराचरम्॥ १६
सत्त्वाधिष्ठित लोकेश विष्णुमूर्ते अधोक्षज।
प्रजापाल महाबाहो जनार्दन नमोऽस्तु ते॥ १७
तमोमूर्ते अहं ह्येष त्वदंशक्रोधसंभवः।
गुणाभियुक्त देवेश सर्वव्यापिन् नमोऽस्तु ते॥ १८
भूरियं त्वं जगन्नाथ जलाम्बरहुताशनः।
वायुर्बुद्धिर्मनश्चापि शर्वरी त्वं नमोऽस्तु ते॥ १९
धर्मो यज्ञस्तपः सत्यमहिंसा शौचमार्जवम्।
क्षमा दानं दया लक्ष्मीर्ब्रह्मचर्यं त्वमीश्वर॥ २०
त्वं साङ्गाश्चतुरो वेदास्त्वं वेद्यो वेदपारगः।
उपवेदा भवानीश सर्वोऽसि त्वं नमोऽस्तु ते॥ २१
नमो नमस्तेऽच्युत चक्रपाणे
नमोऽस्तु ते माधव मीनमूर्ते।
लोके भवान् कारुणिको मतो मे
त्रायस्व मां केशव पापबन्धात्॥ २२
ममाशुभं नाशय विग्रहस्थं
यद् ब्रह्महत्याऽभिभवं बभूव।
दग्धोऽस्मि नष्टोऽस्म्यसमीक्ष्यकारी
पुनीहि तीर्थोऽसि नमो नमस्ते॥ २३

भगवान् शंकर बोले—हे देवताओंके स्वामी! आपको नमस्कार है। गरुडध्वज! आपको प्रणाम है। शङ्ख-चक्र-गदाधारी वासुदेव! आपको नमस्कार है। निर्गुण, अनन्त एवं अतर्कनीय विधाता! आपको नमस्कार है। ज्ञानाज्ञानस्वरूप, स्वयं निराश्रय किंतु सबके आश्रय! आपको नमस्कार है। रजोगुण, सनातन, ब्रह्ममूर्ति! आपको नमस्कार है। नाथ! आपने इस सम्पूर्ण चराचर विश्वकी रचना की है। सत्त्वगुणके आश्रय लोकेश! विष्णुमूर्ति, अधोक्षज, प्रजापालक, महाबाहु, जनार्दन! आपको नमस्कार है। हे तमोमूर्ति! मैं आपके अंशभूत क्रोधसे उत्पन्न हूँ। हे महान् गुणवाले सर्वव्यापी देवेश! आपको नमस्कार है॥ १४—१८॥

जगन्नाथ! आप ही पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु, बुद्धि, मन एवं रात्रि हैं; आपको नमस्कार है। ईश्वर! आप ही धर्म, यज्ञ, तप, सत्य, अहिंसा, पवित्रता, सरलता, क्षमा, दान, दया, लक्ष्मी एवं ब्रह्मचर्य हैं। हे ईश! आप अङ्गोंसहित चतुर्वेदस्वरूप, वेद्य एवं वेदपारगामी हैं। आप ही उपवेद हैं तथा सभी कुछ आप ही हैं; आपको नमस्कार है। अच्युत! चक्रपाणि! आपको बारंबार नमस्कार है। मीनमूर्तिधारी (मत्स्यावतारी) माधव! आपको नमस्कार है। मैं आपको लोकमें दयालु मानता हूँ। केशव! आप मेरे शरीरमें स्थित ब्रह्महत्यासे उत्पन्न अशुभको नष्ट कर मुझे पाप-बन्धनसे मुक्त करें। बिना विचार किये कार्य करनेवाला मैं दग्ध एवं नष्ट हो गया हूँ। आप साक्षात् तीर्थ हैं, अतः आप मुझे पवित्र करें। आपको बारंबार नमस्कार है॥ १९—२३॥

पुलस्त्य उवाच

इत्थं स्तुतश्चक्रधरः शंकरेण महात्मना।
प्रोवाच भगवान् वाक्यं ब्रह्महत्याक्षयाय हि॥ २४

पुलस्त्यजीने कहा—भगवान् शंकरद्वारा इस प्रकार स्तुत होनेपर चक्रधारी भगवान् विष्णु शंकरकी ब्रह्महत्याको नष्ट करनेके लिये उनसे वचन बोले—॥ २४॥

हरिरुवाच

महेश्वर शृणुष्वेमां मम वाचं कलस्वनाम्।
ब्रह्महत्याक्षयकरीं शुभदां पुण्यवर्धनीम्॥ २५
योऽसौ प्राङ्मण्डले पुण्ये मदंशप्रभवोऽव्ययः।
प्रयागे वसते नित्यं योगशायीति विश्रुतः॥ २६
चरणाद् दक्षिणात्तस्य विनिर्याता सरिद्वरा।
विश्रुता वरणेत्येव सर्वपापहरा शुभा॥ २७

भगवान् विष्णु बोले—महेश्वर! आप ब्रह्महत्याको नष्ट करनेवाली मेरी मधुर वाणी सुनें। यह शुभप्रद एवं पुण्यको बढ़ानेवाली है।

यहाँसे पूर्व प्रयागमें मेरे अंशसे उत्पन्न 'योगशायी' नामसे विख्यात देवता हैं। वे अव्यय—विकाररहित पुरुष हैं। वहाँ उनका नित्य निवास है। वहींसे उनके दक्षिण चरणसे 'वरणा' नामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ नदी निकली है। वह

सव्यादन्या द्वितीया च असिरित्येव विश्रुता।
ते उभे तु सरिच्छ्रेष्ठे लोकपूज्ये बभूवतुः॥ २८

ताभ्यां मध्ये तु यो देशस्तत्क्षेत्रं योगशायिनः।
त्रैलोक्यप्रवरं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम्।
न तादृशोऽस्ति गगने न भूम्यां न रसातले॥ २९
तत्रास्ति नगरी पुण्या ख्याता वाराणसी शुभा।
यस्यां हि भोगिनोऽपीश प्रयान्ति भवतो लयम्॥ ३०
विलासिनीनां रशनास्वनेन
श्रुतिस्वनैर्ब्राह्मणपुंगवानाम्।
शुचिस्वरत्वं गुरवो निशम्य
हास्यादशासन्त मुहुर्मुहुस्तान्॥ ३१
व्रजत्सु योषित्सु चतुष्पथेषु
पदान्यलक्तारुणितानि दृष्ट्वा।
ययौ शशी विस्मयमेव यस्यां
किंस्वित् प्रयाता स्थलपद्मिनीयम्॥ ३२
तुङ्गानि यस्यां सुरमन्दिराणि
रुन्धन्ति चन्द्रं रजनीमुखेषु।
दिवाऽपि सूर्यं पवनाप्लुताभि-
र्दीर्घाभिरेवं सुपताकिकाभिः॥ ३३
भृङ्गाश्च यस्यां शशिकान्तभित्तौ
प्रलोभ्यमानाः प्रतिबिम्बितेषु।
आलेख्ययोषिद्विमलाननाब्जे-
ष्वीयुर्भ्रमान्नैव च पुष्पकान्तरम्॥ ३४

परिभ्रमंश्चापि पराजितेषु
नरेषु संमोहनलेखनेन।
यस्यां जलक्रीडनसंगतासु
न स्त्रीषु शंभो गृहदीर्घिकासु॥ ३५

न चैव कश्चित् परमन्दिराणि
रुणद्धि शंभो सहसा ऋतेऽक्षान्।
न चाबलानां तरसा पराक्रमं
करोति यस्यां सुरतं हि मुक्त्वा॥ ३६
पाशग्रन्थिर्गजेन्द्राणां दानच्छेदो मदच्युतौ।
यस्यां मानमदौ पुंसां करिणां यौवनागमे॥ ३७

सब पापोंको हरनेवाली एवं पवित्र है। वहीं उनके वाम पादसे 'असि'नामसे प्रसिद्ध एक दूसरी नदी भी निकली है। ये दोनों नदियाँ श्रेष्ठ एवं लोकपूज्य हैं॥ २५—२८॥

उन दोनोंके मध्यका प्रदेश योगशायीका क्षेत्र है। वह तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा सभी पापोंसे छुड़ा देनेवाला तीर्थ है। उसके समान अन्य कोई तीर्थ आकाश, पृथ्वी एवं रसातलमें नहीं है। ईश! वहाँ पवित्र शुभप्रद विख्यात वाराणसी नगरी है, जिसमें भोगी लोग भी आपके लोकको प्राप्त करते हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि विलासिनी स्त्रियोंकी करधनीकी ध्वनिसे मिश्रित होकर मङ्गल स्वरका रूप धारण करती है। उस ध्वनिको सुनकर गुरुजन बारंबार उपहासपूर्वक उनका शासन करते हैं। जहाँ चौराहोंपर भ्रमण करनेवाली स्त्रियोंके अलक्त (महावर)-से अरुणित चरणोंको देखकर चन्द्रमाको स्थल-पद्मिनीके चलनेका भ्रम हो जाता है और जहाँ रात्रिका आरम्भ होनेपर ऊँचे-ऊँचे देवमन्दिर चन्द्रमाका (मानो) अवरोध करते हैं एवं दिनमें पवनान्दोलित (हवासे फहरा रही) दीर्घ पताकाओंसे सूर्य भी छिपे रहते हैं॥ २९—३३॥

जिस (वाराणसी)-में चन्द्रकान्तमणिकी भित्तियोंपर प्रतिबिम्बित चित्रमें निर्मित स्त्रियोंके निर्मल मुख-कमलोंको देखकर भ्रमर उनपर भ्रमवश लुब्ध हो जाते हैं और दूसरे पुष्पोंकी ओर नहीं जाते। हे शम्भो! वहाँ सम्मोहनलेखनसे पराजित पुरुषोंमें तथा घरकी बावलियोंमें जलक्रीड़ाके लिये एकत्र हुई स्त्रियोंमें ही 'भ्रमण' देखा जाता है, अन्यत्र किसीको 'भ्रमण' (चक्कर रोग) नहीं होता*। द्यूतक्रीडा (जुआके खेल)-के पासोंके सिवाय अन्य कोई भी दूसरेके 'पाश' (बन्धन)-में नहीं डाला जाता तथा सुरत-समयके सिवाय स्त्रियोंके साथ कोई आवेगयुक्त पराक्रम नहीं करता। जहाँ हाथियोंके बन्धनमें ही पाशग्रन्थि (रस्सीकी गाँठ) होती है, उनकी मदच्युतिमें (मदके चूनेमें) ही 'दानच्छेद' (मदकी धाराका टूटना) एवं नर हाथियोंके यौवनागममें ही 'मान' और 'मद' होते हैं, अन्यत्र नहीं; तात्पर्य यह कि दान देनेकी धारा निरन्तर चलती रहती है और अभिमानी एवं मदवाले लोग नहीं हैं॥ ३४—३७॥

* यहाँ सर्वत्र परिसंख्यालंकार है। परिसंख्यालंकार वहाँ होता है, जहाँ किसी वस्तुका एक स्थानसे निषेध करके उसका दूसरे स्थानमें स्थापन हो। ऐसा वर्णन आनन्दरामायणके अयोध्या-वर्णनमें, कादम्बरीमें, काशीखण्डमें काशी आदिके वर्णनमें भी प्राप्त होता है।

प्रियदोषाः सदा यस्यां कौशिका नेतरे जनाः।
तारागणेऽकुलीनत्वं गद्ये वृत्तच्युतिर्विभो॥ ३८

भूतिलुब्धा विलासिन्यो भुजंगपरिवारिताः।
चन्द्रभूषितदेहाश्च यस्यां त्वमिव शंकर॥ ३९

ईदृशायां सुरेशान वाराणस्यां महाश्रमे।
वसते भगवाँल्लोलः सर्वपापहरो रविः॥ ४०

दशाश्वमेधं यत्प्रोक्तं मदंशो यत्र केशवः।
तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठ पापमोक्षमवाप्स्यसि॥ ४१

विभो! जहाँ उलूक ही सदा दोषा (रात्रि)-प्रिय होते हैं, अन्य लोग दोषोंके प्रेमी नहीं हैं। तारागणोंमें ही अकुलीनता (पृथ्वीमें न छिपना) है, लोगोंमें कहीं अकुलीनताका नाम नहीं है; गद्यमें ही वृत्तच्युति (छन्दोभङ्ग) होती है, अन्यत्र वृत्त (चरित्र)-च्युति नहीं दीखती। शंकर! जहाँकी विलासिनियाँ आपके सदृश (भस्म) 'भूतिलुब्धा' 'भुजंग (सर्प)-परिवारिता' एवं 'चन्द्रभूषितदेहा' होती हैं। (यहाँ पक्षान्तरमें—विलासिनियोंके पक्षमें—संगतिके लिये, 'भूति' पद 'भस्म' और 'धन'के अर्थमें, 'भुजङ्ग' पद 'सर्प' एवं 'जार'के अर्थमें तथा 'चन्द्र' पद 'चन्द्राभूषण'के अर्थमें प्रयुक्त हैं।) सुरेशान! इस प्रकारकी वाराणसीके महान् आश्रममें सभी पापोंको दूर करनेवाले भगवान् 'लोल' नामके सूर्य निवास करते हैं। सुरश्रेष्ठ! वहीं दशाश्वमेध नामका स्थान है तथा वहीं मेरे अंशस्वरूप केशव स्थित हैं। वहाँ जाकर आप पापसे छुटकारा प्राप्त करेंगे॥ ३८—४१॥

इत्येवमुक्तो गरुडध्वजेन
वृषध्वजस्तं शिरसा प्रणम्य।
जगाम वेगाद् गरुडो यथाऽसौ
वाराणसीं पापविमोचनाय॥ ४२
गत्वा सुपुण्यां नगरीं सुतीर्थां
दृष्ट्वा च लोलं सदशाश्वमेधम्।
स्नात्वा च तीर्थेषु विमुक्तपापः
स केशवं द्रष्टुमुपाजगाम॥ ४३
केशवं शंकरो दृष्ट्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत्।
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश ब्रह्महत्या क्षयं गता॥ ४४
नेदं कपालं देवेश मद्धस्तं परिमुञ्चति।
कारणं वेद्मि न च तदेतन्मे वक्तुमर्हसि॥ ४५

भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर शिवजीने उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। फिर वे पाप छुड़ानेके लिये गरुड़के समान तेज वेगसे वाराणसी गये। वहाँ परमपवित्र तथा तीर्थभूत नगरीमें जाकर दशाश्वमेधके साथ 'असी' स्थानमें स्थित भगवान् लोलार्कका* दर्शन किया तथा (वहाँके) तीर्थोंमें स्नान कर और पाप-मुक्त होकर वे (वरुणासंगमपर) केशवका दर्शन करने गये। उन्होंने केशवका दर्शन करके प्रणामकर कहा—हृषीकेश! आपके प्रसादसे ब्रह्महत्या तो नष्ट हो गयी, पर देवेश! यह कपाल मेरे हाथको नहीं छोड़ रहा है। इसका कारण मैं नहीं जानता। आप ही मुझे यह बतला सकते हैं॥ ४२—४५॥

पुलस्त्य उवाच

महादेववचः श्रुत्वा केशवो वाक्यमब्रवीत्।
विद्यते कारणं रुद्र तत्सर्वं कथयामि ते॥ ४६
योऽसौ ममाग्रतो दिव्यो ह्रदः पद्मोत्पलैर्युतः।
एष तीर्थवरः पुण्यो देवगन्धर्वपूजितः॥ ४७
एतस्मिन्प्रवरे तीर्थे स्नानं शंभो समाचर।
स्नातमात्रस्य चाद्यैव कपालं परिमोक्ष्यति॥ ४८

पुलस्त्यजी बोले—महादेवका वचन सुनकर केशवने यह वाक्य कहा—रुद्र! इसके समस्त कारणोंको मैं तुम्हें बतलाता हूँ। मेरे सामने कमलोंसे भरा यह जो दिव्य सरोवर है, यह पवित्र तथा तीर्थोंमें श्रेष्ठ है एवं देवताओं तथा गन्धर्वोंसे पूजित है। शिवजी! आप इस परम श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करें। स्नान करनेमात्रसे आज ही यह कपाल (आपके हाथको) छोड़ देगा। इससे रुद्र! संसारमें आप

* लोलार्कके सम्बन्धमें विशेष जानकारीके लिये देखिये सूर्याङ्कके ३०८वें से ३१०वें पृष्ठतक प्रकाशित विवरण।

ततः कपाली लोके च ख्यातो रुद्र भविष्यसि।
कपालमोचनेत्येवं तीर्थं चेदं भविष्यति॥ ४९

पुलस्त्य उवाच

एवमुक्तः सुरेशेन केशवेन महेश्वरः।
कपालमोचने सस्नौ वेदोक्तविधिना मुने॥ ५०
स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य
परिच्युतं हस्ततलात् कपालम्।
नाम्ना बभूवाथ कपालमोचनं
तत्तीर्थवर्यं भगवत्प्रसादात्॥ ५१

'कपाली' नामसे प्रसिद्ध होंगे तथा यह तीर्थ भी 'कपालमोचन' नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ४६—४९॥

पुलस्त्यजी बोले—मुने! सुरेश्वर केशवके ऐसा कहनेपर महेश्वरने कपालमोचनतीर्थमें वेदोक्त विधिसे स्नान किया। उस तीर्थमें स्नान करते ही उनके हाथसे ब्रह्म-कपाल गिर गया। तभीसे भगवान्‌की कृपासे उस उत्तम तीर्थका नाम 'कपालमोचन' पड़ा*॥ ५०-५१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तीसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

विजयाकी मौसी सतीसे दक्ष-यज्ञकी वार्ता, सतीका प्राण-त्याग; शिवका क्रोध एवं उनके गणोंद्वारा दक्ष-यज्ञका विध्वंस

पुलस्त्य उवाच

एवं कपाली संजातो देवर्षे भगवान् हरः।
अनेन कारणेनासौ दक्षेण न निमन्त्रितः॥ १
कपालिजायेति सतीं विज्ञायाथ प्रजापतिः।
यज्ञे चार्हापि दुहिता दक्षेण न निमन्त्रिता॥ २
एतस्मिन्नन्तरे देवीं द्रष्टुं गौतमनन्दिनी।
जया जगाम शैलेन्द्रं मन्दरं चारुकन्दरम्॥ ३
तामागतां सती दृष्ट्वा जयामेकामुवाच ह।
किमर्थं विजया नागाज्जयन्ती चापराजिता॥ ४

पुलस्त्यजी बोले—देवर्षे! भगवान् शिव इस प्रकार कपाली नामसे ख्यात हुए और इसी कारण वे दक्षके द्वारा निमन्त्रित नहीं हुए। प्रजापति दक्षने सतीको अपनी पुत्री होनेपर भी कपालीकी पत्नी समझकर निमन्त्रणके योग्य न मानकर उन्हें यज्ञमें नहीं बुलाया। इसी बीच देवीका दर्शन करनेके लिये गौतम-पुत्री जया सुन्दर गुफावाले पर्वतश्रेष्ठ मन्दरपर गयी। जयाको वहाँ अकेली आयी देखकर सती बोलीं—विजये! जयन्ती और अपराजिता यहाँ क्यों नहीं आयीं?॥ १—४॥

सा देव्या वचनं श्रुत्वा उवाच परमेश्वरीम्।
गता निमन्त्रिताः सर्वा मखे मातामहस्य ताः॥ ५
समं पित्रा गौतमेन मात्रा चैवाप्यहल्यया।
अहं समागता द्रष्टुं त्वां तत्र गमनोत्सुका॥ ६
किं त्वं न व्रजसे तत्र तथा देवो महेश्वरः।
नामन्त्रिताऽसि तातेन उताहोस्विद् व्रजिष्यसि॥ ७
गतास्तु ऋषयः सर्वे ऋषिपत्न्यः सुरास्तथा।
मातृष्वसः शशाङ्कश्च सपत्नीको गतः क्रतुम्॥ ८
चतुर्दशेषु लोकेषु जन्तवो ये चराचराः।
निमन्त्रिताः क्रतौ सर्वे किं नासि त्वं निमन्त्रिता॥ ९

देवीके वचनको सुनकर विजयाने उन सती परमेश्वरीसे कहा—अपने पिता गौतम और माता अहल्याके साथ वे मातामहके सत्र (यज्ञ)-में निमन्त्रित होकर चली गयी हैं। वहाँ जानेके लिये उत्सुक मैं आपसे मिलने आयी हूँ। क्या आप तथा भगवान् शिव वहाँ नहीं जा रहे हैं? क्या पिताजीने आपको नहीं बुलाया है? अथवा आप वहाँ जायेंगी? सभी ऋषि, ऋषि-पत्नियाँ तथा देवगण वहाँ गये हैं। हे मातृष्वसः (मौसी)! पत्नीके सहित शशाङ्क भी उस यज्ञमें गये हैं। चौदहों लोकोंके समस्त चराचर प्राणी उस यज्ञमें निमन्त्रित हुए हैं। क्या आप निमन्त्रित नहीं हैं?॥ ५—९॥

* कपालमोचन तीर्थ काशीके परिसरमें बकरियाकुण्डसे १ मीलपर स्थित है।

पुलस्त्य उवाच

जयायास्तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातसमं सती।
मन्युनाऽभिप्लुता ब्रह्मन् पञ्चत्वमगमत् ततः॥ १०
जया मृतां सतीं दृष्ट्वा क्रोधशोकपरिप्लुता।
मुञ्चती वारि नेत्राभ्यां सस्वरं विललाप ह॥ ११
आक्रन्दितध्वनिं श्रुत्वा शूलपाणिस्त्रिलोचनः।
आः किमेतदितीत्युक्त्वा जयाभ्याशमुपागतः॥ १२
आगतो ददृशे देवीं लतामिव वनस्पतेः।
कृत्तां परशुना भूमौ श्लथाङ्गीं पतितां सतीम्॥ १३
देवीं निपतितां दृष्ट्वा जयां पप्रच्छ शंकरः।
किमियं पतिता भूमौ निकृत्तेव लता सती॥ १४
सा शंकरवचः श्रुत्वा जया वचनमब्रवीत्।
श्रुत्वा मखस्था दक्षस्य भगिन्यः पतिभिः सह॥ १५
आदित्याद्यास्त्रिलोकेश समं शक्रादिभिः सुरैः।
मातृष्वसा विपन्नेयमन्तर्दुःखेन दह्यती॥ १६

पुलस्त्यजी बोले—ब्रह्मन्! (नारदजी!) वज्रपातके समान जयाकी उस बातको सुनकर क्रोध एवं दुःखसे भरकर सतीने प्राण छोड़ दिये। सतीको मरी हुई देखकर क्रोध एवं दुःखसे भरी जया आँसू बहाते हुए जोर-जोरसे विलाप करने लगी। रोनेकी करुणध्वनि सुनकर शूलपाणि भगवान् शिव 'अरे क्या हुआ, क्या हुआ'—ऐसा कहकर उसके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने फरसेसे कटी वृक्षपर चढ़ी लताकी तरह सतीको भूमिपर मरी पड़ी देखा तो जयासे पूछा—ये सती कटी लताकी तरह भूमिपर क्यों पड़ी हुई हैं? शिवके वचनको सुनकर जया बोली—हे त्रिलोकेश्वर! दक्षके यज्ञमें अपने-अपने पतिके साथ बहनोंका एवं इन्द्र आदि देवोंके साथ आदित्य आदिका निमन्त्रित होकर उपस्थित होना सुनकर आन्तरिक दुःख (की ज्वाला)-से दग्ध हो गयीं। इससे मेरी माताकी बहन (सती)-के प्राण निकल गये॥ १०—१६॥

पुलस्त्य उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचो रौद्रं रुद्रः क्रोधाप्लुतो बभौ।
क्रुद्धस्य सर्वगात्रेभ्यो निश्चेरुः सहसार्चिषः॥ १७
ततः क्रोधात् त्रिनेत्रस्य गात्ररोमोद्भवा मुने।
गणाः सिंहमुखा जाता वीरभद्रपुरोगमाः॥ १८
गणैः परिवृतस्तस्मान्मन्दराद्धिमसाह्वयम्।
गतः कनखलं तस्माद् यत्र दक्षोऽयजत् क्रतुम्॥ १९
ततो गणानामधिपो वीरभद्रो महाबलः।
दिशि प्रतीच्युत्तरायां तस्थौ शूलधरो मुने॥ २०
जया क्रोधाद् गदां गृह्य पूर्वदक्षिणतः स्थिता।
मध्ये त्रिशूलधृक् शर्वस्तस्थौ क्रोधान्महामुने॥ २१
मृगारिवदनं दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः।
ऋषयो यक्षगन्धर्वाः किमिदं त्वित्यचिन्तयन्॥ २२
ततस्तु धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान्।
द्वारपालस्तदा धर्मो वीरभद्रमुपाद्रवत्॥ २३
तमापतन्तं सहसा धर्मं दृष्ट्वा गणेश्वरः।
करेणैकेन जग्राह त्रिशूलं वह्निसन्निभम्॥ २४
कार्मुकं च द्वितीयेन तृतीयेनाथ मार्गणान्।
चतुर्थेन गदां गृह्य धर्ममभ्यद्रवद् गणः॥ २५

पुलस्त्यजीने कहा—जयाके इस भयंकर (अमङ्गल) वचनको सुनकर शिवजी अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उनके शरीरसे सहसा अग्निकी तेज ज्वालाएँ निकलने लगीं। मुने! इसके बाद क्रोधके कारण त्रिनेत्र भगवान् शिवके शरीरके लोमोंसे सिंहके समान मुखवाले वीरभद्र आदि बहुत-से रुद्रगण उत्पन्न हो गये। अपने गणोंसे घिरे भगवान् शिव मंदरपर्वतसे हिमालयपर गये और वहाँसे कनखल चले गये, जहाँ दक्ष यज्ञ कर रहे थे। इसके बाद सभी गणोंमें अग्रणी महाबली वीरभद्र शूल धारण किये पश्चिमोत्तर (वायव्य) दिशामें चले गये॥ १७—२०॥

महामुने! क्रोधसे गदा लेकर जया पूर्व-दक्षिण दिशा (अग्निकोण)-में खड़ी हो गयी और मध्यमें क्रोधसे भरे त्रिशूल लिये शंकर खड़े हो गये। सिंहवदन (वीरभद्र)-को देखकर इन्द्र आदि देवता, ऋषि, यक्ष एवं गन्धर्वलोग सोचने लगे कि यह क्या है? तदनन्तर द्वारपाल धर्म धनुष एवं सर्पके समान बाणोंको लेकर वीरभद्रकी ओर दौड़े। सहसा धर्मको आता हुआ देखकर गणेश्वर एक हाथमें अग्निके सदृश त्रिशूल, दूसरे हाथमें धनुष, तीसरे हाथमें बाण और चौथे हाथमें गदा लेकर उनकी ओर दौड़ पड़े॥ २१—२५॥

ततश्चतुर्भुजं दृष्ट्वा धर्मराजो गणेश्वरम्।
तस्थावष्टभुजो भूत्वा नानायुधधरोऽव्ययः॥ २६

खड्गचर्मगदाप्रासपरश्वधवराङ्कुशैः।
चापमार्गणभृत्तस्थौ हन्तुकामो गणेश्वरम्॥ २७

गणेश्वरोऽपि संक्रुद्धो हन्तुं धर्मं सनातनम्।
ववर्ष मार्गणांस्तीक्ष्णान् यथा प्रावृषि तोयदः॥ २८

तावन्योन्यं महात्मानौ शरचापधरौ मुने।
रुधिरारुणसिक्ताङ्गौ किंशुकाविव रेजतुः॥ २९

इसके बाद धर्मराजने चतुर्भुज गणेश्वरको देख और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्जित हो तथा आठ भुजाओंको धारणकर उनका सामना किया और गणोंके स्वामी वीरभद्रपर प्रहार करनेकी इच्छासे वे अपने हाथोंमें ढाल, तलवार, गदा, भाला, फरसा, अंकुश, धनुष एवं बाण लेकर खड़े हो गये। गणेश्वर वीरभद्र भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर धर्मको मारनेके लिये वर्षाकालिक मेघके सदृश उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे। मुने! धनुषको लिये रुधिरसे लथपथ (अतएव) लाल शरीरवाले वे दोनों महात्मा पलाश-पुष्पके समान दीखने लगे॥ २६—२९॥

ततो वरास्त्रैर्गणनायकेन
जितः स धर्मः तरसा प्रसह्य।
पराङ्मुखोऽभूद्विमना मुनीन्द्र
स वीरभद्रः प्रविवेश यज्ञम्॥ ३०

यज्ञवाटं प्रविष्टं तं वीरभद्रं गणेश्वरम्।
दृष्ट्वा तु सहसा देवा उत्तस्थुः सायुधा मुने॥ ३१
वसवोऽष्टौ महाभागा ग्रहा नव सुदारुणाः।
इन्द्राद्या द्वादशादित्या रुद्रास्त्वेकादशैव हि॥ ३२
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च सिद्धगन्धर्वपन्नगाः।
यक्षाः किंपुरुषाश्चैव खगाश्चक्रधरास्तथा॥ ३३
राजा वैवस्वताद् वंशाद् धर्मकीर्तिस्तु विश्रुतः।
सोमवंशोद्भवश्चोग्रो भोजकीर्तिर्महाभुजः॥ ३४
दितिजा दानवाश्चान्ये येऽन्ये तत्र समागताः।
ते सर्वेऽभ्यद्रवन् रौद्रं वीरभद्रमुदायुधाः॥ ३५

मुनिराज! इसके बाद श्रेष्ठ शस्त्रास्त्रोंके कारण वीरभद्रसे पराजित होकर धर्मराज खिन्न होकर पीछे हट गये। इधर वीरभद्र यज्ञशालामें घुस गये। मुने! गणेश्वर वीरभद्रको यज्ञमण्डपमें घुसते देखकर सहसा सभी देवता अस्त्र-शस्त्र लेकर उठ खड़े हुए। महाभाग आठों वसु, अत्यन्त दारुण नवों ग्रह, इन्द्र आदि दिक्पाल, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, विश्वेदेव, साध्यगण, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग, यक्ष, किंपुरुष, महाबाहु, विहंगम, चक्रधर, वैवस्वत-वंशीय प्रसिद्ध राजा धर्मकीर्ति, चन्द्रवंशीय महाबाहु, उग्र बलशाली राजा भोजकीर्ति, दैत्य-दानव तथा वहाँ आये हुए अन्य सभी लोग आयुध लेकर रौद्र वीरभद्रकी ओर दौड़ पड़े॥ ३०—३५॥

तानापतत एवाशु चापबाणधरो गणः।
अभिदुद्राव वेगेन सर्वानेव शरोत्करैः॥ ३६

ते शस्त्रवर्षमतुलं गणेशाय समुत्सृजन्।
गणेशोऽपि वरास्त्रैस्तान् प्रचिच्छेद बिभेद च॥ ३७

शरैः शस्त्रैश्च सततं वध्यमाना महात्मना।
वीरभद्रेण देवाद्या अवहारमकुर्वत॥ ३८

ततो विवेश गणपो यज्ञमध्यं सुविस्तृतम्।
जुह्वाना ऋषयो यत्र हवींषि प्रवितन्वते॥ ३९

धनुष-बाण धारण किये गणोंने उन देवताओंके आते ही उनपर वेगपूर्वक शस्त्रोंद्वारा आक्रमण कर दिया। इधर देवताओंने भी वीरभद्रके ऊपर अतुलनीय बाणोंकी वर्षा की। गणनायक वीरभद्रने देवताओंके अस्त्रोंको छिन्न-भिन्न कर डाला। महात्मा वीरभद्रद्वारा विविध बाणों और अस्त्रोंसे आहत होकर देवता आदि रणभूमिसे भाग चले। तब गणपति वीरभद्र सुविस्तृत यज्ञके मध्यमें प्रविष्ट हुए जहाँ मुनिगण यज्ञकुण्डमें हविकी आहुति दे रहे थे॥ ३६—३९॥

ततो महर्षयो दृष्ट्वा मृगेन्द्रवदनं गणम्।
भीता होत्रं परित्यज्य जग्मुः शरणमच्युतम्॥ ४०

तानार्तांश्चक्रभृद् दृष्ट्वा महर्षींस्त्रस्तमानसान्।
न भेतव्यमितीत्युक्त्वा समुत्तस्थौ वरायुधः॥ ४१

समानम्य ततः शार्ङ्गं शरानग्निशिखोपमान्।
मुमोच वीरभद्राय कायावरणदारणान्॥ ४२

ते तस्य कायमासाद्य अमोघा वै हरेः शराः।
निपेतुर्भुवि भग्नाशा नास्तिकादिव याचकाः॥ ४३
शरांस्त्वमोघान्मोघत्वमापन्नान्वीक्ष्य केशवः।
दिव्यैरस्त्रैर्वीरभद्रं प्रच्छादयितुमुद्यतः॥ ४४
तानस्त्रान् वासुदेवेन प्रक्षिप्तान् गणनायकः।
वारयामास शूलेन गदया मार्गणैस्तथा॥ ४५
दृष्ट्वा विपन्नान्यस्त्राणि गदां चिक्षेप माधवः।
त्रिशूलेन समाहत्य पातयामास भूतले॥ ४६
मुशलं वीरभद्राय प्रचिक्षेप हलायुधः।
लाङ्गलं च गणेशोऽपि गदया प्रत्यवारयत्॥ ४७
मुशलं सगदं दृष्ट्वा लाङ्गलं च निवारितम्।
वीरभद्राय चिक्षेप चक्रं क्रोधात् खगध्वजः॥ ४८
तमापतन्तं शतसूर्यकल्पं
सुदर्शनं वीक्ष्य गणेश्वरस्तु।
शूलं परित्यज्य जग्राह चक्रं
यथा मधुं मीनवपुः सुरेन्द्रः॥ ४९
चक्रे निगीर्णे गणनायकेन
क्रोधातिरक्तोऽसितचारुनेत्रः ।
मुरारिरभ्येत्य गणाधिपेन्द्र-
मुत्क्षिप्य वेगाद् भुवि निष्पिपेष॥ ५०
हरिबाहूरुवेगेन विनिष्पिष्टस्य भूतले।
सहितं रुधिरोद्गारैर्मुखाच्चक्रं विनिर्गतम्॥ ५१
ततो निःसृतमालोक्य चक्रं कैटभनाशनः।
समादाय हृषीकेशो वीरभद्रं मुमोच ह॥ ५२
हृषीकेशेन मुक्तस्तु वीरभद्रो जटाधरम्।
गत्वा निवेदयामास वासुदेवात्पराजयम्॥ ५३
ततो जटाधरो दृष्ट्वा गणेशं शोणिताप्लुतम्।
निःश्वसन्तं यथा नागं क्रोधं चक्रे तदाव्ययः॥ ५४

तब वे महर्षि सिंहमुख वीरभद्रको देखकर भयसे हवन छोड़कर विष्णुकी शरणमें चले गये। चक्रधारी विष्णुने भयभीत महर्षियोंको दुःखी देखकर 'डरो मत' ऐसा कहकर अपने श्रेष्ठ अस्त्र लेकर खड़े हो गये और अपने शार्ङ्ग धनुषको चढ़ाकर वीरभद्रके ऊपर शरीरको विदीर्ण करनेवाले अग्निशिखाके तुल्य बाणोंकी वर्षा करने लगे। पर श्रीहरिके वे अमोघ (सफल) बाण वीरभद्रके शरीरपर पहुँचकर भी पृथ्वीपर ऐसे (यों ही व्यर्थ होकर) गिर पड़े, जैसे कि याचक नास्तिकके पाससे विफल—निराश होकर लौट जाते हैं॥ ४०—४३॥

अपने (अव्यर्थ) बाणोंको व्यर्थ होते देखकर भगवान् विष्णु पुनः वीरभद्रको दिव्य अस्त्रोंसे ढक देनेके लिये तैयार हो गये। वासुदेवके द्वारा प्रयुक्त उन बाणोंको गणश्रेष्ठ वीरभद्रने शूल, गदा और बाणोंसे रोककर विफल कर दिया। भगवान् विष्णुने अपने अस्त्रोंको नष्ट होते देखकर उसपर कौमोदकी गदा फेंकी। किंतु वीरभद्रने उसे भी अपने त्रिशूलसे काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। हलायुधने वीरभद्रकी ओर मूसल और हल फेंका जिसे वीरभद्रने गदासे निवारित कर दिया। गदाके सहित मूसल और हलको नष्ट हुआ देखकर गरुडध्वज विष्णुने क्रोधसे वीरभद्रके ऊपर सुदर्शनचक्र चला दिया॥ ४४—४८॥

गणेश्वर वीरभद्रने सैकड़ों सूर्यके सदृश सुदर्शन चक्रको अपनी ओर आते देखा तो शूलको छोड़कर चक्रको वह ऐसे निगल लिया जैसे मीनशरीरधारी विष्णु मधुदैत्यको निगल गये थे। वीरभद्रद्वारा चक्रके निगल लिये जानेपर विष्णुके सुन्दर काले नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वे उसके निकट पहुँच गये और उसे वेगसे उठा लिया तथा पृथ्वीपर पटककर उसे पीसने लगे। भगवान् विष्णुकी भुजाओं और जाँघोंके प्रबल वेगसे भूतलमें पटके गये वीरभद्रके मुखसे रुधिरके फौहारेके साथ चक्र बाहर निकल आया। चक्रको मुखसे निकला देखकर भगवान् विष्णुने उसे ले लिया और वीरभद्रको छोड़ दिया॥ ४९—५२॥

भगवान् विष्णुद्वारा छोड़ दिये जानेपर वीरभद्रने जटाधारी शिवके निकट जाकर वासुदेवसे हुई अपनी पराजयका वर्णन किया। फिर वीरभद्रको खूनसे लथ-पथ तथा सर्पके सदृश निःश्वास लेते देख अव्यय

ततः क्रोधाभिभूतेन वीरभद्रोऽथ शंभुना।
पूर्वोद्दिष्टे तदा स्थाने सायुधस्तु निवेशितः॥ ५५
वीरभद्रमथादिश्य भद्रकालीं च शंकरः।
विवेश क्रोधताम्राक्षो यज्ञवाटं त्रिशूलभृत्॥ ५६
ततस्तु देवप्रवरे जटाधरे
त्रिशूलपाणौ त्रिपुरान्तकारिणि।
दक्षस्य यज्ञं विशति क्षयंकरे
जातो ऋषीणां प्रवरो हि साध्वसः॥ ५७

जटाधर (शंकर)-ने क्रोध किया। इसके बाद क्रोधसे तिलमिलाये शंकरने अस्त्रसहित वीरभद्रको पहले बतलाये स्थानपर बैठा दिया। वे त्रिशूलधर शंकर वीरभद्र तथा भद्रकालीको आदेश देकर क्रोधसे लाल आँखें किये यज्ञमण्डपमें प्रविष्ट हुए। त्रिपुर नामक राक्षसको मारनेवाले उन त्रिशूलपाणि त्रिपुरारि देवश्रेष्ठ जटाधरके दक्ष-यज्ञमें प्रवेश करते ही ऋषियोंमें भारी भय उत्पन्न हो गया॥ ५३—५७॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौथा अध्याय समाप्त हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

दक्ष-यज्ञका विध्वंस, देवताओंका प्रताड़न, शंकरके कालरूप और राश्यादि रूपोंमें स्वरूप-कथन

पुलस्त्य उवाच

जटाधरं हरिर्दृष्ट्वा क्रोधादारक्तलोचनम्।
तस्मात् स्थानादपाक्रम्य कुब्जाग्रेऽन्तर्हितः स्थितः॥ १

वसवोऽष्टौ हरं दृष्ट्वा सुस्त्रुवुर्वेगतो मुने।
सा तु जाता सरिच्छ्रेष्ठा सीता नाम सरस्वती॥ २

एकादश तथा रुद्रास्त्रिनेत्रा वृषकेतनाः।
कान्दिशीका लयं जग्मुः समभ्येत्यैव शंकरम्॥ ३

विश्वेऽश्विनौ च साध्याश्च मरुतोऽनलभास्कराः।
समासाद्य पुरोडाशं भक्षयन्तो महामुने॥ ४

पुलस्त्यजी बोले—जटाधारी भगवान् शिवको क्रोधसे आँखें लाल किये देखकर भगवान् विष्णु उस स्थानसे हटकर कुब्जाग्र (ऋषिकेश)-में छिप गये। मुने! क्रुद्ध शिवको देखकर आठ वसु तेजीसे पिघलने लगे। इस कारण वहाँ सीता नामकी श्रेष्ठ नदी प्रवाहित हुई। वहाँ पूजाके लिये स्थित त्रिनेत्रधारी ग्यारहों रुद्र भयके मारे इधर-उधर भागते हुए शंकरके निकट जाकर उनमें ही लीन हो गये। महामुनि नारद! शंकरको निकट आते देख विश्वेदेवगण, अश्विनीकुमार, साध्यवृन्द, वायु, अग्नि एवं सूर्य पुरोडाश खाते हुए भाग गये॥ १—४॥

चन्द्रः सममृक्षगणैर्निशां समुपदर्शयन्।
उत्पत्यारुह्य गगनं स्वमधिष्ठानमास्थितः॥ ५

कश्यपाद्याश्च ऋषयो जपन्तः शतरुद्रियम्।
पुष्पाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रणताः संस्थिता मुने॥ ६

असकृद् दक्षदयिता दृष्ट्वा रुद्रं बलाधिकम्।
शक्रादीनां सुरेशानां कृपणं विललाप ह॥ ७

ततः क्रोधाभिभूतेन शंकरेण महात्मना।
तलप्रहारैरमरा बहवो विनिपातिताः॥ ८

फिर तो ताराओंके साथ चन्द्रमा रात्रिको प्रकाशित करते हुए आकाशमें ऊपर जाकर अपने स्थानपर स्थित हो गये। इधर कश्यप आदि ऋषि शतरुद्रिय (मन्त्र)-का जप करते हुए अञ्जलिमें पुष्प लेकर विनीतभावसे खड़े हो गये। इन्द्रादि सभी देवताओंसे अधिक बली रुद्रको देखकर दक्ष-पत्नी अत्यन्त दीन होकर बार-बार करुण विलाप करने लगी। इधर क्रुद्ध भगवान् शंकरने थप्पड़ोंके प्रहारसे अनेक देवताओंको मार गिराया॥ ५—८॥

पादप्रहारैरपरे त्रिशूलेनापरे मुने।
दृष्ट्यग्निना तथैवान्ये देवाद्याः प्रलयीकृताः॥ ९

ततः पूषा हरं वीक्ष्य विनिघ्नन्तं सुरासुरान्।
क्रोधाद् बाहू प्रसार्याथ प्रदुद्राव महेश्वरम्॥ १०

तमापतन्तं भगवान् संनिरीक्ष्य त्रिलोचनः।
बाहुभ्यां प्रतिजग्राह करेणैकेन शंकरः॥ ११

कराभ्यां प्रगृहीतस्य शंभुनांशुमतोऽपि हि।
कराङ्गुलिभ्यो निश्चेरुरसृग्धाराः समन्ततः॥ १२

ततो वेगेन महता अंशुमन्तं दिवाकरम्।
भ्रामयामास सततं सिंहो मृगशिशुं यथा॥ १३

भ्रामितस्यातिवेगेन नारदांशुमतोऽपि हि।
भुजौ ह्रस्वत्वमापन्नौ त्रुटितस्नायुबन्धनौ॥ १४

रुधिराप्लुतसर्वाङ्गमंशुमन्तं महेश्वरः।
संनिरीक्ष्योत्ससर्जैनमन्यतोऽभिजगाम ह॥ १५

ततस्तु पूषा विहसन् दशनानि विदर्शयन्।
प्रोवाचैह्येहि कापालिन् पुनः पुनरथेश्वरम्॥ १६

ततः क्रोधाभिभूतेन पूष्णो वेगेन शंभुना।
मुष्टिनाहत्य दशनाः पातिता धरणीतले॥ १७

भग्नदन्तस्तथा पूषा शोणिताभिप्लुताननः।
पपात भुवि निःसंज्ञो वज्राहत इवाचलः॥ १८

भगोऽभिवीक्ष्य पूषाणं पतितं रुधिरोक्षितम्।
नेत्राभ्यां घोररूपाभ्यां वृषध्वजमवैक्षत॥ १९

त्रिपुरघ्नस्ततः क्रुद्धस्तलेनाहत्य चक्षुषी।
निपातयामास भुवि क्षोभयन् सर्वदेवताः॥ २०

ततो दिवाकराः सर्वे पुरस्कृत्य शतक्रतुम्।
मरुद्भिश्च हुताशैश्च भयाज्जग्मुर्दिशो दश॥ २१

प्रतियातेषु देवेषु प्रह्लादाद्या दितीश्वराः।
नमस्कृत्य ततः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयो मुने॥ २२

ततस्तं यज्ञवाटं तु शंकरो घोरचक्षुषा।
ददर्श दग्धुं कोपेन सर्वांश्चैव सुरासुरान्॥ २३

ततो निलिल्यिरे वीराः प्रणेमुर्दुद्रुवुस्तथा।
भयादन्ये हरं दृष्ट्वा गता वैवस्वतक्षयम्॥ २४

मुने! शंकरने इसी प्रकार कुछ देवताओंको पैरोंके प्रहारसे, कुछको त्रिशूलसे और कुछको अपने तृतीय नेत्रकी अग्निद्वारा नष्ट कर दिया। उसके बाद देवों एवं असुरोंका संहार करते हुए शंकरको देखकर पूषादेवता (अन्यतम सूर्य) क्रोधपूर्वक दोनों बाँहोंको फैलाकर शिवजीकी ओर दौड़े। त्रिलोचन शिवने उन्हें अपनी ओर आते देख एक ही हाथसे उनकी दोनों भुजाओंको पकड़ लिया। शिवद्वारा सूर्यके पकड़ी गयी दोनों भुजाओंकी अङ्गुलियोंसे चारों ओर रक्तकी धारा प्रवाहित होने लगी॥ ९—१२॥

फिर भगवान् शिव दिवाकर सूर्यदेवको अत्यन्त वेगसे ऐसे घुमाने लगे जैसे सिंह हिरण-शावकको घुमाता (दौड़ाता) है। नारदजी! अत्यन्त वेगसे घुमाये गये सूर्यकी भुजाओंके स्नायुबन्ध टूट गये और वे (स्नायुएँ) बहुत छोटी—नष्टप्राय हो गयीं। सूर्यके सभी अङ्गोंको रक्तसे लथपथ देखकर उन्हें छोड़कर शंकरजी दूसरी ओर चले गये। उसी समय हँसते एवं दाँत दिखलाते हुए पूषा देवता (बारह आदित्योंमेंसे एक सूर्य) कहने लगे—ओ कपालिन्! आओ, इधर आओ॥ १३—१६॥

इसपर क्रुद्ध रुद्रने वेगपूर्वक मुक्केसे मारकर पूषाके दाँतोंको धरतीपर गिरा दिया। इस प्रकार दाँत टूटने एवं रक्तसे लथपथ होकर पूषा देवता वज्रसे नष्ट हुए पर्वतके समान बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस प्रकार गिरे हुए पूषाको रुधिरसे लथपथ देखकर भग देवता (तृतीय सूर्यभेद) भयंकर नेत्रोंसे शिवजीको देखने लगे। इससे क्रुद्ध त्रिपुरान्तक शिवने सभी देवताओंको क्षुब्ध करते हुए हथेलीसे पीटकर भगकी दोनों आँखें पृथ्वीपर गिरा दीं॥ १७—२०॥

फिर क्या था? सभी दसों सूर्य इन्द्रको आगे कर मरुद्गणों तथा अग्नियोंके साथ भयसे दसों दिशाओंमें भाग गये। मुने! देवताओंके चले जानेपर प्रह्लाद आदि दैत्य महेश्वरको प्रणामकर अञ्जलि बाँधकर खड़े हो गये। इसके बाद शंकर उस यज्ञमण्डपको तथा सभी देवासुरोंको दग्ध करनेके लिये क्रोधपूर्ण घोर दृष्टिसे देखने लगे। इधर दूसरे वीर महादेवको देखकर भयसे जहाँ-तहाँ छिप गये। कुछ लोग प्रणाम करने लगे, कुछ भाग गये और कुछ तो भयसे ही सीधे यमपुरी पहुँच गये॥ २१—२४॥

त्रयोऽग्नयस्त्रिभिर्नेत्रैर्दुःसहं समवैक्षत।
दृष्टमात्रास्त्रिनेत्रेण भस्मीभूताभवन् क्षणात्॥ २५

अग्नौ प्रणष्टे यज्ञोऽपि भूत्वा दिव्यवपुर्मृगः।
दुद्राव विक्लवगतिर्दक्षिणासहितोऽम्बरे॥ २६

तमेवानुससारेशश्चापमानम्य वेगवान्।
शरं पाशुपतं कृत्वा कालरूपी महेश्वरः॥ २७

अर्द्धेन यज्ञवाटान्ते जटाधर इति श्रुतः।
अर्द्धेन गगने शर्वः कालरूपी च कथ्यते॥ २८

फिर भगवान् शिवने अपने तीनों नेत्रोंसे तीनों अग्नियों (आहवनीय, गार्हपत्य और शालाग्नियों)-को देखा। उनके देखते ही वे अग्नियाँ क्षणभरमें नष्ट हो गयीं। उनके नष्ट होनेपर यज्ञ भी मृगका शरीर धारण कर आकाशमें दक्षिणाके साथ तीव्रगतिसे भाग गया। कालरूपी वेगवान् भगवान् शिव धनुषको झुकाकर उसपर पाशुपत बाण संधानकर उस मृगके पीछे दौड़े और आधे रूपसे तो यज्ञशालामें स्थित हुए जिनका नाम 'जटाधर' पड़ा। इधर आधे दूसरे रूपसे वे आकाशमें स्थित होकर 'काल' कहलाये॥ २५—२८॥

नारद उवाच

कालरूपी त्वयाख्यातः शंभुर्गगनगोचरः।
लक्षणं च स्वरूपं च सर्वं व्याख्यातुमर्हसि॥ २९

नारदजी बोले— (मुने!) आपने आकाशमें स्थित शिवको कालरूपी कहा है। आप उनके सम्पूर्ण स्वरूप और लक्षणोंकी भी व्याख्या कर दें॥ २९॥

पुलस्त्य उवाच

स्वरूपं त्रिपुरघ्नस्य वदिष्ये कालरूपिणः।
येनाम्बरं मुनिश्रेष्ठ व्याप्तं लोकहितेप्सुना॥ ३०

यत्राश्विनी च भरणी कृत्तिकायास्तथांशकः।
मेषो राशिः कुजक्षेत्रं तच्छिरः कालरूपिणः॥ ३१

आग्नेयांशास्त्रयो ब्रह्मन् प्राजापत्यं कवेर्गृहम्।
सौम्यार्द्धं वृषनामेदं वदनं परिकीर्तितम्॥ ३२

मृगार्द्धमार्द्रादित्याशांस्त्रयः सौम्यगृहं त्विदम्।
मिथुनं भुजयोस्तस्य गगनस्थस्य शूलिनः॥ ३३

पुलस्त्यजीने कहा— मुनिवर! मैं त्रिपुरको मारनेवाले कालरूपी उन शंकरके स्वरूपको (वास्तविक रूपको) बतलाता हूँ। उन्होंने लोककी भलाईकी इच्छासे ही आकाशको व्याप्त किया है। सम्पूर्ण अश्विनी तथा भरणी नक्षत्र एवं कृत्तिकाके एक चरणसे युक्त भौमका क्षेत्र मेष राशि ही कालरूपी महादेवका सिर कही गयी है। ब्रह्मन्! इसी प्रकार कृत्तिकाके तीन चरण, सम्पूर्ण रोहिणी नक्षत्र एवं मृगशिराके दो चरण, यह शुक्रकी वृष राशि ही उनका मुख है। मृगशिराके शेष दो चरण, सम्पूर्ण आर्द्रा और पुनर्वसुके तीन चरण बुधकी (प्रथम) स्थितिस्थान मिथुन राशि आकाशमें स्थित शिवकी दोनों भुजाएँ हैं॥ ३०—३३॥

आदित्यांशश्च पुष्यं च आश्लेषा शशिनो गृहम्।
राशिः कर्कटको नाम पार्श्वे मखविनाशिनः॥ ३४

पित्र्यर्क्षं भगदैवत्यमुत्तरांशश्च केसरी।
सूर्यक्षेत्रं विभोर्ब्रह्मन् हृदयं परिगीयते॥ ३५

उत्तरांशास्त्रयः पाणिश्चित्रार्धं कन्यका त्वियम्।
सोमपुत्रस्य सद्मैतद् द्वितीयं जठरं विभोः॥ ३६

चित्रांशद्वितयं स्वातिर्विशाखायांशकत्रयम्।
द्वितीयं शुक्रसदनं तुला नाभिरुदाहृता॥ ३७

इसी प्रकार पुनर्वसुका अन्तिम चरण, सम्पूर्ण पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रोंवाला चन्द्रमाका क्षेत्र कर्क राशि यज्ञविनाशक शंकरके दोनों पार्श्व (बगल) हैं। ब्रह्मन्! सम्पूर्ण मघा, सम्पूर्ण पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीका प्रथम चरण, सूर्यकी सिंह राशि शंकरका हृदय कही जाती है। उत्तराफाल्गुनीके तीन चरण, सम्पूर्ण हस्त नक्षत्र एवं चित्राके दो पहले चरण, बुधकी द्वितीय राशि, कन्या राशि शंकरका जठर है। चित्राके शेष दो चरण, स्वातीके चारों चरण एवं विशाखाके तीन चरणोंसे युक्त शुक्रका दूसरा क्षेत्र तुला राशि महादेवकी नाभि है॥ ३४—३७॥

विशाखांशमनूराधा ज्येष्ठा भौमगृहं त्विदम्।
द्वितीयं वृश्चिको राशिर्मेढ्रं कालस्वरूपिणः॥ ३८

मूलं पूर्वोत्तरांशश्च देवाचार्यगृहं धनुः।
ऊरुयुगलमीशस्य अमरर्षे प्रगीयते॥ ३९

उत्तरांशास्त्रयो ऋक्षं श्रवणं मकरो मुने।
धनिष्ठार्थं शनिक्षेत्रं जानुनी परमेष्ठिनः॥ ४०

धनिष्ठार्धं शतभिषा प्रौष्ठपद्यांशकत्रयम्।
सौरेः सद्मापरमिदं कुम्भो जङ्घे च विश्रुते॥ ४१
प्रौष्ठपद्यांशमेकं तु उत्तरा रेवती तथा।
द्वितीयं जीवसदनं मीनस्तु चरणावुभौ॥ ४२
एवं कृत्वा कालरूपं त्रिनेत्रो
यज्ञं क्रोधान्मार्गणैराजघान।
विद्धश्चासौ वेदनाबुद्धिमुक्तः
खे संतस्थौ तारकाभिश्चिताङ्गः॥ ४३

नारद उवाच

राशयो गदिता ब्रह्मंस्त्वया द्वादश वै मम।
तेषां विशेषतो ब्रूहि लक्षणानि स्वरूपतः॥ ४४

पुलस्त्य उवाच

स्वरूपं तव वक्ष्यामि राशीनां शृणु नारद।
यादृशा यत्र संचारा यस्मिन् स्थाने वसन्ति च॥ ४५
मेषः समानमूर्तिश्च अजाविकधनादिषु।
संचारस्थानमेवास्य धान्यरत्नाकरादिषु॥ ४६
नवशाद्वलसंछन्नवसुधायां च सर्वशः।
नित्यं चरति फुल्लेषु सरसां पुलिनेषु च॥ ४७
वृषः सदृशरूपो हि चरते गोकुलादिषु।
तस्याधिवासभूमिस्तु कृषीवलधराश्रयः॥ ४८
स्त्रीपुंसयोः समं रूपं शय्यासनपरिग्रहः।
वीणावाद्यधृङ् मिथुनं गीतनर्तकशिल्पिषु॥ ४९

स्थितः क्रीडारतिर्नित्यं विहारावनिरस्य तु।
मिथुनं नाम विख्यातं राशिर्द्वैधात्मकः स्थितः॥ ५०

विशाखाका एक चरण, सम्पूर्ण अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र, मङ्गलका द्वितीय क्षेत्र वृश्चिक राशि कालरूपी महादेवका उपस्थ है। सम्पूर्ण मूल, पूरा पूर्वाषाढ और उत्तराषाढकी प्रथम चरणवाली धनु राशि जो बृहस्पतिका क्षेत्र है, महेश्वरके दोनों ऊरु हैं। मुने! उत्तराषाढ़के शेष तीन चरण, सम्पूर्ण श्रवण नक्षत्र और धनिष्ठाके दो पूर्व चरणकी मकर राशि शनिका क्षेत्र और परमेष्ठी महेश्वरके दोनों घुटने हैं। धनिष्ठाके दो चरण, सम्पूर्ण शतभिष और पूर्वभाद्रपदके तीन चरणवाली कुम्भ राशि शनिका द्वितीय गृह और शिवकी दो जंघाएँ हैं॥ ३८—४१॥

पूर्वाभाद्रपदके शेष एक चरण, सम्पूर्ण उत्तरभाद्रपद और सम्पूर्ण रेवती नक्षत्रोंवाला बृहस्पतिका द्वितीय क्षेत्र एवं मीन राशि उनके दो चरण हैं। इस प्रकार कालरूप धारणकर शिवने क्रोधपूर्वक हरिणरूपधारी यज्ञको बाणोंसे मारा। उसके बाद बाणोंसे विद्ध होकर, किंतु वेदनाकी अनुभूति न करता हुआ, वह यज्ञ ताराओंसे घिरे शरीरवाला होकर आकाशमें स्थित हो गया॥ ४२-४३॥

नारदजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने मुझसे बारहों राशियोंका वर्णन किया। अब विशेषरूपसे उनके स्वरूपके अनुसार लक्षणोंको बतलायें॥ ४४॥

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी! आपको मैं राशियोंका स्वरूप बतलाता हूँ; सुनिये। वे जैसी हैं तथा जहाँ संचार और निवास करती हैं वह सभी वर्णित करता हूँ। मेष राशि भेड़के समान आकारवाली है। बकरी, भेड़, धन-धान्य एवं रत्नाकरादि इसके संचार-स्थान हैं तथा नवदुर्वासे आच्छादित समग्र पृथ्वी एवं पुष्पित वनस्पतियोंसे युक्त सरोवरोंके पुलिनोंमें यह नित्य संचरण करती है। वृषभके समान रूपयुक्त वृषराशि गोकुलादिमें विचरण करती है तथा कृषकोंकी भूमि इसका निवास-स्थान है॥ ४५—४८॥

मिथुन राशि एक स्त्री और एक पुरुषके साथ-साथ रहनेके समान रूपवाली है। यह शय्या और आसनोंपर स्थित है। पुरुष-स्त्रीके हाथोंमें वीणा एवं (अन्य) वाद्य हैं। इस राशिका संचरण गानेवालों, नाचनेवालों एवं शिल्पियोंमें होता है। इस द्विस्वभाव राशिको मिथुन कहते हैं। इस राशिका निवास क्रीडास्थल एवं

कर्कः कुलीरेण समः सलिलस्थः प्रकीर्तितः।
केदारवापीपुलिने विविक्तावनिरेव च॥ ५१

सिंहस्तु पर्वतारण्यदुर्गकन्दरभूमिषु।
वसते व्याधपल्लीषु गह्वरेषु गुहासु च॥ ५२

विहार-भूमियोंमें होता है। कर्क राशि केकड़ेके रूपके समान रूपवाली है एवं जलमें रहनेवाली है। जलसे पूर्ण क्यारी एवं नदी-तीर अथवा बालुका एवं एकान्त भूमि इसके रहनेके स्थान हैं। सिंह राशिका निवास वन, पर्वत, दुर्गमस्थान, कन्दरा, व्याधोंके स्थान, गुफा आदि होता है॥ ४९—५२॥

व्रीहिप्रदीपिककरा नावारूढा च कन्यका।
चरते स्त्रीरतिस्थाने वसते नड्वलेषु च॥ ५३

तुलापाणिश्च पुरुषो वीथ्यापणविचारकः।
नगराध्वानशालासु वसते तत्र नारद॥ ५४

श्वभ्रवल्मीकसंचारी वृश्चिको वृश्चिकाकृतिः।
विषगोमयकीटादिपाषाणादिषु संस्थितः॥ ५५

धनुस्तुरङ्गजघनो दीप्यमानो धनुर्धरः।
वाजिशूरास्त्रविद्वीरः स्थायी गजरथादिषु॥ ५६

कन्या राशि अन्न एवं दीपक हाथमें लिये हुए है तथा नौकापर आरूढ़ है। यह स्त्रियोंके रतिस्थान और सरपत, कण्डा आदिमें विचरण करती है। नारद! तुला राशि हाथमें तुला लिये हुए पुरुषके रूपमें गलियों और बाजारोंमें विचरण करती है तथा नगरों, मार्गों एवं भवनोंमें निवास करती है। वृश्चिक राशिका आकार बिच्छू-जैसा है। यह गड्ढे एवं वल्मीक आदिमें विचरण करती है। यह विष, गोबर, कीट एवं पत्थर आदिमें भी निवास करती है। धनु राशिकी जंघा घोड़ेके समान है। यह ज्योतिःस्वरूप एवं धनुष लिये है। यह घुड़सवारी, वीरताके कार्य एवं अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता तथा शूर है। गज एवं रथ आदिमें इसका निवास होता है॥ ५३—५६॥

मृगास्यो मकरो ब्रह्मन् वृषस्कन्धेक्षणाङ्गजः।
मकरोऽसौ नदौचारी वसते च महौदधौ॥ ५७

रिक्तकुम्भश्च पुरुषः स्कन्धधारी जलाप्लुतः।
द्यूतशालाचरः कुम्भः स्थायी शौण्डिकसद्मसु॥ ५८

मीनद्वयमथासक्तं मीनस्तीर्थाब्धिसंचरः।
वसते पुण्यदेशेषु देवब्राह्मणसद्मसु॥ ५९

लक्षणा गदितास्तुभ्यं मेषादीनां महामुने।
न कस्यचित् त्वयाख्येयं गुह्यमेतत्पुरातनम्॥ ६०

एतन् मया ते कथितं सुरर्षे
　यथा त्रिनेत्रः प्रममाथ यज्ञम्।
पुण्यं पुराणं परमं पवित्र-
　माख्यातवान्पापहरं शिवं च॥ ६१

ब्रह्मन्! मकर राशिका मुख मृगके मुख-सदृश एवं कंधे वृषके कन्धोंके तुल्य तथा नेत्र हाथीके नेत्रके समान हैं। यह राशि नदीमें विचरण करती तथा समुद्रमें विश्राम करती है। कुम्भ राशि रिक्त घड़ेको कंधेपर लिये जलसे भीगे पुरुषके समान है। इसका संचार-स्थान द्यूतगृह एवं सुरालय (मद्यशाला) है। मीन राशि दो संयुक्त मछलियोंके आकारवाली है। यह तीर्थस्थान एवं समुद्र-देशमें संचरण करती है। इसका निवास पवित्र देशों, देवमन्दिरों एवं ब्राह्मणोंके घरोंमें होता है। महामुने! मैंने आपको मेषादि राशियोंका लक्षण बतलाया। आप इस प्राचीन रहस्यको किसी अपात्रसे न बतलाइयेगा। देवर्षे! भगवान् शिवने जिस प्रकार यज्ञको प्रमथित किया, उसका मैंने आपसे वर्णन कर दिया। इस प्रकार मैंने आपको श्रेयस्कर, परम पवित्र, पापहारी एवं कल्याणकारी अत्यन्त पुराना पुराण-आख्यान सुनाया॥ ५७—६१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

नर-नारायणकी उत्पत्ति, तपश्चर्या, बदरिकाश्रमकी वसन्तकी शोभा, काम-दाह और कामकी अनङ्गताका वर्णन

पुलस्त्य उवाच

हृद्भवो ब्रह्मणो योऽसौ धर्मो दिव्यवपुर्मुने।
दाक्षायणी तस्य भार्या तस्यामजनयत्सुतान्॥ १
हरिं कृष्णं च देवर्षे नारायणनरौ तथा।
योगाभ्यासरतौ नित्यं हरिकृष्णौ बभूवतुः॥ २
नरनारायणौ चैव जगतो हितकाम्यया।
तप्येतां च तपः सौम्यौ पुराणावृषिसत्तमौ॥ ३
प्रालेयाद्रिं समागम्य तीर्थे बदरिकाश्रमे।
गृणन्तौ तत्परं ब्रह्म गङ्गाया विपुले तटे॥ ४

पुलस्त्यजी बोले—मुने! ब्रह्माजीके हृदयसे जो दिव्यदेहधारी धर्म प्रकट हुआ था, उसने दक्षकी पुत्री 'मूर्ति' नामकी भार्यासे हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्रोंको उत्पन्न किया।* देवर्षे! इनमें हरि और कृष्ण ये दो तो नित्य योगाभ्यासमें निरत हो गये और पुरातन ऋषि शान्तमना नर तथा नारायण संसारके कल्याणके लिये हिमालय पर्वतपर जाकर बदरिकाश्रम तीर्थमें गङ्गाके निर्मल तटपर (परब्रह्मका नाम ॐकारका जप करते हुए) तप करने लगे॥ १—४॥

नरनारायणाभ्यां च जगदेतच्चराचरम्।
तापितं तपसा ब्रह्मञ्शक्रः क्षोभं तदा ययौ॥ ५
संक्षुब्धस्तपसा ताभ्यां क्षोभणाय शतक्रतुः।
रम्भाद्याप्सरसः श्रेष्ठाः प्रेषयत्स महाश्रमम्॥ ६
कन्दर्पश्च सुदुर्धर्षश्चूताङ्कुरमहायुधः।
समं सहचरेणैव वसन्तेनाश्रमं गतः॥ ७
ततो माधवकन्दर्पौ ताश्चैवाप्सरसो वराः।
बदर्याश्रममागम्य विचिक्रीडुर्यथेच्छया॥ ८

ब्रह्मन्! नर-नारायणकी दुष्कर तपस्यासे सारा स्थावर-जंगमात्मक यह जगत् परितप्त हो गया। इससे इन्द्र विक्षुब्ध हो उठे। उन दोनोंकी तपस्यासे अत्यन्त व्यग्र इन्द्रने उन्हें मोहित करनेके लिये रम्भा आदि श्रेष्ठ अप्सराओंको उनके विशाल आश्रममें भेजा। कामदेवके आयुधोंमें अशोक, आम्रादिकी मंजरियाँ विशेष प्रभावक हैं। इन्हें तथा अपने सहयोगी वसन्त-ऋतुको साथ लेकर वह भी उस आश्रममें गया। अब वे वसन्त, कामदेव तथा श्रेष्ठ अप्सराएँ—ये सब बदरिकाश्रममें जाकर निर्बाध क्रीड़ा करने लग गये॥ ५—८॥

ततो वसन्ते संप्राप्ते किंशुका ज्वलनप्रभाः।
निष्पत्राः सततं रेजुः शोभयन्तो धरातलम्॥ ९
शिशिरं नाम मातङ्गं विदार्य नखैरिव।
वसन्तकेसरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मुने॥ १०
मया तुषारौघकरी निर्जितः स्वेन तेजसा।
तमेव हसतेत्युच्चैः वसन्तः कुन्दकुड्मलैः॥ ११
वनानि कर्णिकाराणां पुष्पितानि विरेजिरे।
यथा नरेन्द्रपुत्राणि कनकाभरणानि हि॥ १२

तब वसन्त-ऋतुके आ जानेपर अग्नि-शिखाके सदृश कान्तिवाले पलाश पत्रहीन होकर रात-दिन पृथ्वीकी शोभा बढ़ाते हुए सुशोभित होने लगे। मुने! वसन्तरूपी सिंह मानो पलाश-पुष्परूपी नखोंसे शिशिररूपी गजराजको विदीर्ण कर वहाँ अपना साम्राज्य जमा चुका था। वह सोचने लगा—मैंने अपने तेजसे शीतसमूहरूपी हाथीको जीत लिया है और वह कुन्दकी कलियोंके बहाने उसका उपहास भी करने लगा है। इधर सुवर्णके अलंकारोंसे मण्डित राजकुमारोंके समान पुष्पित कचनार-अमलतासके वन सुशोभित होने लगे॥ ९—१२॥

* यह बात भागवत २।७।६ आदिमें विशेष स्पष्टरूपसे कही गयी है। जिज्ञासु वहाँ भी देखें।

तेषामनु तथा नीपाः किङ्करा इव रेजिरे।
स्वामिसंलब्धसंमाना भृत्या राजसुतानिव॥ १३

रक्ताशोकवना भान्ति पुष्पिताः सहसोज्ज्वलाः।
भृत्या वसन्तनृपतेः संग्रामे सृक्प्लुता इव॥ १४

मृगवृन्दाः पिञ्जरिता राजन्ते गहने वने।
पुलकाभिर्वृता यद्वत् सज्जनाः सुहृदागमे॥ १५

मञ्जरीभिर्विराजन्ते नदीकूलेषु वेतसाः।
वक्तुकामा इवाङ्गुल्या कोऽस्माकं सदृशो नगः॥ १६

रक्ताशोककरा तन्वी देवर्षे किंशुकाङ्घ्रिका।
नीलाशोककचा श्यामा विकासिकमलानना॥ १७
नीलेन्दीवरनेत्रा च ब्रह्मन् बिल्वफलस्तनी।
प्रफुल्लकुन्ददशना मञ्जरीकरशोभिता॥ १८
बन्धुजीवाधरा शुभ्रा सिन्दुवारनखाद्भुता।
पुंस्कोकिलस्वना दिव्या अङ्कोलवसना शुभा॥ १९
बर्हिवृन्दकलापा च सारसस्वरनूपुरा।
प्राग्वंशरसना ब्रह्मन् मत्तहंसगतिस्तथा॥ २०
पुत्रजीवांशुका भृङ्गरोमराजिविराजिता।
वसन्तलक्ष्मीः सम्प्राप्ता ब्रह्मन् बदरिकाश्रमे॥ २१
ततो नारायणो दृष्ट्वा आश्रमस्यानवद्यताम्।
समीक्ष्य च दिशः सर्वास्ततोऽनङ्गमपश्यत॥ २२

नारद उवाच

कोऽसावनङ्गो ब्रह्मर्षे तस्मिन् बदरिकाश्रमे।
यं ददर्श जगन्नाथो देवो नारायणोऽव्ययः॥ २३

पुलस्त्य उवाच

कन्दर्पो हर्षतनयो योऽसौ कामो निगद्यते।
स शंकरेण संदग्धो ह्यनङ्गत्वमुपागतः॥ २४

नारद उवाच

किमर्थं कामदेवोऽसौ देवदेवेन शंभुना।
दग्धस्तु कारणे कस्मिन्नेतद्व्याख्यातुमर्हसि॥ २५

पुलस्त्य उवाच

यदा दक्षसुता ब्रह्मन् सती याता यमक्षयम्।
विनाश्य दक्षयज्ञं तं विचचार त्रिलोचनः॥ २६

ततो वृषध्वजं दृष्ट्वा कन्दर्पः कुसुमायुधः।
अपत्नीकं तदाऽस्त्रेण उन्मादेनाभ्यताडयत्॥ २७

जैसे राजपुत्रोंके पीछे उनके द्वारा सम्मानित सेवक खड़े रहते हैं, वैसे ही उन (वर्णित-वनों)-के पीछे-पीछे कदम्बवृक्ष सुशोभित हो रहे थे। इसी प्रकार लाल अशोक आदिके समूह भी सहसा पुष्पित एवं उद्भासित हो सुशोभित होने लगे। लगता था मानो ऋतुराज वसन्तके अनुयायी युद्धमें रक्तसे लथपथ हो रहे हों। घने वनमें पीले रंगके हरिण इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार सुहृद्के आनेसे सज्जन (आनन्दसे) पुलकित होकर सुशोभित होते हैं। नदीके तटोंपर अपनी मंजरियोंके द्वारा वेतस ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो वे अंगुलियोंके द्वारा यह कहना चाहते हैं कि हमारे सदृश अन्य कौन वृक्ष है॥ १३—१६॥

देवर्षे! जो दिव्य पतली एवं यौवनसे भरी वसन्त-लक्ष्मी उस बदरिकाश्रममें प्रकट हुई थी, उसके मानो रक्ताशोक ही हाथ, पलाश ही चरण, नीलाशोक केश-पाश, विकसित कमल ही मुख और नीलकमल ही नेत्र थे। उसके बिल्वफल मानों स्तन, कुन्दपुष्प दन्त, मञ्जरी हाथ, दुपहरियाफूल अधर, सिन्दुवार नख, नर कोयलकी काकली (बोली) स्वर, अंकोल वस्त्र, मयूरयूथ आभूषण, सारस नूपुरस्वरूप और आश्रमके शिखर करधनी थे। उसके मत्त हंस गति, पुत्रजीव ऊर्ध्व वस्त्र और भ्रमर मानो रोमावलीरूपमें विराजित थे। तब नारायणने आश्रमकी अद्भुत रमणीयता देखकर सभी दिशाओंकी ओर देखा और फिर कामदेवको भी देखा॥ १७—२२॥

नारदजीने पूछा— ब्रह्मर्षे! जिसे अव्यय जगन्नाथ नारायणने बदरिकाश्रममें देखा था, वह अनङ्ग (काम) कौन है?॥ २३॥

पुलस्त्यजीने कहा— यह कंदर्प हर्षका पुत्र है, इसे ही काम कहा जाता है। शंकर (-की नेत्राग्नि)-द्वारा भस्म होकर वह 'अनङ्ग' हो गया॥ २४॥

नारदजीने पूछा— पुलस्त्यजी! आप यह बतलायें कि देवाधिदेव शंकरने कामदेवको किस कारणसे भस्म किया?॥ २५॥

पुलस्त्यजीने कहा— ब्रह्मन्! दक्ष-पुत्री सतीके प्राण-त्याग करनेपर शिवजी दक्ष-यज्ञका ध्वंस कर (जहाँ-तहाँ) विचरण करने लगे। तब शिवजीको स्त्री-रहित देखकर पुष्पास्त्रवाले कामदेवने उनपर अपना 'उन्माद' नामक अस्त्र छोड़ा। इस उन्मादन-बाणसे

ततो हरः शरेणाथ उन्मादेनाशु ताडितः।
विचचार मदोन्मत्तः काननानि सरांसि च॥ २८
स्मरन् सतीं महादेवस्तथोन्मादेन ताडितः।
न शर्म लेभे देवर्षे बाणविद्ध इव द्विपः॥ २९
ततः पपात देवेशः कालिन्दीसरितं मुने।
निमग्ने शंकरे आपो दग्धाः कृष्णत्वमागताः॥ ३०

तदाप्रभृति कालिन्द्या भृङ्गाञ्जननिभं जलम्।
आस्यन्दत् पुण्यतीर्था सा केशपाशमिवावनेः॥ ३१

ततो नदीषु पुण्यासु सरस्सु च नदेषु च।
पुलिनेषु च रम्येषु वापीषु नलिनीषु च॥ ३२

पर्वतेषु च रम्येषु काननेषु च सानुषु।
विचरन् स्वेच्छया नैव शर्म लेभे महेश्वरः॥ ३३
क्षणं गायति देवर्षे क्षणं रोदिति शंकरः।
क्षणं ध्यायति तन्वङ्गीं दक्षकन्यां मनोरमाम्॥ ३४
ध्यात्वा क्षणं प्रस्वपिति क्षणं स्वप्नायते हरः।
स्वप्ने तथेदं गदति तां दृष्ट्वा दक्षकन्यकाम्॥ ३५
निर्घृणे तिष्ठ किं मूढे त्यजसे मामनिन्दिते।
मुग्धे त्वया विरहितो दग्धोऽस्मि मदनाग्निना॥ ३६
सति सत्यं प्रकुपिता मा कोपं कुरु सुन्दरि।
पादप्रणामावनतमभिभाषितुमर्हसि ॥ ३७
श्रूयसे दृश्यसे नित्यं स्पृश्यसे वन्द्यसे प्रिये।
आलिङ्ग्यसे च सततं किमर्थं नाभिभाषसे॥ ३८

विलपन्तं जनं दृष्ट्वा कृपा कस्य न जायते।
विशेषतः पतिं बाले ननु त्वमतिनिर्घृणा॥ ३९

त्वयोक्तानि वचांस्येवं पूर्वं मम कृशोदरि।
विना त्वया न जीवेयं तदसत्यं त्वया कृतम्॥ ४०

एह्येहि कामसंतप्तं परिष्वज सुलोचने।
नान्यथा नश्यते तापः सत्येनापि शपे प्रिये॥ ४१

इत्थं विलप्य स्वप्नान्ते प्रतिबुद्धस्तु तत्क्षणात्।
उत्कूजति तथारण्ये मुक्तकण्ठं पुनः पुनः॥ ४२

आहत होकर शिवजी उन्मत्त होकर वनों और सरोवरोंमें घूमने लगे। देवर्षे! बाणविद्ध गजके समान उन्मादसे व्यथित महादेव सतीका स्मरण करते हुए बड़े अशान्त हो रहे थे—उन्हें चैन नहीं था॥ २६—२९॥

मुने! उसके बाद शिवजी यमुना नदीमें कूद पड़े। उनके जलमें निमज्जन करनेसे उस नदीका जल काला हो गया। उस समयसे कालिन्दी नदीका जल भृंग और अंजनके सदृश कृष्णवर्णका हो गया एवं वह पवित्र तीर्थोंवाली नदी पृथ्वीके केशपाशके सदृश प्रवाहित होने लगी। उसके बाद पवित्र नदियों, सरोवरों, नदों, रमणीय नदी-तटों, वापियों, कमलवनों, पर्वतों, मनोहर काननों तथा पर्वत-शृङ्गोंपर स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हुए भगवान् शिव कहीं भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सके॥ ३०—३३।

देवर्षे! वे कभी गाते, कभी रोते और कभी कृशाङ्गी सुन्दरी सतीका ध्यान करते। ध्यान करके कभी सोते और कभी स्वप्न देखने लगते थे; स्वप्नकालमें सतीको देखकर वे इस प्रकार कहते थे—निर्दये! रुको, हे मूढे! मुझे क्यों छोड़ रही हो? हे अनिन्दिते! हे मुग्धे! तुम्हारे विरहमें मैं कामाग्निसे दग्ध हो रहा हूँ। हे सति! क्या तुम वस्तुतः क्रुद्ध हो? सुन्दरि! क्रोध मत करो। मैं तुम्हारे चरणोंमें अवनत होकर प्रणाम करता हूँ। तुम्हें मेरे साथ बात तो करनी ही चाहिये॥ ३४—३७॥

प्रिये! मैं सतत तुम्हारी ध्वनि सुनता हूँ, तुम्हें देखता हूँ, तुम्हारा स्पर्श करता हूँ, तुम्हारी वन्दना करता हूँ और तुम्हारा परिषङ्ग करता हूँ। तुम मुझसे बात क्यों नहीं कर रही हो? बाले! विलाप करनेवाले व्यक्तिको देखकर किसे दया नहीं उत्पन्न होती? विशेषतः अपने पतिको विलाप करता देखकर तो किसे दया नहीं आती? निश्चय ही तुम अति निर्दयी हो। सूक्ष्मकटिवाली! तुमने पहले मुझसे कहा था कि तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रहूँगी। उसे तुमने असत्य कर दिया। सुलोचने! आओ, आओ; कामसन्तप्त मुझे आलिङ्गित करो। प्रिये! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि अन्य किसी प्रकार मेरा ताप नहीं शान्त होगा॥ ३८—४१॥

इस प्रकार वे विलाप कर स्वप्नके अन्तमें उठकर वनमें बार-बार रोने लगे। इस प्रकार मुक्तकण्ठसे

भगवान् वामन

अठारहवाँ अध्याय

महिषासुरका अतिचार, देवोंकी तेजोराशिसे भगवती कात्यायनीका प्रादुर्भाव, विन्ध्यप्रसंग, दुर्गाकी अवस्थिति

पुलस्त्य उवाच

ततस्तु देवा महिषेण निर्जिताः
स्थानानि संत्यज्य सवाहनायुधाः।
जग्मुः पुरस्कृत्य पितामहं ते
द्रष्टुं तदा चक्रधरं श्रियः पतिम्॥ १
गत्वा त्वपश्यंश्च मिथः सुरोत्तमौ
स्थितौ खगेन्द्रासनशङ्करौ हि।
दृष्ट्वा प्रणम्यैव च सिद्धिसाधकौ
न्यवेदयंस्तन्महिषादिचेष्टितम्॥ २
प्रभोऽश्विसूर्येन्दुनिलाग्निवेधसां
जलेशशक्रादिषु चाधिकारान्।
आक्रम्य नाकात्तु निराकृता वयं
कृतावनिस्था महिषासुरेण॥ ३
एतद् भवन्तौ शरणागतानां
श्रुत्वा वचो ब्रूत हितं सुराणाम्।
न चेद् व्रजामोऽद्य रसातलं हि
संकाल्यमाना युधि दानवेन॥ ४
इत्थं मुरारिः सह शङ्करेण
श्रुत्वा वचो विप्लुतचेतसस्तान्।
दृष्ट्वाऽथ चक्रे सहसैव कोपं
कालाग्निकल्पो हरिरव्ययात्मा॥ ५
ततोऽनुकोपान्मधुसूदनस्य
सशङ्करस्यापि पितामहस्य।
तथैव शक्रादिषु दैवतेषु
महर्द्धि तेजो वदनाद् विनिःसृतम्॥ ६
तच्चैकतां पर्वतकूटसन्निभं
जगाम तेजः प्रवराश्रमे मुने।
कात्यायनस्याप्रतिमस्य तेन
महर्षिणा तेज उपाकृतं च॥ ७
तेनर्षिसृष्टेन च तेजसा वृतं
ज्वलत्प्रकाशार्कसहस्रतुल्यम्।
तस्माच्च जाता तरलायताक्षी
कात्यायनी योगविशुद्धदेहा॥ ८

पुलस्त्यजी बोले— इसके बाद महिषद्वारा पराजित देवता अपने-अपने स्थानको छोड़कर पितामहको आगे कर चक्रधारी लक्ष्मीपति विष्णुके दर्शनार्थ अपने वाहनों और आयुधोंको लेकर विष्णुलोक चले गये। वहाँ जाकर उन लोगोंने गरुड़वाहन विष्णु एवं शङ्कर—इन दोनों देवश्रेष्ठोंको एक साथ बैठे देखा। उन दोनों सिद्धि-साधकोंको देखनेके बाद उन लोगोंने उन्हें प्रणामकर उनसे महिषासुरकी दुश्चेष्टा बतलायी। वे बोले—प्रभो! महिषासुरने अश्विनीकुमार, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र आदि सभी देवताओंके अधिकारोंको छीनकर स्वर्गसे निकाल दिया है और अब हमलोग भूलोकमें रहनेको विवश हो गये हैं। हम शरणमें आये देवताओंकी यह बात सुनकर आप दोनों हमारे हितकी बात बतलायें; अन्यथा दानवद्वारा युद्धमें मारे जा रहे हमलोग अब रसातलमें चले जायँगे॥ १—४॥

शिवजीके साथ ही विष्णुभगवान्ने (भी) उनके इस प्रकारके वचनको सुना तथा दुःखसे व्याकुल चित्तवाले उन देवताओंको देखा तो उनका क्रोध कालाग्निके समान प्रज्वलित हो गया। उसके बाद मधु नामक राक्षसको मारनेवाले विष्णु, शङ्कर, पितामह (ब्रह्मा) तथा इन्द्र आदि देवताओंके क्रोध करनेपर उन सबके मुखसे महान् तेज प्रकट हुआ। मुने! फिर वह तेजोराशि कात्यायन ऋषिके अनुपम आश्रममें पर्वतशृङ्गके समान एकत्र हो गयी। उन महर्षिने भी उस तेजकी और अभिवृद्धि की। उन महर्षिद्वारा उत्पन्न किये गये तेजसे आवृत वह तेज हजारों सूर्योंके समान प्रदीप्त हो गया। उसके योगसे विशुद्ध शरीरवाली एवं चञ्चल तथा विशाल नेत्रोंवाली कात्यायनी देवी प्रकट हो गयीं॥ ५—८॥

माहेश्वराद् वक्त्रमथो बभूव
नेत्रत्रयं पावकतेजसा च।
याम्येन केशा हरितेजसा च
भुजास्तथाष्टादश संप्रजज्ञिरे॥ ९
सौम्येन युग्मं स्तनयोः सुसंहतं
मध्यं तथैन्द्रेण च तेजसाऽभवत्।
ऊरू च जङ्घे च नितम्बसंयुते
जाते जलेशस्य तु तेजसा हि॥ १०
पादौ च लोकप्रपितामहस्य
पद्माभिकोशप्रतिमौ बभूवतुः।
दिवाकराणामपि तेजसाऽङ्गुलीः
कराङ्गुलीश्च वसुतेजसैव॥ ११
प्रजापतीनां दशनाश्च तेजसा
याक्षेण नासा श्रवणौ च मारुतात्।
साध्येन च भ्रूयुगलं सुकान्तिमत्
कंदर्पबाणासनसन्निभं बभौ॥ १२

महादेवजीके तेजसे कात्यायनीका मुख बन गया और अग्निके तेजसे उनके तीन नेत्र प्रकट हो गये। इसी प्रकार यमके तेजसे केश तथा हरिके तेजसे उनकी अट्ठारह भुजाएँ, चन्द्रमाके तेजसे उनके सटे हुए स्तनयुगल, इन्द्रके तेजसे मध्यभाग तथा वरुणके तेजसे ऊरु, जङ्घाएँ एवं नितम्बोंकी उत्पत्ति हुई। लोकपितामह ब्रह्माके तेजसे कमलकोशके समान उनके दोनों चरण, आदित्योंके तेजसे पैरोंकी अङ्गुलियाँ एवं वसुओंके तेजसे उनके हाथोंकी अङ्गुलियाँ उत्पन्न हुईं। प्रजापतियोंके तेजसे उनके दाँत, यक्षोंके तेजसे नाक, वायुके तेजसे दोनों कान, साध्यके तेजसे कामदेवके धनुषके समान उनकी दोनों भौंहें प्रकट हुईं—॥ ९—१२॥

तथर्षितेजोत्तममुत्तमं मह-
न्नाम्ना पृथिव्यामभवत् प्रसिद्धम्।
कात्यायनीत्येव तदा बभौ सा
नाम्ना च तेनैव जगत्प्रसिद्धा॥ १३
ददौ त्रिशूलं वरदस्त्रिशूली
चक्रं मुरारिर्वरुणश्च शङ्खम्।
शक्तिं हुताशः श्वसनश्च चापं
तूणौ तथाक्षय्यशरौ विवस्वान्॥ १४
वज्रं तथेन्द्रः सह घण्टया च
यमोऽथ दण्डं धनदो गदां च।
ब्रह्माऽक्षमालां सकमण्डलुं च
कालोऽसिमुग्रं सह चर्मणा च॥ १५
हारं च सोमः सह चामरेण
मालां समुद्रो हिमवान् मृगेन्द्रम्।
चूडामणिं कुण्डलमर्द्धचन्द्रं
प्रादात् कुठारं वसु शिल्पकर्त्ता॥ १६

इस प्रकार महर्षियोंका उत्तमोत्तम तथा महान् तेज पृथ्वीपर 'कात्यायनी' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ, तब वे उसी नामसे विश्वमें प्रसिद्ध हुईं। वरदानी शङ्करजीने उन्हें त्रिशूल, मुरके मारनेवाले श्रीकृष्णने चक्र, वरुणने शङ्ख, अग्निने शक्ति, वायुने धनुष तथा सूर्यने अक्षय बाणोंवाले दो तूणीर (तरकस) प्रदान किये। इन्द्रने घण्टासहित वज्र, यमने दण्ड, कुबेरने गदा, ब्रह्माने कमण्डलुके साथ रुद्राक्षकी माला तथा कालने उन्हें ढालसहित प्रचण्ड खड्ग प्रदान किया। चन्द्रमाने चँवरके साथ हार, समुद्रने माला, हिमालयने सिंह, विश्वकर्माने चूड़ामणि, कुण्डल, अर्धचन्द्र, कुठार तथा पर्याप्त ऐश्वर्य* प्रदान किया॥ १३—१६॥

गन्धर्वराजो रजतानुलिप्तं
पानस्य पूर्णं सदृशं च भाजनम्।
भुजंगहारं भुजगेश्वरोऽपि
अम्लानपुष्पामृतवः स्त्रजं च॥ १७

गन्धर्वराजने उनके अनुरूप रजतका पूर्ण पान (मद्य)-पात्र, नागराजने भुजङ्गहार तथा ऋतुओंने कभी न कुम्हिलानेवाले पुष्पोंकी माला प्रदान की।

* सभी पुराणों तथा सप्तशतीकी व्याख्याओंमें विश्वकर्माद्वारा ही आभूषण बनाने—देनेकी चर्चा है। कुछ प्रतियोंके अर्थमें समुद्रद्वारा देनेकी बात छप गयी है, जो गलत है।

तदाऽतितुष्टा सुरसत्तमानां
अट्टाट्टहासं मुमुचे त्रिनेत्रा।
तां तुष्टुवुर्देववराः सहेन्द्राः
सविष्णुरुद्रेन्द्वनिलाग्निभास्कराः॥ १८
नमोऽस्तु देव्यै सुरपूजितायै
या संस्थिता योगविशुद्धदेहा।
निद्रास्वरूपेण महीं वितत्य
तृष्णा त्रपा क्षुद् भयदाऽथ कान्तिः॥ १९
श्रद्धा स्मृतिः पुष्टिरथो क्षमा च
छाया च शक्तिः कमलालया च।
वृत्तिर्दया भ्रान्तिरथेह माया
नमोऽस्तु देव्यै भवरूपिकायै॥ २०

उसके बाद श्रेष्ठ देवताओंके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होकर त्रिनेत्रा (कात्यायनी)-ने उच्च अट्टहास किया। इन्द्र, विष्णु, रुद्र, चन्द्रमा, वायु, अग्नि तथा सूर्य आदि श्रेष्ठ देव उनकी स्तुति करने लगे—योगसे विशुद्ध देहवाली देवोंसे पूजित देवीको नमस्कार है। वे निद्रारूपसे पृथ्वीमें व्याप्त हैं, वे ही तृष्णा, त्रपा, क्षुधा, भयदा, कान्ति, श्रद्धा, स्मृति, पुष्टि, क्षमा, छाया, शक्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, दया, भ्रान्ति तथा माया हैं; ऐसी कल्याणमयी देवीको नमस्कार है॥ १७—२०॥

ततः स्तुता देववरैर्मृगेन्द्र-
मारुह्य देवी प्रगताऽवनीध्रम्।
विन्ध्यं महापर्वतमुच्चशृङ्गं
चकार यं निम्नतरं त्वगस्त्यः॥ २१

फिर देववरोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर वे देवी सिंहपर आरूढ़ होकर विन्ध्य नामके उस ऊँचे शृङ्गवाले महान् पर्वतपर गयीं, जिसे अगस्त्य मुनिने अति निम्न कर दिया था॥ २१॥

नारद उवाच

किमर्थमद्रिं भगवानगस्त्य-
स्तं निम्नशृङ्गं कृतवान् महर्षिः।
कस्मै कृते केन च कारणेन
एतद् वदस्वामलसत्त्ववृत्ते॥ २२

नारदजीने पूछा— शुद्धात्मन् (पुलस्त्यजी)! आप यह बतलायें कि भगवान् अगस्त्यमहर्षिने उस पर्वतको किसके लिये एवं किस कारणसे निम्न शृङ्गवाला कर दिया?॥ २२॥

पुलस्त्य उवाच

पुरा हि विन्ध्येन दिवाकरस्य
गतिर्निरुद्धा गगनेचरस्य।
रविस्ततः कुम्भभवं समेत्य
होमावसाने वचनं बभाषे॥ २३
समागतोऽहं द्विज दूरतस्त्वां
कुरुष्व मामुद्धरणं मुनीन्द्र।
ददस्व दानं मम यन्मनीषितं
चरामि येन त्रिदिवेषु निर्वृतः॥ २४
इत्थं दिवाकरवचो गुणसंप्रयोगि
श्रुत्वा तदा कलशजो वचनं बभाषे।
दानं ददामि तव यन्मनसस्त्वभीष्टं
नार्थी प्रयाति विमुखो मम कश्चिदेव॥ २५
श्रुत्वा वचोऽमृतमयं कलशोद्भवस्य
प्राह प्रभुः करतले विनिधाय मूर्ध्नि।
एषोऽद्य मे गिरिवरः प्ररुणद्धि मार्गं
विन्ध्यस्य निम्नकरणे भगवन् यतस्व॥ २६

पुलस्त्यजीने कहा— प्राचीनकालमें विन्ध्य-पर्वतने (अपने ऊँचे शिखरोंसे) आकाशचारी सूर्यकी गतिको अवरुद्ध कर दिया था। तब सूर्यने महर्षि अगस्त्यके पास जाकर होमके अन्तमें यह वचन कहा— द्विज! मैं बहुत दूरसे आपके पास आया हूँ। मुनिश्रेष्ठ! आप मेरा उद्धार करें। मुझे अभीष्ट प्रदान करें, जिससे मैं निश्चिन्त होकर आकाशमें विचरण कर सकूँ। इस प्रकार सूर्यके नम्र वचनोंको सुनकर अगस्त्यजी बोले— मैं आपकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगा। मेरे पाससे कोई भी याचक विमुख होकर नहीं जाता। अगस्त्यजीकी अमृतमयी वाणी सुन करके सिरपर दोनों हाथ जोड़कर सूर्यने कहा—भगवन्! यह पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य आज मेरा मार्ग रोक रहा है, अतः आप इसे नीचा करनेका प्रयत्न करें॥ २३—२६॥

इति रविवचनादथाह कुम्भजन्मा
कृतमिति विद्धि मया हि नीचशृङ्गम्।
तव किरणजितो भविष्यते महीध्रो
मम चरणसमाश्रितस्य का व्यथा ते॥ २७
इत्येवमुक्त्वा कलशोद्भवस्तु
सूर्यं हि संस्तूय विनम्य भक्त्या।
जगाम संत्यज्य हि दण्डकं हि
विन्ध्याचलं वृद्धवपुर्महर्षिः॥ २८
गत्वा वचः प्राह मुनिर्महीध्रं
यास्ये महातीर्थवरं सुपुण्यम्।
वृद्धोऽस्म्यशक्तश्च तवाधिरोढुं
तस्माद् भवान् नीचतरोऽस्तु सद्यः॥ २९
इत्येवमुक्तो मुनिसत्तमेन
स नीचशृङ्गस्त्वभवन्महीध्रः।
समाक्रमच्चापि महर्षिमुख्यः
प्रोल्लङ्घ्य विन्ध्यं त्विदमाह शैलम्॥ ३०

सूर्यकी बात सुनकर अगस्त्यजीने कहा—सूर्यदेव! विन्ध्यको आप मेरे द्वारा नीचा किया हुआ ही समझें। यह पर्वत आपकी किरणोंसे पराजित हो जायगा। मेरे चरणोंके आश्रय लेनेपर आपको अब व्यथा कैसी? वृद्ध शरीरवाले महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कहकर विनम्रतापूर्वक भक्तिसे सूर्यकी स्तुति करनेके बाद दण्डकको छोड़कर विन्ध्यपर्वतके निकट चले गये। वहाँ जाकर मुनिने पर्वतसे कहा—पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य! मैं अत्यन्त पवित्र महातीर्थको जा रहा हूँ। मैं वृद्ध होनेसे तुम्हारे ऊपर चढ़नेमें असमर्थ हूँ; अतः तुम तत्काल नीचा हो जाओ। मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यके ऐसा कहनेपर विन्ध्य पर्वत निम्न शिखरवाला हो गया। तब महर्षिश्रेष्ठ (अगस्त्यजी)-ने विन्ध्यपर्वतपर चढ़कर विन्ध्यको पार कर लिया और तब उससे यह कहा—॥ २७—३०॥

यावन्न भूयो निजमाव्रजामि
महाश्रमं धौतवपुः सुतीर्थात्।
त्वया न तावत्त्विह वर्धितव्यं
नो चेद् विशप्स्येऽहमवज्ञया ते॥ ३१
इत्येवमुक्त्वा भगवाञ्जगाम
दिशं स याम्यां सहसान्तरिक्षम्।
आक्रम्य तस्थौ स हि तां तदाशां
काले व्रजाम्यत्र यदा मुनीन्द्रः॥ ३२
तत्राश्रमं रम्यतरं हि कृत्वा
संशुद्धजाम्बूनदतोरणान्तम्।
तत्राथ निक्षिप्य विदर्भपुत्रीं
स्वमाश्रमं सौम्यमुपाजगाम॥ ३३
ऋतावृतौ पर्वकालेषु नित्यं
तमम्बरे ह्याश्रममावसत् सः।
शेषं च कालं स हि दण्डकस्थ-
स्तपश्चचारामितकान्तिमान् मुनिः॥ ३४

मैं जबतक पवित्र तीर्थसे स्नान कर पुनः अपने महान् आश्रममें न लौटूँ, तबतक तुम्हें नहीं बढ़ना चाहिये; अन्यथा अवज्ञा करनेके कारण मैं तुम्हें घोर शाप दे दूँगा। 'मैं उचित समयपर फिर आऊँगा'—ऐसा कहकर भगवान् अगस्त्य सहसा दक्षिण दिशाकी ओर चले गये तथा वहीं रह गये। मुनिने वहाँ विशुद्ध स्वर्णिम तोरणोंवाले अति रमणीय आश्रमकी रचना की एवं उसमें विदर्भपुत्री लोपामुद्राको रखकर स्वयं अपने आश्रमको चले गये। अत्यन्त प्रकाशमान मुनि (शरद्से वसन्ततक) विभिन्न ऋतुओंमें पर्व (अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा तिथियों तथा रवि-संक्रान्ति, सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण)-के समय नित्य आकाशमें और शेष समय दण्डकवनमें अपने आश्रममें निवासकर तप करने लगे॥ ३१—३४॥

विन्ध्योऽपि दृष्ट्वा गगने महाश्रमं
वृद्धिं न यात्येव भयान्महर्षेः।
नासौ निवृत्तेति मतिं विधाय
स संस्थितो नीचतराग्रशृङ्गः॥ ३५

विन्ध्यपर्वत भी आकाशमें महान् आश्रमको देखकर महर्षिके भयसे नहीं बढ़ा। वे नहीं लौटे हैं—ऐसा समझकर वह अपना शिखर नीचा किये हुए अब भी

एवं त्वगस्त्येन महाचलेन्द्रः
स नीचशृङ्गो हि कृतो महर्षे।
तस्योर्ध्वशृङ्गे मुनिसंस्तुता सा
दुर्गा स्थिता दानवनाशनार्थम्॥ ३६
देवाश्च सिद्धाश्च महोरगाश्च
विद्याधरा भूतगणाश्च सर्वे।
सर्वाप्सरोभिः प्रतिरामयन्तः
कात्यायनीं तस्थुरपेतशोकाः॥ ३७

वैसे ही स्थित है। हे महर्षे! इस प्रकार अगस्त्यने महान् पर्वतराज विन्ध्यको नीचा कर दिया। उसीके शिखरके ऊपर मुनियोंद्वारा संस्तुता दुर्गादेवी दानवोंके विनाशके लिये स्थित हुई और देवता, सिद्ध, महानाग, अप्सराओंके सहित विद्याधर एवं समस्त भूतगण इनके बदले कात्यायनीदेवीको प्रसन्न करते हुए निःशोक होकर उनके निकट रहने लगे॥ ३५—३७॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

चण्ड-मुण्डद्वारा महिषासुरसे भगवती कात्यायनीके सौन्दर्यका वर्णन, महिषासुरका संदेश और युद्धोपक्रम

पुलस्त्य उवाच

ततस्तु तां तत्र तदा वसन्तीं
कात्यायनीं शैलवरस्य शृङ्गे।
अपश्यतां दानवसत्तमौ द्वौ
चण्डश्च मुण्डश्च तपस्विनीं ताम्॥ १
दृष्ट्वैव शैलादवतीर्य शीघ्र-
माजग्मतुः स्वभवनं सुरारी।
दृष्ट्वोचतुस्तौ महिषासुरस्य
दूताविदं चण्डमुण्डौ दितीशम्॥ २
स्वस्थो भवान् किं त्वसुरेन्द्र साम्प्रत-
मागच्छ पश्याम च तत्र विन्ध्यम्।
तत्रास्ति देवी सुमहानुभावा
कन्या सुरूपा सुरसुन्दरीणाम्॥ ३
जितास्तया तोयधराऽलकैर्हि
जितः शशाङ्को वदनेन तन्व्या।
नेत्रैस्त्रिभिस्त्रीणि हुताशनानि
जितानि कण्ठेन जितस्तु शङ्खः॥ ४

पुलस्त्यजीने कहा— उसके बाद उस श्रेष्ठ पर्वतशिखरपर निवास करनेवाली उन तपस्विनी कात्यायनी (दुर्गा)-को चण्ड और मुण्ड नामके दो श्रेष्ठ दानवोंने देखा और देखते ही पर्वतसे उतरकर वे दोनों असुर अपने घर चले गये। फिर उन दोनों दूतोंने दैत्यराज महिषासुरके निकट जाकर कहा—'असुरेन्द्र! आप इस समय स्वस्थ तो हैं? आइये, हमलोग विन्ध्यपर्वतपर चलकर देखें; वहाँ सुर-सुन्दरियोंमें अत्यन्त सुन्दर, श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त एक कन्या है। उस तन्वी (सूक्ष्म देहवाली)-ने केशपाशके द्वारा मेघोंको, मुखके द्वारा चन्द्रमाको, तीन नेत्रोंद्वारा तीनों (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय) अग्नियोंको और कण्ठके द्वारा शङ्खको जीत लिया है (उसकी शोभा और तेजसे ये फीके पड़ गये हैं)'॥ १—४॥

स्तनौ सुवृत्तावथ मग्नचूचुकौ
स्थितौ विजित्येव गजस्य कुम्भौ।
त्वां सर्वजेतारमिति प्रतर्क्य
कुचौ स्मरेणैव कृतौ सुदुर्गौ॥ ५

'उसके मग्न चूचुकवाले वृत्त (सुडौल गोले)-स्तन हाथीके गण्डस्थलोंको मात कर रहे हैं। मालूम होता है कि कामदेवने अपनेको सर्वविजयी समझकर आपको परास्त करनेके लिये उसके दो कुचरूपी दो

पीनाः सशस्त्राः परिघोपमाश्च
भुजास्तथाऽष्टादश भान्ति तस्याः।
पराक्रमं वै भवतो विदित्वा
कामेन यन्त्रा इव ते कृतास्तु॥ ६
मध्यं च तस्यास्त्रिवलीतरङ्गं
विभाति दैत्येन्द्र सुरोमराजि।
भयातुरारोहणकातरस्य
कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्॥ ७
सा रोमराजी सुतरां हि तस्या
विराजते पीनकुचावलग्ना।
आरोहणे त्वद्भयकातरस्य
स्वेदप्रवाहोऽसुर मन्मथस्य॥ ८
नाभिर्गभीरा सुतरां विभाति
प्रदक्षिणाऽस्याः परिवर्तमाना।
तस्यैव लावण्यगृहस्य मुद्रा
कंदर्पराज्ञा स्वयमेव दत्ता॥ ९
विभाति रम्यं जघनं मृगाक्ष्याः
समंततो मेखलयाऽवजुष्टम्।
मन्याम तं कामनराधिपस्य
प्राकारगुप्तं नगरं सुदुर्गम्॥ १०
वृत्तावरोमौ च मृदू कुमार्याः
शोभेत ऊरू समनुत्तमौ हि।
आवासनार्थं मकरध्वजेन
जनस्य देशाविव संनिविष्टौ॥ ११
तज्जानुयुग्मं महिषासुरेन्द्र
अर्द्धोन्नतं भाति तथैव तस्याः।
सृष्ट्वा विधाता हि निरूपणाय
श्रान्तस्तथा हस्ततले ददौ हि॥ १२

दुर्गोंकी रचना की है। शस्त्रसहित उसकी मोटी परिघके समान अठारह भुजाएँ इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं, मानो आपका पराक्रम जानकर कामदेवने यन्त्रके समान उसका निर्माण किया है। दैत्येन्द्र! त्रिवलीसे तरङ्गायमान उसकी कमर इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो वह भयार्त तथा अधीर कामदेवका आरोहण करनेके लिये सोपान हो। असुर! उसके पीन कुचोंतककी वह रोमावलि इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो आरोहण करनेमें आपके भयसे कातर कामदेवका स्वेद-प्रवाह हो'॥ ५—८॥

'उसकी गम्भीर दक्षिणावर्त नाभि ऐसी लगती है, मानो कंदर्पने स्वयं ही उस सौन्दर्यगृहके ऊपर मुहर लगा दी है। मेखलासे चारों ओर आवेष्टित उस मृगनयनीका जघन बड़ा सुन्दर सुशोभित हो रहा है। उसे हम राजा कामका प्राकारसे (चहारदीवारियोंसे) गुप्त (सुरक्षित) दुर्गम नगर मानते हैं। उस कुमारीके वृत्ताकार रोमरहित, कोमल तथा उत्तम ऊरु इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, मानो कामदेवने मनुष्योंके निवासके लिये दो रेखोंका संनिवेश किया है। महिषासुरेन्द्र! उसके अर्द्धोन्नत जानुयुगल इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, मानो उसकी रचना करनेके बाद थके विधाताने निरूपण करनेके लिये अपना करतल ही स्थापित कर दिया हो'॥ ९—१२॥

जङ्घे सुवृत्तेऽपि च रोमहीने
शोभेत दैत्येश्वर ते तदीये।
आक्रम्य लोकानिव निर्मिताया
रूपार्जितस्यैव कृताधरौ हि॥ १३

'दैत्येश्वर! उसकी सुवृत्त तथा रोमहीन दोनों जंघाएँ इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं, मानो (दिव्य) निर्मित की गयी नायिकाके रूपके द्वारा सभी लोग पराजित कर दिये गये हैं। विधाताने प्रयत्नपूर्वक उसके कमलोदरके समान कान्तिवाले दोनों पैरोंका निर्माण किया है। उन्होंने कात्यायनीके उन चरणोंके नखरूपी रत्नशृङ्खलाको इस प्रकार प्रकाशित किया है, मानो वह आकाशमें नक्षत्रोंकी माला हो।

पादौ च तस्याः कमलोदराभौ
प्रयत्नतस्तौ हि कृतौ विधात्रा।
आज्ञापि ताभ्यां नखरत्नमाला
नक्षत्रमाला गगने यथैव॥ १४

एवंस्वरूपा दनुनाथ कन्या
महोग्रशस्त्राणि च धारयन्ती।
दृष्ट्वा यथेष्टं न च विद्म का सा
सुताऽथवा कस्यचिदेव बाला॥ १५
तद्भूतले रत्नमनुत्तमं स्थितं
स्वर्गं परित्यज्य महासुरेन्द्र।
गत्वाथ विन्ध्यं स्वयमेव पश्य
कुरुष्व यत् तेऽभिमतं क्षमं च॥ १६
श्रुत्वैव ताभ्यां महिषासुरस्तु
देव्याः प्रवृत्तिं कमनीयरूपाम्।
चक्रे मतिं नात्र विचारमस्ति
इत्येवमुक्त्वा महिषोऽपि नास्ति॥ १७
प्रागेव पुंसस्तु शुभाशुभानि
स्थाने विधात्रा प्रतिपादितानि।
यस्मिन् यथा यानि यतोऽथ विप्र
स नीयते वा व्रजति स्वयं वा॥ १८
ततोनु मुण्डं नमरं सचण्डं
विडालनेत्रं सपिशङ्गवाष्कलम्।
उग्रायुधं चिक्षुररक्तबीजौ
समादिदेशाथ महासुरेन्द्रः॥ १९
आहत्य भेरी रणकर्कशास्ते
स्वर्गं परित्यज्य महीधरं तु।
आगम्य मूले शिविरं निवेश्य
तस्थुश्च सज्जा दनुनन्दनास्ते॥ २०
ततस्तु दैत्यो महिषासुरेण
सम्प्रेषितो दानवयूथपालः।
मयस्य पुत्रो रिपुसैन्यमर्दी
स दुन्दुभिर्दुन्दुभिनिःस्वनस्तु॥ २१
अभ्येत्य देवीं गगनस्थितोऽपि
स दुन्दुभिर्वाक्यमुवाच विप्र।
कुमारि दूतोऽस्मि महासुरस्य
रम्भात्मजस्याप्रतिमस्य युद्धे॥ २२
कात्यायनी दुन्दुभिमभ्युवाच
एह्येहि दैत्येन्द्र भयं विमुच्य।
वाक्यं च यद्रम्भसुतो बभाषे
वदस्व तत्सत्यमपेतमोहः॥ २३

दैत्येश्वर! वह कन्या बड़े और भयानक शस्त्रोंको धारण किये हुए है। उसे भलीभाँति देखकर भी हम यह न जान सके कि वह कौन है तथा किसकी पुत्री या स्त्री है। महासुरेन्द्र! वह स्वर्गका परित्याग कर भूतलमें स्थित श्रेष्ठरत्न है। आप स्वयं विन्ध्यपर्वतपर जाकर उसे देखें और फिर जो आपकी इच्छा एवं सामर्थ्य हो वह करें'॥ १३—१६॥

उन दोनों दूतोंसे कात्यायनीके आकर्षक सौन्दर्यकी बात सुनकर महिषने 'इस विषयमें कुछ भी विचारना नहीं है'—यह कहकर जानेका निश्चय किया। इस प्रकार मानो महिषका अन्त ही आ गया। मनुष्यके शुभाशुभको ब्रह्माने पहलेसे ही निर्धारित कर रखा है। जिस व्यक्तिको जहाँपर या जहाँसे जिस प्रकार जो कुछ भी शुभाशुभ परिणाम होनेवाला होता है, वह वहाँ ले जाया जाता है या स्वयं चला जाता है। फिर महिषने मुण्ड, नमर, चण्ड, विडालनेत्र, पिशङ्गके साथ वाष्कल, उग्रायुध, चिक्षुर और रक्तबीजको आज्ञा दी। वे सभी दानव रणकर्कश भेरियाँ बजाकर स्वर्गको छोड़कर उस पर्वतके निकट आ गये और उसके मूलमें सेनाके दलोंका पड़ाव डालकर युद्धके लिये तैयार हो गये॥ १७—२०॥

तत्पश्चात् महिषासुरने देवीके पास धौंसेकी ध्वनिकी भाँति उच्च और गम्भीर ध्वनिमें बोलनेवाले तथा शत्रुओंकी सेनाओंके समूहोंका मर्दन करनेवाले दानवोंके सेनापति मयपुत्र दुन्दुभिको भेजा। ब्राह्मणदेवता नारदजी! दुन्दुभिने देवीके पास पहुँचकर आकाशमें स्थित होकर उनसे यह वाक्य कहा—हे कुमारि! मैं महान् असुर रम्भके पुत्र महिषका दूत हूँ। वह युद्धमें अद्वितीय वीर है। इसपर कात्यायनीने दुन्दुभिसे कहा—दैत्येन्द्र! तुम निडर होकर इधर आओ और रम्भपुत्रने जो वचन कहा है, उसे स्वस्थ होकर ठीक-ठीक कहो।

तथोक्तवाक्ये दितिजः शिवाया-
स्त्यज्याम्बरं भूमितले निषण्णः।
सुखोपविष्टः परमासने च
रम्भात्मजेनोक्तमुवाच वाक्यम्॥ २४

दुन्दुभिरुवाच

एवं समाज्ञापयते सुरारि-
स्त्वां देवि दैत्यो महिषासुरस्तु।
यथामरा हीनबलाः पृथिव्यां
भ्रमन्ति युद्धे विजिता मया ते॥ २५
स्वर्गं मही वायुपथाश्च वश्याः
पातालमन्ये च महेश्वराद्याः।
इन्द्रोऽस्मि रुद्रोऽस्मि दिवाकरोऽस्मि
सर्वेषु लोकेष्वधिपोऽस्मि बाले॥ २६
न सोऽस्ति नाके न महीतले वा
रसातले देवभटोऽसुरो वा।
यो मां हि संग्राममुपेयिवांस्तु
भूतो न यक्षो न जिजीविषुर्यः॥ २७
यान्येव रत्नानि महीतले वा
स्वर्गेऽपि पातालतलेऽथ मुग्धे।
सर्वाणि मामद्य समागतानि
वीर्यार्जितानीह विशालनेत्रे॥ २८
स्त्रीरत्नमग्र्यं भवती च कन्या
प्राप्तोऽस्मि शैलं तव कारणेन।
तस्माद् भजस्वेह जगत्पतिं मां
पतिस्तवार्होऽस्मि विभुः प्रभुश्च॥ २९

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ता दितिजेन दुर्गा
कात्यायनी प्राह मयस्य पुत्रम्।
सत्यं प्रभुर्दानवराट् पृथिव्यां
सत्यं च युद्धे विजितामराश्च॥ ३०
किं त्वस्ति दैत्येश कुलेऽस्मदीये
धर्मो हि शुल्काख्य इति प्रसिद्धः।
तं चेत् प्रदद्यान्महिषो ममाद्य
भजामि सत्येन पतिं हयारिम्॥ ३१
श्रुत्वाऽथ वाक्यं मयजोऽब्रवीच्च
शुल्कं वदस्वाम्बुजपत्रनेत्रे।
दद्यात्स्वमूर्धानमपि त्वदर्थे
किं नाम शुल्कं यदिहैव लभ्यम्॥ ३२

दुर्गाके इस प्रकार कहनेपर वह दैत्य आकाशसे उतरकर पृथ्वीपर आया और सुन्दर आसनपर सुखपूर्वक बैठकर महिषके वचनोंको इस प्रकार कहने लगा—॥ २१—२४॥

दुन्दुभि बोला— देवि! असुर महिषने तुम्हें यह अवगत कराया है कि मेरे द्वारा युद्धमें पराजित हुए निर्बल देवतालोग पृथ्वीपर भ्रमण कर रहे हैं। हे बाले! स्वर्ग, पृथ्वी, वायुमार्ग, पाताल और शङ्कर आदि देवगण सभी मेरे वशमें हैं। मैं ही इन्द्र, रुद्र एवं सूर्य हूँ तथा सभी लोकोंका स्वामी हूँ। स्वर्ग, पृथ्वी या रसातलमें जीवित रहनेकी इच्छावाला ऐसा कोई देव, असुर, भूत या यक्ष योद्धा नहीं हुआ, जो युद्धमें मेरे सामने आ सकता हो। (और भी सुनो) पृथ्वी, स्वर्ग या पातालमें जितने भी रत्न हैं, उन सबको मैंने अपने पराक्रमसे जीत लिया है और अब वे मेरे पास आ गये हैं। अतः अबोध बालिके! तुम कन्या हो और स्त्रीरत्नोंमें श्रेष्ठ हो। मैं तुम्हारे लिये इस पर्वतपर आया हूँ। इसलिये मुझ जगत्पतिको तुम स्वीकार करो। मैं तुम्हारे योग्य सर्वथा समर्थ पति हूँ॥ २५—२९॥

पुलस्त्यजीने कहा— उस दैत्यके ऐसा कहनेपर दुर्गाजीने दुन्दुभिसे कहा—(असुरदूत!) यह सत्य है कि दानवराट् महिष पृथ्वीमें समर्थ है एवं यह भी सत्य है कि उसने युद्धमें देवताओंको जीत लिया है; किंतु दैत्येश! हमारे कुलमें (विवाहके विषयमें) शुल्क नामकी एक प्रथा प्रचलित है। यदि महिष आज मुझे वह प्रदान करे तो सत्यरूपमें (सचमुच) मैं उस (महिष)-को पतिरूपमें स्वीकार कर लूँगी। इस वाक्यको सुनकर दुन्दुभिने कहा—(अच्छा) कमलपत्राक्षि! तुम वह शुल्क बतलाओ। महिष तो तुम्हारे लिये अपना सिर भी प्रदान कर सकता है; शुल्ककी तो बात ही क्या, जो यहाँ ही मिल सकता है॥ ३०—३२॥

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ता दनुनायकेन
कात्यायनी सस्वनमुन्नदित्वा।
विहस्य चैतद्वचनं बभाषे
हिताय सर्वस्य चराचरस्य॥ ३३

श्रीदेव्युवाच

कुलेऽस्मदीये शृणु दैत्य शुल्कं
कृतं हि यत्पूर्वतरैः प्रसह्य।
यो जेष्यतेऽस्मत्कुलजां रणाग्रे
तस्याः स भर्त्ताऽपि भविष्यतीति॥ ३४

पुलस्त्य उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या दुन्दुभिर्दानवेश्वरः।
गत्वा निवेदयामास महिषाय यथातथम्॥ ३५

स चाभ्यगान्महातेजाः सर्वदैत्यपुरःसरः।
आगत्य विन्ध्यशिखरं योद्धुकामः सरस्वतीम्॥ ३६

ततः सेनापतिर्दैत्यश्चिक्षुरो नाम नारद।
सेनाग्रगामिनं चक्रे नमरं नाम दानवम्॥ ३७

स चापि तेनाधिकृतश्चतुरङ्गं समूर्जितम्।
बलैकदेशमादाय दुर्गां दुद्राव वेगितः॥ ३८

तमापतन्तं वीक्ष्याथ देवा ब्रह्मपुरोगमाः।
ऊचुर्वाक्यं महादेवीं वर्म ह्याबन्ध चाम्बिके॥ ३९

अथोवाच सुरान् दुर्गा नाहं बध्नामि देवताः।
कवचं कोऽत्र संतिष्ठेत् ममाग्रे दानवाधमः॥ ४०

यदा न देव्या कवचं कृतं शस्त्रनिबर्हणम्।
तदा रक्षार्थमस्यास्तु विष्णुपञ्जरमुक्तवान्॥ ४१

सा तेन रक्षिता ब्रह्मन् दुर्गा दानवसत्तमम्।
अवध्यं दैवतैः सर्वैर्महिषं प्रत्यपीडयत्॥ ४२

एवं पुरा देववरेण शम्भुना
तद्वैष्णवं पञ्जरमायताक्ष्याः।
प्रोक्तं तया चापि हि पादघातै-
र्निषूदितोऽसौ महिषासुरेन्द्रः॥ ४३

एवंप्रभावो द्विज विष्णुपञ्जरः
सर्वासु रक्षास्वधिको हि गीतः।
कस्तस्य कुर्याद् युधि दर्पहानिं
यस्य स्थितश्चेतसि चक्रपाणिः॥ ४४

पुलस्त्यजी बोले— दैत्यनायक दुन्दुभिके ऐसा कहनेपर दुर्गाजीने उच्च स्वरसे गर्जन कर और हँसकर समस्त चराचरके कल्याणार्थ यह वचन कहा— ॥ ३३ ॥

श्रीदेवीजीने कहा— दैत्य! पूर्वजोंने हमारे कुलमें जो शुल्क निर्धारित किया है, उसे सुनो। (वह यह है कि) हमारे कुलमें उत्पन्न कन्याको जो बलसे युद्धमें जीतेगा, वही उसका पति होगा॥ ३४॥

पुलस्त्यजीने कहा— देवीकी यह बात सुनकर दुन्दुभिने जाकर महिषासुरसे इस बातको ज्यों-का-त्यों निवेदित कर दिया। उस महातेजस्वी दैत्यने सभी दैत्योंके साथ (युद्धमें देवीको पराजितकर उसका पति बननेके लिये) प्रयाण किया एवं सरस्वती (-देवी)-से युद्ध करनेकी इच्छासे विन्ध्याचल पर्वतपर पहुँच गया। नारदजी! उसके पश्चात् सेनापति चिक्षुर नामक दैत्यने नमर नामके दैत्यको सेनाके आगे चलनेका निर्देश दिया। और वह भी महान् बली असुर उससे निर्देश पाकर बलशाली चतुरंगिणी सेनाकी एक लड़ाकू टुकड़ीको लेकर वेगपूर्वक दुर्गाजीपर धावा बोल दिया॥ ३५—३८॥

उसे आते देखकर ब्रह्मा आदि देवताओंने महादेवीसे कहा—अम्बिके! आप कवच बाँध लें। उसके बाद देवीने देवताओंसे कहा—देवगण! मैं कवच नहीं बाँधूँगी। मेरे सामने ऐसा कौन अधम दानव है जो यहाँ युद्धमें ठहर सके? जब देवीने शस्त्र-निवारक कवच न पहना तो उनकी रक्षाके लिये देवताओंने (पूर्वोक्त) विष्णुपञ्जरस्तोत्र पढ़ा। ब्रह्मन्! उससे रक्षित होकर दुर्गाने समस्त देवताओंके द्वारा अवध्य दानव-श्रेष्ठ महिषासुरको खूब पीड़ित किया। इस प्रकार पहले देवश्रेष्ठ शम्भुने बड़े नेत्रोंवाली (कात्यायनी)-से उस वैष्णव पञ्जरको कहा था, उसीके प्रभावसे उन्होंने (देवीने) भी पैरोंसे मारकर उस महिषासुरका कचूमर निकाल दिया। द्विज! इस प्रकारके प्रभावसे युक्त विष्णुपञ्जर समस्त रक्षाकारी (स्तोत्रों)-में श्रेष्ठ कहा गया है। वस्तुतः जिसके चित्तमें चक्रपाणि स्थित हों, युद्धमें उसके अभिमानको कौन नष्ट कर सकता है॥ ३९—४४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

भगवती कात्यायनीका दैत्योंके साथ युद्ध; महिषासुर-वध एवं देवीका शिवजीके पादमूलमें लीन हो जाना

नारद उवाच

कथं कात्यायनी देवी सानुगं महिषासुरम्।
सवाहनं हतवती तथा विस्तरतो वद॥ १
एतच्च संशयं ब्रह्मन् हृदि मे परिवर्तते।
विद्यमानेषु शस्त्रेषु यत्पद्भ्यां तममर्दयत्॥ २

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्।
वृत्तां देवयुगस्यादौ पुण्यां पापभयापहाम्॥ ३

एवं स नमरः क्रुद्धः समापतत वेगवान्।
सगजाश्वरथो ब्रह्मन् दृष्टो देव्या यथेच्छया॥ ४

ततो बाणगणैर्दैत्यः समानम्याथ कार्मुकम्।
ववर्ष शैलं धारौघैर्द्यौरिवाम्बुदवृष्टिभिः॥ ५

शरवर्षेण तेनाथ विलोक्याद्रिं समावृतम्।
क्रुद्धा भगवती वेगादाचकर्ष धनुर्वरम्॥ ६
तद्धनुर्दानवे सैन्ये दुर्गया नामितं बलात्।
सुवर्णपृष्ठं विबभौ विद्युदम्बुधरेष्विव॥ ७

बाणैः सुररिपूनन्यान् खड्गेनान्यान् शुभव्रत।
गदया मुसलेनान्यांश्चर्मणाऽन्यानपातयत्॥ ८

एकोऽप्यसौ बहून् देव्याः केसरी कालसंनिभः।
विधुन्वन् केसरसटां निषूदयति दानवान्॥ ९

कुलिशाभिहता दैत्याः शक्त्या निर्भिन्नवक्षसः।
लाङ्गलैर्दारितग्रीवा विनिकृत्ताः परश्वधैः॥ १०

दण्डनिर्भिन्नशिरसश्चक्रविच्छिन्नबन्धनाः।
चेलुः पेतुश्च मम्लुश्च तत्यजुश्चापरे रणम्॥ ११

नारदजीने पूछा— (पुलस्त्यजी!) दुर्गादेवीने सेना एवं वाहनोंके सहित महिषासुरको किस प्रकार मार डाला, इसे आप विस्तारसे कहें। मेरे मनमें यह शंका घर कर गयी है कि शस्त्रोंके विद्यमान होते हुए भी देवीने पैरोंसे उसे क्यों मारा?॥ १-२॥

[फिर नारदजीके प्रश्नको सुनकर] **पुलस्त्यजीने कहा—** नारदजी! देवयुगके आदिमें घटित तथा पाप एवं भयको दूर करनेवाली इस प्राचीन एवं पवित्र कथाको आप सावधान होकर सुनिये। एक बार इसी प्रकार (अर्थात्) पूर्ववर्णित रीतिसे क्रुद्ध होकर नमरने भी हाथी, घोड़े और रथोंके साथ वेगपूर्वक देवीके ऊपर आक्रमण कर दिया था। फिर देवीने भी उसे भलीभाँति देखा। इसके बाद दैत्यने अपने धनुषको झुकाकर (चढ़ाकर) विन्ध्य पर्वतके ऊपर इस प्रकारसे बाण-वर्षा की जैसे आकाशसे बादल (उसपर) धारा-प्रवाह (मूसलाधार) जलवृष्टि करता हो। उसके बाद उस दैत्यकी बाण-वर्षासे पर्वतको सर्वथा ढका देखकर देवीको बड़ा क्रोध हुआ और तब उन्होंने वेगपूर्वक झट विशाल धनुषको चढ़ा लिया॥ ३—६॥

श्रीदुर्गाजीद्वारा चढ़ाया गया सोनेकी पीठवाला वह धनुष दानवी-सेनामें इस प्रकार चमक उठा, जैसे बादलोंमें बिजली चमकती है। शुभ व्रतवाले श्रीनारदजी! श्रीदुर्गाजीने कुछ दैत्योंको बाणोंसे, कुछको तलवारसे, कुछको गदासे, कुछको मुसलसे और कुछ दैत्योंको ढाल चलाकर ही मार डाला। कालके समान देवीके सिंहने (भी) अपनी गर्दनके बालोंको झाड़ते हुए अकेला ही अनेकों दैत्योंका संहार कर डाला। देवीने कुछ दैत्योंको वज्रसे आहत कर दिया, कुछ दैत्योंके वक्षःस्थलको शक्तिसे फाड़ डाला, कुछके गर्दनको हलसे विदीर्ण कर कुछको फरसेसे काट डाला, कुछके सिरको दण्डसे फोड़ दिया तथा कुछ दैत्योंके शरीरके संधि-स्थानोंको चक्रसे छिन्न-भिन्न कर दिया। कुछ पहले ही चले गये, कुछ गिर गये, कुछ मूर्च्छित हो गये और कुछ युद्धभूमि छोड़कर भाग गये॥ ७—११॥

ते वध्यमाना रौद्रया दुर्गया दैत्यदानवाः।
कालरात्रिं मन्यमाना दुद्रुवुर्भयपीडिताः॥ १२

सैन्याग्रं भग्नमालोक्य दुर्गामग्रे तथा स्थिताम्।
दृष्ट्वा जगाम नमरो मत्तकुञ्जरसंस्थितः॥ १३

समागम्य च वेगेन देव्याः शक्तिं मुमोच ह।
त्रिशूलमपि सिंहाय प्राहिणोद् दानवो रणे॥ १४

तावापतन्तौ देव्या तु हुंकारेणाथ भस्मसात्।
कृतावथ गजेन्द्रेण गृहीतो मध्यतो हरिः॥ १५

भयंकर रूपवाली दुर्गाद्वारा मारे जा रहे दैत्य एवं दानव भयसे व्याकुल हो गये तथा वे उन्हें कालरात्रिके समान मानते हुए डरसे भाग चले। सेनाके अग्र (प्रधान) भागको नष्ट तथा अपने सम्मुख दुर्गाको स्थित देखकर नमर मतवाले हाथीपर चढ़कर आगे आया। उस दानवने युद्धमें देवीके ऊपर शक्तिसे कसकर प्रहार किया एवं सिंहके ऊपर त्रिशूल चलाया। (किंतु) देवीने उन दोनों अस्त्रोंको आते देख हुंकारसे ही उन्हें भस्म कर डाला। इधर नमरके हाथीने (सूँड़से) सिंहकी कमर पकड़ ली॥ १२—१५॥

अथोत्पत्य च वेगेन तलेनाहत्य दानवम्।
गतासुः कुञ्जरस्कन्धात् क्षिप्य देव्यै निवेदितः॥ १६

गृहीत्वा दानवं मध्ये ब्रह्मन् कात्यायनी रुषा।
सव्येन पाणिना भ्राम्य वादयत् पटहं यथा॥ १७

ततोऽट्टहासं मुमुचे तादृशे वाद्यतां गते।
हास्यात् समुद्भवंस्तस्या भूता नानाविधाऽद्भुताः॥ १८

केचिद् व्याघ्रमुखा रौद्रा वृकाकारास्तथा परे।
हयास्या महिषास्याश्च वराहवदनाः परे॥ १९

इसपर सिंहने तेजीसे उछलकर नमर दानवको पंजेसे मारकर उसके प्राण ले लिये और हाथीके कंधेसे उसे नीचे गिराकर देवीके आगे रख दिया। नारदजी! देवी कात्यायनी क्रोधसे उस दैत्यको मध्यमें पकड़कर तथा बायें हाथसे घुमाकर ढोलके समान बजाने लगीं और उसे अपना बाजा बनाकर उन्होंने जोरसे अट्टहास किया। उनके हँसनेसे अनेक प्रकारके अद्भुत भूत उत्पन्न हो गये! कोई-कोई (भूत) व्याघ्रके समान भयंकर मुखवाले थे, किसीकी आकृति भेड़ियेके समान थी, किसीका मुख घोड़ेके तुल्य और किसीका मुख भैंसे-जैसा एवं किसीका सूकरके समान मुँह था॥ १६—१९॥

आखुकुक्कुटवक्त्राश्च गोऽजाविकमुखास्तथा।
नानावक्त्राक्षिचरणा नानायुधधरास्तथा॥ २०

गायन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये रमन्त्यन्ये तु संघशः।
वादयन्त्यपरे तत्र स्तुवन्त्यन्ये तथाम्बिकाम्॥ २१

सा तैर्भूतगणैर्देवी सार्द्धं तद्दानवं बलम्।
शातयामास चाक्रम्य यथा सस्यं महाशनिः॥ २२

सेनाग्रे निहते तस्मिन् तथा सेनाग्रगामिनि।
चिक्षुरः सैन्यपालस्तु योधयामास देवताः॥ २३

उनके मुँह चूहे, मुर्गे (कुक्कुट), गाय, बकरा और भेड़के मुखोंके समान थे। कई नाना प्रकारके मुख, आँख एवं चरणोंवाले थे तथा वे नाना प्रकारके आयुध धारण किये हुए थे। उनमें कुछ तो समूह बनाकर गाने लगे, कुछ हँसने लगे और कुछ रमण करने लगे तथा कुछ बाजा बजाने लगे एवं कुछ देवीकी स्तुति करने लगे। देवीने उन भूतगणोंके साथ उस दानव-सेनापर आक्रमण कर उसे इस प्रकार तहस-नहस कर दिया, जैसे भारी वज्रके समान ओलोंके गिरनेसे खेतीका संहार हो जाता है। इस प्रकार सेनाके अग्रभाग तथा सेनापतिके मारे जानेपर अब सेनापति चिक्षुर देवताओंसे भिड़ गया—युद्ध करने लगा॥ २०—२३॥

कार्मुकं दृढमाकर्णमाकृष्य रथिनां वरः।
ववर्ष शरजालानि यथा मेघो वसुंधराम्॥ २४

रथियोंमें श्रेष्ठ उस दैत्यने अपने मजबूत धनुषको अपने कानोंतक चढ़ाकर उससे बाणोंकी इस प्रकार वर्षा की जैसे मेघ पृथ्वीपर (घनघोर) जल बरसाते हैं। परंतु

तान् दुर्गा स्वशरैश्छित्त्वा शरसंघान् सुपर्वभिः।
सौवर्णपुङ्खानपरांञ्शराञ्जग्राह षोडश॥ २५

ततश्चतुर्भिश्चतुरस्तुरङ्गानपि भामिनी।
हत्वा सारथिमेकेन ध्वजमेकेन चिच्छिदे॥ २६

ततस्तु सशरं चापं चिच्छेदैकेषुणाऽम्बिका।
छिन्ने धनुषि खड्गं च चर्म चादत्तवान् बली॥ २७

दुर्गाने भी सुन्दर पर्वों (गाँठों)-वाले अपने बाणोंसे उन बाणोंको काट डाला और फिर सुवर्णसे निर्मित पंखवाले सोलह बाणोंको अपने हाथोंमें ले लिया। उन्होंने क्रुद्ध होकर चार बाणोंसे उसके चार घोड़ोंको और एकसे सारथीको मारकर एक बाणसे उसकी ध्वजाके दो टुकड़े कर दिये। फिर अम्बिकाने एक बाणसे उसके बाणसहित धनुषको काट डाला। धनुष कट जानेपर बलवान् चिक्षुरने ढाल और तलवार उठा ली॥ २४—२७॥

तं खड्गं चर्मणा सार्धं दैत्यस्याधुन्वतो बलात्।
शरैश्चतुर्भिश्चिच्छेद ततः शूलं समाददे॥ २८

समुद्भ्राम्य महच्छूलं संप्राद्रवदथाम्बिकाम्।
क्रोष्टुको मुदितोऽरण्ये मृगराजवधूं यथा॥ २९

तस्याभिपततः पादौ करौ शीर्षं च पञ्चभिः।
शरैश्चिच्छेद संक्रुद्धा न्यपतन्निहतोऽसुरः॥ ३०

तस्मिन् सेनापतौ क्षुण्णे तदोग्रास्यो महासुरः।
समाद्रवत वेगेन करालास्यश्च दानवः॥ ३१

वह ढाल और तलवारको जोर लगाकर घुमा ही रहा था कि देवीने चार बाणोंसे उन्हें काट डाला। इसपर उस दैत्यने शूल ले लिया। महान् शूलको घुमाकर वह अम्बिकाकी ओर इस प्रकार दौड़ा, जैसे वनमें सियार आनन्दमग्न होकर सिंहिनीकी ओर दौड़े! पर देवीने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पाँच बाणोंसे उस असुरके दोनों हाथों, दोनों पैरों एवं मस्तकको काट डाला, जिससे वह असुर मरकर गिर पड़ा। उस सेनापतिके मरनेपर उग्रास्य नामका महान् असुर तथा करालास्य नामका दानव—ये दोनों तेजीसे उनकी ओर दौड़े॥ २८—३१॥

बाष्कलश्चोद्धतश्चैव उदग्राख्योग्रकार्मुकः।
दुर्द्धरो दुर्मुखश्चैव बिडालनयनोऽपरः॥ ३२
एतेऽन्ये च महात्मानो दानवा बलिनां वराः।
कात्यायनीमाद्रवन्त नानाशस्त्रास्त्रपाणयः॥ ३३
तान् दृष्ट्वा लीलया दुर्गा वीणां जग्राह पाणिना।
वादयामास हसती तथा डमरुकं वरम्॥ ३४
यथा यथा वादयते देवी वाद्यानि तानि तु।
तथा तथा भूतगणा नृत्यन्ति च हसन्ति च॥ ३५

बाष्कल, उद्धत, उदग्र, उग्रकार्मुक, दुर्द्धर, दुर्मुख तथा बिडालाक्ष—ये तथा अन्य अनेक अत्यन्त बली एवं श्रेष्ठ दैत्य शस्त्र और अस्त्र लेकर दुर्गाकी ओर दौड़ पड़े। देवी दुर्गाने उन्हें देखा और वे लीलापूर्वक हाथोंमें वीणा एवं श्रेष्ठ डमरू लेकर हँसती हुई उन्हें बजाने लगीं। देवी उन वाद्योंको ज्यों-ज्यों बजाती जाती थीं, त्यों-त्यों सभी भूत भी नाचते और हँसते थे॥ ३२—३५॥

ततोऽसुराः शस्त्रधराः समभ्येत्य सरस्वतीम्।
अभ्यघ्नंस्तांश्च जग्राह केशेषु परमेश्वरी॥ ३६
प्रगृह्य केशेषु महासुरांस्तान्
उत्पत्य सिंहात्तु नगस्य सानुम्।
ननर्त वीणां परिवादयन्ती
पपौ च पानं जगतो जनित्री॥ ३७
ततस्तु देव्या बलिनो महासुरा
दोर्दण्डनिर्धूतविशीर्णदर्पाः।
विस्रस्तवस्त्रा व्यसवश्च जाताः
ततस्तु तान् वीक्ष्य महासुरेन्द्रान्॥ ३८
देव्या महौजा महिषासुरस्तु
व्यद्रावयद् भूतगणान् खुराग्रैः।
तुण्डेन पुच्छेन तथोरसाऽन्यान्
निःश्वासवातेन च भूतसंघान्॥ ३९

अब असुर शस्त्र लेकर महासरस्वतीरूपा दुर्गाके पास जाकर उनपर प्रहार करने लगे। पर परमेश्वरीने (तुरंत) उनके बालोंको जोरके साथ पकड़ लिया। उन महासुरोंका केश पकड़कर और फिर सिंहसे उछलकर पर्वत-शृङ्गपर जाकर जगज्जननी दुर्गा वीणा-वादन करती हुई मधुपान करने लगीं। तभी देवीने अपने बाहुदण्डोंसे सभी असुरोंको मारकर उनके घमण्डको चूर कर दिया। उनके वस्त्र शरीरसे खिसक पड़े और वे प्राणरहित हो गये। यह देखकर महाबली महिषासुर अपने खुरके अग्रभागसे, तुण्डसे, पुच्छसे, वक्षःस्थलसे तथा निःश्वास-वायुसे देवीके भूतगणोंको भगाने लगा॥ ३६—३९॥

नादेन चैवाशनिसंनिभेन
विषाणकोट्या त्वपरान् प्रमथ्य।
दुद्राव सिंहं युधि हन्तुकामः
ततोऽम्बिका क्रोधवशं जगाम॥ ४०
ततः स कोपादथ तीक्ष्णशृङ्गः
क्षिप्रं गिरीन् भूमिमशीर्णयच्च।
संक्षोभयंस्तोयनिधीन् घनांश्च
विध्वंसयन् प्राद्रवताथ दुर्गाम्॥ ४१
सा चाथ पाशेन बबन्ध दुष्टं
स चाप्यभूत् क्लिन्नकटः करीन्द्रः।
करं प्रचिच्छेद च हस्तिनोऽग्रं
स चापि भूयो महिषोऽभिजातः॥ ४२
ततोऽस्य शूलं व्यसृजन्मृडानी
स शीर्णमूलो न्यपतत् पृथिव्याम्।
शक्तिं प्रचिक्षेप हुताशदत्तां
सा कुण्ठिताग्रा न्यपतन्महर्षे॥ ४३
चक्रं हरेर्दानवचक्रहन्तुः
क्षिप्तं त्वचक्रत्वमुपागतं हि।
गदां समाविध्य धनेश्वरस्य
क्षिप्ता तु भग्ना न्यपतत् पृथिव्याम्॥ ४४
जलेशपाशोऽपि महासुरेण
विषाणतुण्डाग्रखुरप्रणुन्नः।
निरस्य तत्कोपितया च मुक्तो
दण्डस्तु याम्यो बहुखण्डतां गतः॥ ४५
वज्रं सुरेन्द्रस्य च विग्रहेऽस्य
मुक्तं सुसूक्ष्मत्वमुपाजगाम।
संत्यज्य सिंहं महिषासुरस्य
दुर्गाऽधिरूढा सहसैव पृष्ठम्॥ ४६
पृष्ठस्थितायां महिषासुरोऽपि
पोप्लूयते वीर्यमदान्मृडान्याम्।
सा चापि पद्भ्यां मृदुकोमलाभ्यां
ममर्द तं क्लिन्नमिवाजिनं हि॥ ४७
स मृद्यमानो धरणीधराभो
देव्या बली हीनबलो बभूव।

और अपने बिजलीकी कड़कके समान नाद एवं सींगोंकी नोकसे शेष भूतोंको व्याकुल कर रणक्षेत्रमें सिंहको मारने दौड़ा। इससे अम्बिकाको बड़ा क्रोध हुआ। फिर वह क्रुद्ध महिष अपने नुकीले सींगोंसे जल्दी-जल्दी पर्वतों एवं पृथ्वीको विदीर्ण करने लगा। वह समुद्रको क्षुब्ध करते तथा मेघोंको तितर-बितर करते हुए दुर्गाकी ओर दौड़ा। इसपर उन देवीने उस दुष्टको पाशसे बाँध दिया, पर वह झटसे मदसे भींगे कपोलोंवाला गजराज बन गया। (तब) देवीने उस गजके शुण्डका अगला भाग काट डाला। अब उसने पुनः भैंसेका रूप धारण कर लिया। महर्षि नारदजी! उसके बाद देवीने उसके ऊपर शूल फेंका जो टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने अग्निसे प्राप्त हुई शक्ति फेंकी, किंतु वह भी टूटकर गिर पड़ी॥ ४०—४३॥

दानवसमूहको मारनेवाला विष्णुप्रदत्त चक्र भी फेंके जानेपर व्यर्थ हो गया। देवीने कुबेरद्वारा दी गयी गदा भी घुमाकर फेंकी, पर वह भी भग्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। महिषने वरुणके पाशको भी अपने सींग, थूथना एवं खुरके प्रहारसे विफल कर दिया। फिर कुपित होकर देवीने यमदण्डको छोड़ा, पर उसे भी उसने तोड़कर कई खण्ड-खण्ड कर डाला। उसके शरीरपर देवीद्वारा छोड़ा गया इन्द्रका वज्र भी छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बिखर गया। अब दुर्गाजी सिंहको छोड़कर सहसा महिषासुरकी पीठपर ही चढ़ गयीं। देवीके पीठपर चढ़ जानेपर भी महिषासुर अपने बलके मदसे उछलता रहा। देवी भी अपने मृदुल तथा कोमल चरणोंसे भींगे मृगचर्मके समान उसकी पीठको मर्दन करती गयीं॥ ४४—४७॥

अन्तमें देवीद्वारा कुचला जाता हुआ पर्वताकार बलवान् महिष बलशून्य हो गया। तब देवीने अपने

ततोऽस्य शूलेन बिभेद कण्ठं
तस्मात् पुमान् खड्गधरो विनिर्गतः॥ ४८
निष्क्रान्तमात्रं हृदये पदा तं
आहत्य संगृह्य कचेषु कोपात्।
शिरः प्रचिच्छेद वरासिनाऽस्य
हाहाकृतं दैत्यबलं तदाऽभूत्॥ ४९
सचण्डमुण्डाः समयाः सताराः
सहासिलोम्ना भयकातराक्षाः।
संताड्यमानाः प्रमथैर्भवान्याः
पातालमेवाविविशुर्भयार्ताः ॥ ५०
देव्या जयं देवगणा विलोक्य
स्तुवन्ति देवीं स्तुतिभिर्महर्षे।
नारायणीं सर्वजगत्प्रतिष्ठां
कात्यायनीं घोरमुखीं सुरूपाम्॥ ५१
संस्तूयमाना सुरसिद्धसंघै-
र्निषण्णभूता हरपादमूले।
भूयो भविष्याम्यमरार्थमेव-
मुक्त्वा सुरांस्तान् प्रविवेश दुर्गा॥ ५२

शूलसे उसकी गर्दन काट दीं। उसके कटे कण्ठसे तुरंत तलवार लिये एक पुरुष निकल पड़ा। उसके निकलते ही देवीने उसके हृदयपर चरणसे आघात किया और क्रोधसे उसके बालोंको समेटकर पकड़ लिया तथा अपनी श्रेष्ठ तलवारसे उसका भी सिर काट डाला। उस समय दैत्योंकी सेनामें हाहाकार मच गया। चण्ड, मुण्ड, मय, तार और असिलोमा आदि दैत्य भवानीके प्रमथगणोंद्वारा प्रताडित एवं भयसे उद्विग्न होकर पातालमें प्रविष्ट हो गये। महर्षि नारदजी! इधर देवीकी विजयको देखकर देवतागण स्तुतियोंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्की आधारभूता, क्रोधमुखी, सुरूपा, नारायणी, कात्यायनीदेवीकी स्तुति करने लगे। देवताओं और सिद्धोंद्वारा स्तुति की जाती हुई दुर्गाने 'मैं आप देवताओंके श्रेयके लिये पुनः आविर्भूत होऊँगी'—ऐसा कहकर शिवजीके पादमूलमें लीन हो गयीं॥ ४८—५२॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

देवीके पुनराविर्भाव-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर; कुरुक्षेत्रस्थ पृथूदकतीर्थका प्रसङ्ग; संवरण-तपतीका विवाह

नारद उवाच

पुलस्त्य कथ्यतां तावद् देव्या भूयः समुद्भवः।
महत्कौतूहलं मेऽद्य विस्तराद् ब्रह्मवित्तम॥ १

नारदजीने कहा— ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पुलस्त्यजी! अब आप देवीकी उत्पत्तिके विषयमें मुझसे पुनः विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। उसे सुननेकी मेरी बड़ी अभिलाषा है॥ १॥

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि भूयोऽस्याः सम्भवं मुने।
शुम्भासुरवधार्थाय लोकानां हितकाम्यया॥ २

या सा हिमवतः पुत्री भवेनोढा तपोधना।
उमा नाम्ना च तस्याः सा कोशाज्जाता तु कौशिकी॥ ३

पुलस्त्यजी बोले— मुनिजी! सुनिये; मैं पुनः लोककल्याणकी इच्छासे शुम्भ नामक असुरके वधके लिये देवीकी जो पुनः उत्पत्ति हुई, उसका वर्णन करता हूँ। भगवान् शङ्करने हिमवान्की जिस तपस्विनी कन्या उमासे विवाह किया था, उन्हींके शरीर-कोश (गर्भ)-से उत्पन्न होनेके कारण वे देवी कौशिकी कहलायीं।

सम्भूय विन्ध्यं गत्वा च भूयो भूतगणैर्वृता।
शुम्भं चैव निशुम्भं च वधिष्यति वरायुधैः॥ ४

उत्पन्न होनेपर भूतगणोंसे आवृत हो वे विन्ध्यपर्वतपर गयीं और उन्होंने (अपने) श्रेष्ठ आयुधोंसे शुम्भ तथा निशुम्भ नामके दानवोंका वध किया॥ २—४॥

नारद उवाच

ब्रह्मंस्त्वया समाख्याता मृता दक्षात्मजा सती।
सा जाता हिमवत्पुत्रीत्येवं मे वक्तुमर्हसि॥ ५

यथा च पार्वतीकोशात् समुद्भूता हि कौशिकी।
यथा हतवती शुम्भं निशुम्भं च महासुरम्॥ ६

कस्य चेमौ सुतौ वीरौ ख्यातौ शुम्भनिशुम्भकौ।
एतद् विस्तरतः सर्वं यथावद् वक्तुमर्हसि॥ ७

नारदजीने कहा— ब्रह्मन्! आपने पहले यह बात कही थी कि दक्षकी पुत्री सती ही मरकर फिर हिमवान्‌की पुत्री हुई थीं। (अब) इसे आप विस्तारसे सुनाइये। पार्वतीके शरीर-कोशसे जिस प्रकार वे कौशिकी प्रकट हुईं और फिर उन्होंने शुम्भ तथा निशुम्भ नामके बड़े असुरोंका जैसे वध किया था—इन सभी बातोंको विस्तारसे कहिये। ये शुम्भ और निशुम्भ नामसे विख्यात वीर किसके पुत्र थे, इसका ठीक-ठीक विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ ५—७॥

पुलस्त्य उवाच

एतत्ते कथयिष्यामि पार्वत्याः सम्भवं मुने।
शृणुष्वावहितो भूत्वा स्कन्दोत्पत्तिं च शाश्वतीम्॥ ८

रुद्रः सत्यां प्रणष्टायां ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
निराश्रयत्वमापन्नस्तपस्तप्तुं व्यवस्थितः॥ ९

स चासीद् देवसेनानीर्दैत्यदर्पविनाशनः।
शिवरूपत्वमास्थाय सैनापत्यं समुत्सृजत्॥ १०

ततो निराकृता देवाः सेनानाथेन शम्भुना।
दानवेन्द्रेण विक्रम्य महिषेण पराजिताः॥ ११

पुलस्त्यजी बोले—मुने! (अच्छा,) अब मैं फिर आपसे पार्वतीकी उत्पत्तिके विषयमें वर्णन कर रहा हूँ, आप ध्यान देकर (सम्बद्ध) स्कन्दके जन्मकी शाश्वत (नित्य, सदा विराजनेवाली) कथा सुनें! सतीके देह त्याग कर देनेपर रुद्र भगवान् निराश्रय विधुर हो गये एवं ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए तपस्या करने लगे। वे शङ्करजी (पहले) दैत्योंके दर्पको चूर्ण करनेवाले देवताओंके सेनानी थे। परंतु अब उन्होंने (रुद्र-रूपका त्याग कर) शिव-स्वरूप धारण कर लिया तथा तपमें लगकर सेनापति (स्थायी)-पदका भी परित्याग कर दिया। फिर तो देवताओंके ऊपर उनके सेनापति शिवसे विरहित हो जानेके कारण दानवश्रेष्ठ महिषने बलपूर्वक आक्रमण कर उन्हें परास्त कर दिया॥ ८—११॥

ततो जग्मुः सुरेशानं द्रष्टुं चक्रगदाधरम्।
श्वेतद्वीपे महाहंसं प्रपन्नाः शरणं हरिम्॥ १२

तानागतान् सुरान् दृष्ट्वा ततः शक्रपुरोगमान्।
विहस्य मेघगम्भीरं प्रोवाच पुरुषोत्तमः॥ १३

किं जितास्त्वसुरेन्द्रेण महिषेण दुरात्मना।
येन सर्वे समेत्यैवं मम पार्श्वमुपागताः॥ १४

तद् युष्माकं हितार्थाय यद् वदामि सुरोत्तमाः।
तत्कुरुध्वं जयो येन समाश्रित्य भवेद्धि वः॥ १५

(जब देवसमुदाय पराजित हो गया) तब पराजित हुए देवतालोग शरण-प्राप्तिकी खोजमें देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुके दर्शनार्थ श्वेतद्वीप गये। उस समय भगवान् विष्णु इन्द्र आदि देवताओंको आये हुए देखकर हँसे और मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—मालूम होता है कि आपलोग असुरोंके स्वामी दुरात्मा महिषसे हार गये हैं, जिसके कारण इस प्रकार एक साथ मिलकर मेरे पास आये हैं? श्रेष्ठ देवताओ! अब आपलोगोंकी भलाईके लिये मैं जो बात कहता हूँ, उसे आप सब सुनिये और उसे (यथावत्) आचरण कीजिये। उसके सहारे आपकी निश्चय विजय होगी॥ १२—१५॥

य एते पितरो दिव्यास्त्वग्निष्वात्तेति विश्रुताः।
अमीषां मानसी कन्या मेना नाम्नाऽस्ति देवताः॥ १६

तामाराध्य महातिथ्यां श्रद्धया परयाऽमराः।
प्रार्थयध्वं सतीं मेनां प्रालेयाद्रेरिहार्थतः॥ १७

तस्यां सा रूपसंयुक्ता भविष्यति तपस्विनी।
दक्षकोपाद् यया मुक्तं मलवज्जीवितं प्रियम्॥ १८

सा शङ्करात् स्वतेजोंऽशं जनयिष्यति यं सुतम्।
स हनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं सपदानुगम्॥ १९

तस्माद् गच्छत पुण्यं तत् कुरुक्षेत्रं महाफलम्।
तत्र पृथूदके तीर्थे पूज्यन्तां पितरोऽव्ययाः॥ २०

महातिथ्यां महापुण्ये यदि शत्रुपराभवम्।
जिहासतात्मनः सर्वे इत्थं वै क्रियतामिति॥ २१

पुलस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा वासुदेवेन देवाः शक्रपुरोगमाः।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पप्रच्छुः परमेश्वरम्॥ २२

देवा ऊचुः

कोऽयं कुरुक्षेत्र इति यत्र पुण्यं पृथूदकम्।
उद्भवं तस्य तीर्थस्य भगवान् प्रब्रवीतु नः॥ २३

केयं प्रोक्ता महापुण्या तिथीनामुत्तमा तिथिः।
यस्यां हि पितरो दिव्याः पूज्याऽस्माभिः प्रयत्नतः॥ २४

ततः सुराणां वचनान्मुरारिः कैटभार्दनः।
कुरुक्षेत्रोद्भवं पुण्यं प्रोक्तवांस्तां तिथीमपि॥ २५

श्रीभगवानुवाच

सोमवंशोद्भवो राजा ऋक्षो नाम महाबलः।
कृतस्यादौ समभवदृक्षात् संवरणोऽभवत्॥ २६
स च पित्रा निजे राज्ये बाल एवाभिषेचितः।
बाल्येऽपि धर्मनिरतो मद्भक्तश्च सदाऽभवत्॥ २७
पुरोहितस्तु तस्यासीद् वसिष्ठो वरुणात्मजः।
स चास्याध्यापयामास साङ्गान् वेदानुदारधीः॥ २८
ततो जगाम चारण्यं त्वनध्याये नृपात्मजः।
सर्वकर्मसु निक्षिप्य वसिष्ठं तपसां निधिम्॥ २९

देवगण! जो ये 'अग्निष्वात्त' नामसे प्रसिद्ध दिव्य पितर हैं, उनकी मेना नामकी एक मानसी कन्या है। देववृन्द! आपलोग अत्यन्त श्रद्धासे अमावास्याको सती मेनाकी (यथाविधि) आराधना करें तथा उनसे हिमालयकी पत्नी बननेके लिये प्रार्थना करें। उन्हीं मेनासे (एक) तपस्विनी रूपवती कन्या उत्पन्न होगी, जिसने दक्षके ऊपर कोपकर अपने प्रिय जीवनका मलके समान परित्याग कर दिया था। वे शिवजीके तेजके अंशरूप जिस पुत्रको उत्पन्न करेंगी वह दैत्योंमें श्रेष्ठ महिषको उसकी सेनासहित मार डालेगा॥ १६—१९॥

अतः आपलोग महान् फल देनेवाले, पवित्र कुरुक्षेत्रमें जायँ एवं वहाँ 'पृथूदक' नामके तीर्थमें नित्य ही अग्निष्वात्त नामके पितरोंकी पूजा करें। यदि आपलोग अपने शत्रुकी पराजय चाहते हैं तो सब कुछ छोड़कर अमावास्याको उस परम पवित्र तीर्थमें इसी (निर्दिष्ट) कार्यको सम्पन्न करें॥ २०-२१॥

पुलस्त्यजी बोले— भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि देवताओंने हाथ जोड़कर उन परमात्मासे पूछा—॥ २२॥

देवताओंने पूछा—भगवन्! यह कुरुक्षेत्र तीर्थ कौन है, जहाँ पृथूदक तीर्थ है? आप हमलोगोंको उस तीर्थकी उत्पत्तिके विषयमें बतायें। और, वह पवित्र उत्तम तिथि कौन-सी है जिसमें हम सब दिव्य पितरोंकी पूजा प्रयत्नपूर्वक कर सकें। तब भगवान् विष्णुने देवताओंकी प्रार्थना सुनकर उनसे कुरुक्षेत्रकी पवित्र उत्पत्ति तथा उस उत्तम तिथिका भी वर्णन किया (जिसमें पूजा करनेकी बात कही थी)॥ २३—२५॥

श्रीभगवान्ने कहा— सत्ययुगके प्रारम्भमें सोमवंशमें ऋक्षनामके एक महाबलवान् राजा उत्पन्न हुए। उन ऋक्षसे संवरणकी उत्पत्ति हुई। पिताने उसे बचपनमें ही राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। वह बाल्यकालमें भी सदा धर्मनिष्ठ एवं मेरा भक्त था। वरुणके पुत्र वसिष्ठ उसके पुरोहित थे। उन्होंने उसे अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंको पढ़ाया। एक दिनकी बात है कि अनध्याय (छुट्टी) रहनेपर वह राजपुत्र (संवरण) तपोनिधि वसिष्ठको सभी कार्य सौंपकर वनमें चला गया॥ २६—२९॥

ततो मृगयाव्याक्षेपाद् एकाकी विजनं वनम्।
वैभ्राजं स जगामाथ अथोन्मादनमभ्ययात्॥ ३०

ततस्तु कौतुकाविष्टः सर्वर्तुकुसुमे वने।
अवितृप्तः सुगन्धस्य समन्ताद् व्यचरद् वनम्॥ ३१

स वनान्तं च ददृशे फुल्लकोकनदावृतम्।
कह्लारपद्मकुमुदैः कमलेन्दीवरैरपि॥ ३२

तत्र क्रीडन्ति सततमप्सरोऽमरकन्यकाः।
तासां मध्ये ददर्शाथ कन्यां संवरणोऽधिकाम्॥ ३३

फिर शिकारके लिये व्याक्षिप्त (व्यग्र) वह अकेला ही वैभ्राज नामक निर्जन वनमें पहुँचा। उसके बाद वह उन्मादसे ग्रस्त हो गया। उस वनमें सभी ऋतुओंमें फूल फूलते रहते थे, सुगन्धि भी रहती थी, फिर भी उससे संतृप्त न होनेके कारण वह कुतूहलवश वनमें चारों ओर विचरण करने लगा। वहाँ उसने फूले हुए श्वेत, लाल, पीले कमल, कुमुद एवं नीले कमलोंसे भरे उस वनको देखा। अप्सराएँ एवं देवकन्याएँ वहाँ सदा मनोरञ्जन (मनबहलाव) किया करती थीं। संवरणने उनके बीच एक अत्यन्त सुन्दरी कन्याको देखा॥ ३०—३३॥

दर्शनादेव स नृपः काममार्गणपीडितः।
जातः सा च तमीक्ष्यैव कामबाणातुराऽभवत्॥ ३४

उभौ तौ पीडितौ मोहं जग्मतुः काममार्गणैः।
राजा चलासनो भूम्यां निपपात तुरंगमात्॥ ३५

तमभ्येत्य महात्मानो गन्धर्वाः कामरूपिणः।
सिषिचुर्वारिणाऽभ्येत्य लब्धसंज्ञोऽभवत् क्षणात्॥ ३६

सा चाप्सरोभिरुत्पात्य नीता पितृकुलं निजम्।
ताभिराश्वासिता चापि मधुरैर्वचनाम्बुभिः॥ ३७

उसे देखते ही वह राजा कामदेवके बाणसे पीड़ित (कामसे आशित) हो गया और इसी प्रकार वह कन्या भी उसे देखकर कामबाणसे अधीर (मोहित) हो गयी। कामके बाणोंसे विवश होकर वे दोनों अचेत-से हो गये। राजा घोड़ेकी पीठपर रखे हुए आसनसे खिसककर पृथ्वीपर गिर पड़ा और इच्छाके अनुसार अपना रूप बना लेनेवाले महात्मा गन्धर्वलोग उसके पास जाकर उसे जलसे सींचने लगे। (फिर) वह दूसरे ही क्षण चेतनामें आ गया। तब अप्सराओंने उसे मधुर वचनरूपी जलसे भी आश्वस्त किया और उसे उठाकर उसके पिताके घर ले गयीं॥ ३४—३७॥

स चाप्यारुह्य तुरगं प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम्।
गतस्तु मेरुशिखरं कामचारी यथाऽमरः॥ ३८

यदाप्रभृति सा दृष्टा आर्क्षिणा तपती गिरौ।
तदाप्रभृति नाश्नाति दिवा स्वपिति नो निशि॥ ३९

ततः सर्वविदव्यग्रो विदित्वा वरुणात्मजः।
तपंतीतापितं वीरं पार्थिवं तपसां निधिः॥ ४०

समुत्पत्य महायोगी गगनं रविमण्डलम्।
विवेश देवं तिग्मांशुं ददर्श स्यन्दने स्थितम्॥ ४१

फिर वह राजा (अपने) घोड़ेपर चढ़कर (अपने) श्रेष्ठ पैठण नगर इस प्रकार चला गया, जैसे कोई इच्छाके अनुसार चलनेवाला देवता (सरलतासे) मेरुशृङ्गपर चला जाय। ऋक्षके पुत्र संवरणने पर्वतपर देवकन्या तपतीको जबसे अपनी आँखोंसे देखा था, तबसे वह दिनमें न तो भोजन करता था और न रात्रिमें सोता ही था। फिर सब कुछ जाननेवाले एवं शान्त तथा तपस्याके निधिस्वरूप वरुणके पुत्र महायोगी वसिष्ठ उस वीर राजपुत्रको तपतीके कारण संतापमें पड़े देखकर आकाशमें ऊपर जाकर (मध्य आकाशमें स्थित) सूर्यमण्डलमें प्रवेश किया तथा वहाँ रथपर बैठे हुए तेज किरणवाले सूर्यदेवका उसने दर्शन किया॥ ३८—४१॥

तं दृष्ट्वा भास्करं देवं प्रणमद् द्विजसत्तमः।
प्रतिप्रणमितश्चासौ भास्करेणाविशद् रथे॥ ४२

ज्वलज्जटाकलापोऽसौ दिवाकरसमीपगः।
शोभते वारुणिः श्रीमान् द्वितीय इव भास्करः॥ ४३

द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठने सूर्यदेवको देखकर प्रणाम किया। फिर वे सूर्यके द्वारा प्रत्यभिवादन (प्रणामके बदले प्रणाम) किये जानेपर उनके समीप जाकर रथमें बैठ गये। सूर्यदेवके पास रथपर बैठे हुए अग्नि-शिखाके समान चमचमाती जटावाले वरुणके पुत्र वसिष्ठ दूसरे

ततः सम्पूजितोऽर्घाद्यैर्भास्करेण तपोधनः।
पृष्टश्चागमने हेतुं प्रत्युवाच दिवाकरम्॥ ४४

समायातोऽस्मि देवेश याचितुं त्वां महाद्युते।
सुतां संवरणस्यार्थे तस्य त्वं दातुमर्हसि॥ ४५

सूर्यके समान सुशोभित होने लगे। फिर भगवान् सूर्यने उन तपस्वी (अतिथि)-का अर्घ्य आदिसे (सत्कार) किया; उसके बाद उनसे उनके आनेका कारण पूछा। तब तपोधन वसिष्ठजीने सूर्यसे कहा—अति तेजस्वी देवेश! मैं राजपुत्र संवरणके लिये आपसे कन्याकी याचना करने आया हूँ। उसे आप (कृपया) प्रदान करें॥ ४२—४५॥

ततो वसिष्ठाय दिवाकरेण
निवेदिता सा तपती तनूजा।
गृहागताय द्विजपुंगवाय
राज्ञोऽर्थतः संवरणस्य देवाः॥ ४६
सावित्रिमादाय ततो वसिष्ठः
स्वमाश्रमं पुण्यमुपाजगाम।
सा चापि संस्मृत्य नृपात्मजं तं
कृताञ्जलिर्वारुणिमाह देवी॥ ४७

[भगवान् विष्णु कहते हैं—] देवगण! उसके बाद सूर्यदेव घरपर आये और ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठको राजा संवरणके लिये (अपनी) तपती नामकी उस कन्याको समर्पित कर दिया। फिर सूर्यपुत्रीको साथ लेकर वसिष्ठ अपने पवित्र आश्रममें आ गये। वह कन्या उस राजपुत्रका स्मरण कर और हाथ जोड़कर ऋषि वसिष्ठसे बोली— ॥ ४६-४७॥

तपत्युवाच

ब्रह्मन् मया खेदमुपेत्य यो हि
सहाप्सरोभिः परिचारिकाभिः।
दृष्टो ह्यरण्येऽमरगर्भतुल्यो
नृपात्मजो लक्षणतोऽभिजाने॥ ४८
पादौ शुभौ चक्रगदासिचिह्नौ
जङ्घे तथोरू करिहस्ततुल्यौ।
कटिस्तथा सिंहकटिर्यथैव
क्षामं च मध्यं त्रिबलीनिबद्धम्॥ ४९
ग्रीवाऽस्य शङ्खाकृतिमादधाति
भुजौ च पीनौ कठिनौ सुदीर्घौ।
हस्तौ तथा पद्मदलोद्भवाङ्कौ
छत्राकृतिस्तस्य शिरो विभाति॥ ५०
नीलाश्च केशाः कुटिलाश्च तस्य
कर्णौ समांसौ सुसमा च नासा।
दीर्घाश्च तस्याङ्गुलयः सुपर्वाः
पद्भ्यां कराभ्यां दशनाश्च शुभ्राः॥ ५१

तपतीने कहा— वसिष्ठजी! मैंने वनमें चिन्तामें विभोर होकर अपनी सेविकाओं तथा अप्सराओंके साथ देवपुत्रके समान (सौम्य सुन्दर) जिस व्यक्तिको देखा था, उसे मैं लक्षणोंसे राजकुमार समझ रही हूँ; क्योंकि उसके दोनों शुभ चरणोंमें चक्र, गदा और खड्गके चिह्न हैं। उसकी जाँघें तथा ऊरु दोनों हाथीकी सूँड़के समान हैं। उसकी कटि सिंहकी कटिके समान है तथा त्रिवलीयुक्त—तीन बलोंवाला उसका उदरभाग बहुत पतला है। उसकी गर्दन शङ्खके समान है, दोनों भुजाएँ मोटी, कठोर और लम्बी हैं, दोनों करतल कमल-चिह्नसे अङ्कित हैं तथा उसका मस्तक छत्रके समान सुशोभित है। उसके बाल काले तथा घुँघराले हैं, दोनों कर्ण मांसल हैं, नासिका सुडौल है, उसके हाथों एवं पैरोंकी अँगुलियाँ सुन्दर पर्वयुक्त (पोरवाली) और लम्बी हैं और उसके दाँत श्वेत हैं॥ ४८—५१॥

समुन्नतः षड्भिरुदारवीर्य-
स्त्रिभिर्गभीरस्त्रिषु च प्रलम्बः।
रक्तस्तथा पञ्चसु राजपुत्रः
कृष्णश्चतुर्भिस्त्रिभिरानतोऽपि॥ ५२

द्वाभ्यां च शुक्लः सुरभिश्चतुर्भिः
दृश्यन्ति पद्मानि दशैव चास्य।
वृतः स भर्ता भगवन् हि पूर्वं
तं राजपुत्रं भुवि संविचिन्त्य॥ ५३

[तपतीने आगे कहा—] उस महापराक्रमी राजपुत्रके ललाट, कंधे, कपोल (गाल), ग्रीवा, कमर तथा जाँघें—ये छः अङ्ग ऊँचे (सुडौल) हैं, नाभि, मध्य तथा हँसुली—ये तीन अङ्ग गम्भीर हैं और उसकी दोनों भुजाएँ तथा अण्डकोष—ये तीन अङ्ग लम्बे हैं। दोनों नेत्र, अधर, दोनों हाथ, दोनों पैर तथा नख—ये पाँचों लाल वर्णवाले हैं, केश, पक्ष्म (बरौनी) और कनीनिका (आँखकी पुतली)—ये चार अङ्ग कृष्ण हैं, दोनों भौंहें, आँखके दोनों कोर तथा दोनों कान झुके हुए हैं, दाँत तथा नेत्र दो अङ्ग श्वेत वर्णके हैं, केश, मुख तथा

ददस्व मां नाथ तपस्विनेऽस्मै
गुणोपपन्नाय समीहिताय।
नेहान्यकामां प्रवदन्ति सन्तो
दातुं तथान्यस्य विभो क्षमस्व॥ ५४

दोनों कपोल—ये चार अङ्ग सुगन्धवाले हैं। उनके नेत्र, मुख-विवर, मुखमण्डल, जिह्वा, ओठ, तालु, स्तन, नख, हाथ और पैर—ये दस अङ्ग कमलके समान हैं। भगवन्! मैंने खूब सोच-विचारकर पृथ्वीपर उस राजपुत्रको पहले ही पतिरूपसे वरण कर लिया है। विभो! मुझे क्षमा करें। आप गुणोंसे युक्त (मेरी) इच्छाके अनुकूल तथा वाञ्छित उस तपस्वीको मुझे दे दें; क्योंकि सन्तोंका यह कहना है कि अन्यकी कामना करनेवाली कन्याको किसी औरको नहीं देना चाहिये॥ ५२—५४॥

देवदेव उवाच

इत्येवमुक्तः सवितुश्च पुत्र्या
ऋषिस्तदा ध्यानपरो बभूव।
ज्ञात्वा च तत्रार्कसुतां सकामां
मुदा युतो वाक्यमिदं जगाद॥ ५५
स एव पुत्रि नृपतेस्तनूजो
दृष्टः पुरा कामयसे यमद्य।
स एव चायाति ममाश्रमं वै
ऋक्षात्मजः संवरणो हि नाम्ना॥ ५६
अथाजगाम स नृपस्य पुत्र-
स्तमाश्रमं ब्राह्मणपुंगवस्य।
दृष्ट्वा वसिष्ठं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
स्थितस्त्वपश्यत् तपतीं नरेन्द्रः॥ ५७
दृष्ट्वा च तां पद्मविशालनेत्रां
तां पूर्वदृष्टामिति चिन्तयित्वा।
पप्रच्छ केयं ललना द्विजेन्द्र
स वारुणिः प्राह नराधिपेन्द्रम्॥ ५८
इयं विवस्वद्दुहिता नरेन्द्र
नाम्ना प्रसिद्धा तपती पृथिव्याम्।
मया तवार्थाय दिवाकरोऽर्थितः
प्रादान्मया त्वाश्रममानिनिन्ये॥ ५९
तस्मात् समुत्तिष्ठ नरेन्द्र देव्याः
पाणिं तपत्या विधिवद् गृहाण।
इत्येवमुक्तो नृपतिः प्रहृष्टो
जग्राह पाणिं विधिवत् तपत्याः॥ ६०
सा तं पतिं प्राप्य मनोऽभिरामं
सूर्यात्मजा शक्रसमप्रभावम्।
रराम तन्वी भवनोत्तमेषु
यथा महेन्द्रं दिवि दैत्यकन्या॥ ६१

देवोंके देव [भगवान् विष्णु] ने कहा—फिर सूर्यपुत्री तपतीके ऐसा कहनेपर वसिष्ठजी ध्यानमें मग्न हो गये और तपतीको उस कुमारमें आसक्त समझकर प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने यह बात कही—पुत्रि! जिस राजपुत्रका तुमने पहले दर्शन किया था और जिसकी कामना तुम आज कर रही हो, वह ऋक्षका पुत्र (राजा) संवरण ही है। वह आज मेरे आश्रममें आ रहा है। उसके पश्चात् वह राजकुमार भी ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीके आश्रममें आया। उस राजाने वसिष्ठको देखकर सिर झुकाकर प्रणाम किया; बैठनेपर तपतीको भी देखा। खिले कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली उस तपतीको देखकर उसने सोचा कि इसे मैंने पहले भी देखा है। (तब) उसने पूछा—ब्राह्मणश्रेष्ठ! यह सुन्दर स्त्री कौन है? इसपर वसिष्ठजीने राजश्रेष्ठ संवरणसे कहा—॥ ५५—५८॥

'नरेन्द्र! पृथ्वीमें तपती नामसे प्रसिद्ध यह सूर्यकी पुत्री है। मैंने तुम्हारे ही लिये सूर्यसे इसकी याचना की थी और उन्होंने तुम्हारे लिये इसे मुझे सौंपा था। मैं तुम्हारे लिये ही इसे आश्रममें लाया हूँ; अतः नरेन्द्र! उठो एवं विधिवत् इस सूर्यपुत्री तपतीका पाणिग्रहण करो।' [वसिष्ठजीके]—ऐसा कहनेपर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तपतीका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। सूर्यकी तनया तपती भी इन्द्रके तुल्य प्रभावशाली उस सुन्दर पतिको पाकर [अत्यन्त] प्रसन्न हुई। वह उत्तम महलोंमें उसके साथ इस प्रकार विहार करने लगी, जैसे इन्द्रको पाकर स्वर्गमें शची विहार करती है॥ ५९—६१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

कुरुकी कथा, कुरुक्षेत्रका निर्माण-प्रसङ्ग और पृथूदक तीर्थका माहात्म्य

देवदेव उवाच

तस्यां तपत्यां नरसत्तमेन
जातः सुतः पार्थिवलक्षणस्तु।
स जातकर्मादिभिरेव संस्कृतो
विवर्द्धताज्येन हुतो यथाऽग्निः॥ १
कृतोऽस्य चूडाकरणश्च देवा
विप्रेण मित्रावरुणात्मजेन।
नवाब्दिकस्य व्रतबन्धनं च
वेदे च शास्त्रे विधिपारगोऽभूत्॥ २
ततश्चतुःषड्भिरपीह वर्षैः
सर्वज्ञतामभ्यगमत् ततोऽसौ।
ख्यातः पृथिव्यां पुरुषोत्तमोऽसौ
नाम्ना कुरुः संवरणस्य पुत्रः॥ ३
ततो नरपतिर्दृष्ट्वा धार्मिकं तनयं शुभम्।
दारक्रियार्थमकरोद् यत्नं शुभकुले ततः॥ ४
सौदामिनीं सुदाम्नस्तु सुतां रूपाधिकां नृपः।
कुरोरर्थाय वृतवान् स प्रादात् कुरवेऽपि ताम्॥ ५

स तां नृपसुतां लब्ध्वा धर्मार्थावविरोधयन्।
रेमे तन्व्या सह तया पौलोम्या मघवानिव॥ ६

ततो नरपतिः पुत्रं राज्यभारक्षमं बली।
विदित्वा यौवराज्याय विधानेनाभ्यषेचयत्॥ ७

ततो राज्येऽभिषिक्तस्तु कुरुः पित्रा निजे पदे।
पालयामास स महीं पुत्रवच्च स्वयं प्रजाः॥ ८
स एव क्षेत्रपालोऽभूत् पशुपालः स एव हि।
स सर्वपालकश्चासीत् प्रजापालो महाबलः॥ ९

ततोऽस्य बुद्धिरुत्पन्ना कीर्तिर्लोके गरीयसी।
यावत्कीर्तिः सुसंस्था हि तावद्वासः सुरैः सह॥ १०

देवोंके देव [भगवान् विष्णु]-ने कहा—उस तपतीके गर्भसे मनुष्योंमें श्रेष्ठ संवरणके द्वारा राजलक्षणोंवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह जातकर्म आदि संस्कारोंसे संस्कृत होकर इस प्रकार बढ़ने लगा जैसे घीकी आहुति डालनेसे अग्नि बढ़ती है। देवगण! मित्रावरुणके पुत्र वसिष्ठजीने उसका (यथासमय) चौल-संस्कार कराया। नवें वर्षमें उसका उपनयन-संस्कार हुआ। फिर वह (श्रम-क्रमसे अध्ययन कर) वेद तथा शास्त्रोंका पारगामी विद्वान् हो गया एवं चौबीस वर्षोंमें तो फिर वह सर्वज्ञ-सा हो गया। पुरुषश्रेष्ठ संवरणका वह पुत्र इस भूभागपर 'कुरु' नामसे प्रसिद्ध हुआ। तब राजा (उस) कल्याणकारी अपने धार्मिक पुत्रको (उपयुक्त अवस्थामें आये हुए) देखकर किसी उत्तम कुलमें उसके विवाहका यत्न करने लगे॥ १—४॥

राजाने कुरुके लिये सुन्दर स्वरूपवाली सुदामाकी पुत्री सौदामिनीको चुना और सुदामा राजाने भी उसे कुरुको विधिवत् प्रदान कर दिया। उस राजकुमारीको पाकर वह (कुरु) धर्म और अर्थका (यथावत्) पालन करते हुए उस तन्वङ्गी अर्थात् कृशाङ्गीके साथ गार्हस्थ्य धर्ममें वैसे ही रहने लगा, जैसे पौलोमी (शची)-के साथ इन्द्र दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करते (हुए रहते) हैं। उसके बाद बलवान् राजाने राज्य-भारके वहन करनेमें—राज्यकार्य संचालनमें—उसे समर्थ जानकर विधिपूर्वक युवराज-पदपर अभिषिक्त कर दिया। तब पिताके द्वारा अपने राज्यपदपर अभिषिक्त होकर कुरु औरस पुत्रकी भाँति अपनी प्रजाका और पृथ्वीका पालन करने लगे॥ ५—८॥

(प्रजा और पृथ्वीके पालनमें लगे) वे राजकुमार कुरु 'क्षेत्रपाल' तथा 'पशुपाल' भी हुए! महाबली वे सर्वपालक एवं प्रजापालक भी हुए। फिर उन्होंने सोचा कि संसारमें यश ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है (उसे प्राप्त करना चाहिये); क्योंकि जबतक संसारमें कीर्ति भलीभाँति स्थित रहती है, तबतक मनुष्य देवताओंके साथ निवास करता है।

स त्वेवं नृपतिश्रेष्ठो याथातथ्यमवेक्ष्य च।
विचचार महीं सर्वां कीर्त्यर्थं तु नराधिपः॥ ११
ततो द्वैतवनं नाम पुण्यं लोकेश्वरो बली।
तदासाद्य सुसंतुष्टो विवेशाभ्यन्तरं ततः॥ १२

इस प्रकार यथार्थताका विचार कर वे राजा यश-प्राप्तिके लिये समस्त पृथ्वीपर विचरण करने लगे। उसी सिलसिलेमें वे बलशाली राजा पवित्र द्वैतवन पहुँचे एवं पूर्ण सुसंतुष्ट होकर उसके भीतर प्रविष्ट हो गये॥ ९—१२॥

तत्र देवीं ददर्शाथ पुण्यां पापविमोचनीम्।
प्लक्षजां ब्रह्मणः पुत्रीं हरिजिह्वां सरस्वतीम्॥ १३
सुदर्शनस्य जननीं ह्रदं कृत्वा सुविस्तरम्।
स्थितां भगवतीं कूले तीर्थकोटिभिराप्लुताम्॥ १४
तस्यास्तज्जलमीक्ष्यैव स्नात्वा प्रीतोऽभवन्नृपः।
समाजगाम च पुनर्ब्रह्मणो वेदिमुत्तराम्॥ १५
समन्तपञ्चकं नाम धर्मस्थानमनुत्तमम्।
आसमन्ताद् योजनानि पञ्च पञ्च च सर्वतः॥ १६

[प्रविष्ट होनेके बाद राजाने] वहाँपर पापनाशिनी उस पवित्र सरस्वती नदीको देखा, जो पर्कटि (पाकड़) वृक्षसे उत्पन्न ब्रह्माकी पुत्री है। वह हरिजिह्वा, ब्रह्मपुत्री और सुदर्शन-जननी नामसे भी प्रसिद्ध है। वह सुविस्तृत ह्रद (बड़ा ताल या झील)-में स्थित है। उसके तटपर करोड़ों तीर्थ हैं। उसके जलको देखते ही राजाको उसमें स्नान करनेकी इच्छा हुई। उन्होंने स्नान किया और बड़े प्रसन्न हुए। फिर वे उत्तर दिशामें स्थित ब्रह्माकी समन्तपञ्चक वेदीपर गये। वह समन्तपञ्चक नामक धर्मस्थान चारों ओर पाँच-पाँच योजनतक फैला हुआ है॥ १३—१६॥

देवा ऊचुः

कियन्त्यो वेदयः सन्ति ब्रह्मणः पुरुषोत्तम।
येनोत्तरतया वेदिर्गदिता सर्वपञ्चका*॥ १७

देवताओंने पूछा— पुरुषोत्तम! ब्रह्माकी कितनी वेदियाँ हैं? क्योंकि आपने इस सर्वपञ्चक वेदीको उत्तर वेदी (अन्य दिशा-सापेक्ष शब्द 'उत्तर'से विशिष्ट) कहा है॥ १७॥

देवदेव उवाच

वेदयो लोकनाथस्य पञ्च धर्मस्य सेतवः।
यासु यष्टं सुरेशेन लोकनाथेन शम्भुना॥ १८
प्रयागो मध्यमा वेदिः पूर्वा वेदिर्गयाशिरः।
विरजा दक्षिणा वेदिरनन्तफलदायिनी॥ १९
प्रतीची पुष्करा वेदिस्त्रिभिः कुण्डैरलंकृता।
समन्तपञ्चका चोक्ता वेदिरेवोत्तराऽव्यया॥ २०
तममन्यत राजर्षिरिदं क्षेत्रं महाफलम्।
करिष्यामि कृषिष्यामि सर्वान् कामान् यथेप्सितान्॥ २१

[भगवान् विष्णु बोले]— लोकोंके स्वामी ब्रह्माकी पाँच वेदियाँ धर्म-सेतुके सदृश हैं, जिनपर देवाधिदेव विश्वेश्वर श्रीशम्भुने यज्ञ किया था। प्रयाग मध्यवेदी है, गया पूर्ववेदी और अनन्त फलदायिनी जगन्नाथपुरी दक्षिणवेदी है। (इसी प्रकार) तीन कुण्डोंसे अलंकृत पुष्करक्षेत्र पश्चिम वेदी है और अव्यय समन्तपञ्चक उत्तर वेदी है। राजर्षि कुरुने सोचा कि इस (समन्तपञ्चक) क्षेत्रको महाफलदायी करूँगा (बनाऊँगा) और यहीं समस्त मनोरथों (कामनाओं)-की खेती करूँगा॥ १८—२१॥

इति संचिन्त्य मनसा त्यक्त्वा स्यन्दनमुत्तमम्।
चक्रे कीर्त्यर्थमतुलं संस्थानं पार्थिवर्षभः॥ २२

अपने मनमें इस प्रकार विचारकर वे राजाओंमें शिरोमणि कुरु रथसे उतर पड़े एवं उन्होंने अपनी कीर्तिके लिये अनुपम स्थानका निर्माण किया। उन

* समन्तपञ्चक और सर्वपञ्चक समानार्थी शब्द हैं; क्योंकि 'सम' और सर्व दोनों सर्ववाची शब्द हैं, अतः दोनों शब्दोंका अर्थ एक ही है। इसमें पाठभेदसे भ्रम नहीं होना चाहिये।

कृत्वा सीरं स सौवर्णं गृह्य रुद्रवृषं प्रभुः।
पौण्ड्रकं याम्यमहिषं स्वयं कर्षितुमुद्यतः॥ २३

तं कर्षन्तं नरवरं समभ्येत्य शतक्रतुः।
प्रोवाच राजन् किमिदं भवान् कर्तुमिहोद्यतः॥ २४

राजाब्रवीत् सुरवरं तपः सत्यं क्षमां दयाम्।
कृषामि शौचं दानं च योगं च ब्रह्मचारिताम्॥ २५

तस्योवाच हरिर्देवः कस्माद्बीजो नरेश्वर।
लब्धोऽष्टाङ्गेति सहसा अवहस्य गतस्ततः॥ २६

गतेऽपि शक्रे राजर्षिरहन्यहनि सीरधृक्।
कृषतेऽन्यान् समन्ताच्च सप्तक्रोशान् महीपतिः॥ २७

ततोऽहमब्रुवं गत्वा कुरो किमिदमित्यथ।
तदाऽष्टाङ्गं महाधर्मं समाख्यातं नृपेण हि॥ २८

ततो मयाऽस्य गदितं नृप बीजं क्व तिष्ठति।
स चाह मम देहस्थं बीजं तमहमब्रुवम्।
देह्यहं वापयिष्यामि सीरं कृषतु वै भवान्॥ २९

ततो नृपतिना बाहुर्दक्षिणः प्रसृतः कृतः।
प्रसृतं तं भुजं दृष्ट्वा मया चक्रेण वेगतः॥ ३०

सहस्रधा ततश्छिद्य दत्तो युष्माकमेव हि।
ततः सव्यो भुजो राज्ञा दत्तश्छिन्नोऽप्यसौ मया॥ ३१

तथैवोरुयुगं प्रादान्मया छिन्नौ च तावुभौ।
ततः स मे शिरः प्रादात् तेन प्रीतोऽस्मि तस्य च।
वरदोऽस्मीत्यथेत्युक्ते कुरुर्वरमयाचत॥ ३२

कुरुरुवाच

यावदेतन्मया कृष्टं धर्मक्षेत्रं तदस्तु च।
स्नातानां च मृतानां च महापुण्यफलं त्विह॥ ३३

उपवासं च दानं च स्नानं जप्यं च माधव।
होमयज्ञादिकं चान्यच्छुभं वाप्यशुभं विभो॥ ३४

त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश शङ्खचक्रगदाधर।
अक्षयं प्रवरे क्षेत्रे भवत्वत्र महाफलम्॥ ३५

तथा भवान् सुरैः सार्धं समं देवेन शूलिना।
वस त्वं पुण्डरीकाक्ष मन्नामव्यञ्जकेऽच्युत।
इत्येवमुक्तस्तेनाहं राज्ञा बाढमुवाच तम्॥ ३६

राजाने सुवर्णमय हल बनवाकर उसमें शङ्करके बैल एवं यमराजके पौण्ड्रक नामक भैंसेको नाँधकर स्वयं जोतनेके लिये तैयार हुए। इसपर इन्द्रने उनके पास जाकर कहा—राजन्! आप यहाँ यह क्या करनेके लिये उद्यत हुए हैं? राजा बोले—मैं यहाँ तप, सत्य, क्षमा, दया, शौच, दान, योग और ब्रह्मचर्य—इन अष्टाङ्गोंकी खेती कर रहा हूँ॥ २२—२५॥

इसपर इन्द्र उनसे बोले—नरेश्वर! आपने (कृषिके लिये साधनभूत) हल और बीज कहाँसे प्राप्त किये हैं? यह कहते हुए उपहास कर इन्द्र वहाँसे शीघ्र ही चले गये। इन्द्रके चले जानेपर भी राजा प्रतिदिन हल लेकर चारों ओर सात कोसोंतक पृथ्वी जोतते रहे। तब मैंने (विष्णुने) उनसे जाकर कहा—कुरु! तुम यह क्या कर रहे हो? (इसपर) राजाने कहा—मैं (पूर्वोक्त) अष्टाङ्ग-महाधर्मोंकी खेती कर रहा हूँ। फिर मैंने उनसे पूछा—राजन्! बीज कहाँ है? राजाने कहा—बीज मेरे शरीरमें है। मैंने उनसे कहा—उसे मुझे दे दो। मैं (उसे) बोऊँगा, तुम हल चलाओ। तब राजाने अपना दाहिना हाथ फैला दिया। फैलाये हुए हाथको देखकर मैंने चक्रसे शीघ्र ही उसके हजारों टुकड़े कर डाले और उन टुकड़ोंको तुम देवताओंको दे दिया। उसके बाद राजाने वाम बाहु दिया और उसे भी मैंने काट दिया। इसी प्रकार उसने दोनों ऊरुओंको दिया। उन दोनोंको भी मैंने काट दिया। तब उसने अपना मस्तक दिया, जिससे मैं उसके ऊपर प्रसन्न हो गया और कहा—तुम्हें मैं वर दूँगा। मेरे ऐसा कहनेपर कुरुने (मुझसे) वर माँगा—॥ २६—३२॥

कुरुने कहा—जितने स्थानको मैंने जोता है, वह धर्मक्षेत्र हो जाय और यहाँ स्नान करनेवालों एवं मरनेवालोंको महापुण्यकी प्राप्ति हो। माधव! विभो! शङ्खचक्रगदाधारी हृषीकेश! यहाँ किये गये उपवास, स्नान, दान, जप, हवन, यज्ञ आदि तथा अन्य शुभ या अशुभ कर्म भी इस श्रेष्ठ क्षेत्रमें आपकी कृपासे अक्षय एवं महान् फल देनेवाले हों तथा हे पुण्डरीकाक्ष! हे अच्युत! मेरे नामके व्यञ्जक (प्रकाशक) इस कुरुक्षेत्रमें आप सभी देवताओं एवं शिवजीके साथ निवास करें। राजाके ऐसा कहनेपर मैंने उनसे कहा—बहुत

तथा च त्वं दिव्यवपुर्भव भूयो महीपते।
तथाऽन्तकाले मामेव लयमेष्यसि सुव्रत॥ ३७
कीर्तिश्च शाश्वती तुभ्यं भविष्यति न संशयः।
तत्रैव याजका यज्ञान् यजिष्यन्ति सहस्रशः॥ ३८
तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं ददौ स पुरुषोत्तमः।
यक्षं च चन्द्रनामानं वासुकिं चापि पन्नगम्॥ ३९
विद्याधरं शङ्कुकर्णं सुकेशिं राक्षसेश्वरम्।
अजावनं च नृपतिं महादेवं च पावकम्॥ ४०
एतानि सर्वतोऽभ्येत्य रक्षन्ति कुरुजाङ्गलम्।
अमीषां बलिनोऽन्ये च भृत्याश्चैवानुयायिनः॥ ४१
अष्टौ सहस्राणि धनुर्धराणां
ये वारयन्तीह सुदुष्कृतान् वै।
स्नातुं न यच्छन्ति महोग्ररूपा-
स्त्वन्यस्य भूताः सचराचराणाम्॥ ४२
तस्यैव मध्ये बहुपुण्य उक्तः
पृथूदकः पापहरः शिवश्च।
पुण्या नदी प्राङ्मुखतां प्रयाता
यत्रौघयुक्तस्य शुभा जलाढ्या॥ ४३
पूर्वं प्रजेयं प्रपितामहेन
सृष्टा समं भूतगणैः समस्तैः।
मही जलं वह्निसमीरमेव
खं त्वेवमादौ विबभौ पृथूदकः॥ ४४
तथा च सर्वाणि महार्णवानि
तीर्थानि नद्यः स्रवणाः सरांसि।
संनिर्मितानीह महाभुजेन
तच्चैक्यमागात् सलिलं महीषु॥ ४५

देवदेव उवाच

सरस्वतीदृषद्वत्योरन्तरे कुरुजाङ्गले।
मुनिप्रवरमासीनं पुराणं लोमहर्षणम्।
अपृच्छन्त द्विजवराः प्रभावं सरसस्तदा॥ ४६
प्रमाणं सरसो ब्रूहि तीर्थानां च विशेषतः।
देवतानां च माहात्म्यमुत्पत्तिं वामनस्य च॥ ४७
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां रोमहर्षसमन्वितः।
प्रणिपत्य पुराणर्षिरिदं वचनमब्रवीत्॥ ४८

अच्छा, ऐसा ही होगा। राजन्! तुम पुनः दिव्य शरीरवाले हो जाओ तथा हे सुव्रत! (दृढ़तासे व्रतका सुष्टु पालन करनेवाले) अन्तकालमें तुम मुझमें ही लीन हो जाओगे॥ ३३—३७॥

[भगवान् विष्णुने आगे कहा—] निःसंदेह तुम्हारी कीर्ति सदा रहनेवाली होगी। यहाँपर यज्ञ करनेवाले व्यक्ति (यजमान) यज्ञ करेंगे। फिर, उस क्षेत्रकी रक्षा करनेके लिये उन पुरुषोत्तमभगवान्ने राजाको चन्द्र नामक यक्ष, वासुकि नामक सर्प, शङ्कुकर्ण नामक विद्याधर, सुकेशी नामक राक्षसेश्वर, अजावन नामक राजा और महादेव नामक अग्निको दे दिया। ये सभी तथा इनके अन्य बली भृत्य एवं अनुयायी वहाँ आकर कुरुजाङ्गलकी सब ओरसे रक्षा करते हैं॥ ३८—४१॥

आठ हजार धनुषधारी, जो पापियोंको यहाँसे हटाते रहते हैं, वे उग्र रूप धारणकर चराचरके दूसरे भूतगण (पापियों)-को स्नान नहीं करने देते। उसी (कुरुजाङ्गल)-के मध्य पाप दूर करनेवाला एवं अति पवित्र कल्याणकारी पृथूदक (पोहोआ) नामक तीर्थ है, जहाँ शुभ जलसे पूर्ण एक पवित्र नदी पूर्वकी ओर बहती है। इसे प्रपितामह ब्रह्माने सृष्टिके आदिमें पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और आकाशादि समस्त भूतोंके साथ ही रचा था, महाबाहु ब्रह्माने पृथ्वीपर जिन महासमुद्रों, तीर्थों, नदियों, स्रोतों एवं सरोवरोंकी रचना की उन सभीके जल उसमें एकत्र प्राप्त हैं॥ ४२—४५॥

[यहाँसे कुरुक्षेत्र और उसके सरोवरका माहात्म्य कहते हैं—]

देवदेव भगवान् विष्णु बोले—पहले समयमें ब्राह्मणोंने सरस्वती और दृषद्वती (घग्गर)-के बीचमें स्थित कुरुक्षेत्रमें आसीन मुनिप्रवर वृद्ध लोमहर्षणसे वहाँ स्थित सरोवरकी महिमा पूछी और इस सरोवरके विस्तार, विशेषतः तीर्थों और देवताओंके माहात्म्य एवं वामनके प्रादुर्भावकी कथा कहनेकी प्रार्थना की। उनके इस वचनको सुनकर रोमाञ्चित होते हुए पौराणिक ऋषि लोमहर्षण उन्हें प्रणाम कर (फिर) इस प्रकार बोले—॥ ४६—४८॥

लोमहर्षण उवाच

ब्रह्माणमग्र्यं कमलासनस्थं
विष्णुं तथा लक्ष्मिसमन्वितं च।
रुद्रं च देवं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
तीर्थं महद् ब्रह्मसरः प्रवक्ष्ये॥ ४९

रन्तुकादौजसं यावत् पावनाच्च चतुर्मुखम्।
सरः संनिहितं प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वमेव तु॥ ५०

कलिद्वापरयोर्मध्ये व्यासेन च महात्मना।
सरःप्रमाणं यत्प्रोक्तं तच्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः॥ ५१

विश्वेश्वरादस्थिपुरं तथा कन्या जरद्गवी।
यावदोघवती प्रोक्ता तावत्संनिहितं सरः॥ ५२

मया श्रुतं प्रमाणं यत् पठ्यमानं तु वामने।
तच्छृणुध्वं द्विजश्रेष्ठाः पुण्यं वृद्धिकरं महत्॥ ५३

विश्वेश्वराद् देववरो नृपावनात् सरस्वती।
सरः संनिहितं ज्ञेयं समन्तादर्धयोजनम्॥ ५४

एतदाश्रित्य देवाश्च ऋषयश्च समागताः।
सेवन्ते मुक्तिकामार्थं स्वर्गार्थं चापरे स्थिताः॥ ५५

ब्रह्मणा सेवितमिदं सृष्टिकामेन योगिना।
विष्णुना स्थितिकामेन हरिरूपेण सेवितम्॥ ५६

रुद्रेण च सरोमध्यं प्रविष्टेन महात्मना।
सेव्य तीर्थं महातेजाः स्थाणुत्वं प्राप्तवान् हरः॥ ५७

आद्यैषा ब्रह्मणो वेदिस्ततो रामह्रदः स्मृतः।
कुरुणा च यतः कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्॥ ५८

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं
यदन्तरं रामह्रदाच्चतुर्मुखम्।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥ ५९

लोमहर्षणजी बोले—सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले कमलासन ब्रह्मा, लक्ष्मीके सहित विष्णु और महादेव रुद्रको सिर झुकाकर प्रणाम करके मैं महान् ब्रह्मसर तीर्थका वर्णन करता हूँ। ब्रह्माने पहले कहा था कि वह 'संनिहित' सरोवर 'रन्तुक' नामक स्थानसे लेकर 'औजस' नामक स्थानतक तथा 'पावन'से 'चतुर्मुख' तक फैला हुआ है। ब्राह्मणश्रेष्ठो! किंतु अब कलि और द्वापरके मध्यमें महात्मा व्यासने सरोवरका जो (वर्तमान) प्रमाण बतलाया है उसे आपलोग सुनें। 'विश्वेश्वर' स्थानसे 'अस्थिपुर'तक और 'वृद्धा-कन्या'से लेकर 'ओघवती' नदीतक यह सरोवर स्थित है॥ ४९—५२॥

ब्राह्मणश्रेष्ठो! मैंने वामनपुराणमें वर्णित जो प्रमाण सुना है, आप उस पवित्र एवं कल्याणकारी प्रमाणको सुनें। विश्वेश्वर स्थानसे देववरतक एवं नृपावनसे सरस्वतीतक चतुर्दिक् आधे योजन (दो कोसों)-में फैले इस संनिहित सरको समझना चाहिये। मोक्षकी इच्छासे आये हुए देवता एवं ऋषिगण इसका आश्रय लेकर सदा इसका सेवन करते हैं तथा अन्य लोग स्वर्गके निमित्त यहाँ रहते हैं। योगीश्वर ब्रह्माने सृष्टिकी इच्छासे एवं भगवान् श्रीविष्णुने जगत्के पालनकी कामनासे इसका आश्रय लिया था॥ ५३—५६॥

(इसी प्रकार) सरोवरके मध्यमें पैठकर महात्मा रुद्रने भी इस तीर्थका सेवन किया, जिससे महातेजस्वी (उन) हरको स्थाणुत्व (स्थिरत्व) प्राप्त हुआ। आदिमें यह 'ब्रह्मवेदी' कहा गया था, किंतु आगे चलकर इसका नाम 'रामह्रद' हुआ। उसके बाद राजर्षि कुरुद्वारा जोते जानेसे इसका नाम 'कुरुक्षेत्र' पड़ा। तरन्तुक एवं अरन्तुक नामके स्थानोंका मध्य तथा रामह्रद एवं चतुर्मुखका मध्यभाग समन्तपञ्चक है, जो कुरुक्षेत्र कहा जाता है। इसे पितामहकी उत्तरवेदी भी कहते हैं॥ ५७—५९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

वामन-चरितका उपक्रम, बलिका दैत्यराज्याधिपति होना और उनकी अतुल राज्य-लक्ष्मीका वर्णन

ऋषय ऊचुः

ब्रूहि वामनमाहात्म्यमुत्पत्तिं च विशेषतः।
यथा बलिर्नियमितो दत्तं राज्यं शतक्रतोः॥ १

ऋषियोंने कहा—(कृपया आप) वामनके माहात्म्य और विशेषकर उनकी उत्पत्तिका वर्णन (विस्तारसे) करें तथा यह भी बतलायें कि बलिको किस प्रकार बाँधकर इन्द्रको राज्य दिया गया॥ १॥

लोमहर्षण उवाच

शृणुध्वं मुनयः प्रीता वामनस्य महात्मनः।
उत्पत्तिं च प्रभावं च निवासं कुरुजाङ्गले॥ २

तदेव वंशं दैत्यानां शृणुध्वं द्विजसत्तमाः।
यस्य वंशे समभवद् बलिर्वैरोचनिः पुरा॥ ३

दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुः पुरा।
तस्य पुत्रो महातेजाः प्रह्लादो नाम दानवः॥ ४

तस्माद् विरोचनो जज्ञे बलिर्जज्ञे विरोचनात्।
हते हिरण्यकशिपौ देवानुत्साद्य सर्वतः॥ ५

राज्यं कृतं च तेनेष्टं त्रैलोक्ये सचराचरे।
कृतयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यतां गते॥ ६

लोमहर्षणने कहा— मुनियो! आपलोग प्रसन्नतापूर्वक महात्मा वामनकी उत्पत्ति, उनका प्रभाव और कुरुजाङ्गल स्थानमें उनके निवासका वर्णन सुनें! द्विजश्रेष्ठो! आपलोग दैत्योंके उस वंशके सम्बन्धमें भी सुनें, जिस वंशमें प्राचीनकालमें विरोचनके पुत्र बलि उत्पन्न हुए थे। पहले समयमें दैत्योंका आदिपुरुष हिरण्यकशिपु था। उसका प्रह्लाद नामक पुत्र अत्यन्त तेजस्वी दानव था। उससे विरोचन उत्पन्न हुआ और विरोचनसे बलि। हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर बलिने सभी स्थानोंसे देवताओंको खदेड़ दिया और वह चराचरसहित तीनों लोकोंका राज्य स्वच्छन्दतासे करने लगा। (विरोधमें) देवताओंके (बहुत) प्रयत्न करते रहनेपर भी तीनों लोक दैत्योंके अधीन हो ही गये (एवं त्रैलोक्यपर देवताओंका अधिकार नहीं रह गया)॥ २—६॥

जये तथा बलवतोर्मयशम्बरयोस्तथा।
शुद्धासु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि॥ ७

संप्रवृत्ते दैत्यपथे अयनस्थे दिवाकरे।
प्रह्लादशम्बरमयैरनुह्लादेन चैव हि॥ ८

दिक्षु सर्वासु गुप्तासु गगने दैत्यपालिते।
देवेषु मखशोभां च स्वर्गस्थां दर्शयत्सु च॥ ९

प्रकृतिस्थे ततो लोके वर्तमाने च सत्पथे।
अभावे सर्वपापानां धर्मभावे सदोत्थिते॥ १०

बलशाली मय और शम्बरकी विजय-वैजयन्ती फहराने लग गयी। धर्मकार्य सर्वत्र होने लग गये। फलतः दिशाएँ शुद्ध हो गयीं। सूर्य दैत्योंके मार्ग (दक्षिण अयन)-में चले गये। (दैत्योंके शासनमें) प्रह्लाद, शम्बर, मय तथा अनुह्लाद—ये सभी दैत्य सभी दिशाओंकी रक्षा करने लगे। आकाश भी दैत्योंसे रक्षित हो गया। देवगण स्वर्गमें होनेवाले यज्ञोंकी शोभा देखने लगे। सारा संसार प्रकृतिमें स्थित और (व्यवस्थित) हो गया तथा सभी सन्मार्गपर चलने लगे। सर्वत्र पापोंका अभाव और धर्मभावका उत्कर्ष हो गया॥ ७—१०॥

चतुष्पादे स्थिते धर्मे ह्यधर्मे पादविग्रहे।
प्रजापालनयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु।
स्वधर्मसंप्रयुक्तेषु तथाश्रमनिवासिषु॥ ११

अभिषिक्तो सुरैः सर्वैर्दैत्यराज्ये बलिस्तदा।
हृष्टेष्वसुरसंघेषु नदत्सु मुदितेषु च॥ १२

अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्मान्तरप्रभा।
पद्मोद्यतकरा देवी वरदा सुप्रवेशिनी॥ १३

फिर तो धर्म चारों चरणोंसे प्रतिष्ठित हो गया और अधर्म एक ही चरणपर स्थित रह गया। सभी राजा (भलीभाँति) प्रजापालन करते हुए सुशोभित होने लगे और सभी आश्रमोंके लोग अपने-अपने धर्मका पालन करने लगे। ऐसे समयमें असुरोंने बलिको दैत्यराजके पदपर अभिषिक्त कर दिया। असुरोंका समुदाय हर्षित होकर निनाद (जय-जयकार) करने लगा। इसके बाद कमलके भीतरी गोफाके समान कान्तिवाली वरदायिनी और सुन्दर सुवेशवाली श्रीलक्ष्मीदेवी हाथमें कमल लिये हुए बलिके समीप आयीं॥ ११—१३॥

श्रीरुवाच

बले बलवतां श्रेष्ठ दैत्यराज महाद्युते।
प्रीताऽस्मि तव भद्रं ते देवराजपराजये॥ १४

यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराज्यं पराजितम्।
दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता॥ १५

नाश्चर्यं दानवव्याघ्र हिरण्यकशिपोः कुले।
प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मेदमीदृशम्॥ १६

विशेषितस्त्वया राजन् दैत्येन्द्रः प्रपितामहः।
येन भुक्तं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमव्ययम्॥ १७

लक्ष्मीने कहा—बलवानोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी दैत्यराज बलि! देवराजके पराजय हो जानेपर मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा मङ्गल हो; क्योंकि तुमने संग्राममें पराक्रम दिखाकर देवोंके राज्यको जीत लिया है। इसलिये तुम्हारे श्रेष्ठ बलको देखकर मैं स्वयं आयी हूँ। दानव! असुरोंके स्वामी! हिरण्यकशिपुके कुलमें उत्पन्न हुए तुम्हारा यह कर्म ऐसा है—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। राजन्! आप दैत्यश्रेष्ठ अपने प्रपितामह हिरण्यकशिपुसे भी विशिष्ट (प्रभावशाली) हैं; क्योंकि आप पूरे तीनों लोकोंमें समृद्ध इस राज्यका भोग कर रहे हैं॥ १४—१७॥

एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यनृपं बलिम्।
प्रविष्टा वरदा सेव्या सर्वदेवमनोरमा॥ १८

तुष्टाश्च देव्यः प्रवराः ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव च।
प्रभा धृतिः क्षमा भूतिर्ऋद्धिर्दिव्या महामतिः॥ १९

श्रुतिः स्मृतिरिडा कीर्तिः शान्तिः पुष्टिस्तथा क्रिया।
सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्तगीतविशारदाः॥ २०

प्रपद्यन्ते स्म दैत्येन्द्रं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
प्राप्तमैश्वर्यमतुलं बलिना ब्रह्मवादिना॥ २१

दैत्यराज बलिसे ऐसा कहनेके बाद सर्वदेवस्वरूपिणी एवं मनोहर रूपवाली सबकी सेव्य एवं (सबको) वर देनेवाली श्रीलक्ष्मी देवी राजा बलिमें प्रविष्ट हो गयीं। तब सभी श्रेष्ठ देवियाँ—ह्री, कीर्ति, द्युति, प्रभा, धृति, क्षमा, भूति, ऋद्धि, दिव्या, महामति, श्रुति, स्मृति, इडा, कीर्ति, शान्ति, पुष्टि, क्रिया और नृत्तगीतमें निपुण दिव्य अप्सराएँ भी प्रसन्न होकर दैत्येन्द्र (बलि)-का सेवन करने लगीं। इस प्रकार ब्रह्मवादी बलिने चर-अचरवाले त्रिलोकीका अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया॥ १८—२१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

वामन-चरितके उपक्रममें देवताओंका कश्यपजीके साथ ब्रह्मलोकमें जाना

ऋषय ऊचुः

देवानां ब्रूहि नः कर्म यद्वृत्तास्ते पराजिताः।
कथं देवाधिदेवोऽसौ विष्णुर्वामनतां गतः॥ १

लोमहर्षण उवाच

बलिसंस्थं च त्रैलोक्यं दृष्ट्वा देवः पुरंदरः।
मेरुप्रस्थं ययौ शक्रः स्वमातुर्निलयं शुभम्॥ २

समीपं प्राप्य मातुश्च कथयामास तां गिरम्।
आदित्याश्च यथा युद्धे दानवेन पराजिताः॥ ३

अदितिरुवाच

यद्येवं पुत्र युष्माभिर्न शक्यो हन्तुमाहवे।
बलिर्विरोचनसुतः सर्वैश्चैव मरुद्गणैः॥ ४

सहस्रशिरसा शक्यः केवलं हन्तुमाहवे।
तेनैकेन सहस्राक्ष न स ह्यन्येन शक्यते॥ ५

तद्वत् पृच्छामि पितरं कश्यपं ब्रह्मवादिनम्।
पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मनः॥ ६

ततोऽदित्या सह सुराः संप्राप्ताः कश्यपान्तिकम्।
तत्रापश्यन्त मारीचं मुनिं दीप्ततपोनिधिम्॥ ७

आद्यं देवगुरुं दिव्यं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसा।
तेजसा भास्कराकारं स्थितमग्निशिखोपमम्॥ ८

न्यस्तदण्डं तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनाम्बरम्।
वल्कलाजिनसंवीतं प्रदीप्तमिव तेजसा॥ ९

हुताशमिव दीप्यन्तमाज्यगन्धपुरस्कृतम्।
स्वाध्यायवन्तं पितरं वपुष्मन्तमिवानलम्॥ १०

ब्रह्मवादिसत्यवादिसुरासुरगुरुं प्रभुम्।
ब्राह्मण्याऽप्रतिमं लक्ष्म्या कश्यपं दीप्ततेजसम्॥ ११

यः स्रष्टा सर्वलोकानां प्रजानां पतिरुत्तमः।
आत्मभावविशेषेण तृतीयो यः प्रजापतिः॥ १२

ऋषियोंने कहा— आप हमें यह बतलायें कि देवताओंने कौन-सा कर्म किया, जिससे प्रभावित होकर वे (दैत्य) पराजित हुए तथा देवाधिदेव भगवान् विष्णु कैसे वामन (बौना) बने॥ १॥

लोमहर्षणने कहा (उत्तर दिया)— इन्द्रदेवने जब तीनों लोकोंको बलिके अधिकारमें देखा तब वे मेरु (पर्वत)-पर स्थित (रहनेवाली) अपनी कल्याणमयी माताके घर गये। माताके समीप जाकर उन्होंने उनसे (मातासे) यह बात कही—जिससे देवगण युद्धमें दानव बलिसे पराजित हुए थे॥ २-३॥

(माता) अदितिने कहा— पुत्र! यदि ऐसी बात है तो तुमलोग सम्पूर्ण मरुद्गणोंके साथ मिलकर भी संग्राममें विरोचनके पुत्र बलिको नहीं मार सकते। सहस्राक्ष! युद्धमें केवल हजारों सिरवाले (सहस्रशीर्षा) भगवान् विष्णु ही (उसे) मार सकते हैं। उनके सिवा किसी दूसरेसे वह नहीं मारा जा सकता। अतः इस विषयमें उस महान् आत्मा (महाबलवान्) बलि नामक दैत्यकी पराजयके लिये मैं तुम्हारे पिता ब्रह्मवादी कश्यपसे (उपाय) पूछूँगी॥ ४—६॥

इस प्रकार माता अदितिके कहनेपर सभी देवता उनके साथ कश्यपजीके पास पहुँच गये। वहाँ (जाकर उन लोगोंने) तपस्याके धनी, मरीचिके पुत्र, आद्य एवं दिव्य पुरुष, देवताओंके गुरु, ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान और अपने तेजसे सूर्यके समान तेजस्वी, अग्निशिखाकी भाँति दीप्त, संन्यासीके रूपमें, तपोयुक्त वल्कल तथा मृगचर्म धारण किये हुए (आहुतिके) घीकी गन्धसे आप्यायित (वासित) अग्निके समान जलते हुए, स्वाध्यायमें लगे हुए मानो शरीरधारी अग्नि ही हों एवं ब्रह्मवादी, सत्यवादी देवों तथा दानवोंके गुरु, अनुपम ब्रह्मतेजसे पूर्ण एवं शोभासे दीप्त कश्यपजीको देखा॥ ७—११॥

वे (देवताओंके पिता श्रीकश्यपजी) सभी लोकोंके रचनेवाले, श्रेष्ठ प्रजापति एवं आत्मभाव अर्थात् अध्यात्मतत्त्वकी विज्ञताकी विशिष्टताके कारण ऐसे लग

अथ प्रणम्य ते वीराः सहादित्या सुरर्षभाः।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्माणमिव मानसाः॥ १३

अजेयो युधि शक्रेण बलिर्दैत्यो बलाधिकः।
तस्माद् विधत्त नः श्रेयो देवानां पुष्टिवर्धनम्॥ १४

श्रुत्वा तु वचनं तेषां पुत्राणां कश्यपः प्रभुः।
अकरोद् गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकाय लोककृत्॥ १५

कश्यप उवाच

शक्र गच्छाम सदनं ब्रह्मणः परमाद्भुतम्।
तथा पराजयं सर्वे ब्रह्मणः ख्यातुमुद्यताः॥ १६

सहादित्या ततो देवा याताः काश्यपमाश्रमम्।
प्रस्थिता ब्रह्मसदनं महर्षिगणसेवितम्॥ १७

ते मुहूर्तेन संप्राप्ता ब्रह्मलोकं सुवर्चसः।
दिव्यैः कामगमैर्यानैर्यथार्हैस्ते महाबलाः॥ १८

ब्रह्माणं द्रष्टुमिच्छन्तस्तपोराशिनमव्ययम्।
अध्यगच्छन्त विस्तीर्णां ब्रह्मणः परमां सभाम्॥ १९

षट्पदोद्गीतमधुरां सामगैः समुदीरिताम्।
श्रेयस्करीममित्रघ्नीं दृष्ट्वा संजहृषुस्तदा॥ २०

ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रोक्ताः क्रमपदाक्षराः।
शुश्रुवुर्विबुधव्याघ्रा विततेषु च कर्मसु॥ २१

यज्ञविद्यावेदविदः पदक्रमविदस्तथा।
स्वरेण परमर्षीणां सा बभूव प्रणादिता॥ २२

यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः।
छन्दसां चैव चार्थज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः॥ २३

लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुः स्वरमीरितम्।
तत्र तत्र च विप्रेन्द्रा नियताः शंसितव्रताः॥ २४

जपहोमपरा मुख्या ददृशुः कश्यपात्मजाः।
तस्यां सभायामास्ते स ब्रह्मा लोकपितामहः॥ २५

सुरासुरगुरुः श्रीमान् विद्यया वेदमायया।
उपासन्त च तत्रैव प्रजानां पतयः प्रभुम्॥ २६

रहे थे जैसे तीसरे प्रजापति ही हों। फिर अदितिके साथ समस्त देववीर उन्हें प्रणाम कर उनसे हाथ जोड़कर ऐसे बोले जैसे ब्रह्मासे उनके मानस-पुत्र बोलते हैं—बलशाली दैत्यराज बलि युद्धमें इन्द्रसे अपराजेय हो गया है। अतः हम देवोंके सामर्थ्यकी पुष्टि-वृद्धिके लिये आप कल्याणकारी उपाय करें। उन पुरुषोंकी बातें सुनकर लोकोंको रचनेवाले सामर्थ्यशाली कश्यपने ब्रह्मलोकमें जानेका विचार किया॥ १२—१५॥

(फिर) **कश्यपने कहा**— इन्द्र! हम सभी अपनी पराजयकी बात ब्रह्माजीसे कहनेके लिये तैयार होकर उनके परम अद्भुत लोकको चलें। कश्यपके इस प्रकार कहनेपर अदितिके साथ कश्यपके आश्रममें आये हुए सभी देवताओंने महर्षिगणोंसे सेवित ब्रह्मसदनकी ओर प्रस्थान किया। यथायोग्य इच्छाके अनुसार चलनेवाले दिव्य यानोंसे महाबली एवं तेजस्वी वे सभी देवता क्षणमात्रमें ही ब्रह्मलोकमें पहुँच गये और तब वे लोग तपोराशि अव्यय ब्रह्माको देखनेकी इच्छा करते हुए ब्रह्माकी विशाल परम श्रेष्ठ सभामें पहुँचे॥ १६—१९॥

वे (देवतालोग) भ्रमरोंकी गुञ्जारसे गुञ्जित, सामगानसे मुखरित, कल्याणकी विधायिका और शत्रुओंका विनाश करनेवाली उस सभाको देखकर प्रसन्न हो गये। (उस स्थानपर) उन श्रेष्ठ देवगणोंने विस्तृत (विशाल) अनेक कर्मानुष्ठानोंके समय श्रेष्ठ ऋग्वेदियोंके द्वारा 'क्रमपदादि' (वेद पढ़नेकी विशिष्ट शैलियोंसे) उच्चरित ऋचाओं (वेदमन्त्रों)-को सुना। वह सभा यज्ञविद्याके ज्ञाता एवं 'पदक्रम' प्रभृति वेदपाठके ज्ञानवाले परमर्षियोंके उच्चारणकी ध्वनिसे प्रतिध्वनित हो रही थी। देवोंने वहाँ यज्ञके संस्तवोंके ज्ञाताओं, शिक्षाविदों और वेदमन्त्रोंके अर्थ जाननेवालों, समस्त विद्याओंमें पारङ्गत द्विजों एवं श्रेष्ठ लोकायतिकोंके (चार्वाकके मतानुयायियों)-द्वारा उच्चरित स्वरको भी सुना। कश्यपके पुत्रोंने वहाँ सर्वत्र नियमपूर्वक तीर्थ-व्रतको धारण करनेवाले जप-होम करनेमें लगे हुए श्रेष्ठ विप्रोंको देखा। उसी सभामें लोक-पितामह ब्रह्मा विराजमान थे॥ २०—२५॥

(उस) सभामें वेदमाया विद्यासे सम्पन्न, सुरों एवं असुरोंके गुरु (श्रीमान् ब्रह्माजी) भी उपस्थित थे। प्रजापतिगण उन (प्रभुता-सम्पन्न) प्रभुकी उपासना कर

दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमाः।
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा॥ २७
विद्यास्तथान्तरिक्षं च वायुस्तेजो जलं मही।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च॥ २८
प्रकृतिश्च विकारश्च यच्चान्यत् कारणं महत्।
साङ्गोपाङ्गाश्च चत्वारो वेदा लोकपतिस्तथा॥ २९
नयाश्च क्रतवश्चैव सङ्कल्पः प्राण एव च।
एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपासते॥ ३०
अर्थो धर्मश्च कामश्च क्रोधो हर्षश्च नित्यशः।
शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्त्तोऽथ बुधस्तथा॥ ३१
शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः।
मरुतो विश्वकर्मा च वसवश्च द्विजोत्तमाः॥ ३२
दिवाकरश्च सोमश्च दिवा रात्रिस्तथैव च।
अर्द्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् च संस्थिताः॥ ३३

रहे थे। द्विजोत्तमो! दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम और नारद एवं सभी विद्याएँ, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध एवं प्रकृति, विकार, अन्यान्य महत् कारण, अङ्गों एवं उपाङ्गोंके साथ चारों वेद और लोकपति, नीति, यज्ञ, संकल्प, प्राण—ये तथा अन्यान्य देव, ऋषि, भूत, तत्त्वादि ब्रह्माकी उपासना कर रहे थे। द्विजश्रेष्ठो! अर्थ, धर्म, काम, क्रोध, हर्ष, शुक्र, बृहस्पति, संवर्त्त, बुध, शनैश्चर और राहु आदि सभी ग्रह भी वहाँ यथास्थान बैठे थे। मरुद्गण, विश्वकर्मा, वसु, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात्रि, पक्ष, मास तथा छः ऋतुएँ भी वहाँ उपस्थित थीं॥ २६—३३॥

तां प्रविश्य सभां दिव्यां ब्रह्मणः सर्वकामिकाम्।
कश्यपस्त्रिदशैः सार्द्धं पुत्रैर्धर्मभृतां वरः॥ ३४

सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम्।
ब्राह्म्या श्रिया सेव्यमानामचिन्त्यां विगतक्लमाम्॥ ३५

ब्रह्माणं प्रेक्ष्य ते सर्वे परमासनमास्थितम्।
शिरोभिः प्रणता देवं देवा ब्रह्मर्षिभिः सह॥ ३६

ततः प्रणम्य चरणौ नियताः परमात्मनः।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतकल्मषाः॥ ३७

दृष्ट्वा तु तान् सुरान् सर्वान् कश्यपेन सहागतान्।
आह ब्रह्मा महातेजा देवानां प्रभुरीश्वरः॥ ३८

धार्मिकोंमें श्रेष्ठ कश्यपने अपने पुत्र देवताओंके साथ ब्रह्माकी उस सर्वमनोरथमयी, सर्वतेजोमयी, दिव्य एवं ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित तथा ब्रह्म-विचारमयी सरस्वती एवं लक्ष्मीसे सेवित अचिन्त्य तथा खिन्नतासे रहित सभामें प्रवेश किया। तब उनके साथमें गये सभी देवताओंने श्रेष्ठ आसनपर विराजमान ब्रह्माजीको देखा और उन्हें ब्रह्मर्षियोंके साथ झुककर सिरसे प्रणाम किया। नियमका पालन करनेवाले वे सभी परमात्माके चरणोंमें प्रणाम करके सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर निर्मल एवं शान्त हो गये। (फिर) महान् तेजस्वी देवेश्वर ब्रह्माने कश्यपके साथ आये हुए उन सभी देवताओंको देखकर कहा—॥ ३४—३८॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

वामन-चरितके सन्दर्भमें ब्रह्माका उपदेश तथा तदनुसार देवोंका श्वेतद्वीपमें तपस्या करना

ब्रह्मोवाच

यदर्थमिह संप्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि।
चिन्तयाम्यहमप्यग्रे तदर्थं च महाबलाः॥ १
भविष्यति च वः सर्वं काङ्क्षितं यत् सुरोत्तमाः।
बलेर्दानवमुख्यस्य योऽस्य जेता भविष्यति॥ २

ब्रह्माने कहा— महाबलशाली देवगण! आपलोग जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं, उसके विषयमें मैं पहलेसे ही सोच रहा हूँ। सुरश्रेष्ठ! आपलोगोंको जो अभिलषित है, वह पूर्ण होकर रहेगा। दानवोंमें प्रधान बलिको पराजित करनेवाले एवं विश्वको रचनेवाले

न केवलं सुरादीनां गतिर्मम स विश्वकृत्।
त्रैलोक्यस्यापि नेता च देवानामपि स प्रभुः॥ ३
यः प्रभुः सर्वलोकानां विश्वेशश्च सनातनः।
पूर्वजोऽयं सदाप्याहुरादिदेवं सनातनम्॥ ४
तं देवापि महात्मानं न विदुः कोऽप्यसाविति।
देवानस्मान् श्रुतिं विश्वं स वेत्ति पुरुषोत्तमः॥ ५
तस्यैव तु प्रसादेन प्रवक्ष्ये परमां गतिम्।
यत्र योगं समास्थाय तपश्चरति दुश्चरम्॥ ६
क्षीरोदस्योत्तरे कूले उदीच्यां दिशि विश्वकृत्।
अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः॥ ७
भवन्तस्तत्र वै गत्वा तपसा शंसितव्रताः।
अमृतं स्थानमासाद्य तपश्चरत दुश्चरम्॥ ८
ततः श्रोष्यथ संघुष्टां स्निग्धगम्भीरनिःस्वनाम्।
उष्णान्ते तोयदस्येव तोयपूर्णस्य निःस्वनम्॥ ९
रक्तां पुष्टाक्षरां रम्यामभयां सर्वदा शिवाम्।
वाणीं परमसंस्कारां वदतां ब्रह्मवादिनाम्॥ १०
दिव्यां सत्यकरीं सत्यां सर्वकल्मषनाशिनीम्।
सर्वदेवाधिदेवस्य ततोऽसौ भावितात्मनः॥ ११
तस्य व्रतसमाप्त्यां तु योगव्रतविसर्जने।
अमोघं तस्य देवस्य विश्वतेजो महात्मनः॥ १२
कस्य किं वो वरं देवा ददामि वरदः स्थितः।
स्वागतं वः सुरश्रेष्ठा मत्समीपमुपागताः॥ १३

(परमात्मा) न केवल (आप सब) देवोंके, प्रत्युत हमारे भी सहारे हैं। वे तीनों लोकोंके स्वामी तथा देवोंके भी शासक हैं। इन्हें ही सनातन आदिदेव भी कहते हैं॥ १—४॥

उन महान् आत्मा (सनातन आदिदेव)-को देवता आदि कोई भी वास्तवरूपमें नहीं जानते कि वे कौन हैं; परंतु वे पुरुषोत्तम (समस्त) देवोंको, मुझे तथा श्रुति (वेद) एवं समस्त विश्वको जानते हैं (संसारके समस्त क्रिया-कलाप उनकी जानकारीमें ही होते हैं; वे सर्वज्ञ हैं)। उन्हींके कृपा-प्रसादसे (आपलोगोंको) मैं अत्यन्त श्रेष्ठ उपाय बतलाता हूँ। (आपलोग सुनें।) आप सभी उत्तर-दिशामें क्षीरसागरके उत्तरी तटपर स्थित उस स्थानपर जाइये जिसे विचारशील विद्वान् लोग (अमृत) नामसे उच्चारित करते हैं। विश्वकी रचना करनेवाले (परमात्मा) वहीं योगधारणामें स्थित होकर कठिन तपस्या कर रहे हैं। आप सभी लोग उस अमृत नामक स्थानपर जायँ और आलस्यरहित होकर आपलोग भी लक्ष्यकी सिद्धिके लिये वहाँ कठिन तपस्या प्रारम्भ कर दें॥ ५—८॥

(जब आपलोग वहाँ जाकर कठिन तपस्या करने लगेंगे) तब ग्रीष्मके अन्तमें देवाधिदेवकी शब्दरूपिणी, स्निग्ध-गम्भीर ध्वनिवाली, प्रेमसे भरी हुई शुद्ध और स्पष्ट अक्षरोंसे युक्त मनोहर एवं निर्भयताकी सूचना देनेवाली, सर्वदा मङ्गलमयी, उच्च स्वरसे अध्ययन करनेवाले ब्रह्मवादियोंकी वाणीके समान स्पष्ट, उत्तम संस्कारसे युक्त, दिव्य, सत्य-स्वरूपिणी, सत्यताकी ओर उन्मुख होनेके लिये प्रेरणा देनेवाली और पापोंको नष्ट करनेवाली जलसे पूर्ण मेघके गर्जनके समान गम्भीर वाणीको सुनेंगे। उसके बाद भावितात्माके (आत्मज्ञानसे परिपूर्ण महात्मा कश्यपके योगव्रतके अवसरपर) व्रतकी समाप्ति हो जानेके बाद अमोघ तेजसे सम्पन्न वे देव आपसे कहेंगे—सुरश्रेष्ठो! आपलोग मेरे पास आये, आपलोगोंका स्वागत है। मैं (आपलोगोंको) वरदान देनेके लिये आप सबके समक्ष स्थित हूँ कहो—किसे कौन-सा वर दूँ॥ ९—१३॥

ततोऽदितिः कश्यपश्च गृह्णीयातां वरं तदा।
प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै देवाय धीमते॥ १४

भगवानेव नः पुत्रो भवत्विति प्रसीद नः।
उक्तश्च परया वाचा तथाऽस्त्विति स वक्ष्यति॥ १५

देवा ब्रुवन्ति ते सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च।
तथास्त्विति सुराः सर्वे प्रणम्य शिरसा प्रभुम्।
श्वेतद्वीपं समुद्दिश्य गताः सौम्यदिशं प्रति॥ १६

तेऽचिरेणैव संप्राप्ताः क्षीरोदं सरितां पतिम्।
यथोद्दिष्टं भगवता ब्रह्मणा सत्यवादिना॥ १७

ते क्रान्ताः सागरान् सर्वान् पर्वतांश्च सकाननान्।
नदीश्च विविधा दिव्याः पृथिव्यां ते सुरोत्तमाः॥ १८

अपश्यन्त तमो घोरं सर्वसत्त्वविवर्जितम्।
अभास्करममर्यादं तमसा सर्वतो वृतम्॥ १९

अमृतं स्थानमासाद्य कश्यपेन महात्मना।
दीक्षिताः कामदं दिव्यं व्रतं वर्षसहस्त्रकम्॥ २०

प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते।
नारायणाय देवाय सहस्त्राक्षाय भूतये॥ २१

ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थाने वीरासनेन च।
क्रमेण च सुराः सर्वे तप उग्रं समास्थिताः॥ २२

कश्यपस्तत्र भगवान् प्रसादार्थं महात्मनः।
उदीरयत वेदोक्तं यमाहुः परमं स्तवम्॥ २३

और, जब भगवान् इस प्रकार वरदान देनेके लिये उपस्थित होंगे तथा अदिति एवं कश्यप उन प्रज्ञावान् प्रभुके चरणोंमें झुककर सिरसे प्रणाम और वरकी याचना करेंगे कि 'भगवान् ही हमारे पुत्र बनें; इसके लिये आप हमारे ऊपर प्रसन्न हों' तब वे ब्रह्मवाणीके द्वारा 'ऐसा ही हो'—यह कहेंगे। (इस प्रकार संकेत है —) निर्देश पाकर कश्यप, अदिति एवं सभी देवताओंने 'ऐसा ही हो'—यह कहकर प्रभु (ब्रह्मा)-को सिरसे प्रणाम किया और श्वेतद्वीपकी ओर लक्ष्य करके उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया। वे अत्यन्त शीघ्रतासे सत्यप्रवक्ता भगवान् ब्रह्माके द्वारा निर्दिष्ट की गयी व्यवस्थाके अनुसार क्षीरसागरके तटपर पहुँच गये॥ १४—१७॥

उन देववरोंने पृथ्वीके सभी समुद्रों, वनसे भरे हुए पर्वतों एवं भाँति-भाँतिकी दिव्य नदियोंको पार किया। उसके बाद (उसके आगे) उन लोगोंने ऐसे स्थानको देखा जहाँ न कोई प्राणी था, न सूर्यका प्रकाश ही था; प्रत्युत चारों ओर घनघोर अन्धकार था, जिसमें सीमा मालूम ही नहीं होती थी। इस प्रकारके उस 'अमृत' नामक स्थानपर पहुँचकर महात्मा कश्यपने प्रज्ञा-सम्पन्न योगी, देवेश्वर, कल्याणकी मूर्ति, सहस्त्रचक्षु नारायणदेवकी प्रसन्नताकी प्राप्तिके उद्देश्यसे (देवताओंको) सहस्त्रवार्षिक (हजारों वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले) दिव्य (देव-सम्बन्धी) इच्छा पूर्ण करनेवाले कामद-व्रतकी दीक्षा दी। फिर वे सभी देवता क्रमशः अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके और मौन धारणकर उचित स्थानपर वीरासनसे बैठकर कठोर तपस्या करने लगे। वहाँ भगवान् कश्यपने महात्मा विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये वेदमें कहे हुए स्तवका (सूक्त या स्तोत्रका) स्पष्ट वाणीमें पाठ किया, जिसे 'परमस्तव' कहते हैं॥ १८—२३॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

कश्यपद्वारा भगवान् वामनकी स्तुति

कश्यप उवाच

नमोऽस्तु ते देवदेव एकशृङ्ग वृषार्च्चे सिन्धुवृष वृषाकपे सुरवृष अनादिसम्भव रुद्र कपिल विष्वक्सेन सर्वभूतपते ध्रुव धर्माधर्म वैकुण्ठ वृषावर्त्त अनादिमध्यनिधन धनञ्जय शुचिश्रवः पृश्नितेजः निजजय अमृतेशय सनातन त्रिधाम तुषित महातत्त्व लोकनाथ पद्मनाभ विरिञ्चे बहुरूप अक्षय अक्षर हव्यभुज खण्डपरशो शक्र मुञ्जकेश हंस महादक्षिण हृषीकेश सूक्ष्म महानियमधर विरज लोकप्रतिष्ठ अरूप अग्रज धर्मज धर्मनाभ गभस्तिनाभ शतक्रतुनाभ चन्द्ररथ सूर्यतेजः समुद्रवासः अजः सहस्रशिरः सहस्रपाद अधोमुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्रबाहो सहस्रमूर्त्ते सहस्रास्य सहस्रसम्भव सहस्रसत्त्वं त्वामाहुः। पुष्पहास चरम त्वमेव वौषट् वषट्कारं त्वामाहुरग्र्यं मखेषु प्राशितारं सहस्रधारं च भूश्च भुवश्च स्वश्च त्वमेव वेदवेद्य ब्रह्मशय ब्राह्मणप्रिय त्वमेव द्यौरसि मातरिश्वाऽसि धर्मोऽसि होता पोता मन्ता नेता होमहेतुस्त्वमेव अग्र्य विश्वधाम्ना त्वमेव दिग्भिः सुभाण्ड इज्योऽसि सुमेधोऽसि समिधस्त्वमेव मतिर्गतिर्दाता त्वमसि। मोक्षोऽसि योगोऽसि। सृजसि। धाता परमयज्ञोऽसि सोमोऽसि दीक्षितोऽसि दक्षिणाऽसि विश्वमसि। स्थविर हिरण्यनाभ नारायण त्रिनयन आदित्यवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष पुरुषोत्तम आदिदेव सुविक्रम प्रभाकर शम्भो स्वयम्भो भूतादिः महाभूतोऽसि विश्वभूत विश्वं त्वमेव विश्वगोप्ताऽसि पवित्रमसि

कश्यपने कहा— हे देवदेव, एकशृङ्ग, वृषार्चि, सिन्धुवृष, वृषाकपि, सुरवृष, अनादिसम्भव, रुद्र, कपिल, विष्वक्सेन, सर्वभूतपति (सम्पूर्ण प्राणियोंके स्वामी), ध्रुव, धर्माधर्म, वैकुण्ठ, वृषावर्त्त, अनादिमध्यनिधन, धनञ्जय, शुचिश्रव, पृश्नितेज, निजजय, अमृतेशय, सनातन, त्रिधाम, तुषित, महातत्त्व, लोकनाथ, पद्मनाभ, विरिञ्चि, बहुरूप, अक्षय, अक्षर, हव्यभुज, खण्डपरशु, शक्र, मुञ्जकेश, हंस, महादक्षिण, हृषीकेश, सूक्ष्म, महानियमधर, विरज, लोकप्रतिष्ठ, अरूप, अग्रज, धर्मज, धर्मनाभ, गभस्तिनाभ, शतक्रतुनाभ, चन्द्ररथ, सूर्यतेज, समुद्रवास, अज, सहस्रशिर, सहस्रपाद, अधोमुख, महापुरुष, पुरुषोत्तम, सहस्रबाहु, सहस्रमूर्त्ति, सहस्रास्य, सहस्रसम्भव! मेरा आपके चरणोंमें नमस्कार है। (आपके भक्तजन) आपको सहस्रसत्त्व कहते हैं। (खिले हुए पुष्पके समान मधुर मुसकानवाले) पुष्पहास, चरम (सर्वोत्तम)! लोग आपको ही वौषट् एवं वषट्कार कहते हैं। आप ही अग्र्य, (सर्वश्रेष्ठ) यज्ञोंमें प्राशिता (भोक्ता) हैं; सहस्रधार, भूः, भुवः एवं स्वः हैं। आप ही वेदवेद्य (वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य), ब्रह्मशय, ब्राह्मणप्रिय (अग्निके प्रेमी), द्यौः (आकाशके समान सर्वव्यापी), मातरिश्वा (वायुके समान गतिमान्), धर्म, होता, पोता (विष्णु), मन्ता, नेता एवं होमके हेतु हैं। आप ही विश्वतेजके द्वारा अग्र्य (सर्वश्रेष्ठ) हैं और दिशाओंके द्वारा सुभाण्ड (विस्तृत पात्ररूप) हैं अर्थात् दिशाएँ आपमें समाविष्ट हैं। आप (यजन करनेयोग्य) इज्य, सुमेध, समिधा, मति, गति एवं दाता हैं। आप ही मोक्ष, योग, स्रष्टा (सृष्टि करनेवाले), धाता (धारण और पोषण करनेवाले), परमयज्ञ, सोम, दीक्षित, दक्षिणा एवं विश्व हैं। आप ही स्थविर, हिरण्यनाभ, नारायण, त्रिनयन, आदित्यवर्ण, आदित्यतेज, महापुरुष, पुरुषोत्तम, आदिदेव, सुविक्रम, प्रभाकर, शम्भु, स्वयम्भु, भूतादि, महाभूत, विश्वभूत एवं विश्व हैं। आप ही

विश्वभव ऊर्ध्वकर्म अमृत दिवस्पते वाचस्पते घृतार्चे अनन्तकर्म वंश प्राग्वंश विश्वपातस्त्वमेव।

वरार्थिनां वरदोऽसि त्वम्।
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तुभ्यं होत्रात्मने नमः॥ १

संसारकी रक्षा करनेवाले, पवित्र, विश्वभव—विश्वकी सृष्टि करनेवाले, ऊर्ध्वकर्म (उत्तमकर्मा), अमृत (कभी भी मृत्युको न प्राप्त होनेवाले), दिवस्पति, वाचस्पति, घृतार्चि, अनन्तकर्म, वंश, प्राग्वंश, विश्वपा (विश्वका पालन करनेवाले) तथा वरद-वर चाहनेवालोंके लिये वरदानी हैं। चार (आश्रावय), चार (अस्तु श्रौषड्), दो (यज) तथा पाँच (ये यजामहे) और पुनः दो (वषट्) अक्षरों—इस प्रकार ४+४+२+५+२=१७ अक्षरोंसे—जिसके लिये अग्निहोत्र किया जाता है, उन आप होत्रात्माको नमस्कार है॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

भगवान् नारायणसे देवों और कश्यपकी प्रार्थना, अदितिकी तपस्या और प्रभुसे प्रार्थना

लोमहर्षण उवाच

नारायणस्तु भगवाञ्छ्रुत्वैवं परमं स्तवम्।
ब्रह्मज्ञेन द्विजेन्द्रेण कश्यपेन समीरितम्॥ १

उवाच वचनं सम्यक् तुष्टः पुष्टपदाक्षरम्।
श्रीमान् प्रीतमना देवो यद्वदेत् प्रभुरीश्वरः॥ २

वरं वृणुध्वं भद्रं वो वरदोऽस्मि सुरोत्तमाः।

कश्यप उवाच

प्रीतोऽसि नः सुरश्रेष्ठ सर्वेषामेव निश्चयः॥ ३

वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीनां नन्दिवर्धनः।
अदित्या अपि च श्रीमान् भगवानस्तु वै सुतः॥ ४

अदितिर्देवमाता च एतमेवार्थमुत्तमम्।
पुत्रार्थं वरदं प्राह भगवन्तं वरार्थिनी॥ ५

लोमहर्षणने कहा— इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी द्विजश्रेष्ठ कश्यपने विष्णुकी उत्तम स्तुति की; उसे सुनकर प्रसन्न होकर सामर्थ्यशाली एवं ऐश्वर्यसम्पन्न नारायणने अत्यन्त संतुष्ट होकर प्रसन्न मनसे सुसंस्कृत शब्दों एवं अक्षरोंवाला समयानुकूल उचित वचन कहा—श्रेष्ठ देवताओ! वर माँगो। तुम सबका कल्याण हो; मैं तुम लोगोंको (इच्छित) वर दूँगा॥ २ $\frac{1}{2}$॥

कश्यपने कहा—सुरश्रेष्ठ! यदि आप हम सबपर प्रसन्न हैं तो हम सभीका यह निश्चय है कि श्रीमान् भगवान् आप स्वयं इन्द्रके छोटे भाईके रूपमें अदितिके कुटुम्बियोंके आनन्द बढ़ानेवाले पुत्र बनें। वरकी याचना करनेवाली देवमाता अदितिने भी वरदानी भगवान्से पुत्रकी प्राप्तिके लिये अपने इस उत्तम अभिप्रायको प्रकट किया—कहा॥ ३—५॥

देवा ऊचुः

निःश्रेयसार्थं सर्वेषां दैवतानां महेश्वर।
त्राता भर्त्ता च दाता च शरणं भव नः सदा॥ ६

ततस्तानब्रवीद्विष्णुर्देवान् कश्यपमेव च।
सर्वेषामेव युष्माकं ये भविष्यन्ति शत्रवः।
मुहूर्त्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः॥ ७

हत्वाऽसुरगणान् सर्वान् यज्ञभागाग्रभोजिनः।
हव्यादांश्च सुरान् सर्वान् कव्यादांश्च पितॄनपि॥ ८

करिष्ये विबुधश्रेष्ठाः पारमेष्ठ्येन कर्मणा।
यथायातेन मार्गेण निवर्तध्वं सुरोत्तमाः॥ ९

लोमहर्षण उवाच

एवमुक्ते तु देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
ततः प्रहृष्टमनसः पूजयन्ति स्म तं प्रभुम्॥ १०
विश्वेदेवा महात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च।
नमस्कृत्य सुरेशाय तस्मै देवाय रंहसा॥ ११
प्रयाताः प्राग्दिशं सर्वे विपुलं कश्यपाश्रमम्।
ते कश्यपाश्रमं गत्वा कुरुक्षेत्रवनं महत्॥ १२
प्रसाद्य ह्यदितिं तत्र तपसे तां न्ययोजयन्।
सा चचार तपो घोरं वर्षाणामयुतं तदा॥ १३
तस्या नाम्ना वनं दिव्यं सर्वकामप्रदं शुभम्।
आराधनाय कृष्णस्य वाग्जिता वायुभोजना॥ १४

दैत्यैर्निराकृतान् दृष्ट्वा तनयानृषिसत्तमाः।
वृथापुत्राऽहमिति सा निर्वेदात् प्रणयाद्धरिम्।
तुष्टाव वाग्भिरग्र्याभिः परमार्थावबोधिनी॥ १५

शरण्यं शरणं विष्णुं प्रणता भक्तवत्सलम्।
देवदैत्यमयं चादिमध्यमान्तस्वरूपिणम्॥ १६

[अदितिके अभिप्रायको जानकर] **देवताओंने कहा—** महेश्वर! सभी देवताओंके परम कल्याणके लिये आप हम सबकी सदा रक्षा करनेवाले, पालन-पोषण करनेवाले, दान देनेवाले एवं आश्रय बनें। इसके बाद भगवान् विष्णुने उन देवताओंसे तथा कश्यपसे कहा कि आप सभीके जितने भी शत्रु होंगे वे सभी मेरे सम्मुख क्षणमात्र भी नहीं टिक सकेंगे। देवश्रेष्ठो! परमेष्ठी (ब्रह्मा)-के द्वारा विधान किये गये कर्मोंके द्वारा मैं समस्त असुरोंको मारकर देवताओंको यज्ञभागके सर्व-प्रथम भाग ग्रहण करनेवाले अधिकारी एवं हव्यभोक्ता और पितरोंको कव्यभोक्ता बनाऊँगा। सुरोत्तमो! अब आपलोग जिस मार्गसे आये हैं, फिर उसी मार्गसे वापस लौट जायँ॥ ६—९॥

लोमहर्षणने कहा— प्रभावशाली भगवान् विष्णुने जब ऐसा कहा तब महात्मा देवगण, कश्यप एवं अदितिने प्रसन्नचित्तसे उन प्रभुका पूजन किया एवं देवेश्वरको नमस्कार करनेके बाद पूर्व दिशामें स्थित कश्यपके विस्तृत आश्रमकी ओर शीघ्रतासे चल पड़े। जब देवगण कुरुक्षेत्र-वनमें स्थित महान् आश्रममें पहुँचे तब लोगोंने अदितिको प्रसन्नकर उसे तपस्या करनेके लिये प्रेरित किया। (फिर) उसने दस हजार वर्षोंतक वहाँ कठिन तपस्या की॥ १०—१३॥

श्रेष्ठ ऋषियो! (जिस वनमें अदितिने तप किया) उस दिव्य वनका नाम उसके नामपर अदितिवन पड़ा। वह समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला एवं मङ्गलकारी है। ऋषिश्रेष्ठो! परम अर्थको जाननेवाली (तत्त्वज्ञा) अदितिने अपने पुत्रोंको दैत्योंके द्वारा अपमानित देखा; उसने सोचा कि तब मेरा पुत्रका जनना ही व्यर्थ है; इसलिये अपनी वाणीको संयतकर; हवा पीकर नम्रतापूर्वक शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले, भक्तजनप्रिय, देवताओं और दैत्योंके मूर्तिस्वरूप, आदि-मध्य और अन्तके रूपमें रहनेवाले भगवान् श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये उनकी सत्य एवं मधुर वाणियोंसे उत्तम स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया॥ १४—१६॥

अदितिरुवाच

नमः कृत्यार्तिनाशाय नमः पुष्करमालिने।
नमः परमकल्याण कल्याणायादिवेधसे॥ १७

नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये।
नमः पङ्कजसंभूतिसंभवायात्मयोनये॥ १८

श्रियः कान्ताय दान्ताय दान्तदृश्याय चक्रिणे।
नमः पद्मासिहस्ताय नमः कनकरेतसे॥ १९

तथात्मज्ञानयज्ञाय योगिचिन्त्याय योगिने।
निर्गुणाय विशेषाय हरये ब्रह्मरूपिणे॥ २०

अदिति बोलीं— कृत्यासे उत्पन्न दुःखका नाश करनेवाले प्रभुको नमस्कार है। कमलकी मालाको धारण करनेवाले पुष्करमाली भगवान्‌को नमस्कार है। परम मङ्गलकारी, कल्याणस्वरूप आदिविधाता प्रभो! आपको नमस्कार है। कमलनयन! आपको नमस्कार है। पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। ब्रह्माकी उत्पत्तिके स्थान, आत्मजन्मा! आपको नमस्कार है। प्रभो! आप लक्ष्मीपति, इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, संयमियोंके द्वारा दर्शन पाने योग्य, हाथमें सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले एवं खड्ग (तलवार) धारण करते हैं; आपको नमस्कार है। स्वामिन्! आत्मज्ञानके द्वारा यज्ञ करनेवाले, योगियोंके द्वारा ध्यान करने योग्य, योगकी साधना करनेवाले योगी, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे रहित किंतु (दयादि) विशिष्ट गुणोंसे युक्त ब्रह्मरूपी श्रीहरि भगवान्‌को नमस्कार है॥ १७—२०॥

जगच्च तिष्ठते यत्र जगतो यो न दृश्यते।
नमः स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शार्ङ्गिणे॥ २१

यं न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलं नराः।
अपश्यद्भिर्जगद्यश्च दृश्यते हृदि संस्थितः॥ २२

बहिर्ज्योतिरलक्ष्यो यो लक्ष्यते ज्योतिषः परः।
यस्मिन्नेव यतश्चैव यस्यैतदखिलं जगत्॥ २३

तस्मै समस्तजगताममराय नमो नमः।
आद्यः प्रजापतिः सोऽपि पितॄणां परमं पतिः।
पतिः सुराणां यस्तस्मै नमः कृष्णाय वेधसे॥ २४

जिन आप परमेश्वरमें सारा संसार स्थित है, किंतु जो संसारसे दृश्य नहीं हैं, ऐसे स्थूल तथा अतिसूक्ष्म आप शार्ङ्गधारी देवको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्‌की अपेक्षा करनेवाले प्राणी जिन आपके दर्शनसे वञ्चित रहते हैं, आपका वे दर्शन नहीं कर पाते, परंतु जिन्होंने जगत्‌की अपेक्षा नहीं की, उन्हें आप उनके हृदयमें स्थित दीखते हैं। आपकी ज्योति बाहर है एवं अलक्ष्य है, सर्वोत्तम ज्योति है; यह सारा जगत् आपमें स्थित है, आपसे उत्पन्न होता है और आपका ही है, जगत्‌के देवता उन आपको नमस्कार है। जो आप सबके आदिमें प्रजापति रहे हैं एवं पितरोंके श्रेष्ठ स्वामी हैं, देवताओंके स्वामी हैं; उन आप श्रीकृष्णको बार-बार नमस्कार है॥ २१—२४॥

यः प्रवृत्तैर्निवृत्तैश्च कर्मभिस्तु विरज्यते।
स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभृते॥ २५

जो प्रवृत्त एवं निवृत्त कर्मोंसे विरक्त तथा स्वर्ग और मोक्षके फलके देनेवाले हैं, उन गदा धारण करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। जो

यस्तु संचिन्त्यमानोऽपि सर्वं पापं व्यपोहति।
नमस्तस्मै विशुद्धाय परस्मै हरिमेधसे॥ २६

ये पश्यन्त्यखिलाधारमीशानमजमव्ययम्।
न पुनर्जन्ममरणं प्राप्नुवन्ति नमामि तम्॥ २७

यो यज्ञो यज्ञपरमैरिज्यते यज्ञसंस्थितः।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम्॥ २८

स्मरण करनेवालेके सारे पाप नष्ट कर देते हैं, उन विशुद्ध हरिमेधाको मेरा नमस्कार है। जो प्राणी अविनाशी भगवान्‌को अखिलाधार, ईशान एवं अजके रूपमें देखते हैं, वे कभी भी जन्म-मरणको नहीं प्राप्त होते। प्रभो! मैं आपको प्रणाम करती हूँ। आपकी आराधना यज्ञोंद्वारा होती है, आप यज्ञकी मूर्ति हैं, यज्ञमें आपकी स्थिति है; यज्ञपुरुष! आप ईश्वर, प्रभु विष्णुको मैं नमस्कार करती हूँ॥ २५—२८॥

गीयते सर्ववेदेषु वेदविद्भिर्विदां गतिः।
यस्तस्मै वेदवेद्याय नित्याय विष्णवे नमः॥ २९

यतो विश्वं समुद्भूतं यस्मिन् प्रलयमेष्यति।
विश्वोद्भवप्रतिष्ठाय नमस्तस्मै महात्मने॥ ३०

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं व्याप्तं येन चराचरम्।
मायाजालसमुन्नद्धं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ ३१

योऽत्र तोयस्वरूपस्थो बिभर्त्यखिलमीश्वरः।
विश्वं विश्वपतिं विष्णुं तं नमामि प्रजापतिम्॥ ३२

वेदोंमें आपका गुणगान हुआ है—इसे वेदज्ञ गाते हैं। आप विद्वज्जनोंके आश्रय हैं, वेदोंसे जानने योग्य एवं नित्यस्वरूप हैं; आप विष्णुको मेरा नमस्कार है। विश्व जिनसे समुद्भूत हुआ है और जिनमें विलीन होगा तथा जो विश्वके उद्भव एवं प्रतिष्ठाके स्वरूप हैं, उन महान् आत्मा (परमात्मा)-को मेरा नमस्कार है। जिनके द्वारा मायाजालसे बँधा हुआ ब्रह्मासे लेकर चराचर (विश्व) व्याप्त है, उन उपेन्द्र-भगवान्‌को मैं नमस्कार करती हूँ। जो ईश्वर जल-स्वरूपमें स्थित होकर अखिल विश्वका भरण करते हैं, उन विश्वपति एवं प्रजापति विष्णुको मैं नमस्कार करती हूँ॥ २९—३२॥

मूर्त्तं तमोऽसुरमयं तद्विधो विनिहन्ति यः।
रात्रिजं सूर्यरूपी च तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ ३३

यस्याक्षिणी चन्द्रसूर्यौ सर्वलोकशुभाशुभम्।
पश्यतः कर्म सततं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ ३४

यस्मिन् सर्वेश्वरे सर्वं सत्यमेतन्मयोदितम्।
नानृतं तमजं विष्णुं नमामि प्रभवाव्ययम्॥ ३५

यद्येतत्सत्यमुक्तं मे भूयश्चातो जनार्दन।
सत्येन तेन सकलाः पूर्यन्तां मे मनोरथाः॥ ३६

जो सूर्यरूपी उपेन्द्र असुरमय रात्रिसे उत्पन्न, रूपधारी तमका विनाश करते हैं, मैं उनको प्रणाम करती हूँ। जिनकी सूर्य तथा चन्द्रमा-रूप दोनों आँखें समस्त लोकोंके शुभाशुभ कर्मोंको सतत देखती रहती हैं, उन उपेन्द्रको मैं नमस्कार करती हूँ। जिन सर्वेश्वरके विषयमें मेरा यह समस्त उद्गार सत्य है—असत्य नहीं है, उन अजन्मा, अव्यय एवं स्रष्टा विष्णुको मैं नमस्कार करती हूँ। हे जनार्दन! यदि मैंने यह सत्य कहा है तो उस सत्यके प्रभावसे मेरे मनकी सारी अभिलाषाएँ परिपूर्ण हों॥ ३३—३६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

अदितिकी प्रार्थनापर भगवान्‌का प्रकट होना तथा भगवान्‌का अदितिको वर देना

लोमहर्षण उवाच

एवं स्तुतोऽथ भगवान् वासुदेव उवाच ताम्।
अदृश्यः सर्वभूतानां तस्याः संदर्शने स्थितः॥ १

लोमहर्षणने कहा— इस प्रकार स्तुति किये जानेपर समस्त प्राणियोंके दृष्टि-पथमें न आनेवाले भगवान् वासुदेव उसके सामने प्रकट हुए और उससे (इस प्रकार) बोले—॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

मनोरथांस्त्वमदिते यानिच्छस्यभिवाञ्छितान्।
तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे मत्प्रसादान्न संशयः॥ २

शृणु त्वं च महाभागे वरो यस्ते हृदि स्थितः।
मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद् भविष्यति॥ ३

यश्चेह त्वद्वने स्थित्वा त्रिरात्रं वै करिष्यति।
सर्वे कामाः समृध्यन्ते मनसा यानिहेच्छति॥ ४

दूरस्थोऽपि वनं यस्तु अदित्याः स्मरते नरः।
सोऽपि याति परं स्थानं किं पुनर्निवसन् नरः॥ ५

यश्चेह ब्राह्मणान् पञ्च त्रीन् वा द्वावेकमेव वा।
भोजयेच्छ्रद्धया युक्तः स याति परमां गतिम्॥ ६

श्रीभगवान् बोले— धर्मज्ञे (धर्मके मर्मको जाननेवाली) अदिति! तुम मुझसे जिन मनचाही कामनाओंकी पूर्ति चाहती हो, उन्हें तुम मेरी कृपासे प्राप्त करोगी, इसमें कोई संदेह नहीं। महाभागे! सुनो, तुम्हारे मनमें जिन वरोंकी इच्छा है, उन्हें तुम मुझसे माँगो; क्योंकि मेरे दर्शन करनेका फल कभी व्यर्थ नहीं होता। तुम्हारे इस (अदिति) वनमें रहकर जो तीन रातोंतक निवास करेगा, उसकी सभी मनचाही कामनाएँ पूरी होंगी। जो मनुष्य दूर देशमें स्थित रहकर भी तुम्हारे इस वनका स्मरण करेगा, वह परम धामको प्राप्त कर लेगा। फिर यहाँ रहनेवाले मनुष्यको परम धामकी प्राप्ति हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य? जो मानव इस स्थानपर पाँच, तीन अथवा दो या एक ही ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक भोजन करायेगा, वह उत्तम गति (मोक्ष)-को प्राप्त करेगा॥ २—६॥

अदितिरुवाच

यदि देव प्रसन्नस्त्वं भक्त्या मे भक्तवत्सल।
त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तु मम वासवः॥ ७

हृतं राज्यं हृतश्चास्य यज्ञभाग इहासुरैः।
त्वयि प्रसन्ने वरद तत् प्राप्नोतु सुतो मम॥ ८

हृतं राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य केशव।
प्रपन्नदायविभ्रंशो बाधां मे कुरुते हृदि॥ ९

अदितिने कहा— भक्तवत्सल देव! यदि आप मेरी भक्तिसे मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मेरा पुत्र इन्द्र तीनों लोकोंका स्वामी हो जाय। असुरोंने उसके राज्यको तथा यज्ञमें मिलनेवाले भागको छीन लिया है। अतः वरदाता प्रभो! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मेरा पुत्र उसे (राज्यको) प्राप्त कर ले। केशव! मेरे पुत्रके राज्यके असुरोंद्वारा छीने जानेका मुझे दुःख नहीं है, किंतु (उसके) प्राप्त होनेवाले उचित भागका छिन जाना मेरे हृदयको कुरेद रहा है॥ ७—९॥

श्रीभगवानुवाच

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितम्।
स्वांशेन चैव ते गर्भे सम्भविष्यामि कश्यपात्॥ १०

श्रीभगवान् बोले— देवि! तुम्हारी इच्छाके अनुकूल मैंने तुम्हारे ऊपर कृपा-प्रसाद प्रकट किया है। (सुनो,) कश्यपसे तुम्हारे गर्भमें मैं अपने अंशसे जन्म लूँगा और

तव गर्भे समुद्भूतस्ततस्ते ये त्वरातयः।
तानहं च हनिष्यामि निवृत्ता भव नन्दिनि॥ ११

तुम्हारी कोखसे जन्म लेकर फिर तुम्हारे जितने शत्रु हैं, उन (सभी)-का वध करूँगा। नन्दिनि! तुम शोक छोड़कर स्वस्थ हो जाओ॥ १०-११॥

अदितिरुवाच

प्रसीद देवदेवेश नमस्ते विश्वभावन।
नाहं त्वामुदरे वोढुमीश शक्ष्यामि केशव।
यस्मिन् प्रतिष्ठितं सर्वं विश्वयोनिस्त्वमीश्वरः॥ १२

अदितिने कहा—देवदेवेश! आप (मुझपर) प्रसन्न हों। विश्वभावन! आपको मेरा नमस्कार है। हे केशव! हे ईश! आप विश्वके उत्पत्ति-स्थान और ईश्वर हैं। जिन आप प्रभुमें सारा संसार प्रतिष्ठित है, उन आपके भारको मैं अपनी कोखमें वहन न कर सकूँगी॥ १२॥

श्रीभगवानुवाच

अहं त्वां च वहिष्यामि आत्मानं चैव नन्दिनि।
न च पीडां करिष्यामि स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्॥ १३

इत्युक्त्वान्तर्हिते देवेऽदितिर्गर्भं समादधे।
गर्भस्थिते ततः कृष्णे चचाल सकला क्षितिः।
चकम्पिरे महाशैला जग्मुः क्षोभं महाब्धयः॥ १४

यतो यतोऽदितिर्याति ददाति पदमुत्तमम्।
ततस्ततः क्षितिः खेदान्ननाम द्विजपुंगवाः॥ १५

दैत्यानामपि सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने।
बभूव तेजसो हानिर्यथोक्तं परमेष्ठिना॥ १६

श्रीभगवान्‌ने कहा— नन्दिनि! मैं स्वयं अपना और तुम्हारा—दोनोंका भार वहन कर लूँगा; मैं तुम्हें पीड़ा नहीं करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। यह कहकर भगवान्‌के चले जानेपर अदितिने गर्भको धारण कर लिया। भगवान् (कृष्ण)-के गर्भमें आ जानेपर सारी पृथ्वी डगमगा गयी। बड़े-बड़े पर्वत हिलने लगे एवं विशाल समुद्र विक्षुब्ध हो गये। द्विजश्रेष्ठो! अदिति जहाँ-जहाँ जाती या पैर रखती थीं, वहाँ-वहाँकी पृथ्वी खेद (भार)-के कारण झुक जाती थी। जैसा कि ब्रह्माने (पहले) बतलाया था, मधुसूदनके गर्भमें आनेपर सभी दैत्योंके तेजकी हानि हो गयी॥ १३—१६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

बलिका पितामह प्रह्लादसे प्रश्न, प्रह्लादका अदितिके गर्भमें वामनागमन एवं विष्णु-महिमाका कथन तथा स्तवन

लोमहर्षण उवाच

निस्तेजसोऽसुरान् दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः।
प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम्॥ १

लोमहर्षण बोले— उसके बाद (दैत्योंके तेजके समाप्त हो जानेपर) असुरराज बलिने समस्त असुरोंको श्रीहीन देखकर अपने पितामह प्रह्लादजीसे पूछा—॥ १॥

बलिरुवाच

तात निस्तेजसो दैत्या निर्दग्धा इव वह्निना।
किमेते सहसैवाद्य ब्रह्मदण्डहता इव॥ २

बलिने कहा— तात! (इस समय) दैत्यलोग आगसे झुलसे हुए-से कान्तिहीन हो गये हैं। आज ये ऐसे क्यों हो गये हैं? प्रतीत होता है कि मानो इन्हें ब्राह्मणका अभिशाप लग गया है—ये ब्रह्मदण्डसे जैसे

दुरिष्टं किं तु दैत्यानां किं कृत्या विधिनिर्मिता।
नाशायैषां समुद्भूता येन निस्तेजसोऽसुराः॥ ३

पीड़ित हो गये हैं! क्या दैत्योंका कोई अशुभ होनेवाला है? अथवा इनके नाशके लिये ब्रह्माने कृत्या (पुरश्चरणसे उत्पन्न की गयी मारिकाशक्ति)-को उत्पन्न कर दिया है, जिससे ये असुरलोग इस प्रकार तेजसे रहित हो गये हैं॥ २-३॥

लोमहर्षण उवाच

इत्यसुरवरस्तेन पृष्टः पौत्रेण ब्राह्मणाः।
चिरं ध्यात्वा जगादेदमसुरं तं तदा बलिम्॥ ४

लोमहर्षण बोले— ब्राह्मणो! अपने पौत्र (पुत्रके पुत्र) राजा बलिके इस प्रकार पूछनेपर दैत्योंमें प्रधान प्रह्लादने देरतक ध्यान करके तब असुर बलिसे कहा—॥ ४॥

प्रह्लाद उवाच

चलन्ति गिरयो भूमिर्जहाति सहसा धृतिम्।
सद्यः समुद्राः क्षुभिता दैत्या निस्तेजसः कृताः॥ ५

सूर्योदये यथा पूर्वं तथा गच्छन्ति न ग्रहाः।
देवानां च परा लक्ष्मीः कारणेनानुमीयते॥ ६

महदेतन्महाबाहो कारणं दानवेश्वर।
न ह्यल्पमिति मन्तव्यं त्वया कार्यं कथंचन॥ ७

प्रह्लादने कहा—दानवाधिप! इस समय पहाड़ डगमगा रहे हैं, पृथ्वी एकाएक अपनी (स्वाभाविक) धीरता छोड़ रही है, समुद्रमें जोरोंकी लहरें उठ रही हैं और दैत्य तेजसे रहित हो गये हैं। सूर्योदय होनेपर अब पहलेके समान ग्रहोंकी चाल नहीं दीखती है। इन कारणों (लक्षणों)-से अनुमान होता है कि देवताओंका अभ्युदय होनेवाला है। महाबाहु! दानवेश्वर! यह कोई विशेष कारण अवश्य है। इस कारणको छोटा नहीं मानना चाहिये और आपको इसका कोई प्रतियत्न (उपाय) करना चाहिये॥ ५—७॥

लोमहर्षण उवाच

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः।
अत्यर्थभक्तो देवेशं जगाम मनसा हरिम्॥ ८
स ध्यानपथगं कृत्वा प्रह्लादश्च मनोऽसुरः।
विचारयामास ततो यथा देवो जनार्दनः॥ ९
स ददर्शोदरेऽदित्याः प्रह्लादो वामनाकृतिम्।
तदन्तश्च वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा॥ १०
साध्यान् विश्वे तथादित्यान् गन्धर्वोरगराक्षसान्।
विरोचनं च तनयं बलिं चासुरनायकम्॥ ११
जम्भं कुजम्भं नरकं बाणमन्यांस्तथासुरान्।
आत्मानमुर्वीं गगनं वायुं वारि हुताशनम्॥ १२
समुद्राद्रिसरिद्द्वीपान् सरांसि च पशून् महीम्।
वयोमनुष्यानखिलांस्तथैव च सरीसृपान्॥ १३
समस्तलोकस्रष्टारं ब्रह्माणं भवमेव च।
ग्रहनक्षत्रताराश्च दक्षाद्यांश्च प्रजापतीन्॥ १४
सम्पश्यन् विस्मयाविष्टः प्रकृतिस्थः क्षणात् पुनः।
प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं बलिं वैरोचनिं ततः॥ १५

लोमहर्षणने कहा— असुरोंमें श्रेष्ठ महान् भक्त प्रह्लादने दैत्यराज बलिसे इस प्रकार कहकर मनसे श्रीहरिका ध्यान किया। असुर प्रह्लादने अपने मनको भगवान्‌के ध्यान-पथमें लगाकर चिन्तन किया—जैसा कि भगवान्‌का स्वरूप है। उन्होंने उस समय (चिन्तन करते समय) अदितिकी कोखमें वामनके रूपमें भगवान्‌को देखा। उनके भीतर वसुओं, रुद्रों, दोनों अश्विनीकुमारों, मरुतों, साध्यों, विश्वेदेवों, आदित्यों, गन्धर्वों, नागों, राक्षसों तथा अपने पुत्र विरोचन एवं असुरनायक बलि, जम्भ, कुजम्भ, नरक, बाण तथा इस प्रकारके दूसरे बहुत-से असुरों एवं अपनेको और पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, समुद्रों, पर्वतों, नदियों, द्वीपों, सरों, पशुओं, भूसम्पत्तियों, पक्षियों, सम्पूर्ण मनुष्यों, सरकनेवाले जीवों, समस्त लोकोंके स्रष्टा ब्रह्मा, शिव, ग्रहों, नक्षत्रों, ताराओं तथा दक्ष आदि प्रजापतियोंको भी देखा। प्रह्लाद इन्हें देखकर आश्चर्यमें पड़ गये, किंतु क्षणमात्रमें ही पुनः पूर्ववत् प्रकृतिस्थ हो गये और विरोचन-पुत्र दैत्योंके राजा बलिसे बोले—॥ ८—१५॥

तत्संज्ञातं मया सर्वं यदर्थं भवतामियम्।
तेजसो हानिरुत्पन्ना शृण्वन्तु तदशेषतः॥ १६

देवदेवो जगद्योनिरयोनिर्जगदादिजः।
अनादिरादिर्विश्वस्य वरेण्यो वरदो हरिः॥ १७

परावराणां परमः परापरसतां गतिः।
प्रभुः प्रमाणं मानानां सप्तलोकगुरोर्गुरुः।
स्थितिं कर्तुं जगन्नाथं सोऽचिन्त्यो गर्भतां गतः॥ १८

प्रभुः प्रभूणां परमः पराणा-
मनादिमध्यो भगवाननन्तः।
त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेकः
कर्तुं महात्माऽदितिजोऽवतीर्णः॥ १९
न यस्य रुद्रा न च पद्मयोनि-
र्नेन्द्रो न सूर्येन्दुमरीचिमिश्राः।
जानन्ति दैत्याधिप यत्स्वरूपं
स वासुदेवः कलयावतीर्णः॥ २०
यमक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यं ज्ञानविधूतपापाः।
यस्मिन् प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति
तं वासुदेवं प्रणमामि देवम्॥ २१
भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति
यथोर्मयस्तोयनिधेरजस्रम्।
लयं च यस्मिन् प्रलये प्रयान्ति
तं वासुदेवं प्रणतोऽस्म्यचिन्त्यम्॥ २२
न यस्य रूपं न बलं प्रभावो
न च प्रतापः परमस्य पुंसः।
विज्ञायते सर्वपितामहाद्यै-
स्तं वासुदेवं प्रणमामि नित्यम्॥ २३
रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे त्वगेषा
स्पर्शग्रहित्री रसना रसस्य।
घ्राणं च गन्धग्रहणे नियुक्तं
न घ्राणचक्षुः श्रवणादि तस्य॥ २४
स्वयंप्रकाशः परमार्थतो यः
सर्वेश्वरो वेदितव्यः स युक्त्या।
शक्यं तमीड्यमनघं च देवं
ग्राह्यं नतोऽहं हरिमीशितारम्॥ २५

(दैत्यो!) मैंने तुमलोगोंकी कान्तिहीनताके (वास्तविक) सब कारणको—अच्छी तरहसे समझ लिया है। (अब) उसे तुमलोग भलीभाँति सुनो। देवोंके देव, जगद्योनि, (विश्वको उत्पन्न करनेवाले) किंतु स्वयं अयोनि, विश्वके प्रारम्भमें विद्यमान पर स्वयं अनादि, फिर भी विश्वके आदि, वर देनेवाले वरणीय हरि, सर्वश्रेष्ठोंमें भी परम (श्रेष्ठ), बड़े-छोटे सज्जनोंकी गति, मानोंके भी प्रमाणभूत प्रभु, सातों लोकोंके गुरुओंके भी गुरु एवं चिन्तनमें न आने योग्य विश्वके स्वामी मर्यादा (धर्महेतु)-की स्थापना करनेके लिये (अदितिके) गर्भमें आ गये हैं। प्रभुओंके प्रभु, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, आदि-मध्यसे रहित, अनन्त भगवान् तीनों लोकोंको सनाथ करनेके लिये अदितिके पुत्रके रूपमें अंशावतारस्वरूपसे अवतीर्ण हुए हैं॥ १६—१९॥

दैत्यपते! जिन वासुदेव भगवान्के वास्तविक स्वरूपको रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र एवं मरीचि आदि श्रेष्ठ पुरुष नहीं जानते, वे ही वासुदेव भगवान् अपनी एक कलासे अवतीर्ण हुए हैं। वेदके जाननेवाले जिन्हें अक्षर कहते हैं तथा ब्रह्मज्ञानके होनेसे जिनके पाप नष्ट हो गये हैं—ऐसे निष्पाप शुद्ध प्राणी जिनमें प्रवेश पाते हैं और जिनके भीतर प्रविष्ट हुए लोग पुनः जन्म नहीं लेते—ऐसे उन वासुदेव भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ। समुद्रकी लहरोंके समान जिनसे समस्त जीव निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं तथा प्रलयकालमें जिनके भीतर विलीन हो जाते हैं, उन अचिन्त्य वासुदेवको मैं प्रणाम करता हूँ। ब्रह्मा आदि जिन परम पुरुषके रूप, बल, प्रभाव और प्रतापको नहीं जान पाते उन वासुदेवको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ॥ २०—२३॥

जिन परमेश्वरने रूप देखनेके लिये आँखोंको, स्पर्शज्ञानके लिये त्वचाको, खट्टे-मीठे स्वाद लेनेके लिये जीभको और सुगन्ध-दुर्गन्ध सूँघनेके लिये नाकको नियत किया है; पर स्वयं उनके नाक, आँख और कान आदि नहीं हैं। जो वस्तुतः स्वयं प्रकाशस्वरूप हैं, वे सर्वेश्वर युक्तिके द्वारा (कुछ-कुछ) जाने जा सकते हैं; उन सर्वसमर्थ, स्तुतिके योग्य, किसी भी प्रकारके मलसे रहित, (भक्तिसे) ग्राह्य, ईश हरिदेवको मैं प्रणाम करता हूँ।

येनैकदंष्ट्रेण समुद्धृतेयं
धरा चला धारयतीह सर्वम्।
शेते ग्रसित्वा सकलं जगद् य-
स्तमीड्यमीशं प्रणतोऽस्मि विष्णुम्॥ २६
अंशावतीर्णेन च येन गर्भे
हृतानि तेजांसि महासुराणाम्।
नमामि तं देवमनन्तमीश-
मशेषसंसारतरोः कुठारम्॥ २७
देवो जगद्योनिरयं महात्मा
स षोडशांशेन महाऽसुरेन्द्राः।
सुरेन्द्रमातुर्जठरं प्रविष्टो
हृतानि वस्तेन बलं वपूंषि॥ २८

बलिरुवाच

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम्।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिकाः॥ २९
विप्रचित्तिः शिबिः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च।
हयशिरा अश्वशिरा भङ्गकारो महाहनुः॥ ३०
प्रतापी प्रघशः शम्भुः कुक्कुराक्षश्च दुर्जयः।
एते चान्ये च मे सन्ति दैतेया दानवास्तथा॥ ३१
महाबला महावीर्या भूभारधरणक्षमाः।
एषामेकैकशः कृष्णो न वीर्यार्द्धेन सम्मितः॥ ३२

लोमहर्षण उवाच

पौत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः।
सक्रोधश्च बलिं प्राह वैकुण्ठाक्षेपवादिनम्॥ ३३
विनाशमुपयास्यन्ति दैत्या ये चापि दानवाः।
येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बुद्धिरविवेकवान्॥ ३४
देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम्।
त्वामृते पापसंकल्प कोऽन्य एवं वदिष्यति॥ ३५
य एते भवता प्रोक्ताः समस्ता दैत्यदानवाः।
सब्रह्मकास्तथा देवाः स्थावरान्ता विभूतयः॥ ३६
त्वं चाहं च जगच्चेदं साद्रिद्रुमनदीवनम्।
ससमुद्रद्वीपलोकोऽयं यश्चेदं सचराचरम्॥ ३७
यस्याभिवाद्यवन्द्यस्य व्यापिनः परमात्मनः।
एकांशांशकलाजन्म कस्तमेवं प्रवक्ष्यति॥ ३८

जिनके द्वारा एक मोटे तथा बड़े दाँतसे निकाली गयी चिरस्थायिनी पृथ्वी सभी कुछ धारण करनेमें समर्थ है तथा जो समस्त संसारको अपनेमें स्थान देकर सोनेका स्वाँग धारण करते हैं, उन स्तुत्य ईश विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने अपने अंशसे अदितिके गर्भमें आकर महासुरोंके तेजका अपहरण कर लिया, उन समस्त संसाररूपी वृक्षके लिये कुठाररूप धारण करनेवाले अनन्त देवाधीश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। हे महासुरो! जगत्‌की उत्पत्तिके स्थान वे ही महात्मा देव अपने सोलहवें अंशकी कलासे इन्द्रकी माताके गर्भमें प्रविष्ट हुए हैं और उन्होंने ही तुमलोगोंके शारीरिक बलको अपहृत कर लिया है॥ २४—२८॥

बलिने कहा— तात! जिनसे हम सबको डर है वे हरि कौन हैं? हमारे पास वासुदेवसे अधिक शक्तिशाली सैकड़ों दैत्य हैं; जैसे—विप्रचित्ति, शिबि, शङ्कु, अयःशङ्कु, हयशिरा, अश्वशिरा, (विघटन करनेवाला) भङ्गकार, महाहनु, प्रतापी, प्रघश, शम्भु, कुक्कुराक्ष एवं दुर्जय। ये तथा अन्य भी ऐसे अनेक दैत्य एवं दानव हैं। ये सभी महाबलवान् तथा महापराक्रमी एवं पृथ्वीके भारको धारण करनेमें समर्थ हैं। कृष्ण तो हमारे इन बलवान् दैत्योंमेंसे पृथक्-पृथक् एक-एकके आधे बलके समान भी नहीं हैं॥ २९—३२॥

लोमहर्षणने कहा— अपने पौत्रकी इस उक्तिको सुनकर दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद क्रुद्ध हो गये और भगवान्‌की निन्दा करनेवाले बलिसे बोले—बलि! तेरे-जैसे विवेकहीन एवं दुर्बुद्धि राजाके साथ ये सारे दैत्य एवं दानव मारे जायँगे। हे पापको ही सोचनेवाले पापबुद्धि! तुम्हारे सिवा ऐसा कौन है, जो देवाधिदेव महाभाग अज एवं सर्वव्यापी वासुदेवको इस तरह कहेगा॥ ३३—३५॥

तुमने जिन-जिनका नाम लिया है, वे सभी दैत्य एवं दानव तथा ब्रह्माके साथ सभी देवता एवं चराचरकी समस्त विभूतियाँ, तुम और मैं, पर्वत तथा वृक्ष, नदी और वनसे युक्त सारा जगत् तथा समुद्र एवं द्वीपोंसे युक्त सम्पूर्ण लोक तथा चर और अचर जिन सर्ववन्द्य श्रेष्ठ सर्वव्यापी परमात्माके एक अंशकी अंशकलासे उत्पन्न

ऋते विनाशाभिमुखं त्वामेकमविवेकिनम्।
दुर्बुद्धिमजितात्मानं वृद्धानां शासनातिगम्॥ ३९

हुए हैं, उनके विषयमें विनाशकी ओर चलनेवाले विवेकहीन, मूर्ख, इन्द्रियोंके गुलाम, वृद्धोंके आदेशोंका उल्लङ्घन करनेवाले तुम्हारी अपेक्षा कौन ऐसा (कृत्या नामसे) कह सकेगा?॥ ३६—३९॥

शोच्योऽहं यस्य मे गेहे जातस्तव पिताऽधमः।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो देवदेवावमानकः॥ ४०

तिष्ठत्यनेकसंसारसंघातौघविनाशिनि ।
कृष्णे भक्तिरहं तावदवेक्ष्यो भवता न किम्॥ ४१

न मे प्रियतरः कृष्णादपि देहोऽयमात्मनः।
इति जानात्ययं लोको भवांश्च दितिनन्दन॥ ४२

जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम।
निन्दां करोषि तस्य त्वमकुर्वन् गौरवं मम॥ ४३

विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले।
ममापि सर्वजगतां गुरुर्नारायणो हरिः॥ ४४

मैं (ही सचमुच) शोचनीय हूँ, जिसके घरमें तुम्हारा अधम पिता उत्पन्न हुआ, जिसका तुम्हारे-जैसा देवदेव (विष्णु)-का तिरस्कार करनेवाला पुत्र है। जो अनेक संसारके समूहोंके प्रवाहका विनाश करनेवाले हैं, ऐसे कृष्णमें भक्तिके लिये तुम्हें क्या मेरा भी ध्यान नहीं रहा। दितिनन्दन! मेरे विषयमें समस्त संसार एवं तुम भी यह जानते हो कि मुझे यह मेरी देह भी कृष्णसे अधिक प्रिय नहीं है। फिर यह समझते हुए भी कि भगवान् कृष्ण मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, फिर भी तुम मेरी मर्यादापर ध्यान न देकर ठेस पहुँचाते हुए उनकी निन्दा कर रहे हो। बलि! तुम्हारा गुरु (पिता) विरोचन है, उसका गुरु (पिता) मैं हूँ तथा मेरे भी गुरु सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् नारायण श्रीहरि हैं॥ ४०—४४॥

निन्दां करोषि तस्मिंस्त्वं कृष्णे गुरुगुरोर्गुरौ।
यस्मात् तस्मादिहैव त्वमैश्वर्याद् भ्रंशमेष्यसि॥ ४५

स देवो जगतां नाथो बले प्रभुर्जनार्दनः।
नन्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते भक्तिमानत्र मे गुरुः॥ ४६

एतावन्मात्रमप्यत्र निन्दता जगतो गुरुम्।
नापेक्षितस्त्वया यस्मात् तस्माच्छापं ददामि ते॥ ४७

यथा मे शिरसश्छेदादिदं गुरुतरं बले।
त्वयोक्तमच्युताक्षेपं राज्यभ्रष्टस्तथा पत॥ ४८

यथा न कृष्णादपरः परित्राणं भवार्णवे।
तथाऽचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम्॥ ४९

जिस कारण तुम अपने गुरु (पिता विरोचन)-के गुरु (पिता मैं प्रह्लाद)-के भी गुरु विष्णुकी निन्दा कर रहे हो, इस कारण तुम यहीं ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाओगे। बलि! वे प्रभु जनार्दनदेव जगत्के स्वामी हैं। इस विषयमें मेरा गुरु (अर्थात् मैं) भक्तिमान् हूँ, यह विचारकर तुझे मेरी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। जिस कारणसे जगद्गुरुकी निन्दा करनेवाले तुमने मेरी इतनी भी अपेक्षा नहीं की, इस कारण मैं तुम्हें शाप देता हूँ; क्योंकि बलि! तुम्हारे द्वारा अच्युतके प्रति अपमानजनित ये वचन मेरे लिये सिर कट जानेसे भी अधिक कष्टदायी हैं, अतः तुम राज्यसे भ्रष्ट होकर गिर जाओ। भवसागरमें भगवान् विष्णुको छोड़कर दूसरा कोई रक्षक नहीं है, अतः शीघ्र ही मैं तुम्हें राज्यसे भ्रष्ट हुआ देखूँगा॥ ४५—४९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

बलिका प्रह्लादको संतुष्ट करना, अदितिके गर्भसे वामनका प्राकट्य; ब्रह्माद्वारा स्तुति, वामनका बलिके यज्ञमें जाना

लोमहर्षण उवाच

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा वचनं रौद्रमप्रियम्।
प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः॥ १

बलिरुवाच

प्रसीद तात मा कोपं कुरु मोहहते मयि।
बलावलेपमूढेन मयैतद्वाक्यमीरितम्॥ २

मोहापहतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोत्तम।
यच्छप्तोऽस्मि दुराचारस्तत्साधु भवता कृतम्॥ ३

राज्यभ्रंशं यशोभ्रंशं प्राप्स्यामीति ततस्त्वहम्।
विषण्णोऽस्मि यथा तात तथैवाविनये कृते॥ ४

त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नातिदुर्लभम्।
संसारे दुर्लभास्तात गुरवो ये भवद्विधाः॥ ५

प्रसीद तात मा कोपं कर्तुमर्हसि दैत्यप।
त्वत्कोपपरिदग्धोऽहं परितप्ये दिवानिशम्॥ ६

प्रह्लाद उवाच

वत्स कोपेन मे मोहो जनितस्तेन ते मया।
शापो दत्तो विवेकश्च मोहेनापहृतो मम॥ ७

यदि मोहेन मे ज्ञानं नाक्षिप्तं स्यान्महासुर।
तत्कथं सर्वगं जानन् हरिं कच्चिच्छपाम्यहम्॥ ८

यो यः शापो मया दत्तो भवतोऽसुरपुंगव।
भाव्यमेतेन नूनं ते तस्मात्त्वं मा विषीद वै॥ ९

अद्यप्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ।
भवेथा भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति॥ १०

शापं प्राप्य च मे वीर देवेशः संस्मृतस्त्वया।
तथा तथा वदिष्यामि श्रेयस्त्वं प्राप्स्यसे यथा॥ ११

लोमहर्षणने कहा— दैत्यपति बलि प्रह्लादकी इस प्रकार कठोर एवं अप्रिय उक्तिको सुनकर उनके चरणोंमें बार-बार सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए मनाने लगा॥ १॥

बलिने कहा— तात! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों, मैं मूढ़ हो गया था, मेरे ऊपर क्रोध न करें। बलके घमण्डसे विवेकहीन होनेके कारण मैंने यह वचन कहा था। दैत्यश्रेष्ठ! मोहके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, मैं अधम हूँ। मैंने सदाचारका पालन नहीं किया, जिससे मुझ पापाचारीको आपने जो शाप दिया, वह बहुत ठीक किया। तात! आप (यतः) मेरी उद्दण्डताके कारण बहुत दुःखी हैं, अतः मैं राज्यसे च्युत और अपनी कीर्तिसे रहित हो जाऊँगा। तात! संसारमें तीनों लोकोंका राज्य, ऐश्वर्य अथवा अन्य किसी (वस्तु)-का मिलना बहुत कठिन नहीं है, परंतु आप-जैसे जो गुरुजन हैं, वे संसारमें दुर्लभ हैं। दैत्योंकी रक्षा करनेवाले तात! आप प्रसन्न हों, क्रोध न करें। आपका क्रोध मुझे जला रहा है, इसलिये मैं दिन-रात (आठों प्रहर) संतप्त हो रहा हूँ॥ २—६॥

प्रह्लाद बोले— वत्स! क्रोधके कारण हमें मोह उत्पन्न हो गया था और उसीने मेरी विचार करनेवाली बुद्धि भी नष्ट कर दी थी, इसीसे मैंने तुम्हें शाप दे दिया। महासुर! यदि मोहवश मेरा ज्ञान दूर नहीं हुआ होता तो मैं भगवान्‌को सब जगह विद्यमान जानता हुआ भी तुम्हें शाप कैसे देता। असुरश्रेष्ठ! मैंने तुम्हें जो क्रोधवश शाप दिया है, वह तो तुम्हारे लिये होगा, किंतु तुम दुःखी मत हो; बल्कि आजसे तुम उन देवोंके भी ईश्वर भगवान् अच्युत हरिकी भक्ति करनेवाले बन जाओ— भक्त हो जाओ। वे ही तुम्हारे रक्षक हो जायँगे। वीर! मेरा शाप पाकर तुमने देवेश्वर भगवान्‌का स्मरण किया है, अतः मैं तुमसे वही कहूँगा, जिससे तुम कल्याणको प्राप्त करो॥ ७—११॥

लोमहर्षण उवाच

अदितिर्वरमासाद्य सर्वकामसमृद्धिदम्।
क्रमेण ह्युदरे देवो वृद्धिं प्राप्तो महायशाः॥ १२

ततो मासेऽथ दशमे काले प्रसव आगते।
अजायत स गोविन्दो भगवान् वामनाकृतिः॥ १३

अवतीर्णे जगन्नाथे तस्मिन् सर्वामरेश्वरे।
देवाश्च मुमुचुर्दुःखं देवमाताऽदितिस्तथा॥ १४

ववुर्वाताः सुखस्पर्शा नीरजस्कमभून्नभः।
धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत॥ १५

नोद्वेगश्चाप्यभूद् देहे मनुजानां द्विजोत्तमाः।
तदा हि सर्वभूतानां धर्मे मतिरजायत॥ १६

तं जातमात्रं भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
जातकर्मादिकां कृत्वा क्रियां तुष्टाव च प्रभुम्॥ १७

लोमहर्षणने कहा—(उधर) अदितिने सभी कामनाओंकी समृद्धि करनेवाले वरको प्राप्त कर लिया तब उसके उदरमें महायशस्वी देव (भगवान्) धीरे-धीरे बढ़ने लगे। इसके बाद दसवें महीनेमें जब प्रसवका समय आया तब भगवान् गोविन्द वामनाकारमें उत्पन्न हो गये। संसारके स्वामी उन अखिलेश्वरके अवतार ले लेनेपर देवता और देवमाता अदिति दुःखसे मुक्त हो गये। फिर तो (संसारमें) आनन्ददायी वायु बहने लगी, गगनमण्डल बिना धूलिका (स्वच्छ) हो गया एवं सभी जीवोंकी बुद्धि धर्म करनेमें लग गयी। द्विजोत्तमो! उस समय मनुष्योंकी देहमें कोई घबड़ाहट नहीं थी और तब समस्त प्राणियोंकी बुद्धि धर्ममें लग गयी। उनके उत्पन्न होते ही लोकपितामह ब्रह्माने उनकी तत्काल जातकर्म आदि क्रिया (संस्कार) सम्पन्न करके उन प्रभुकी स्तुति की॥ १२—१७॥

ब्रह्मोवाच

जयाधीश जयाजेय जय विश्वगुरो हरे।
जन्ममृत्युजरातीत जयानन्त जयाच्युत॥ १८

जयाजित जयाशेष जयाव्यक्तस्थिते जय।
परमार्थार्थ सर्वज्ञ ज्ञानज्ञेयार्थनिःसृत॥ १९

जयाशेष जगत्साक्षिञ्जगत्कर्त्तुर्जगद्गुरो।
जगतोऽजगदन्तेश स्थितौ पालयते जय॥ २०

जयाखिल जयाशेष जय सर्वहृदिस्थित।
जयादिमध्यान्तमय सर्वज्ञानमयोत्तम॥ २१

मुमुक्षुभिरनिर्देश्य नित्यहृष्ट जयेश्वर।
योगिभिर्मुक्तिकामैस्तु दमादिगुणभूषण॥ २२

ब्रह्मा बोले—अधीश! आपकी जय हो। अजेय! आपकी जय हो। विश्वके गुरु हरि! आपकी जय हो। जन्म-मृत्यु तथा जरासे अतीत अनन्त! आपकी जय हो। अच्युत! आपकी जय हो। अजित! आपकी जय हो। अशेष! आपकी जय हो। अव्यक्त स्थितिवाले भगवन्! आपकी जय हो। परमार्थार्थकी (उत्तम अभिप्रायकी) पूर्तिमें निमित्त! ज्ञान और ज्ञेयके अर्थके उत्पादक सर्वज्ञ! आपकी जय हो। अशेष जगत्के साक्षी! जगत्के कर्ता! जगद्गुरु! आपकी जय हो। जगत् (चर) एवं अजगत् (अचर)-के स्थिति, पालन एवं प्रलयके स्वामी! आपकी जय हो। अखिल! आपकी जय हो। अशेष! आपकी जय हो। सभीके हृदयमें रहनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। आदि, मध्य और अन्तस्वरूप! समस्त ज्ञानकी मूर्ति, उत्तम! आपकी जय हो। मुमुक्षुओंके द्वारा अनिर्देश्य, नित्य-प्रसन्न ईश्वर! आपकी जय हो। हे मुक्तिकी कामना करनेवाले योगियोंसे सेवित, दम आदि गुणोंसे विभूषित परमेश्वर! आपकी जय हो॥ १८—२२॥

जयातिसूक्ष्म दुर्ज्ञेय जय स्थूल जगन्मय।
जय सूक्ष्मातिसूक्ष्म त्वं जयानिन्द्रिय सेन्द्रिय॥ २३

जय स्वमायायोगस्थ शेषभोग जयाक्षर।
जयैकदंष्ट्रप्रान्तेन समुद्धृतवसुंधर॥ २४

हे अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपवाले! हे दुर्ज्ञेय (कठिनतासे समझमें आनेवाले)! आपकी जय हो। हे स्थूल और जगत्-मूर्ति! आपकी जय हो। हे सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म प्रभो! आपकी जय हो। हे इन्द्रियोंसे रहित तथा इन्द्रियोंसे युक्त (नाथ)! आपकी जय हो।

नृकेसरिन् सुरारातिवक्षःस्थलविदारण।
साम्प्रतं जय विश्वात्मन् मायावामन केशव॥ २५

निजमायापरिच्छिन्न जगद्धातर्जनार्दन।
जयाचिन्त्य जयानेकस्वरूपैकविध प्रभो॥ २६

वर्द्धस्व वर्धितानेकविकारप्रकृते हरे।
त्वय्येषा जगतामीशे संस्थिता धर्मपद्धतिः॥ २७

न त्वामहं न चेशानो नेन्द्राद्यास्त्रिदशा हरे।
ज्ञातुमीशा न मुनयः सनकाद्या न योगिनः॥ २८

त्वं मायापटसंवीतो जगत्यत्र जगत्पते।
कस्त्वां वेत्स्यति सर्वेश त्वत्प्रसादं विना नरः॥ २९

त्वमेवाराधितो यस्य प्रसादसुमुखः प्रभो।
स एव केवलं देवं वेत्ति त्वां नेतरो जनः॥ ३०

तदीश्वरेश्वरेशान विभो वर्द्धस्व भावन।
प्रभवायास्य विश्वस्य विश्वात्मन् पृथुलोचन॥ ३१

लोमहर्षण उवाच

एवं स्तुतो हृषीकेशः स तदा वामनाकृतिः।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचारूढसम्पदम्॥ ३२

स्तुतोऽहं भवता पूर्वमिन्द्राद्यैः कश्यपेन च।
मया च वः प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम्॥ ३३

भूयश्चाहं स्तुतोऽदित्या तस्याश्चापि मया श्रुतम्।
यथा शक्राय दास्यामि त्रैलोक्यं हतकण्टकम्॥ ३४

सोऽहं तथा करिष्यामि यथेन्द्रो जगतः पतिः।
भविष्यति सहस्राक्षः सत्यमेतद् ब्रवीमि वः॥ ३५

ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा हृषीकेशाय दत्तवान्।
यज्ञोपवीतं भगवान् ददौ तस्य बृहस्पतिः॥ ३६

हे अपनी मायासे योगमें स्थित रहनेवाले (स्वामी)! आपकी जय हो। शेषकी शय्यापर सोनेवाले अविनाशी शेषशायी प्रभो! आपकी जय हो। एक दाँतके कोनेपर पृथ्वीको उठानेवाले वराहरूपधारी भगवन्! आपकी जय हो। हे देवताओंके शत्रु (हिरण्यकशिपु)-के वक्षःस्थलको विदीर्ण करनेवाले नृसिंहभगवान् तथा विश्वकी आत्मा एवं अपनी मायासे वामनका रूप धारण करनेवाले केशव! आपकी जय हो। हे अपनी मायासे आवृत तथा संसारको धारण करनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। हे ध्यानसे परे अनेक स्वरूप धारण करनेवाले तथा एकविध प्रभो! आपकी जय हो। हरे! आपने प्रकृतिके भाँति-भाँति विकार बढ़ाये हैं। आपकी वृद्धि हो। जगत्का यह धर्ममार्ग आप प्रभुमें स्थित है॥ २३—२७॥

हे हरे! मैं, शंकर, इन्द्र आदि देव, सनकादि मुनि तथा योगिगण आपको जाननेमें असमर्थ हैं। हे जगत्पते! आप इस संसारमें मायारूपी वस्त्रसे ढके हैं। हे सर्वेश! आपकी प्रसन्नताके बिना कौन ऐसा मनुष्य है जो आपको जान सके। प्रभो! जो मनुष्य आपकी आराधना करता है और आप उसपर प्रसन्न होते हैं, वही आपको जानता है, अन्य नहीं। हे ईश्वरोंके भी ईश्वर! हे ईशान! हे विभो! हे भावन! हे विश्वात्मन्! हे पृथुलोचन! इस विश्वके प्रभव (उत्पत्ति—सृष्टिके कारण) विष्णु! आपकी वृद्धि हो—जय हो॥ २८—३१॥

लोमहर्षणने कहा—इस प्रकार जब वामनरूपमें अवतीर्ण भगवान्की स्तुति सम्पन्न हुई, तब हृषीकेश भगवान् हँसकर अभिप्रायपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त वाणीमें बोले—पूर्वकालमें आपने, इन्द्र आदि देवों तथा कश्यपने मेरी स्तुति की थी। मैंने भी आपलोगोंसे इन्द्रके लिये त्रिभुवनको देनेकी प्रतिज्ञा की थी। इसके बाद अदितिने मेरी स्तुति की तो उससे भी मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं बाधाओंसे रहित तीनों लोकोंको इन्द्रको दूँगा। अतः मैं ऐसा करूँगा, जिससे हजारों नेत्रोंवाले (इन्द्र) संसारके स्वामी होंगे। मेरा यह कथन सत्य है॥ ३२—३५॥

(हृषीकेश भगवान्के इस प्रकार अपने वचनकी सत्यता घोषित करनेके बाद) ब्रह्माने हृषीकेशको कृष्ण मृगचर्म समर्पित किया एवं भगवान् बृहस्पतिने उन्हें

आषाढमददाद् दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः।
कमण्डलुं वसिष्ठश्च कौशं चीरमथाङ्गिराः।
आसनं चैव पुलहः पुलस्त्यः पीतवाससी॥ ३७

उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवस्वरभूषणाः।
शास्त्राण्यशेषाणि तथा सांख्ययोगोक्तयश्च याः॥ ३८

स वामनो जटी दण्डी छत्री धृतकमण्डलुः।
सर्वदेवमयो देवो बलेरध्वरमभ्यगात्॥ ३९

यत्र यत्र पदं विप्रा भूभागे वामनो ददौ।
ददाति भूमिर्विवरं तत्र तत्राभिपीडिता॥ ४०

स वामनो जडगतिर्मृदु गच्छन् सपर्वताम्।
साब्धिद्वीपवतीं सर्वां चालयामास मेदिनीम्॥ ४१

बृहस्पतिस्तु शनकैर्मार्गं दर्शयते शुभम्।
तथा क्रीडाविनोदार्थमतिजाड्यगतोऽभवत्॥ ४२

ततः शेषो महानागो निःसृत्यासौ रसातलात्।
साहाय्यं कल्पयामास देवदेवस्य चक्रिणः॥ ४३

तदद्यापि च विख्यातमहेर्विलमनुत्तमम्।
तस्य संदर्शनादेव नागेभ्यो न भयं भवेत्॥ ४४

यज्ञोपवीत दिया। ब्रह्मपुत्र मरीचिने उन्हें पलाशदण्ड, वसिष्ठने कमण्डलु और अङ्गिराने रेशमी वस्त्र दिया। पुलहने आसन तथा पुलस्त्यने दो पीले वस्त्र दिये। ओंकारके स्वरसे अलंकृत वेद, सभी शास्त्र तथा सांख्ययोग आदि दर्शनोंकी उक्तियाँ उनका उपस्थान करने लगीं। समस्त देवताओंके मूर्तिरूप वामनभगवान् जटा, दण्ड, छत्र एवं कमण्डलु धारण करके बलिकी यज्ञभूमिमें पधारे॥ ३६—३९॥

ब्राह्मणो! पृथ्वीपर वामनभगवान् जिस-जिस स्थानपर डग रखते थे, वहाँकी दबी हुई भूमिमें दरार पड़ जाता था—गड्ढा हो जाता था। मधुरभावसे धीरे-धीरे चलते हुए वामनभगवान्‌ने समुद्रों, द्वीपों तथा पर्वतोंसे युक्त सारी पृथ्वीको कँपा दिया। बृहस्पति भी शनैः-शनैः उन्हें सारे कल्याणकारी मार्गको दिखाने लगे एवं स्वयं भी क्रीडापूर्ण मनोरञ्जनके लिये अत्यन्त धीरे-धीरे चलने लगे। उसके बाद महानाग शेष रसातलसे ऊपर आकर देवदेव चक्रधारी भगवान्‌की सहायता करने लगे। आज भी वह श्रेष्ठ सर्पोंका बिल विख्यात है और उसके दर्शनमात्रसे नागोंसे भय नहीं होता॥ ४०—४४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

वामनद्वारा तीन पग भूमिकी याचना तथा विराट्‌रूपसे तीनों लोकोंको तीन पगमें नाप लेना और बलिका पातालमें जाना

लोमहर्षण उवाच

सपर्वतवनामुर्वीं दृष्ट्वा संक्षुभितां बलिः।
पप्रच्छोशनसं शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥ १

आचार्य क्षोभमायाति साब्धिभूमिधरा मही।
कस्माच्च नासुरान् भागान् प्रतिगृह्णन्ति वह्नयः॥ २

इति पृष्टोऽथ बलिना काव्यो वेदविदां वरः।
उवाच दैत्याधिपतिं चिरं ध्यात्वा महामतिः॥ ३

लोमहर्षण बोले— बलिने वनों और पर्वतोंके साथ सम्पूर्ण पृथ्वीको क्षोभसे भरी देखकर हाथ जोड़ करके शुक्राचार्यको प्रणाम कर पूछा—आचार्यदेव! समुद्र तथा पर्वतोंके साथ पृथ्वीके क्षुब्ध होनेका क्या कारण है और अग्निदेव असुरोंके भागोंको क्यों नहीं ग्रहण कर रहे हैं? बलिके इस प्रकार प्रश्न करनेपर वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् शुक्राचार्यने चिरकालतक ध्यान लगाकर (और

अवतीर्णो जगद्योनिः कश्यपस्य गृहे हरिः।
वामनेनेह रूपेण परमात्मा सनातनः॥ ४

तथ्य समझकर) दैत्येन्द्रसे कहा—कश्यपके घरमें जगद्योनि—संसारको उत्पन्न करनेवाले सनातन परमात्मा वामनके रूपमें अवतीर्ण हो गये हैं॥ १—४॥

स नूनं यज्ञमायाति तव दानवपुंगव।
तत्पादन्यासविक्षोभादियं प्रचलिता मही॥ ५

कम्पन्ते गिरयश्चेमे क्षुभिता मकरालयाः।
नेयं भूतपतिं भूमिः समर्था वोढुमीश्वरम्॥ ६

सदेवासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
अनेनैव धृता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः।
धारयत्यखिलान् देवान् मनुष्यांश्च महासुरान्॥ ७

इयमस्य जगद्धातुर्माया कृष्णस्य गह्वरी।
धार्यधारकभावेन यया संपीडितं जगत्॥ ८

दानवश्रेष्ठ! वे ही प्रभु तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं। उन्हींके पैर रखनेसे पृथ्वीमें विक्षोभ हो रहा है जिससे यह पृथ्वी काँप रही है, ये पर्वत भी काँप रहे हैं और सिन्धुमें जोरोंकी लहरें उठ रही हैं। इस भूमिमें उन भूतपति भगवान्‌को वहन करनेकी शक्ति नहीं है। ये ही (परमात्मा) देव, असुर, गन्धर्व—देवों, मनुष्यों एवं महासुरोंको धारण करते हैं। जगत्‌को धारण करनेवाले भगवान् कृष्णकी ही यह गम्भीर (अचिन्त्य) माया है, जिस मायाके द्वारा यह संसार धार्यधारकभावसे क्षुब्ध हो रहा है॥ ५—८॥

तत्संनिधानादसुरा न भागार्हाः सुरद्विषः।
भुञ्जते नासुरान् भागानपि तेन त्रयोऽग्नयः॥ ९

शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमाऽब्रवीद् बलिः।
धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम्।
यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन् मत्तः कोऽन्योऽधिकः पुमान्॥ १०

यं योगिनः सदोद्युक्ताः परमात्मानमव्ययम्।
द्रष्टुमिच्छन्ति देवोऽसौ ममाध्वरमुपेष्यति।
यन्मयाचार्य कर्त्तव्यं तन्ममादेष्टुमर्हसि॥ ११

उनके सन्निधान होनेके कारण देवताओंके शत्रु दैत्यलोग यज्ञ-भाग पानेके योग्य नहीं रह गये हैं, अतएव तीनों अग्निदेव भी असुरोंके भागको नहीं ले रहे हैं। शुक्राचार्यकी बात सुननेके बाद बलिके रोंगटे खड़े हो गये। उसके बाद बलिने (शुक्राचार्यसे) कहा—ब्रह्मन्! मैं धन्य एवं कृतकृत्य हो गया, जो स्वयं यज्ञके अधिपति भगवान् लगातार मेरे यज्ञमें पधार रहे हैं। कौन दूसरा पुरुष मुझसे श्रेष्ठ है? सदैव सावधान रहनेवाले योगीलोग जिन नित्य परमात्माको देखना चाहते हैं, वे ही देव मेरे यज्ञमें (कृपाकर) पधार रहे हैं। आचार्य! मुझे जो करना चाहिये, उसे आप आदिष्ट कीजिये॥ ९—११॥

शुक्र उवाच

यज्ञभागभुजो देवा वेदप्रामाण्यतोऽसुर।
त्वया तु दानवा दैत्य यज्ञभागभुजः कृताः॥ १२

अयं च देवः सत्त्वस्थः करोति स्थितिपालनम्।
विसृष्टं च तथाऽयं च स्वयमत्ति प्रजाः प्रभुः॥ १३

भवांस्तु वन्दी भविता नूनं विष्णुः स्थितौ स्थितः।
विदित्वैवं महाभाग कुरु यत् ते मनोगतम्॥ १४

शुक्राचार्य बोले—असुर! वेदोंका विधान है कि यज्ञभागके भोक्ता देवता हैं। परंतु दैत्य! तुमने यज्ञभागका भोक्ता दानवोंको बना दिया है। (यह वेद-विधानके विपरीत किया है—विधानका उल्लङ्घन किया है।) ये ही देव सत्त्वगुणका आश्रय लेकर विश्वकी स्थिति और पालन करते हैं और ये ही सृष्टि भी करते हैं, फिर ये ही प्रभु स्वयं प्रजाका (जीवोंका) अन्त भी करते हैं। विष्णु स्थितिके कार्यमें (कल्याणमय मर्यादाके स्थापनमें) तत्पर हो गये हैं। अतः आपको निश्चय ही बन्दी होना है। महाभाग! इसपर विचारकर तुम्हारे मनमें जैसी

त्वयाऽस्य दैत्याधिपते स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि।
प्रतिज्ञा नैव वोढव्या वाच्यं साम तथाऽफलम्॥ १५

कृतकृत्यस्य देवस्य देवार्थं चैव कुर्वतः।
अलं दद्यां धनं देवे त्वेतद्वाच्यं तु याचतः।
कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुर॥ १६

इच्छा हो वैसा करो। दैत्यपते! (देखना) तुम थोड़ी-सी भी वस्तु देनेके लिये उनसे प्रतिज्ञा मत करना। व्यर्थकी कोमल और मधुर बातें करना। महासुर! कृतकृत्य एवं देवताओंका कार्य पूरा करनेवाले तथा देवताओंके ऐश्वर्यके लिये प्रयत्नशील भगवान् श्रीकृष्णके याचना करनेपर 'मैं देवताओंके हेतु पर्याप्त धन दूँगा' ऐसा कहना॥ १२—१६॥

बलिरुवाच

ब्रह्मन् कथमहं ब्रूयामन्येनापि हि याचितः।
नास्तीति किमु देवस्य संसारस्याघहारिणः॥ १७

व्रतोपवासैर्विविधैर्यः प्रभुर्गृह्यते हरिः।
स मे वक्ष्यति देहीति गोविन्दः किमतोऽधिकम्॥ १८

यदर्थं सुमहारम्भा दमशौचगुणान्वितैः।
यज्ञाः क्रियन्ते यज्ञेशः स मे देहीति वक्ष्यति॥ १९

तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं च नः।
यन्मां देहीति विश्वेशः स्वयमेव वदिष्यति॥ २०

बलि बोले— ब्रह्मन्! मैं दूसरोंके याचना करनेपर भी 'नहीं है'—ऐसा कैसे कह सकता हूँ? फिर संसारके पापोंको दूर करनेवाले (उन) देवसे कहनेकी तो बात ही क्या है? विविध प्रकारके व्रतों एवं उपवासोंसे जो परमेश्वर ग्रहण किये जाने योग्य हैं, वे ही गोविन्द मुझसे 'दो' इस प्रकार कहेंगे तो इससे बढ़कर (मेरे लिये) और (भाग्य) क्या हो सकता है? जिनके लिये दम-शमादि शौच—भीतरी-बाहरी पवित्रता आदि गुणोंसे युक्त लोग यज्ञीय उपकरणों एवं सम्पत्तियोंको लगाकर यज्ञ करते हैं, वे ही यज्ञेश (यज्ञके स्वामी) यदि मुझसे 'दो' इस प्रकार कहेंगे तो मेरे किये हुए सभी कर्म सफल हो गये और हमारा तपश्चरण भी सफल हो गया; क्योंकि विश्वके स्वामी स्वयं मुझसे 'दो'—इस तरह कहेंगे॥ १७—२०॥

नास्तीत्यहं गुरो वक्ष्ये तमभ्यागतमीश्वरम्।
प्राणत्यागं करिष्येऽहं न तु नास्ति जने क्वचित्॥ २१

नास्तीति यन्मया नोक्तमन्येषामपि याचताम्।
वक्ष्यामि कथमायाते तदद्य चामरेऽच्युते॥ २२

श्लाघ्य एव हि वीराणां दानाच्चापत्समागमः।
न बाधाकारि यद्दानं तदङ्ग बलवत् स्मृतम्॥ २३

मद्राज्ये नासुखी कश्चिन्न दरिद्रो न चातुरः।
न दुःखितो न चोद्विग्नो न शमादिविवर्जितः॥ २४

गुरुदेव! क्या अपने यहाँ (याचकरूपमें) आये उन परमेश्वरसे 'नहीं है'—मैं ऐसा कहूँ? (यह तो उचित नहीं जँचता) भले ही प्राणोंका त्याग कर दूँगा; किंतु किसी भी याचक मनुष्यसे 'नहीं है'—यह नहीं कह सकता। दूसरोंके भी याचना करनेपर जब मैंने 'नहीं है'—ऐसा नहीं कहा तो आज अपने यहाँ स्वयं पूर्ण परमेश्वरके आ जानेपर मैं यह कैसे कहूँगा कि 'नहीं है'? दानके कारण यदि कठिनाई आती है तो उसे वीर पुरुष प्रशंसनीय ही मानते हैं। क्योंकि दानका महत्त्व उससे और बढ़ जाता है। गुरो! (हाँ, साधारणतया यह समझा जाता है कि—) जो दान बाधा डालनेवाला नहीं होता, वह निःसंदेह बलवान् कहा गया है। (पर ऐसा प्रसङ्ग नहीं आ सकता; क्योंकि) मेरे राज्यमें ऐसा कोई भी नहीं है, जो सुखी न हो और न कोई रोगी या दुःखी ही है, न कोई किसीके द्वारा उद्वेजित किया गया है और न कोई

हृष्टस्तुष्टः सुगन्धी च तृप्तः सर्वसुखान्वितः।
जनः सर्वो महाभाग किमुताहं सदा सुखी॥ २५

एतद्विशिष्टमत्राहं दानबीजफलं लभे।
विदितं मुनिशार्दूल मयैतत् त्वन्मुखाच्छ्रुतम्॥ २६

मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः।
मम दानमवाप्यासौ पुष्णाति यदि देवताः॥ २७

एतद्बीजवरे दानबीजं पतति चेद् गुरौ।
जनार्दने महापात्रे किं न प्राप्तं ततो मया॥ २८

विशिष्टं मम तद्दानं परितुष्टाश्च देवताः।
उपभोगाच्छतगुणं दानं सुखकरं स्मृतम्॥ २९
मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः।
तेनाभ्येति न संदेहो दर्शनादुपकारकृत्॥ ३०

अथ कोपेन चाभ्येति देवभागोपरोधतः।
मां निहन्तुं ततो हि स्याद् वधः श्लाघ्यतरोऽच्युतात्॥ ३१

एतज्ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ दानविघ्नकरेण मे।
नैव भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते॥ ३२

लोमहर्षण उवाच

इत्येवं वदतस्तस्य प्राप्तस्तत्र जनार्दनः।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो मायावामनरूपधृक्॥ ३३

तं दृष्ट्वा यज्ञवाटं तु प्रविष्टमसुराः प्रभुम्।
जग्मुः प्रभावतः क्षोभं तेजसा तस्य निष्प्रभाः॥ ३४

जेपुश्च मुनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे।
वसिष्ठो गाधिजो गर्गो अन्ये च मुनिसत्तमाः॥ ३५

बलिश्चैवाखिलं जन्म मेने सफलमात्मनः।
ततःसंक्षोभमापन्नो न कश्चित् किंचिदुक्तवान्॥ ३६

प्रत्येकं देवदेवेशं पूजयामास तेजसा।
अथासुरपतिं प्रह्वं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तान्॥ ३७

शम आदि गुणोंसे रहित है। महाभाग! सभी लोग हृष्ट, तुष्ट, पुण्यात्मा-धर्मपरायण तृप्त एवं सुखी हैं। अधिक क्या है? मैं तो सदा सुखी हूँ॥ २१—२५॥

मुनिशार्दूल! आपके मुखसे सुनकर मुझे यह मालूम हो गया कि मैं यहाँपर विशिष्ट दानरूपी बीजका शुभ फल प्राप्त कर रहा हूँ। वे हरि यदि मुझसे दान लेकर देवताओंकी पुष्टि करते हैं तो यज्ञसे आराधित वे (हरि) मुझपर निश्चय ही प्रसन्न हैं। यदि श्रेष्ठ बीज (ऐसा दान) महान् (योग्य) पात्र, पूज्य जनार्दनको मिल गया तो फिर मुझे क्या नहीं मिला? निश्चय ही मेरा यह दान विशिष्ट गुणोंवाला है और देवता मेरे ऊपर प्रसन्न हैं। दानके उपभोगकी अपेक्षा दान देना सौ-गुना सुख देनेवाला माना गया है॥ २६—२९॥

यज्ञसे पूजे गये श्रीहरि निश्चय ही मेरे ऊपर प्रसन्न हैं। तभी तो निस्संदेह मुझे दर्शन देकर मेरा कल्याण करनेवाले वे प्रभु आ रहे हैं, निश्चय ही यही बात है। देवताओंके देवभागकी प्राप्तिमें रुकावट होनेके कारण यदि वे क्रोधवश मेरा वध करने भी आ रहे हों तो भी उन अच्युतसे होनेवाला मेरा वध भी प्रशंसनीय ही होगा। मुनिश्रेष्ठ! यह समझकर जगन्नाथ गोविन्दके यहाँ समुपस्थित होनेपर आप मेरे दानमें विघ्न न डालें॥ ३०—३२॥

लोमहर्षण बोले— शुक्राचार्य और बलिमें इस प्रकार बात हो ही रही थी कि सर्वदेवमय, अचिन्त्य भगवान् अपनी मायासे अपना वामनरूप धारणकर वहाँ पहुँच गये। उन प्रभुको यज्ञस्थानमें उपस्थित देखकर दैत्यलोग उनके प्रभावसे अशान्त और तीव्र तेजसे रहित हो गये। उस महायज्ञमें एकत्र (उपस्थित) वसिष्ठ, विश्वामित्र, गर्ग एवं अन्य श्रेष्ठ मुनिजन अपना-अपना जप करने लगे। बलिने भी अपने सम्पूर्ण जन्मको सफल माना; किंतु उसके बाद (इधर) खलबली मच गयी और संक्षुब्ध होनेके कारण किसीने कुछ भी नहीं कहा॥ ३३—३६॥

उनके देदीप्यमान तेजके कारण प्रत्येकने देवाधिदेवकी पूजा की। उसके बाद वामनरूपमें प्रत्यक्ष प्रकट हुए विष्णुभगवान्ने लोगोंसे पूजित होनेके बाद एक दृष्टिसे (चारों ओर देखकर) उन विनम्र दैत्यपति एवं

देवदेवपतिः साक्षाद् विष्णुर्वामनरूपधृक्।
तुष्टाव यज्ञं वह्निं च यजमानमथार्चितः।
यज्ञकर्माधिकारस्थान् सदस्यान् द्रव्यसम्पदम्॥ ३८
सदस्याः पात्रमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणात्।
यज्ञवाटस्थितं विप्राः साधु साध्वित्युदीरयन्॥ ३९
स चार्घमादाय बलिः प्रोद्भूतपुलकस्तदा।
पूजयामास गोविन्दं प्राह चेदं महासुरः॥ ४०

मुनिवरोंको देखा तथा यज्ञ, अग्नि, यजमान, यज्ञकर्ममें अधिकृत सदस्यों एवं द्रव्यकी सामग्रियोंकी प्रशंसा की। विप्रो! तत्काल ही सभी सदस्यगण यज्ञमण्डपमें उपस्थित पात्रस्वरूप वामनके प्रति 'साधु-साधु' कहने लगे। उस समय हर्षमें विह्वल होकर महासुर बलिने अर्घ लिया और गोविन्दकी पूजा की तथा उनसे यह कहा॥ ३७—४०॥

बलिरुवाच

सुवर्णरत्नसंघातो गजाश्वसमितिस्तथा।
स्त्रियो वस्त्राण्यलंकारान् गावो ग्रामाश्च पुष्कलाः॥ ४१

सर्वे च सकला पृथ्वी भवतो वा यदीप्सितम्।
तद् ददामि वृणुष्वेष्टं ममार्थाः सन्ति ते प्रियाः॥ ४२

बलिने कहा— (वामनदेव!) अनन्त सुवर्ण और रत्नोंके ढेर तथा हाथी, घोड़े, स्त्रियाँ, वस्त्र, आभूषण, गायें तथा ग्रामसमूह—ये सभी वस्तुएँ, समस्त पृथ्वी अथवा आपकी जो अभिलाषा हो वह मैं देता हूँ। आप अपना अभीष्ट बतलायें। मेरे प्रिय लगनेवाले समस्त अर्थ आपके लिये हैं॥ ४१-४२॥

इत्युक्तो दैत्यपतिना प्रीतिगर्भान्वितं वचः।
प्राह सस्मितगम्भीरं भगवान् वामनाकृतिः॥ ४३

ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन् पदत्रयम्।
सुवर्णग्रामरत्नादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्॥ ४४

दैत्यपति बलिके इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक उदार वचन कहनेपर वामनका आकार धारण करनेवाले भगवान्ने हँसते हुए दुर्बोध वाणीमें कहा—राजन्! मुझे अग्निशालाके लिये तीन पग (भूमि) दें। सुवर्ण, ग्राम एवं रत्न आदि उनकी इच्छा रखनेवाले याचकोंको प्रदान करें॥ ४३-४४॥

बलिरुवाच

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पदैः पदवतां वर।
शतं शतसहस्रं वा पदानां मार्गतां भवान्॥ ४५

बलिने कहा— हे पदधारियोंमें श्रेष्ठ! तीन पग भूमिसे आपका कौन-सा स्वार्थ सिद्ध होगा। सौ अथवा सौ हजार पग भूमि आप माँगिये॥ ४५॥

श्रीवामन उवाच

एतावता दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि मार्गणे।
अन्येषामर्थिनां वित्तमिच्छया दास्यते भवान्॥ ४६

एतच्छ्रुत्वा तु गदितं वामनस्य महात्मनः।
वाचयामास वै तस्मै वामनाय महात्मने॥ ४७

पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः।
सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात्॥ ४८

चन्द्रसूर्यौ तु नयने द्यौः शिरश्चरणौ क्षितिः।
पादाङ्गुल्यः पिशाचास्तु हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः॥ ४९

श्रीवामनने कहा— हे दैत्यपते! मैं इतना पानेसे ही कृतकृत्य हूँ। (मेरा स्वार्थ इतनेसे ही सिद्ध हो जायगा।) आप दूसरे याचना करनेवाले याचकोंको उनके इच्छानुकूल दान दीजियेगा। महात्मा वामनकी यह वाणी सुनकर (बलिने) उन महात्मा वामनको तीन पग भूमि देनेके लिये वचन दे दिया। दान देनेके लिये हाथपर जल गिरते ही वामन अवामन (विराट्) बन गये। तत्क्षण उन्होंने उन्हें अपना सर्वदेवमय स्वरूप दिखाया। चन्द्र और सूर्य उनके दोनों नेत्र, आकाश सिर, पृथ्वी दोनों चरण, पिशाच पैरकी अँगुलियाँ एवं गुह्यक हाथोंकी अँगुलियाँ थे॥ ४६—४९॥

विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः।
यक्षा नखेषु सम्भूता रेखास्वप्सरसस्तथा॥ ५०

जानुओंमें विश्वेदेवगण, दोनों जङ्घाओंमें सुरश्रेष्ठ साध्यगण, नखोंमें यक्ष एवं रेखाओंमें अप्सराएँ थीं।

दृष्टिर्ऋक्षाण्यशेषाणि केशाः सूर्यांशवः प्रभोः।
तारका रोमकूपाणि रोमेषु च महर्षयः॥ ५१

बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः।
अश्विनौ श्रवणे तस्य नासा वायुर्महात्मनः॥ ५२

प्रसादे चन्द्रमा देवो मनो धर्मः समाश्रितः।
सत्यमस्याभवद् वाणी जिह्वा देवी सरस्वती॥ ५३

ग्रीवाऽदितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा।
स्वर्गद्वारमभून्मैत्रं त्वष्टा पूषा च वै भ्रुवौ॥ ५४

मुखे वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः।
हृदयं च परं ब्रह्म पुंस्त्वं वै कश्यपो मुनिः॥ ५५

पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसन्धिषु।
वक्षःस्थले तथा रुद्रो धैर्ये चास्य महार्णवः॥ ५६

उदरे चास्य गन्धर्वा मरुतश्च महाबलाः।
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्याश्च वै कटिः॥ ५७

सर्वज्योतींषि यानीह तपश्च परमं महत्।
तस्य देवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतमुत्तमम्॥ ५८

तनौ कुक्षिषु वेदाश्च जानुनी च महामखाः।
इष्टयः पशवश्चास्य द्विजानां चेष्टितानि च॥ ५९

तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महात्मनः।
उपसर्पन्ति ते दैत्याः पतङ्गा इव पावकम्॥ ६०

चिक्षुरस्तु महादैत्यः पादाङ्गुष्ठं गृहीतवान्।
दन्ताभ्यां तस्य वै ग्रीवामङ्गुष्ठेनाहनद्धरिः॥ ६१

प्रमथ्य सर्वानसुरान् पादहस्ततलैर्विभुः।
कृत्वा रूपं महाकायं संजहाराशु मेदिनीम्॥ ६२

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे।
नभो विक्रममाणस्य सक्थिदेशे स्थितावुभौ॥ ६३

परं विक्रममाणस्य जानुमूले प्रभाकरौ।
विष्णोरास्तां स्थितस्यैतौ देवपालनकर्मणि॥ ६४

जित्वा लोकत्रयं तांश्च हत्वा चासुरपुंगवान्।
पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः॥ ६५

समस्त नक्षत्र उनकी दृष्टियाँ, सूर्यकिरणें प्रभुके केश, तारकाएँ उनके रोमकूप एवं महर्षिगण रोमोंमें स्थित थे। विदिशाएँ उनकी बाँहें, दिशाएँ उन महात्माके कर्ण, दोनों अश्विनीकुमार श्रवण एवं वायु उन महात्माके नासिका-स्थानपर थे। उनके प्रसादमें (मधुर हास्यछटामें) चन्द्रदेव तथा मनमें धर्म आश्रित थे। सत्य उनकी वाणी तथा जिह्वा सरस्वतीदेवी थीं॥ ५०—५३॥

देवमाता अदिति उनकी ग्रीवा, विद्या उनकी वलियाँ, स्वर्गद्वार उनकी गुदा तथा त्वष्टा एवं पूषा उनकी भौंहें थे। वैश्वानर उनके मुख तथा प्रजापति वृषण थे। परंब्रह्म उनके हृदय तथा कश्यप मुनि उनके पुंस्त्व थे। उनकी पीठमें वसु देवता, सभी सन्धियोंमें मरुद्गण, वक्षःस्थलमें रुद्र तथा उनके धैर्यमें महार्णव आश्रित थे। उनके उदरमें गन्धर्व एवं महाबली मरुद्गण स्थित थे। लक्ष्मी, मेधा, धृति, कान्ति एवं सभी विद्याएँ उनकी कटिमें स्थित थीं॥ ५४—५७॥

समस्त ज्योतियाँ एवं परम महत् तप उन देवाधिदेवके उत्तम तेज थे। उनके शरीर एवं कुक्षियोंमें वेद थे तथा बड़े-बड़े यज्ञ इष्टियाँ थीं, पशु एवं ब्राह्मणोंकी चेष्टाएँ उनकी दोनों जानुएँ थीं। उन महात्मा विष्णुके सर्वदेवमय रूपको देखकर वे दैत्य उनके निकट उसी प्रकार जाते थे, जिस प्रकार अग्निके निकट पतिंगे जाते हैं। महादैत्य चिक्षुरने दाँतोंसे उनके पैरके अँगूठेको दबोच लिया। फिर भगवान्ने अँगूठेसे उसकी ग्रीवापर प्रहार किया और—॥ ५८—६१॥

अपने पैरों एवं हाथोंके तलवोंसे समस्त असुरोंको रगड़ डाला तथा विराट् शरीर धारण करके शीघ्र ही उन्होंने पृथ्वीको उनसे छीन लिया। भूमिको नापते समय चन्द्र और सूर्य उनके स्तनोंके मध्य स्थित थे तथा आकाशके नापते समय उनके सक्थिप्रदेश (जाँघ)-में स्थित हो गये एवं परम (ऊर्ध्व) लोकका अतिक्रमण करते समय देवताओंकी रक्षा करनेमें स्थित श्रीविष्णुके जानुमूल (घुटनेके स्थान)-में चन्द्र एवं सूर्य स्थित हो गये। उरुक्रम (लंबी डगोंवाले) विष्णुने तीनों लोकोंको जीतकर एवं उन बड़े-बड़े असुरोंका वध कर तीनों लोक इन्द्रको दे दिये॥ ६२—६५॥

सुतलं नाम पातालमधस्ताद् वसुधातलात्।
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना॥ ६६

अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः।
तत् त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया॥ ६७

कल्पप्रमाणं तस्मात् ते भविष्यत्यायुरुत्तमम्।
वैवस्वते तथाऽतीते काले मन्वन्तरे तथा॥ ६८

सावर्णिके तु संप्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति।
इदानीं भुवनं सर्वं दत्तं शक्राय वै पुरा॥ ६९

चतुर्युगव्यवस्था च साधिका ह्येकसप्ततिः।
नियन्तव्या मया सर्वे ये तस्य परिपन्थिनः॥ ७०

शक्तिशाली भगवान् विष्णुने पृथ्वीतलके नीचे स्थित सुतल नामक पातालको बलिके लिये दे दिया। तदनन्तर सर्वेश्वर विष्णुने दैत्येश्वरसे कहा—मैंने तुम्हारे द्वारा दानके लिये दिये हुए जलको अपने हाथमें ग्रहण किया है; अतः तुम्हारी उत्तम आयु कल्पप्रमाणकी होगी तथा वैवस्वत मन्वन्तरका काल व्यतीत होनेपर एवं सावर्णिक मन्वन्तरके आनेपर तुम इन्द्रपद प्राप्त करोगे—इन्द्र बनोगे। इस समयके लिये मैंने समस्त भुवनको पहले ही इन्द्रको दे रखा है। इकहत्तर चतुर्युगीके कालसे कुछ अधिक कालतक जो समयकी व्यवस्था है अर्थात् एक मन्वन्तरके कालतक मैं उसके (इन्द्रके) विरोधियोंको अनुशासित करूँगा॥ ६६—७०॥

तेनाहं परया भक्त्या पूर्वमाराधितो बले।
सुतलं नाम पातालं समासाद्य वचो मम॥ ७१

वसासुर ममादेशं यथावत्परिपालयन्।
तत्र देवसुखोपेते प्रासादशतसंकुले॥ ७२

प्रोत्फुल्लपद्मसरसि ह्रदशुद्धसरिद्वरे।
सुगन्धी रूपसम्पन्नो वराभरणभूषितः॥ ७३

स्रक्चन्दनादिदिग्धाङ्गो नृत्यगीतमनोहरान्।
उपभुञ्जन् महाभोगान् विविधान् दानवेश्वर॥ ७४

ममाज्ञया कालमिमं तिष्ठ स्त्रीशतसंवृतः।
यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरोधं गमिष्यसि॥ ७५

तावत् त्वं भुङ्क्ष्व संभोगान् सर्वकामसमन्वितान्।
यदा सुरैश्च विप्रैश्च विरोधं त्वं करिष्यसि।
बन्धिष्यन्ति तदा पाशा वारुणा घोरदर्शनाः॥ ७६

बलि! पूर्वकालमें उसने बड़ी श्रद्धासे मेरी आराधना की थी, अतः तुम मेरे कहनेसे सुतल नामक पातालमें जाकर मेरे आदेशका भलीभाँति पालन करो तथा देवताओंके मुखसे भरे-पूरे सैकड़ों प्रासादोंसे पूर्ण विकसित कमलोंवाले सरोवरों, ह्रदों एवं शुद्ध श्रेष्ठ सरिताओंवाले उस स्थानपर निवास करो। दानवेश्वर! सुगन्धिसे अनुलिप्त हो तथा श्रेष्ठ आभरणोंसे भूषित एवं माला और चन्दन आदिसे अलंकृत सुन्दर स्वरूपवाले तुम नृत्य और गीतसे युक्त विविध भाँतिके महान् भोगोंका उपभोग करते हुए सैकड़ों स्त्रियोंसे आवृत होकर इतने कालतक मेरी आज्ञासे वहाँ निवास करो। जबतक तुम देवताओं एवं ब्राह्मणोंसे विरोध न करोगे, तबतक समस्त कामनाओंसे युक्त भोगोंको भोगोगे। किंतु जब तुम देवों एवं ब्राह्मणोंके साथ विरोध करोगे तो देखनेमें भयंकर वरुणके पाश तुम्हें बाँध लेंगे॥ ७१—७६॥

बलिरुवाच

तत्रासतो मे पाताले भगवन् भवदाज्ञया।
किं भविष्यत्युपादानमुपभोगोपपादकम्।
आप्यायितो येन देव स्मरेयं त्वामहं सदा॥ ७७

बलिने पूछा—हे भगवन्! हे देव! आपकी आज्ञासे वहाँ पातालमें निवास करनेवाले मेरे भोगोंका साधन क्या होगा? जिससे तृप्त होकर मैं सदा आपका स्मरण करूँगा॥ ७७॥

श्रीभगवानुवाच

दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च।
हुतान्यश्रद्धया यानि तानि दास्यन्ति ते फलम्॥ ७८

श्रीभगवान्‌ने कहा—अविधिपूर्वक दिये गये दान, श्रोत्रिय ब्राह्मणसे रहित श्राद्ध तथा बिना श्रद्धाके किये गये जो हवन हैं, वे तुम्हारे भाग होंगे।

अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः।
फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्यव्रतानि च॥ ७९

उदकेन विना पूजा विना दर्भेण या क्रिया।
आज्येन च विना होमं फलं दास्यन्ति ते बले॥ ८०

यश्चेदं स्थानमाश्रित्य क्रियाः काश्चित् करिष्यति।
न तत्र चासुरो भागो भविष्यति कदाचन॥ ८१

ज्येष्ठाश्रमे महापुण्ये तथा विष्णुपदे ह्रदे।
ये च श्राद्धानि दास्यन्ति व्रतं नियममेव च॥ ८२

क्रिया कृता च या काचिद् विधिनाऽविधिनापि वा।
सर्वं तदक्षयं तस्य भविष्यति न संशयः॥ ८३

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
द्वादश्यां वामनं दृष्ट्वा स्नात्वा विष्णुपदे ह्रदे।
दानं दत्त्वा यथाशक्त्या प्राप्नोति परमं पदम्॥ ८४

लोमहर्षण उवाच

बलेर्वरमिमं दत्त्वा शक्राय च त्रिविष्टपम्।
व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः॥ ८५

शशास च यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यमूर्जितः।
निःशेषं च तदा कालं बलिः पातालमास्थितः॥ ८६

इत्येतत् कथितं तस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्।
शृणुयाद्यो वामनस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ८७

बलिप्रह्लादसंवादं मन्त्रितं बलिशुक्रयोः।
बलेर्विष्णोश्च चरितं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः॥ ८८

नाधयो व्याधयस्तेषां न च मोहाकुलं मनः।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठाः पुंसस्तस्य कदाचन॥ ८९

च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टप्राप्तिं वियोगवान्।
समाप्नोति महाभागा नरः श्रुत्वा कथामिमाम्॥ ९०

ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो जयते महीम्।
वैश्यो धनसमृद्धिं च शूद्रः सुखमवाप्नुयात्।
वामनस्य च माहात्म्यं शृण्वन् पापैः प्रमुच्यते॥ ९१

दक्षिणारहित यज्ञ, अविधिपूर्वक किये गये कर्म और व्रतसे रहित अध्ययन तुम्हें फल प्रदान करेंगे। हे बलि! जलके बिना की गयी पूजा, बिना कुशकी की गयी क्रिया और बिना घीके किये गये हवन तुमको फल देंगे। इस स्थानका आश्रय कर जो मनुष्य किन्हीं भी क्रियाओंको करेगा, उसमें कभी भी असुरोंका अधिकार न होगा। अत्यन्त पवित्र ज्येष्ठाश्रम तथा विष्णुपद सरोवरमें जो श्राद्ध, दान, व्रत या नियम-पालन करेगा तथा विधि या अविधिपूर्वक जो कोई क्रिया वहाँ की जायगी, उसके लिये वे सभी निःसंदेह अक्षय फलदायी होगा। जो मनुष्य ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षमें एकादशीके दिन उपवास कर द्वादशीके दिन विष्णुपद नामके सरोवरमें स्नान कर वामनका दर्शन करनेके बाद यथाशक्ति दान देगा, वह परम पदको प्राप्त करेगा॥ ७८—८४॥

लोमहर्षणजी बोले—भगवान् उस सर्वव्यापी रूपसे बलिको यह वरदान तथा इन्द्रको स्वर्ग प्रदानकर अन्तर्हित हो गये। तबसे बलशाली इन्द्र पहलेकी भाँति तीनों लोकोंका शासन करने लगे और बलि सर्वदा पातालमें निवास करने लगे। इस प्रकार उन भगवान् (वामन) विष्णुका उत्तम माहात्म्य कहा गया; जो इसे (वामन-माहात्म्यको) सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। द्विजश्रेष्ठो! बलि एवं प्रह्लादके संवाद, बलि एवं शुक्रकी मन्त्रणा तथा बलि एवं विष्णुके चरितका जो मनुष्य स्मरण करेंगे, उन्हें कभी कोई आधि एवं व्याधि न होगी तथा उनका मन भी मोहसे आकुल नहीं होगा। हे महाभागो! इस कथाको सुनकर राज्यच्युत व्यक्ति अपने राज्यको एवं वियोगी मनुष्य अपने प्रियको प्राप्त करता है। (इनको सुननेसे) ब्राह्मणको वेदकी प्राप्ति होती है, क्षत्रिय पृथ्वीकी जय प्राप्त करता है तथा वैश्यको धन-समृद्धि एवं शूद्रको सुखकी प्राप्ति होती है। वामनका माहात्म्य सुननेसे पापोंसे मुक्ति होती है॥ ८५—९१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

सरस्वती नदीका वर्णन—उसका कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होना

ऋषय ऊचुः

कथमेषा समुत्पन्ना नदीनामुत्तमा नदी।
सरस्वती महाभागा कुरुक्षेत्रप्रवाहिनी॥ १

कथं सरः समासाद्य कृत्वा तीर्थानि पार्श्वतः।
प्रयाता पश्चिमामाशां दृश्यादृश्यगतिः शुभा।
एतद् विस्तरतो ब्रूहि तीर्थवंशं सनातनम्॥ २

ऋषियोंने पूछा—(लोमहर्षणजी!) कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ भाग्यशालिनी यह सरस्वती नदी कैसे उत्पन्न हुई? सरोवरमें जाकर अगल-बगलमें (अपने दोनों तटोंपर) तीर्थोंकी स्थापना करती हुई दृश्य और अदृश्यरूपसे यह शुभ नदी किस प्रकार पश्चिम दिशाको गयी? इस सनातन तीर्थ-वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन करें॥ १-२॥

लोमहर्षण उवाच

प्लक्षवृक्षात् समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी।
सर्वपापक्षयकरी स्मरणादेव नित्यशः॥ ३

सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदी।
प्रविष्टा पुण्यतोयौघा वनं द्वैतमिति स्मृतम्॥ ४

तस्मिन् प्लक्षे स्थितां दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महामुनिः।
प्रणिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाथ सरस्वतीम्॥ ५

त्वं देवि सर्वलोकानां माता देवारणिः शुभा।
सदसद् देवि यत्किंचिन्मोक्षदाय्यर्थवत् पदम्॥ ६

तत् सर्वं त्वयि संयोगि योगिवद् देवि संस्थितम्।
अक्षरं परमं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।
अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वं चैतत् क्षरात्मकम्॥ ७

लोमहर्षणने कहा—(ऋषियो!) स्मरण करनेमात्रसे ही नित्य सभी पापोंको नष्ट करनेवाली यह सनातनी श्रेष्ठ (सरस्वती) नदी पाकड़ वृक्षसे उत्पन्न हुई है। यह पवित्र जलधारमयी महानदी हजारों पर्वतोंको तोड़ती-फोड़ती हुई प्रसिद्ध द्वैत वनमें प्रविष्ट हुई, ऐसी प्रसिद्धि है। महामुनि मार्कण्डेयने उस प्लक्षवृक्षमें स्थित सरस्वती नदीको देखकर सिरसे (सिर झुकाकर नम्रतापूर्वक) प्रणाम करनेके बाद उसकी स्तुति की—हे देवि! आप सभी लोकोंकी माता एवं देवोंकी शुभ अरणि हैं। देवि! समस्त सद्, असद्, मोक्ष देनेवाले एवं अर्थवान् पद, यौगिक क्रियासे युक्त पदार्थकी भाँति आपमें मिलकर स्थित हैं। देवि! अक्षर परमब्रह्म तथा यह विनाशशील समस्त संसार आपमें प्रतिष्ठित है॥ ३—७॥

दारुण्यवस्थितो वह्निर्भूमौ गन्धो यथा ध्रुवम्।
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः॥ ८

ॐकाराक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरास्थिरम्।
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च॥ ९

त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम्।
त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा॥ १०

जिस प्रकार काठमें आग एवं पृथिवीमें गन्धकी निश्चित स्थिति होती है, उसी प्रकार तुम्हारे भीतर ब्रह्म और यह सम्पूर्ण जगत् नित्य (सदा) स्थित हैं। देवि! जो कुछ भी स्थिर (अचर) तथा अस्थिर (चर) है, वह सब ओंकार अक्षरमें अवस्थित है। जो कुछ भी अस्तित्वयुक्त है या अस्तित्वविहीन, उन सबमें ओंकारकी तीन मात्राएँ (अनुस्यूत) हैं। हे सरस्वति! भूः, भुवः, स्वः—ये तीनों लोक; ऋक्, यजुः, साम—ये तीनों वेद; आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता—ये तीनों विद्याएँ; गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि—ये तीनों अग्नियाँ; सूर्य, चन्द्र, अग्नि—ये तीनों ज्योतियाँ; धर्म, अर्थ, काम—ये तीनों

त्रयो गुणास्त्रयो वर्णास्त्रयो देवास्तथा क्रमात्।
त्रैधातवस्तथावस्थाः पितरश्चैवमादयः॥ ११

एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति।
विभिन्नदर्शनामाद्यां ब्रह्मणो हि सनातनीम्॥ १२
सोमसंस्था हविःसंस्था पाकसंस्था सनातनी।
तास्त्वदुच्चारणाद् देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः॥ १३

अनिर्देश्यपदं त्वेतदर्द्धमात्राश्रितं परम्।
अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम्॥ १४

तवैतत् परमं रूपं यन्न शक्यं मयोदितुम्।
न चास्येन न वा जिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते॥ १५

स विष्णुः स वृषो ब्रह्मा चन्द्रार्कज्योतिरेव च।
विश्वावासं विश्वरूपं विश्वात्मानमनीश्वरम्॥ १६
सांख्यसिद्धान्तवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम्।
अनादिमध्यनिधनं सदसच्च सदेव तु॥ १७

एकं त्वनेकधाप्येकभाववेदसमाश्रितम्।
अनाख्यं षड्गुणाख्यं च बह्वाख्यं त्रिगुणाश्रयम्॥ १८

नानाशक्तिविभावज्ञं नानाशक्तिविभावकम्।
सुखात् सुखं महत्सौख्यं रूपं तत्त्वगुणात्मकम्॥ १९

एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं च यत्।
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम्॥ २०
येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये
येऽर्थाः स्थूला ये तथा सन्ति सूक्ष्माः।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा
तेषां देवि त्वत्त एवोपलब्धिः॥ २१
यद्वा मूर्तं यदमूर्तं समस्तं
यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किंचित्।
यच्च द्वैते व्यस्तभूतं च लक्ष्यं
तत्सम्बद्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च॥ २२

वर्ग; सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—ये तीनों वर्ण; तीनों देव; वात, पित्त, कफ—ये तीनों धातुएँ तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ एवं पिता, पितामह, प्रपितामह—ये तीनों पितर इत्यादि—ये सभी ओंकारके मात्रात्रयस्वरूप आपके रूप हैं। आपको ब्रह्मकी विभिन्न रूपोंवाली आद्या एवं सनातनी मूर्ति कहा जाता है॥ ८—१२॥

देवि! ब्रह्मवादी लोग आपकी शक्तिसे ही उच्चारण करके सोमसंस्था, हविःसंस्था एवं सनातनी पाकसंस्थाको सम्पन्न करते हैं। अर्धमात्रामें आश्रित आपका यह अनिर्देश्य पद अविकारी, अक्षय, दिव्य तथा अपरिणामी है। यह आपका अनिर्देश्य पद परम रूप है, जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। न तो मुखसे ही इसका वर्णन हो सकता है और न जिह्वा, तालु, ओष्ठ आदिसे ही। तुम्हारा वह रूप ही विष्णु, वृष (धर्म), ब्रह्मा, चन्द्रमा, सूर्य एवं ज्योति है। उसीको विश्वावास, विश्वरूप, विश्वात्मा एवं अनीश्वर (स्वतन्त्र) कहते हैं॥ १३—१६॥

आपका यह रूप सांख्य-सिद्धान्त तथा वेदद्वारा वर्णित, (वेदोंकी) बहुत-सी शाखाओंद्वारा स्थिर किया हुआ, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, सत्-असत् अथवा एकमात्र सत् (ही) है। यह एक तथा अनेक प्रकारका, वेदोंद्वारा एकाग्र भक्तिसे अवलम्बित, आख्या (नाम)-विहीन, ऐश्वर्य आदि षड्गुणोंसे युक्त, बहुत नामोंवाला तथा त्रिगुणाश्रय है। आपका यह तत्त्वगुणात्मक रूप सुखसे भी परम सुख, महान् सुखरूप नाना शक्तियोंके विभावको जाननेवाला है। हे देवि! वह अद्वैत तथा द्वैतमें आश्रित 'निष्कल' तथा 'सकल ब्रह्म' आपके द्वारा व्याप्त है॥ १७—२०॥

(सरस्वती) देवि! जो पदार्थ नित्य हैं तथा जो विनष्ट हो जानेवाले हैं, जो पदार्थ स्थूल हैं तथा जो सूक्ष्म हैं, जो भूमिपर हैं तथा जो अन्तरिक्षमें हैं या जो इनसे भिन्न स्थानोंमें हैं, उन समस्त पदार्थोंकी प्राप्ति आपसे ही होती है। जो मूर्त या अमूर्त है वह सब कुछ और जो सब भूतोंमें एक रूपसे स्थित है एवं केवल एकमात्र है और जो द्वैतमें अलग-अलग रूपसे दिखलायी पड़ता है, वह सब कुछ आपके स्वर-व्यञ्जनोंसे सम्बद्ध है।

एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती।
प्रत्युवाच महात्मानं मार्कण्डेयं महामुनिम्।
यत्र त्वं नेष्यसे विप्र तत्र यास्याम्यतन्द्रिता॥ २३

इस प्रकार स्तुति किये जानेपर विष्णुकी जीभरूपिणी सरस्वतीने महामुनि महात्मा मार्कण्डेयसे कहा—हे विप्र! तुम मुझे जहाँ ले जाओगे, मैं वहीं आलस्य छोड़कर चली जाऊँगी॥ २१—२३॥

मार्कण्डेय उवाच

आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं ततो रामह्रदः स्मृतः।
कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्।
तस्य मध्येन वै गाढं पुण्या पुण्यजलावहा॥ २४

मार्कण्डेयने कहा— आरम्भमें (इसका) पवित्र नाम ब्रह्मसर था, फिर रामह्रद प्रसिद्ध हुआ एवं उसके बाद कुरु ऋषिद्वारा कृष्ट होनेसे कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा। (अब) उसके मध्यमें अत्यन्त पवित्र जलवाली गहरी सरस्वती प्रवाहित हों॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

सरस्वती नदीका कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होना और कुरुक्षेत्रमें निवास करने तथा तीर्थमें स्नान करनेका महत्त्व

लोमहर्षण उवाच

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य धीमतः।
नदी प्रवाहसंयुक्ता कुरुक्षेत्रं विवेश ह॥ १

तत्र सा रन्तुकं प्राप्य पुण्यतोया सरस्वती।
कुरुक्षेत्रं समाप्लाव्य प्रयाता पश्चिमां दिशम्॥ २

तत्र तीर्थसहस्राणि ऋषिभिः सेवितानि च।
तान्यहं कीर्तयिष्यामि प्रसादात् परमेष्ठिनः॥ ३

तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम्।
स्नानं मुक्तिकरं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मणः॥ ४

लोमहर्षणने कहा— बुद्धिमान् मार्कण्डेय ऋषिके इस उपर्युक्त वचनको सुनकर प्रवाहसे भरी हुई सरस्वती नदी कुरुक्षेत्रमें प्रविष्ट हुई। वह पवित्रसलिला सरस्वती नदी वहाँ रन्तुकमें जाकर कुरुक्षेत्रको जलसे प्लावित करती हुई, जो पश्चिम दिशाकी ओर चली गयी, वहाँ (कुरुक्षेत्रमें) हजारों तीर्थ ऋषियोंसे सेवित हैं। परमेष्ठी (ब्रह्मा)-के प्रसादसे मैं उनका वर्णन करूँगा। पापियोंके लिये भी तीर्थोंका स्मरण पुण्यदायक, उनका दर्शन पापनाशक और स्नान मुक्तिदायक कहा गया है (पुण्यशालियोंके लिये तो कहना ही क्या है)॥ १—४॥

ये स्मरन्ति च तीर्थानि देवताः प्रीणयन्ति च।
स्नान्ति च श्रद्दधानाश्च ते यान्ति परमां गतिम्॥ ५

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत कुरुक्षेत्रं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ ६

कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम्।
इत्येवं वाचमुत्सृज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७

जो श्रद्धापूर्वक तीर्थोंका स्मरण करते हैं और उनमें स्नान करते हैं तथा देवताओंको प्रसन्न करते हैं, वे परम गति (मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं। (मनुष्य) अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी अवस्थामें पड़ा हुआ हो, यदि कुरुक्षेत्रका स्मरण करे तो वह बाहर तथा भीतरसे (हर प्रकारसे) पवित्र हो जाता है। 'मैं कुरुक्षेत्रमें जाऊँगा और मैं कुरुक्षेत्रमें निवास करूँगा'—इस प्रकारका वचन कहनेसे (भी) मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोग्रहे मरणं तथा।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा॥ ८

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥ ९

दूरस्थोऽपि कुरुक्षेत्रे गच्छामि च वसाम्यहम्।
एवं यः सततं ब्रूयात् सोऽपि पापैः प्रमुच्यते॥ १०

तत्र चैव सरःस्नायी सरस्वत्यास्तटे स्थितः।
तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयमुत्पत्स्यति न संशयः॥ ११

देवता ऋषयः सिद्धाः सेवन्ते कुरुजाङ्गलम्।
तस्य संसेवनान्नित्यं ब्रह्म चात्मनि पश्यति॥ १२
चञ्चलं हि मनुष्यत्वं प्राप्य ये मोक्षकाङ्क्षिणः।
सेवन्ति नियतात्मानो अपि दुष्कृतकारिणः॥ १३
ते विमुक्ताश्च कलुषैरनेकजन्मसम्भवैः।
पश्यन्ति निर्मलं देवं हृदयस्थं सनातनम्॥ १४
ब्रह्मवेदिः कुरुक्षेत्रं पुण्यं संनिहितं सरः।
सेवमाना नरा नित्यं प्राप्नुवन्ति परं पदम्॥ १५
ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद् भयम्।
कुरुक्षेत्रे मृतानां च पतनं नैव विद्यते॥ १६
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः सेवन्ति स्थानकाङ्क्षिणः॥ १७

गत्वा तु श्रद्धया युक्तः स्नात्वा स्थाणुमहाह्रदे।
मनसा चिन्तितं कामं लभते नात्र संशयः॥ १८
नियमं च ततः कृत्वा गत्वा सरः प्रदक्षिणम्।
रन्तुकं च समासाद्य क्षामयित्वा पुनः पुनः॥ १९

सरस्वत्यां नरः स्नात्वा यक्षं दृष्ट्वा प्रणम्य च।
पुष्पं धूपं च नैवेद्यं दत्त्वा वाचमुदीरयेत्॥ २०

तव प्रसादाद् यक्षेन्द्र वनानि सरितश्च याः।
भ्रमिष्यामि च तीर्थानि अविघ्नं कुरु मे सदा॥ २१

मानवोंके लिये ब्रह्मज्ञान, गयामें श्राद्ध, गौओंकी रक्षामें मृत्यु और कुरुक्षेत्रमें निवास—यह चार प्रकारकी मुक्ति कही गयी है॥ ५—८॥

सरस्वती और दृषद्वती—इन दो देव-नदियोंके बीच देव-निर्मित देशको ब्रह्मावर्त कहते हैं। दूर देशमें स्थित रहकर भी जो मनुष्य 'मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा, वहाँ निवास करूँगा'—इस प्रकार निरन्तर (मनमें संकल्प करता या) कहता है, वह भी सभी पापोंसे छूट जाता है। वहाँ सरस्वतीके तटपर रहते हुए सरोवरमें स्नान करनेवाले मनुष्यको निश्चित ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो जाता है। देवता, ऋषि और सिद्धलोग सदा कुरुजाङ्गल (तीर्थ)-का सेवन करते हैं। उस तीर्थका नित्य सेवन करनेसे, (वहाँ नित्य निवास करनेसे), मनुष्य अपने भीतर ब्रह्मका दर्शन करता है॥ ९—१२॥

जो भी पापी चञ्चल मानव-जीवन पाकर जितेन्द्रिय होकर मोक्ष प्राप्त करनेकी कामनासे वहाँ निवास करते हैं, वे अनेक जन्मोंके पापोंसे छूट जाते हैं तथा अपने हृदयमें रहनेवाले निर्मल देव—सनातन (ब्रह्म)-का दर्शन करते हैं। जो मनुष्य ब्रह्मवेदी, कुरुक्षेत्र एवं पवित्र 'संनिहित सरोवर'का सदा सेवन करते हैं, वे परम पदको प्राप्त करते हैं। समयपर ग्रह, नक्षत्र एवं ताराओंके भी पतनका भय होता है, किंतु कुरुक्षेत्रमें मरनेवालोंका कभी पतन नहीं होता॥ १३—१६॥

ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ और यक्ष उत्तम स्थानकी प्राप्तिके लिये जहाँ (कुरुक्षेत्रमें) निवास करते हैं, वहाँ जाकर स्थाणु नामक महासरोवरमें श्रद्धापूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य निःसंदेह मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। नियम-परायण होनेके पश्चात् सरोवरकी प्रदक्षिणा करके रन्तुकमें जाकर बार-बार क्षमा-प्रार्थना करनेके बाद सरस्वती नदीमें स्नान कर यक्षका दर्शन करे और उन्हें प्रणाम करे तथा पुष्प, धूप एवं नैवेद्य देकर इस प्रकार वचन कहे—हे यक्षेन्द्र! आपकी कृपासे मैं वनों, नदियों और तीर्थोंमें भ्रमण करूँगा; उसे आप सदा विघ्नरहित करें (मेरी यात्रामें किसी प्रकारका विघ्न न हो)॥ १७—२१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके सात प्रसिद्ध वनों, नौ नदियों एवं सम्पूर्ण तीर्थोंका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

वनानि सप्त नो ब्रूहि नव नद्यश्च याः स्मृताः।
तीर्थानि च समग्राणि तीर्थस्नानफलं तथा॥ १
येन येन विधानेन यस्य तीर्थस्य यत् फलम्।
तत् सर्वं विस्तरेणेह ब्रूहि पौराणिकोत्तम॥ २

लोमहर्षण उवाच

शृणु सप्त वनानीह कुरुक्षेत्रस्य मध्यतः।
येषां नामानि पुण्यानि सर्वपापहराणि च॥ ३
काम्यकं च वनं पुण्यं तथाऽदितिवनं महत्।
व्यासस्य च वनं पुण्यं फलकीवनमेव च॥ ४
तत्र सूर्यवनस्थानं तथा मधुवनं महत्।
पुण्यं शीतवनं नाम सर्वकल्मषनाशनम्॥ ५
वनान्येतानि वै सप्त नदीः शृणुत मे द्विजाः।
सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी॥ ६
आपगा च महापुण्या गङ्गा मन्दाकिनी नदी।
मधुस्त्रवा वासुनदी कौशिकी पापनाशिनी॥ ७
दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्वती नदी।
वर्षाकालवहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वतीम्॥ ८
एतासामुदकं पुण्यं प्रावृट्काले प्रकीर्तितम्।
रजस्वलत्वमेतासां विद्यते न कदाचन।
तीर्थस्य च प्रभावेण पुण्या ह्येताः सरिद्वराः॥ ९

शृण्वन्तु मुनयः प्रीतास्तीर्थस्नानफलं महत्।
गमनं स्मरणं चैव सर्वकल्मषनाशनम्॥ १०

रन्तुकं च नरो दृष्ट्वा द्वारपालं महाबलम्।
यक्षं समभिवाद्यैव तीर्थयात्रां समाचरेत्॥ ११

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा नाम्नाऽदितिवनं महत्।
अदित्या यत्र पुत्रार्थं कृतं घोरं महत्तपः॥ १२
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च अदितिं देवमातरम्।
पुत्रं जनयते शूरं सर्वदोषविवर्जितम्।
आदित्यशतसंकाशं विमानं चाधिरोहति॥ १३

ऋषियोंने [लोमहर्षणजीसे] कहा—(मुने! आप) हमसे उन सात वनों, नौ नदियों, समग्र तीर्थों एवं तीर्थ-स्नानके फलका वर्णन करें। पुराणवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ मुने! जिस-जिस विधानसे जिस तीर्थका जो फल होता है, उन सबको आप विस्तारपूर्वक बतलावें॥ १-२॥

लोमहर्षणने कहा— (ऋषियो!) कुरुक्षेत्रके मध्यमें जो सात वन हैं, उनका मैं वर्णन करता हूँ, आपलोग उसे सुनें। उन वनोंके नाम सभी पापोंको नष्ट करनेवाले तथा पवित्र हैं। (उन वनोंके नाम हैं—) पवित्र काम्यकवन, महान् अदितिवन, पुण्यप्रद व्यासवन, फलकीवन, सूर्यवन, महान् मधुवन तथा सर्वकल्मष-नाशक पवित्र शीतवन—ये ही सात वन हैं। हे द्विजो! (अब) नदियों (-के नाम)-को मुझसे सुनो। (उनके नाम हैं—) पवित्र सरस्वती नदी, वैतरणी नदी, महापवित्र आपगा, मन्दाकिनी गङ्गा, मधुस्त्रवा, वासु नदी, पापनाशिनी कौशिकी, महापवित्र दृषद्वती (कग्गर) तथा हिरण्वती नदी। इनमें सरस्वतीके अतिरिक्त सभी नदियाँ वर्षाकालमें (ही) बहनेवाली हैं॥ ३—८॥

वर्षाकालमें इनका जल पवित्र माना जाता है। इनमें कभी भी रजस्वलत्व दोष नहीं होता। तीर्थके प्रभावसे ये सभी श्रेष्ठ नदियाँ पवित्र हैं। हे मुनियो! आपलोग (अब) प्रसन्न होकर तीर्थस्नानका महान् फल सुनें। वहाँ जाना एवं उनका स्मरण करना समस्त पापोंका नाश करनेवाला होता है। महाबलवान् रन्तुक नामक द्वारपालका दर्शन करनेके बाद यक्षको प्रणाम कर तीर्थयात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये। विप्रेन्द्रो! उसके बाद महान् अदितिवनमें जाना चाहिये, जहाँ अदितिने पुत्रके लिये अत्यन्त कठोर तप किया था॥ ९—१२॥

वहाँ स्नानकर तथा देवमाता अदितिका दर्शनकर मनुष्य समस्त दोषोंसे रहित (निर्मल) वीर पुत्र उत्पन्न करता है और सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान विमानपर

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा विष्णोः स्थानमनुत्तमम्।
सवनं नाम विख्यातं यत्र संनिहितो हरिः॥ १४

विमले च नरः स्नात्वा दृष्ट्वा च विमलेश्वरम्।
निर्मलं स्वर्गमायाति रुद्रलोकं च गच्छति॥ १५

हरिं च बलदेवं च एकत्रासससमन्वितौ।
दृष्ट्वा मोक्षमवाप्नोति कलिकल्मषसम्भवैः॥ १६
ततः पारिप्लवं गच्छेत् तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्माणं वेदसंयुतम्॥ १७
ब्रह्मवेदफलं प्राप्य निर्मलं स्वर्गमाप्नुयात्।
तत्रापि संगमं प्राप्य कौशिक्यां तीर्थसम्भवम्।
संगमे च नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥ १८
धरण्यास्तीर्थमासाद्य सर्वपापविमोचनम्।
क्षान्तियुक्तो नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥ १९
धरण्यामपराधानि कृतानि पुरुषेण वै।
सर्वाणि क्षमते तस्य स्नानमात्रस्य देहिनः॥ २०
ततो दक्षाश्रमं गत्वा दृष्ट्वा दक्षेश्वरं शिवम्।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ २१

ततः शालूकिनीं गत्वा स्नात्वा तीर्थे द्विजोत्तमाः।
हरिं हरेण संयुक्तं पूज्य भक्तिसमन्वितः।
प्राप्नोत्यभिमताँल्लोकान् सर्वपापविवर्जितान्॥ २२

सर्पिर्दधि समासाद्य नागानां तीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नानं नरः कृत्वा मुक्तो नागभयाद् भवेत्॥ २३

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रन्तुकम्।
तत्रोष्य रजनीमेकां स्नात्वा तीर्थवरे शुभे॥ २४

द्वितीयं पूजयेद् यत्र द्वारपालं प्रयत्नतः।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च प्रणिपत्य क्षमापयेत्॥ २५

तव प्रसादाद् यक्षेन्द्र मुक्तो भवति किल्बिषैः।
सिद्धिर्मयाभिलषिता तया सार्द्धं भवाम्यहम्।
एवं प्रसाद्य यक्षेन्द्रं ततः पञ्चनदं व्रजेत्॥ २६

पञ्चनदाश्च रुद्रेण कृता दानवभीषणाः।
तत्र सर्वेषु लोकेषु तीर्थं पञ्चनदं स्मृतम्॥ २७

कोटितीर्थानि रुद्रेण समाहृत्य यतः स्थितम्।
तेन त्रैलोक्यविख्यातं कोटितीर्थं प्रचक्षते॥ २८

आरूढ़ होता है। विप्रेन्द्रो! इसके बाद 'सवन' नामसे विख्यात सर्वोत्तम विष्णु-स्थानको जाना चाहिये, जहाँ भगवान् हरि सदा संनिहित रहते हैं। विमल तीर्थमें स्नानकर विमलेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य निर्मल हो जाता है तथा रुद्रलोकमें जाता है। एक आसनपर स्थित कृष्ण और बलदेवका दर्शन करनेसे मनुष्य कलिके दुष्कर्मोंसे उत्पन्न पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १३—१६॥

उसके पश्चात् तीनों लोकोंमें विख्यात पारिप्लव नामक तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करनेके पश्चात् वेदों-सहित ब्रह्माका दर्शन करनेसे अथर्ववेदका ज्ञान प्राप्त कर निर्मल स्वर्गको प्राप्त करता है। कौशिकी-संगम तीर्थमें जाकर स्नान कर मनुष्य परम पदको प्राप्त करता है। समस्त पापोंसे मुक्त करनेवाले धरणीके तीर्थमें जाकर स्नान करनेसे क्षमाशील मनुष्य परम पदकी प्राप्ति करता है। वहाँ स्नान करनेमात्रसे पृथ्वीपर मनुष्यद्वारा किये गये समस्त अपराध क्षमा कर दिये जाते हैं॥ १७—२०॥

उसके बाद दक्षाश्रममें जाकर दक्षेश्वर शिवका दर्शन करनेसे मनुष्य अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। द्विजोत्तमो! तदनन्तर शालूकिनी तीर्थमें जाकर स्नान करनेके उपरान्त भक्तिपूर्वक हरसे संयुक्त हरिका पूजन कर मनुष्य समस्त पापोंसे रहित इच्छाके अनुकूल लोकोंको प्राप्त करता है। सर्पिर्दधि नामवाले नागोंके उत्तम तीर्थमें जाकर स्नान करनेसे मनुष्य नाग-भयसे मुक्त हो जाता है। विप्रश्रेष्ठो! तदनन्तर रन्तुक नामक द्वारपालके पास जाय। वहाँ एक रात्रि निवास करे तथा कल्याणकारी (उस) श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करनेके बाद दूसरे दिन प्रयत्नपूर्वक (निष्ठाके साथ मन लगाकर) द्वारपालका पूजन करे एवं ब्राह्मणोंको भोजन कराये। फिर उन्हें प्रणाम कर इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—'हे यक्षेन्द्र! तुम्हारी कृपासे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है। मैं अपनी अभीष्ट सिद्धिको प्राप्त करूँ (मेरी मनःकामना पूर्ण हो)।' इस प्रकार यक्षेन्द्रको प्रसन्न करनेके पश्चात् पञ्चनद तीर्थमें जाना चाहिये। जहाँ भगवान् रुद्रने दानवोंके लिये भयंकर पाँच नदोंका निर्माण किया है, उस स्थानपर समस्त संसारमें प्रसिद्ध पञ्चनद तीर्थ है;॥ २१—२७॥

क्योंकि करोड़ों तीर्थोंको एकत्र (स्थापित) कर भगवान् वहाँ स्थित हैं, अतः उसे त्रैलोक्य-प्रसिद्ध

तस्मिन् तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं हरम्।
पञ्चयज्ञानवाप्नोति नित्यं श्रद्धासमन्वितः॥ २९

तत्रैव वामनो देवः सर्वदेवैः प्रतिष्ठितः।
तत्रापि च नरः स्नात्वा ह्यग्निष्टोमफलं लभेत्॥ ३०

अश्विनोस्तीर्थमासाद्य श्रद्धावान् यो जितेन्द्रियः।
रूपस्य भागी भवति यशस्वी च भवेन्नरः॥ ३१
वाराहं तीर्थमाख्यातं विष्णुना परिकीर्तितम्।
तस्मिन् स्नात्वा श्रद्दधानः प्राप्नोति परमं पदम्॥ ३२
ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः सोमतीर्थमनुत्तमम्।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा व्याधिमुक्तोऽभवत् पुरा॥ ३३
तत्र सोमेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा तीर्थवरे शुभे।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ३४
व्याधिभिश्च विनिर्मुक्तः सर्वदोषविवर्जितः।
सोमलोकमवाप्नोति तत्रैव रमते चिरम्॥ ३५
भूतेश्वरं च तत्रैव ज्वालामालेश्वरं तथा।
तावुभौ लिङ्गावभ्यर्च्य न भूयो जन्म चाप्नुयात्॥ ३६

एकहंसे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्।
कृतशौचं समासाद्य तीर्थसेवी द्विजोत्तमः॥ ३७

पुण्डरीकमवाप्नोति कृतशौचो भवेन्नरः।
ततो मुञ्जवटं नाम महादेवस्य धीमतः॥ ३८

उपोष्य रजनीमेकां गाणपत्यमवाप्नुयात्।
तत्रैव च महाग्राही यक्षिणी लोकविश्रुता॥ ३९

स्नात्वाऽभिगत्वा तत्रैव प्रसाद्य यक्षिणीं ततः।
उपवासं च तत्रैव महापातकनाशनम्॥ ४०
कुरुक्षेत्रस्य तद् द्वारं विश्रुतं पुण्यवर्धनम्।
प्रदक्षिणमुपावर्त्य ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः।
पुष्करं च ततो गत्वा अभ्यर्च्य पितृदेवताः॥ ४१

जामदग्न्येन रामेण आहृतं तन्महात्मना।
कृतकृत्यो भवेद् राजा अश्वमेधं च विन्दति॥ ४२

कन्यादानं च यस्तत्र कार्तिक्यां वै करिष्यति।
प्रसन्ना देवतास्तस्य दास्यन्त्यभिमतं फलम्॥ ४३

कोटितीर्थ कहा जाता है। मनुष्य श्रद्धापूर्वक उस तीर्थमें स्नान कर तथा कोटीश्वर हरका दर्शन कर पाँच प्रकारके (महा) यज्ञोंके अनुष्ठानका फल प्राप्त करता है। उसी स्थानपर सब देवताओंने भगवान् वामनदेवकी स्थापना की है। वहाँ भी स्नान करनेसे मनुष्यको अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रद्धावान् जितेन्द्रिय मनुष्य अश्विनीकुमारोंके तीर्थमें जाकर रूपवान् और यशस्वी होता है॥ २८—३१॥

विष्णुद्वारा वर्णित वाराह नामक विख्यात तीर्थ है। श्रद्धालु पुरुष उसमें स्नान कर परमपदको प्राप्त करता है। विप्रेन्द्रो! उसके बाद श्रेष्ठ सोमतीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ चन्द्रमा पूर्वकालमें तपस्या कर व्याधिसे मुक्त हुए थे। उस शुभ तीर्थमें स्नान कर सोमेश्वर भगवान्का दर्शन करनेसे मनुष्य राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा व्याधियों और सभी दोषोंसे मुक्त होकर सोमलोकमें जाता एवं चिरकालतक वहाँ सानन्द विहार करता है॥ ३२—३५॥

वहींपर भूतेश्वर एवं ज्वालामालेश्वर नामक लिङ्ग है। उन दोनों लिङ्गोंकी पूजा करनेसे (मनुष्य) पुनर्जन्म नहीं पाता। एकहंस (सरोवर)-में स्नान कर मनुष्य हजारों गौओंके दानका फल प्राप्त करता है। 'कृतशौच' नामक तीर्थमें जाकर मनोयोगपूर्वक तीर्थकी सेवा करनेवाला द्विजोत्तम 'पुण्डरीक' यज्ञविशेषके फलको प्राप्त करता है तथा उसकी शुद्धि हो जाती है (—वह पवित्र हो जाता है)। उसके बाद बुद्धिमान् महादेवके मुञ्जवट नामक तीर्थमें एक रात्रि निवास करके मनुष्य गाणपत्य (गणनायकके पदको) प्राप्त करता है। वहीं विश्वप्रसिद्ध महाग्राही यक्षिणी है। वहाँ जाकर स्नान करनेके बाद यक्षिणीको प्रसन्न कर उपवास करनेसे महान् पातकोंका नाश होता है॥ ३६—४०॥

पुण्यकी वृद्धि करनेवाले कुरुक्षेत्रके उस विख्यात द्वारकी प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। फिर पुष्करमें जाकर पितृदेवोंकी अर्चना करे। उस तीर्थका महात्मा जमदग्निनन्दन परशुरामजीने निर्माण किया था। वहाँ (जाकर) मनुष्य सफल-मनोरथ हो जाता है और राजाको अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। कार्तिकी पूर्णिमाको जो मनुष्य वहाँ कन्यादान करेगा, उसके ऊपर देवता प्रसन्न होकर उसे मनोवाञ्छित फल देंगे। वहाँ

कपिलश्च महायक्षो द्वारपालः स्वयं स्थितः।
विघ्नं करोति पापानां दुर्गतिं च प्रयच्छति॥ ४४

पत्नी तस्य महायक्षी नाम्नोदूखलमेखला।
आहत्य दुन्दुभिं तत्र भ्रमते नित्यमेव हि॥ ४५

कपिल नामक महायक्ष स्वयं द्वारपालके रूपमें स्थित हैं, जो पापियोंके मार्गमें विघ्न उपस्थित कर उनकी दुर्गति करते हैं (जिससे वे पापाचरण न करें तथा धर्मकी मर्यादा स्थित रहे)। 'उदूखलमेखला' नामक उनकी महायक्षी पत्नी दुन्दुभि बजाकर वहाँ नित्य भ्रमण करती रहती है॥ ४१—४५॥

सा ददर्श स्त्रियं चैकां सपुत्रां पापदेशजाम्।
तामुवाच तदा यक्षी आहत्य निशि दुन्दुभिम्॥ ४६

युगन्धरे दधि प्राश्य उषित्वा चाच्युतस्थले।
तद्वद् भूतालये स्नात्वा सपुत्रा वस्तुमिच्छसि॥ ४७

दिवा मया ते कथितं रात्रौ भक्ष्यामि निश्चितम्।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं प्रणिपत्य च यक्षिणीम्॥ ४८

उवाच दीनया वाचा प्रसादं कुरु भामिनि।
ततः सा यक्षिणी तां तु प्रोवाच कृपयान्विता॥ ४९

यदा सूर्यस्य ग्रहणं कालेन भविता क्वचित्।
सन्निहत्यां तदा स्नात्वा पूता स्वर्गं गमिष्यसि॥ ५०

उस यक्षीने पापवाले देशमें उत्पन्न पुत्रके साथ एक रात्रिमें स्त्रीको देखनेके बाद दुन्दुभि बजाकर उससे कहा—युगन्धरमें दही खाकर तथा अच्युतस्थलमें निवास करनेके बाद भूतालयमें स्नान कर तुम पुत्रके साथ निवास करना चाहती हो। मैंने दिनमें यह बात तुमसे कही है। रात्रिमें मैं अवश्य तुमको खा जाऊँगी।* उसकी यह बात सुननेके बाद यक्षिणीको प्रणाम कर उसने दीन वाणीमें उससे कहा—'हे भामिनि! मेरे ऊपर दया करो।' फिर उस यक्षिणीने उससे कृपापूर्वक कहा—जब किसी समय सूर्य-ग्रहण होगा, उस समय सान्निहत्य (सरोवर)-में स्नान करके पवित्र होकर तुम स्वर्ग चली जाओगी॥ ४६—५०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके तीर्थोंके माहात्म्य एवं क्रमका वर्णन

लोमहर्षण उवाच

ततो रामह्रदं गच्छेत् तीर्थसेवी द्विजोत्तमः।
यत्र रामेण विप्रेण तरसा दीप्ततेजसा॥ १

क्षत्रमुत्साद्य वीरेण ह्रदाः पञ्च निवेशिताः।
पूरयित्वा नरव्याघ्र रुधिरेणेति नः श्रुतम्॥ २

पितरस्तर्पितास्तेन तथैव प्रपितामहाः।
ततस्ते पितरः प्रीता राममूचुर्द्विजोत्तमाः॥ ३

राम राम महाबाहो प्रीताः स्मस्तव भार्गव।
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण च ते विभो॥ ४

लोमहर्षणने कहा— इसके बाद तीर्थका सेवन करनेवाले उत्तम द्विजको रामकुण्ड नामक स्थानमें जाना चाहिये, जहाँ उद्दीप्त तेजस्वी विप्र-वीर राम (परशुराम)-ने बलपूर्वक क्षत्रियोंका संहारकर पाँच कुण्डोंको स्थापित किया था। पुरुषसिंह! हमलोगोंने ऐसा सुना है कि परशुरामने उन (कुण्डों)-को रक्तसे भरकर उससे अपने पितरों एवं प्रपितामहोंका तर्पण किया था। द्विजोत्तमो! उसके बाद उन प्रसन्न पितरोंने परशुरामसे कहा था कि महाबाहु भार्गव राम! परशुराम! विभो! तुम्हारी इस पितृभक्ति और पराक्रमसे हम सब तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं॥ १—४॥

* इन सबकी सटिप्पण विस्तृत व्याख्या गीताप्रेसके महाभारत वनपर्व १२९। ९-१० में द्रष्टव्य है।

वरं वृणीष्व भद्रं ते किमिच्छसि महायशः।
एवमुक्तस्तु पितृभी रामः प्रभवतां वरः॥ ५

अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं स पितॄन् गगने स्थितान्।
भवन्तो यदि मे प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि॥ ६

पितृप्रसादादिच्छेयं तपसाप्यायनं पुनः।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया॥ ७

ततश्च पापान्मुच्येयं युष्माकं तेजसा ह्यहम्।
ह्रदाश्चैते तीर्थभूता भवेयुर्भुवि विश्रुताः॥ ८

महायशस्विन्! तुम्हारा कल्याण हो। तुम वर माँगो। क्या चाहते हो? पितरोंके इस प्रकार कहनेपर प्रभावशालियोंमें श्रेष्ठ रामने आकाशमें स्थित पितरोंसे हाथ जोड़कर कहा—यदि आपलोग मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तथा मुझपर आप सबकी दया है तो आप पितरोंके प्रसादसे मैं पुनः तपसे पूर्ण हो जाऊँ। रोषसे अभिभूत होकर मैंने जो क्षत्रियोंका विनाश किया है, आपके तेजद्वारा मैं उस पापसे मुक्त हो जाऊँ एवं ये कुण्ड संसारमें विख्यात तीर्थस्वरूप हो जायँ॥ ५—८॥

एवमुक्ताः शुभं वाक्यं रामस्य पितरस्तदा।
प्रत्यूचुः परमप्रीता रामं हर्षपुरस्कृताः॥ ९

तपस्ते वर्द्धतां पुत्र पितृभक्त्या विशेषतः।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं त्वया॥ १०

ततश्च पापान्मुक्तस्त्वं पातितास्ते स्वकर्मभिः।
ह्रदाश्च तव तीर्थत्वं गमिष्यन्ति न संशयः॥ ११

ह्रदेष्वेतेषु ये स्नात्वा स्वान् पितॄंस्तर्पयन्ति च।
तेभ्यो दास्यन्ति पितरो यथाभिलषितं वरम्॥ १२

ईप्सितान् मानसान् कामान् स्वर्गवासं च शाश्वतम्।
एवं दत्त्वा वरान् विप्रा रामस्य पितरस्तदा॥ १३

आमन्त्र्य भार्गवं प्रीतास्तत्रैवान्तर्हितास्तदा।
एवं रामह्रदाः पुण्या भार्गवस्य महात्मनः॥ १४

परशुरामके इस प्रकारके मङ्गलमय वचन कहनेपर उनके परम प्रसन्न पितरोंने हर्षपूर्वक उनसे कहा—'पुत्र! पितृभक्तिसे तुम्हारा तप विशेषरूपसे बढ़े। क्रोधसे अभिभूत होनेके कारण तुमने क्षत्रियोंका जो विनाश किया है उस पापसे तुम मुक्त हो; क्योंकि ये क्षत्रिय अपने कर्मसे ही मारे गये हैं। तुम्हारे ये कुण्ड निःसंदेह तीर्थके गुणोंको प्राप्त करेंगे। जो इन कुण्डोंमें स्नान कर अपने पितरोंका तर्पण करेंगे, उन्हें (उनके) पितृगण मनकी इच्छाके अनुसार वर देंगे, उनकी मनोऽभिलषित कामनाएँ पूर्ण करेंगे एवं उन्हें स्वर्गमें शाश्वत निवास प्रदान करेंगे।' विप्रो! इस प्रकार वर देकर परशुरामके पितर उनसे अनुमति लेकर प्रसन्नतापूर्वक वहीं अन्तर्हित हो गये। इस प्रकार महात्मा परशुरामके ये रामह्रद परम पवित्र हैं॥ ९—१४॥

स्नात्वा ह्रदेषु रामस्य ब्रह्मचारी शुचिव्रतः।
राममभ्यर्च्य श्रद्धावान् विन्देद् बहु सुवर्णकम्॥ १५

वंशमूलं समासाद्य तीर्थसेवी सुसंयतः।
स्ववंशसिद्धये विप्राः स्नात्वा वै वंशमूलके॥ १६

कायशोधनमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
शरीरशुद्धिमाप्नोति स्नातस्तस्मिन् न संशयः॥ १७

शुद्धदेहश्च तं याति यस्मान्नावर्तते पुनः।
तावद् भ्रमन्ति तीर्थेषु सिद्धास्तीर्थपरायणाः।
यावन्न प्राप्नुवन्तीह तीर्थं तत्कायशोधनम्॥ १८

श्रद्धालु पवित्रकर्मा व्यक्ति ब्रह्मचर्यपूर्वक परशुरामजीके ह्रदोंमें स्नान करनेके बाद परशुरामका अर्चन कर प्रचुर सुवर्ण प्राप्त करता है। ब्राह्मणो! तीर्थसेवी जितेन्द्रिय मनुष्य वंशमूलक नामक तीर्थमें जाकर उसमें स्नान करनेसे अपने वंशकी सिद्धि प्राप्त करता है। तीनों लोकोंमें विख्यात कायशोधन नामक तीर्थमें जाकर उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको निस्संदेह शरीरकी शुद्धि प्राप्त होती है और वह शुद्धदेही मनुष्य उस स्थानको जाता है, जहाँसे वह पुनः नहीं लौटता (जन्म-मरणके चक्करमें नहीं पड़ता)। तीर्थपरायण सिद्ध पुरुष तीर्थोंमें तबतक भ्रमण करते रहते हैं, जबतक वे उस कायशोधन नामक तीर्थमें नहीं पहुँचते॥ १५—१८॥

तस्मिंस्तीर्थे च संप्लाव्य कायं संयतमानसः।
परं पदमवाप्नोति यस्मान्नावर्तते पुनः॥ १९

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रास्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
लोका यत्रोद्धृताः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना॥ २०

लोकोद्धारं समासाद्य तीर्थस्मरणतत्परः।
स्नात्वा तीर्थवरे तस्मिन् लोकान् पश्यति शाश्वतान्॥ २१

यत्र विष्णुः स्थितो नित्यं शिवो देवः सनातनः।
तौ देवौ प्रणिपातेन प्रसाद्य मुक्तिमाप्नुयात्॥ २२

श्रीतीर्थं तु ततो गच्छेत शालग्राममनुत्तमम्।
तत्र स्नातस्य सांनिध्यं सदा देवी प्रयच्छति॥ २३
कपिलाह्रदमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च दैवतानि पितॄंस्तथा॥ २४
कपिलानां सहस्रस्य फलं विन्दति मानवः।
तत्र स्थितं महादेवं कापिलं वपुरास्थितम्॥ २५
दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति ऋषिभिः पूजितं शिवम्।
सूर्यतीर्थं समासाद्य स्नात्वा नियतमानसः॥ २६
अर्चयित्वा पितॄन् देवानुपवासपरायणः।
अग्निष्टोममवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति॥ २७
सहस्रकिरणं देवं भानुं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति नरो ज्ञानसमन्वितः॥ २८

भवानीवनमासाद्य तीर्थसेवी यथाक्रमम्।
तत्राभिषेकं कुर्वाणो गोसहस्रफलं लभेत्॥ २९

पितामहस्य पिबतो ह्यमृतं पूर्वमेव हि।
उद्गारात् सुरभिर्जाता सा च पातालमाश्रिता॥ ३०

तस्याः सुरभयो जाताः तनया लोकमातरः।
ताभिस्तत्सकलं व्याप्तं पातालं सुनिरन्तरम्॥ ३१

पितामहस्य यजतो दक्षिणार्थमुपाहृताः।
आहूता ब्रह्मणा ताश्च विभ्रान्ता विवरेण हि॥ ३२

मनको नियन्त्रित करनेवाला मनुष्य उस तीर्थमें शरीरको धोकर (प्रक्षालित कर) उस परम पदको प्राप्त करता है, जहाँसे उसे पुनः परावर्तित नहीं होना पड़ता। विप्रवरो! उसके बाद तीनों लोकोंमें विख्यात लोकोद्धार नामके तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ सर्वसमर्थ विष्णुने समस्त लोकोंका उद्धार किया था। तीर्थका स्मरण करनेमें तत्पर मनुष्य लोकोद्धार नामके तीर्थमें जाकर उसमें स्नान करनेसे शाश्वत लोकोंका दर्शन प्राप्त करता है। वहाँ विष्णु एवं सनातनदेव शिव—ये दोनों ही स्थित हैं। उन दोनों देवोंको प्रणामद्वारा प्रसन्न कर फिर मुक्तिका फल प्राप्त करे। तदनन्तर अनुत्तम शालग्राम एवं श्रीतीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेवालोंको भगवती (लक्ष्मी) अपने निकट निवास प्रदान करती हैं॥ १९—२३॥

फिर त्रैलोक्यप्रसिद्ध कपिलाह्रद नामक तीर्थमें जाकर उसमें स्नान करनेके पश्चात् देवता तथा पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्यको सहस्र कपिला गायोंके दानका फल प्राप्त होता है। वहाँपर स्थित ऋषियोंसे पूजित कापिल शरीरधारी महादेव शिवका दर्शन करनेसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है। स्थिर अन्तःकरणवाला एवं उपवास-परायण व्यक्ति सूर्यतीर्थमें जाकर स्नान करनेके बाद पितरोंका अर्चन करनेसे अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त करता है एवं सूर्यलोकको जाता है॥ २४—२७॥

तीनों लोकोंमें विख्यात हजारों किरणोंवाले सूर्यदेव भगवान्‌का दर्शन करनेसे मनुष्य ज्ञानसे युक्त होकर मुक्तिको प्राप्त करता है। तीर्थसेवन करनेवाला मनुष्य क्रमानुसार भवानीवनमें जाकर वहाँ (भवानीका) अभिषेक करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त करता है। प्राचीन कालमें अमृत-पान करते हुए ब्रह्माके उद्गार (डकार)-से सुरभिकी उत्पत्ति हुई और वह पाताल लोकमें चली गयी। उस सुरभिसे लोकमाताएँ (सुरभिकी पुत्रियाँ) (गायें) उत्पन्न हुईं। उनसे समस्त पाताल लोक व्याप्त हो गया॥ २८—३१॥

पितामहके यज्ञ करते समय दक्षिणाके लिये लायी गयी एवं ब्रह्माके द्वारा बुलायी ये गायें विवरके कारण

तस्मिन् विवरद्वारे तु स्थितो गणपतिः स्वयम्।
यं दृष्ट्वा सकलान् कामान् प्राप्नोति संयतेन्द्रियः॥ ३३

सङ्गिनीं तु समासाद्य तीर्थं मुक्तिसमाश्रयम्।
देव्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा लभते रूपमुत्तमम्॥ ३४

अनन्तां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः।
भोगांश्च विपुलान् भुक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥ ३५
ब्रह्मावर्त्ते नरः स्नात्वा ब्रह्मज्ञानसमन्वितः।
भवते नात्र संदेहः प्राणान् मुञ्चति स्वेच्छया॥ ३६
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रन्तुकम्।
तस्य तीर्थं सरस्वत्यां यक्षेन्द्रस्य महात्मनः॥ ३७
तत्र स्नात्वा महाप्राज्ञ उपवासपरायणः।
यक्षस्य च प्रसादेन लभते कामिकं फलम्॥ ३८
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा ब्रह्मावर्त्तं मुनिस्तुतम्।
ब्रह्मावर्त्ते नरः स्नात्वा ब्रह्म चाप्नोति निश्चितम्॥ ३९
ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः सुतीर्थकमनुत्तमम्।
तत्र संनिहिता नित्यं पितरो दैवतैः सह॥ ४०

तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः।
अश्वमेधमवाप्नोति पितॄन् प्रीणाति शाश्वतान्॥ ४१

ततोऽम्बुवनं धर्मज्ञ समासाद्य यथाक्रमम्।
कामेश्वरस्य तीर्थं तु स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः॥ ४२

सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्मावाप्तिर्भवेद् ध्रुवम्।
मातृतीर्थं च तत्रैव यत्र स्नातस्य भक्तितः॥ ४३

प्रजा विवर्द्धते नित्यमनन्तां चाप्नुयाच्छ्रियम्।
ततः शीतवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः॥ ४४

तीर्थं तत्र महाविप्रा महदन्यत्र दुर्लभम्।
पुनाति दर्शनादेव दण्डकं च द्विजोत्तमाः॥ ४५
केशानभ्युक्ष्य वै तस्मिन् पूतो भवति पापतः।
तत्र तीर्थवरं चान्यत् स्वानुलोमायनं महत्॥ ४६
तत्र विप्रा महाप्राज्ञा विद्वांसस्तीर्थतत्पराः।
स्वानुलोमायने तीर्थे विप्रास्त्रैलोक्यविश्रुते॥ ४७

भटकने लगीं। उस विवरके द्वारपर स्वयं गणपति भगवान् स्थित हैं। जितेन्द्रिय मनुष्य उनका दर्शन करके समस्त कामनाओंको प्राप्त करता है। मुक्तिके आश्रयस्वरूप देवीके संगिनीतीर्थमें जाकर स्नान करनेसे मनुष्यको सुन्दर रूपकी प्राप्ति होती है तथा वह स्नानकर्ता पुरुष पुत्र-पौत्रसमन्वित होकर अनन्त ऐश्वर्यको प्राप्त करता है और विपुल भोगोंका उपभोग कर परम पदको प्राप्त करता है॥ ३२—३५॥

ब्रह्मावर्त्त नामक तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य निःसंदेह ब्रह्मज्ञानी हो जाता है एवं वह निज इच्छाके अनुसार अपने प्राणोंका परित्याग करता है। हे विप्रश्रेष्ठो! संगिनीतीर्थके बाद द्वारपाल रन्तुकके तीर्थमें जाय। उन महात्मा यक्षेन्द्रका तीर्थ सरस्वती नदीमें है। वहाँ स्नान करके उपवास-व्रतमें निरत परमज्ञानी व्यक्ति यक्षके प्रसादसे इच्छित फल प्राप्त करता है। हे विप्रवरो! फिर मुनियोंद्वारा प्रशंसा-प्राप्त ब्रह्मावर्त्त तीर्थमें जाना चाहिये। ब्रह्मावर्त्तमें स्नान करनेसे मनुष्य निश्चय ही ब्रह्मको प्राप्त करता है॥ ३६—३९॥

हे विप्रश्रेष्ठो! उसके बाद श्रेष्ठ सुतीर्थक नामके स्थानपर जाना चाहिये। उस स्थानमें देवताओंके साथ पितृगण नित्य स्थित रहते हैं। पितरों एवं देवोंकी अर्चनामें लगा रहनेवाला व्यक्ति वहाँ स्नानकर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा शाश्वत पितरोंको प्रसन्न करता है। धर्मज्ञ! उसके बाद क्रमानुसार कामेश्वर तीर्थके अम्बुवनमें जाकर श्रद्धापूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य सभी व्याधियोंसे छूटकर निश्चय ही ब्रह्मकी प्राप्ति करता है। उसी स्थानमें स्थित मातृतीर्थमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यकी प्रजा (संतति)-की नित्य वृद्धि होती है तथा उसे अनन्त लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। उसके बाद नियत आहार करनेवाला एवं जितेन्द्रिय व्यक्ति शीतवन नामक तीर्थमें जाय। हे महाविप्रो! वहाँ दण्डक नामक एक महान् तीर्थ है; वह अत्यन्त दुर्लभ है। द्विजोत्तमो! वह दण्डक नामका महान् तीर्थ दर्शनमात्रसे मनुष्यको पवित्र कर देता है॥ ४०—४५॥

उस तीर्थमें केशोंका मुण्डन करानेसे मनुष्य अपने पापोंसे मुक्त हो जाता है। वहाँ स्वानुलोमायन नामका एक दूसरा महान् तीर्थ है। हे द्विजोत्तमो! वहाँ तीर्थ-सेवन करनेमें तत्पर परमज्ञानी विद्वान् लोग रहते हैं। त्रिलोकविख्यात

प्राणायामैर्निर्हरन्ति स्वलोमानि द्विजोत्तमाः।
पूतात्मानश्च ते विप्राः प्रयान्ति परमां गतिम्॥ ४८

दशाश्वमेधिकं चैव तत्र तीर्थं सुविश्रुतम्।
तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तस्तदेव लभते फलम्॥ ४९

ततो गच्छेत श्रद्धावान् मानुषं लोकविश्रुतम्।
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य मुक्तो भवति किल्बिषैः॥ ५०

उस तीर्थमें वे प्राणायामोंके द्वारा अपने लोमोंका परित्याग करते हैं और वे पवित्रात्मा विप्रगण परम गतिको प्राप्त करते हैं। वहींपर परम प्रसिद्ध दशाश्वमेधिक तीर्थ है। भक्तिपूर्वक उसमें स्नान करनेसे पूर्वोक्त फलकी ही प्राप्ति होती है। फिर श्रद्धालु मनुष्यको लोक-प्रसिद्ध मानुषतीर्थमें जाना चाहिये। उस तीर्थका दर्शन करनेसे ही पापोंसे मुक्ति हो जाती है॥ ४६—५०॥

पुरा कृष्णमृगास्तत्र व्याधेन शरपीडिताः।
विगाह्य तस्मिन् सरसि मानुषत्वमुपागताः॥ ५१

ततो व्याधाश्च ते सर्वे तानपृच्छन् द्विजोत्तमान्।
मृगा अनेन वै याता अस्माभिः शरपीडिताः॥ ५२

निमग्नास्ते सरः प्राप्य क्व ते याता द्विजोत्तमाः।
तेऽब्रुवंस्तत्र वै पृष्टा वयं ते च द्विजोत्तमाः॥ ५३

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मानुषत्वमुपागताः।
तस्माद् यूयं श्रद्दधानाः स्नात्वा तीर्थे विमत्सराः॥ ५४

सर्वपापविनिर्मुक्ता भविष्यथ न संशयः।
ततः स्नाताश्च ते सर्वे शुद्धदेहा दिवं गताः॥ ५५

एतत् तीर्थस्य माहात्म्यं मानुषस्य द्विजोत्तमाः।
ये शृण्वन्ति श्रद्दधानास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ ५६

पूर्वकालमें व्याधद्वारा बाणसे विद्ध कृष्णमृग (काला हरिण) उस सरोवरमें स्नानकर मनुष्यत्वको प्राप्त हुए थे। उसके बाद उन सभी व्याधोंने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे पूछा—द्विजोत्तमो! हमलोगोंद्वारा बाणसे पीडित मृग इस मार्गसे जाते हुए सरोवरमें निमग्न होकर कहाँ चले गये? उनके पूछनेपर उन्होंने उत्तर दिया—हम द्विजोत्तम वे (कृष्ण) मृग ही थे। इस तीर्थके माहात्म्यसे हम सब मनुष्य बन गये हैं। अतएव मत्सरसे रहित होकर श्रद्धापूर्वक इस तीर्थमें स्नान करनेसे तुमलोग निःसंदेह समस्त पापोंसे विनिर्मुक्त हो जाओगे। फिर स्नान करनेसे शुद्ध-देह होकर वे सभी (व्याध) स्वर्ग चले गये। द्विजोत्तमो! जो श्रद्धापूर्वक मानुष तीर्थके इस माहात्म्यको सुनते हैं, वे भी परम गतिको प्राप्त करते हैं॥ ५१—५६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके तीर्थोंके माहात्म्य एवं क्रमका अनुक्रान्त वर्णन

लोमहर्षण उवाच

मानुषस्य तु पूर्वेण क्रोशमात्रे द्विजोत्तमाः।
आपगा नाम विख्याता नदी द्विजनिषेविता॥ १

श्यामाकं पयसा सिद्धमाज्येन च परिप्लुतम्।
ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यस्तेषां पापं न विद्यते॥ २

ये तु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राप्य तामापगां नदीम्।
ते सर्वकामसंयुक्ता भविष्यन्ति न संशयः॥ ३

शंसन्ति सर्वे पितरः स्मरन्ति च पितामहाः।
अस्माकं च कुले पुत्रः पौत्रो वापि भविष्यति॥ ४

लोमहर्षण बोले— द्विजोत्तमो! मानुषतीर्थके पूर्व दिशामें एक कोसपर द्विजोंसे पूजित 'आपगा' नामकी एक विख्यात नदी है। वहाँ साँवाके चावलको दूधमें सिद्धकर और उसमें घी मिलाकर जो ब्राह्मणको देते हैं, उनके पाप नहीं रह जाते। जो व्यक्ति उस आपगा नदीके तटपर जाकर श्राद्ध करेंगे, वे निःसंदेह समस्त (शुभ) कामनाओंसे पूर्ण होंगे। सभी पितर कहते हैं तथा पितामह लोग स्मरण करते हैं कि हमारे कुलमें कोई

य आपगां नदीं गत्वा तिलैः संतर्पयिष्यति।
तेन तृप्ता भविष्यामो यावत्कल्पशतं गतम्॥ ५

नभस्ये मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे विशेषतः।
चतुर्दश्यां तु मध्याह्ने पिण्डदो मुक्तिमाप्नुयात्॥ ६

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्।
ब्रह्मोदुम्बरमित्येवं सर्वलोकेषु विश्रुतम्॥ ७

तत्र ब्रह्मर्षिकुण्डेषु स्नातस्य द्विजसत्तमाः।
सप्तर्षीणां प्रसादेन सप्तसोमफलं भवेत्॥ ८

भरद्वाजो गौतमश्च जगदग्निश्च कश्यपः।
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च अत्रिश्च भगवानृषिः॥ ९

एतैः समेत्य तत्कुण्डं कल्पितं भुवि दुर्लभम्।
ब्रह्मणा सेवितं यस्माद् ब्रह्मोदुम्बरमुच्यते॥ १०

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नातो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ११

देवान् पितॄन् समुद्दिश्य यो विप्रं भोजयिष्यति।
पितरस्तस्य सुखिता दास्यन्ति भुवि दुर्लभम्॥ १२

सप्तर्षींश्च समुद्दिश्य पृथक् स्नानं समाचरेत्।
ऋषीणां च प्रसादेन सप्तलोकाधिपो भवेत्॥ १३

कपिस्थलेति विख्यातं सर्वपातकनाशनम्।
यस्मिन् स्थितः स्वयं देवो वृद्धकेदारसंज्ञितः॥ १४

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च रुद्रं दिण्डिसमन्वितम्।
अन्तर्धानमवाप्नोति शिवलोके स मोदते॥ १५

यस्तत्र तर्पणं कृत्वा पिबते चुलकत्रयम्।
दिण्डिदेवं नमस्कृत्य केदारस्य फलं लभेत्॥ १६

यस्तत्र कुरुते श्राद्धं शिवमुद्दिश्य मानवः।
चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां प्राप्नोति परमं पदम्॥ १७

कलस्यां तु ततो गच्छेद् यत्र देवी स्वयं स्थिता।
दुर्गा कात्यायनी भद्रा निद्रा माया सनातनी॥ १८

कलस्यां च नरः स्नात्वा दृष्ट्वा दुर्गां तटे स्थिताम्।
संसारगहनं दुर्गं निस्तरेन्नात्र संशयः॥ १९

ऐसा पुत्र या पौत्र उत्पन्न होगा, जो आपगा नदीके तटपर जाकर तिलसे तर्पण करेगा, जिससे हम सभी सैकड़ों कल्पतक (अनन्त कालतक) तृप्त रहेंगे॥ १—५॥

भाद्रपदके महीनेमें, विशेषकर कृष्णपक्षमें, चतुर्दशी तिथिको मध्याह्न कालमें पिण्डदान करनेवाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। विप्रवरो! उसके बाद समस्त लोकोंमें 'ब्रह्मोदुम्बर' नामसे प्रसिद्ध ब्रह्माके श्रेष्ठ स्थानमें जाना चाहिये। द्विजवरो! वहाँ ब्रह्मर्षिकुण्डमें स्नान करनेवाले व्यक्तिको सप्तर्षियोंकी कृपासे सात सोमयज्ञोंका फल प्राप्त होता है। भरद्वाज, गौतम, जमदग्नि, कश्यप, विश्वामित्र, वसिष्ठ एवं भगवान् अत्रि (—इन सात) ऋषियोंने मिलकर पृथ्वीमें दुर्लभ इस कुण्डको बनाया था। ब्रह्माद्वारा सेवित होनेके कारण यह स्थान 'ब्रह्मोदुम्बर' कहलाता है॥ ६—१०॥

अव्यक्त जन्मवाले ब्रह्माके उस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है—इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है। जो मनुष्य वहाँ देवताओं और पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको भोजन करायेगा, उसके पितर सुखी होकर उसे संसारमें दुर्लभ वस्तु प्रदान करेंगे। सात ऋषियोंके उद्देश्यसे जो (व्यक्ति) अलगसे स्नान करेगा, वह ऋषियोंके अनुग्रहसे सात लोकोंका स्वामी होगा। वहाँ सभी पापोंका विनाश करनेवाला विख्यात कपिस्थल नामक तीर्थ है, जहाँ वृद्धकेदार नामके देव स्वयं विद्यमान हैं। वहाँ स्नान करनेके बाद दिण्डिके साथ रुद्रदेवका अर्चन करनेसे मनुष्यको अन्तर्धानकी शक्ति प्राप्त होती है और वह शिवलोकमें आनन्द प्राप्त करता है॥ ११—१५॥

जो व्यक्ति उस स्थानपर तर्पण करके दिण्डि भगवान्‌को प्रणाम कर तीन चुल्लू जल पीता है, वह केदारतीर्थमें जानेका फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति वहाँ शिवजीके उद्देश्यसे चैत्र शुक्ला चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करता है, वह परम पद (मोक्ष)-को प्राप्त कर लेता है। उसके बाद कलसी नामके तीर्थमें जाना चाहिये जहाँ भद्रा, निद्रा, माया, सनातनी, कात्यायनीरूपा दुर्गादेवी स्वयं अवस्थित हैं। कलसी तीर्थमें स्नानकर उसके तीरपर स्थित दुर्गादेवीका दर्शन करनेवाला मनुष्य दुस्तर संसार-दुर्ग (सांसारिक भवबन्धन)-को पार कर जाता है। इसमें (तनिक भी) संदेह नहीं करना चाहिये॥ १६—१९॥

ततो गच्छेत सरकं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्॥ २०

लभते सर्वकामांश्च शिवलोकं स गच्छति।
तिस्त्रः कोट्यस्तु तीर्थानां सरके द्विजसत्तमाः॥ २१

रुद्रकोटिस्तथा कूपे सरोमध्ये व्यवस्थिता।
तस्मिन् सरे च यः स्नात्वा रुद्रकोटिं स्मरेन्नरः॥ २२

पूजिता रुद्रकोटिश्च भविष्यति न संशयः।
रुद्राणां च प्रसादेन सर्वदोषविवर्जितः॥ २३

ऐन्द्रज्ञानेन संयुक्तः परं पदमवाप्नुयात्।
इडास्पदं च तत्रैव तीर्थं पापभयापहम्॥ २४

अस्मिन् मुक्तिमवाप्नोति दर्शनादेव मानवः।
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च पितृदेवगणानपि॥ २५

न दुर्गतिमवाप्नोति मनसा चिन्तितं लभेत्।
केदारं च महातीर्थं सर्वकल्मषनाशनम्॥ २६

तत्र स्नात्वा तु पुरुषः सर्वदानफलं लभेत्।
किंरूपं च महातीर्थं तत्रैव भुवि दुर्लभम्।
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषः सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ २७

सरकस्य तु पूर्वेण तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
अन्यजन्म सुविख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २८

नारसिंहं वपुः कृत्वा हत्वा दानवमूर्जितम्।
तिर्यग्योनौ स्थितो विष्णुः सिंहेषु रतिमाप्नुवन्॥ २९

ततो देवाः सगन्धर्वा आराध्य वरदं शिवम्।
ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा विष्णुदेहस्य लम्भने॥ ३०

ततो देवो महात्माऽसौ शारभं रूपमास्थितः।
युद्धं च कारयामास दिव्यं वर्षसहस्रकम्।
युध्यमानौ तु तौ देवौ पतितौ सरमध्यतः॥ ३१

तस्मिन् सरस्तटे विप्रो देवर्षिर्नारदः स्थितः।
अश्वत्थवृक्षमाश्रित्य ध्यानस्थस्तौ ददर्श ह॥ ३२

दुर्गादेवीके दर्शनके बाद तीनों लोकोंमें दुर्लभ सरकतीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको माहेश्वरदेवका दर्शन करके मनुष्य (अपने) सभी मनोरथोंको प्राप्त करता और (अन्तमें) शिवलोकमें चला जाता है। द्विजश्रेष्ठो! सरकतीर्थमें तीन करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं। सरके बीच कूपमें रुद्रकोटि स्थित है। उस सरमें यदि व्यक्ति स्नान कर रुद्रकोटिका स्मरण करता है तो निःसंदेह (उसके द्वारा) रुद्रकोटि पूजित हो जाते हैं और रुद्रोंके प्रसादसे वह व्यक्ति समस्त दोषोंसे छूट जाता है। वह इन्द्रसम्बन्धी ज्ञानसे पूरित होकर परम पदको प्राप्त कर लेता है। वहीं पापों और भयोंका दूर करनेवाला इडास्पद नामका तीर्थ वर्तमान है॥ २०—२४॥

इस इडास्पद नामके तीर्थके दर्शनसे ही मनुष्य मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। वहाँ स्नान करके पितरों एवं देवोंका पूजन करनेसे मनुष्यकी दुर्गति नहीं होती और उसे मनोवाञ्छित वस्तु प्राप्त होती है। सभी पापोंका विनाश करनेवाला केदार नामक महातीर्थ है। वहाँ जाकर स्नान करनेसे मनुष्यको सभी प्रकारके दानोंका फल प्राप्त होता है। वहींपर पृथ्वीमें दुर्लभ किंरूप नामका (भी) तीर्थ है। उसमें स्नान करनेवाले मनुष्यको सभी प्रकारके यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। सरकके पूर्वमें तीनों लोकोंमें सुप्रसिद्ध सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला अन्यजन्म नामका तीर्थ है॥ २५—२८॥

नरसिंहका शरीर धारण कर शक्तिशाली दानव (हिरण्याक्ष)-का वध करनेके बाद विष्णु पशुयोनिमें स्थित सिंहोंमें प्रेम करने लगे। उसके बाद गन्धर्वोंके साथ सभी देवताओंने वरदाता शिवकी आराधना कर साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए विष्णुसे पुनः स्वदेह (स्वरूप) धारण करनेकी प्रार्थना की। उसके बाद (फिर) महादेवने शरभ (सिंहोंसे भी बलवान् पशु-विशेष)-का रूप धारण करके (नरसिंहसे) हजारों दिव्य वर्षोंतक युद्ध किया-कराया। दोनों देवता (आपसमें) युद्ध करते हुए सरोवरमें गिर पड़े। उस सरोवरके तीरपर (स्थित) अश्वत्थ (पीपल)-वृक्षके नीचे देवर्षि नारद ध्यान लगाये

विष्णुश्चतुर्भुजो जज्ञे लिङ्गाकारः शिवः स्थितः।
तौ दृष्ट्वा तत्र पुरुषौ तुष्टाव भक्तिभावितः॥ ३३

बैठे थे। उन्होंने उन दोनोंको देखा। (फिर तो) विष्णु चतुर्भुजरूपमें और शिव लिङ्गरूपमें (परिवर्तित) हो गये। उन दोनों पुरुषों (देवों)-को देखकर उन्होंने भक्तिभावसे उनकी स्तुति की॥ २९—३३॥

नमः शिवाय देवाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
हरये च उमाभर्त्रे स्थितिकालभृते नमः॥ ३४

हराय बहुरूपाय विश्वरूपाय विष्णवे।
त्र्यम्बकाय सुसिद्धाय कृष्णाय ज्ञानहेतवे॥ ३५

धन्योऽहं सुकृती नित्यं यद् दृष्टौ पुरुषोत्तमौ।
ममाश्रममिदं पुण्यं युवाभ्यां विमलीकृतम्।
अद्यप्रभृति त्रैलोक्ये अन्यजन्मेति विश्रुतम्॥ ३६

य इहागत्य स्नात्वा च पितॄन् संतर्पयिष्यति।
तस्य श्रद्धान्वितस्येह ज्ञानमैन्द्रं भविष्यति॥ ३७

[नारदजीने स्तुति की]— देवाधिदेव शिवको नमस्कार है। प्रभावशाली विष्णुको नमस्कार है। स्थिति (प्रजापालन) करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार है। संहारके आधारभूत उमापति भगवान् शिवको नमस्कार है। बहुरूपधारी शङ्करजी एवं विश्वरूपधारी (विश्वात्मा) विष्णुको नमस्कार है। परमसिद्ध (योगीश्वर) शङ्कर एवं ज्ञानके मूल कारण भगवान् कृष्णको नमस्कार है। मैं धन्य तथा सदा पुण्यवान् हूँ; क्योंकि मुझे (आज) आप दोनों (श्रेष्ठ) पुरुषों (देवों)-के दर्शन प्राप्त हुए। आप दोनों पुरुषोंद्वारा पवित्र किया गया मेरा यह आश्रम पुण्यमय हो गया। आजसे तीनों लोकोंमें यह 'अन्यजन्म' नामसे प्रसिद्ध हो जायगा। जो व्यक्ति यहाँ आकर इस तीर्थमें स्नान कर अपने पितरोंका तर्पण करेगा श्रद्धासे सम्पन्न उस पुरुषको यहाँ इन्द्र-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हो जायगा॥ ३४—३७॥

अश्वत्थस्य तु यन्मूलं सदा तत्र वसाम्यहम्।
अश्वत्थवन्दनं कृत्वा यमं रौद्रं न पश्यति॥ ३८

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा नागस्य ह्रदमुत्तमम्।
पौण्डरीके नरः स्नात्वा पुण्डरीकफलं लभेत्॥ ३९

दशम्यां शुक्लपक्षस्य चैत्रस्य तु विशेषतः।
स्नानं जपं तथा श्राद्धं मुक्तिमार्गप्रदायकम्॥ ४०

ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत् तीर्थं देवनिषेवितम्।
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रमोचनी॥ ४१

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छत्येव परां गतिम्॥ ४२

मैं पीपल वृक्षके मूलमें सदा निवास करूँगा। उस अश्वत्थ (पीपल वृक्ष)-को प्रणाम करनेवाला व्यक्ति भयंकर यमराजको नहीं देखेगा। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उसके बाद (उस तीर्थसेवीको) उत्तम नागह्रदमें जाना चाहिये। पौण्डरीकमें स्नान करके मनुष्य पुण्डरीक (एक प्रकारके यज्ञ)-का फल प्राप्त करता है। शुक्लपक्षकी दशमी, विशेषकर चैत्रमासकी (शुक्ला) दशमी तिथिमें वहाँ किया गया स्नान, जप और श्राद्ध मोक्षपथकी प्राप्ति करानेवाला होता है। पुण्डरीकमें स्नान करनेके बाद देवताओंद्वारा पूजित 'त्रिविष्टप' नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ पापोंसे विमुक्त करनेवाली पवित्र वैतरणी नदी है। वहाँ स्नानकर शूलपाणि वृषध्वज (शिव)-की पूजा कर मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा विशुद्ध होकर निश्चय ही परमगतिको प्राप्त कर लेता है॥ ३८—४२॥

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा रसावर्त्तमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तः सिद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम्॥ ४३

विप्रश्रेष्ठो! तत्पश्चात् सर्वश्रेष्ठ रसावर्त्त (तीर्थ)-में जाना चाहिये। वहाँ भक्तिसहित स्नान करनेवाला सर्वश्रेष्ठ

चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां तीर्थे स्नात्वा ह्यलेपके।
पूजयित्वा शिवं तत्र पापलेपो न विद्यते॥ ४४

ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः फलकीवनमुत्तमम्।
यत्र देवाः सगन्धर्वाः साध्याश्च ऋषयः स्थिताः।
तपश्चरन्ति विपुलं दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥ ४५

दृषद्वत्यां नरः स्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः।
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं विन्दति मानवः॥ ४६

सोमक्षये च सम्प्राप्ते सोमस्य च दिने तथा।
यः श्राद्धं कुरुते मर्त्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु॥ ४७

गयायां च यथा श्राद्धं पितॄन् प्रीणाति नित्यशः।
तथा श्राद्धं च कर्तव्यं फलकीवनमाश्रितैः॥ ४८

मनसा स्मरते यस्तु फलकीवनमुत्तमम्।
तस्यापि पितरस्तृप्तिं प्रयास्यन्ति न संशयः॥ ४९

तत्रापि तीर्थं सुमहत् सर्वदेवैरलंकृतम्।
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो गोसहस्रफलं लभेत्॥ ५०

पाणिखाते नरः स्नात्वा पितॄन् संतर्प्य मानवः।
अवाप्नुयाद् राजसूयं सांख्यं योगं च विन्दति॥ ५१

ततो गच्छेत सुमहत्तीर्थं मिश्रकमुत्तमम्।
तत्र तीर्थानि मुनिना मिश्रितानि महात्मना॥ ५२

व्यासेन मुनिशार्दूला दधीच्यर्थं महात्मना।
सर्वतीर्थेषु स स्नाति मिश्रके स्नाति यो नरः॥ ५३

ततो व्यासवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः।
मनोजवे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवमणिं शिवम्॥ ५४

मनसा चिन्तितं सर्वं सिध्यते नात्र संशयः।
गत्वा मधुवटीं चैव देव्यास्तीर्थं नरः शुचिः॥ ५५

तत्र स्नात्वाऽर्चयेद् देवान् पितॄंश्च प्रयतो नरः।
स देव्या समनुज्ञातो यथा सिद्धिं लभेन्नरः॥ ५६

कौशिक्याः संगमे यस्तु दृषद्वत्यां नरोत्तमः।
स्नायीत नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५७

सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त करता है। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी (चौदस) तिथिको 'अलेपक' नामक तीर्थमें स्नान कर वहाँ शिवकी पूजा करनेसे पापसे लिप्त नहीं होता—पाप दूर भाग जाता है। विप्रवरो! वहाँसे उत्तम फलकीवनमें जाना चाहिये। वहाँ देवता, गन्धर्व, साध्य और ऋषिलोग रहते हैं एवं दिव्य सहस्र वर्षोंतक बहुत तप करते हैं। दृषद्वती (कग्गर) नदीमें स्नानकर देवताओंका तर्पण करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम और अतिरात्र नामक यज्ञोंसे मिलनेवाले फलको प्राप्त करता है॥ ४३—४६॥

सोमवारके दिन चन्द्रमाके क्षीण हो जानेपर अर्थात् सोमवती अमावास्याको जो मनुष्य श्राद्ध करता है, उसका पुण्यफल सुनो। जैसे गया-क्षेत्रमें किया गया श्राद्ध पितरोंको नित्य तृप्त करता है, वैसे ही फलकीवनमें रहनेवालोंको श्राद्ध करनेसे पितरोंको तृप्ति होती हैं। जो मनुष्य मनसे फलकीवनका स्मरण करता है, उसके भी पितर निःसंदेह तृप्ति प्राप्त करते हैं। वहीं सभी देवोंसे सुशोभित एक 'सुमहत्' तीर्थ है; उसमें स्नान करनेवाला पुरुष हजारों गौओंके दानका फल प्राप्त करता है। मानव पाणिखात तीर्थमें स्नान करके एवं पितरोंका तर्पण कर राजसूय-यज्ञ तथा सांख्य (ज्ञान) और योग (कर्म)-के अनुष्ठान करनेसे होनेवाले फलको प्राप्त करता है॥ ४७—५१॥

पाणिखातके बाद 'मिश्रक' नामक महान् एवं श्रेष्ठ तीर्थमें जाना चाहिये। मुनिश्रेष्ठो! वहाँ महात्मा व्यासदेवने दधीचिऋषिके हेतु तीर्थोंको एकमें मिश्रित किया था। इस मिश्रकतीर्थमें स्नान कर लेनेवाला मनुष्य (मानो) सभी तीर्थोंमें स्नान कर लेता है। फिर संयमशील तथा नियमित आहार करनेवाला होकर व्यासवनमें जाना चाहिये। 'मनोजव' तीर्थमें स्नानकर 'देवमणि' शङ्करका दर्शन करनेसे मनुष्यको अभीष्ट-सिद्धिकी प्राप्ति होती है—इसमें संदेह नहीं। मनुष्यको देवीके मधुवटी नामक तीर्थमें जाकर स्नान करके संयत होकर देवों एवं पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला व्यक्ति देवीकी आज्ञासे (जैसी चाहता है, वैसी) सिद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ५२—५६॥

जो मनुष्य 'कौशिकी' और 'दृषद्वती' (कग्गर) नदियोंके संगममें स्नान करता और नियत भोजन करता है, वह श्रेष्ठ पुरुष सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

ततो व्यासस्थली नाम यत्र व्यासेन धीमता।
पुत्रशोकाभिभूतेन देहत्यागाय निश्चयः॥ ५८

कृतो देवैश्च विप्रेन्द्राः पुनरुत्थापितस्तदा।
अभिगम्य स्थलीं तस्य पुत्रशोकं न विन्दति॥ ५९

किंदत्तं कूपमासाद्य तिलप्रस्थं प्रदाय च।
गच्छेत परमां सिद्धिं ऋणैर्मुक्तिमवाप्नुयात्॥ ६०

अह्नं च सुदिनं चैव द्वे तीर्थे भुवि दुर्लभे।
तयोः स्नात्वा विशुद्धात्मा सूर्यलोकमवाप्नुयात्॥ ६१

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! 'व्यासस्थली' नामका एक स्थान है, जहाँ पुत्रशोकसे दुःखी होकर वेदव्यासने अपने शरीरत्यागका निश्चय कर लिया था, पर देवोंने उन्हें पुनः सँभाल लिया। उसके बाद उस भूमिमें जानेवाले मनुष्यको पुत्रशोक नहीं होता। 'किंदत्त कूप'में जाकर एक पसर (तौलका एक परिमाण) तिलका दान करनेसे मनुष्य परमसिद्धि और ऋणसे मुक्ति प्राप्त करता है। 'अह्न' एवं 'सुदिन' नामक ये दो तीर्थ पृथ्वीमें दुर्लभ हैं। इन दोनोंमें स्नान करनेसे मनुष्य विशुद्धात्मा होकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है॥ ५७—६१॥

कृतजप्यं ततो गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तत्राभिषेकं कुर्वीत गङ्गायां प्रयतः स्थितः॥ ६२

अर्चयित्वा महादेवमश्वमेधफलं लभेत्।
कोटितीर्थं च तत्रैव दृष्ट्वा कोटीश्वरं प्रभुम्॥ ६३

तत्र स्नात्वा श्रद्दधानः कोटियज्ञफलं लभेत्।
ततो वामनकं गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ ६४

यत्र वामनरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना।
बलेरपहृतं राज्यमिन्द्राय प्रतिपादितम्॥ ६५

उसके बाद तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध 'कृतजप्य' नामके तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ नियमपूर्वक संयत रहते हुए गङ्गामें स्नान करना चाहिये। वहाँपर महादेवका पूजन करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। वहींपर कोटितीर्थ स्थित है। वहाँ श्रद्धापूर्वक स्नानकर 'कोटीश्वर' नाथका दर्शन करनेसे मनुष्य कोटि यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है। उसके बाद तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध 'वामनक' तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ प्रभावशाली विष्णुने वामनरूप धारणकर बलिका राज्य छीन कर इन्द्रको दे दिया था॥ ६२—६५॥

तत्र विष्णुपदे स्नात्वा अर्चयित्वा च वामनम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ ६६

ज्येष्ठाश्रमं च तत्रैव सर्वपातकनाशनम्।
तं तु दृष्ट्वा नरो मुक्तिं संप्रयाति न संशयः॥ ६७

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
द्वादश्यां च नरः स्नात्वा ज्येष्ठत्वं लभते नृषु॥ ६८

तत्र प्रतिष्ठिता विप्रा विष्णुना प्रभविष्णुना।
दीक्षाप्रतिष्ठासंयुक्ता विष्णुप्रीणनतत्पराः॥ ६९

वहाँ 'विष्णुपद' तीर्थमें स्नान कर वामनदेवकी पूजा कर समस्त पापोंसे शुद्ध होकर (छूटकर) मनुष्य विष्णुके लोकको प्राप्त कर लेता है। वहींपर सभी पापोंको नष्ट करनेवाला ज्येष्ठाश्रम नामका तीर्थ है, उसका दर्शन कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है—इसमें संदेह नहीं। ज्येष्ठ महीनेके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिको उपवास कर द्वादशी तिथिके दिन स्नानकर मानव मनुष्योंमें श्रेष्ठता (बड़प्पन) प्राप्त करता है। वहाँ (सर्वाधिक) प्रभावशाली विष्णुभगवान्‌ने यज्ञादिमें दीक्षित (लगे हुए), प्रतिष्ठित एवं सम्मान्य तथा विष्णु-भगवान्‌की आराधनामें परायण ब्राह्मणोंको सम्मानित किया था॥ ६६—६९॥

तेभ्यो दत्तानि श्राद्धानि दानानि विविधानि च।
अक्षयाणि भविष्यन्ति यावन्मन्वन्तरस्थितिः॥ ७०

तत्रैव कोटितीर्थं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा कोटियज्ञफलं लभेत्॥ ७१

उन्हें दिये गये (पात्रक) श्राद्ध और अनेक प्रकारके दान अक्षय एवं मन्वन्तरतक स्थिर रहते हैं। वहीं तीनों लोकोंमें विख्यात 'कोटितीर्थ' है। उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य करोड़ों यज्ञोंके फल प्राप्त करता है।

कोटीश्वरं नरो दृष्ट्वा तस्मिंस्तीर्थे महेश्वरम्।
महादेवप्रसादेन गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ ७२

तत्रैव सुमहत् तीर्थं सूर्यस्य च महात्मनः।
तस्मिन् स्नात्वा भक्तियुक्तः सूर्यलोके महीयते॥ ७३

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रास्तीर्थं कल्मषनाशनम्।
कुलोत्तारणनामानं विष्णुना कल्पितं पुरा॥ ७४

वर्णानामाश्रमाणां च तारणाय सुनिर्मलम्।
ब्रह्मचर्यात्परं मोक्षं य इच्छन्ति सुनिर्मलम्।
तेऽपि तत्तीर्थमासाद्य पश्यन्ति परमं पदम्॥ ७५

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
कुलानि तारयेत् स्नातः सप्त सप्त च सप्त च॥ ७६

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये तत्परायणाः।
स्नाता भक्तियुताः सर्वे पश्यन्ति परमं पदम्॥ ७७

दूरस्थोऽपि स्मरेद् यस्तु कुरुक्षेत्रं सवामनम्।
सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति किं पुनर्निवसन्नरः॥ ७८

उस तीर्थमें 'कोटीश्वर' महादेवका दर्शन कर मनुष्य उन महादेवकी कृपासे गाणपत्य पद (गणनायकत्वकी उपाधि) प्राप्त करता है। और वहीं महात्मा सूर्यदेवका महान् तीर्थ है। उसमें भक्तिपूर्वक स्नानकर मनुष्य सूर्यलोकमें महान् माना जाता है॥ ७०—७३॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! कोटि तीर्थके बाद पापका नाश करनेवाले 'कुलोत्तारण तीर्थ'में जाना चाहिये, जिसे प्राचीनकालमें विष्णुने वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंको तारनेके लिये बनाया था। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यव्रतसे विशुद्ध मुक्तिकी इच्छा करते हैं ऐसे लोग भी उस तीर्थमें जाकर परम पदका दर्शन कर लेते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और संन्यासी वहाँ स्नानकर अपने कुलके (७+७+७=२१) इक्कीस पूर्व पुरुषोंका उद्धार कर देते हैं। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र उस तीर्थमें तीर्थपरायण होकर एवं भक्तिसे स्नान करते हैं, वे सभी परम पदका दर्शन करते हैं। और जो दूर रहता हुआ भी वामनसहित कुरुक्षेत्रका स्मरण करता है, वह भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है; फिर वहाँ निवास करनेवालेका तो कहना ही क्या?॥ ७४—७८॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके तीर्थोंके माहात्म्य और क्रमका पूर्वानुक्रान्त वर्णन

लोमहर्षण उवाच

पवनस्य ह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्।
विमुक्तः कलुषैः सर्वैः शैवं पदमवाप्नुयात्॥ १

पुत्रशोकेन पवनो यस्मिंल्लीनो बभूव ह।
ततः सब्रह्मकैर्देवैः प्रसाद्य प्रकटीकृतः॥ २

अतो गच्छेत अमृतं स्थानं तच्छूलपाणिनः।
यत्र देवैः सगन्धर्वैः हनुमान् प्रकटीकृतः॥ ३

लोमहर्षण बोले—पवनके ह्रदमें, पुत्र (हनुमान्‌जी)-के शोकके कारण जिस सरोवरमें पवन लीन हो गये थे, उसमें स्नान करके महेश्वरदेवका दर्शन कर मनुष्य समस्त पापोंसे विमुक्त हो शिवपदको प्राप्त करता है। उसके बाद ब्रह्माके साथ सभी देवोंने मिलकर उन्हें प्रसन्न एवं प्रत्यक्ष प्रकट किया। यहाँसे शूलपाणि (भगवान् शंकर)-के अमृत नामक स्थानमें जाना चाहिये, जहाँ गन्धर्वोंके साथ देवताओंने हनुमान्‌जीको प्रकट किया था।

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा अमृतत्वमवाप्नुयात्।
कुलोत्तारणमासाद्य तीर्थसेवी द्विजोत्तमः॥ ४

कुलानि तारयेत् सर्वान् मातामहपितामहान्।
शालिहोत्रस्य राजर्षेस्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ ५

तत्र स्नात्वा विमुक्तस्तु कलुषैर्देहसंभवैः।
श्रीकुञ्जं तु सरस्वत्यां तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ ६

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या अग्निष्टोमफलं लभेत्।
ततो नैमिषकुञ्जं तु समासाद्य नरः शुचिः॥ ७

नैमिषस्य च स्नानेन यत् पुण्यं तत् समाप्नुयात्।
तत्र तीर्थं महाख्यातं वेदवत्या निषेवितम्॥ ८

रावणेन गृहीतायाः केशेषु द्विजसत्तमाः।
तद्वधाय च सा प्राणान् मुमुचे शोककर्शिता॥ ९

ततो जाता गृहे राज्ञो जनकस्य महात्मनः।
सीता नामेति विख्याता रामपत्नी पतिव्रता॥ १०

सा हृता रावणेनेह विनाशायात्मनः स्वयम्।
रामेण रावणं हत्वा अभिषिच्य विभीषणम्॥ ११

समानीता गृहं सीता कीर्तिरात्मवता यथा।
तस्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा कन्यायज्ञफलं लभेत्॥ १२

विमुक्तः कलुषैः सर्वैः प्राप्नोति परमं पदम्।
ततो गच्छेत सुमहद् ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्॥ १३

यत्र वर्णावरः स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते नरः।
ब्राह्मणश्च विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात्॥ १४

ततो गच्छेत सोमस्य तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम्।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा द्विजराज्यमवाप्नुयात्॥ १५

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च स्वपितॄन् दैवतानि च।
निर्मलः स्वर्गमायाति कार्तिक्यां चन्द्रमा यथा॥ १६

उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य अमृतपदको पा लेता है। नियमानुसार तीर्थका सेवन करनेवाला श्रेष्ठ ब्राह्मण 'कुलोत्तारण'तीर्थमें जाकर अपने मातामह और पितामहके समस्त वंशोंका उद्धार कर देता है। तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध राजर्षि शालिहोत्रके तीर्थमें स्नान कर मुक्त हो मनुष्य शारीरिक पापोंसे सर्वथा छूट जाता है। सरस्वती-क्षेत्रमें तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध श्रीकुञ्ज नामक तीर्थ है। उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त कर लेता है। मनुष्य वहाँसे नैमिषकुञ्जतीर्थमें जाकर पवित्र हो जाता है और नैमिषारण्यतीर्थमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, उसे प्राप्त कर लेता है। वहाँपर 'वेदवती'से निषेवित बहुत प्रसिद्ध तीर्थ है॥ १—८॥

द्विजश्रेष्ठो! रावणके द्वारा अपने केशके पकड़े जानेपर शोकसे संतप्त होकर (वेदवतीने) उसके (रावणके) वधके लिये अपने प्राणोंको छोड़ दिया था और उसके बाद महात्मा राजा जनकके घरमें वे उत्पन्न हुईं और उनका नाम 'सीता' विख्यात हुआ तथा वे रामकी पतिव्रता पत्नी हुईं। उस सीताको रावणने स्वयं अपने विनाशके लिये अपहृत कर लिया। सीताके अपहरण हो जानेपर राम-रावण-युद्ध हुआ, जिसमें रावणको मारनेके बाद विभीषणको (लङ्काके राज्यपर) अभिषिक्त कर राम सीताको वैसे ही घर लौटा लाये, जैसे आत्मवान् (जितेन्द्रिय) पुरुष कीर्तिको प्राप्त करता है। उनके तीर्थमें स्नान कर मनुष्य कन्यायज्ञ (कन्यादान)-का फल एवं समस्त पापोंसे मुक्त होकर परम पदको प्राप्त करता है। उस वेदवतीतीर्थके बाद ब्रह्माके उत्तम और महान् स्थानमें जाना चाहिये, जहाँ स्नान करनेसे अवर-वर्णका व्यक्ति (जन्मान्तरमें) ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है और ब्राह्मण विशुद्ध अन्तःकरणवाला होकर परम पदकी प्राप्ति करता है॥ ९—१४॥

उस ब्रह्माके तीर्थस्थलपर जानेके बाद तीनों लोकोंमें दुर्लभ 'सोमतीर्थ'में जाना चाहिये, जहाँ चन्द्रमाने तपस्या करके द्विजराजत्व-पदको प्राप्त किया था। वहाँ स्नानकर अपने पितरों और देवताओंकी पूजा करनेसे मनुष्य कार्तिककी पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान निर्मल

सप्तसारस्वतं तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्।
यत्र सप्त सरस्वत्य एकीभूता वहन्ति च॥ १७

सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला मानसह्रदा।
सरस्वत्योघनामा च सुरेणुर्विमलोदका॥ १८

होकर स्वर्गको प्राप्त कर लेता है। तीनों लोकोंमें दुर्लभ 'सप्तसारस्वत' नामक एक तीर्थ है, जहाँ सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मानसह्रदा, सरस्वती, ओघवती, विमलोदका एवं सुरेणु नामकी सातों सरस्वतियाँ (नदियाँ) एकत्र मिलकर प्रवाहित होती हैं॥ १५—१८॥

पितामहस्य यजतः पुष्करेषु स्थितस्य ह।
अब्रुवन् ऋषयः सर्वे नाऽयं यज्ञो महाफलः॥ १९

न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती।
तच्छ्रुत्वा भगवान् प्रीतः सस्माराथ सरस्वतीम्॥ २०

पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै।
सुप्रभा नाम सा देवी तत्र ख्याता सरस्वती॥ २१

तां दृष्ट्वा मुनयः प्रीता वेगयुक्तां सरस्वतीम्।
पितामहं मानयन्तीं ते तु तां बहु मेनिरे॥ २२

पुष्करतीर्थमें स्थित ब्रह्माजीके यज्ञके अनुष्ठानमें लग जानेपर सभी ऋषियोंने उनसे कहा—आपका यह यज्ञ महाफलजनक नहीं होगा; क्योंकि यहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती (नदी) नहीं दिखलायी पड़ रही है। उसे सुनकर भगवान्ने प्रसन्नतापूर्वक सरस्वतीका स्मरण किया। पुष्करमें यज्ञ कर रहे ब्रह्माजीद्वारा आहूत की गयी 'सुप्रभा' नामकी देवी वहाँ सरस्वती नामसे प्रसिद्ध हुईं। ब्रह्माजीका मान करनेवाली उस वेगवती सरस्वतीको देखकर मुनिजन प्रसन्न हो गये और उन सबोंने उनका अत्यधिक सम्मान किया॥ १९—२२॥

एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करस्था सरस्वती।
समानीता कुरुक्षेत्रे मङ्कणेन महात्मना॥ २३

नैमिषे मुनयः स्थित्वा शौनकाद्यास्तपोधनाः।
ते पृच्छन्ति महात्मानं पौराणं लोमहर्षणम्॥ २४

कथं यज्ञफलोऽस्माकं वर्ततां सत्पथे भवेत्।
ततोऽब्रवीन्महाभागः प्रणम्य शिरसा ऋषीन्॥ २५

सरस्वती स्थिता यत्र तत्र यज्ञफलं महत्।
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो नानास्वाध्यायवेदिनः॥ २६

समागम्य ततः सर्वे सस्मरुस्ते सरस्वतीम्।
सा तु ध्याता ततस्तत्र ऋषिभिः सत्रयाजिभिः॥ २७

समागता प्लावनार्थं यज्ञे तेषां महात्मनाम्।
नैमिषे काञ्चनाक्षी तु स्मृता मङ्कणकेन सा॥ २८

समागता कुरुक्षेत्रं पुण्यतोया सरस्वती।
गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम्॥ २९

आहूता च सरिच्छ्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती।
विशालां नाम तां प्राहुर्ऋषयः संशितव्रताः॥ ३०

इस प्रकार पुष्करतीर्थमें स्थित एवं नदियोंमें श्रेष्ठ इस सरस्वतीको महात्मा मङ्कण कुरुक्षेत्रमें लाये। एक समय नैमिषारण्यमें रहनेवाले तपस्याके धनी शौनक आदि मुनियोंने पुराणोंके ज्ञाता महात्मा लोमहर्षणसे पूछा—सत्पथगामी हमलोगोंको यज्ञका फल कैसे प्राप्त होगा? (—इसे कृपाकर समझाइये।) उसके बाद महानुभाव लोमहर्षणजीने ऋषियोंको सिरसे प्रणाम कर कहा कि ऋषियो! जहाँ सरस्वती नदी अवस्थित है, वहाँ (रहनेसे) यज्ञका महान् फल प्राप्त होता है। इसको सुनकर विविध वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले मुनियोंने एकत्र होकर सरस्वतीका स्मरण किया। दीर्घकालिक यज्ञ करनेवाले उन ऋषियोंके ध्यान (स्मरण) करनेपर वे (सरस्वती) वहाँ नैमिषक्षेत्रमें उन महात्माओंके यज्ञमें प्लावन करनेके लिये काञ्चनाक्षी नामसे उपस्थित हो गयीं। वे ही प्रसिद्ध नदी मङ्कणके द्वारा स्मृत होनेपर पवित्र-सलिला सरस्वतीके रूपमें कुरुक्षेत्रमें (भी) आयीं और महान् व्रती ऋषियोंने गया-क्षेत्रमें महायज्ञका अनुष्ठान करनेवाले गयके यज्ञमें आहूत की गयी उन श्रेष्ठ सरस्वती नदीको 'विशाला'के नामसे स्मरण किया॥ २३—३०॥

सरित् सा हि समाहूता मङ्कणेन महात्मना।
कुरुक्षेत्रं समायाता प्रविष्टा च महानदी॥ ३१

उत्तरे कोशलाभागे पुण्ये देवर्षिसेविते।
उद्दालकेन मुनिना तत्र ध्याता सरस्वती॥ ३२

महात्मा मङ्कण ऋषिद्वारा समाहूत की गयी वही नदी कुरुक्षेत्रमें आकर प्रवेश कर गयी। (फिर) उद्दालक मुनिने देवर्षियोंके द्वारा सेवित परम पवित्र उत्तरकोसल

आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात्।
पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः॥ ३३
मनोहरेति विख्याता सर्वपापक्षयावहा।
आहूता सा कुरुक्षेत्रे मङ्कणेन महात्मना।
ऋषेः संमानानार्थाय प्रविष्टा तीर्थमुत्तमम्॥ ३४
सुवेणुरिति विख्याता केदारे या सरस्वती।
सर्वपापक्षया ज्ञेया ऋषिसिद्धनिषेविता॥ ३५
सापि तेनेह मुनिना आराध्य परमेश्वरम्।
ऋषीणामुपकारार्थं कुरुक्षेत्रं प्रवेशिता॥ ३६
दक्षेण यजता सापि गङ्गाद्वारे सरस्वती।
विमलोदा भगवती दक्षेण प्रकटीकृता॥ ३७
समाहूता ययौ तत्र मङ्कणेन महात्मना।
कुरुक्षेत्रे तु कुरुणा यजिता च सरस्वती॥ ३८
सरोमध्ये समानीता मार्कण्डेयेन धीमता।
अभिष्टूय महाभागां पुण्यतोयां सरस्वतीम्॥ ३९
यत्र मङ्कणकः सिद्धः सप्तसारस्वते स्थितः।
नृत्यमानश्च देवेन शंकरेण निवारितः॥ ४०

प्रदेशमें सरस्वतीका ध्यान किया। उन मुनिके कारण नदियोंमें श्रेष्ठ वह सरस्वती नदी उस देशमें आ गयी एवं वह वल्कल तथा मृगचर्मको धारण करनेवाले मुनियोंद्वारा पूजित हुई। तब सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाली वह 'मनोहरा' नामसे विख्यात हुई। फिर वह महात्मा मङ्कणद्वारा आहूत होकर ऋषिको सम्मानित करनेके लिये कुरुक्षेत्रके उत्तम तीर्थमें प्रविष्ट हुई। केदारतीर्थमें जो सरस्वती 'सुवेणु' नामसे प्रसिद्ध है, वह ऋषियों और सिद्धोंके द्वारा सेवित तथा सर्वपापनाशक रूपसे जानी जाती है॥ ३१—३५॥

परमेश्वरकी आराधना कर उन मुनिने उसे (सुवेणुको) भी ऋषियोंका उपकार करनेके लिये इस कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित कराया। गङ्गाद्वारमें यज्ञ कर रहे दक्षने 'विमलोदा' नामसे भगवती सरस्वतीको प्रकट किया। कुरुक्षेत्रमें कुरुद्वारा पूजित सरस्वती मङ्कणद्वारा बुलायी जानेपर वहाँ गयी। फिर बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी उस पवित्र जलवाली महाभागा सरस्वतीकी स्तुति कर उसे सरोवरके मध्यमें ले गये। वहीं सप्तसारस्वततीर्थमें उपस्थित एवं नृत्य करते हुए सिद्ध मङ्कणकको नृत्य करनेसे शंकरजीने रोका था॥ ३६—४०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

मङ्कणक-प्रसङ्ग, मङ्कणकका शिवस्तवन और उनकी अनुकूलता प्राप्ति

ऋषय ऊचुः

कथं मङ्कणकः सिद्धः कस्माज्जातो महानृषिः।
नृत्यमानस्तु देवेन किमर्थं स निवारितः॥ १

लोमहर्षण उवाच

कश्यपस्य सुतो जज्ञे मानसो मङ्कणो मुनिः।
स्नानं कर्तुं व्यवसितो गृहीत्वा वल्कलं द्विजः॥ २
तत्र गता ह्यप्सरसो रम्भाद्याः प्रियदर्शनाः।
स्नायन्ति रुचिराः स्निग्धास्तेन सार्धमनिन्दिताः॥ ३

ऋषियोंने कहा—(प्रभो!) मङ्कणक किस प्रकार सिद्ध हुए? वे महान् ऋषि किससे उत्पन्न हुए थे? नृत्य करते हुए उन मङ्कणकको महादेवने क्यों रोका?॥ १॥

लोमहर्षणने कहा—(ऋषियो!) मङ्कणकमुनि महर्षि कश्यपके मानसपुत्र थे। (एक समय) वे ब्राह्मण देवता वल्कल-वस्त्र लेकर स्नान करने गये। वहाँ रम्भा आदि सुन्दरी अप्सराएँ भी गयी थीं। अनिन्द्य, कोमल एवं मनोहर (रूपवाली वे सभी) अप्सराएँ उनके साथ (ही)

ततो मुनेस्तदा क्षोभाद्रेतः स्कन्नं यदम्भसि।
तद्रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः॥ ४

सप्तधा प्रविभागं तु कलशस्थं जगाम ह।
तत्रर्षयः सप्त जाता विदुर्यान् मरुतां गणान्॥ ५

वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः।
वायुज्वालो वायुरेतो वायुचक्रश्च वीर्यवान्॥ ६

एते ह्यपत्यास्तस्यर्षेर्धारयन्ति चराचरम्।
पुरा मङ्कणकः सिद्धः कुशाग्रेणेति मे श्रुतम्॥ ७

क्षतः किल करे विप्रास्तस्य शाकरसोऽस्त्रवत्।
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान्॥ ८

ततः सर्वं प्रनृत्तं च स्थावरं जङ्गमं च यत्।
प्रनृत्तं च जगद् दृष्ट्वा तेजसा तस्य मोहितम्॥ ९

ब्रह्मादिभिः सुरैस्तत्र ऋषिभिश्च तपोधनैः।
विज्ञप्तो वै महादेवो मुनेरर्थे द्विजोत्तमाः॥ १०

नायं नृत्येद् यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि।
ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव हि॥ ११

सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत।
हर्षस्थानं किमर्थं च तवेदं मुनिसत्तम।
तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम॥ १२

ऋषिरुवाच

किं न पश्यसि मे ब्रह्मन् कराच्छाकरसं स्त्रुतम्।
यं दृष्ट्वाऽहं प्रनृत्तो वै हर्षेण महताऽन्वितः॥ १३

तं प्रहस्याब्रवीद् देवो मुनिं रागेण मोहितम्।
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीह प्रपश्यताम्॥ १४

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं देवदेवो महाद्युतिः।
अङ्गुल्यग्रेण विप्रेन्द्राः स्वाङ्गुष्ठं ताडयद् भवः॥ १५

ततो भस्म क्षतात् तस्मान्निर्गतं हिमसन्निभम्।
तद् दृष्ट्वा व्रीडितो विप्रः पादयोः पतितोऽब्रवीत्॥ १६

नान्यं देवादहं मन्ये शूलपाणेर्महात्मनः।
चराचरस्य जगतो वरस्त्वमसि शूलधृक्॥ १७

स्नान करने लगीं। उसके बाद मुनिके मनमें विकृति हो गयी; फलतः उनका शुक्र जलमें स्खलित हो गया। उस रेतको उन महातपस्वीने उठाकर घड़ेमें रख लिया। वह कलशस्थ (रेत) सात भागोंमें विभक्त हो गया। उससे सात ऋषि उत्पन्न हुए, जिन्हें मरुद्गण कहा जाता है। (उनके नाम हैं—) वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेता एवं वीर्यवान् वायुचक्र। उन (मङ्कणक) ऋषिके ये सात पुत्र चराचरको धारण करते हैं। ब्राह्मणो! मैंने यह सुना है कि प्राचीन कालमें सिद्ध मङ्कणकके हाथमें कुशके अग्रभागसे छिद जानेके कारण घाव हो गया था; उससे शाकरस निकलने लगा। वे (अपने हाथसे निकलते हुए उस) शाकरसको देखकर प्रसन्न हो गये और नाचने लगे॥ २—८॥

इससे (उनके नृत्य करनेसे उनके साथ) सम्पूर्ण अचर-चर जगत् भी नाचने लगा। उनके तेजसे मोहित जगत्को नाचते देखकर ब्रह्मा आदि देव एवं तपस्वी ऋषियोंने मुनिके (हितके) लिये महादेवसे कहा— देव! आप ऐसा (कार्य) करें, जिससे ये नृत्य न करें (उन्हें नृत्यसे विरत करनेका उपाय करें)। उसके बाद हर्षसे अधिक मग्न उन मुनिको देखकर एवं देवोंके हितकी इच्छासे महादेवने कहा—मुनिसत्तम! ब्राह्मणश्रेष्ठ! आप तो तपस्वी एवं धर्मपथमें स्थित रहनेवाले हैं। फिर आपके इस हर्षका क्या कारण है?॥ ९—१२॥

ऋषिने कहा— ब्रह्मन्! क्या आप नहीं देखते कि मेरे हाथसे शाकका रस चू रहा है; जिसे देखकर मैं अत्यन्त आनन्दमग्न होकर नृत्य कर रहा हूँ। महादेवजीने हँसकर आसक्तिसे मोहित हुए उन मुनिसे कहा— विप्रवर! मुझे आश्चर्य नहीं हो रहा है। (किंतु) आप इधर देखें। विप्रेन्द्रो! श्रेष्ठ मुनिसे ऐसा कहकर देदीप्यमान भगवान् देवाधिदेव महादेवने अपनी अंगुलिके अग्रभागसे अपने अंगूठेको ठीक किया। उसके बाद उस चोटसे हिमतुल्य (स्वच्छ) भस्म निकलने लगा। उसे देखनेके बाद ब्राह्मण लज्जित होकर (महादेवके) चरणोंमें गिर पड़े और बोले—॥ १३—१६॥

मैं महात्मा शूलपाणि महादेवके अतिरिक्त किसीको नहीं मानता। शूलपाणे! मेरी दृष्टिमें आप ही चराचर

त्वदाश्रयाश्च दृश्यन्ते सुरा ब्रह्मादयोऽनघ।
पूर्वस्त्वमसि देवानां कर्त्ता कारयिता महत्॥ १८

त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे मोदन्ते ह्यकुतोभयाः।
एवं स्तुत्वा महादेवमृषिः स प्रणतोऽब्रवीत्॥ १९

भगवंस्त्वत्प्रसादाद्धि तपो मे न क्षयं व्रजेत्।
ततो देवः प्रसन्नात्मा तमृषिं वाक्यमब्रवीत्॥ २०

ईश्वर उवाच

तपस्ते वर्धतां विप्र मत्प्रसादात् सहस्रधा।
आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्द्धमहं सदा॥ २१
सप्तसारस्वते स्नात्वा यो मामर्चिष्यते नरः।
न तस्य दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च॥ २२
सारस्वतं च तं लोकं गमिष्यति न संशयः।
शिवस्य च प्रसादेन प्राप्नोति परमं पदम्॥ २३

समस्त संसारमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अनघ! ब्रह्मा आदि देवता आपके ही आश्रित देखे जाते हैं। आप ही देवताओंमें प्रथम हैं और आप (सब कुछ) करने एवं करानेवाले तथा महत्स्वरूप हैं। आपकी कृपासे सभी देवगण निर्भय होकर मोदमग्न होते रहते हैं। ऋषिने इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करनेके बाद उन्हें प्रणामकर कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मेरे तपका क्षय न हो। तब महादेवजीने प्रसन्न होकर उन ऋषिसे यह वचन कहा—॥ १७—२०॥

(सदाशिव) ईश्वरने कहा—विप्र! मेरी कृपासे तुम्हारी तपस्या सहस्रों प्रकारसे बढ़े। मैं तुम्हारे साथ इस आश्रममें सदा निवास करूँगा। जो मनुष्य इस सप्तसारस्वततीर्थमें स्नान करके मेरी पूजा करेगा, उसे इस लोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। वह नि:संदेह उस सारस्वतलोकको जायगा एवं (मुझ) शिवके अनुग्रहसे परम पदको प्राप्त करेगा॥ २१—२३॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके तीर्थोंका अनुक्रान्त वर्णन

लोमहर्षण उवाच

ततस्त्वौशनसं तीर्थं गच्छेत्तु श्रद्धयान्वितः।
उशना यत्र संसिद्धो ग्रहत्वं च समाप्तवान्॥ १

तस्मिन् स्नात्वा विमुक्तस्तु पातकैर्जन्मसम्भवैः।
ततो याति परं ब्रह्म यस्मान्नावर्तते पुनः॥ २

रहोदरो नाम मुनिर्यत्र मुक्तो बभूव ह।
महता शिरसा ग्रस्तस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात्॥ ३

ऋषय ऊचुः

कथं रहोदरो ग्रस्तः कथं मोक्षमवाप्तवान्।
तीर्थस्य तस्य माहात्म्यमिच्छामः श्रोतुमादरात्॥ ४

लोमहर्षणने कहा—(ऋषियो!) सप्तसारस्वतके बाद श्रद्धासे युक्त होकर 'औशनस'तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ शुक्र सिद्धि प्राप्तकर ग्रहत्वको प्राप्त हो गये। उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य अनेक जन्मोंमें किये हुए पातकोंसे छूटकर परब्रह्मको प्राप्त करता है, जहाँसे पुनः (जन्म-मरणके चक्करमें) लौटना नहीं पड़ता। (वह तीर्थ ऐसा है) जहाँ तीर्थ-दर्शनकी महिमासे भारी सिरसे जकड़े हुए रहोदर नामके एक मुनि उससे मुक्त हो गये थे॥ १—३॥

ऋषियोंने कहा (पूछा)—रहोदर मुनि सिरसे ग्रस्त कैसे हो गये थे? और वे उससे मुक्त कैसे हुए? हमलोग उस तीर्थके माहात्म्यको आदरके साथ सुनना चाहते हैं (जिसकी महिमासे ऐसा हुआ।)॥ ४॥

लोमहर्षण उवाच

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना।
वसता द्विजशार्दूला राक्षसास्तत्र हिंसिताः॥ ५
तत्रैकस्य शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः।
क्षुरेण शितधारेण तत् पपात महावने॥ ६
रहोदरस्य तल्लग्नं जङ्घायां वै यदृच्छया।
वने विचरतस्तत्र अस्थि भित्त्वा विवेश ह॥ ७
स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह।
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च॥ ८
स पूतिना विस्रवता वेदनार्त्तो महामुनिः।
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां यानि कानि च॥ ९

ततः स कथयामास ऋषीणां भावितात्मनाम्।
तेऽब्रुवन् ऋषयो विप्रं प्रयाह्यौशनसं प्रति॥ १०

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा जगाम स रहोदरः।
ततस्त्वौशनसे तीर्थे तस्योपस्पृशतस्तदा॥ ११

तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले द्विजाः।
ततः स विरजो भूत्वा पूतात्मा वीतकल्मषः॥ १२

आजगामाश्रमं प्रीतः कथयामास चाखिलम्।
ते श्रुत्वा ऋषयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्।
कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः॥ १३
तत्रापि सुमहत्तीर्थं विश्वामित्रस्य विश्रुतम्।
ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रो महामुनिः॥ १४

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते ध्रुवम्।
ब्राह्मणस्तु विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात्॥ १५

ततः पृथूदकं गच्छेन्नियतो नियताशनः।
तत्र सिद्धस्तु ब्रह्मर्षी रुषङ्गुर्नाम नामतः॥ १६

जातिस्मरो रुषङ्गुस्तु गङ्गाद्वारे सदा स्थितः।
अन्तकालं ततो दृष्ट्वा पुत्रान् वचनमब्रवीत्।
इह श्रेयो न पश्यामि नयध्वं मां पृथूदकम्॥ १७

लोमहर्षणजी बोले— द्विजश्रेष्ठो! प्राचीन कालमें दण्डकारण्यमें रहते हुए रघुवंशी महात्मा रामचन्द्रने बहुत-से राक्षसोंको मारा था। वहाँ एक दुष्टात्मा राक्षसका सिर तीक्ष्णधारवाले क्षुर नामक बाणसे कटकर उस महावनमें गिरा। (फिर वह) संयोगवश वनमें विचरण करते हुए रहोदर मुनिकी जंघामें उनकी हड्डीको तोड़कर उससे चिपट गया। महाप्राज्ञ वे ब्राह्मणदेव (जंघेकी टूटी हड्डीमें) उस मस्तकके लग जानेके कारण तीर्थों और देवालयोंमें नहीं जा पाते थे॥ ५—८॥

वे महामुनि दुर्गन्धपूर्ण पीब आदि बहनेके कारण तथा वेदनासे अत्यन्त दुःखी रहते थे। पृथ्वीके जिन-जिन तीर्थोंमें वे गये, वहाँ-वहाँ उन्होंने पवित्रात्मा ऋषियोंसे (अपना दुःख) कहा। ऋषियोंने उन विप्रसे कहा—ब्राह्मणदेव! आप औशनस (तीर्थ)-में जाइये। (लोमहर्षणने कहा—) द्विजो! उनका यह वचन सुनकर रहोदर मुनि वहाँसे औशनसतीर्थमें गये। वहाँ उन्होंने तीर्थ-जलका स्पर्श किया। उनके द्वारा (जलका) स्पर्श होते ही वह मस्तक उनसे (जाँघ)-को छोड़कर जलमें गिर गया। उसके बाद वे मुनि पापसे रहित निर्मल रजोगुणसे रहित अतएव पवित्रात्मा होकर प्रसन्नतापूर्वक (अपने) आश्रममें गये और उन्होंने (ऋषियोंसे) सारी आपबीती कह सुनायी। फिर तो उन आये हुए सभी ऋषियोंने औशनसतीर्थके इस उत्तम माहात्म्यको सुनकर उसका नाम 'कपालमोचन' रख दिया॥ ९—१३॥

वहीं (कपालमोचन तीर्थमें ही) महामुनि विश्वामित्रका बहुत बड़ा तीर्थ है, जहाँ विश्वामित्रने ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया था। उस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको निश्चय रूपसे ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है और वह ब्राह्मण विशुद्धात्मा होकर ब्रह्मके परम पदको प्राप्त करता है। कपालमोचनके बाद पृथूदक नामके तीर्थमें जाय और नियमपूर्वक नियत मात्रामें आहार करे। वहाँ रुषङ्गु नामके ब्रह्मर्षिने सिद्धि पायी थी। सदा गङ्गाद्वारमें स्थित रहते हुए पूर्वजन्मके वृत्तान्तको स्मरण रखनेवाले रुषङ्गुने (अपना) अन्तकाल आया देखकर (अपने) पुत्रोंसे कहा कि यहाँ (मैं) अपना कल्याण नहीं देख रहा हूँ। मुझे पृथूदक

विज्ञाय तस्य तद्भावं रुषङ्गोस्ते तपोधनाः।
तं वै तीर्थे उपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम्॥ १८

स तैः पुत्रैः समानीतः सरस्वत्यां समाप्लुतः।
स्मृत्वा तीर्थगुणान् सर्वान् प्राहेदमृषिसत्तमः॥ १९
सरस्वत्युत्तरे तीर्थे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम्।
पृथूदके जप्यपरो नूनं चामरतां व्रजेत्॥ २०
तत्रैव ब्रह्मयोन्यस्ति ब्रह्मणा यत्र निर्मिता।
पृथूदकं समाश्रित्य सरस्वत्यास्तटे स्थितः॥ २१
चातुर्वर्ण्यस्य सृष्ट्यर्थमात्मज्ञानपरोऽभवत्।
तस्याभिध्यायतः सृष्टिं ब्रह्मणो व्यक्तजन्मनः॥ २२
मुखतो ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियास्तथा।
ऊरुभ्यां वैश्यजातीयाः पद्भ्यां शूद्रास्ततोऽभवन्॥ २३
चातुर्वर्ण्यं ततो दृष्ट्वा आश्रमस्थं ततस्ततः।
एवं प्रतिष्ठितं तीर्थं ब्रह्मयोनीति संज्ञितम्॥ २४

तत्र स्नात्वा मुक्तिकामः पुनर्योनिं न पश्यति।
तत्रैव तीर्थं विख्यातमवकीर्णेति नामतः॥ २५

यस्मिंस्तीर्थे वको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रममर्षणम्।
जुहाव वाहनैः सार्धं तत्राबुध्यत् ततो नृपः॥ २६

ऋषय ऊचुः

कथं प्रतिष्ठितं तीर्थमवकीर्णेति नामतः।
धृतराष्ट्रेण राज्ञा च स किमर्थं प्रसादितः॥ २७

लोमहर्षण उवाच

ऋषयो नैमिषेया ये दक्षिणार्थं ययुः पुरा।
तत्रैव च वको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रमयाचत॥ २८
तेनापि तत्र निन्दार्थमुक्तं पश्वनृतं तु यत्।
ततः क्रोधेन महता मांसमुत्कृत्य तत्र ह॥ २९
पृथूदके महातीर्थे अवकीर्णेति नामतः।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेस्ततः॥ ३०
हूयमाने तदा राष्ट्रे प्रवृत्ते यज्ञकर्मणि।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं नृपतेर्दुष्कृतेन वै॥ ३१

(तीर्थ)-में ले चलो। रुषङ्गुके उस भावको जानकर वे तपोधन (पुत्र) उन तपके धनीको सरस्वतीके तीर्थमें ले गये॥ १४—१८॥

उन पुत्रोंद्वारा लाये गये उन ऋषिश्रेष्ठने सरस्वतीमें स्नान करनेके पश्चात् उस तीर्थके सब गुणोंका स्मरण कर यह कहा था—'सरस्वतीके उत्तरकी ओर स्थित पृथूदक नामके तीर्थमें अपने शरीरका त्याग करनेवाला जपपरायण मनुष्य निश्चय ही देवत्वको प्राप्त होता है।' वहीं ब्रह्माद्वारा निर्मित 'ब्रह्मयोनितीर्थ' है, जहाँ सरस्वतीके किनारे अवस्थित पृथूदकमें स्थित होकर ब्रह्मा चारों वर्णोंकी सृष्टिके लिये आत्मज्ञानमें लीन हुए थे। सृष्टिके विषयमें अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके चिन्तन करनेपर उनके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, दोनों ऊरुओंसे वैश्य और दोनों पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए॥ १९—२३॥

उसके बाद उन्होंने चारों वर्णोंको विभिन्न आश्रमोंमें स्थित हुआ देखा। इस प्रकार ब्रह्मयोनि नामक तीर्थकी प्रतिष्ठा हुई थी। मुक्तिकी कामना करनेवाला व्यक्ति वहाँ स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं देखता। वहीं अवकीर्ण नामक एक विख्यात तीर्थ भी है, जहाँपर दाल्भ्य (दल्भ या दल्भि गोत्रमें उत्पन्न) वक नामक ऋषिने क्रोधी धृतराष्ट्रको उसके वाहनोंके साथ हवन कर दिया था, तब कहीं राजाको (अपने किये कर्मका) ज्ञान हुआ था॥ २४—२६॥

ऋषियोंने पूछा— अवकीर्ण नामक तीर्थ कैसे प्रतिष्ठित हुआ एवं राजा धृतराष्ट्रने उन (वक दाल्भ्य मुनि)-को क्यों प्रसन्न किया था?॥ २७॥

लोमहर्षणने कहा—प्राचीन कालमें नैमिषारण्य-निवासी जो ऋषि दक्षिणा पानेके लिये (राजा धृतराष्ट्रके यहाँ) गये थे, उनमेंसे दल्भिवंशीय वक ऋषिने धृतराष्ट्रसे (धनकी) याचना की। उन्होंने (धृतराष्ट्रने) भी निन्दापूर्ण ग्राम्य और असत्य बात कही। उसके बाद वे (वक दाल्भ्य) अत्यन्त क्रुद्ध होकर पृथूदकमें स्थित अवकीर्ण नामक तीर्थमें जा करके मांस काट-काटकर धृतराष्ट्रके राष्ट्रके नाम हवन करने लगे। तब यज्ञमें राष्ट्रका हवन प्रारम्भ होनेपर राजाके दुष्कर्मके कारण राष्ट्रका क्षय होने लगा॥ २८—३१॥

ततः स चिन्तयामास ब्राह्मणस्य विचेष्टितम्।
पुरोहितेन संयुक्तो रत्नान्यादाय सर्वशः॥ ३२

प्रसादनार्थं विप्रस्य ह्यवकीर्णं ययौ तदा।
प्रसादितः स राज्ञा च तुष्टः प्रोवाच तं नृपम्॥ ३३

ब्राह्मणा नावमन्तव्याः पुरुषेण विजानता।
अवज्ञातो ब्राह्मणस्तु हन्यात् त्रिपुरुषं कुलम्॥ ३४

एवमुक्त्वा स नृपतिं राज्येन यशसा पुनः।
उत्थापयामास ततस्तस्य राज्ञे हिते स्थितः॥ ३५

(राष्ट्रको क्षीण होते देख) उसने विचार किया और वह इसे ब्राह्मणका विकर्म जानकर (उस ब्राह्मणको) प्रसन्न करनेके लिये समस्त रत्नोंको लेकर पुरोहितके साथ अवकीर्णतीर्थमें गया (और उस) राजाने उन्हें प्रसन्न कर लिया। प्रसन्न होकर उन्होंने राजासे कहा — (राजन्!) विद्वान् मनुष्यको ब्राह्मणका अपमान नहीं करना चाहिये। अपमानित हुआ ब्राह्मण मनुष्यके कुलके तीन पुरुषों (पीढ़ियों)-का विनाश कर देता है। ऐसा कहकर उन्होंने पुनः राजाको राज्य एवं यशके साथ सम्पन्न कर दिया और वे उस राजाके हितकारी हो गये॥ ३२—३५॥

तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नाति श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
स प्राप्नोति नरो नित्यं मनसा चिन्तितं फलम्॥ ३६

तत्र तीर्थं सुविख्यातं यायातं नाम नामतः।
यस्येह यजमानस्य मधु सुस्राव वै नदी॥ ३७

तस्मिन् स्नातो नरो भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।
फलं प्राप्नोति यज्ञस्य अश्वमेधस्य मानवः॥ ३८

मधुस्रवं च तत्रैव तीर्थं पुण्यतमं द्विजाः।
तस्मिन् स्नात्वा नरो भक्त्या मधुना तर्पयेत् पितॄन्॥ ३९

तत्रापि सुमहत्तीर्थं वसिष्ठोद्वाहसंज्ञितम्।
तत्र स्नातो भक्तियुक्तो वासिष्ठं लोकमाप्नुयात्॥ ४०

उस (अवकीर्ण) तीर्थमें जो जितेन्द्रिय मनुष्य श्रद्धापूर्वक स्नान करता है, वह नित्य मनोऽभिलषित फल प्राप्त करता है। वहाँ 'यायात' (ययातिका तीर्थ) नामसे सुविख्यात तीर्थ है, जहाँ यज्ञ करनेवालेके लिये नदीने मधु बहाया था। उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है एवं उसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। द्विजो! वहीं 'मधुस्रव' नामक पवित्र तीर्थ है। उसमें मनुष्यको भक्तिपूर्वक स्नान कर मधुसे पितरोंका तर्पण करना चाहिये। वहींपर 'वसिष्ठोद्वाह' नामक सुन्दर महान् तीर्थ है, वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेवाला व्यक्ति महर्षि वसिष्ठके लोकको प्राप्त करता है॥ ३६—४०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

वसिष्ठापवाह नामक तीर्थका उत्पत्ति-प्रसङ्ग

ऋषय ऊचुः

वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ कथं वै सम्बभूव ह।
किमर्थं सा सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत्॥ १

लोमहर्षण उवाच

विश्वामित्रस्य राजर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मनः।
भृशं वैरं बभूवेह तपःस्पर्द्धाकृते महत्॥ २

ऋषियोंने कहा (पूछा)— महाराज! वह वसिष्ठापवाह कैसे उत्पन्न हुआ? उस श्रेष्ठ सरिताने उन ऋषिको अपने प्रवाहमें क्यों बहा दिया था?॥ १॥

लोमहर्षण बोले— (ऋषियो!) राजर्षि विश्वामित्र एवं महात्मा वसिष्ठमें तपस्याके विषयमें परस्पर चुनौती होनेके कारण बड़ी भारी शत्रुता हो गयी।

आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थे बभूव ह।
तस्य पश्चिमदिग्भागे विश्वामित्रस्य धीमतः॥ ३
यत्रेष्ट्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम्।
स्थापयामास देवेशो लिङ्गाकारां सरस्वतीम्॥ ४
वसिष्ठस्तत्र तपसा घोररूपेण संस्थितः।
तस्येह तपसा हीनो विश्वामित्रो बभूव ह॥ ५
सरस्वतीं समाहूय इदं वचनमब्रवीत्।
वसिष्ठं मुनिशार्दूलं स्वेन वेगेन आनय॥ ६
इहाहं तं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यथिता सा महानदी॥ ७
तथा तां व्यथितां दृष्ट्वा वेपमानां महानदीम्।
विश्वामित्रोऽब्रवीत् क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय॥ ८
ततो गत्वा सरिच्छ्रेष्ठा वसिष्ठं मुनिसत्तमम्।
कथयामास रुदतो विश्वामित्रस्य तद् वचः॥ ९
तपःक्रियाविशीर्णां च भृशं शोकसमन्विताम्।
उवाच स सरिच्छ्रेष्ठां विश्वामित्राय मां वह॥ १०
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित्।
चालयामास तं स्थानात् प्रवाहेणाम्भसस्तदा॥ ११
स च कूलापहारेण मित्रावरुणयोः सुतः।
उह्यमानश्च तुष्टाव तदा देवीं सरस्वतीम्॥ १२
पितामहस्य सरसः प्रवृत्ताऽसि सरस्वति।
व्याप्तं त्वया जगत् सर्वं तवैवाम्भोभिरुत्तमैः॥ १३
त्वमेवाकाशगा देवी मेघेषु सृजसे पयः।
सर्वास्त्वापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहे॥ १४
पुष्टिर्धृतिस्तथा कीर्त्तिः सिद्धिः कान्तिः क्षमा तथा।
स्वधा स्वाहा तथा वाणी तवायत्तमिदं जगत्॥ १५
त्वमेव सर्वभूतेषु वाणीरूपेण संस्थिता।
एवं सरस्वती तेन स्तुता भगवती सदा॥ १६
सुखेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति।
न्यवेदयत्तदा खिन्ना विश्वामित्राय तं मुनिम्॥ १७

वसिष्ठका आश्रम स्थाणुतीर्थमें था और उसके पश्चिम दिशामें बुद्धिमान् विश्वामित्र महर्षिका आश्रम था; जहाँ देवाधिदेव भगवान् शिवने यज्ञ करनेके बाद सरस्वतीकी पूजा कर मूर्तिके रूपमें सरस्वतीकी स्थापना की थी। वसिष्ठजी वहीं घोर तपस्यामें संलग्न थे। उनकी तपस्यासे विश्वामित्र (प्रभावतः) हीन-से होने लगे॥ २—५॥

(एक बार) विश्वामित्रने सरस्वतीको बुलाकर यह वचन कहा—सरस्वति! तुम मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठको अपने वेगसे बहा लाओ। मैं उन द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठको यहाँ मारूँगा — इसमें संदेहकी बात नहीं है। इस (अवाञ्छनीय बात)-को सुनकर वह महानदी दुःखित हो गयी। (पर) विश्वामित्रने उस प्रकार दुःखित एवं काँपती हुई उस महानदीको देखकर क्रोधमें भरकर कहा कि वसिष्ठको शीघ्र लाओ। उसके बाद उस श्रेष्ठ नदीने मुनिश्रेष्ठके पास जाकर उनसे रोते हुए विश्वामित्रकी उस बातको कहा॥ ६—९॥

उन वसिष्ठजीने तपश्चर्यासे दुर्बल एवं अतिशय शोक-समन्वित उस श्रेष्ठ सरिता (सरस्वती)-से कहा — (तुम) विश्वामित्रके पास मुझे बहा ले चलो। उन दयालुके उस वचनको सुनकर उस सरस्वती सरिताने जलके (तेज) प्रवाहद्वारा उन्हें उस स्थानसे बहाना प्रारम्भ किया। किनारेसे ले जाये जानेके कारण बहते हुए मित्रावरुणके पुत्र वसिष्ठ-ऋषि प्रसन्न होकर देवी सरस्वतीकी स्तुति करने लगे —सरस्वति! आप ब्रह्माके सरोवरसे निकली हैं। आपने अपने उत्तम जलसे समस्त जगत्‌को व्याप्त कर दिया है॥ १०—१३॥

'आप ही आकाशगामिनी देवी हैं और मेघोंमें जलको उत्पन्न करती हैं। आप ही सभी जलोंके रूपमें वर्तमान हैं। आपकी ही शक्तिसे हमलोग अध्ययन करते हैं। आप ही पुष्टि, धृति, कीर्त्ति, सिद्धि, कान्ति, क्षमा, स्वधा, स्वाहा तथा सरस्वती हैं। यह पूरा विश्व आपके ही अधीन है। आप ही समस्त प्राणियोंमें वाणीरूपसे स्थित हैं।' वसिष्ठजीने भगवती सरस्वतीकी इस प्रकार स्तुति की और सरस्वती नदीने उन विप्रदेवको विश्वामित्रके आश्रममें सुखपूर्वक पहुँचा दिया और खिन्न होकर उन मुनिको विश्वामित्रके लिये निवेदित कर दिया॥ १४—१७॥

तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः।
अथान्विषत् प्रहरणं वसिष्ठान्तकरं तदा॥ १८

तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्महत्याभयान्नदी।
अपोवाह वसिष्ठं तं मध्ये चैवाम्भसस्तदा।
उभयोः कुर्वती वाक्यं वञ्चयित्वा च गाधिजम्॥ १९

ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम्।
अब्रवीत् क्रोधरक्ताक्षो विश्वामित्रो महातपाः॥ २०

यस्मान्मां सरितां श्रेष्ठे वञ्चयित्वा विनिर्गता।
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणिसंयुता॥ २१

ततः सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता।
अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा॥ २२

अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तदा।
सरस्वतीं तदा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः॥ २३

तस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये शोणितं समुपावहत्।
ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसाश्च समागताः॥ २४

ततस्ते शोणितं सर्वे पिबन्तः सुखमासते।
तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतज्वराः।
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा॥ २५

कस्यचित्त्वथ कालस्य ऋषयः सतपोधनाः।
तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां तपोधनाः॥ २६

तां दृष्ट्वा राक्षसैर्घोरैः पीयमानां महानदीम्।
परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे॥ २७

ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन्॥ २८

किं कारणं सरिच्छ्रेष्ठे शोणितेन ह्रदो ह्ययम्।
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वा वेत्स्यामहे वयम्॥ २९

ततः सा सर्वमाचष्ट विश्वामित्रविचेष्टितम्।
ततस्ते मुनयः प्रीताः सरस्वत्यां समानयन्।
अरुणां पुण्यतोयौघां सर्वदुष्कृतनाशनीम्॥ ३०

उसके बाद सरस्वतीद्वारा बहाकर लाये गये वसिष्ठको देखकर विश्वामित्र क्रोधसे भर गये और वसिष्ठका अन्त करनेवाला शस्त्र ढूँढ़ने लगे। उन्हें क्रोधसे भरा हुआ देखकर ब्रह्महत्याके भयसे डरती हुई वह सरस्वती नदी गाधिपुत्र विश्वामित्रको वञ्चित कर दोनोंकी बातोंका पालन करती हुई उन वसिष्ठको जलमें (पुनः) बहा ले गयी। उसके बाद ऋषिप्रवर वसिष्ठको अपवाहित होते देखकर महातपस्वी विश्वामित्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। फिर विश्वामित्रने कहा—ओ श्रेष्ठ नदी! यतः तुम मुझे वञ्चितकर चली गयी हो, कल्याणि! अतः श्रेष्ठ राक्षसोंसे संयुक्त होकर तुम शोणितका वहन करो—तुम्हारा जल रक्तसे युक्त हो जाय॥ १८—२१॥

उसके बाद बुद्धिमान् विश्वामित्रसे इस प्रकार शाप प्राप्तकर सरस्वतीने एक वर्षतक रक्तसे मिले हुए जलको बहाया। उसके पश्चात् सरस्वती नदीको रक्तसे मिश्रित जलवाली देखकर ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ अत्यन्त दुःखित हो गयीं। (यतः) उस पवित्र श्रेष्ठ तीर्थमें रुधिर ही बहने लगा। अतः वहाँ भूत, पिशाच, राक्षस एकत्र होने लगे। वे सभी रक्तका पान करते हुए वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। वे उससे अत्यन्त तृप्त, सुखी एवं निश्चिन्त होकर इस प्रकार नाचने एवं हँसने लगे, मानो उन्होंने स्वर्गको जीत लिया हो॥ २२—२५॥

कुछ समय बीतनेपर तपस्याके धनी ऋषिलोग तीर्थयात्रा करते-करते सरस्वतीके तटपर पहुँचे। (वहाँ) भयानक राक्षसोंके द्वारा पीती जाती हुई महानदी सरस्वतीको देखकर वे उसकी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न करने लगे। और महान् व्रतोंका अनुष्ठान करनेवाले उन महाभागोंने श्रेष्ठ नदीको (पास) बुलाकर उससे यह वचन फिर कहा—श्रेष्ठ सरिते! हम सब आपसे यह जानना चाहते हैं कि यह जलाशय रक्तसे भरकर ऐसा क्षुब्ध कैसे हुआ है?॥ २६—२९॥

तब उसने विश्वामित्रके समस्त विकर्मोंका (उनके सामने ही) वर्णन किया। उसके पश्चात् प्रसन्न हुए मुनिजन सरस्वती तथा समस्त पापोंका विनाश करनेवाली अरुणा नदीको ले आये। (जिससे सरस्वती-ह्रदका

दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या राक्षसा दुःखिता भृशम्।
ऊचुस्तान् वै मुनीन् सर्वान् दैन्ययुक्ताः पुनः पुनः॥ ३१

वयं हि क्षुधिताः सर्वे धर्महीनाश्च शाश्वताः।
न च नः कामकारोऽयं यद् वयं पापकारिणः॥ ३२

युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा।
पक्षोऽयं वर्धतेऽस्माकं यतः स्मो ब्रह्मराक्षसाः॥ ३३

एवं वैश्याश्च शूद्राश्च क्षत्रियाश्च विकर्मभिः।
ये ब्राह्मणान् प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः॥ ३४

योषितां चैव पापानां योनिदोषेण वर्द्धते।
इयं संततिरस्माकं गतिरेषा सनातनी॥ ३५

शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे।
तेषां ते मुनयः श्रुत्वा कृपाशीलाः पुनश्च ते॥ ३६

ऊचुः परस्परं सर्वे तप्यमानाश्च ते द्विजाः।
क्षुतकीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाशितं भवेत्॥ ३७

केशावपन्नमाधूतं मारुतश्वासदूषितम्।
एभिः संसृष्टमन्नं च भागं वै रक्षसां भवेत्॥ ३८

तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वान् अन्नान्येतानि वर्जयेत्।
राक्षसानामसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्तेऽन्नमीदृशम्॥ ३९

शोधयित्वा तु तत्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः।
मोक्षार्थं रक्षसां तेषां संगमं तत्र कल्पयन्॥ ४०

अरुणायाः सरस्वत्याः संगमे लोकविश्रुते।
त्रिरात्रोपोषितः स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥ ४१

प्राप्ते कलियुगे घोरे अधर्मे प्रत्युपस्थिते।
अरुणासंगमे स्नात्वा मुक्तिमाप्नोति मानवः॥ ४२

ततस्ते राक्षसाः सर्वे स्नाताः पापविवर्जिताः।
दिव्यमाल्याम्बरधराः स्वर्गस्थितिसमन्विताः॥ ४३

शोणित पवित्र जल हो गया) (पर) सरस्वतीके जलको (इस प्रकार शुद्ध हुआ) देखकर राक्षस बहुत दुःखित हो गये। वे दीनतापूर्वक उन सभी मुनियोंसे बार-बार कहने लगे कि हम सभी सदा भूखे एवं धर्मसे रहित रहते हैं। हम अपनी इच्छासे पापकर्म करनेवाले पापी नहीं बने हुए हैं, अपितु आपलोगोंकी अकृपा एवं अशोभन कर्मोंसे ही हमारा पक्ष बढ़ता रहता है; क्योंकि हम सभी ब्रह्मराक्षस हैं॥ ३०—३३॥

इसी प्रकार जो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, वे (ऐसे ही) विकर्म करनेके कारण राक्षस हो जाते हैं। पापिनी स्त्रियोंके योनिदोषसे हमारी यह संतति बढ़ती रहती है। यह हमारी प्राचीन गति है। आपलोग सभी लोकोंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं। (लोमहर्षणजी कहते हैं—) द्विजो! वे कृपालु मुनि उन सदाकी रीति ब्रह्मराक्षसोंके इन वचनोंको सुनकर बहुत दुःखी हुए और परस्पर परामर्शकर उनसे बोले—(ब्रह्मराक्षसो!) छींक तथा कीटके संसर्गसे दूषित, उच्छिष्ट भोजन, केशयुक्त, तिरस्कृत एवं श्वासवायुसे दूषित अन्न तुम राक्षसोंका भाग होगा॥ ३४—३८॥

(पुनः लोमहर्षणजी बोले—) ऋषियो! इसको जानकर विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इस प्रकारके अन्नोंको त्याग दे। इस प्रकार अन्न खानेवाला व्यक्ति राक्षसोंका भाग खाता है। उन तपोधन ऋषियोंने उस तीर्थको शुद्धकर उन राक्षसोंकी मुक्तिके लिये वहाँ एक सङ्गमकी रचना की। [उसका फल इस प्रकार है] लोक-प्रसिद्ध अरुणा और सरस्वतीके सङ्गममें तीन दिनोंतक व्रतपूर्वक स्नान करनेवाला (व्यक्ति) सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। (आगे भी) घोर कलियुग आनेपर तथा अधर्मका अधिक प्रसार हो जानेपर मनुष्य अरुणाके सङ्गममें स्नान करके मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। इसको सुननेके बाद उन सभी राक्षसोंने उसमें स्नान किया और वे निष्पाप हो गये तथा दिव्य माला और वस्त्र धारणकर स्वर्गमें विराजने लगे॥ ३९—४३॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके तीर्थों—शतसाहस्रिक, शतिक, रेणुका, ऋणमोचन, ओजस, संनिहति, प्राची सरस्वती, पञ्चवट, कुरुतीर्थ, अनरकतीर्थ, काम्यकवन आदिका वर्णन

लोमहर्षण उवाच

समुद्रास्तत्र चत्वारो दर्विणा आहृताः पुरा।
प्रत्येकं तु नरः स्नातो गोसहस्रफलं लभेत्॥ १
यत्किंचित् क्रियते तस्मिंस्तपस्तीर्थे द्विजोत्तमाः।
परिपूर्णं हि तत्सर्वमपि दुष्कृतकर्मणः॥ २
शतसाहस्रिकं तीर्थं तथैव शतिकं द्विजाः।
उभयोर्हि नरः स्नातो गोसहस्रफलं लभेत्॥ ३
सोमतीर्थं च तत्रापि सरस्वत्यास्तटे स्थितम्।
यस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो राजसूयफलं लभेत्॥ ४

लोमहर्षणने कहा— प्राचीन कालकी बात है महर्षि दर्वि वहाँ चार समुद्रोंको ले आये थे। उनमेंसे प्रत्येक समुद्रमें स्नान करनेसे मनुष्योंको हजार गोदान करनेका फल प्राप्त होता है। द्विजोत्तमो! उस तीर्थमें जो तपस्या की जाती है, वह पापीद्वारा की गयी होनेपर भी सिद्ध हो जाती है। द्विजो! वहाँ शतसाहस्रिक एवं शतिक नामके दो तीर्थ हैं। उन दोनों ही तीर्थोंमें स्नान करनेवाला मनुष्य हजार गौ-दान करनेका फल प्राप्त करता है। वहीं सरस्वतीके तटपर सोमतीर्थ भी स्थित है, जिसमें स्नान करनेसे पुरुष राजसूययज्ञका फल प्राप्त करता है॥ १—४॥

रेणुकाश्रममासाद्य श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
मातृभक्त्या च यत्पुण्यं तत्फलं प्राप्नुयान्नरः॥ ५
ऋणमोचनमासाद्य तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम्।
ऋणैर्मुक्तो भवेन्नित्यं देवर्षिपितृसम्भवैः।
कुमारस्याभिषेकं च ओजसं नाम विश्रुतम्॥ ६
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो यशसा च समन्वितः।
कुमारपुरमाप्नोति कृत्वा श्राद्धं तु मानवः॥ ७
चैत्रषष्ठ्यां सिते पक्षे यस्तु श्राद्धं करिष्यति।
गयाश्राद्धे च यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्नरः॥ ८

माताकी सेवा करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उस पुण्य-फलको इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेवाला श्रद्धालु मनुष्य रेणुकातीर्थमें जाकर प्राप्त कर लेता है और ब्रह्माद्वारा सेवित ऋणमोचन नामके तीर्थमें जाकर देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणसे छूट जाता है। कुमार (कार्तिकेय)-का अभिषेकस्थल ओजसनामसे विख्यात है; उस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है और वहाँ श्राद्ध करनेसे उसे कार्तिकेयके लोककी प्राप्ति होती है। चैत्रमासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें जो मनुष्य वहाँ श्राद्ध करेगा, वह गयामें श्राद्ध करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उस पुण्यको प्राप्त करता है॥ ५—८॥

संनिहत्यां यथा श्राद्धं राहुग्रस्ते दिवाकरे।
तथा श्राद्धं तत्र कृतं नात्र कार्या विचारणा॥ ९
ओजसे ह्यक्षयं श्राद्धं वायुना कथितं पुरा।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं तत्र समाचरेत्॥ १०
यस्तु स्नानं श्रद्दधानश्चैत्रषष्ठ्यां करिष्यति।
अक्षय्यमुदकं तस्य पितॄणामुपजायते॥ ११
तत्र पञ्चवटं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
महादेवः स्थितो यत्र योगमूर्तिधरः स्वयम्॥ १२

राहुद्वारा सूर्यके ग्रस्त हो जानेपर (सूर्यग्रहण लगनेपर) सन्निहतितीर्थमें किये गये श्राद्धके समान वहाँका श्राद्ध पुण्यप्रद होता है; इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। पूर्वसमयमें वायुने कहा था कि ओजसतीर्थमें किये गये श्राद्धका क्षय नहीं होता है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक वहाँ श्राद्ध करना चाहिये। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिके दिन जो उसमें श्रद्धापूर्वक स्नान करेगा, उसके पितरोंको अक्षय (कभी भी क्षय न होनेवाले) जलकी प्राप्ति होगी। तीनों लोकोंमें विख्यात एक 'पञ्चवट' नामका तीर्थ है, जहाँ स्वयं भगवान् महादेव योगसाधना करनेकी मुद्रामें विराजमान हैं॥ ९—१२॥

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च देववेदं महेश्वरम्।
गाणपत्यमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते॥ १३

कुरुतीर्थं च विख्यातं कुरुणा यत्र वै तपः।
तप्तं सुघोरं क्षेत्रस्य कर्षणार्थं द्विजोत्तमाः॥ १४

तस्य घोरेण तपसा तुष्ट इन्द्रोऽब्रवीद् वचः।
राजर्षे परितुष्टोऽस्मि तपसाऽनेन सुव्रत॥ १५

यज्ञं ये च कुरुक्षेत्रे करिष्यन्ति शतक्रतोः।
ते गमिष्यन्ति सुकृताँल्लोकान् पापविवर्जितान्॥ १६

अवहस्य ततः शक्रो जगाम त्रिदिवं प्रभुः।
आगम्यागम्य चैवेनं भूयो भूयो वहस्य च॥ १७

शतक्रतुरनिर्विण्णः पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह।
यदा तु तपसोग्रेण चकर्ष देहमात्मनः।
ततः शक्रोऽब्रवीत् प्रीत्या ब्रूहि यत्ते चिकीर्षितम्॥ १८

कुरुरुवाच

ये श्रद्दधानास्तीर्थेऽस्मिन् मानवा निवसन्ति ह।
ते प्राप्नुवन्तु सदनं ब्रह्मणः परमात्मनः॥ १९

अन्यत्र कृतपापा ये पञ्चपातकदूषिताः।
अस्मिंस्तीर्थं नराः स्नात्वा मुक्ता यान्तु परां गतिम्॥ २०

कुरुक्षेत्रे पुण्यतमं कुरुतीर्थं द्विजोत्तमाः।
तं दृष्ट्वा पापमुक्तस्तु परं पदमवाप्नुयात्॥ २१

कुरुतीर्थे नरः स्नातो मुक्तो भवति किल्बिषैः।
कुरुणा समनुज्ञातः प्राप्नोति परमं पदम्॥ २२

स्वर्गद्वारं ततो गच्छेच्छिवद्वारे व्यवस्थितम्।
तत्र स्नात्वा शिवद्वारे प्राप्नोति परमं पदम्॥ २३

ततो गच्छेदनरकं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
यत्र पूर्वे स्थितो ब्रह्मा दक्षिणे तु महेश्वरः॥ २४

रुद्रपत्नी पश्चिमतः पद्मनाभोत्तरे स्थितः।
मध्ये अनरकं तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्॥ २५

उस (पञ्चवट) स्थानपर स्नान करके देवाधिदेव महादेवकी पूजा करनेवाला मनुष्य गणपतिका पद और देवताओंके साथ आनन्द प्राप्त करता हुआ प्रसन्न रहता है। श्रेष्ठ द्विजो! 'कुरुतीर्थ' विख्यात तीर्थ है, जिसमें कुरुने कीर्तिकी प्राप्तिके लिये धर्मकी खेती करनेके लिये तपस्या की थी। उनकी घोर तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्द्रने कहा—सुन्दर व्रतोंके करनेवाले राजर्षि! तुम्हारी इस तपस्यासे मैं संतुष्ट हूँ। (सुनो) इस कुरुक्षेत्रमें जो लोग इन्द्रका यज्ञ करेंगे, वे लोग पापरहित हो जायँगे और पवित्र लोकोंको प्राप्त होंगे। इतना कहकर इन्द्रदेव मुस्कराकर स्वर्ग चले गये। बिना खिन्न हुए इन्द्र बारंबार आये और उपहासपूर्वक उनसे (उनकी योजनाके सम्बन्धमें कुछ) पूछ-पूछकर चले गये। कुरुने जब उग्र तपस्याद्वारा अपनी देहका कर्षण किया तो इन्द्रने प्रेमपूर्वक उनसे कहा—'कुरु! तुम्हें जो कुछ करनेकी इच्छा हो उसे कहो'॥ १३—१८॥

कुरुने कहा—इन्द्रदेव! जो श्रद्धालु मानव इस तीर्थमें निवास करते हैं, वे परमात्मरूप परब्रह्मके लोकको प्राप्त करते हैं। इस स्थानसे अन्यत्र पाप करनेवालों एवं पञ्चपातकोंसे दूषित मनुष्य भी इस तीर्थमें स्नान करनेसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त करता है। (लोमहर्षणने कहा—) श्रेष्ठ ब्राह्मणो! कुरुक्षेत्रमें कुरुतीर्थ सर्वाधिक पवित्र है। उसका दर्शन कर पापात्मा मनुष्य (भी) मोक्ष प्राप्त कर लेता है तथा कुरुतीर्थमें स्नानकर पापोंसे छूट जाता है एवं कुरुकी आज्ञासे परमपद (मोक्ष)-को प्राप्त करता है॥ १९—२२॥

फिर (कुरुतीर्थमें स्नान करनेके बाद) शिवद्वारमें स्थित स्वर्गद्वारको जाय (और स्नान करे); क्योंकि वहाँ (शिवद्वारमें) स्नान करनेसे मनुष्य परमपदको प्राप्त करता है। शिवद्वार जानेके पश्चात् तीनों लोकोंमें विख्यात अनरक नामके तीर्थमें जाय। उस अनरकके पूर्वमें ब्रह्मा, दक्षिणमें महेश्वर, पश्चिममें रुद्रपत्नी एवं उत्तरमें पद्मनाभ और इन सबके मध्यमें अनरक नामका तीर्थ स्थित है; वह तीनों लोकोंके लिये भी दुर्लभ है॥ २३—२५॥

यस्मिन् स्नातस्तु मुच्येत पातकैरुपपातकैः।
वैशाखे च यदा षष्ठी मङ्गलस्य दिनं भवेत्॥ २६

तदा स्नानं तत्र कृत्वा मुक्तो भवति पातकैः।
यः प्रयच्छेत करकांश्चतुरो भक्ष्यसंयुतान्॥ २७

कलशं च तथा दद्यादपूपैः परिशोभितम्।
देवताः प्रीणयेत् पूर्वं करकैरन्नसंयुतैः॥ २८

ततस्तु कलशं दद्यात् सर्वपातकनाशनम्।
अनेनैव विधानेन यस्तु स्नानं समाचरेत्॥ २९

स मुक्तः कलुषैः सर्वैः प्रयाति परमं पदम्।
अन्यत्रापि यदा षष्ठी मङ्गलेन भविष्यति॥ ३०

तत्रापि मुक्तिफलदा क्रिया तस्मिन् भविष्यति।
तीर्थे च सर्वतीर्थानां यस्मिन् स्नातो द्विजोत्तमाः॥ ३१

सर्वदेवैरनुज्ञातः परं पदमवाप्नुयात्।
काम्यकं च वनं पुण्यं सर्वपातकनाशनम्॥ ३२

यस्मिन् प्रविष्टमात्रस्तु मुक्तो भवति किल्बिषैः।
यमाश्रित्य वनं पुण्यं सविता प्रकटः स्थितः॥ ३३

पूषा नाम द्विजश्रेष्ठा दर्शनान्मुक्तिमाप्नुयात्।
आदित्यस्य दिने प्राप्ते तस्मिन् स्नातस्तु मानवः।
विशुद्धदेहो भवति मनसा चिन्तितं लभेत्॥ ३४

जिस (अनरकतीर्थ)-में स्नान करनेवाला मनुष्य छोटे-बड़े सभी पापोंसे छूट जाता है। जब वैशाखमासकी षष्ठी तिथिको मङ्गल दिन हो तब वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाता है। (उस दिन) खाद्य पदार्थसे संयुक्त चार करक (करवे या कमण्डलु) एवं मालपुओं आदिसे सुशोभित कलशका दान करे। पहले अन्नसे युक्त करवोंसे देवताकी पूजा करे, फिर सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाले कलशका दान करे। जो मानव इस विधानसे स्नान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जायगा और परमपदको प्राप्त करेगा। इसके अतिरिक्त (वैशाखके सिवा) अन्य समयमें भी मङ्गलके दिन षष्ठी तिथि होनेपर उस तीर्थमें की हुई पूर्वोक्त क्रिया मुक्ति देनेवाली होगी॥ २६—३०॥

श्रेष्ठ द्विजो! वहीं समस्त पापोंका विनाश करनेवाला तीर्थ-शिरोमणि काम्यकवन नामका एक तीर्थ है। जो मनुष्य उसमें स्नान करता है, वह सभी देवोंकी अनुमतिसे परमपदको प्राप्त करता है। इस वनमें प्रवेश करनेसे ही मनुष्य अपने समस्त पापोंसे छूट जाता है। इस पवित्र वनमें पूषा नामके सूर्यभगवान् प्रत्यक्ष रूपसे स्थित हैं। द्विजश्रेष्ठो! उन सूर्यभगवान्के दर्शनसे मुक्ति प्राप्त होती है। रविवारको उस तीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य विशुद्ध-देह हो जाता है और अपने मनोरथको प्राप्त करता है॥ ३१—३४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

काम्यकवन-तीर्थका प्रसङ्ग, सरस्वती नदीकी महिमा और तत्सम्बद्ध तीर्थोंका वर्णन

ऋषय ऊचुः

काम्यकस्य तु पूर्वेण कुञ्जं देवैर्निषेवितम्।
तस्य तीर्थस्य सम्भूतिं विस्तरेण ब्रवीहि नः॥ १

लोमहर्षण उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्।
ऋषीणां चरितं श्रुत्वा मुक्तो भवति किल्बिषैः॥ २

ऋषियोंने पूछा— (लोमहर्षणजी!) काम्यकवनके पूर्वमें स्थित कुञ्जका आश्रयण देवताओंने किया था, पर उस काम्यकवन-तीर्थकी उत्पत्ति कैसे हुई, इसे आप हमें विस्तारसे बतलाइये॥ १॥

लोमहर्षणजी बोले— (उत्तर दिया) — मुनियो! आप सभी लोग इस तीर्थके श्रेष्ठ माहात्म्यको सुनें। ऋषियोंके चरित्रको सुननेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है।

नैमिषेयाश्च ऋषयः कुरुक्षेत्रे समागताः।
सरस्वत्यास्तु स्नानार्थं प्रवेशं ते न लेभिरे॥ ३

ततस्ते कल्पयामासुस्तीर्थं यज्ञोपवीतिकम्।
शेषास्तु मुनयस्तत्र न प्रवेशं हि लेभिरे॥ ४

रन्तुकस्याश्रमात्तावद् यावत्तीर्थं सचक्रकम्।
ब्राह्मणैः परिपूर्णं तु दृष्ट्वा देवी सरस्वती॥ ५

हितार्थं सर्वविप्राणां कृत्वा कुञ्जानि सा नदी।
प्रयाता पश्चिमं मार्गं सर्वभूतहिते स्थिता॥ ६

पूर्वप्रवाहे यः स्नाति गङ्गास्नानफलं लभेत्।
प्रवाहे दक्षिणे तस्या नर्मदा सरितां वरा॥ ७

पश्चिमे तु दिशाभागे यमुना संश्रिता नदी।
यदा उत्तरतो याति सिन्धुर्भवति सा नदी॥ ८

एवं दिशाप्रवाहेण याति पुण्या सरस्वती।
तस्यां स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः॥ ९

ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठा मदनस्य महात्मनः।
तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं विहारं नाम नामतः॥ १०

यत्र देवाः समागम्य शिवदर्शनकाङ्क्षिणः।
समागता न चापश्यन् देवं देव्या समन्वितम्॥ ११

ते स्तुवन्तो महादेवं नन्दिनं गणनायकम्।
ततः प्रसन्नो नन्दीशः कथयामास चेष्टितम्॥ १२

भवस्य उमया सार्धं विहारे क्रीडितं महत्।
तच्छ्रुत्वा देवतास्तत्र पत्नीराहूय क्रीडिताः॥ १३

तेषां क्रीडाविनोदेन तुष्टः प्रोवाच शंकरः।
योऽस्मिंस्तीर्थे नरः स्नाति विहारे श्रद्धयान्वितः॥ १४

धनधान्यप्रियैर्युक्तो भवते नात्र संशयः।
दुर्गातीर्थं ततो गच्छेद् दुर्गया सेवितं महत्॥ १५

यत्र स्नात्वा पितॄन् पूज्य न दुर्गतिमवाप्नुयात्।
तत्रापि च सरस्वत्याः कूपं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ १६

(एक बारकी बात है—) नैमिषारण्यके निवासी ऋषि सरस्वती नदीमें स्नान करनेके लिये कुरुक्षेत्र आये। परंतु वे सरस्वतीमें स्नान करनेके लिये प्रवेश न पा सके। तब उन्होंने यज्ञोपवीतिक नामके एक तीर्थकी कल्पना कर ली। (पर फिर भी) शेष मुनिलोग उसमें भी प्रवेश न पा सके। सरस्वतीने देखा कि रन्तुक आश्रमसे सचक्रकतक जितने भी तीर्थस्थल हैं, वे सब-के-सब ब्राह्मणोंसे भर गये हैं। इसलिये सभी ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये उस सरस्वती नदीने कुञ्ज बना दिया और सभी प्राणियोंकी भलाईमें तत्पर होकर वह पश्चिम मार्गको (पश्चिमवाहिनी बनकर) चल पड़ी॥ २—६॥

जो मनुष्य सरस्वतीके पूर्वी प्रवाहमें स्नान करता है, उसे गङ्गामें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। उसके दक्षिणी प्रवाहमें सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा एवं पश्चिम दिशाकी ओर यमुना नदी संश्रित है। किंतु जब वह उत्तर दिशाकी ओर बहने लगती है तो वह सिन्धु हो जाती है। इस प्रकार विभिन्न दिशाओंमें वह पवित्र सरस्वती नदी (भिन्न-भिन्न रूपोंमें) प्रवाहित होती है। उस सरस्वती नदीमें स्नान करनेवाला मनुष्य मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर लेता है। द्विजश्रेष्ठो! सरस्वती नदीमें स्नान करनेके बाद तीर्थसेवीको तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध महात्मा मदनके 'विहार' नामक तीर्थमें जाना चाहिये॥ ७—१०॥

जहाँपर भगवान् शिवके दर्शनाभिलाषी देवता आये, पर वे उमासहित शिवका दर्शन न कर पाये। वे लोग गणनायक महादेव नन्दीकी स्तुति करने लगे। इससे नन्दीश्वर प्रसन्न हो गये और (उन्होंने) उमाके साथ की जा रही शिवकी महती विहार-क्रीडाका वर्णन किया। यह सुनकर देवताओंने भी अपनी पत्नियोंको बुलाया और उनके साथ (उन लोगोंने भी) क्रीडा की। उनके क्रीडा-विनोदसे शंकर प्रसन्न हो गये और बोले—इस विहार-तीर्थमें जो श्रद्धाके साथ स्नान करेगा, वह निःसंदेह धन-धान्य एवं प्रिय सम्बन्धियोंसे सम्पन्न होगा। उमा-शिवके विहार-स्थलकी यात्राके बाद दुर्गासे प्रतिष्ठित उस महान् दुर्गातीर्थमें जाना चाहिये॥ ११—१५॥

जहाँ स्नानकर पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्यको दुर्गतिकी प्राप्ति नहीं होती। उसी स्थानपर तीनों लोकोंमें

दर्शनान्मुक्तिमाप्नोति सर्वपातकवर्जितः।
यस्तत्र तर्पयेद् देवान् पितृंश्च श्रद्धयान्वितः॥ १७

अक्षय्यं लभते सर्वं पितृतीर्थं विशिष्यते।
मातृहा पितृहा यश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः॥ १८

स्नात्वा शुद्धिमवाप्नोति यत्र प्राची सरस्वती।
देवमार्गप्रविष्टा च देवमार्गेण निःसृता॥ १९

प्राची सरस्वती पुण्या अपि दुष्कृतकर्मणाम्।
त्रिरात्रं ये करिष्यन्ति प्राचीं प्राप्य सरस्वतीम्॥ २०

न तेषां दुष्कृतं किंचिद् देहमाश्रित्य तिष्ठति।
नरनारायणौ देवौ ब्रह्मा स्थाणुस्तथा रविः॥ २१

प्राचीं दिशं निषेवन्ते सदा देवाः सवासवाः।
ये तु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राचीमाश्रित्य मानवाः॥ २२

तेषां न दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च।
तस्मात् प्राची सदा सेव्या पञ्चम्यां च विशेषतः॥ २३

पञ्चम्यां सेवमानस्तु लक्ष्मीवाञ्जायते नरः।
तत्र तीर्थमौशनसं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्॥ २४

उशना यत्र संसिद्ध आराध्य परमेश्वरम्।
ग्रहमध्येषु पूज्यते तस्य तीर्थस्य सेवनात्॥ २५

एवं शुक्रेण मुनिना सेवितं तीर्थमुत्तमम्।
ये सेवन्ते श्रद्दधानास्ते यान्ति परमां गतिम्॥ २६

यस्तु श्राद्धं नरो भक्त्या तस्मिंस्तीर्थे करिष्यति।
पितरस्तारितास्तेन भविष्यन्ति न संशयः॥ २७

चतुर्मुखं ब्रह्मतीर्थं सरो मर्यादया स्थितम्।
ये सेवन्ते चतुर्दश्यां सोपवासा वसन्ति च॥ २८

अष्टम्यां कृष्णपक्षस्य चैत्रे मासि द्विजोत्तमाः।
ते पश्यन्ति परं सूक्ष्मं यस्मान्नावर्तते पुनः॥ २९

स्थाणुतीर्थं ततो गच्छेत् सहस्रलिङ्गशोभितम्।
तत्र स्थाणुवटं दृष्ट्वा मुक्तो भवति किल्बिषैः॥ ३०

प्रसिद्ध सरस्वतीका एक कूप है। उसका दर्शन करनेमात्रसे ही मनुष्य सभी पापोंसे रहित हो जाता है और मुक्ति प्राप्त करता है। जो वहाँ श्रद्धापूर्वक देवता और पितरोंका तर्पण करता है, वह व्यक्ति समस्त अक्षय्य (कभी भी नष्ट न होनेवाले) पदार्थोंको प्राप्त करता है। पितृतीर्थकी विशेष महत्ता है। उस तीर्थमें माता, पिता और ब्राह्मणका घातक तथा गुरुपत्नीगामी भी स्नान करनेसे (ही) शुद्ध हो जाता है। वहीं पूर्व दिशाकी ओर बहनेवाली सरस्वती देवमार्गमें प्रविष्ट होकर देवमार्गसे ही निकली हुई है॥ १६—१९॥

पूर्ववाहिनी सरस्वती दुष्कर्मियोंके लिये भी पुण्य देनेवाली है। जो प्राची सरस्वतीके निकट जाकर त्रिरात्रव्रत करता है, उसके शरीरमें कोई पाप नहीं रह जाता। नर और नारायण—ये दोनों देव, ब्रह्मा, स्थाणु तथा सूर्य एवं इन्द्रसहित सभी देवता प्राची दिशाका सेवन करते हैं। जो मानव प्राची सरस्वतीमें श्राद्ध करेंगे, उन्हें इस लोक तथा परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। अतः प्राची सरस्वतीका सर्वदा सेवन करना चाहिये—विशेषतः पञ्चमीके दिन। पञ्चमी तिथिको प्राची सरस्वतीका सेवन करनेवाला मनुष्य लक्ष्मीवान् होता है। वहीं तीनों लोकोंमें दुर्लभ औशनस नामका तीर्थ है, जहाँ परमेश्वरकी आराधना कर शुक्राचार्य सिद्ध हो गये थे। उस तीर्थका सेवन करनेसे ग्रहोंके मध्य उनकी पूजा होती है॥ २०—२५॥

इस प्रकार शुक्रमुनिके द्वारा सेवित उत्तमतीर्थका जो श्रद्धापूर्वक (स्वयं) सेवन करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। उस तीर्थमें भक्तिपूर्वक जो व्यक्ति श्राद्ध करेगा, उसके द्वारा उसके पितर निःसन्देह तर जायँगे। द्विजोत्तमो! जो सरोवरकी मर्यादासे स्थित चतुर्मुख ब्रह्मतीर्थमें चतुर्दशीके दिन उपवासव्रत करते हैं तथा चैत्रमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीतक निवास करके तीर्थका सेवन करते हैं, उन्हें परम सूक्ष्म (तत्त्व)-का दर्शन प्राप्त होता है; जिससे वे पुनः संसारमें नहीं आते। ब्रह्मतीर्थके नियम पालन करनेके बाद सहस्रलिङ्गसे शोभित स्थाणुतीर्थमें जाय। वहाँ स्थाणुवटका दर्शन प्राप्त कर मनुष्य पापोंसे विमुक्त हो जाता है॥ २६—३०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४२॥

तिरालीसवाँ अध्याय

स्थाणुतीर्थ, स्थाणुवट और सांनिहत्य सरोवरके सम्बन्धमें प्रश्न और ब्रह्माके हवालेसे लोमहर्षणका उत्तर

ऋषय ऊचुः

स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं वटस्य च महामुने।
सांनिहत्यसरोत्पत्तिं पूरणं पांशुना ततः॥ १

लिङ्गानां दर्शनात् पुण्यं स्पर्शनेन च किं फलम्।
तथैव सरमाहात्म्यं ब्रूहि सर्वमशेषतः॥ २

लोमहर्षण उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे पुराणं वामनं महत्।
यच्छ्रुत्वा मुक्तिमाप्नोति प्रसादाद् वामनस्य तु॥ ३

सनत्कुमारमासीनं स्थाणोर्वटसमीपतः।
ऋषिभिर्बालखिल्याद्यैर्ब्रह्मपुत्रैर्महात्मभिः॥ ४

मार्कण्डेयो मुनिस्तत्र विनयेनाभिगम्य च।
पप्रच्छ सरमाहात्म्यं प्रमाणं च स्थितिं तथा॥ ५

मार्कण्डेय उवाच

ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वशास्त्रविशारद।
ब्रूहि मे सरमाहात्म्यं सर्वपापक्षयावहम्॥ ६

कानि तीर्थानि दृश्यानि गुह्यानि द्विजसत्तम।
लिङ्गानि ह्यतिपुण्यानि स्थाणोर्यानि समीपतः॥ ७

येषां दर्शनमात्रेण मुक्तिं प्राप्नोति मानवः।
वटस्य दर्शनं पुण्यमुत्पत्तिं कथयस्व मे॥ ८

प्रदक्षिणायां यत्पुण्यं तीर्थस्नानेन यत्फलम्।
गुह्येषु चैव दृष्टेषु यत्पुण्यमभिजायते॥ ९

देवदेवो यथा स्थाणुः सरोमध्ये व्यवस्थितः।
किमर्थं पांशुना शक्रस्तीर्थं पूरितवान् पुनः॥ १०

स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं चक्रतीर्थस्य यत्फलम्।
सूर्यतीर्थस्य माहात्म्यं सोमतीर्थस्य ब्रूहि मे॥ ११

(स्थाणुतीर्थमें जाने तथा स्थाणुवटके दर्शनसे मुक्ति-प्राप्ति होनेकी बात सुननेके बाद) **ऋषियोंने पूछा—** महामुने! आप स्थाणुतीर्थ एवं स्थाणुवटके माहात्म्य तथा सांनिहत्य सरोवरकी उत्पत्ति और इन्द्रद्वारा उसके धूलसे भरे जानेके कारणका वर्णन करें। (इसी प्रकार) लिङ्गोंके दर्शनसे होनेवाले पुण्य तथा स्पर्शसे होनेवाले फल और सरोवरके माहात्म्यका भी पूर्णतः वर्णन करें॥ १-२॥

लोमहर्षणजी बोले—मुनियो! आपलोग महान् वामनपुराणको श्रवण करें, जिसका श्रवण कर मनुष्य वामनभगवान्‌की कृपासे मुक्ति पा लेता है। (एक समय) ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमार महात्मा बालखिल्य आदि ऋषियोंके साथ स्थाणुवटके पास बैठे हुए थे। महर्षि मार्कण्डेयने उनके निकट जाकर नम्रतापूर्वक सरोवरके माहात्म्य, उसके विस्तार और स्थितिके विषयमें पूछा— ॥ ३—५॥

मार्कण्डेयजीने कहा (पूछा)—सर्वशास्त्रविशारद महाभाग ब्रह्मपुत्र (सनत्कुमार)! आप मुझसे सभी पापोंके नष्ट करनेवाले सरोवरके माहात्म्यको कहिये। द्विजश्रेष्ठ! स्थाणुतीर्थके पास कौन-कौन-से तीर्थ दृश्य हैं और कौन-कौन-से अदृश्य और कौन-से लिङ्ग अत्यन्त पवित्र हैं, जिनका दर्शन कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। मुने! आप स्थाणुवटके दर्शनसे होनेवाले पुण्य तथा उसकी उत्पत्तिके विषयमें भी कहिये—बताइये। इनकी प्रदक्षिणा करनेसे होनेवाले पुण्य, तीर्थमें स्नान करनेसे मिलनेवाले फल एवं गुप्त तीर्थों तथा प्रकट तीर्थोंके दर्शनसे मिलनेवाले पुण्यका भी वर्णन करें। प्रभो! सरोवरके मध्यमें देवाधिदेव स्थाणु (शिव) किस प्रकार स्थित हुए और किस कारणसे इन्द्रने इस तीर्थको पुनः धूलिसे भर दिया? आप स्थाणुतीर्थका माहात्म्य, चक्रतीर्थका फल एवं सूर्यतीर्थ तथा सोमतीर्थका माहात्म्य—इन

शंकरस्य च गुह्यानि विष्णोः स्थानानि यानि च।
कथयस्व महाभाग सरस्वत्याः सविस्तरम्॥ १२

ब्रूहि देवाधिदेवस्य माहात्म्यं देव तत्त्वतः।
विरिञ्चस्य प्रसादेन विदितं सर्वमेव च॥ १३

लोमहर्षण उवाच

मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा ब्रह्मात्मा स महामुनिः।
अतिभक्त्या तु तीर्थस्य प्रवणीकृतमानसः॥ १४

पर्यङ्कं शिथिलीकृत्वा नमस्कृत्वा महेश्वरम्।
कथयामास तत्सर्वं यच्छ्रुतं ब्रह्मणः पुरा॥ १५

सनत्कुमार उवाच

नमस्कृत्य महादेवमीशानं वरदं शिवम्।
उत्पत्तिं च प्रवक्ष्यामि तीर्थानां ब्रह्मभाषिताम्॥ १६

पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजसम्भवम्॥ १७

तस्मिन्नण्डे स्थितो ब्रह्मा शयनायोपचक्रमे।
सहस्त्रयुगपर्यन्तं सुप्त्वा स प्रत्यबुध्यत॥ १८

सुप्तोत्थितस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमपश्यत।
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च॥ १९

रजः सृष्टिगुणं प्रोक्तं सत्त्वं स्थितिगुणं विदुः।
उपसंहारकाले च तमोगुणः प्रवर्तते॥ २०

गुणातीतः स भगवान् व्यापकः पुरुषः स्मृतः।
तेनेदं सकलं व्याप्तं यत्किंचिज्जीवसंज्ञितम्॥ २१

स ब्रह्मा स च गोविन्द ईश्वरः स सनातनः।
यस्तं वेद महात्मानं स सर्वं वेद मोक्षवित्॥ २२

किं तेषां सकलैस्तीर्थैराश्रमैर्वा प्रयोजनम्।
येषामनन्तकं चित्तमात्मन्येव व्यवस्थितम्॥ २३

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था
सत्योदका शीलसमाधियुक्ता।

सबको मुझसे कहिये। महाभाग! सरस्वतीके निकट शंकर तथा विष्णुके जो-जो गुप्त स्थान हैं उनका भी आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें। देव! देवाधिदेवके माहात्म्यको आप भलीभाँति बतावें; क्योंकि ब्रह्माकी कृपासे आपको सब कुछ विदित है॥ ६—१३॥

लोमहर्षणने कहा (उत्तर दिया)—मार्कण्डेयके वचनको सुनकर ब्रह्मस्वरूप महामुनिका मन उस तीर्थके प्रति अत्यन्त भक्ति-प्रवण होनेसे गद्‌गद हो गया। उन्होंने आसनसे उठकर भगवान् शंकरको प्रणाम किया तथा प्राचीन कालमें ब्रह्मासे इसके विषयमें जो कुछ सुना था उन सबका वर्णन किया॥ १४-१५॥

सनत्कुमारने कहा—मैं कल्याणकर्ता, वरदानी महादेव ईशानको नमस्कार कर ब्रह्मासे कहे हुए तीर्थकी उत्पत्तिके विषयमें वर्णन करूँगा। प्राचीन कालमें जब महाप्रलय हो गया और सर्वत्र केवल जल-ही-जल हो गया एवं उसमें समस्त चर-अचर जगत् नष्ट हो गया, तब प्रजाओंके बीजस्वरूप एक 'अण्ड' उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा उस अण्डमें स्थित थे। उन्होंने उसमें अपने सोनेका उपक्रम किया। फिर तो वे हजारों युगोंतक सोते रहे। उसके बाद जगे। ब्रह्मा जब सोकर उठे, तब उन्होंने संसारको शून्य देखा। (जब उन्होंने संसारमें कुछ भी नहीं देखा) तब रजोगुणसे आविष्ट हो गये और सृष्टिके विषयमें विचार करने लगे॥ १६—१९॥

रजोगुणको सृष्टिकारक तथा सत्त्वगुणको स्थिति-कारक माना गया है। उपसंहार करनेके समयमें तमोगुणकी प्रवृत्ति होती है। परंतु भगवान् वास्तवमें व्यापक एवं गुणातीत हैं। वे पुरुष नामसे कहे जाते हैं। जीव नामसे निर्दिष्ट सारे पदार्थ उन्हींसे ओतप्रोत हैं। वे ही ब्रह्मा हैं, वे ही विष्णु हैं और वे ही सनातन महेश्वर हैं। मोक्षके ज्ञानी जिस प्राणीने उन महान् आत्माको समझ लिया, उसने सब कुछ जान लिया। जिस मनुष्यका अनन्त (बहुमुखी) चित्त उन परमात्मामें ही भलीभाँति स्थित है, उनके लिये सारे तीर्थ एवं आश्रमोंसे क्या प्रयोजन?॥ २०—२३॥

यह आत्मारूपी नदी शील और समाधिसे युक्त है। इसमें संयमरूपी पवित्र तीर्थ है, जो सत्यरूपी जलसे

तस्यां स्नातः पुण्यकर्मा पुनाति
न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा॥ २४
एतत्प्रधानं पुरुषस्य कर्म
यदात्मसम्बोधसुखे प्रविष्टम्।
ज्ञेयं तदेव प्रवदन्ति सन्त-
स्तत्प्राप्य देही विजहाति कामान्॥ २५
नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं
यथैकता समता सत्यता च।
शीले स्थितिर्दण्डविधानवर्जन-
मक्रोधनश्चोपरमः क्रियाभ्यः॥ २६
एतद् ब्रह्म समासेन मयोक्तं ते द्विजोत्तम।
यज्ज्ञात्वा ब्रह्म परमं प्राप्स्यसि त्वं न संशयः॥ २७
इदानीं शृणु चोत्पत्तिं ब्रह्मणः परमात्मनः।
इमं चोदाहरन्त्येव श्लोकं नारायणं प्रति॥ २८
आपो नारा वै तनव इत्येवं नाम शुश्रुमः।
तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः॥ २९

विबुद्धः सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतं जगत्।
अण्डं बिभेद भगवांस्तस्मादोमित्यजायत॥ ३०

ततो भूरभवत् तस्माद् भुव इत्यपरः स्मृतः।
स्वः शब्दश्च तृतीयोऽभूद् भूर्भुवः स्वेति संज्ञितः॥ ३१

तस्मात्तेजः समभवत् तत्सवितुर्वरेण्यं यत्।
उदकं शोषयामास यत्तेजोऽण्डविनिःसृतम्॥ ३२
तेजसा शोषितं शेषं कललत्वमुपागतम्।
कललाद् बुद्बुदं ज्ञेयं ततः काठिन्यतां गतम्॥ ३३

काठिन्याद् धरणी ज्ञेया भूतानां धारिणी हि सा।
यस्मिन् स्थाने स्थितं ह्यण्डं तस्मिन् संनिहितं सरः॥ ३४

यदाद्यं निःसृतं तेजस्तस्मादादित्य उच्यते।
अण्डमध्ये समुत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ३५

उल्बं तस्याभवन्मेरुर्जरायुः पर्वताः स्मृताः।
गर्भोदकं समुद्राश्च तथा नद्यः सहस्रशः॥ ३६

परिपूर्ण है। जो पुण्यात्मा इस (नदी)-में स्नान करता है, वह पवित्र हो जाता है, (पिये जानेवाले सामान्य) जलसे अन्तरात्माकी शुद्धि नहीं होती। इसलिये पुरुषका मुख्य कर्तव्य है कि वह आत्मज्ञानरूपी सुखमें प्रविष्ट रहे। महात्मा लोग उसीको 'ज्ञेय' कहते हैं। शरीर धारण करनेवाला देही जब उसे पा लेता है, तब सभी इच्छाओंको छोड़ देता है। ब्राह्मणके लिये एकता, समता, सत्यता, मर्यादामें स्थिति, दण्ड-विधानका त्याग, क्रोध न करना एवं (सांसारिक) क्रियाओंसे विराग ही धन है, इनके समान उनके लिये कोई अन्य धन नहीं है। द्विजोत्तम! मैंने थोड़ी मात्रामें तुमसे यह जो ज्ञानके विषयमें कहा है, इसे जानकर तुम निःसंदेह परम ब्रह्मको प्राप्त करोगे। अब तुम परमात्मा ब्रह्मकी उत्पत्तिके विषयमें सुनो। उस नारायणके विषयमें लोग इस श्लोकका उदाहरण दिया करते हैं—॥ २४—२८॥

'आप्' (जल) ही को 'नार', (एवं परमात्मा)-को 'तनु'—ऐसा हमने सुन रखा है। वे (परमात्मा) उसमें शयन करते हैं, जिससे वे (शब्दव्युत्पत्तिसे) 'नारायण' शब्दसे स्मरण किये गये हैं। जलमें सोनेके बाद जाग जानेपर उन्होंने जगत्को अपनेमें प्रविष्ट जानकर अण्डको तोड़ दिया, उससे 'ॐ' शब्दकी उत्पत्ति हुई। इसके बाद उससे (पहली बार) भूः, दूसरी बार भुवः एवं तीसरी बार स्वःकी उत्पत्ति (ध्वनि) हुई। इन तीनोंका नाम क्रमशः मिलकर 'भूर्भुवःस्वः' हुआ। उस सविता देवताका जो वरेण्य तेज है, वह उसीसे उत्पन्न हुआ। अण्डसे जो तेज निकला, उसने जलको सुखा दिया॥ २९—३२॥

तेजसे जलके सोखे जानेपर शेष जल कललकी आकृतिमें बदल गया। कललसे बुद्बुद हुआ और उसके बाद वह कठोर हो गया। कठोर हो जानेके कारण वह बुद्बुद भूतोंको धारण करनेवाली धरणी बन गया। जिस स्थानपर अण्ड स्थित था, वहीं संनिहित नामका सरोवर है। तेजके आदिमें उत्पन्न होनेके कारण उसे 'आदित्य' नामसे कहा जाता है। फिर सारे संसारके पितामह ब्रह्मा अण्डके मध्यमें उत्पन्न हुए। उस अण्डका उल्ब (गर्भका आवरण) मेरु पर्वत है एवं अन्य पर्वत उसके जरायु (झिल्ली) माने जाते हैं। समुद्र एवं सहस्रों नदियाँ

नाभिस्थाने यदुदकं ब्रह्मणो निर्मलं महत्।
महत्सरस्तेन पूर्णं विमलेन वराम्भसा॥ ३७

तस्मिन् मध्ये स्थाणुरूपी वटवृक्षो महामनाः।
तस्माद् विनिर्गता वर्णा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः॥ ३८

शूद्राश्च तस्मादुत्पन्नाः शुश्रूषार्थं द्विजन्मनाम्।
ततश्चिन्तयतः सृष्टिं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
मनसा मानसा जाताः सनकाद्या महर्षयः॥ ३९

पुनश्चिन्तयतस्तस्य प्रजाकामस्य धीमतः।
उत्पन्ना ऋषयः सप्त ते प्रजापतयोऽभवन्॥ ४०

पुनश्चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च।
बालखिल्याः समुत्पन्नास्तपःस्वाध्यायतत्पराः॥ ४१
ते सदा स्नाननिरता देवार्चनपरायणाः।
उपवासैर्व्रतैस्तीव्रैः शोषयन्ति कलेवरम्॥ ४२

वानप्रस्थेन विधिना अग्निहोत्रसमन्विताः।
तपसा परमेणेह शोषयन्ति कलेवरम्॥ ४३

दिव्यं वर्षसहस्त्रं ते कृशा धमनिसंतताः।
आराधयन्ति देवेशं न च तुष्यति शंकरः॥ ४४

ततः कालेन महता उमया सह शंकरः।
आकाशमार्गेण तदा दृष्ट्वा देवी सुदुःखिता॥ ४५

प्रसाद्य देवदेवेशं शंकरं प्राह सुव्रता।
क्लिश्यन्ते ते मुनिगणा देवदारुवनाश्रयाः॥ ४६

तेषां क्लेशक्षयं देव विधेहि कुरु मे दयाम्।
किं वेदधर्मनिष्ठानामनन्तं देव दुष्कृतम्॥ ४७

नाद्यापि येन शुद्ध्यन्ति शुष्कस्नाय्वस्थिशोषिताः।
तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः पिनाकी पातितान्धकः।
प्रोवाच प्रहसन् मूर्ध्नि चारुचन्द्रांशुशोभितः॥ ४८

श्रीमहादेव उवाच

न वेत्सि देवि तत्त्वेन धर्मस्य गहना गतिः।
नैते धर्मं विजानन्ति न च कामविवर्जिताः॥ ४९

गर्भके जल हैं। ब्रह्माके नाभि-स्थानमें जो विशाल निर्मल जल राशि है, उस स्वच्छ श्रेष्ठ जलसे महान् सरोवर भरा-पूरा है॥ ३३—३७॥

उस सरोवरके मध्यमें स्थाणुके आकारका महान् विशाल एक वटवृक्ष है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों वर्ण उससे निकले और द्विजोंकी शुश्रूषा करनेके लिये उसीसे शूद्रोंकी भी उत्पत्ति हुई। (इस प्रकार चारों वर्णोंकी सृष्टि सरोवरके मध्यमें स्थाणुरूपसे स्थित वटवृक्षसे हुई।) उसके बाद सृष्टिकी चिन्ता करते हुए अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके मनसे सनकादि महर्षियोंकी उत्पत्ति हुई। फिर प्रजाकी इच्छासे चिन्तन कर रहे मतिमान् ब्रह्मासे सात ऋषि उत्पन्न हुए। वे प्रजापति हुए। रजोगुणसे मोहित होकर ब्रह्माने जब पुनः चिन्तन किया, तब तप एवं स्वाध्यायमें परायण बालखिल्य ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई॥ ३८—४१॥

वे सर्वदा स्नान (शुद्धि) करनेमें निरत तथा देवताओंकी पूजा करनेमें विशेषरूपसे लगे रहते तथा उपवासों एवं तीव्र व्रतोंसे अपने शरीरको सुखाये जा रहे थे। अग्निहोत्रसे युक्त होकर वानप्रस्थकी विधिसे वे उत्कृष्ट तपस्या करते और अपने शरीर सुखाते जाते थे। वे लोग अत्यन्त दुर्बल एवं कंकाल-काय होकर सहस्र दिव्य वर्षोंतक देवेशकी उपासना करते रहे; परंतु भगवान् शंकर प्रसन्न न हुए। उसके बहुत दिनोंके बाद उमाके साथ भगवान् शंकर आकाश-मार्गसे भ्रमण कर रहे थे। धार्मिक कार्योंको करनेवाली उमा (बालखिल्योंकी) इस प्रकारकी दशा (कंकालमात्र) देखकर दुःखी हो गयीं और दुःखी होकर देवदेवेश शंकरको प्रसन्नकर कहने लगीं—देव! देवदारु-वनमें रहनेवाले वे मुनिगण क्लेश उठा रहे हैं। देव! मेरे ऊपर दया करें। आप उनके क्लेशका विनाश करें। देव! वैदिक धर्ममें निष्ठा रखनेवाले इन (तपस्वियों)-के कौन ऐसा अनन्त दुष्कृत है, जिससे ये कङ्कालमात्र होनेपर भी अबतक शुद्ध नहीं हुए? अन्धकको मार गिरानेवाले, चन्द्रमाकी मनोहर किरणोंसे सुशोभित सिरवाले पिनाकधारी शंकरजी उमाकी बातको सुनकर हँसते हुए बोले—॥ ४२—४८॥

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! धर्मकी गति गहन होती है। तुम उसे तत्त्वतः नहीं जानती। ये लोग न तो धर्मज्ञ हैं

न च क्रोधेन निर्मुक्ताः केवलं मूढबुद्धयः।
एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीद् देवी मा मैवं शंसितव्रतान्॥ ५०

देव प्रदर्शयात्मानं परं कौतूहलं हि मे।
स इत्युक्त उवाचेदं देवीं देवः स्मिताननः॥ ५१

तिष्ठ त्वमत्र यास्यामि यत्रैते मुनिपुंगवाः।
साधयन्ति तपो घोरं दर्शयिष्यामि चेष्टितम्॥ ५२
इत्युक्ता तु ततो देवी शंकरेण महात्मना।
गच्छस्वेत्याह मुदिता भर्त्तारं भुवनेश्वरम्॥ ५३

यत्र ते मुनयः सर्वे काष्ठलोष्ठसमाः स्थिताः।
अधीयाना महाभागाः कृताग्निसदनक्रियाः॥ ५४

तान् विलोक्य ततो देवो नग्नः सर्वाङ्गसुन्दरः।
वनमालाकृतापीडो युवा भिक्षाकपालभृत्॥ ५५

आश्रमे पर्यटन् भिक्षां मुनीनां दर्शनं प्रति।
देहि भिक्षां ततश्चोक्त्वा ह्याश्रमादाश्रमं ययौ॥ ५६
तं विलोक्याश्रमगतं योषितो ब्रह्मवादिनाम्।
सकौतुकस्वभावेन तस्य रूपेण मोहिताः॥ ५७

प्रोचुः परस्परं नार्य एहि पश्याम भिक्षुकम्।
परस्परमिति चोक्त्वा गृह्य मूलफलं बहु॥ ५८

गृहाण भिक्षामूचुस्तास्तं देवं मुनियोषितः।
स तु भिक्षाकपालं तं प्रसार्य बहु सादरम्॥ ५९

देहि देहि शिवं वोऽस्तु भवतीभ्यस्तपोवने।
हसमानस्तु देवेशस्तत्र देव्या निरीक्षितः।
तस्मै दत्त्वैव तां भिक्षां पप्रच्छुस्तं स्मरातुराः॥ ६०

नार्य ऊचुः

कोऽसौ नाम व्रतविधिस्त्वया तापस सेव्यते।
यत्र नग्नेन लिङ्गेन वनमालाविभूषितः।
भवान् वै तापसो हृद्यो हृद्याः स्मो यदि मन्यसे॥ ६१

और न कामशून्य। ये क्रोधसे मुक्त भी नहीं हैं और विचार-रहित हैं। यह सुनकर उमादेवीने कहा—नहीं, व्रत धारण करनेवाले इन लोगोंको ऐसा मत कहिये; (प्रत्युत) देव! आप अपनेको प्रकट करें। निश्चय ही मुझे बड़ा कौतूहल है। उमाके ऐसा कहनेपर शंकरने मुस्कुराकर देवीसे इस प्रकार कहा—अच्छा, तुम यहाँ रुको। ये मुनिश्रेष्ठ जहाँ घोर तपस्याकी साधना कर रहे हैं, वहाँ जाकर मैं इनकी चेष्टा कैसी है, उसे दिखलाता हूँ॥ ४९—५२॥

जब महात्मा शंकरने देवी उमासे इस प्रकार कहा तब उमादेवी प्रसन्न हो गयीं और भुवनोंके पालन करनेवाले भुवनेश्वर शिवसे बोलीं—अच्छा, जिस स्थानपर लकड़ी और मिट्टीके ढेलेके समान निश्चेष्ट, अग्निहोत्री एवं अध्ययनमें लगे हुए मुनिगण रहते हैं, उस स्थानपर आप जायँ। (फिर उमाद्वारा इस प्रकार प्रेरित किये जानेपर शंकरजी मुनिमण्डलीकी ओर जानेके लिये प्रस्तुत हो गये) फिर शंकरने उस मुनिमण्डलीको देखकर वनमाला धारण कर लिया। तब वे सर्वाङ्गसुन्दर (पर) नग्न-सुडौल देह धारण कर युवाके रूपमें हो गये और भिक्षा-पात्र हाथमें लेकर मुनियोंके सामने भिक्षाके लिये भ्रमण करते हुए 'भिक्षा दो' यह कहते हुए एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें जाने लगे॥ ५३—५६॥

एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें घूम रहे उन नग्न युवाको देखकर ब्रह्मवादियोंकी स्त्रियाँ उत्सुकताके साथ स्वभाववश उनके रूपसे मोहित हो गयीं और परस्परमें कहने लगीं—आओ, भिक्षुकको देखा जाय। आपसमें इस प्रकार कहकर बहुत-सा मूल-फल लेकर मुनि-पत्नियोंने उन देवसे कहा—आप भिक्षा ग्रहण करें। उन्होंने भी अत्यन्त आदरसे उस भिक्षापात्रको फैलाकर (सामने दिखाकर) कहा—तपोवनवासिनियो! (भिक्षा) दो, दो! आप सबका कल्याण हो। पार्वतीजी वहाँ हँसते हुए शंकरको देख रही थीं। कामातुर मुनिपत्नियोंने उस नग्न युवाको भिक्षा देकर उनसे पूछा—॥ ५७—६०॥

मुनिपत्नियोंने पूछा—तापस! आप किस व्रतके विधानका पालन कर रहे हैं, जिसमें वनमालासे विभूषित हृदयहारी तपस्वीका सुन्दर स्वरूप धारण कर नग्न-मूर्ति बनना पड़ा है? आप हमारे हृदयके आनन्दप्रद तापस हैं, यदि आप मानें तो हम भी आपकी

इत्युक्तस्तापसीभिस्तु प्रोवाच हसिताननः।
इदमीदृग् व्रतं किंचिन्न रहस्यं प्रकाश्यते॥ ६२

शृण्वन्ति बहवो यत्र तत्र व्याख्या न विद्यते।
अस्य व्रतस्य सुभगा इति मत्वा गमिष्यथ॥ ६३

एवमुक्तास्तदा तेन ताः प्रत्यूचुस्तदा मुनिम्।
रहस्ये हि गमिष्यामो मुने नः कौतुकं महत्॥ ६४
इत्युक्त्वा तास्तदा तं वै जगृहुः पाणिपल्लवैः।
काचित् कण्ठे सकन्दर्पा बाहुभ्यामपरास्तथा॥ ६५

जानुभ्यामपरा नार्यः केशेषु ललितापराः।
अपरास्तु कटीरन्ध्रे अपराः पादयोरपि॥ ६६

क्षोभं विलोक्य मुनय आश्रमेषु स्वयोषिताम्।
हन्यतामिति संभाष्य काष्ठपाषाणपाणयः॥ ६७

पातयन्ति स्म देवस्य लिङ्गमुद्धृत्य भीषणम्।
पातिते तु ततो लिङ्गे गतोऽन्तर्धानमीश्वरः॥ ६८
देव्या स भगवान् रुद्रः कैलासं नगमाश्रितः।
पतिते देवदेवस्य लिङ्गे नष्टे चराचरे॥ ६९
क्षोभो बभूव सुमहानृषीणां भावितात्मनाम्।
एवं देवे तदा तत्र वर्तति व्याकुलीकृते॥ ७०
उवाचैको मुनिवरस्तत्र बुद्धिमतां वरः।
न वयं विद्मः सद्भावं तापसस्य महात्मनः॥ ७१
विरिञ्चिं शरणं यामः स हि ज्ञास्यति चेष्टितम्।
एवमुक्ताः सर्व एव ऋषयो लज्जिता भृशम्॥ ७२
ब्रह्मणः सदनं जग्मुर्देवैः सह निषेवितम्।
प्रणिपत्याथ देवेशं लज्जयाऽधोमुखाः स्थिताः॥ ७३

अथ तान् दुःखितान् दृष्ट्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।
अहो मुग्धा यदा यूयं क्रोधेन कलुषीकृताः॥ ७४

न धर्मस्य क्रिया काचिज्ज्ञायते मूढबुद्धयः।
श्रूयतां धर्मसर्वस्वं तापसाः क्रूरचेष्टिताः॥ ७५

मनोऽनुकूल प्रिया हो सकती हैं। उन्होंने तपस्विनियोंके इस प्रकार कहनेपर हँसते हुए कहा—यह व्रत ऐसा है कि इसका कुछ भी रहस्य प्रकट नहीं किया जा सकता। सौभाग्यशालिनियो! जहाँ बहुत-से सुननेवाले हों वहाँ इस व्रतकी व्याख्या नहीं की जा सकती। इसलिये यह जानकर आप सभी चली जायँ। उनके ऐसा कहनेपर उन्होंने मुनिसे कहा—मुने! हम सब (यह जाननेके लिये) एकान्तमें चलेंगी; (क्योंकि) हमें महान् कौतूहल हो रहा है॥ ६१—६४॥

यह कहकर उन सभीने उनको अपने कोमल हाथोंसे पकड़ लिया। कुछ कामसे आतुर होकर कण्ठसे लिपट गयीं और कुछने उन्हें भुजाओंमें बाँध लिया; कुछ स्त्रियोंने उन्हें घुटनोंसे पकड़ लिया; कुछ सुन्दरी स्त्रियाँ उनके केश छूने लगीं; और कुछ उनकी कमरसे लिपट गयीं एवं कुछने उनके पैरोंको पकड़ लिया। मुनियोंने आश्रममें अपनी स्त्रियोंकी अधीरता देख 'मारो-मारो'—इस प्रकार कहते हुए हाथोंमें डंडा और पत्थर लेकर शिवके लिङ्गको ही उखाड़कर फेंक दिया। लिङ्गके गिरा दिये जानेपर भगवान् शंकर अन्तर्हित हो गये॥ ६५—६८॥

वे भगवान् रुद्र उमादेवीके साथ कैलास पर्वतपर चले गये। देवदेव शंकरके लिङ्गके गिरनेपर प्रायः समस्त चर-अचर जगत् नष्ट हो गया। इससे आत्मनिष्ठ महर्षियोंको व्याकुलता हुई। इसी प्रकार देवके (भी) व्याकुल हो जानेपर एक अत्यन्त बुद्धिमान् श्रेष्ठ मुनिने कहा—हम उन महात्मा तापसके सद्भाव (सदाशय)-को नहीं जानते। हम ब्रह्माकी शरणमें चलें। वे ही उनकी चेष्टा (रहस्य) समझ सकेंगे। ऐसा कहनेपर सभी ऋषि अत्यन्त लज्जित हो गये॥ ६९—७२॥

फिर, वे लोग देवताओंसे उपासित ब्रह्माके लोकमें गये। वहाँ देवेश (ब्रह्मा)-को प्रणाम कर लज्जासे मुख नीचा कर खड़े हो गये। उसके बाद ब्रह्माने उन्हें दुःखी देखकर यह वचन कहा—अहो, क्रोध करनेसे तुम सबका मन कलुषित हो गया है, इसलिये मूढ़ हो गये हो। मूढ बुद्धिवालो! तुम सब धर्मकी कोई वास्तविक क्रिया नहीं जानते। अप्रिय कर्म करनेवाले तापसो! धर्मके सारभूत रहस्यको सुनो, जिसे

विदित्वा यद् बुधः क्षिप्रं धर्मस्य फलमाप्नुयात्।
योऽसावात्मनि देहेऽस्मिन् विभुर्नित्यो व्यवस्थितः॥ ७६

सोऽनादिः स महास्थाणुः पृथक्त्वे परिसूचितः।
मणिर्यथोपधानेन धत्ते वर्णोज्ज्वलोऽपि वै॥ ७७

तन्मयो भवते तद्वदात्माऽपि मनसा कृतः।
मनसो भेदमाश्रित्य कर्मभिश्चोपचीयते॥ ७८

ततः कर्मवशाद् भुङ्क्ते संभोगान् स्वर्गनारकान्।
तन्मनः शोधयेद् धीमाञ्ज्ञानयोगाद्युपक्रमैः॥ ७९
तस्मिञ्शुद्धे ह्यन्तरात्मा स्वयमेव निराकुलः।
न शरीरस्य संक्लेशैरपि निर्दहनात्मकैः॥ ८०

शुद्धिमाप्नोति पुरुषः संशुद्धं यस्य नो मनः।
क्रिया हि नियमार्थाय पातकेभ्यः प्रकीर्तिताः॥ ८१

यस्मादत्याविलं देहं न शीघ्रं शुद्ध्यते किल।
तेन लोकेषु मार्गोऽयं सत्पथस्य प्रवर्त्तितः॥ ८२

वर्णाश्रमविभागोऽयं लोकाध्यक्षेण केनचित्।
निर्मितो मोहमाहात्म्यं चिह्नं चोत्तमभागिनाम्॥ ८३

भवन्तः क्रोधकामाभ्यामभिभूताश्रमे स्थिताः।
ज्ञानिनामाश्रमो वेश्म अनाश्रममयोगिनाम्॥ ८४

क्व च न्यस्तसमस्तेच्छा क्व च नारीमयो भ्रमः।
क्व क्रोधमीदृशं घोरं येनात्मानं न जानथ॥ ८५

यत्क्रोधनो यजति यच्च ददाति नित्यं
यद् वा तपस्तपति यच्च जुहोति तस्य।
प्राप्नोति नैव किमपीह फलं हि लोके
मोघं फलं भवति तस्य हि क्रोधनस्य॥ ८६

जानकर बुद्धिमान् मनुष्य शीघ्र ही कर्मका फल प्राप्त करता है। हम सबके इस शरीरमें रहनेवाला जो नित्य विभु (परमेश्वर) है, वह आदि-अन्त-रहित एवं महा स्थाणु है। (विचार करनेपर) वह (देही) इस शरीरसे अलग प्रतीत होता है। जिस प्रकार उज्ज्वल वर्णकी मणि भी आश्रयके प्रभावसे उसी रूपकी भासती है, उसी प्रकार आत्मा भी मनसे संयुक्त होकर मनके भेदका आश्रय कर कर्मोंसे ढक जाता है। उसके बाद कर्मवश वह स्वर्गीय तथा नारकीय भोगोंको भोगता रहता है। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि ज्ञान तथा योग आदि उपायोंद्वारा मनका शोधन करे॥ ७३—७९॥

मनके शुद्ध होनेपर अन्तरात्मा अपने-आप निर्मल हो जाता है। जिसका मन शुद्ध नहीं है, ऐसा पुरुष शरीरको सुखानेवाले क्लेशोंके द्वारा शुद्ध नहीं होता। पापोंसे बचनेके लिये ही (धर्म्य) क्रियाओंका विधान हुआ है, अतः अत्यन्त पापपूर्ण शरीर (स्वतः) शीघ्र शुद्ध नहीं होता। इसीलिये लोकमें सत्पथ—शास्त्रविहित क्रियाओंका यह मार्ग प्रवर्तित हुआ है। किसी दिव्यद्रष्टा लोक-स्वामीने उत्तम भाग्यवालोंके निमित्त मोह-माहात्म्यके प्रतीकस्वरूप इस वर्णाश्रम-विभागका निर्माण किया है॥ ८०—८३॥

आपलोग आश्रममें रहते हुए भी क्रोध तथा कामके वशीभूत हैं। ज्ञानियोंके लिये घर ही आश्रम है और अयोगियों (अज्ञानियों)-के लिये आश्रम भी अनाश्रम है। कहाँ समस्त कामनाओंका त्याग और कहाँ नारीमय यह भ्रम-जाल। (कहाँ तप और) कहाँ तो इस प्रकारका क्रोध, जिससे तुमलोग अपने आत्मा (शिव)-को नहीं पहचान पाते। क्रोधी पुरुष लोकमें जो सदा यज्ञ करता है, जो दान देता है अथवा जो तप या हवन करता है, उसका कोई फल उसे नहीं मिलता। उस क्रोधीके सभी फल व्यर्थ होते हैं॥ ८४—८६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४३॥

खड्गे सचर्मणि छिन्ने गदां गृह्य महासुरः।
समाद्रवत् कोशभवां वायुवेगसमो जवे॥ ४४

तस्यापतत एवाशु करौ श्लिष्टौ समौ दृढौ।
गदया सह चिच्छेद क्षुरप्रेण रणेऽम्बिका॥ ४५

तस्मिन्निपतिते रौद्रे सुरशत्रौ भयंकरे।
चण्डाद्या मातरो हृष्टाश्चक्रुः किलकिलाध्वनिम्॥ ४६
गगनस्थास्ततो देवाः शतक्रतुपुरोगमाः।
जयस्व विजयेत्यूचुर्हृष्टाः शत्रौ निपातिते॥ ४७
ततस्तूर्याण्यवाद्यन्त भूतसङ्घैः समन्ततः।
पुष्पवृष्टिं च मुमुचुः सुराः कात्यायनीं प्रति॥ ४८
निशुम्भं पतितं दृष्ट्वा शुम्भः क्रोधान्महामुने।
वृन्दारकं समारुह्य पाशपाणिः समभ्यगात्॥ ४९
तमापतन्तं दृष्ट्वाऽथ सगजं दानवेश्वरम्।
जग्राह चतुरो बाणांश्चन्द्रार्धाकारवर्चसः॥ ५०
क्षुरप्राभ्यां समं पादौ द्वौ चिच्छेद द्विपस्य सा।
द्वाभ्यां कुम्भे जघानाथ हसन्ती लीलयाऽम्बिका॥ ५१

निकृत्ताभ्यां गजः पद्भ्यां निपपात यथेच्छया।
शक्रवज्रसमाक्रान्तं शैलराजशिरो यथा॥ ५२

तस्यावर्जितनागस्य शुम्भस्याप्युत्पतिष्यतः।
शिरश्चिच्छेद बाणेन कुण्डलालंकृतं शिवा॥ ५३

छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रो निपताात सकुञ्जरः।
यथा समहिषः क्रौञ्चो महासेनसमाहतः॥ ५४

श्रुत्वा सुराः सुररिपू निहतौ मृडान्या
सेन्द्राः ससूर्यमरुदश्विवसुप्रधानाः।
आगत्य तं गिरिवरं विनयावनम्रा
देव्यास्तदा स्तुतिपदं त्विदमीरयन्तः॥ ५५

देवा ऊचुः

नमोऽस्तु ते भगवति पापनाशिनि
नमोऽस्तु ते सुररिपुदर्पशातनि।
नमोऽस्तु ते हरिहरराज्यदायिनि
नमोऽस्तु ते मखभुजकार्यकारिणि॥ ५६

ढालके साथ तलवारके कट जानेपर वह महा असुर गदा लेकर हवाके समान तेजीसे कौशिकीकी ओर दौड़ा। अम्बिकाने लड़ाईमें चढ़ाई करनेवाले उस असुरकी, गदाके साथ सुपुष्ट, सुडौल, गठीली भुजाओंको क्षुरप्र (खुरपे या बाण)-से उसी समय काट गिराया। उस अत्यन्त भयङ्कर देवशत्रुके गिरनेपर चण्डी आदि मातृकाएँ प्रसन्न होकर किलकिलाध्वनि (हर्षसूचक ध्वनि) करने लगीं॥ ४३—४६॥

उसके बाद आकाशमें स्थित इन्द्र आदि देवगण शत्रुको मारकर गिराये जानेपर हर्षित होते हुए बोले—विजये! तुम्हारी जय हो। फिर चारों ओर भूतगण भेरी बजाने लगे और देवगण कात्यायनीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। महामुनि नारदजी! निशुम्भको गिरा हुआ देखकर शुम्भ क्रोधसे हाथमें पाश लिये हुए हाथीपर चढ़कर आया। हाथीपर चढ़कर दानवेश्वरको आते देख (देवीने) चमकते हुए अर्धचन्द्राकार चार बाणोंको उठा लिया॥ ४७—५०॥

हँसते हुए उस अम्बिकाने खेल-खेलमें दो तीखे बाणोंसे उस हाथीके दो पैरोंको काट दिया एवं दो बाणोंसे उसके कुम्भस्थलपर आघात किया। दो पैरोंके कट जानेपर वह हाथी इन्द्रके वज्रसे घायल पर्वतराजकी ऊँची चोटीकी तरह अपने-आप ही गिर पड़ा। शिवाने घायल हुए हाथीपरसे उछलनेवाले शुम्भका कुण्डलसे सुशोभित मस्तक बाणसे (झट) काट दिया। सिरके कट जानेपर दैत्येन्द्र हाथीके साथ ऐसे गिरा जैसे महासेन कार्तिकेयद्वारा घायल हुआ क्रौञ्चासुर महिषके साथ गिरा था। मृडानी (देवी)-द्वारा दोनों देवशत्रुओंका संहार किया जाना सुनकर इन्द्रसहित सूर्य, मरुत्, अश्विनीकुमार एवं वसुगण आदि देवता उस श्रेष्ठ पर्वतपर आये एवं विनयपूर्वक देवीकी इस प्रकार स्तुति करने लगे॥ ५१—५५॥

देवताओंने स्तुति की— भगवति! पापनाशिनि! आपको नमस्कार है। सुर-शत्रुओंके दर्पका दलन करनेवाली! आपको नमस्कार है। विष्णु और शङ्करको राज्य देनेवाली! आपको नमस्कार है। यज्ञके भागके भोक्ता देवोंका कार्य करनेवाली! आपको नमस्कार है।

नमोऽस्तु ते त्रिदशरिपुक्षयंकरि
नमोऽस्तु ते शतमखपादपूजिते।
नमोऽस्तु ते महिषविनाशकारिणि
नमोऽस्तु ते हरिहरभास्करस्तुते॥ ५७

नमोऽस्तु तेऽष्टादशबाहुशालिनि
नमोऽस्तु ते शुम्भनिशुम्भघातिनि।
नमोऽस्तु लोकार्त्तिहरे त्रिशूलिनि
नमोऽस्तु नारायणि चक्रधारिणि॥ ५८

नमोऽस्तु वाराहि सदा धराधरे
त्वां नारसिंहि प्रणता नमोऽस्तु ते।
नमोऽस्तु ते वज्रधरे गजध्वजे
नमोऽस्तु कौमारि मयूरवाहिनि॥ ५९

नमोऽस्तु पैतामहहंसवाहने
नमोऽस्तु मालाविकटे सुकेशिनि।
नमोऽस्तु ते रासभपृष्ठवाहिनि
नमोऽस्तु सर्वार्तिहरे जगन्मये॥ ६०

नमोऽस्तु विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
निषूदयारीन् द्विजदेवतानाम्।
नमोऽस्तु ते सर्वमयि त्रिनेत्रे
नमो नमस्ते वरदे प्रसीद॥ ६१

ब्रह्माणी त्वं मृडानी वरशिखिगमना
शक्तिहस्ता कुमारी
वाराही त्वं सुवक्त्रा खगपतिगमना
वैष्णवी त्वं सशार्ङ्गी।
दुर्दृश्या नारसिंही घुरघुरितरवा
त्वं तथैन्द्री सवज्रा
त्वं मारी चर्ममुण्डा शवगमनरता
योगिनी योगसिद्धा॥ ६२

नमस्ते त्रिनेत्रे भगवति तव चरणानुषिता
ये अहरहर्विनतशिरसोऽवनताः।
नहि नहि परिभवमस्त्यशुभं च
स्तुतिबलिकुसुमकराः सततं ये॥ ६३

देवताओंके शत्रुओंका विनाश करनेवाली! आपको नमस्कार है। इन्द्रके द्वारा पूजित चरणोंवाली! आपको नमस्कार है। महिषासुरका विनाश करनेवाली! आपको नमस्कार है। विष्णु, शङ्कर एवं सूर्यसे स्तुति की जानेवाली! आपको नमस्कार है। अष्टादश भुजाओंवाली! आपको नमस्कार है। शुम्भ और निशुम्भका वध करनेवाली! आपको नमस्कार है। समस्त संसारका दुःख हरण करनेवाली! त्रिशूल धारण करनेवाली! आपको नमस्कार है। चक्र धारण करनेवाली नारायणि! आपको नमस्कार है। वाराहि! धराको सदा धारण करनेवाली! आपको नमस्कार है। नारसिंहि! आपके चरणोंपर हम प्रणत हैं, आपको नमस्कार है। वज्र धारण करनेवाली! गजध्वजे! आपको नमस्कार है। कौमारि! मयूरवाहिनि! आपको नमस्कार है॥ ५६—५९॥

ब्रह्माके हंसपर बैठनेवाली! आपको नमस्कार है। विकट माला धारण करनेवाली! सुन्दर केशोंवाली! आपको नमस्कार है। गर्दभकी पीठपर बैठनेवाली! आपको नमस्कार है। समस्त क्लेशोंका नाश करनेवाली! जगन्मये! आपको नमस्कार है। विश्वेश्वरि! आपको नमस्कार है। आप विश्वकी रक्षा करें तथा ब्राह्मणों और देवताओंके शत्रुओंका संहार करें। त्रिनेत्रे! सर्वमयि! आपको नमस्कार है। वरदायिनि! आपको बारम्बार नमस्कार है। आप प्रसन्न हों। ब्रह्माणी और मृडानी आप ही हैं। आप ही सुन्दर मोरपर चलनेवाली और हाथमें शक्ति धारण करनेवाली कुमारी हैं। सुन्दर मुखवाली वाराही आप ही हैं तथा गरुड़पर चलनेवाली, शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाली वैष्णवी आप ही हैं। घुर-घुर शब्द करनेवाली, देखनेमें भयंकर नारसिंही आप ही हैं। आप ही वज्र धारण करनेवाली ऐन्द्री एवं महामारी चर्ममुण्डा हैं। शवपर चलनेवाली तथा योग सिद्ध कर चुकनेवाली योगिनी भी आप ही हैं। तीन नेत्रोंवाली भगवति! आपको नमस्कार है। आपके चरणोंका आश्रय कर नम्रतासे प्रतिदिन अपना सिर झुकानेवालों तथा बलि एवं फूलोंको हाथमें लिये सर्वदा आपकी स्तुति करनेवालोंका कोई पराजय, अनादर और अकल्याण नहीं होता॥ ६०—६३॥

एवं स्तुता सुरवरैः सुरशत्रुनाशिनी
प्राह प्रहस्य सुरसिद्धमहर्षिवर्यान्।
प्राप्तो मयाऽद्भुततमो भवतां प्रसादात्
संग्राममूर्ध्नि सुरशत्रुजयः प्रमर्दात्॥ ६४
इमां स्तुतिं भक्तिपरा नरोत्तमा
भवद्भिरुक्तामनुकीर्त्तयन्ति ।
दुःस्वप्ननाशो भविता न संशयो
वरस्तथान्यो व्रियतामभीप्सितः॥ ६५

देवा ऊचुः

यदि वरदा भवती त्रिदशानां
द्विजशिशुगोषु यतस्व हिताय।
पुनरपि देवरिपूनपरांस्त्वं
प्रदह हुताशनतुल्यशरीरे॥ ६६

देव्युवाच

भूयो भविष्याम्यसृगुक्षितानना
हराननस्वेदजलोद्भवा सुराः।
अन्धासुरस्याप्रतिपोषणे रता
नाम्ना प्रसिद्धा भुवनेषु चर्चिका॥ ६७
भूयो वधिष्यामि सुरारिमुत्तमं
सम्भूय नन्दस्य गृहे यशोदया।
तं विप्रचित्तिं लवणं तथाऽपरौ
शुम्भं निशुम्भं दशनप्रहारिणी॥ ६८
भूयः सुरास्तिष्ययुगे निराशिनी
निरीक्ष्य मारी च गृहे शतक्रतोः।
सम्भूय देव्याऽमितसत्यधामया
सुरा भरिष्यामि च शाकम्भरी वै॥ ६९
भूयो विपक्षक्षपणाय देवा
विन्ध्ये भविष्याम्यृषिरक्षणार्थम्।
दुर्वृत्तचेष्टान् विनिहत्य दैत्यान्
भूयः समेष्यामि सुरालयं हि॥ ७०
यदाऽरुणाक्षो भविता महासुरः
तदा भविष्यामि हिताय देवताः।
महालिरूपेण विनष्टजीवितं
कृत्वा समेष्यामि पुनस्त्रिविष्टपम्॥ ७१

श्रेष्ठ देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर देवताओंके शत्रुओंका संहार करनेवाली देवीने देवताओं, सिद्धों और श्रेष्ठ महर्षियोंसे हँसकर कहा—मैंने आपलोगोंकी कृपासे युद्धभूमिमें (शत्रुका) मर्दन कर देवशत्रुओं (दानवों)-पर अत्यन्त अनूठी विजय प्राप्त की है। आपलोगोंसे कही गयी इस स्तुतिको पढ़नेवाले भक्तिपरायण श्रेष्ठ मनुष्योंके दुःस्वप्नोंका निस्सन्देह नाश होगा। (अब) आपलोग दूसरे इच्छित वरको माँगें॥ ६४-६५॥

देवताओंने कहा—यदि आप देवताओंको वर देना चाहती हैं तो ब्राह्मणों, बच्चों और गौओंके कल्याणके लिये यत्न कीजिये। अग्निके सदृश शरीरवाली! आप (हम सबके) अन्य देवशत्रुओंको भविष्यमें भी जलाकर भस्म करें॥ ६६॥

देवीने कहा—देवो! मैं पुनः शङ्करके मुखके पसीनेके जलसे उत्पन्न हो करके रक्तसे रञ्जित मुखवाली होकर संसारमें चर्चिका नामसे प्रसिद्ध होऊँगी और अन्धकासुरका संहार करूँगी। फिर मैं नन्दके गृहमें यशोदासे उत्पन्न होकर प्रबल देवशत्रुका वध करूँगी। वहाँ मैं अवतार लेकर दाँतोंके आघातसे विप्रचित्ति, लवणासुर एवं अन्य शुम्भ-निशुम्भ दानवोंका विनाश करूँगी। देवताओ! कलियुगमें भोजन न करती हुई इन्द्रके घरमें मारीको देखकर मैं पुनः अमितसत्यधामा देवीके साथ इन्द्रके घर शाकम्भरीके रूपमें प्रकट होकर भरण-पोषण करूँगी। देवताओ! पुनः मैं शत्रुओंके संहार तथा ऋषियोंकी रक्षाके लिये विन्ध्याचलमें उपस्थित होऊँगी। देवो! वहाँ दुराचारी दैत्योंका नाश करनेके बाद पुनः स्वर्ग चली जाऊँगी। देवताओ! अरुणाक्ष नामक महासुरके उत्पन्न होनेपर महाभ्रमरके रूपसे पुनः उत्पन्न होऊँगी एवं उसका संहार कर फिर स्वर्ग चली जाऊँगी॥ ६७—७१॥

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा वरदा सुराणां
कृत्वा प्रणामं द्विजपुङ्गवानाम्।
विसृज्य भूतानि जगाम देवी
खं सिद्धसङ्घैरनुगम्यमाना॥ ७२
इदं पुराणं परमं पवित्रं
देव्या जयं मङ्गलदायि पुंसाम्।
श्रोतव्यमेतन्नियतैः सदैव
रक्षोघ्नमेतद्भगवानुवाच ॥ ७३

पुलस्त्यजी बोले—ऐसा कहनेके बाद देवी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम करके अन्य प्राणियोंको बिदाकर एवं देवोंको वर देकर सिद्धोंके साथ स्वर्गमें चली गयीं। देवीकी यह विजय-कथा परम पवित्र और प्राचीन है, यह पुरुषोंको मङ्गल देनेवाली है, संयतचित्त मनुष्योंको इसे सदा सुननी चाहिये। भगवान्ने इसे '**रक्षोघ्न**' कहा है॥ ७२-७३॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छप्पनवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५६॥

सत्तावनवाँ अध्याय

कार्तिकेयका जन्म, उनके छः मुख और चतुर्मूर्ति होनेका हेतु, उनका सेनापति होना तथा उनका गण, मयूर, शक्ति और दण्डादिका पाना

नारद उवाच

कथं समहिषः क्रौञ्चो भिन्नः स्कन्देन सुव्रत।
एतन्मे विस्तराद् ब्रह्मन् कथयस्वामितद्युते॥ १

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्व कथयिष्यामि कथां पुण्यां पुरातनीम्।
यशोवृद्धिं कुमारस्य कार्तिकेयस्य नारद॥ २
यत्तत्पीतं हुताशेन स्कन्नं शुक्रं पिनाकिनः।
तेनाक्रान्तोऽभवद् ब्रह्मन् मन्दतेजा हुताशनः॥ ३
ततो जगाम देवानां सकाशममितद्युतिः।
तैश्चापि प्रहितस्तूर्णं ब्रह्मलोकं जगाम ह॥ ४
स गच्छन् कुटिलां देवीं ददर्श पथि पावकः।
तां दृष्ट्वा प्राह कुटिले तेज एतत्सुदुर्द्धरम्॥ ५
महेश्वरेण संत्यक्तं निर्दहेद् भुवनान्यपि।
तस्मात् प्रतीच्छ पुत्रोऽयं तव धन्यो भविष्यति॥ ६
इत्यग्निना सा कुटिला स्मृत्वा स्वमतमुत्तमम्।
प्रक्षिपस्वाम्भसि मम प्राह वह्निं महापगा॥ ७

नारदजीने पूछा—दृढ़तासे व्रतका सुपालन करनेवाले अमित तेजस्वी ब्रह्मन्! आप मुझे विस्तारसे यह बतलाइये कि स्कन्दने महिषके सहित क्रौञ्चको किस प्रकार मारा?॥ १॥

पुलस्त्यजी बोले—नारद! सुनो, मैं कीर्तिको बढ़ानेवाली कुमार कार्तिकेयकी पवित्र प्राचीन कथा कहता हूँ। ब्रह्मन्! अग्निने शङ्करके उस च्युत शुक्रका पान कर लिया था। उससे ग्रस्त होनेके कारण अग्निका तेज फीका हो गया। उसके बाद अत्यन्त तेजस्वी अग्नि देवताओंके निकट गये। फिर उन देवोंके भेजे जानेपर वे शीघ्र ही ब्रह्मलोक चले गये। मार्गमें जाते हुए अग्निने कुटिला नामकी देवीको देखा। उसको देखकर अग्निने कहा—कुटिले! इस तेजको धारण करना कठिन है॥ २—५॥

शङ्करके द्वारा त्यागा गया यह तेज समस्त लोकोंको दग्ध कर देगा, अतः तुम इसे ग्रहण कर लो। इससे तुम्हें एक भाग्यशाली पुत्र होगा। अग्निके इस प्रकार कहनेपर अपने उत्तम मनोरथका स्मरणकर महानदी कुटिलाने अग्निसे कहा—इसे मेरे जलमें छोड़

ततस्त्वधारयद्देवी शार्वं तेजस्त्वपूपुषत्।
हुताशनोऽपि भगवान् कामचारी परिभ्रमन्॥ ८

पञ्चवर्षसहस्राणि धृतवान् हव्यभुक् ततः।
मांसमस्थीनि रुधिरं मेदोऽन्त्ररेतसी त्वचः॥ ९

रोमश्मश्र्वक्षिकेशाद्याः सर्वे जाता हिरण्मयाः।
हिरण्यरेता लोकेषु तेन गीतश्च पावकः॥ १०

पञ्चवर्षसहस्राणि कुटिला ज्वलनोपमम्।
धारयन्ती तदा गर्भं ब्रह्मणः स्थानमागता॥ ११

तां दृष्टवान् पद्मजन्मा संतप्यन्तीं महापगाम्।
दृष्ट्वा पप्रच्छ केनायं तव गर्भः समाहितः॥ १२

सा चाह शाङ्करं यत्तच्छुक्रं पीतं हि वह्निना।
तदशक्तेन तेनाद्य निक्षिप्तं मयि सत्तम॥ १३

पञ्चवर्षसहस्राणि धारयन्त्याः पितामह।
गर्भस्य वर्तते कालो न पपात च कर्हिचित्॥ १४

तच्छ्रुत्वा भगवानाह गच्छ त्वमुदयं गिरिम्।
तत्रास्ति योजनशतं रौद्रं शरवणं महत्॥ १५

तत्रैनं क्षिप सुश्रोणि विस्तीर्णे गिरिसानुनि।
दशवर्षसहस्रान्ते ततो बालो भविष्यति॥ १६

सा श्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं रूपिणी गिरिमागता।
आगत्य गर्भं तत्याज मुखेनैवाद्रिनन्दिनी॥ १७

सा तु संत्यज्य तं बालं ब्रह्माणं सहसागमत्।
आपोमयी मन्त्रवशात् संजाता कुटिला सती॥ १८

तेजसा चापि शार्वेण रौक्मं शरवणं महत्।
तन्निवासरताश्चान्ये पादपा मृगपक्षिणः॥ १९

ततो दशसु पूर्णेषु शरद्दशशतेष्वथ।
बालार्कदीप्तिः संजातो बालः कमललोचनः॥ २०

उत्तानशायी भगवान् दिव्ये शरवणे स्थितः।
मुखेऽङ्गुष्ठं समाक्षिप्य रुरोद घनराडिव॥ २१

एतस्मिन्नन्तरे देव्यः कृत्तिकाः षट् सुतेजसः।
ददृशुः स्वेच्छया यान्त्यो बालं शरवणे स्थितम्॥ २२

दें। (ऐसा करनेपर) उसके बाद वह देवी शङ्करके तेजको ग्रहणकर उसका पालन-पोषण करने लगी। भगवान् अग्निदेव भी इच्छाके अनुसार विचरण करने लगे। अग्निने उस तेजको पाँच हजार वर्षोंतक धारण किया था। इसलिये अग्निके मांस, हड्डी, रक्त, मेदा, आँत, रेतस्, त्वचा, रोम, दाढ़ी-मूँछ, नेत्र एवं केश आदि सभी सुवर्णमय बन गये। इसीसे संसारमें अग्निको 'हिरण्यरेता' कहा जाने लगा॥ ८—१०॥

तब अग्निके समान उस गर्भको पाँच हजार वर्षोंतक धारण करती हुई कुटिला ब्रह्माके स्थानपर गयी। कमलजन्मा ब्रह्माने उस महानदीको सन्तप्त होती देखकर पूछा—तुम्हारा यह गर्भ किसके द्वारा स्थापित है? उसने उत्तर दिया—सत्तम! अग्निने पिये हुए शङ्करके उस शुक्रको अपनेमें धारण करनेकी शक्ति न होनेके कारण मुझमें त्याग दिया। पितामह! गर्भ धारण किये हुए मेरा पाँच हजार वर्षका समय बीत गया; परंतु किसी प्रकार यह बाहर नहीं निकल रहा है॥ ११—१४॥

उसको सुनकर भगवान् ब्रह्माने कहा—तुम उदयाचलपर जाओ। वहाँपर सौ योजनमें फैला हुआ सरपतोंका विशाल घनघोर वन है। अयि सुन्दर कटिवाली! उस विस्तृत पर्वतकी ऊँची चोटीपर इसे छोड़ दो। यह दस हजार वर्षोंके बाद बालक हो जायगा। ब्रह्माकी बात सुननेके बाद वह गिरिनन्दिनी सुन्दरी पर्वतपर गयी एवं मुखसे ही (उसने) गर्भका परित्याग कर दिया। वह उस (जन्म लेनेवाले) बालकको छोड़कर शीघ्र ही ब्रह्माके समीप चली गयी। सती कुटिला मन्त्र (शाप)-के कारण जलरूपमें हो गयी॥ १५—१८॥

शङ्करके तेजसे वह विशाल सरपतोंका वन सुवर्णमय बन गया। उस वनमें रहनेवाले वृक्ष, मृग एवं पक्षी भी सुवर्णमय हो गये। उसके बाद दस हजार वर्षोंके बीत जानेपर उगते हुए बाल सूर्यके सदृश दीप्तिमान् तथा कमलके समान आँखोंवाला बालक उत्पन्न हुआ। उस दिव्य सरपतके वनमें उतान सोये हुए भगवान् कुमार अपने मुखमें अपना अंगूठा डालकर बादलकी ध्वनिके समान अस्पष्ट ध्वनिमें रोने लगे। इसी बीच स्वेच्छासे जाती हुई दिव्य तेजस्विनी छहों कृत्तिकाओंने सरपतके वनमें स्थित उस बालकको देखा॥ १९—२२॥

कृपायुक्ताः समाजग्मुर्यत्र स्कन्दः स्थितोऽभवत्।
अहं पूर्वमहं पूर्वं तस्मै स्तन्येऽभिचुक्रुशुः॥ २३

विवदन्तीः स ता दृष्ट्वा षण्मुखः समजायत।
अबीभरंश्च ताः सर्वाः शिशुं स्नेहाच्च कृत्तिकाः॥ २४

भ्रियमाणः स ताभिस्तु बालो वृद्धिमगान्मुने।
कार्त्तिकेयेति विख्यातो जातः स बलिनां वरः॥ २५

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् पावकं प्राह पद्मजः।
कियत्प्रमाणः पुत्रस्ते वर्त्तते साम्प्रतं गुहः॥ २६
स तद्वचनमाकर्ण्य अजानंस्तं हरात्मजम्।
प्रोवाच पुत्रं देवेश न वेद्मि कतमो गुहः॥ २७

तं प्राह भगवान् यत्तु तेजः पीतं पुरा त्वया।
त्रैयम्बकं त्रिलोकेश जातः शरवणे शिशुः॥ २८

श्रुत्वा पितामहवचः पावकस्त्वरितोऽभ्यगात्।
वेगिनं मेषमारुह्य कुटिला तं ददर्श ह॥ २९

ततः पप्रच्छ कुटिला शीघ्रं क्व व्रजसे कवे।
सोऽब्रवीत् पुत्रदृष्ट्यर्थं जातं शरवणे शिशुम्॥ ३०
साऽब्रवीत् तनयो मह्यं ममेत्याह च पावकः।
विवदन्तौ ददर्शाथ स्वेच्छाचारी जनार्दनः॥ ३१

तौ पप्रच्छ किमर्थं वा विवादमिह चक्रथः।
तावूचतुः पुत्रहेतो रुद्रशुक्रोद्भवाय हि॥ ३२

तावुवाच हरिर्देवो गच्छ तं त्रिपुरान्तकम्।
स यद् वक्ष्यति देवेशस्तत्कुरुध्वमसंशयम्॥ ३३

इत्युक्तौ वासुदेवेन कुटिलाग्नी हरान्तिकम्।
समभ्येत्योचतुस्तथ्यं कस्य पुत्रेति नारद॥ ३४
रुद्रस्तद्वाक्यमाकर्ण्य हर्षनिर्भरमानसः।
दिष्ट्या दिष्ट्येति गिरिजां प्रोद्भूतपुलकोऽब्रवीत्॥ ३५

ये कृत्तिकाएँ दयापूर्वक वहाँ गयीं जहाँ कुमार स्कन्द थे। उन्हें दूध पिलानेके लिये वे आपसमें 'हम पहले, हम पहले' (पिलायेंगी—) कहकर विवाद करने लगीं। उन्हें आपसमें विवाद करती हुई देखकर वह कुमार षण्मुख (छह मुखवाले) बन गये। फिर तो उन (छहों) कृत्तिकाओंने प्रेमपूर्वक बच्चेका पोषण किया। मुने! उनके द्वारा रक्षित होकर वह शिशु बड़ा हुआ। वह बलवानोंमें श्रेष्ठ कार्तिकेय नामसे प्रसिद्ध हुआ। ब्रह्मन्! इसी बीच ब्रह्माने अग्निसे प्रश्न किया कि अग्निदेव! तुम्हारा पुत्र गुह (कार्तिकेय) इस समय कितना बड़ा हुआ है?॥ २३—२६॥

ब्रह्माके प्रश्नको सुनकर अग्निने शङ्करके उस पुत्रको न जाननेके कारण उत्तरमें कहा—देवेश! मैं पुत्रको नहीं जानता; कौन-सा गुह है? भगवान्ने उनसे कहा—त्रिलोकेश! पूर्वकालमें तुमने शङ्करका जो तेज पी लिया था, वह शरवण (सरपतके वन)-में शिशुरूपसे उत्पन्न हुआ है। पितामहका वचन सुननेके बाद अग्निदेव तीव्र गतिवाले बकरेपर चढ़कर शीघ्र (वहाँ) गये। कुटिलाने उन्हें जाते हुए देखा। तब कुटिलाने उनसे पूछा—अग्निदेव! आप कहाँ जा रहे हैं? उन्होंने कहा—कुटिले! शरवणमें उत्पन्न हुए बालक पुत्रको देखने जा रहा हूँ॥ २७—३०॥

उसने कहा कि 'पुत्र मेरा है' और अग्निने कहा कि 'मेरा है'। स्वेच्छासे विचरण कर रहे जनार्दनने उन दोनोंको परस्पर विवाद करते हुए देखा। उन्होंने उन दोनोंसे पूछा—तुम दोनों आपसमें किसलिये विवाद कर रहे हो। (तो) उन दोनोंने कहा—रुद्रके शुक्रसे उत्पन्न हुए पुत्रके लिये। विष्णुने उन दोनोंसे कहा—तुमलोग त्रिपुरासुरका विनाश करनेवाले शिवके पास जाओ। वे देवेश जो कहें, उसे निस्सन्देह करो। (पुलस्त्यजी कहते हैं कि) नारदजी! वासुदेवके इस प्रकार कहनेपर कुटिला एवं अग्नि शङ्करके पास गये और उन्होंने (उनसे) यह गूढ रहस्य पूछा कि पुत्र किसका है?॥ ३१—३४॥

उनके वचनको सुनकर शङ्करका मन हर्षसे भर गया। उन्होंने हर्षगद्गद होकर गिरिजासे कहा—अहो

ततोऽम्बिका प्राह हरं देव गच्छाम तं शिशुम्।
प्रष्टुं समाश्रयेद् यं स तस्य पुत्रो भविष्यति॥ ३६

बाढमित्येव भगवान् समुत्तस्थौ वृषध्वजः।
सहोमया कुटिलया पावकेन च धीमता॥ ३७

सम्प्राप्तास्ते शरवणं हराग्निकुटिलाम्बिकाः।
ददृशुः शिशुकं तं च कृत्तिकोत्सङ्गशायिनम्॥ ३८

ततः स बालकस्तेषां मत्वा चिन्तितमादरात्।
योगी चतुर्मूर्तिरभूत् षण्मुखः स शिशुस्त्वपि॥ ३९

कुमारः शङ्करमगाद् विशाखो गौरिमागमत्।
कुटिलामगमच्छाखो महासेनोऽग्निमभ्ययात्॥ ४०

ततः प्रीतियुतो रुद्र उमा च कुटिला तथा।
पावकश्चापि देवेशः परां मुदमवाप च॥ ४१

ततोऽब्रुवन् कृत्तिकास्ताः षण्मुखः किं हरात्मजः।
ता अब्रवीद्धरः प्रीत्या विधिवद् वचनं मुने॥ ४२

नाम्ना तु कार्त्तिकेयो हि युष्माकं तनयस्त्वसौ।
कुटिलायाः कुमारेति पुत्रोऽयं भविताऽव्ययः॥ ४३

स्कन्द इत्येव विख्यातो गौरीपुत्रो भवत्वसौ।
गुह इत्येव नाम्ना च ममासौ तनयः स्मृतः॥ ४४

महासेन इति ख्यातो हुताशस्यास्तु पुत्रकः।
शारद्वत इति ख्यातः सुतः शरवणस्य च॥ ४५

एवमेष महायोगी पृथिव्यां ख्यातिमेष्यति।
षडास्यत्वान्महाबाहुः षण्मुखो नाम गीयते॥ ४६

इत्येवमुक्त्वा भगवाञ्शूलपाणिः पितामहम्।
सस्मार दैवतैः सार्द्धं तेऽप्याजग्मुस्त्वरान्विताः॥ ४७

प्रणिपत्य च कामारिमुमां च गिरिनन्दिनीम्।
दृष्ट्वा हुताशनं प्रीत्या कुटिलां कृत्तिकास्तथा॥ ४८

ददृशुर्बालमत्युग्रं षण्मुखं सूर्यसंनिभम्।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि तेजसा स्वेन देवताः॥ ४९

कौतुकाभिवृताः सर्वे एवमूचुः सुरोत्तमाः।
देवकार्यं त्वया देव कृतं देव्याऽग्निना तथा॥ ५०

भाग्य! अहो भाग्य!! तब अम्बिकाने शङ्करसे कहा—देव! हम सब उस शिशुसे ही पूछने चलें। वह जिसका आश्रय स्वीकार करेगा उसीका पुत्र होगा। ठीक है—ऐसा कहकर वृषध्वज भगवान् शङ्कर पार्वती, कुटिला तथा बुद्धिमान् पावकके साथ चलनेके लिये उठ खड़े हुए। शङ्कर, पार्वती, कुटिला एवं पावक शरवणमें गये। इन लोगोंने कृत्तिकाकी गोदमें लेटे हुए उस बालकको देखा॥ ३५—३८॥

उसके बाद छः मुखोंवाला वह बालक उन लोगोंको चिन्तित जान करके उनमें आदर रखकर बच्चा होते हुए भी योगीके समान कुमार, विशाख, शाख, महासेन—(इन) चार मूर्तियोंवाला हो गया। कुमार शङ्करके, विशाख गिरिजाके, शाख कुटिलाके और महासेन अग्निके समीप चले गये। फिर तो रुद्र, उमा, कुटिला तथा देवेश्वर अग्नि—ये चारों ही अत्यन्त हर्षित हो गये। उसके बाद उन कृत्तिकाओंने पूछा—क्या षड्वदन शङ्करके पुत्र हैं? मुने! शङ्करने उन सभीसे प्रेमपूर्वक विधिवत् (आगेका) वचन कहा—॥ ३९—४२॥

कृत्तिकाओ! 'कार्तिकेय' नामसे ये तुम्हारे पुत्र होंगे तथा ये अविनाशी 'कुमार' नामसे कुटिलाके पुत्र होंगे। ये ही 'स्कन्द' नामसे विख्यात गौरीके पुत्र होंगे तथा 'गुह' नामसे मेरे पुत्र होंगे। 'महासेन' नामसे ये अग्निके प्रख्यात पुत्र होंगे तथा 'शारद्वत'—इस नामसे विख्यात ये शरवणके पुत्र होंगे। इस प्रकार ये महायोगी भूमण्डलमें विख्यात होंगे। छः मुखवाले होनेके कारण ये महाबाहु षण्मुख नामसे प्रसिद्ध होंगे॥ ४३—४६॥

इस प्रकार कहकर शूलपाणि शङ्करने देवताओंके साथ पितामह ब्रह्माका स्मरण किया। वे सभी सहसा वहाँ आ गये और कामरिपु शङ्कर तथा गिरिनन्दिनी पार्वतीको प्रणामकर एवं अग्निदेव, कुटिला और कृत्तिकाओंको स्नेहपूर्वक देखकर उन देवोंने अतिशय दीप्तिमान् सूर्यके सदृश एवं अपने तेजसे सभीके नेत्रोंको चकाचौंधमें डालनेवाले उस षडानन बालकको देखा। प्रसन्नतासे भरे उन श्रेष्ठ देवोंने कहा—देव! आपने, देवीने एवं अग्निने देवताओंका कार्य सम्पन्न कर दिया॥ ४७—५०॥

तदुत्तिष्ठ व्रजामोऽद्य तीर्थमौजसमव्ययम्।
कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यामभिषिञ्चाम षण्मुखम्॥ ५१

सेनायाः पतिरस्त्वेष देवगन्धर्वकिंनराः।
महिषं घातयत्वेष तारकं च सुदारुणम्॥ ५२

बाढमित्यब्रवीच्छर्वः समुत्तस्थुः सुरास्ततः।
कुमारसहिता जग्मुः कुरुक्षेत्रं महाफलम्॥ ५३

तत्रैव देवताः सेन्द्रा रुद्रब्रह्मजनार्दनाः।
यत्नमस्याभिषेकार्थं चक्रुर्मुनिगणैः सह॥ ५४

ततोऽम्बुना सप्तसमुद्रवाहिनी
नदीजलेनापि महाफलेन।
वरौषधीभिश्च सहस्रमूर्तिभि-
स्तदाभ्यषिञ्चन् गुहमच्युताद्याः॥ ५५

अभिषिञ्चति सेनान्यां कुमारे दिव्यरूपिणि।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ५६

अभिषिक्तं कुमारं च गिरिपुत्री निरीक्ष्य हि।
स्नेहादुत्सङ्गगं स्कन्दं मूर्ध्न्यजिघ्रन्मुहुर्मुहुः॥ ५७

जिघ्रती कार्तिकेयस्य अभिषेकार्द्रमाननम्।
भात्यद्रिजा यथेन्द्रस्य देवमाताऽदितिः पुरा॥ ५८

तदाऽभिषिक्तं तनयं दृष्ट्वा शर्वो मुदं ययौ।
पावकः कृत्तिकाश्चैव कुटिला च यशस्विनी॥ ५९

ततोऽभिषिक्तस्य हरः सेनापत्ये गुहस्य तु।
प्रमथांश्चतुरः प्रादाच्छक्रतुल्यपराक्रमान्॥ ६०

घण्टाकर्णं लोहिताक्षं नन्दिसेनं च दारुणम्।
चतुर्थं बलिनां मुख्यं ख्यातं कुमुदमालिनम्॥ ६१

हरदत्तान् गणान् दृष्ट्वा देवाः स्कन्दस्य नारद।
प्रददुः प्रमथान् स्वान् स्वान् सर्वे ब्रह्मपुरोगमाः॥ ६२

स्थाणुं ब्रह्मा गणं प्रादाद् विष्णुः प्रादाद् गणत्रयम्।
संक्रमं विक्रमं चैव तृतीयं च पराक्रमम्॥ ६३

उत्केशं पङ्कजं शक्रो रविर्दण्डकपिङ्गलौ।
चन्द्रो मणिं वसुमणिमश्विनौ वत्सनन्दिनौ॥ ६४

तो आप उठें। अब हमलोग अविनाशी औजस तीर्थको चलें। कुरुक्षेत्रमें चलकर सरस्वती (नदी)-में हमलोग षण्मुखका अभिषेक करें। देवो, गन्धर्वो और किन्नरो! ये हमारे सेनापति बनें और महिष तथा भयंकर तारकका संहार करें। शङ्करने कहा—बहुत अच्छा। उसके बाद सभी देवता उठे और कुमारके साथ महान् फलदायी कुरुक्षेत्रमें चले गये। वहीं मुनियोंके साथ इन्द्र, रुद्र, प्रजापति ब्रह्मा, जनार्दन आदि समस्त देवताओंने उस कुमारके अभिषेकका उपाय किया॥ ५१—५४॥

उसके बाद अच्युत (विष्णु) आदि देवताओंने (सरस्वतीके तथा) सातों समुद्रोंमें मिलकर बहनेवाली नदियोंके महान् फलदायक जलसे एवं सहस्रों प्रकारकी उत्तमोत्तम ओषधियोंसे गुहका (सेनापतिके पदपर) अभिषेक किया। दिव्य रूप धारण करनेवाले सेनापति कुमारके अभिषिक्त हो जानेपर गन्धर्वराज गाने लगे एवं अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। गिरिजाने कुमारको अभिषिक्त देखकर स्नेहसे गोदमें ले लिया और वे बार-बार उनके सिरको सूँघने लगीं। अभिषेकसे आर्द्र हुए कार्तिकेयके मुखको (आशीर्वाद देनेकी प्रक्रियामें) सूँघती हुई पार्वती पूर्वकालमें (आशीर्वाद देती हुई) इन्द्रके मुखको सूँघनेवाली देवमाता अदिति-जैसी सुशोभित हुईं॥ ५५—५८॥

उस समय शङ्कर, पावक, कृत्तिकाएँ एवं यशस्विनी कुटिला (—ये सभी) अपने पुत्रको अभिषिक्त देखकर अत्यन्त हर्षित हुए। उसके बाद शङ्करने सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किये गये गुहको इन्द्रके सदृश शक्तिवाले चार प्रमथों—घण्टाकर्ण, लोहिताक्ष, दारुण नन्दिसेन और चौथे बलवानोंमें श्रेष्ठ विख्यात कुमुदमालीको दिया। नारदजी! शङ्करद्वारा दिये गये गणोंको देखकर ब्रह्मा आदि सभी देवताओंने (सेनापति) स्कन्दके लिये अपने-अपने प्रमथोंको (भी) दे दिया॥ ५९—६२॥

ब्रह्माने अपने गण स्थाणुको दिया और विष्णुने संक्रम, विक्रम और पराक्रम नामके तीन गणोंको दिया। इन्द्रने उत्केश और पङ्कजको, रविने दण्डक और पिङ्गलको, चन्द्रमाने मणि एवं वसुमणिको, अश्विनीकुमारोंने वत्स और नन्दीको दिया।

ज्योतिर्हुताशनः प्रादाज्ज्वलज्जिह्वं तथापरम्।
कुन्दं मुकुन्दं कुसुमं त्रीन् धाताऽनुचरान् ददौ॥ ६५
चक्रानुचक्रौ त्वष्टा च वेधातिस्थिरसुस्थिरौ।
पाणित्यजं कालकञ्च प्रादात् पूषा महाबलौ॥ ६६
स्वर्णमालं घनाह्वं च हिमवान् प्रमथोत्तमौ।
प्रादादेवोच्छ्रितो विन्ध्यस्त्वतिशृङ्गं च पार्षदम्॥ ६७
सुवर्चसं च वरुणः प्रददौ चातिवर्चसम्।
संग्रहं विग्रहं चाब्धिर्नागा जयमहाजयौ॥ ६८
उन्मादं शङ्कुकर्णं च पुष्पदन्तं तथाऽम्बिका।
घसं चातिघसं वायुः प्रादादनुचरावुभौ॥ ६९
परिघं चटकं भीमं दहतिदहनौ तथा।
प्रददावंशुमान् पञ्च प्रमथान् षण्मुखाय हि॥ ७०
यमः प्रमाथमुन्माथं कालसेनं महामुखम्।
तालपत्रं नाडिजङ्घं षडेवानुचरान् ददौ॥ ७१
सुप्रभं च सुकर्माणं ददौ धाता गणेश्वरौ।
सुव्रतं सत्यसन्धं च मित्रः प्रादाद् द्विजोत्तम॥ ७२
अनन्तः शङ्कुपीठश्च निकुम्भः कुमुदोऽम्बुजः।
एकाक्षः कुनटी चक्षुः किरीटी कलशोदरः॥ ७३
सूचीवक्त्रः कोकनदः प्रहासः प्रियकोऽच्युतः।
गणाः पञ्चदशैते हि यक्षैर्दत्ता गुहस्य तु॥ ७४
कालिन्द्याः कालकन्दश्च नर्मदाया रणोत्कटः।
गोदावर्याः सिद्धयात्रस्तमसायाद्रिकम्पकः॥ ७५
सहस्रबाहुः सीताया वञ्जुलायाः सितोदरः।
मन्दाकिन्यास्तथा नन्दो विपाशायाः प्रियङ्करः॥ ७६
ऐरावत्याश्चतुर्दंष्ट्रः षोडशाक्षो वितस्तया।
मार्जारं कौशिकी प्रादात् क्रथक्रौञ्चौ च गौतमी॥ ७७
बाहुदा शतशीर्षं च वाहा गोनन्दनन्दिकौ।
भीमं भीमरथी प्रादाद् वेगारिं सरयूर्ददौ॥ ७८
अष्टबाहुं ददौ काशी सुबाहुमपि गण्डकी।
महानदी चित्रदेवं चित्रा चित्ररथं ददौ॥ ७९
कुहूः कुवलयं प्रादान्मधुवर्णं मधूदका।
जम्बूकं धूतपापा च वेणा श्वेताननं ददौ॥ ८०
श्रुतवर्णं च पर्णासा रेवा सागरवेगिनम्।
प्रभावार्थं सहं प्रादात् काञ्चना कनकेक्षणम्॥ ८१
गृध्रपत्रं च विमला चारुवक्त्रं मनोहरा।
धूतपापा महारावं कर्णा विद्रुमसंनिभम्॥ ८२

अग्निने ज्योति तथा दूसरे ज्वलज्जिह्वको दिया। धाताने कुन्द, मुकुन्द तथा कुसुम नामके तीन अनुचरोंको दिया। त्वष्टाने चक्र और अनुचक्रको, वेधाने अतिस्थिर और सुस्थिरको एवं पूषाने महाबलशाली पाणित्यज तथा कालकको दिया॥ ६३—६६॥

हिमालयने प्रमथोंमें श्रेष्ठ स्वर्णमाल और घनाह्वको तथा ऊँचे विन्ध्याचलने अतिशृङ्ग नामक पार्षदको दिया। वरुणने सुवर्चा एवं अतिवर्चाको, समुद्रने संग्रह तथा विग्रहको एवं नागोंने जय तथा महाजयको दिया। अम्बिकाने उन्माद, शङ्कुकर्ण और पुष्पदन्तको तथा पवनने घस और अतिघस नामके दो अनुचरोंको दिया। अंशुमान्ने षडाननको परिघ, चटक, भीम, दहति तथा दहन नामके पाँच प्रमथोंको दिया॥ ६७—७०॥

यमराजने प्रमाथ, उन्माथ, कालसेन, महामुख, तालपत्र और नाडिजङ्घ नामके छः अनुचरोंको दिया। द्विजोत्तम! धाताने सुप्रभ और सुकर्मा नामके दो गणेश्वरोंको तथा मित्रने सुव्रत तथा सत्यसन्ध नामके दो अनुचरोंको दिया। यक्षोंने अनन्त, शङ्कुपीठ, निकुम्भ, कुमुद, अम्बुज, एकाक्ष, कुनटी, चक्षु, किरीटी, कलशोदर, सूचीवक्त्र, कोकनद, प्रहास, प्रियक एवं अच्युत—इन पंद्रह गणोंको कार्तिकेयको दे दिया॥ ७१—७४॥

कालिन्दीने कालकन्दको, नर्मदाने रणोत्कटको, गोदावरीने सिद्धयात्रको एवं तमसाने अद्रिकम्पकको दिया। सीताने सहस्रबाहुको, वञ्जुलाने सितोदरको, मन्दाकिनीने नन्दको एवं विपाशाने प्रियङ्करको दिया। ऐरावतीने चतुर्दंष्ट्रको, वितस्ताने षोडशाक्षको, कौशिकीने मार्जारको एवं गौतमीने क्रथ और क्रौञ्चको दिया। बाहुदाने शतशीर्षको, वाहाने गोनन्द और नन्दिकको, भीमरथीने भीमको और सरयूने वेगारिको दिया॥ ७५—७८॥

काशीने अष्टबाहुको, गण्डकीने सुबाहुको, महानदीने चित्रदेवको तथा चित्राने चित्ररथको दिया। कुहूने कुवलयको, मधूदकाने मधुवर्णको, धूतपापाने जम्बूकको और वेणाने श्वेताननको समर्पित किया। पर्णासाने श्रुतवर्णको, रेवाने सागरवेगीको, प्रभावाने अर्थ और सहको एवं काञ्चनाने कनकेक्षणको दिया। विमलाने गृध्रपत्रको, मनोहराने चारुवक्त्रको, धूतपापाने महारावको एवं कर्णाने विद्रुमसंनिभको दिया॥ ७९—८२॥

सुप्रसादं सुवेणुश्च जिष्णुमोघवती ददौ।
यज्ञबाहुं विशाला च सरस्वत्यो ददुर्गणान्॥ ८३

कुटिला तनयस्यादाद् दश शक्रबलान् गणान्।
करालं सितकेशं च कृष्णकेशं जटाधरम्॥ ८४

मेघनादं चतुर्दंष्ट्रं विद्युज्जिह्वं दशाननम्।
सोमाप्यायनमेवोग्रं देवयाजिनमेव च॥ ८५

हंसास्यं कुण्डजठरं बहुग्रीवं हयाननम्।
कूर्मग्रीवं च पञ्चैतान् ददुः पुत्राय कृत्तिकाः॥ ८६

स्थाणुजङ्घं कुम्भवक्त्रं लोहजङ्घं महाननम्।
पिण्डाकारं च पञ्चैतान् ददुः स्कन्दाय चर्षयः॥ ८७

नागजिह्वं चन्द्रभासं पाणिकूर्मं शशीक्षकम्।
चाषवक्त्रं च जम्बूकं ददौ तीर्थः पृथूदकः॥ ८८

चक्रतीर्थं सुचक्राक्षं मकराक्षं गयाशिरः।
गणं पञ्चशिखं नाम ददौ कनखलः स्वकम्॥ ८९

बन्धुदत्तं वाजिशिरो बाहुशालं च पुष्करम्।
सर्वौजसं माहिषकं मानसः पिङ्गलं यथा॥ ९०

रुद्रमौशनसः प्रादात् ततोऽन्ये मातरो ददुः।
वसुदामां सोमतीर्थः प्रभासो नन्दिनीमपि॥ ९१

इन्द्रतीर्थं विशोकां च उदपानो घनस्वनाम्।
सप्तसारस्वतः प्रादान्मातरश्चतुरोद्भुताः॥ ९२

गीतप्रियां माधवीं च तीर्थनेमिं स्मिताननाम्।
एकचूडां नागतीर्थः कुरुक्षेत्रं पलासदाम्॥ ९३

ब्रह्मयोनिश्चण्डशिलां भद्रकालीं त्रिविष्टपः।
चौण्डीं भैण्डीं योगभैण्डीं प्रादाच्चरणपावनः॥ ९४

सोपानीयां मही प्रादाच्छालिकां मनसो ह्रदः।
शतघण्टां शतानन्दां तथोलूखलमेखलाम्॥ ९५

पद्मावतीं माधवीं च ददौ बदरिकाश्रमः।
सुषमामेकचूडां च देवीं धमधमां तथा॥ ९६

उत्क्राथनीं वेदमित्रां केदारो मातरो ददौ।
सुनक्षत्रां कद्रूलां च सुप्रभातां सुमङ्गलाम्॥ ९७

देवमित्रां चित्रसेनां ददौ रुद्रमहालयः।
कोटरामूर्ध्ववेणीं च श्रीमतीं बहुपुत्रिकाम्॥ ९८

पलितां कमलाक्षीं च प्रयागो मातरो ददौ।
सूपलां मधुकुम्भां च ख्यातिं दहदहां पराम्॥ ९९

प्रादात् खटकटां चान्यां सर्वपापविमोचनः।
संतानिकां विकलिकां क्रमश्चत्वरवासिनीम्॥ १००

सुवेणुने सुप्रसादको और ओघवतीने जिष्णुको प्रदान किया। विशालाने यज्ञबाहुको दिया। इस प्रकार इन सरस्वती आदि नदियोंने अनेक गणोंको दिया। कुटिलाने अपने पुत्र (उन)-को कराल, सितकेश, कृष्णकेश, जटाधर, मेघनाद, चतुर्दंष्ट्र, विद्युज्जिह्व, दशानन, सोमाप्यायन एवं उग्र देवयाजी नामके दस गणोंको दिया। कृत्तिकाओंने अपने पुत्रको हंसास्य, कुण्डजठर, बहुग्रीव, हयानन तथा कूर्मग्रीव—इन पाँच अनुचरोंको प्रदान किया॥ ८३—८६॥

ऋषियोंने स्कन्दको स्थाणुजङ्घ, कुम्भवक्त्र, लोहजङ्घ, महानन और पिण्डाकार—इन पाँच अनुचरोंको दिया। पृथूदक तीर्थने नागजिह्व, चन्द्रभास, पाणिकूर्म, शशीक्षक, चाषवक्त्र तथा जम्बूक नामके अनुचरोंको दिया। गयाशिरने चक्रतीर्थ, सुचक्राक्ष तथा मकराक्षको और कनखलने पञ्चशिख नामके अपने गणोंको दिया। वाजिशिरने बन्धुदत्त, पुष्कर और बाहुशालको तथा मानसने सर्वौजस, माहिषक और पिङ्गलको दिया॥ ८७—९०॥

औशनसने रुद्रको प्रदान किया तथा अन्योंने मातृकाओंको दिया। सोमतीर्थने वसुदामाको और प्रभासने नन्दिनीको तथा उदपानने इन्द्रतीर्थ, विशोका और घनस्वनाको अर्पित किया। सप्तसारस्वतने गीतप्रिया, माधवी, तीर्थनेमि एवं स्मितानना नामकी चार अद्भुत मातृकाओंको प्रदान किया। नागतीर्थने एकचूडा, कुरुक्षेत्र और पलासदाको दिया। ब्रह्मयोनिने चण्डशिलाको, त्रिविष्टपने भद्रकालीको तथा चरणपावनने चौण्डी, भैण्डी तथा योगभैण्डीको दिया॥ ९१—९४॥

महीने सोपानीयाको, मानसह्रदने शालिकाको एवं बदरिकाश्रमने शतघण्टा, शतानन्दा, उलूखलमेखला, पद्मावती और माधवीको प्रदान किया। केदारतीर्थने सुषमा, एकचूडा, धमधमादेवी, उत्क्राथनी तथा वेदमित्रा नामक मातृकाओंको दिया। रुद्रमहालयने सुनक्षत्रा, कद्रूला, सुप्रभाता, सुमङ्गला, देवमित्रा और चित्रसेनाको दिया। प्रयागने कोटरा, ऊर्ध्ववेणी, श्रीमती, बहुपुत्रिका, पलिता तथा कमलाक्षी नामकी मातृकाओंको अर्पित किया। सर्वपापविमोचनने सूपला, मधुकुम्भा, ख्याति, दहदहा, परा और खटकटाको समर्पित किया। क्रमने सन्तानिका, विकलिका और चत्वरवासिनीको प्रदान किया॥ ९५—१००॥

जलेश्वरीं कुक्कुटिकां सुदामां लोहमेखलाम्।
वपुष्मत्युल्मुकाक्षी च कोकनामा महाशनी।
रौद्रा कर्कटिका तुण्डा श्वेततीर्थो ददौ त्विमाः ॥ १०१

एतानि भूतानि गणांश्च मातरो
दृष्ट्वा महात्मा विनतातनूजः।
ददौ मयूरं स्वसुतं महाजवं
तथाऽरुणस्ताम्रचूडं च पुत्रम्॥ १०२

शक्तिं हुताशोऽद्रिसुता च वस्त्रं
दण्डं गुरुःसा कुटिला कमण्डलुम्।
मालां हरिः शूलधरः पताकां
कण्ठे च हारं मघवानुरस्तः॥ १०३

गणैर्वृतो मातृभिरन्वयातो
मयूरसंस्थो वरशक्तिपाणिः।
सैन्याधिपत्ये स कृतो भवेन
रराज सूर्येव महावपुष्मान्॥ १०४

श्वेततीर्थने तो जलेश्वरी, कुक्कुटिका, सुदामा, लोहमेखला, वपुष्मती, उल्मुकाक्षी, कोकनामा, महाशनी, रौद्रा, कर्कटिका और तुण्डा—इन अनुचरियोंको दिया। इन भूतों, गणों और मातृकाओंको देखकर विनता-पुत्र महात्मा गरुड़ने अपने पुत्र महावेगशाली मयूरको समर्पित किया और अरुणने अपने पुत्र ताम्रचूडको प्रदान कर दिया। अग्निने शक्ति, पार्वतीने वस्त्र, बृहस्पतिने दण्ड, उस कुटिलाने कमण्डलु, विष्णुने माला, शङ्करने पताका तथा इन्द्रने अपने हृदयका हार कार्तिकेयके कण्ठमें अर्पित कर दिया। गणोंसे युक्त, मातृकाओंसे अनुसरित, मयूरपर बैठे एवं श्रेष्ठ शक्तिको हाथमें लिये हुए महाशरीरधारी वे कुमार (कार्तिकेय) शङ्करके द्वारा सैन्याधिपतिके पदपर अभिषिक्त होकर (और उपहार पाकर) सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे॥ १०१—१०४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

सेनापतिपदपर नियुक्त कार्तिकेयके लिये ऋषियोंद्वारा स्वस्त्ययन, तारक-विजयके लिये प्रस्थान, पातालकेतुका वृत्तान्त, तारक महिषासुर-वध तथा सुचक्राक्षको वर

पुलस्त्य उवाच

सेनापत्येऽभिषिक्तस्तु कुमारो दैवतैरथ।
प्रणिपत्य भवं भक्त्या गिरिजां पावकं शुचिम्॥ १

षट् कृत्तिकाश्च शिरसा प्रणम्य कुटिलामपि।
ब्रह्माणं च नमस्कृत्य इदं वचनमब्रवीत्॥ २

पुलस्त्यजी बोले— जब शङ्कर एवं देवताओंने देवताओंके सेनापतिके पदपर कुमार कार्तिकेयका अभिषेक किया तब उक्त पदपर अभिषिक्त कुमारने भक्तिपूर्वक शङ्कर, पार्वती और पवित्र अग्निको प्रणाम किया। उसके बाद छः कृत्तिकाओं एवं कुटिलाको भी सिर झुकाकर प्रणाम करके ब्रह्माको नमस्कार कर यह वचन कहा॥ १-२॥

कुमार उवाच

नमोऽस्तु भवतां देवा ओं नमोऽस्तु तपोधनाः।
युष्मत्प्रसादाज्जेष्यामि शत्रू महिषतारकौ॥ ३

कुमारने कहा— देवताओ! आपलोगोंको नमस्कार है। तपोधनो! आपलोगोंको ओंकारके साथ नमस्कार ('ॐ नमः') है। आपलोगोंकी अनुकम्पासे मैं महिष एवं तारक दोनों शत्रुओंपर विजय प्राप्त करूँगा।

शिशुरस्मि न जानामि वक्तुं किंचन देवताः।
दीयतां ब्रह्मणा सार्द्धमनुज्ञा मम साम्प्रतम्॥ ४
इत्येवमुक्ते वचने कुमारेण महात्मना।
मुखं निरीक्षन्ति सुराः सर्वे विगतसाध्वसाः॥ ५
शङ्करोऽपि सुतस्नेहात् समुत्थाय प्रजापतिम्।
आदाय दक्षिणे पाणौ स्कन्दान्तिकमुपागतम्॥ ६
अथोमा प्राह तनयं पुत्र एह्येहि शत्रुहन्।
वन्दस्व चरणौ दिव्यौ विष्णोर्लोकनमस्कृतौ॥ ७
ततो विहस्याह गुहः कोऽयं मातर्वदस्व माम्।
यस्यादरात् प्रणामोऽयं क्रियते मद्विधैर्जनैः॥ ८

तं माता प्राह वचनं कृते कर्मणि पद्मभूः।
वक्ष्यते तव योऽयं हि महात्मा गरुडध्वजः॥ ९

केवलं त्विह मां देवस्त्वत्पिता प्राह शङ्करः।
नान्यः परतरोऽस्माद्धि वयमन्ये च देहिनः॥ १०

पार्वत्या गदिते स्कन्दः प्रणिपत्य जनार्दनम्।
तस्थौ कृताञ्जलिपुटस्त्वाज्ञां प्रार्थयतेऽच्युतात्॥ ११

कृताञ्जलिपुटं स्कन्दं भगवान् भूतभावनः।
कृत्वा स्वस्त्ययनं देवो ह्यनुज्ञां प्रददौ ततः॥ १२

नारद उवाच

यत्तत् स्वस्त्ययनं पुण्यं कृतवान् गरुडध्वजः।
शिखिध्वजाय विप्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १३

पुलस्त्य उवाच

शृणु स्वस्त्ययनं पुण्यं यत्प्राह भगवान् हरिः।
स्कन्दस्य विजयार्थाय महिषस्य वधाय च॥ १४

स्वस्ति ते कुरुतां ब्रह्मा पद्मयोनी रजोगुणः।
स्वस्ति चक्राङ्कितकरो विष्णुस्ते विदधात्वजः॥ १५

स्वस्ति ते शङ्करो भक्त्या सपत्नीको वृषध्वजः।
पावकः स्वस्ति तुभ्यं च करोतु शिखिवाहन॥ १६

दिवाकरः स्वस्ति करोतु तुभ्यं
सोमः सभौमः सबुधो गुरुश्च।
काव्यः सदा स्वस्ति करोतु तुभ्यं
शनैश्चरः स्वस्त्ययनं करोतु॥ १७

देवताओ! मैं शिशु हूँ, मैं कुछ भी बोलना नहीं जानता। ब्रह्माके सहित आपलोग इस समय मुझे अनुमति दें। महात्मा कुमारके इस प्रकार कहनेपर सभी देवता निडर होकर उनका मुख देखने लगे। भगवान् शङ्कर पुत्रके स्नेहवश उठे और ब्रह्माको अपने दाहिने हाथसे पकड़कर स्कन्दके समीप ले आये। उसके बाद उमाने पुत्रसे कहा—शत्रुको मारनेवाले! आओ! आओ! संसारसे वन्दित विष्णुके दिव्य चरणोंको प्रणाम करो॥ ३—७॥

उसके बाद कार्तिकेयने हँसकर कहा—हे माता! मुझे स्पष्ट बतलाओ कि ये कौन हैं, जिन्हें हमारे-जैसे (अन्य) व्यक्ति भी प्रेमपूर्वक प्रणाम करते हैं? माताने उनसे कहा—ये महात्मा गरुडध्वज कौन हैं, यह तुम्हें कार्य कर लेनेपर ब्रह्मा ही बतलायेंगे। तुम्हारे पिता शङ्करदेवने मुझसे केवल यही बतलाया कि इनसे बढ़कर हमलोग या अन्य कोई शरीरधारी नहीं है। पार्वतीके स्पष्टतः कहनेपर कार्तिकेयने जनार्दनको प्रणाम किया एवं दोनों हाथोंको जोड़कर वे खड़े हो गये और भगवान् अच्युतसे आज्ञा माँगने लगे। लोकस्रष्टा भगवान् विष्णुने हाथ जोड़े हुए स्कन्दका स्वस्त्ययन कर उन्हें आज्ञा दी॥ ८—१२॥

नारदने कहा— विप्रर्षे! गरुडध्वज विष्णुने मयूरध्वज कार्तिकेयके लिये जिस पवित्र स्वस्त्ययनका पाठ किया, उसे आप मुझसे कहें॥ १३॥

पुलस्त्यजी बोले— (नारदजी!) स्कन्दकी विजय एवं महिषके वधके लिये भगवान् विष्णुद्वारा कहे गये मङ्गलमय स्वस्तिवाचन—स्वस्त्ययनको सुनिये। (विष्णुने जो स्वस्त्ययन-पाठ किया, वह इस प्रकार है—) रजोगुणसे सम्पन्न कमलयोनि ब्रह्मा तुम्हारा कल्याण करें। हाथमें चक्र धारण करनेवाले अजन्मा विष्णु तुम्हारा मङ्गल करें। पत्नीसहित वृषध्वज शङ्कर प्रेमपूर्वक तुम्हारा मङ्गल करें। मयूरवाहन! अग्निदेव तुम्हारा कल्याण करें। सूर्य तुम्हारा मङ्गल करें, भौमसहित सोम तथा बुधसहित बृहस्पति तुम्हारा मङ्गल करें। शुक्र सदैव तुम्हारा मङ्गल करें तथा शनैश्चर तुम्हारा मङ्गल करें॥ १४—१७॥

मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः
क्रतुर्वसिष्ठो भृगुरङ्गिराश्च।
मृकण्डुजस्ते कुरुतां हि स्वस्ति
स्वस्ति सदा सप्त महर्षयश्च॥ १८
विश्वेश्विनौ साध्यमरुद्गणाग्न्यो
दिवाकरा: शूलधरा महेश्वराः।
यक्षाः पिशाचा वसवोऽथ किन्नरा-
स्तेस्वस्ति कुर्वन्त सदोद्यतास्त्वमी॥ १९
नागाः सुपर्णाः सरितः सरांसि
तीर्थानि पुण्यायतनाः समुद्राः।
महाबला भूतगणा गणेन्द्रा-
स्ते स्वस्ति कुर्वन्तु सदा समुद्यताः॥ २०
स्वस्ति द्विपादिकेभ्यस्ते चतुष्पादेभ्य एव च।
स्वस्ति ते बहुपादेभ्यस्त्वपादेभ्योऽप्यनामयम्॥ २१

मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, वसिष्ठ, भृगु, अङ्गिरा, मार्कण्डेय—ये ऋषि तुम्हारा मङ्गल करें। सप्तर्षिगण तुम्हारा सदा मङ्गल करें। विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, साध्य, मरुद्गण, अग्नि, सूर्य, शूलधर, महेश्वर, यक्ष, पिशाच, वसु और किन्नर—ये सब तत्परतासे सदा तुम्हारा मङ्गल करें। नाग, पक्षी, नदियाँ, सरोवर, तीर्थ, पवित्र देवस्थान, समुद्र, महाबलशाली भूतगण तथा विनायकगण सदा तत्पर होकर तुम्हारा मङ्गल करें। दो पैरवालों एवं चार पैरवालोंसे तुम्हारा मङ्गल हो। बहुत पैरवालोंद्वारा तुम्हारा मङ्गल हो एवं बिना पैरवालोंसे तुम्हारी स्वस्थता बनी रहे—तुम नीरोग बने रहो॥ १८—२१॥

प्राचीं दिग् रक्षतां वज्री दक्षिणां दण्डनायकः।
पाशी प्रतीचीं रक्षतु लक्ष्मांशुः पातु चोत्तराम्॥ २२

वह्निर्दक्षिणपूर्वां च कुबेरो दक्षिणापराम्।
प्रतीचीमुत्तरां वायुः शिवः पूर्वोत्तरामपि॥ २३

उपरिष्टाद् ध्रुवः पातु अधस्ताच्च धराधरः।
मुसली लाङ्गली चक्री धनुष्मानन्तरेषु च॥ २४

वाराहोऽम्बुनिधौ पातु दुर्गे पातु नृकेसरी।
सामवेदध्वनिः श्रीमान् सर्वतः पातु माधवः॥ २५

वज्र धारण करनेवाले (इन्द्र) पूर्व दिशाकी, दण्डनायक (यम) दक्षिण दिशाकी, पाशधारी (वरुण) पश्चिम दिशाकी तथा चन्द्रमा उत्तर दिशाकी रक्षा करें। अग्नि अग्नि (पूर्व-दक्षिण)-कोणकी, कुबेर नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)-कोणकी, वायुदेव वायव्य (पश्चिम-उत्तर)-कोणकी और शिव ईशान (उत्तर-पूर्व)-कोणकी (रक्षा करें)। ऊपरकी ओर ध्रुव, नीचेकी ओर पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनाग एवं बीचके स्थानोंमें मुसल, हल, चक्र तथा धनुष धारण करनेवाले भगवान् विष्णु रक्षा करें। समुद्रमें वाराह, दुर्गम स्थानमें नरसिंह तथा सभी ओरसे सामवेदके ध्वनि-रूप श्रीमान् श्रीलक्ष्मीकान्त माधव तुम्हारी रक्षा करें॥ २२—२५॥

पुलस्त्य उवाच

एवं कृतस्वस्त्ययनो गुहः शक्तिधरोऽग्रणीः।
प्रणिपत्य सुरान् सर्वान् समुत्पतत भूतलात्॥ २६

तमन्वेव गणाः सर्वे दत्ता ये मुदितैः सुरैः।
अनुजग्मुः कुमारं ते कामरूपा विहङ्गमाः॥ २७

मातरश्च तथा सर्वाः समुत्पेतुर्नभस्तलम्।
समं स्कन्देन बलिना हन्तुकामा महासुरान्॥ २८

ततः सुदीर्घमध्वानं गत्वा स्कन्दोऽब्रवीद् गणान्।
भूम्यां तूर्णं महावीर्याः कुरुध्वमवतारणम्॥ २९

पुलस्त्यजी बोले— इस प्रकार स्वस्त्ययन सम्पन्न हो जानेपर शक्ति धारण करनेवाले सेनापति कार्तिकेयजी सभी देवताओंको प्रणामकर भूतलसे आकाशकी ओर उड़ चले। प्रसन्न होकर देवताओंने जिन गणोंको गुहके लिये दिया था, उन इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले सभी गणोंने पक्षीका रूप धारण कर कुमारका अनुगमन किया। सभी माताएँ भी पराक्रमी स्कन्दके साथ महान् असुरोंके वधके लिये आकाशमें उड़ चलीं। उसके बाद बहुत दूर जानेपर स्कन्दने गणोंसे कहा—महापराक्रमियो! तुमलोग शीघ्र ही पृथ्वीपर उतर जाओ॥ २६—२९॥

गणा गुहवचः श्रुत्वा अवतीर्य महीतलम्।
आरात् पतन्तस्तद्देशं नादं चक्रुर्भयंकरम्॥ ३०
तन्निनादो महीं सर्वामापूर्य च नभस्तलम्।
विवेशार्णवरन्ध्रेण पातालं दानवालयम्॥ ३१
श्रुतः स महिषेणाथ तारकेण च धीमता।
विरोचनेन जम्भेन कुजम्भेनासुरेण च॥ ३२
ते श्रुत्वा सहसा नादं वज्रपातोपमं दृढम्।
किमेतदिति संचिन्त्य तूर्णं जग्मुस्तदान्धकम्॥ ३३
ते समेत्यान्धकेनैव समं दानवपुङ्गवाः।
मन्त्रयामासुरुद्विग्नास्तं शब्दं प्रति नारद॥ ३४
मन्त्रयत्सु च दैत्येषु भूतलात् सूकराननः।
पातालकेतुर्दैत्येन्द्रः सम्प्राप्तोऽथ रसातलम्॥ ३५
स बाणविद्धो व्यथितः कम्पमानो मुहुर्मुहुः।
अब्रवीद् वचनं दीनं समभ्येत्यान्धकासुरम्॥ ३६

पातालकेतुरुवाच

गतोऽहमासं दैत्येन्द्र गालवस्याश्रमं प्रति।
तं विध्वंसयितुं यत्नं समारब्धं बलान्मया॥ ३७
यावत्सूकररूपेण प्रविशामि तमाश्रमम्।
न जाने तं नरं राजन् येन मे प्रहितः शरः॥ ३८
शरसंभिन्नजत्रुश्च भयात् तस्य महाजवः।
प्रणष्ट आश्रमात् तस्मात् स च मां पृष्ठतोऽन्वगात्॥ ३९
तुरङ्गखुरनिर्घोषः श्रूयते परमोऽसुर।
तिष्ठ तिष्ठेति वदतस्तस्य शूरस्य पृष्ठतः।
तद्भयादस्मि जलधिं सम्प्राप्तो दक्षिणार्णवम्॥ ४०
यावत्पश्यामि तत्रस्थान् नानावेषाकृतीन् नरान्।
केचिद् गर्जन्ति घनवत् प्रतिगर्जन्ति चापरे॥ ४१
अन्ये चोचुर्वयं नूनं निघ्नामो महिषासुरम्।
तारकं घातयामोऽद्य वदन्त्यन्ये सुतेजसः॥ ४२
तच्छ्रुत्वा सुतरां त्रासो मम जातोऽसुरेश्वर।
महार्णवं परित्यज्य पतितोऽस्मि भयातुरः॥ ४३
धरण्यां विवृतं गर्तं स मामन्वपतद् बली।
तद्भयात् सम्परित्यज्य हिरण्यपुरमात्मनः॥ ४४

गुहकी बात सुनकर सभी गण पृथ्वीपर उतर आये। उतरकर उस स्थानपर उन गणोंने एकाएक भयंकर नाद किया। वह भयंकर नाद सारी पृथ्वी एवं गगनमण्डलमें गूँज गया। फिर तो वह समुद्री छिद्रसे दानवोंके निवासस्थान पाताललोक (-तक)-में पहुँच गया। उसके बाद मतिमान् महिष, तारक, विरोचन, जम्भ तथा कुजम्भ आदि असुरोंने उस ध्वनिको सुना। एकाएक वज्रपातके समान उस भयंकर ध्वनिको सुनकर यह क्या है—यह सोचकर वे सभी शीघ्रतासे अन्धकके पास चले गये॥ ३०—३३॥

नारदजी! वे सभी असुरश्रेष्ठ व्याकुल होकर अन्धकके साथ ही एकत्र होकर उस शब्दके विषयमें परस्पर विचार-विमर्श करने लगे। उन दैत्योंके विचार करते समय सूकर-जैसे मुखवाला दैत्यश्रेष्ठ पातालकेतु धरातलसे रसातलमें आया। बाणसे विद्ध होनेके कारण व्यथित होकर वह बारम्बार काँपता हुआ अन्धकासुरके पास आकर दैन्य वचन बोला—॥ ३४—३६॥

पातालकेतुने कहा— दैत्येश्वर! मैं गालवके आश्रममें गया था और उसको बलपूर्वक नष्ट करनेका उद्योग करने लगा। राजन्! मैंने सूकरके रूपमें जैसे ही उस आश्रममें प्रवेश किया, वैसे ही पता नहीं, किस मानवने मेरे ऊपर बाण छोड़ दिया। बाणसे हँसलीके टूट जानेपर मैं उसके भयके कारण आश्रमसे तुरंत भागा। पर उसने मेरा पीछा किया। असुर! मेरे पीठ-पीछे आ रहे 'रुको-रुको' कहनेवाले उस वीरके घोड़ेकी टापका महान् शब्द सुनायी पड़ रहा था। उसके भयसे मैं जलनिधि दक्षिण समुद्रमें आ गया॥ ३७—४०॥

वहाँ मैंने अनेक प्रकारके पहनावे तथा आकृतिवाले मनुष्योंको देखा। उनमें कुछ तो बादलकी भाँति गर्जन कर रहे थे और कुछ दूसरे उसी प्रकारकी प्रतिध्वनि कर रहे थे। दूसरे कह रहे थे कि हम महिषासुरको निश्चय ही मार डालेंगे और अति तेजस्वी दूसरे लोग कह रहे थे कि आज हम तारकको मारेंगे। असुरेश्वर! उसे सुनकर मुझे बहुत डर हो गया और मैं विशाल समुद्रको छोड़कर भयभीत हो पृथ्वीके नीचे विस्तृत गड्ढे (सुरंग)-के रूपमें बने हुए गुप्त मार्गसे भागा। तब भी उस बलशालीने मेरा पीछा किया। उसके डरसे मैं अपना हिरण्यपुर त्यागकर

तवान्तिकमनुप्राप्तः प्रसादं कर्तुमर्हसि।
तच्छ्रुत्वा चान्धको वाक्यं प्राह मेघस्वनं वचः॥ ४५

न भेतव्यं त्वया तस्मात् सत्यं गोप्ताऽस्मि दानव।
महिषस्तारकश्चोभौ बाणश्च बलिनां वरः॥ ४६
अनाख्यायैव ते वीरास्त्वन्धकं महिषादयः।
स्वपरिग्रहसंयुक्ता भूमिं युद्धाय निर्ययुः॥ ४७

यत्र ते दारुणाकारा गणाश्चक्रुर्महास्वनम्।
तत्र दैत्याः समाजग्मुः सायुधाः सबला मुने॥ ४८

दैत्यानापततो दृष्ट्वा कार्तिकेयगणास्ततः।
अभ्यद्रवन्त सहसा स चोग्रो मातृमण्डलः॥ ४९
तेषां पुरस्सरः स्थाणुः प्रगृह्य परिघं बली।
निषूदयत् परबलं क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव॥ ५०

तं निघ्नन्तं महादेवं निरीक्ष्य कलशोदरः।
कुठारं पाणिनादाय हन्ति सर्वान् महासुरान्॥ ५१

ज्वालामुखो भयकरः करेणादाय चासुरम्।
सरथं सगजं साश्वं विस्तृते वदनेऽक्षिपत्॥ ५२

दण्डकश्चापि संक्रुद्धः प्रासपाणिर्महासुरम्।
सवाहनं प्रक्षिपति समुत्पाट्य महार्णवे॥ ५३
शङ्कुकर्णश्च मुसली हलेनाकृष्य दानवान्।
संचूर्णयति मन्त्रीव राजानं प्रासभृद् वशी॥ ५४

खड्गचर्मधरो वीरः पुष्पदन्तो गणेश्वरः।
द्विधा त्रिधा च बहुधा चक्रे दैतेयदानवान्॥ ५५

पिङ्गलो दण्डमुद्यम्य यत्र यत्र प्रधावति।
तत्र तत्र प्रदृश्यन्ते राशयः शावदानवैः॥ ५६

सहस्रनयनः शूलं भ्रामयन् वै गणाग्रणीः।
निजघानासुरान् वीरः सवाजिरथकुञ्जरान्॥ ५७

भीमो भीमशिलावर्षैः स पुरस्सरतोऽसुरान्।
निजघान यथैवेन्द्रो वज्रवृष्ट्या नगोत्तमान्॥ ५८

आपके पास आ गया हूँ। आप मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये। यह बात सुनकर अन्धकने बादलकी गर्जनध्वनिमें यह वचन कहा— ॥ ४१—४५ ॥

दानव! तुम्हें उससे डरना नहीं चाहिये। मैं तुम्हारा सच्चा रक्षक हूँ। उसके बाद महिष और तारक—ये दोनों तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ बाण—ये सभी अन्धकसे बिना पूछे ही अपने अनुगामियोंके साथ युद्ध करनेके लिये पृथ्वीपर निकल आये। मुने! जिस स्थानपर भयंकर आकारवाले गण गर्जन कर रहे थे, उसी स्थानपर हथियारोंसे सजे-धजे दल-बलके साथ दैत्य भी आ गये। इसके बाद दैत्योंको आक्रमण करते हुए देखकर कार्तिकेयके गण तथा उग्र मातृकाएँ (उनपर) सहसा टूट पड़ीं॥ ४६—४९ ॥

उन सबमें सबसे आगे बलशाली स्थाणु भगवान् लोहेकी बनी गदा लेकर क्रोधसे भरकर पशुओंके तुल्य शत्रुओंके सैन्य-बलका संहार करने लगे। असुरोंको मारते हुए महादेवजीको देखकर कलशोदर (भी) हाथमें कुल्हाड़ा लेकर सभी बड़े असुरोंका विनाश करने लगा। भय उत्पन्न कर देनेवाला ज्वालामुख रथ, हाथी और घोड़ोंके साथ असुरोंको हाथसे पकड़-पकड़कर अपने फैलाये हुए मुखमें झोंकने लगा। हाथमें बर्छी लिये हुए दण्डक भी क्रुद्ध होकर महासुरोंको उनके वाहनोंसहित उठाकर समुद्रमें फेंकने लगा॥ ५०—५३ ॥

मुसल एवं प्रास लिये हुए जितेन्द्रिय शङ्कुकर्ण दानवोंको हलसे खींच-खींचकर इस प्रकार मटियामेट करने लगा, जैसे मन्त्री (अनाचारी-अविचारी) राजाको नष्ट करता जाता है। तलवार और ढाल धारण करनेवाला गणोंका स्वामी वीर पुष्पदन्त भी दैत्यों एवं दानवोंमें किसीको दो-दो, किसीको तीन-तीन टुकड़ोंमें काट डालता तथा किसी-किसीको तो अनेक खण्डोंमें कर डालता था। पिङ्गल दण्डको उठाकर जहाँ-जहाँ दौड़ता, वहाँ-वहाँ दैत्योंके शवका ढेर दिखलायी पड़ने लगता। गणोंमें श्रेष्ठ वीर सहस्रनयन शूल घुमाते हुए घोड़े, रथ और हाथियोंसहित असुरोंको मार रहा था॥ ५४—५७ ॥

भीम भयङ्कर शिलाओंकी वर्षासे सामने आ रहे असुरोंको इस भाँति मार रहा था, जिस प्रकार इन्द्र वज्रकी वृष्टिसे उत्तम पर्वतोंको ध्वस्त करते हैं।

रौद्रः शकटचक्राक्षो गणः पञ्चशिखो बली।
भ्रामयन् मुद्गरं वेगान्निजघान् बलाद् रिपून्॥ ५९

गिरिभेदी तलेनैव सारोहं कुञ्जरं रणे।
भस्म चक्रे महावेगो रथं च रथिना सह॥ ६०

नाडीजङ्घोऽङ्घ्रिपातैश्च मुष्टिभिर्जानुनाऽसुरान्।
कीलाभिर्वज्रतुल्याभिर्जघान बलवान् मुने॥ ६१

भयङ्कर शकटचक्राक्ष और बलवान् पञ्चशिख नामक गण तेजीसे मुद्गर घुमाते हुए बलपूर्वक शत्रुओंका संहार कर रहे थे। प्रबल वेगवान् गिरिभेदी युद्धमें थप्पड़ोंके भीषण आघातसे ही सवारके साथ हाथीको एवं रथीके सहित रथको चूर्ण-विचूर्ण करने लगा। मुने! बलवान् नाडीजङ्घ पैरों, मुक्कों, घुटनों एवं वज्रके समान कोहनियोंके प्रहारसे असुरोंको मारने लगा॥ ५८—६१॥

कूर्मग्रीवो ग्रीवयैव शिरसा चरणेन च।
लुण्ठनेन तथा दैत्यान् निजघान सवाहनान्॥ ६२
पिण्डारकस्तु तुण्डेन शृङ्गाभ्यां च कलिप्रिय।
विदारयति संग्रामे दानवान् समरोद्धतान्॥ ६३
ततस्तत्सैन्यमतुलं वध्यमानं गणेश्वरैः।
प्रदुद्रावाथ महिषस्तारकश्च गणाग्रणीः॥ ६४
ते हन्यमानाः प्रमथा दानवाभ्यां वरायुधैः।
परिवार्य समन्तात् ते युयुधुः कुपितास्तदा॥ ६५

कूर्मग्रीव ग्रीवा, सिर एवं पैरोंके प्रहारोंसे तथा धक्का देकर वाहनोंके साथ दैत्योंको मारने लगा। नारदजी! पिण्डारक अपने मुख तथा दोनों सींगोंसे गर्वीले दानवोंको छिन्न-भिन्न करने लगा। इसके बाद गणेश्वरोंद्वारा उस असीम सेनाके दलोंको मारा जाता देख गणनायक महिष एवं तारक दौड़े। उन दोनों दानवोंद्वारा उत्तम-से-उत्तम आयुधोंसे संहारे जा रहे वे सभी प्रमथगण अधिक क्रुद्ध होकर चारों ओरसे घेरकर युद्ध करने लगे॥ ६२—६५॥

हंसास्यः पट्टिशेनाथ जघान महिषासुरम्।
षोडशाक्षस्त्रिशूलेन शतशीर्षो वरासिना॥ ६६
श्रुतायुधस्तु गदया विशोको मुसलेन तु।
बन्धुदत्तस्तु शूलेन मूर्ध्नि दैत्यमताडयत्॥ ६७
तथान्यैः पार्षदैर्युद्धे शूलशक्त्यृष्टिपट्टिशैः।
नाकम्पत् ताड्यमानोऽपि मैनाक इव पर्वतः॥ ६८
तारको भद्रकाल्या च तथोलूखलया रणे।
वध्यते चैकचूडाया दार्यते परमायुधैः॥ ६९

हंसास्य पट्टिशसे, षोडशाक्ष त्रिशूलसे और शतशीर्ष श्रेष्ठ तलवारसे महिषासुरको मारने लगा। श्रुतायुधने गदासे, विशोकने मुसलसे तथा बन्धुदत्तने शूलसे उस दैत्यके मस्तकपर मारा। वैसे ही अन्य पार्षदोंद्वारा शूल, शक्ति, ऋष्टि एवं पट्टिशोंसे मार खाते रहनेपर भी वह मैनाकपर्वतके समान तनिक भी विकम्पित नहीं हुआ। रणमें भद्रकाली, उलूखला एवं एकचूडाने श्रेष्ठ आयुधोंसे तारकके ऊपर प्रहार किया॥ ६६—६९॥

तौ ताड्यमानौ प्रमथैर्मातृभिश्च महासुरौ।
न क्षोभं जग्मतुर्वीरौ क्षोभयन्तौ गणानपि॥ ७०

महिषो गदया तूर्णं प्रहारैः प्रमथानथ।
पराजित्य पराधावत् कुमारं प्रति सायुधः॥ ७१

तमापतन्तं महिषं सुचक्राक्षो निरीक्ष्य हि।
चक्रमुद्यम्य संक्रुद्धो रुरोध दनुनन्दनम्॥ ७२

गदाचक्राङ्कितकरौ गणासुरमहारथौ।
अयुध्येतां तदा ब्रह्मन् लघु चित्रं च सुष्ठु च॥ ७३

वे दोनों महान् असुर प्रमथों और मातृशक्तियोंसे मारे जाते हुए होनेपर भी (स्वयं) अक्षुब्ध रहकर गणोंको क्षुब्ध कर रहे थे। उसके बाद आयुधसहित महिषासुर गदाकी बार-बार मारसे प्रमथोंको शीघ्र पराजितकर कुमारकी ओर झपटा। उस महिषको झपटते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए सुचक्राक्षने चक्र उठाकर (उस) दनुनन्दनको (बीचमें ही) रोक दिया। ब्रह्मन्! हाथोंमें गदा और चक्र धारण किये हुए असुर और गण दोनों महारथी उस समय आपसमें कभी तेज, कभी अद्भुत, कभी निपुण (इस प्रकार विविध प्रकारकी) लड़ाई करने लगे॥ ७०—७३॥

गदां मुमोच महिषः समाविध्य गणाय तु।
सुचक्राक्षो निजं चक्रमुत्ससर्जासुरं प्रति॥ ७४

महिषने गदा घुमाकर सुचक्राक्षके ऊपर मारा और सुचक्राक्षने अपने चक्रको उस असुरकी ओर चलाया।

गदां छित्त्वा सुतीक्ष्णारं चक्रं महिषमाद्रवत्।
तत उच्चुक्रुशुर्दैत्या हा हतो महिषस्त्विति॥ ७५

तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवद् बाणः प्रासमाविध्य वेगवान्।
जघान चक्रं रक्ताक्षः पञ्चमुष्टिशतेन हि॥ ७६

पञ्चबाहुशतेनापि सुचक्राक्षं बबन्ध सः।
बलवानपि बाणेन निष्प्रयत्नगतिः कृतः॥ ७७
सुचक्राक्षं सचक्रं हि बद्धं बाणासुरेण हि।
दृष्ट्वाद्रवद्गदापाणिर्मकराक्षो महाबलः॥ ७८
गदया मूर्ध्नि बाणं हि निजघान महाबलः।
वेदनार्त्तो मुमोचाथ सुचक्राक्षं महासुरः।
स चापि तेन संयुक्तो व्रीडायुक्तो महामनाः॥ ७९
स संग्रामं परित्यज्य सालिग्राममुपाययौ।
बाणोऽपि मकराक्षेण ताडितोऽभूत्पराङ्मुखः॥ ८०
प्रभज्यत बलं सर्वं दैत्यानां सुरतापस।
ततः स्वबलमीक्ष्यैव प्रभग्नं तारको बली।
खड्गोद्यतकरो दैत्यः प्रदुद्राव गणेश्वरान्॥ ८१
ततस्तु तेनाप्रतिमेन सासिना
ते हंसवक्त्रप्रमुखा गणेश्वराः।
समातरश्चापि पराजिता रणे
स्कन्दं भयार्त्ताः शरणं प्रपेदिरे॥ ८२
भग्नान् गणान् वीक्ष्य महेश्वरात्मज-
स्तं तारकं सासिनमापतन्तम्।
दृष्ट्वैव शक्त्या हृदये बिभेद
स भिन्नमर्मा न्यपतत् पृथिव्याम्॥ ८३
तस्मिन्हते भ्रातरि भग्नदर्पो
भयातुरोऽभून्महिषो महर्षे।
संत्यज्य संग्रामशिरो दुरात्मा
जगाम शैलं स हिमाचलाख्यम्॥ ८४
बाणेऽपि वीरे निहतेऽथ तारके
गते हिमाद्रिं महिषे भयार्त्ते।
भयाद् विवेशोग्रमपां निधानं
गणैर्बले वध्यति सापराधे॥ ८५
हत्वा कुमारो रणमूर्ध्नि तारकं
प्रगृह्य शक्तिं महता जवेन।
मयूरमारुह्य शिखण्डमण्डितं
ययौ निहन्तुं महिषासुरस्य॥ ८६

अत्यन्त तीक्ष्ण अरोंसे युक्त वह चक्र गदाको टूक-टूक काट कर महिषके ऊपर चल पड़ा। उसके बाद दैत्यलोग यह कहते हुए जोरसे चिल्ला उठे कि हाय! महिष मारा गया। उसे सुननेके बाद लाल-लाल आँखोंवाला बाणासुर प्रास लेकर वेगपूर्वक दौड़ा और पाँच सौ मुष्टियोंसे चक्रपर प्रहार किया तथा पाँच सौ बाहुओंसे सुचक्राक्षको बाँध लिया। बलवान् होते हुए भी सुचक्राक्ष बाणासुरके द्वारा प्रयत्नशून्य कर दिया गया॥ ७४—७७॥

फिर, बाणासुरके द्वारा सुचक्राक्षको चक्रसहित बँधा हुआ देखकर महाबली मकराक्ष हाथमें गदा लेकर दौड़ा। महाबली मकराक्षने गदासे बाणके मस्तकपर प्रहार किया। उसके बाद कष्टसे दुःखी बाणने सुचक्राक्षको छोड़ दिया और वह मनस्वी उससे छूटकर लज्जित होता हुआ युद्ध छोड़कर सालिग्रामके समीप चला गया। बाण भी मकराक्षसे चोट खाकर युद्धसे मुख मोड़ लिया। नारदजी! दैत्योंकी सारी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी। उसके बाद अपनी सेनाको नष्ट हुआ देख बलवान् दैत्य तारक हाथमें तलवार लेकर गणेश्वरोंकी ओर दौड़ा॥ ७८—८१॥

उसके बाद खड्ग धारण करनेवाले उस बेजोड़ वीरने उन मातृकाओंसहित हंसवक्त्र आदि गणेश्वरोंको हरा दिया। वे सभी डरकर स्कन्दकी शरणमें गये। महेश्वरके पुत्र कुमारने अपने गणोंको निरुत्साह तथा खड्गधारी तारकासुरको आते हुए देखकर शक्तिके प्रहारसे उसका हृदय विदीर्ण कर डाला। हृदय फट जानेके कारण वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। महर्षे! उस भाईके मर जानेपर महिषासुरका अभिमान चूर हो गया। वह दुष्टात्मा डरसे व्याकुल होकर युद्धभूमिसे भागकर हिमालय पर्वतपर चला गया। वीर तारकके मारे जाने, डरकर महिषके हिमालयपर भाग जाने एवं गणोंद्वारा अपराधी सेनाका संहार किये जानेपर बाण भी डरके कारण अगाध समुद्रमें प्रवेश कर गया॥ ८२—८५॥

युद्धभूमिमें तारकका संहार कर कुमारने शक्ति उठा ली और वे शिखण्डयुक्त मोरपर चढ़ गये। फिर अत्यन्त शीघ्रतासे महिषासुरको मारने चले। हाथमें श्रेष्ठ शक्ति लिये हुए मयूरध्वज (मोरछापकी पताकावाले) कार्तिकेयको

स पृष्ठतः प्रेक्ष्य शिखण्डिकेतनं
समापतन्तं वरशक्तिपाणिनम्।
कैलासमुत्सृज्य हिमाचलं तथा
क्रौञ्चं समभ्येत्य गुहां विवेश॥ ८७
दैत्यं प्रविष्टं स पिनाकिसूनु-
र्जुगोप यत्नाद् भगवान् गुहोऽपि।
स्वबन्धुहन्ता भविता कथं त्वहं
संचिन्तयन्नेव ततः स्थितोऽभूत्॥ ८८
ततोऽभ्यगात् पुष्करसम्भवस्तु
हरो मुरारिस्त्रिदशेश्वरश्च।
अभ्येत्य चोचुर्महिषं सशैलं
भिन्दस्व शक्त्या कुरु देवकार्यम्॥ ८९

पीछे आते देख वह महिषासुर कैलास एवं हिमालयको छोड़कर क्रौञ्चपर्वतपर चला गया और उसकी गुफामें प्रवेश कर गया। महादेवके पुत्र भगवान् गुह (कार्तिकेय) पर्वतकी गुफामें प्रविष्ट हुए दैत्यकी (अब) प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने लगे। वे सोचने लगे कि मैं अपने (ममेरे) बन्धुका विनाशकर्त्ता कैसे होऊँ! वे (कुछ क्षण) स्तब्ध हो गये। उसके बाद ही कमलजन्मा ब्रह्मा, भगवान् शंकर, विष्णु और इन्द्र वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने कहा कि शक्तिके द्वारा पर्वतसहित महिषको विदीर्ण कर दो और देवताओंका कार्य पूरा करो॥ ८६—८९॥

तत् कार्तिकेयः प्रियमेव तथ्यं
श्रुत्वा वचः प्राह सुरान् विहस्य।
कथं हि मातामहनप्तृकं वधे
स्वभ्रातरं भ्रातृसुतं च मातुः॥ ९०
एषा श्रुतिश्चापि पुरातनी किल
गायन्ति यां वेदविदो महर्षयः।
कृत्वा च यस्या मतमुत्तमायाः
स्वर्गं व्रजन्ति त्वतिपापिनोऽपि॥ ९१
गां ब्राह्मणं वृद्धमथाप्तवाक्यं
बालं स्वबन्धुं ललनामदुष्टाम्।
कृतापराधा अपि नैव वध्या
आचार्यमुख्या गुरवस्तथैव॥ ९२
एवं जानन् धर्ममग्र्यं सुरेन्द्रा
नाहं हन्यां भ्रातरं मातुलेयम्।
यदा दैत्यो निर्गमिष्यद् गुहान्त-
स्तदा शक्त्या घातयिष्यामि शत्रुम्॥ ९३

इस प्रिय-तथ्य वचनको सुनकर हँसते हुए कार्तिकेय देवताओंसे बोले—मैं नानाके नाती, माताके भतीजे और अपने ममेरे भाईको कैसे मारूँ? (इस विषयमें) यह (इनको न मारनेकी) प्राचीन श्रुति भी है, जिसे वेदज्ञाता महर्षिगण गाया करते हैं। (इसी प्रकार) गौ, ब्राह्मण, वृद्ध, यथार्थवक्ता, बालक, अपना सम्बन्धी, दोषरहित स्त्री तथा आचार्य आदि गुरुजन अपराध करनेपर भी अवध्य होते हैं। इस उत्तम श्रुतिके अनुसार आचरण करनेवाले महान् पापी भी स्वर्गलोकको जाते हैं। सुरश्रेष्ठो! मैं इस श्रेष्ठ धर्मको जानते हुए (ऐसी दशामें—गुफामें छिपी अवस्थामें) अपने भाईको नहीं मार सकूँगा। जब दैत्य गुहाके भीतरसे बाहर निकलेगा तब मैं शक्तिसे उस (देव-) शत्रुका संहार करूँगा (तब हमें धर्मबाधा नहीं होगी)॥ ९०—९३॥

श्रुत्वा कुमारवचनं भगवान्महर्षे
कृत्वा मतिं स्वहृदये गुहमाह शक्रः।
मत्तो भवान् न मतिमान् वदसे किमर्थं
वाक्यं शृणुष्व हरिणा गदितं हि पूर्वम्॥ ९४

नैकस्यार्थे बहून् हन्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः।
एकं हन्याद् बहुभ्योऽर्थे न पापी तेन जायते॥ ९५

एतच्छ्रुत्वा मया पूर्वं समयस्थेन चाग्निज।
निहतो नमुचिः पूर्वं सोदरोऽपि ममानुजः॥ ९६

तस्माद् बहूनामर्थाय सक्रौञ्चं महिषासुरम्।
घातयस्व पराक्रम्य शक्त्या पावकदत्तया॥ ९७

महर्षे! कुमारका वचन सुननेके बाद इन्द्रने अपने हृदयमें विचारकर गुहसे कहा—आप मुझसे अधिक मतिमान् नहीं हैं। आप (ऐसा) क्यों बोल रहे हैं। पहले समयमें भगवान् श्रीहरिकी कही हुई बातको सुनिये। शास्त्रोंमें यह निश्चय किया गया है कि एक व्यक्तिकी रक्षाके लिये बहुतोंका संहार नहीं करना चाहिये। परंतु बहुतोंके कल्याणके लिये एकका वध करनेसे मनुष्य पापी नहीं होता। अग्निपुत्र! इस शास्त्रनिर्णयको सुनकर पहले समयमें मैंने मेल रहनेपर भी अपने सहोदर छोटे भाई नमुचिको मार दिया। अतः बहुतोंके कल्याणके लिये तुम क्रौञ्चसहित महिषासुरका संहार अग्निद्वारा दी हुई शक्तिसे बलपूर्वक कर डालो॥ ९४—९७॥

पुरन्दरवचः श्रुत्वा क्रोधादारक्तलोचनः।
कुमारः प्राह वचनं कम्पमानः शतक्रतुम्॥ ९८

मूढ किं ते बलं बाह्वोः शारीरं चापि वृत्रहन्।
येनाधिक्षिपसे मां त्वं ध्रुवं न मतिमानसि॥ ९९

तमुवाच सहस्राक्षस्त्वत्तोऽहं बलवान् गुह।
तं गुहः प्राह एह्येहि युद्ध्यस्व बलवान् यदि॥ १००

शक्रः प्राहाथ बलवान् ज्ञायते कृत्तिकासुत।
प्रदक्षिणं शीघ्रतरं यः कुर्यात् क्रौञ्चमेव हि॥ १०१

श्रुत्वा तद्वचनं स्कन्दो मयूरं प्रज्झय वेगवान्।
प्रदक्षिणं पादचारी कर्तुं तूर्णतरोऽभ्यगात्॥ १०२

शक्रोऽवतीर्य नागेन्द्रात् पादेनाथ प्रदक्षिणम्।
कृत्वा तस्थौ गुहोऽभ्येत्य मूढं किं संस्थितो भवान्॥ १०३

तमिन्द्रः प्राह कौटिल्यं मया पूर्वं प्रदक्षिणः।
कृतोऽस्य न त्वया पूर्वं कुमारः शक्रमब्रवीत्॥ १०४

मया पूर्वं मया पूर्वं विवदन्तो परस्परम्।
प्राप्योचतुर्महेशाय ब्रह्मणे माधवाय च॥ १०५

अथोवाच हरिः स्कन्दं प्रष्टुमर्हसि पर्वतम्।
योऽयं वक्ष्यति पूर्वं स भविष्यति महाबलः॥ १०६

तन्माधववचः श्रुत्वा क्रौञ्चमभ्येत्य पावकिः।
पप्रच्छाद्रिमिदं केन कृतं पूर्वं प्रदक्षिणम्॥ १०७

इत्येवमुक्तः क्रौञ्चस्तु प्राह पूर्वं महामतिः।
चकार गोत्रभित् पश्चात्त्वया कृतमथो गुह॥ १०८

एवं ब्रुवन्तं क्रौञ्चं स क्रोधात्प्रस्फुरिताधरः।
बिभेद शक्त्या कौटिल्यो महिषेण समं तदा॥ १०९

तस्मिन् हतेऽथ तनये बलवान्
सुनाभो वेगेन भूमिधरपार्थिवजस्तथागात्।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुदश्विवसुप्रधाना
जग्मुर्दिवं महिषमीक्ष्य हतं गुहेन॥ ११०

स्वमातुलं वीक्ष्य बली कुमारः
शक्तिं समुत्पाट्य निहन्तुकामः।
निवारितश्चक्रधरेण वेगा-
दालिङ्ग्य दोर्भ्यां गुरुरित्युदीर्य॥ १११

इन्द्रकी बात सुनकर कुमारकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। आवेशमें काँपते हुए कुमारने इन्द्रसे कहा—मूढ़ वृत्रारि! तुम्हारी बाहुओं और शरीरमें कितनी शक्ति है, जिसके बलपर तुम मेरे ऊपर (मतिमन्द कहकर) आक्षेप कर रहे हो। तुम निश्चय ही बुद्धिमान् नहीं हो। हजार आँखोंवाले इन्द्रने उनसे कहा—गुह! मैं तुमसे शक्तिशाली हूँ। गुहने इन्द्रसे कहा—यदि तुम शक्तिशाली हो तो आओ, युद्ध कर देख लो। तब इन्द्रने कहा—कृत्तिकानन्दन! हम दोनोंमें जो पहले क्रौञ्च-पर्वतकी प्रदक्षिणा कर सकेगा वही शक्तिशाली समझा जायगा॥ ९८—१०१॥

उस बातको सुनकर स्कन्द अपने वाहन मयूरको छोड़कर पैदल प्रदक्षिणा करनेके लिये शीघ्रतासे चल पड़े। इन्द्र भी गजराजसे उतरकर पैदल ही प्रदक्षिणाकर वहाँ आ गये। स्कन्दने उनके पास जाकर कहा—मूढ़! क्यों बैठे हो? इन्द्रने उन कौटिल्य (कुटिलाके पुत्र स्कन्द)-से कहा—मैंने तुमसे पहले ही इसकी प्रदक्षिणा कर ली है। कुमारने इन्द्रसे कहा—तुमने पहले नहीं की है। 'मैंने पहले की है, मैंने पहले की है।' इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए उन दोनोंने शंकर, ब्रह्मा एवं विष्णुके पास जाकर कहा॥ १०२—१०५॥

इसके बाद विष्णुने स्कन्दसे कहा कि तुम पर्वतसे पूछ सकते हो। वह जिसे पहले आया हुआ बतलायेगा, वही महाशक्तिशाली मान्य होगा। माधवकी उन बातोंको सुनकर अग्निनन्दनने क्रौञ्चपर्वतके पास जाकर उससे यह पूछा कि प्रदक्षिणा पहले किसने की है? इस बातको सुनकर चतुर क्रौञ्चने कहा—कार्तिकेय! पहले इन्द्रने प्रदक्षिणा की; इसके बाद तुमने की है। इस प्रकार कहनेवाले क्रौञ्चको क्रोधसे ओठ कँपाते हुए उस कुटिलानन्दन कुमारने शक्तिकी मारसे महिषासुरके साथ ही विदीर्ण कर दिया॥ १०६—१०९॥

उस पुत्रके मार दिये जानेपर पर्वतराजपुत्र बलवान् सुनाभ शीघ्र ही वहाँ आ गये। ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वायु, अश्विनीकुमार, वसु आदि देवता गुह (कार्तिकेय)-के द्वारा महिषको मारा गया देखकर स्वर्ग चले गये। अपने मामाको देखनेके बाद बलवान् कुमारने शक्ति लेकर (उन्हें) मारना चाहा। परंतु विष्णुने शीघ्रतासे उन्हें बाहुओंसे आलिङ्गित करते हुए 'ये गुरु हैं' ऐसा कहकर

सुनाभमभ्येत्य हिमाचलस्तु
प्रगृह्य हस्तेऽन्यत एव नीतवान्।
हरिः कुमारं सशिखण्डिनं नय-
द्वेगाद्दिवं पन्नगशत्रुपत्रः॥ ११२
ततो गुहः प्राह हरिं सुरेशं
मोहेन नष्टो भगवन् विवेकः।
भ्राता मया मातुलजो निरस्त-
स्तस्मात् करिष्ये स्वशरीरशोषम्॥ ११३
तं प्राह विष्णुर्व्रज तीर्थवर्यं
पृथूदकं पापतरोः कुठारम्।
स्नात्वौघवत्यां हरमीक्ष्य भक्त्या
भविष्यसे सूर्यसमप्रभावः॥ ११४
इत्येवमुक्तो हरिणा कुमार-
स्त्वभ्येत्व तीर्थं प्रसमीक्ष्य शम्भुम्।
स्नात्वार्च्य देवान् स रविप्रकाशो
जगाम शैलं सदनं हरस्य॥ ११५
सुचक्रनेत्रोऽपि महाश्रमे तप-
श्चचार शैले पवनाशनस्तु।
आराधयानो वृषभध्वजं तदा
हरोऽस्य तुष्टो वरदो बभूव॥ ११६
देवात् स वव्रे वरमायुधार्थे
चक्रं तथा वै रिपुबाहुषण्डम्।
छिन्द्याद्यथा त्वप्रतिमं करेण
बाणस्य तन्मे भगवान् ददातु॥ ११७
तमाह शम्भुर्व्रज दत्तमेतद्
वरं हि चक्रस्य तवायुधस्य।
बाणस्य तद्बाहुबलं प्रवृद्धं
संछेत्स्यते नात्र विचारणाऽस्ति॥ ११८
वरे प्रदत्ते त्रिपुरान्तकेन
गणेश्वरः स्कन्दमुपाजगाम।
निपत्य पादौ प्रतिवन्द्य हृष्टो
निवेदयामास हरप्रसादम्॥ ११९
एवं तवोक्तं महिषासुरस्य
वधं त्रिनेत्रात्मजशक्तिभेदात्।
क्रौञ्चस्य मृत्युः शरणागतार्थं
पापापहं पुण्यविवर्धनं च॥ १२०

रोक दिया। हिमालय सुनाभके निकट आये और उनका हाथ पकड़कर दूसरी ओर ले गये तथा गरुडवाहन विष्णु मयूरसहित कुमारको जल्दीसे स्वर्गमें लिये चले गये। इसके बाद गुहने सुरेश्वर हरिसे कहा—भगवन्! मोहसे मेरी विचार-शक्ति नष्ट हो गयी और मैंने अपने ममेरे भाईका संहार कर दिया है। अतः (प्रायश्चित्तमें) मैं अपने शरीरको सुखा डालूँगा॥ ११०—११३॥

विष्णुने उनसे कहा—कुमार! तुम पापरूपी वृक्षके लिये कुठारस्वरूप श्रेष्ठ तीर्थ पृथूदकमें जाओ। वहाँ ओघवतीके जलमें स्नानकर भक्तिपूर्वक महादेवका दर्शन करनेसे तुम (निष्पाप होकर) सूर्यके समान कान्तियुक्त हो जाओगे। हरिके इस प्रकार कहनेपर कुमार (पृथूदक) तीर्थमें गये और उन्होंने महादेवका दर्शन किया। स्नान करनेके बाद देवताओंकी पूजा करके वे सूर्यके समान तेजस्वी होकर महादेवके निवासस्थल पर्वतपर चले गये। सुचक्रनेत्र भी केवल वायु पीकर पर्वतके महान् आश्रममें शंकरकी आराधना करता हुआ तपस्या करने लगा। तब प्रसन्न होकर शंकरने उसे वर देनेका वचन दिया। उसने अस्त्र-प्राप्तिके हेतु वर माँगा—हे भगवन्! शत्रुकी भुजाओंको काटनेवाला ऐसा अनुपम चक्र मुझे दें, जिससे मैं हाथसे ही बाणासुरकी भुजाओंको काट सकूँ॥ ११४—११७॥

महादेवजीने उससे कहा—जाओ! तुमने चक्रके निमित्त जो वर माँगा, उसे मैंने दे दिया। यह बाणासुरके अत्यन्त बढ़े हुए बाहुबलको निःसन्देह काट डालेगा। त्रिपुराको मारनेवाले महेश्वरके वर देनेपर गणेश्वर (सुचक्रनेत्र) स्कन्दके निकट गया और (उसने) उनके चरणोंमें गिरकर वन्दना की। उसके बाद उनसे प्रसन्नतापूर्वक महादेवकी कृपाका वर्णन किया॥ ११८-११९॥

इस प्रकार मैंने (पुलस्त्यने) तुमसे शंकरके पुत्रके द्वारा शक्तिसे महिषासुरके संहार किये जानेका वर्णन किया। शरणागतके हेतु क्रौञ्चकी मृत्यु हुई। यह आख्यान पापका विनाश एवं पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है॥ १२०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ अध्याय

ऋतध्वजका पातालकेतुपर आक्रमण कर प्रहार करना, अन्धकका गौरीको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करना

नारद उवाच

योऽसौ मन्त्रयतां प्राप्तो दैत्यानां शरताडितः।
स केन वद निर्भिन्नः शरेण दितिजेश्वरः॥ १

पुलस्त्य उवाच

आसीन्नृपो रघुकुले रिपुजिन्महर्षे
तस्यात्मजो गुणगणैकनिधिर्महात्मा।
शूरोऽरिसैन्यदमनो बलवान् सुहृत्सु
विप्रान्धदीनकृपणेषु समानभावः॥ २
ऋतध्वजो नाम महान् महीयान्
स गालवार्थे तुरगाधिरूढः।
पातालकेतुं निजघान पृष्ठे
बाणेन चन्द्रार्धनिभेन वेगात्॥ ३

नारद उवाच

किमर्थं गालवस्यासौ साधयामास सत्तमः।
येनासौ पत्रिणा दैत्यं निजघान नृपात्मजः॥ ४

पुलस्त्य उवाच

पुरा तपस्तप्यति गालवर्षि-
र्महाश्रमे स्वे सततं निविष्टः।
पातालकेतुस्तपसोऽस्य विघ्नं
करोति मौढ्यात् स समाधिभङ्गम्॥ ५
न चेष्यतेऽसौ तपसो व्ययं हि
शक्तोऽपि कर्त्तुं त्वथ भस्मसात् तम्।
आकाशमीक्ष्याथ स दीर्घमुष्णं
मुमोच निःश्वासमनुत्तमं हि॥ ६
ततोऽम्बराद् वाजिवरः पपात
बभूव वाणी त्वशरीरिणी च।
असौ तुरङ्गो बलवान् क्रमेत
अह्ना सहस्राणि तु योजनानाम्॥ ७
स तं प्रगृह्याश्ववरं नरेन्द्रं
ऋतध्वजं योज्य तदात्तशस्त्रम्।
स्थितस्तपस्येव ततो महर्षि-
र्दैत्यं समेत्य विशिखैर्नृपजो बिभेद॥ ८

नारद उवाच

केनाम्बरतलाद् वाजी निसृष्टो वद सुव्रत।
वाक् कस्याऽदेहिनी जाता परं कौतूहलं मम॥ ९

नारदने पूछा— आप हमें यह बतलायें कि सलाह करते हुए दैत्योंमेंसे जो वह दैत्य बाणद्वारा बिंध गया था उसे किसने बाणसे विदीर्ण कर दिया था॥ १॥

पुलस्त्यजी बोले— महर्षे! रघुकुलमें रिपुजित् नामके एक राजा थे। उनके ऋतध्वज नामका एक पुत्र था। वह सभी गुणोंकी निधि, महात्मा, वीर, शत्रुकी सेनाओंका नाश करनेवाला, बली, मित्रों, ब्राह्मणों, अन्धों, गरीबों एवं दयापात्र दीनोंमें समान भाव रखनेवाला था। उसने गालवके लिये घोड़ेपर सवार होकर पातालकेतुकी पीठमें अर्धचन्द्रके सदृश बाणसे बड़ी तेजीसे मारा था॥ २-३॥

नारदने कहा (पूछा)— उस श्रेष्ठ राजपुत्रने जिस कारण बाणसे उस दैत्यको मारा, उससे गालवका कौन-सा कार्य सिद्ध किया?॥ ४॥

पुलस्त्यजी बोले— पहले समयकी बात है कि गालव अपने आश्रममें तपस्यामें सदा लीन रहा करते थे। दैत्य पातालकेतु मूर्खताके कारण उनकी तपस्यामें बाधा डाला करता और उनकी समाधि (ध्यान)-को भंग किया करता था। वे उसको जलाकर राख कर देनेमें समर्थ होते हुए भी अपनी तपस्या क्षीण नहीं करना चाहते थे; (क्योंकि तपोबलसे दूसरोंका अनिष्ट करनेपर तपस्या क्षीण हो जाती है।) उन्होंने ऊपरकी ओर देखकर लंबा, गर्म निःश्वास छोड़ा। वह सर्वथा अनुपम था। उसके बाद आकाशसे एक सुन्दर घोड़ा गिरा और अशरीरिणी वाणी—आकाशवाणी हुई कि यह बलवान् अश्व एक दिनमें हजारों योजन जा सकता है। शस्त्रसे सजे हुए उस राजा ऋतध्वजको वह घोड़ा सौंपकर वे महर्षि (पुनः) तपस्या करने लगे। उसके बाद राजपुत्रने दैत्यके पास जाकर उसे बाणसे घायल कर दिया॥ ५—८॥

नारदने कहा (पुनः पूछा)— सुव्रत! आप यह बतलायें कि किसने आकाशसे इस अश्वको गिराया था एवं आकाशवाणी किसकी थी? (इस विषयमें) मुझे बड़ी उत्सुकता है॥ ९॥

पुलस्त्य उवाच

विश्वावसुर्नाम महेन्द्रगायनो
गन्धर्वराजो बलवान् यशस्वी।
निसृष्टवान् भूवलये तुरङ्गं
ऋतध्वजस्यैव सुतार्थमाशु॥ १०

नारद उवाच

कोऽर्थो गन्धर्वराजस्य येनाप्रैषीन्महाजवम्।
राज्ञः कुवलयाश्वस्य कोऽर्थो नृपसुतस्य च॥ ११

पुलस्त्य उवाच

विश्वावसोः शीलगुणोपपन्ना
आसीत्पुरंध्रीषु वरा त्रिलोके।
लावण्यराशिः शशिकान्तितुल्या
मदालसा नाम मदालसैव॥ १२
तां नन्दने देवरिपुस्तरस्वी
संक्रीडतीं रूपवतीं ददर्श।
पातालकेतुस्तु जहार तन्वीं
तस्यार्थतः सोऽश्ववरः प्रदत्तः॥ १३
हत्वा च दैत्यं नृपतेस्तनूजो
लब्ध्वा वरोरूमपि संस्थितोऽभूत्।
दृष्टो यथा देवपतिर्महेन्द्रः
शच्या तथा राजसुतो मृगाक्ष्या॥ १४

नारद उवाच

एवं निरस्ते महिषे तारके च महासुरे।
हिरण्याक्षसुतो धीमान् किमचेष्टत वै पुनः॥ १५

पुलस्त्य उवाच

तारकं निहतं दृष्ट्वा महिषं च रणेऽन्धकः।
क्रोधं चक्रे सुदुर्बुद्धिर्देवानां देवसैन्यहा॥ १६
ततः स्वल्पपरीवारः प्रगृह्य परिघं करे।
निर्जगामाथ पातालाद् विचचार च मेदिनीम्॥ १७
ततो विचरता तेन मन्दरे चारुकन्दरे।
दृष्टा गौरी च गिरिजा सखीमध्ये स्थिता शुभा॥ १८
ततोऽभूत् कामबाणार्त्तः सहसैवान्धकोऽसुरः।
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं गिरिराजसुतां वने॥ १९
अथोवाचासुरो मूढो वचनं मन्मथान्धकः।
कस्येयं चारुसर्वाङ्गी वने चरति सुन्दरी॥ २०
इयं यदि भवेन्नैव ममान्तःपुरवासिनी।
तन्मदीयेन जीवेन क्रियते निष्फलेन किम्॥ २१

पुलस्त्यजी बोले— महेन्द्रका गुणगान करनेवाले बलशाली विश्वावसु नामके यशस्वी गन्धर्वराजने अपनी पुत्रीके लिये ऋतध्वजके हेतु उस समय अश्वको पृथ्वीपर गिराया था॥ १०॥

नारदने कहा (फिर पूछा)— महान् वेगशाली इस अश्वको भेजनेमें गन्धर्वराजका क्या उद्देश्य था तथा राजपुत्र राजा कुवलयाश्वका इसमें क्या लाभ था? (कृपया इसे भी बतलाइये।)॥ ११॥

पुलस्त्यजी बोले— विश्वावसुकी मदसे अलसायी-सी मदालसा नामकी एक (भोलीभाली) कन्या थी। वह शील और गुणसे सम्पन्न, त्रिलोककी स्त्रियोंमें उत्तम, सुन्दरताकी खानि और चन्द्रमाकी कान्तिके समान (कोमलकिशोरी) थी। नन्दनवनमें क्रीडा कर रही उस सौन्दर्यशालिनीको देवताओंके शत्रु पातालकेतुने देखा और तुरन्त उसे उठा ले गया। उसीके कारण वह श्रेष्ठ घोड़ा दिया गया था। दैत्यको मारनेके बाद श्रेष्ठ ऊरूवाली स्त्रीको पाकर राजपुत्र निश्चिन्त हो गये। राजपुत्र (उस) मृगनयनीके साथ ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे शचीके साथ इन्द्र सुशोभित होते हैं॥ १२—१४॥

नारदने पुनः पूछा— इस प्रकार महान् असुर तारक और महिषके निरस्त—समाप्त हो जानेपर हिरण्याक्षके बुद्धिमान् पुत्र (अन्धक)-ने पुनः क्या किया?॥ १५॥

पुलस्त्यजी बोले— तारक और महिष दोनोंको संग्राममें मारे गये देखकर देवसेनाके समूहोंका नाश करनेवाला, महामूर्ख अन्धक देवताओंपर कुपित हो गया। उसके बाद थोड़ी-सी सेनाके साथ वह हाथमें परिघ लेकर पातालसे बाहर निकल आया और पृथ्वीपर विचरण करने लगा। उसके बाद घूमते हुए ही उसने सुन्दर कन्दराओंवाले मन्दर गिरिपर सखियोंके बीचमें गिरिनन्दिनी कल्याणी गौरीको देखा। उस सर्वाङ्गसुन्दरी गिरिराजनन्दिनीको वनमें देखकर अन्धकासुर एकाएक काम-बाणसे पीड़ित हो गया॥ १६—१९॥

तब कामसे अंधे हुए उस मूर्ख असुर अन्धकने कहा—वनमें भ्रमण कर रही यह सर्वाङ्गसुन्दरी ललना किसकी है? यदि यह मेरे अन्तःपुरमें निवास करनेवाली न हुई तो मेरे इस व्यर्थके जीवनसे क्या लाभ? यदि

यदस्यास्तनुमध्याया न परिष्वङ्गवानहम्।
अतो धिङ् मां रूपेण किं स्थिरेण प्रयोजनम्॥ २२

स मे बन्धुः स सचिवः स भ्राता साम्परायिकः।
यो मामसितकेशां तां योजयेन्मृगलोचनाम्॥ २३
इत्थं वदति दैत्येन्द्रे प्रह्लादो बुद्धिसागरः।
पिधाय कर्णौ हस्ताभ्यां शिरःकम्पं वचोऽब्रवीत्॥ २४

मा मैवं वद दैत्येन्द्र जगतो जननी त्वियम्।
लोकनाथस्य भार्येयं शङ्करस्य त्रिशूलिनः॥ २५

मा कुरुष्व सुदुर्बुद्धिं सद्यः कुलविनाशिनीम्।
भवतः परदारेयं मा निमज्ज रसातले॥ २६

सत्सु कुत्सितमेवं हि असत्स्वपि हि कुत्सितम्।
शत्रवस्ते प्रकुर्वन्तु परदारावगाहनम्॥ २७
किंचित् त्वया न श्रुतं दैत्यनाथ
गीतं श्लोकं गाधिना पार्थिवेन।
दृष्ट्वा सैन्यं विप्रधेनुप्रसक्तं
तथ्यं पथ्यं सर्वलोके हितं च॥ २८

वरं प्राणास्त्याज्या न च पिशुनवादेष्वभिरति-
र्वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम्।
वरं क्लीबैर्भाव्यं न च परकलत्राभिगमनं
वरं भिक्षार्थित्वं न च परधनास्वादमसकृत्॥ २९

स प्रह्लादवचः श्रुत्वा क्रोधान्धो मदनार्दितः।
इयं सा शत्रुजननीत्येवमुक्त्वा प्रदुद्रुवे॥ ३०

ततोऽन्वधावन् दैतेया यन्त्रमुक्ता इवोपलाः।
तान् रुरोध बलान्नन्दी वज्रोद्यतकरोऽव्ययः॥ ३१
मयतारपुरोगास्ते वारिता द्रावितास्तथा।
कुलिशेनाहतास्तूर्णं जग्मुर्भीता दिशो दश॥ ३२
तानर्दितान् रणे दृष्ट्वा नन्दिनाऽन्धकदानवः।
परिघेण समाहत्य पातयामास नन्दिनम्॥ ३३
शैलादिं पतितं दृष्ट्वा धावमानं तथान्धकम्।
शतरूपाऽभवद् गौरी भयात् तस्य दुरात्मनः॥ ३४

इस कृशोदरी सुन्दरी ललनाका आलिङ्गन मुझे प्राप्त न हुआ तो मुझे धिक्कार है! मेरी इस स्थायी सुन्दरतासे क्या लाभ? मेरा वही बन्धु, वही सचिव, वही भ्राता तथा वही संकटकालका साथी है जो इस काले केशवाली मृगनयनी सुन्दरीको मुझसे मिला दे॥ २०—२३॥

दैत्यराजके इस प्रकार कहनेपर महाबुद्धिमान् प्रह्लाद दोनों हाथोंसे दोनों कानोंको ढँककर सिर हिलाते हुए बोले—दैत्येन्द्र! इस प्रकार मत कहो। ये तो संसारकी जननी और लोकस्वामी, त्रिशूलधारी शङ्करकी पत्नी हैं। तुम कुलका सद्यः विनाश करनेवाली ऐसी दुर्बुद्धि मत करो। तुम्हारे लिये ये परस्त्री हैं। अतः रसातलमें मत गिरो; क्योंकि (ऐसा दुष्कर्म) सज्जनोंमें तो अत्यन्त निन्दित है ही, असत् पुरुषोंमें भी निन्दित है। ऐसा दुष्कर्म—परदारा-अभिगमन तुम्हारे शत्रु करें (जिससे उनका विनाश हो जाय)॥ २४—२७॥

दैत्येश! ब्राह्मणकी गौपर प्रसक्त सेनाको देखकर गाधिराजने समस्त जगत्के लिये कल्याणकारी, सत्य एवं उचित जो श्लोक कहा है क्या उसे आपने नहीं सुना है? (उन्होंने कहा है—) प्राणोंका छोड़ देना अच्छा है, परंतु चुगुलखोरोंकी बातमें दिलचस्पी लेना उचित नहीं। मौन रहना अच्छा है, किंतु असत्य बोलना ठीक नहीं। नपुंसक होकर रहना ठीक है, परंतु परस्त्रीगमन उचित नहीं। भीख माँगना अच्छा है, किंतु बार-बार दूसरेके धनका उपभोग करना उचित नहीं। प्रह्लादका वचन सुननेके बाद काम-पीड़ित अन्धक क्रोधसे अंधा होकर 'यह वही शत्रुकी जननी है'—यह कहते हुए दौड़ पड़ा। उसके बाद दूसरे और दानव भी यन्त्रसे छूटे हुए पत्थरकी गोलीके समान उसके पीछे दौड़ चले। परंतु अव्यय नन्दीने हाथमें वज्र उठाकर बलपूर्वक उन सबको रोक दिया॥ २८—३१॥

वज्रकी मारसे रोक दिये गये और भगाये जाते हुए वे मय एवं तारक आदि सभी दैत्य डरकर दसों दिशाओंमें भाग गये। संग्राममें अन्धकासुरने उन सभीको नन्दीद्वारा पीड़ित देखकर नन्दीको परिघसे मारकर गिरा दिया। नन्दीको गिरा हुआ और अन्धकको दौड़कर आते हुए देखकर गौरी उस दुष्टात्माके भयसे सैकड़ों रूपवाली

ततः स देवीगणमध्यसंस्थितः
परिभ्रमन् भाति महाऽसुरेन्द्रः।
यथा वने मत्तकरी परिभ्रमन्
करेणुमध्ये मदलोलदृष्टिः॥ ३५

न परिज्ञातवांस्तत्र का तु सा गिरिकन्यका।
नात्राश्चर्यं न पश्यन्ति चत्वारोऽमी सदैव हि॥ ३६

न पश्यतीह जात्यन्धो रागान्धोऽपि न पश्यति।
न पश्यति मदोन्मत्तो लोभाक्रान्तो न पश्यति।
सोऽपश्यमानो गिरिजां पश्यन्नपि तदान्धकः॥ ३७

प्रहारं नाददत् तासां युवत्य इति चिन्तयन्।
ततो देव्या स दुष्टात्मा शतावर्या निराकृतः॥ ३८

कुट्टितः प्रवरैः शस्त्रैर्निपपात महीतले।
वीक्ष्यान्धकं निपतितं शतरूपा विभावरी॥ ३९

तस्मात् स्थानादपाक्रम्य गताऽन्तर्धानमम्बिका।
पतितं चान्धकं दृष्ट्वा दैत्यदानवयूथपाः॥ ४०

कुर्वन्तः सुमहाशब्दं प्राद्रवन्त रणार्थिनः।
तेषामापततां शब्दं श्रुत्वा तस्थौ गणेश्वरः॥ ४१

आदाय वज्रं बलवान् मघवानिव कोपितः।
दानवान् समयान् वीरः पराजित्य गणेश्वरः॥ ४२
समभ्येत्याम्बिकां दृष्ट्वा ववन्दे चरणौ शुभौ।
देवी च ता निजा मूर्तीः प्राह गच्छध्वमिच्छया॥ ४३
विहरध्वं महीपृष्ठे पूज्यमाना नरैरिह।
वसतिर्भवतीनां च उद्यानेषु वनेषु च॥ ४४
वनस्पतिषु वृक्षेषु गच्छध्वं विगतज्वराः।
तास्त्वेवमुक्ताः शैलेय्या प्रणिपत्याम्बिकां क्रमात्॥ ४५
दिक्षु सर्वासु जग्मुस्ताः स्तूयमानाश्च किन्नरैः।
अन्धकोऽपि स्मृतिं लब्ध्वा अपश्यन्नद्रिनन्दिनीम्।
स्वबलं निर्जितं दृष्ट्वा ततः पातालमाद्रवत्॥ ४६
ततो दुरात्मा स तदान्धको मुने
पातालमभ्येत्य दिवा न भुङ्क्ते।
रात्रौ न शेते मदनेषुताडितो
गौरीं स्मरन्कामबलाभिपन्नः॥ ४७

हो गयीं। उसके बाद देवियोंके बीच घूमता हुआ (वह) दैत्य ऐसा लग रहा था जैसे कि वनमें हथिनियोंके बीच घूमता हुआ मदसे चञ्चल दृष्टिवाला मतवाला हाथी सुशोभित होता है॥ ३२—३५॥

(पर) वह नहीं समझ रहा था कि उनमें वे गिरिनन्दिनी कौन हैं? इसमें (उसके न समझनेमें) कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि संसारमें ये चार प्रकारके व्यक्ति सदा ही (ठीक-ठीक) नहीं देख पाते। जन्मका अन्धा नहीं देखता, प्रेममें अन्धा हुआ नहीं देखता, मदोन्मत्त नहीं देखता एवं लोभसे पराभूत भी नहीं देखता है। अतः अन्धक उस समय देखते हुए भी गिरिजाको नहीं देख पा रहा था। उस दानवने उन सभीको युवती समझकर उनपर आघात नहीं किया, फिर तो शतावरीदेवीने (ही) उस दुष्टात्मापर आघात कर दिया। उत्कृष्ट कोटिके शस्त्रोंसे बिंधकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। अन्धकको गिरा हुआ देखकर शतरूपोंवाली विभावरी अम्बिका उस स्थानसे हटकर अन्तर्हित हो गयीं। अन्धकको गिरा हुआ देख दैत्यों एवं दानवोंके सेनापति युद्धके लिये ललकारते हुए दौड़ पड़े। आक्रमण करनेवाले उन (दैत्यों)-के शब्दको सुनकर गणेश्वर खड़े हो गये॥ ३६—४१॥

क्रुद्ध हुए गणेश्वर इन्द्रके समान वज्र लेकर मयसहित दानवोंको हराकर अम्बिकाके निकट गये और (उन्होंने) उनके शुभ चरणोंमें प्रणाम किया। देवीने भी अपनी उन मूर्तियोंसे कहा—तुम सभी इच्छानुरूप स्थानोंको जाओ और मनुष्योंकी आराधना प्राप्त करती हुई पृथ्वीपर भ्रमण करो। तुम सबका निवास उद्यानों, वनों, वनस्पतियों एवं वृक्षोंमें होगा। अब तुम सभी निश्चिन्त होकर जाओ। पार्वतीके इस प्रकार कहनेपर वे सभी देवियाँ अम्बिकाको प्रणामकर किन्नरोंसे स्तुत होती हुई (दसों) दिशाओंमें चली गयीं। अन्धक भी होशमें आनेके बाद गिरिजाको न देखकर तथा अपनी सेनाको हारी हुई समझकर पातालमें चला गया। मुने! उसके बाद कामबाणसे घायल एवं कामके वेगसे पीड़ित दुष्टात्मा अन्धक पातालमें जाकर गौरीका चिन्तन करता हुआ न दिनमें खाता था और न रातमें सोता था—वह बेचैन-सा हो गया था॥ ४२—४७॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें उनसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५९॥

साठवाँ अध्याय

पुनः तेज:प्राप्तिके लिये शिवकी तपश्चर्या, केदारतीर्थकी उपलब्धि, शिवका सरस्वतीमें निमग्न होना, मुरासुरका प्रसंग और सनत्कुमारका प्रसंग

नारद उवाच

क्व गतः शङ्करो ह्यासीद् येनाम्बा नन्दिना सह।
अन्धकं योधयामास एतन्मे वक्तुमर्हसि॥ १

नारदने कहा (पूछा)—आप मुझे यह बतलायें कि शङ्कर कहाँ चले गये थे, जिससे नन्दिसहित अम्बिकाने अन्धकसे (स्वयं) युद्ध किया॥ १॥

पुलस्त्य उवाच

यदा वर्षसहस्रं तु महामोहे स्थितोऽभवत्।
तदाप्रभृति निस्तेजाः क्षीणवीर्यः प्रदृश्यते॥ २

स्वमात्मानं निरीक्ष्याथ निस्तेजोऽङ्गं महेश्वरः।
तपोऽर्थाय तथा चक्रे मतिं मतिमतां वरः॥ ३

स महाव्रतमुत्पाद्य समाश्वास्याम्बिकां विभुः।
शैलादिं स्थाप्य गोप्तारं विचचार महीतलम्॥ ४

महामुद्रार्पितग्रीवो महाहिकृतकुण्डलः।
धारयाणः कटीदेशे महाशङ्खस्य मेखलाम्॥ ५

पुलस्त्यजी बोले—वे (शंकरजी) जिस समय एक हजार वर्षतक महामोहमें पड़ गये थे, उस समयसे वे तेजरहित एवं शक्तिहीन-से दिखायी दे रहे थे। मतिमानोंमें श्रेष्ठ महेश्वरने स्वयं अपने अङ्गोंको निस्तेज देखकर तप करनेके लिये निश्चय किया। उन व्यापक शङ्करने महाव्रतका निर्णय करनेके बाद अम्बिकाको धैर्य धारण कराया और वे शैल आदि (नन्दी)-को उनकी रक्षाके लिये नियुक्त कर पृथ्वीपर विचरण करने लगे। उन्होंने गलेमें तन्त्रानुसार महामुद्रा पहन ली। महासर्पोंके कुण्डल एवं कमरमें महाशङ्खकी मेखला धारण कर ली॥ २—५॥

कपालं दक्षिणे हस्ते सव्ये गृह्य कमण्डलुम्।
एकाहवासी वृक्षे हि शैलसानुनदीष्वटन्॥ ६

स्थानं त्रैलोक्यमास्थाय मूलाहारोऽम्बुभोजनः।
वाय्वाहारस्तदा तस्थौ नववर्षशतं क्रमात्॥ ७

ततो वीटां मुखे क्षिप्य निरुच्छ्वासोऽभवद् यतिः।
विस्तृते हिमवत्पृष्ठे रम्ये समशिलातले॥ ८

ततो वीटा विदार्यैव कपालं परमेष्ठिनः।
सार्चिष्मती जटामध्यान्निषण्णा धरणीतले॥ ९

दाहिने हाथमें कपाल एवं बायें हाथमें कमण्डलु लेकर वे वृक्षोंके नीचे (कभी) पड़े रहते, कभी पहाड़ोंकी चोटियोंपर तथा नदियोंके तटपर चक्कर लगाते रहते। प्रथम (आरम्भमें) मूल-फल खाकर फिर जल पीकर, उसके बाद वायु पीकर (यम-नियमका) व्रत पालन करनेवाले उन्होंने क्रमशः तीनों लोकोंमें नौ सौ वर्ष व्यतीत किये। उसके बाद उन्होंने हिमालयके ऊपर रमणीय तथा समतल पर्वतीय चट्टानपर आसन लगा लिया और अपने मुखमें काष्ठकी बनी गुल्ली डालकर श्वास रोक लिया—कुम्भक प्राणायाम कर लिया। उसके बाद शंकरके कपालको फोड़कर ज्वालामयी वह गुल्ली (उनकी) जटाके बीचसे निकलकर पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ६—९॥

वीटया तु पतन्त्याऽद्रिर्दारितः क्ष्मासमोऽभवत्।
जातस्तीर्थवरः पुण्यः केदार इति विश्रुतः॥ १०

ततो हरो वरं प्रादात् केदाराय वृषध्वजः।
पुण्यवृद्धिकरं ब्रह्मन् पापघ्नं मोक्षसाधनम्॥ ११

उस गुल्लीके गिरनेसे पर्वत टूट-फूटकर पृथ्वीके समान (समतल) हो गया और वहाँ केदार नामका प्रसिद्ध तीर्थ बन गया। ब्रह्मन्! उसके बाद वृषध्वज महादेवने केदारको पुण्यकी वृद्धि करनेवाले एवं पापके विनाश करनेवाले और मोक्षके साधनका वर दिया तथा

ये जलं तावके तीर्थे पीत्वा संयमिनो नराः।
मधुमांसनिवृत्ता ये ब्रह्मचारिव्रते स्थिताः॥ १२

षण्मासाद् धारयिष्यन्ति निवृत्ताः परपाकतः।
तेषां हृत्पङ्कजेष्वेव मल्लिङ्गं भविता ध्रुवम्॥ १३
न चास्य पापाभिरतिर्भविष्यति कदाचन।
पितॄणामक्षयं श्राद्धं भविष्यति न संशयः॥ १४

स्नानदानतपांसीह होमजप्यादिकाः क्रियाः।
भविष्यन्त्यक्षया नृणां मृतानामपुनर्भवः॥ १५

एतद् वरं हरात् तीर्थं प्राप्य पुष्णाति देवताः।
पुनाति पुंसां केदारस्त्रिनेत्रवचनं यथा॥ १६

केदाराय वरं दत्त्वा जगाम त्वरितो हरः।
स्नातुं भानुसुतां देवीं कालिन्दीं पापनाशिनीम्॥ १७
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा जगामाथ सरस्वतीम्।
वृतां तीर्थशतैः पुण्यैः प्लक्षजां पापनाशिनीम्॥ १८

अवतीर्णस्ततः स्नातुं निमग्नश्च महाम्भसि।
द्रुपदां नाम गायत्रीं जजापान्तर्जले हरः॥ १९

निमग्ने शङ्करे देव्यां सरस्वत्यां कलिप्रिय।
साग्रः संवत्सरो जातो न चोन्मज्जत ईश्वरः॥ २०

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् भुवनाः सप्त सार्णवाः।
चेलुः पेतुर्धरण्यां च नक्षत्रास्तारकैः सह॥ २१
आसनेभ्यः प्रचलिता देवाः शक्रपुरोगमाः।
स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति जपन्तः परमर्षयः॥ २२

ततः क्षुब्धेषु लोकेषु देवा ब्रह्माणमागमन्।
दृष्ट्वोचुः किमिदं लोकाः क्षुब्धाः संशयमागताः॥ २३

तानाह पद्मसम्भूतो नैतद् वेद्मि च कारणम्।
तदागच्छत वो युक्तं द्रष्टुं चक्रगदाधरम्॥ २४

पितामहेनैवमुक्ता देवाः शक्रपुरोगमाः।
पितामहं पुरस्कृत्य मुरारिसदनं गताः॥ २५

यह भी वर दिया कि जो संयमी मनुष्य परान्न-भोजनको त्यागकर तथा ब्रह्मचर्यव्रत धारणकर तुम्हारा जल पीते हुए यहाँ छः महीनेतक निवास करेंगे उनके हृदयकमलमें निश्चय ही मेरे लिङ्गकी सत्ता प्रत्यक्ष प्रकट होगी॥ १०—१३॥

उन्हें कभी पापमें अभिरुचि नहीं होगी तथा उनसे किया गया पितरोंका श्राद्ध अक्षय होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है। मनुष्योंद्वारा यहाँ की गयी स्नान, दान, तपस्या, होम एवं जप आदिकी क्रियाएँ अक्षय होंगी तथा इस स्थानपर मनुष्योंके मरनेपर उनका पुनर्जन्म नहीं होगा। महादेवसे इस प्रकारका वर पाकर वह केदारतीर्थ त्रिनेत्र महादेवके वचनके अनुकूल प्राणिवर्गको पवित्र एवं देवताओंका पोषण करने लगा। केदारतीर्थको वर देकर महादेव पापविनाशिनी रवितनया देवी कालिन्दी (यमुना)-में स्नान करनेके लिये शीघ्र चले गये॥ १४—१७॥

वहाँ स्नान करके पवित्र होकर भगवान् शंकर सैकड़ों पवित्र तीर्थोंसे घिरी (वृत) और प्लक्षवृक्षसे उत्पन्न पापनाशिनी सरस्वतीके निकट गये। उसके बाद वे स्नान करनेके लिये उसमें उतरे एवं अगाध जलमें भलीभाँति स्नान कर द्रुपदा गायत्रीका जप करने लगे। कलिप्रिय! देवी सरस्वतीके जलमें शङ्करको डुबकी लगाये हुए एक वर्षसे अधिक बीत गया; परंतु भगवान् ऊपर नहीं उठे। ब्रह्मन्! उस समय समुद्रोंसहित सातों भुवन काँपने लगे और ताराओंके साथ नक्षत्र (टूट-टूटकर) भूतलपर गिरने लगे॥ १८—२१॥

इन्द्र प्रमुख हैं जिनमें, ऐसे देवता अपने-अपने आसनोंसे उचक पड़े और महर्षिगण 'संसारका कल्याण हो'—इस भावनासे जप करने लगे। तत्पश्चात् जगत्के अशान्त हो जानेपर देवगण ब्रह्माके निकट आये और उन्हें देखकर उन लोगोंने पूछा—ब्रह्मन्! संसार अशान्त होकर क्यों सन्देहके झोंके खा रहा है? कमलयोनि ब्रह्माने उनसे कहा—मैं इसके कारणको नहीं जान पा रहा हूँ। तुमलोग जाओ, (इसके लिये) चक्र-गदाधारी विष्णुका दर्शन करना उचित है। पितामहके इस प्रकार कहनेपर इन्द्र आदि सभी देवता पितामहको आगे कर मुरारिलोक (विष्णुलोक)-में गये॥ २२—२५॥

नारद उवाच

कोऽसौ मुरारिर्देवर्षे देवो यक्षो नु किन्नरः।
दैत्यो राक्षसो वापि पार्थिवो वा तदुच्यताम्॥ २६

पुलस्त्य उवाच

योऽसौ रजः सत्त्वमयो गुणवांश्च तमोमयः।
निर्गुणः सर्वगो व्यापी मुरारिर्मधुसूदनः॥ २७

नारद उवाच

योऽसौ मुर इति ख्यातः कस्य पुत्रः स गीयते।
कथं च निहतः संख्ये विष्णुना तद् वदस्व मे॥ २८

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि मुरासुरनिबर्हणम्।
विचित्रमिदमाख्यानं पुण्यं पापप्रणाशनम्॥ २९
कश्यपस्यौरसः पुत्रो मुरो नाम दनूद्भवः।
स ददर्श रणे शस्तान् दितिपुत्रान् सुरोत्तमैः॥ ३०
ततः स मरणाद् भीतस्तप्त्वा वर्षगणान्बहून्।
आराधयामास विभुं ब्रह्माणमपराजितम्॥ ३१
ततोऽस्य तुष्टो वरदः प्राह वत्स वरं वृणु।
स च वव्रे वरं दैत्यो वरमेनं पितामहात्॥ ३२
यं यं करतलेनाहं स्पृशेयं समरे विभो।
स स मद्धस्तसंस्पृष्टस्त्वमरोऽपि मरत्वतः॥ ३३

बाढमित्याह भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
ततोऽभ्यागान्महातेजा मुरः सुरगिरिं बली॥ ३४

समेत्याह्वयते देवं यक्षं किन्नरमेव वा।
न कश्चिद् युयुधे तेन समं दैत्येन नारद॥ ३५

ततोऽमरावतीं क्रुद्धः स गत्वा शक्रमाह्वयत्।
न चास्य सह योद्धुं वै मतिं चक्रे पुरंदरः॥ ३६
ततः स करमुद्यम्य प्रविवेशामरावतीम्।
प्रविशन्तं न तं कश्चिन्निवारयितुमुत्सहेत्॥ ३७

स गत्वा शक्रसदनं प्रोवाचेन्द्रं मुरस्तदा।
देहि युद्धं सहस्राक्ष नो चेत् स्वर्गं परित्यज॥ ३८

इत्येवमुक्तो मुरुणा ब्रह्मन् हरिहयस्तदा।
स्वर्गराज्यं परित्यज्य भूचरः समजायत॥ ३९

नारदने पूछा—देवर्षे! आप यह बतलायें कि ये मुरारि कौन हैं? ये देवता हैं या यक्ष, किन्नर हैं या दैत्य, राक्षस हैं या मनुष्य?॥ २६॥

पुलस्त्यजीने कहा—देवताओ! जो ये मुरारि हैं वे मधु नामके राक्षसके विनाशकारी हैं; वे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे युक्त हैं; निर्गुण और सगुण हैं; सर्वगामी और सर्वव्यापी हैं॥ २७॥

नारदने (पुलस्त्यजीसे) **पूछा**—आप मुझे यह बतलायें कि यह मुर-नामधारी दानव किसका पुत्र है और लड़ाईके मैदानमें भगवान् विष्णुने उसे किस प्रकार मारा?॥ २८॥

पुलस्त्यजी बोले—नारद! मुर असुरके विनाशकी कथा अद्भुत है; वह पापका विनाश करनेवाली और पवित्रकारिणी है; मैं उसे कहूँगा; तुम सुनो। दनुकी कोखसे कश्यपका औरस पुत्र मुर उत्पन्न हुआ। उसने श्रेष्ठ देवोंद्वारा संग्राममें दैत्योंको पराजित देखा। उसके बाद मृत्युसे भयभीत होकर उसने बहुत वर्षोंतक तपस्या करते हुए व्यापक अजेय ब्रह्माकी आराधना की। उसके बाद उसके ऊपर संतुष्ट होकर ब्रह्माने कहा—वत्स! वर माँगो। उस दैत्यने पितामहसे यह श्रेष्ठ वर माँगा—॥ २९—३२॥

विभो! युद्धमें मैं जिसे हाथसे छू दूँ वह मेरे हाथसे छूते ही अमर (देवता) होनेपर भी मृत्युको प्राप्त हो जाय। लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने कहा—बहुत ठीक; ऐसा ही होगा। उसके बाद महातेजस्वी बलशाली मुर देवगिरिपर जा पहुँचा। [पुलस्त्यजी कहते हैं कि] नारदजी! वहाँ पहुँचकर उसने देवता, यक्ष, किन्नर आदिको युद्धके लिये ललकारा, किंतु किसीने भी उसके साथ युद्ध नहीं किया। उसके बाद क्रुद्ध होकर वह अमरावतीकी ओर चला गया और इन्द्रको संग्राम करनेके लिये ललकारने लगा। किंतु इन्द्रने भी उसके साथ युद्ध करनेका विचार नहीं किया॥ ३३—३६॥

उसके बाद हाथ उठाये हुए उसने अमरावतीमें प्रवेश किया। परंतु किसीने भी प्रवेश करते हुए उसको रोकनेका साहस नहीं किया। उसके बाद इन्द्रके भवनमें जाकर मुरने इन्द्रसे कहा—सहस्राक्ष! मुझसे संग्राम करो, अन्यथा स्वर्गको छोड़ दो। ब्रह्मन्! मुरके इस प्रकार कहनेपर इन्द्र (युद्ध न कर) स्वर्गका राज्य छोड़कर

ततो गजेन्द्रकुलिशौ हृतौ शक्रस्य शत्रुणा।
सकलत्रो महातेजाः सह देवैः सुतेन च॥ ४०

कालिन्द्या दक्षिणे कूले निवेश्य स्वपुरं स्थितः।
मुरुश्चापि महाभोगान् बुभुजे स्वर्गसंस्थितः॥ ४१
दानवाश्चापरे रौद्रा मयतारपुरोगमाः।
मुरमासाद्य मोदन्ते स्वर्गे सुकृतिनो यथा॥ ४२
स कदाचिन्महीपृष्ठं समायातो महासुरः।
एकाकी कुञ्जरारूढः सरयूं निम्नगां प्रति॥ ४३
स सरय्वास्तटे वीरं राजानं सूर्यवंशजम्।
ददृशे रघुनामानं दीक्षितं यज्ञकर्मणि॥ ४४
तमुपेत्याब्रवीद् दैत्यो युद्धं मे दीयतामिति।
नो चेन्निवर्ततां यज्ञो नेष्टव्या देवतास्त्वया॥ ४५
तमुपेत्य महातेजा मित्रावरुणसंभवः।
प्रोवाच बुद्धिमान् ब्रह्मन् वसिष्ठस्तपतां वरः॥ ४६
किं ते जितैर्नरैर्दैत्य अजिताननुशासय।
प्रहर्तुमिच्छसि यदि तं निवारय चान्तकम्॥ ४७
स बली शासनं तुभ्यं न करोति महासुर।
तस्मिञ्जिते हि विजितं सर्वं मन्यस्व भूतलम्॥ ४८
स तद् वसिष्ठवचनं निशम्य दनुपुङ्गवः।
जगाम धर्मराजानं विजेतुं दण्डपाणिनम्॥ ४९
तमायान्तं यमः श्रुत्वा मत्वाऽवध्यं च संयुगे।
स समारुह्य महिषं केशवान्तिकमागमत्॥ ५०
समेत्य चाभिवाद्यैनं प्रोवाच मुरचेष्टितम्।
स चाह गच्छ मामद्य प्रेषयस्व महासुरम्॥ ५१
स वासुदेववचनं श्रुत्वाऽभ्यागात् त्वरान्वितः।
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यः सम्प्राप्तो नगरीं मुरः॥ ५२
तमागतं यमः प्राह किं मुरो कर्त्तुमिच्छसि।
वदस्व वचनं कर्त्ता त्वदीयं दानवेश्वर॥ ५३

मुरुरुवाच

यम प्रजासंयमनान्निवृत्तिं कर्त्तुमर्हसि।
नो चेत् तवाद्य छित्त्वाऽहं मूर्धानं पातये भुवि॥ ५४

पृथ्वीपर विचरण करने लगे। उसके बाद (उस) शत्रुने इन्द्रके गजराज (ऐरावत) और वज्रको छीन लिया। महातेजस्वी इन्द्र अपनी पत्नी, पुत्र और देवताओंके साथ कालिन्दीके दक्षिण तटपर अपना नगर बसाकर रहने लगे और मुर स्वर्गमें रहते हुए महान् भोगोंका उपभोग करने लगा॥ ३७—४१॥

मय और तारक आदि दूसरे भयङ्कर दानव भी मुरके निकट पहुँचकर स्वर्गमें पुण्यात्माओंके समान आमोद-प्रमोद करने लगे। वह महान् असुर किसी समय पृथ्वीपर आया और अकेला ही हाथीपर चढ़कर सरयू नदीके तटपर उपस्थित हुआ। उसने सरयूके किनारे सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए एवं यज्ञकर्ममें दीक्षित रघु नामके राजाको देखा। उनके पास जाकर उस दैत्यने कहा— मुझसे संग्राम करो, नहीं तो यज्ञ करना बंद कर दो। तुम देवताओंकी पूजा नहीं कर सकते॥ ४२—४५॥

ब्रह्मन्! मित्रावरुणके पुत्र महातेजस्वी, बुद्धिमान् और तपस्वियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठने उस दैत्यके पास जाकर कहा—दैत्य! मनुष्योंको जीत लेनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा? जो नहीं जीते गये हैं उनको पराजित करो। यदि तुम (चढ़ाई कर) प्रहार करना चाहते हो तो उन यमराजका अवरोध करो। महासुर! वे बलशाली हैं। तुम्हारा शासन नहीं मानते। उनको जीत लेनेपर समस्त भूतलको पराजित हुआ समझो। वसिष्ठका वह वचन सुनकर दानवश्रेष्ठ दण्ड धारण करनेवाले धर्मराजको जीतनेके लिये चल पड़ा॥ ४६—४९॥

उसे आता हुआ सुनकर तथा संग्राममें वह अवध्य है—ऐसा विचारकर वे यमराज महिषपर सवार होकर भगवान् केशवके पास चले गये। उनके पास जाकर प्रणाम करनेके पश्चात् (यमराजने) मुरके कृत्योंको बताया। उन्होंने कहा—तुम जाकर अभी उस महासुरको मेरे पास भेज दो। वासुदेवके वचनको सुनकर वे शीघ्र चले आये। इतनेमें मुर दैत्य उनकी नगरीमें आया। उसके आनेपर यमने कहा—हे मुर! बतलाओ तुम क्या करना चाहते हो? दानवेश्वर! मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा॥ ५०—५३॥

मुरु या मुरने कहा—यम! तुम प्रजाओंके ऊपर नियन्त्रण करना बंद कर दो, नहीं तो मैं तुम्हारा सिर

तमाह धर्मराड् ब्रह्मन् यदि मां संयमाद् भवान्।
गोपायति मुरो सत्यं करिष्ये वचनं तव॥ ५५

मुरस्तमाह भवतः कः संयन्ता वदस्व माम्।
अहमेनं पराजित्य वारयामि न संशयः॥ ५६

यमस्तं प्राह मां विष्णुर्देवश्चक्रगदाधरः।
श्वेतद्वीपनिवासी यः स मां संयमतेऽव्ययः॥ ५७
तमाह दैत्यशार्दूलः क्वासौ वसति दुर्जयः।
स्वयं तत्र गमिष्यामि तस्य संयमनोद्यतः॥ ५८

तमुवाच यमो गच्छ क्षीरोदं नाम सागरम्।
तत्रास्ते भगवान् विष्णुर्लोकनाथो जगन्मयः॥ ५९

मुरस्तद्वाक्यमाकर्ण्य प्राह गच्छामि केशवम्।
किं तु त्वया न तावद्धि संयम्या धर्म मानवाः॥ ६०

स प्राह गच्छ त्वं तावत् प्रवर्तिष्ये जयं प्रति।
संयन्तुर्वा यथा स्याद्धि ततो युद्धं समाचर॥ ६१

इत्येवमुक्त्वा वचनं दुग्धाब्धिमगमन्मुरः।
यत्रास्ते शेषपर्यङ्के चतुर्मूर्तिर्जनार्दनः॥ ६२

नारद उवाच

चतुर्मूर्त्तिः कथं विष्णुरेक एव निगद्यते।
सर्वगत्वात् कथमपि अव्यक्तत्वाच्च तद्वद॥ ६३

पुलस्त्य उवाच

अव्यक्तः सर्वगोऽपीह एक एव महामुने।
चतुर्मूर्त्तिर्जगन्नाथो यथा ब्रह्मंस्तथा शृणु॥ ६४

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं शुक्लं शान्तं परं पदम्।
वासुदेवाख्यमव्यक्तं स्मृतं द्वादशपत्रकम्॥ ६५

नारद उवाच

कथं शुक्लं कथं शान्तमप्रतर्क्यमनिन्दितम्।
कान्यस्य द्वादशैवोक्ता पत्रका तानि मे वद॥ ६६

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्व गुह्यं परमं परमेष्ठिप्रभाषितम्।
श्रुतं सनत्कुमारेण तेनाख्यातं च तन्मम॥ ६७

काटकर पृथ्वीपर फेंक दूँगा। ब्रह्मन्! धर्मराजने उससे कहा—यदि तुम मेरे ऊपर संयम करनेवालेसे मेरी रक्षा कर सको तो मैं सत्य कहता हूँ कि तुम्हारे वचनका पालन करूँगा। मुरने उनसे कहा—मुझे बतलाओ कि तुम्हारा संयन्ता (शासक) कौन है? मैं निस्सन्देह उसे पराजित कर रोक दूँगा। यमने उससे कहा—जो श्वेतद्वीपके निवासी, चक्र-गदा धारण करनेवाले, अविनाशी भगवान् विष्णु हैं, वे ही मुझे शासित करते हैं॥ ५४—५७॥

दैत्योंमें श्रेष्ठ मुरने यमराजसे कहा—यम! वह कहाँ रहता है, जिसे कठिनतासे जीता जा सकता है? उसका संयमन करनेके लिये मैं तैयार होकर वहाँ स्वयं जाऊँगा। यमराजने उससे कहा—तुम क्षीरसागरमें जाओ। वहाँ लोकस्वामी जगन्मूर्ति भगवान् विष्णु रहते हैं। मुरने उनकी बात सुनकर कहा—धर्मराज! मैं केशवके पास जा रहा हूँ, परंतु तुम तबतक मनुष्योंका नियमन मत करना। उस (मुर)-ने कहा—तुम जाओ। तबतक मैं तुम्हारे नियामकको जैसे भी हो जीतनेका प्रयत्न करूँगा। उसके बाद तुम युद्ध करना। इतना कहकर मुरु या मुर दैत्य क्षीरसागरमें जा पहुँचा। वहाँ (जाकर उसने देखा कि) चतुर्भुजाधारी जनार्दन अनन्त नागकी शय्यापर (पड़े हुए) हैं॥ ५८—६२॥

नारदजीने पूछा—आप (कृपया) यह बतलायें कि विष्णु एक होनेपर भी चतुर्मूर्ति क्यों कहे जाते हैं। क्या सर्वगत एवं अव्यक्त होनेके कारण तो नहीं कहा जाता? (आप) उसे कहें॥ ६३॥

पुलस्त्यजी बोले—ब्रह्मन्! अव्यक्त एवं सर्वव्यापी होनेपर भी वे एक ही हैं। जिस कारणसे जगन्नाथ चतुर्मूर्ति कहे जाते हैं, उसे बताता हूँ, सुनो। वासुदेव नामक श्रेष्ठ पद (तर्क या अनुमानद्वारा अज्ञेय) एवं निर्देश किये जानेमें अशक्य, शुक्ल (शुद्ध), शान्तियुक्त, अव्यक्त (अप्रकट) एवं द्वादशपत्रक ('ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—) द्वादशाक्षर मन्त्रवाला कहा गया है॥ ६४-६५॥

नारदजीने [पुनः] **पूछा**—किस प्रकार वे शुक्ल, शान्त, अप्रतर्क्य एवं अनिन्दित हैं? मुझे बतलाइये कि उनके कथित द्वादशपत्रक कौन हैं॥ ६६॥

पुलस्त्यजी बोले—पितामह ब्रह्माने जिस परम गुह्य वचनको कहा है, उसे सुनिये। सनत्कुमारने उसे सुना था और उन्होंने मुझसे कहा था॥ ६७॥

नारद उवाच

कोऽयं सनत्कुमारेति यस्योक्तं ब्रह्मणा स्वयम्।
तवापि तेन गदितं वद मामनुपूर्वशः॥ ६८

नारदजीने [फिर] कहा—इस विषयमें स्वयं ब्रह्माने जिनसे कहा है, वे सनत्कुमार कौन हैं? और उन्होंने भी आपसे जो कहा है उसे क्रमशः मुझसे कहें॥ ६८॥

पुलस्त्य उवाच

धर्मस्य भार्याहिंसाख्या तस्यां पुत्रचतुष्टयम्।
संजातं मुनिशार्दूल योगशास्त्रविचारकम्॥ ६९
ज्येष्ठः सनत्कुमारोऽभूद् द्वितीयश्च सनातनः।
तृतीयः सनको नाम चतुर्थश्च सनन्दनः॥ ७०
सांख्यवेत्तारमपरं कपिलं वोढुमासुरिम्।
दृष्ट्वा पञ्चशिखं श्रेष्ठं योगयुक्तं तपोनिधिम्॥ ७१
ज्ञानयोगं न ते दद्युर्ज्यायांसोऽपि कनीयसाम्।
मानमुक्तं महायोगं कपिलादीनुपासतः॥ ७२
सनत्कुमारश्चाभ्येत्य ब्रह्माणं कमलोद्भवम्।
अपृच्छद् योगविज्ञानं तमुवाच प्रजापतिः॥ ७३

पुलस्त्यजी बोले—धर्मकी पत्नी अहिंसा है। उससे चार पुत्र हुए। मुनिश्रेष्ठ! वे सभी योगशास्त्रके विचार करनेमें कुशल थे। उनमें सनत्कुमार ज्येष्ठ, सनातन द्वितीय, सनक तृतीय एवं चतुर्थ सनन्दन हुए। वे सभी सांख्यवेत्ता कपिल, वोढु, आसुरी एवं योगसे युक्त तपोनिधि श्रेष्ठ पञ्चशिख नामक (ऋषि)-को देखकर उनके पास गये। बड़े होनेपर भी उन लोगोंने अपनेसे छोटोंको ज्ञानयोगका उपदेश नहीं दिया। कपिल आदिकी उपासना करनेवालोंको महायोगका परिणाममात्र बतला दिया। सनत्कुमारने कमलोद्भव ब्रह्माके पास जाकर योग-विज्ञान पूछा। प्रजापतिने उनसे कहा॥ ६९—७३॥

ब्रह्मोवाच

कथयिष्यामि ते साध्य यदि पुत्रत्वमिच्छसि।
यस्य कस्य न वक्तव्यं तत्सत्यं नान्यथेति हि॥ ७४

ब्रह्माने कहा—साध्य! यदि तुम पुत्र होना चाहो तो मैं तुमसे कहूँगा। उसे जिस-किसीसे नहीं कहना चाहिये; क्योंकि यह सत्य है, अन्यथा नहीं है॥ ७४॥

सनत्कुमार उवाच

पुत्र एवास्मि देवेश यतः शिष्योऽस्म्यहं विभो।
न विशेषोऽस्ति पुत्रस्य शिष्यस्य च पितामह॥ ७५

सनत्कुमारने कहा—देवेश! मैं पुत्र ही हूँ; क्योंकि विभो! मैं शिष्य हूँ। पितामह! पुत्र और शिष्यमें कोई भेद नहीं होता॥ ७५॥

ब्रह्मोवाच

विशेषः शिष्यपुत्राभ्यां विद्यते धर्मनन्दन।
धर्मकर्मसमायोगे तथापि गदतः शृणु॥ ७६

पुन्नाम्नो नरकात् त्राति पुत्रस्तेनेह गीयते।
शेषपापहरः शिष्य इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥ ७७

ब्रह्माने कहा—धर्मनन्दन! शिष्य और पुत्रमें धर्म-कर्मके संयोगमें (जो) कुछ भेद होता है उसे बताता हूँ, मुझसे सुनो। यह वैदिकी श्रुति है—जो 'पुम्' नामक नरकसे उद्धार कर देता है उसे 'पुत्र' कहा जाता है और शेष पापोंका हरण करनेवाला होनेसे 'शिष्य' कहा जाता है (—यही दोनोंमें भेद है)॥ ७६-७७॥

सनत्कुमार उवाच

कोऽयं पुन्नामको देव नरकात् त्राति पुत्रकः।
कस्माच्छेषं ततः पापं हरेच्छिष्यश्च तद्वद॥ ७८

सनत्कुमारने कहा (पूछा)—देव! वह 'पुम्' नामक नरक कौन है? जिस नरकसे पुत्र रक्षा करता है और शिष्य किससे अवशिष्ट पापका हरण करता है; आप कृपया इन्हें बतलाइये॥ ७८॥

ब्रह्मोवाच

एतत् पुराणं परमं महर्षे
योगाङ्गयुक्तं च सदैव यच्च।
तथैव चोग्रं भयहारि मानवं
वदामि ते साध्य निशामयैनम्॥ ७९

ब्रह्माने कहा—महर्षे! मैं तुमको अत्यन्त प्राचीन, योगाङ्गसे युक्त, उग्र भय दूर करनेवाली परम पवित्र कथा सुनाता हूँ। हे साध्य! तुम इसे सुनो॥ ७९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें साठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६०॥

इकसठवाँ अध्याय

पुन्नाम नरकोंका वर्णन, पुत्र-शिष्यकी विशेषता एवं बारह प्रकारके पुत्रोंका वर्णन, सनत्कुमार-ब्रह्माका प्रसंग, चतुर्मूर्तिका वर्णन और मुरु-वध

ब्रह्मोवाच

परदाराभिगमनं पापीयांसोपसेवनम्।
पारुष्यं सर्वभूतानां प्रथमं नरकं स्मृतम्॥ १

फलस्तेयं महापापं फलहीनं तथाऽटनम्।
छेदनं वृक्षजातीनां द्वितीयं नरकं स्मृतम्॥ २

वर्ज्यादानं तथा दुष्टमवध्यवधबन्धनम्।
विवादमर्थहेतूत्थं तृतीयं नरकं स्मृतम्॥ ३

भयदं सर्वसत्त्वानां भवभूतिविनाशनम्।
भ्रंशनं निजधर्माणां चतुर्थं नरकं स्मृतम्॥ ४
मारणं मित्रकौटिल्यं मिथ्याऽभिशपनं च यत्।
मिष्टैकाशनमित्युक्तं पञ्चमं तु नृपाचनम्॥ ५

पत्रफलादिहरणं यमनं योगनाशनम्।
यानयुग्यस्य हरणं षष्ठमुक्तं नृपाचनम्॥ ६

राजभागहरं मूढं राजजायानिषेवणम्।
राज्ये त्वहितकारित्वं सप्तमं निरयं स्मृतम्॥ ७

लुब्धत्वं लोलुपत्वं च लब्धधर्मार्थनाशनम्।
लालासंकीर्णमेवोक्तमष्टमं नरकं स्मृतम्॥ ८
विप्रोष्यं ब्रह्महरणं ब्राह्मणानां विनिन्दनम्।
विरोधं बन्धुभिश्चोक्तं नवमं नरपाचनम्॥ ९

ब्रह्माने कहा—परस्त्रीसे संगत होना, पापियोंके साथ रहना और सब प्राणियोंके प्रति (किसी भी प्राणीके साथ) कठोरताका व्यवहार करना पहला नरक कहा गया है। फलोंकी चोरी, (अच्छे) उद्देश्यसे रहित घूमना (अवारापन) एवं वृक्ष आदि वनस्पतियोंका काटना घोर पाप तथा दूसरा नरक कहा गया है। दोषयुक्त एवं वर्जित—ग्रहण न करने योग्य—वस्तुओंका लेना, जो वधके योग्य नहीं है उसे मारना अथवा बन्धनमें डालना (बन्दी बनाना) और अर्थ (धन—रुपये-पैसे)-के लिये किया जानेवाला विवाद (मुकदमा उठाना) तीसरा नरक होता है। सभी प्राणियोंको भय देना, संसारकी सार्वजनिक सम्पत्तिको नष्ट करना तथा अपने नियत धर्म-नियमोंसे विचलित होना चौथे प्रकारका नरक कहलाता है॥ १—४॥

पुरश्चरण आदि तान्त्रिक अभिचारोंसे किसीको मारना, मृत्यु-जैसा अपार कष्ट देना तथा मित्रके साथ छल-छद्म, झूठी शपथ और अकेले मधुर पदार्थ खाना पाँचवाँ नरक कहा जाता है। पत्र (पुष्प आदि) एवं फल चोराना, किसीको बाँध (बन्धुवा बनाये) रखना, किसीके प्राप्तव्यकी प्राप्तिमें विघ्न-बाधा डालकर उसे नष्ट कर देना, घोड़ा-गाड़ी आदि सवारीके जूए (आदि सामानों)-की चोरी कर लेना छठा पाप कहा गया है। भुलावेमें पड़कर राजाके अंशका चुरा लेना एवं मूर्खतावश साहस कर राजपत्नीका संसर्ग एवं राज्यका अमङ्गल (नुकसान) करना सातवाँ नरक कहा जाता है। किसी वस्तु या व्यक्तिपर लुभा जाना, लालच करना, पुरुषार्थसे प्राप्त धर्मयुक्त अर्थका विनाश करना और लारमिली वाणीको आठवाँ नरक कहते हैं॥ ५—८॥

ब्राह्मणको देशसे निकाल देना, ब्राह्मणका धन चुराना, ब्राह्मणोंकी निन्दा करना तथा बन्धुओंसे विरोध

शिष्टाचारविनाशं च शिष्टद्वेषं शिशोर्वधम्।
शास्त्रस्तेयं धर्मनाशं दशमं परिकीर्तितम्॥ १०

षडङ्गनिधनं घोरं षाड्गुण्यप्रतिषेधनम्।
एकादशममेवोक्तं नरकं सद्भिरुत्तमम्॥ ११

सत्सु नित्यं सदा वैरमनाचारमसत्क्रिया।
संस्कारपरिहीनत्वमिदं द्वादशमं स्मृतम्॥ १२
हानिर्धर्मार्थकामानामपवर्गस्य हारणम्।
संभेदः संविदामेतत् त्रयोदशममुच्यते॥ १३
कृपणं धर्महीनं च यद् वर्ज्यं यच्च वह्निदम्।
चतुर्दशममेवोक्तं नरकं तद् विगर्हितम्॥ १४
अज्ञानं चाप्यसूयत्वमशौचमशुभावहम्।
स्मृतं तत् पञ्चदशममसत्यवचनानि च॥ १५
आलस्यं वै षोडशममाक्रोशं च विशेषतः।
सर्वस्य चाततायित्वमावासेष्वग्निदीपनम्॥ १६
इच्छा च परदारेषु नरकाय निगद्यते।
ईर्ष्याभावश्च सत्येषु उद्वृत्तं तु विगर्हितम्॥ १७
एतैस्तु पापैः पुरुषः पुन्नामाद्यैर्न संशयः।
संयुक्तः प्रीणयेद् देवं संतत्या जगतः पतिम्॥ १८
प्रीतः सृष्ट्या तु शुभया स पापाद् येन मुच्यते।
पुन्नामनरकं घोरं विनाशयति सर्वतः॥ १९
एतस्मात् कारणात् साध्य सुतः पुत्रेति गद्यते।
अतः परं प्रवक्ष्यामि शेषपापस्य लक्षणम्॥ २०
ऋणं देवर्षिभूतानां मनुष्याणां विशेषतः।
पितॄणां च द्विजश्रेष्ठ सर्ववर्णेषु चैकता॥ २१
ओंकारादपि निर्वृत्तिः पापकार्यकृतश्च यः।
मत्स्यादश्च महापापमगम्यागमनं तथा॥ २२
घृतादिविक्रयं घोरं चण्डालादिपरिग्रहः।
स्वदोषाच्छादनं पापं परदोषप्रकाशनम्॥ २३
मत्सरित्वं वाग्दुष्टत्वं निष्ठुरत्वं तथा परम्।
टाकित्वं तालवादित्वं नाम्ना वाचाऽप्यधर्मजम्॥ २४

करना नवाँ नरक कहा जाता है। शिष्टाचारका नाश, शिष्टजनोंसे विरोध, नादान बालककी हत्या, शास्त्रग्रन्थोंकी चोरी तथा स्वधर्मका नाश करना दसवाँ नरक कहा जाता है। षडङ्गनिधन अर्थात् छः अङ्गोंवाली वेद-विद्याको नष्ट करना और षाड्गुण्य अर्थात् सन्धि-विग्रह, यान, आसन-द्वैधीभाव, समाश्रय (राजनीति-गुणों)-का प्रतिषेध ग्यारहवाँ घोर नरक कहा गया है। सज्जनोंसे सदा वैर-भाव, आचारसे रहित रहना, बुरे कार्यमें लगे रहना एवं संस्कार-विहीनताको बारहवाँ नरक कहा गया है॥ ९—१२॥

धर्म, अर्थ एवं सत्कामनाकी हानि, मोक्षका नाश एवं इनके समन्वयमें विरोध उत्पन्न करनेको तेरहवाँ नरक कहा जाता है। कृपण, धर्महीन, परित्याज्य एवं आग लगानेवालेको चौदहवाँ निन्दित नरक कहते हैं। विवेकहीनता, दूसरेके गुणमें दोष निकालना, अमङ्गल करना, अपवित्रता एवं असत्य वचन बोलनेको पंद्रहवाँ नरक कहते हैं। आलस्य करना, विशेष रूपसे क्रोध करना, सभीके प्रति आततायी बन जाना एवं घरमें आग लगाना सोलहवाँ नरक कहलाता है॥ १३—१६॥

परस्त्रीकी कामना, सत्यके प्रति ईर्ष्या रखना, निन्दित एवं उद्दण्ड व्यवहार करना नरक देनेवाला कहा गया है। इन पुन्नाम आदि पापोंसे युक्त पुरुष (भी) निस्सन्देह 'पुत्र'के द्वारा जगत्पति जनार्दनको प्रसन्न कर सकता है। पापहारी सुसन्ततिसे प्रसन्न होकर भगवान् जनार्दन पुन्नामके घोर नरकको पूर्णतया नष्ट कर देते हैं। साध्य! इसीलिये सुतको 'पुत्र' कहा जाता है। अब इसके बाद मैं शेष पापोंका लक्षण बतलाता हूँ॥ १७—२०॥

द्विजश्रेष्ठ! देवऋण, ऋषिऋण, प्राणियोंके ग्रहण—विशेषतः मनुष्यों एवं पितरोंका ऋण, सभी वर्णोंको एक समझना, ॐकारके उच्चारणमें उपेक्षा-भाव रखना, पापकामोंका करना, मछली खाना तथा अगम्या स्त्रीसे संगत होना—ये महापाप हैं। घृत-तैल आदिका बेचना, चाण्डाल आदिसे दान लेना, अपना दोष छिपाना और दूसरेका दोष प्रकट करना—ये घोर पाप हैं। दूसरेका उत्कर्ष देखकर जलना, कड़वी बात बोलना, निर्दयपना, नाम कहनेसे भी अधर्मजनक टाकिता और तालवादिता,

दारुणत्वमधार्मिक्यं नरकावहमुच्यते।
एतैश्च पापैः संयुक्तः प्रीणयेद् यदि शङ्करम्॥ २५

ज्ञानाधिकमशेषेण शेषपापं जयेत् ततः।
शारीरं वाचिकं यत् तु मानसं कायिकं तथा॥ २६

पितृमातृकृतं यच्च कृतं यच्चाश्रितैर्नरैः।
भ्रातृभिर्बान्धवैश्चापि तस्मिञ्जन्मनि धर्मज॥ २७

तत्सर्वं विलयं याति स धर्मः सुतशिष्ययोः।
विपरीते भवेत् साध्य विपरीतः पदक्रमः॥ २८

तस्मात् पुत्रश्च शिष्यश्च विधातव्यौ विपश्चिता।
एतदर्थमभिध्याय शिष्याच्छ्रेष्ठतरः सुतः।
शेषात् तारयते शिष्यः सर्वतोऽपि हि पुत्रकः॥ २९

पुलस्त्य उवाच

पितामहवचः श्रुत्वा साध्यः प्राह तपोधनः।
त्रिः सत्यं तव पुत्रोऽहं देव योगं वदस्व मे॥ ३०

तमुवाच महायोगी त्वन्मातापितरौ यदि।
दास्येते च ततः सूनुर्दायादो मेऽसि पुत्रक॥ ३१

सनत्कुमारः प्रोवाच दायादपरिकल्पना।
येयं हि भवता प्रोक्ता तां मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३२

तदुक्तं साध्यमुख्येन वाक्यं श्रुत्वा पितामहः।
प्राह प्रहस्य भगवाञ्शृणु वत्सेति नारद॥ ३३

ब्रह्मोवाच

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवास्तु षट्॥ ३४

अमीषु षट्सु पुत्रेषु ऋणपिण्डधनक्रियाः।
गोत्रसाम्यं कुले वृत्तिः प्रतिष्ठा शाश्वती तथा॥ ३५

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा।
स्वयंदत्तः पारशवः षड्दायादबान्धवाः॥ ३६

अमीभिर्ऋणपिण्डादिकथा नैवेह विद्यते।
नामधारका एवेह न गोत्रकुलसंमताः॥ ३७

भयङ्करता तथा अधार्मिकताके कार्य नरकके कारण हैं। इन पापोंसे युक्त मनुष्य (भी) यदि परमज्ञानी शङ्करको (अपनी आराधनासे) संतुष्ट कर लेता है तो शेष पापोंको वह पूर्णरूपसे जीत लेता है। धर्मपुत्र! उस जन्ममें किये गये (अपने) सभी कायिक, वाचिक एवं मानसिक कर्म तथा माता-पिता एवं आश्रितजनों और भाइयों एवं बान्धवोंद्वारा किये गये कर्म भी विलीन हो जाते हैं। साध्य! सुत और शिष्यका यही धर्म है। इसके विपरीत होनेपर विपरीत गति प्राप्त होती है, अतएव विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि पुत्र और शिष्यकी (परम्परा) बनाये रखे। इसी अभिप्रायकी दृष्टिसे शिष्यकी अपेक्षा पुत्र अत्यन्त श्रेष्ठ होता है कि शिष्य केवल शेष पापोंसे मुक्त करता है और पुत्र सम्पूर्ण पापोंसे बचा लेता है॥ २१—२९॥

पुलस्त्यजी बोले—पितामहकी बात सुनकर साध्य तपोधन सनत्कुमारने कहा—देव! मैं तीन बार सत्यका उच्चारण करके कहता हूँ कि मैं आपका पुत्र हूँ। अतः मुझे आप योगका उपदेश दीजिये। तब महायोगी पितामहने उनसे कहा—पुत्र! तुम्हारे माता-पिता यदि तुमको मुझे दे दें तो तुम मेरे (स्वत्वप्राप्तिमें अधिकृत) 'दायाद' (भागीदार) पुत्र हो जाओगे। सनत्कुमारने कहा—भगवन्! आपने जो यह 'दायाद' शब्द कहा है उसका अर्थ क्या है? (कृपया) उसकी विवेचना कीजिये। नारदजी! भगवान् पितामह साध्य-प्रधान सनत्कुमारका वचन सुनकर हँसते हुए बोले—वत्स! सुनो॥ ३०—३३॥

ब्रह्माने कहा—औरस, क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम, गूढोत्पन्न और अपविद्ध—ये छः बान्धव दायाद अर्थात् (दायभागके अधिकारी) होते हैं। इन छः पुत्रोंसे ऋण, पिण्ड, धनकी क्रिया, गोत्रसाम्य, कुलवृत्ति और स्थिर प्रतिष्ठा रहती है। (इसके अतिरिक्त) कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और पारशव—ये छः दायाद-बान्धव कहे जाते हैं। इनके द्वारा ऋण एवं पिण्ड आदिका कार्य नहीं होता। ये केवल नामधारी होते हैं। ये गोत्र एवं कुलसे सम्मत नहीं होते॥ ३४—३७॥

तत् तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणः सनकाग्रजः।
उवाचैषां विशेषं मे ब्रह्मन् व्याख्यातुमर्हसि॥ ३८

ततोऽब्रवीत् सुरपतिर्विशेषं शृणु पुत्रक।
औरसो यः स्वयं जातः प्रतिबिम्बमिवात्मनः॥ ३९

क्लीबोन्मत्ते व्यसनिनि पत्यौ तस्याज्ञया तु या।
भार्या ह्यनातुरा पुत्रं जनयेत् क्षेत्रजस्तु सः॥ ४०

मातापितृभ्यां यो दत्तः स दत्तः परिगीयते।
मित्रपुत्रं मित्रदत्तं कृत्रिमं प्राहुरुत्तमाः॥ ४१

न ज्ञायते गृहे केन जातस्त्विति स गूढकः।
बाह्यतः स्वयमानीतः सोऽपविद्धः प्रकीर्तितः॥ ४२

कन्याजातस्तु कानीनः सगर्भोढः सहोढकः।
मूल्यैर्गृहीतः क्रीतः स्याद् द्विविधः स्यात् पुनर्भवः॥ ४३

दत्त्वैकस्य च या कन्या हृत्वाऽन्यस्य प्रदीयते।
तज्जातस्तनयो ज्ञेयो लोके पौनर्भवो मुने॥ ४४

दुर्भिक्षे व्यसने चापि येनात्मा विनिवेदितः।
स स्वयंदत्त इत्युक्तस्तथान्यः कारणान्तरैः॥ ४५

ब्राह्मणस्य सुतः शूद्र्यां जायते यस्तु सुव्रत।
ऊढायां वाप्यनूढायां स पारशव उच्यते॥ ४६

एतस्मात् कारणात् पुत्र न स्वयं दातुमर्हसि।
स्वमात्मानं गच्छ शीघ्रं पितरौ समुपाह्वय॥ ४७

ततः स मातापितरौ सस्मार वचनाद् विभोः।
तावाजग्मतुरीशानं द्रष्टुं वै दम्पती मुने॥ ४८

धर्मोऽहिंसा च देवेशं प्रणिपत्य न्यषीदताम्।
उपविष्टौ सुखासीनौ साध्यो वचनमब्रवीत्॥ ४९

सनत्कुमारने उनकी बात सुनकर (पुनः) कहा—ब्रह्मन्! आप इन सभीका विशेष लक्षण मुझे बतलाइये। उसके पश्चात् देवोंके स्वामी ब्रह्माने कहा—पुत्र! इन्हें मैं विशेषरूपसे बतलाता हूँ; सुनो—अपने द्वारा उत्पन्न किया गया पुत्र 'औरस' कहलाता है। यह अपना ही प्रतिबिम्ब होता है। पतिके नपुंसक, उन्मत्त (पागल) या व्यसनी होनेपर उसकी आज्ञासे अनातुरा (कामवासनासे रहित) पत्नी जो पुत्र उत्पन्न करती है, उसे 'क्षेत्रज' कहते हैं। माता-पिता यदि दूसरेको अपने पुत्रको सौंप दें तो वह 'दत्तक' (या गोद लिया हुआ) कहा जाता है। श्रेष्ठजन मित्रके पुत्र और मित्रद्वारा दिये गये पुत्रको 'कृत्रिम पुत्र' कहते हैं॥ ३८—४१॥

वह पुत्र 'गूढ' होता है, जिसके विषयमें यह ज्ञान न हो कि गृहमें किसके द्वारा वह उत्पन्न हुआ है। बाहरसे स्वयं लाये हुए पुत्रको 'अपविद्ध' कहते हैं। कुमारी कन्याके गर्भसे उत्पन्न पुत्रका नाम 'कानीन' होता है। गर्भिणी कन्यासे विवाहके बाद उत्पन्न पुत्रको 'सहोढ' कहते हैं। मूल्य देकर खरीदा हुआ पुत्र 'क्रीत' पुत्र कहलाता है। 'पुनर्भव' पुत्र दो प्रकारका होता है। एक कन्याको एक पतिके हाथमें देकर पुनः उससे छीनकर दूसरे पतिके हाथमें देनेपर जो पुत्र उत्पन्न होता है उसे 'पौनर्भव' पुत्र कहते हैं। दुर्भिक्ष, व्यसन या अन्य किसी कारणसे जो स्वयंको (किसी दूसरेके हाथमें) समर्पित कर देता है उसे 'स्वयंदत्त' पुत्र कहते हैं॥ ४२—४५॥

सुव्रत! व्याही गयी या क्वाँरी अविवाहित शूद्राके गर्भसे ब्राह्मणका जो पुत्र होता है उसका नाम 'पारशव' पुत्र है। पुत्र! इन कारणोंसे तुम स्वयं आत्मदान नहीं कर सकते। अतः शीघ्र जाकर अपने माता-पिताको बुला लाओ। [पुलस्त्यजी कहते हैं—] मुने! इसके बाद सनत्कुमारने विभु ब्रह्माके कहनेसे अपने माता-पिताका स्मरण किया। नारदमुनि! वे दम्पति पितामहका दर्शन करनेके लिये वहाँ आ गये। धर्म और अहिंसा—दोनों ब्रह्माको प्रणाम कर बैठ गये। उनके सुखसे बैठ जानेपर सनत्कुमारने यह वचन कहा॥ ४६—४९॥

सनत्कुमार उवाच

योगं जिगमिषुस्तात ब्रह्माणं समचूचुदम्।
स चोक्तवान् मां पुत्रार्थे तस्मात् त्वं दातुमर्हसि॥ ५०
तावेवमुक्तौ पुत्रेण योगाचार्यं पितामहम्।
उक्तवन्तौ प्रभोऽयं हि आवयोस्तनयस्तव॥ ५१
अद्यप्रभृत्ययं पुत्रस्तव ब्रह्मन् भविष्यति।
इत्युक्त्वा जग्मतुस्तूर्णं येनैवाभ्यागतौ यथा॥ ५२
पितामहोऽपि तं पुत्रं साध्यं सद्विनयान्वितम्।
सनत्कुमारं प्रोवाच योगं द्वादशपत्रकम्॥ ५३

सनत्कुमारने कहा—तात! मैंने योग जाननेके लिये पितामहसे प्रार्थना की थी। उन्होंने मुझसे अपना पुत्र होनेके लिये कहा था। अतः आप मुझे प्रदान कर दें। पुत्रके इस प्रकार कहनेपर उन दोनों योगाचार्योंने पितामहसे कहा—प्रभो! हम दोनोंका यह पुत्र आपका हो। ब्रह्मन्! आजसे यह पुत्र आपका होगा। इतना कहकर वे शीघ्र ही जिस मार्गसे आये थे उसीसे फिर चले गये। पितामहने भी उस विनयी पुत्र सनत्कुमारको द्वादशपत्रयोगका उपदेश किया (जो आगे वर्णित है—)॥ ५०—५३॥

शिखासंस्थं तु ओङ्कारं मेषोऽस्य शिरसि स्थितः।
मासो वैशाखनामा च प्रथमं पत्रकं स्मृतम्॥ ५४
नकारो मुखसंस्थो हि वृषस्तत्र प्रकीर्तितः।
ज्येष्ठमासश्च तत्पत्रं द्वितीयं परिकीर्तितम्॥ ५५
मोकारो भुजयोर्युग्मं मिथुनस्तत्र संस्थितः।
मासो आषाढनामा च तृतीयं पत्रकं स्मृतम्॥ ५६
भकारं नेत्रयुगलं तत्र कर्कटकः स्थितः।
मासः श्रावण इत्युक्तश्चतुर्थं पत्रकं स्मृतम्॥ ५७

इन (भगवान् वासुदेव)-की शिखामें स्थित 'ओङ्कार', सिरपर स्थित मेष राशि और वैशाखमास—ये इनके प्रथम पत्रक हैं। मुखमें स्थित 'न' अक्षर और वहींपर विद्यमान वृषराशि तथा ज्येष्ठमास—ये उनके द्वितीय पत्रक कहे गये हैं। दोनों भुजाओंमें स्थित 'मो' अक्षर, मिथुनराशि एवं आषाढ़मास—ये उनके तृतीय पत्रक हैं। उनके नेत्रद्वयमें विद्यमान 'भ' अक्षर कर्कराशि और श्रावणमास—ये चतुर्थ पत्रक हैं॥ ५४—५७॥

गकारं हृदयं प्रोक्तं सिंहो वसति तत्र च।
मासो भाद्रस्तथा प्रोक्तः पञ्चमं पत्रकं स्मृतम्॥ ५८
वकारं कवचं विद्यात् कन्या तत्र प्रतिष्ठिता।
मासश्चाश्वयुजो नाम षष्ठं तत् पत्रकं स्मृतम्॥ ५९
तेकारमस्त्रग्रामं च तुलाराशिः कृताश्रयः।
मासश्च कार्तिको नाम सप्तमं पत्रकं स्मृतम्॥ ६०
वाकारं नाभिसंयुक्तं स्थितस्तत्र तु वृश्चिकः।
मासो मार्गशिरो नाम त्वष्टमं पत्रकं स्मृतम्॥ ६१

(उनके) हृदयके रूपमें विद्यमान 'ग'अक्षर, सिंहराशि और भाद्रपदमास—ये पञ्चम पत्रक हैं। (उनके) कवचके रूपमें विद्यमान 'व'अक्षर, कन्याराशि और आश्विनमास—ये षष्ठ पत्रक हैं। (उनके) अस्त्र-समूहके रूपमें विद्यमान 'ते'अक्षर, तुलाराशि और कार्तिकमास—ये सप्तम पत्रक हैं। मुने! (उनके) नाभिरूपसे विद्यमान 'वा'अक्षर वृश्चिकराशि और मार्गशीर्षमास—ये अष्टम पत्रक हैं॥ ५८—६१॥

सुकारं जघनं प्रोक्तं तत्रस्थश्च धनुर्धरः।
पौषेति गदितो मासो नवमं परिकीर्तितम्॥ ६२
देकारश्चोरुयुगलं मकरोऽप्यत्र संस्थितः।
माघो निगदितो मासः पत्रकं दशमं स्मृतम्॥ ६३
वाकारो जानुयुग्मं च कुम्भस्तत्रादिसंस्थितः।
पत्रकं फाल्गुनं प्रोक्तं तदेकादशमुत्तमम्॥ ६४
पादौ यकारो मीनोऽपि स चैत्रे वसते मुने।
इदं द्वादशमं प्रोक्तं पत्रं वै केशवस्य हि॥ ६५

(उनके) जघनरूपमें विद्यमान 'सु'अक्षर, धनुराशि और पौषमास—ये नवम पत्रक हैं। (उनके) ऊरु-युगलरूपमें विद्यमान 'दे'अक्षर, मकरराशि और माघमास—ये दशम पत्रक हैं। (उनके) दोनों घुटनोंके रूपमें विद्यमान 'वा'अक्षर, कुम्भराशि और फाल्गुनमास—ये एकादश पत्रक हैं। (उनके) चरणद्वयरूपमें विद्यमान 'य'अक्षर, मीनराशि और चैत्रमास—ये द्वादश पत्रक हैं। ये ही केशवके द्वादश पत्र हैं॥ ६२—६५॥

द्वादशारं तथा चक्रं षण्णाभि द्वियुतं तथा।
त्रिव्यूहमेकमूर्तिश्च तथोक्तः परमेश्वरः॥ ६६

उनका चक्र बारह अरों, बारह नाभियों और तीन व्यूहोंसे युक्त है। इस प्रकारकी उन परमेश्वरकी एक

एतत् तवोक्तं देवस्य रूपं द्वादशपत्रकम्।
यस्मिञ्ज्ञाते मुनिश्रेष्ठ न भूयो मरणं भवेत्॥ ६७

द्वितीयमुक्तं सत्त्वाढ्यं चतुर्वर्णं चतुर्मुखम्।
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं श्रीवत्सधरमव्ययम्॥ ६८

तृतीयस्तामसो नाम शेषमूर्तिः सहस्रपात्।
सहस्रवदनः श्रीमान् प्रजाप्रलयकारकः॥ ६९
चतुर्थो राजसो नाम रक्तवर्णश्चतुर्मुखः।
द्विभुजो धारयन् मालां सृष्टिकृच्चादिपूरुषः॥ ७०
अव्यक्तात् सम्भवन्त्येते त्रयो व्यक्ता महामुने।
अतो मरीचिप्रमुखास्तथान्येऽपि सहस्रशः॥ ७१
एतत् तवोक्तं मुनिवर्य रूपं
विभोः पुराणं मतिपुष्टिवर्धनम्।
चतुर्भुजं तं स मुरुर्दुरात्मा
कृतान्तवाक्यात् पुनरास्साद॥ ७२
तमागतं प्राह मुने मधुघ्नः
प्राप्तोऽसि केनासुर कारणेन।
स प्राह योद्धुं सह वै त्वयाऽद्य
तं प्राह भूयः सुरशत्रुहन्ता॥ ७३
यदीह मां योद्धुमुपागतोऽसि
तत् कम्पते ते हृदयं किमर्थम्।
ज्वरातुरस्येव मुहुर्मुहुर्वै
तन्नास्मि योत्स्ये सह कातरेण॥ ७४
इत्येवमुक्तो मधुसूदनेन
मुरुस्तदा स्वे हृदये स्वहस्तम्।
कथं क्व कस्येति मुहुस्तथोक्त्वा
निपातयामास विपन्नबुद्धिः॥ ७५
हरिश्च चक्रं मृदुलाघवेन
मुमोच तद्धृत्कमलस्य शत्रोः।
चिच्छेद देवास्तु गतव्यथाभवन्
देवं प्रशंसन्ति च पद्मनाभम्॥ ७६
एतत् तवोक्तं मुरदैत्यनाशनं
कृतं हि युक्त्या शितचक्रपाणिना।
अतः प्रसिद्धिं समुपाजगाम
मुरारिरित्येव विभुर्नृसिंहः॥ ७७

मूर्ति है। मुनिश्रेष्ठ! मैंने तुमसे भगवान्‌के इस द्वादश-पत्रक (**'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**—इस) स्वरूपका वर्णन किया, जिसके जाननेसे पुनः (जन्म-) मरण नहीं होता। उनका द्वितीय सत्त्वमय, श्रीवत्सधारी, अविनाशीस्वरूप चतुर्वर्ण, चतुर्मुख, चतुर्बाहु एवं उदार अङ्गोंसे युक्त है। हजारों पैरों एवं हजारों मुखोंसे सम्पन्न श्रीसंयुक्त तमोगुणमयी उनकी तृतीय शेषमूर्ति प्रजाओंका प्रलय करती है॥ ६६—६९॥

उनका चतुर्थ रूप राजस है। वह रक्तवर्ण, चार मुख एवं दो भुजाओंवाला एवं माला धारण किये हुए है। यही सृष्टि करनेवाला आदिपुरुष रूप है। महामुने! ये तीन व्यक्त मूर्तियाँ अव्यक्त (अदृश्य तत्त्व)-से उत्पन्न होती हैं। इनसे ही मरीचि आदि ऋषि तथा अन्यान्य हजारों पुरुष उत्पन्न हुए हैं। मुनिवर! तुम्हारे सामने मैंने विष्णुके अत्यन्त प्राचीन और मति-पुष्टिवर्द्धक रूपका वर्णन किया है। [अब आगेकी कथा सुनिये—] दुरात्मा मुरु यमराजके कहनेसे पुनः उन चतुर्भुज (विष्णु)-के पास गया। मुने! मधुसूदनने आये हुए उससे पूछा—असुर! तुम किसलिये आये हो? उसने कहा—मैं तुम्हारे साथ आज युद्ध करने आया हूँ। असुरारि (विष्णु)-ने फिर उससे कहा॥ ७०—७३॥

यदि तुम मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आये हो तो ज्वरसे पीड़ितके सदृश तुम्हारा हृदय बारंबार क्यों काँप रहा है? मैं तो कातरके साथ युद्ध नहीं करूँगा। मधुसूदनके इस प्रकार कहनेपर 'कैसे, कहाँ? किसका?' इस प्रकार बार-बार कहते हुए बुद्धिहीन मुरुने अपने हृदयपर हाथ रखा। इसे देखकर हरिने आसानीसे (अत्यन्त लाघवतासे) चक्र निकाला और उस शत्रुके हृदय-कमलपर उसे छोड़ दिया (जिससे उसका हृदय विदीर्ण हो गया)। उसके बाद सभी देवता सन्तापरहित होकर भगवान् पद्मनाभ विष्णुकी स्तुति करने लगे। मैंने (ब्रह्माने) तुमसे तीक्ष्ण चक्र धारण करनेवाले विष्णुद्वारा (कौशलसे) किये गये दैत्यके विनाशका वर्णन किया। इसीसे विभु नृसिंह 'मुरारि' नामसे प्रसिद्ध हुए॥ ७४—७७॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इकसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ अध्याय

शिवके अभिषेक और तप्त-कृच्छ्र-व्रतका उपदेश, हरि-हरके संयोगसे विष्णुके हृदयमें शिवकी संस्थिति, शुक्रको संजीवनी विद्याकी शिक्षा, मङ्कणकी कथा और सप्त सारस्वततीर्थका माहात्म्य

पुलस्त्य उवाच

ततो मुरारिभवनं समभ्येत्य सुरास्ततः।
ऊचुर्देवं नमस्कृत्य जगत्संक्षुब्धिकारणम्॥ १

तच्छ्रुत्वा भगवान् प्राह गच्छामो हरमन्दिरम्।
स वेत्स्यति महाज्ञानी जगत्क्षुब्धं चराचरम्॥ २

तथोक्ता वासुदेवेन देवाः शक्रपुरोगमाः।
जनार्दनं पुरस्कृत्य प्रजग्मुर्मन्दरं गिरिम्।
न तत्र देवं न वृषं न देवीं न च नन्दिनम्॥ ३

शून्यं गिरिमपश्यन्त अज्ञानतिमिरावृताः।
तान् मूढदृष्टीन् संप्रेक्ष्य देवान् विष्णुर्महाद्युतिः॥ ४

प्रोवाच किं न पश्यध्वं महेशं पुरतः स्थितम्।
तमूचुर्नैव देवेशं पश्यामो गिरिजापतिम्॥ ५
न विद्मः कारणं तच्च येन दृष्टिर्हता हि नः।
तानुवाच जगन्मूर्तिर्यूयं देवस्य सागसः॥ ६

पापिष्ठा गर्भहन्तारो मृडान्याः स्वार्थतत्पराः।
तेन ज्ञानविवेको वै हृतो देवेन शूलिना॥ ७

येनाग्रतः स्थितमपि पश्यन्तोऽपि न पश्यथ।
तस्मात् कायविशुद्ध्यर्थं देवदृष्ट्यर्थमादरात्॥ ८

तप्तकृच्छ्रेण संशुद्धाः कुरुध्वं स्नानमीश्वरे।
क्षीरस्नाने प्रयुञ्जीत सार्द्धं कुम्भशतं सुराः॥ ९

दधिस्नाने चतुःषष्टिर्द्वात्रिंशद्धविषोऽर्हणे।
पञ्चगव्यस्य शुद्धस्य कुम्भाः षोडश कीर्तिताः॥ १०

पुलस्त्यजी (पुनः) **बोले**—उन देवोंने विष्णुभवनमें पहुँचकर उन्हें नमस्कार करनेके बाद जगत्के अशान्त होनेका कारण पूछा। भगवान् विष्णुने उनके प्रश्नको सुनकर कहा—हम सभी लोग शिवजीके पास चलें। वे महान् ज्ञानी हैं। इस चराचर जगत्के व्याकुल होनेका कारण वे जानते होंगे। वासुदेवके ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि देवगण जनार्दन भगवान्को आगे कर मन्दरपर्वतपर गये। (किंतु) वहाँ उन्होंने न तो महादेवको देखा, न वृषको, न देवी पार्वती और न नन्दीको ही। अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए उन लोगोंने पर्वतको देवशून्य देखा। (फिर तो) महातेजस्वी विष्णुने दर्शन प्राप्त न होनेके कारण चकपकाये हुए देवोंको देखकर कहा—क्या आपलोग सामने स्थित महादेवको नहीं देख रहे हैं? उन्होंने उत्तर दिया—हाँ, हमलोग गिरिजापति देवेशको नहीं देख रहे हैं॥ १—५॥

हमलोग उस कारणको नहीं जानते, जिससे हमारी देखनेकी शक्ति नष्ट हो गयी है। जगन्मूर्ति (विष्णु)-ने उनसे कहा—आपलोगोंने देवताओंके साथ अपराध किया है। आपलोग स्वार्थी हैं। आपलोग मृडानीका गर्भ नष्ट करनेके कारण महापापसे ग्रस्त हो गये हैं, इसलिये शूलपाणि महादेवने आपलोगोंके सम्यक् अवबोधको और विचारशक्तिको अपहृत कर लिया है। इस कारण आप सब सामने स्थित (शङ्कर)-को देखकर भी नहीं देख रहे हैं। अतः सब लोग विश्वासके साथ शरीरकी पवित्रता और देवका दर्शन प्राप्त करनेके लिये तप्त-कृच्छ्र-व्रतद्वारा पावन होकर स्नान करें। और, हे देवताओ! महादेवको दूधसे स्नान करानेके लिये डेढ़ सौ घड़ोंका प्रयोग करें॥ ६—९॥

उनके अभिषेकके लिये दहीके चौंसठ, घीके बत्तीस पञ्चगव्यके शुद्ध सोलह घड़ोंका विधान कहा गया है।

मधुनोऽष्टौ जलस्योक्ताः सर्वे ते द्विगुणाः सुराः।
ततो रोचनया देवमष्टोत्तरशतेन हि॥ ११

अनुलिम्पेत् कुङ्कुमेन चन्दनेन च भक्तितः।
बिल्वपत्रैः सकमलैः धत्तूरसुरचन्दनैः॥ १२

मन्दारैः पारिजातैश्च अतिमुक्तैस्तथाऽर्चयेत्।
अगुरुं सह कालेयं चन्दनेनापि धूपयेत्॥ १३

जप्तव्यं शतरुद्रीयं ऋग्वेदोक्तैः पदक्रमैः।
एवं कृते तु देवेशं पश्यध्वं नेतरेण च॥ १४

इत्युक्ता वासुदेवेन देवाः केशवमब्रुवन्।
विधानं तप्तकृच्छ्रस्य कथ्यतां मधुसूदन।
यस्मिश्चीर्णे कायशुद्धिर्भवते सार्वकालिकी॥ १५

वासुदेव उवाच

त्र्यहमुष्णं पिबेदापः त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत्।
त्र्यहमुष्णं पिबेत्सर्पिर्वायुभक्षो दिनत्रयम्॥ १६
पला द्वादश तोयस्य पलाष्टौ पयसः सुराः।
षट्पलं सर्पिषः प्रोक्तं दिवसे दिवसे पिबेत्॥ १७

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ते वचने सुराः कायविशुद्धये।
तप्तकृच्छ्ररहस्यं वै चक्रुः शक्रपुरोगमाः॥ १८
ततो व्रते सुराश्चीर्णे विमुक्ताः पापतोऽभवन्।
विमुक्तपापा देवेशं वासुदेवमथाब्रुवन्॥ १९
क्वासौ वद जगन्नाथ शंभुस्तिष्ठति केशव।
यं क्षीराद्यभिषेकेण स्नापयामो विधानतः॥ २०
अथोवाच सुरान्विष्णुरेष तिष्ठति शङ्करः।
मद्देहे किं न पश्यध्वं योगश्चायं प्रतिष्ठितः॥ २१
तमूचूर्नैव पश्यामस्त्वत्तो वै त्रिपुरान्तकम्।
सत्यं वद सुरेशान महेशानः क्व तिष्ठति॥ २२
ततोऽव्ययात्मा स हरिः स्वहृत्पङ्कजशायिनम्।
दर्शयामास देवानां मुरारिर्लिङ्गमैश्वरम्॥ २३
ततः सुराः क्रमेणैव क्षीरादिभिरनन्तरम्।
स्नापयाञ्चक्रिरे लिङ्गं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्॥ २४

देवताओ! मधुका स्नान आठ घड़ोंसे तथा जलका स्नान इन सभीके दुगुने (२४०) घड़ोंसे कहा गया है। उसके बाद भक्तिपूर्वक देवको एक सौ आठ बार गोरोचन, कुङ्कुम और चन्दनका लेपन करनेका विधान है। फिर उन्हें भक्तिसे मलयचन्दन लगाना चाहिये। पूरे खिले हुए कमलोंके सहित बिल्वपत्र, धतूर एवं हरिचन्दनसे उनकी अर्चा होनी चाहिये। पूर्ण खिले हुए मन्दार और हरशृङ्गार चढ़ाकर पूजा करनी चाहिये। फिर अगुरु, केशर या काले चन्दन एवं चन्दनसे धूप दे। उसके बाद ऋग्वेदमें कथित 'पद' और 'क्रम' शैलियोंसे शतरुद्रीका जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे आपलोग देवेश्वरका दर्शन कर सकेंगे; अन्य किसी उपायसे नहीं। वासुदेवके ऐसा कहनेपर देवताओंने केशवसे कहा—मधुसूदन! आप हमें तप्त-कृच्छ्र (-व्रत)-का विधान (भी) बतलाइये,जिसके करनेसे सदाके लिये कायशुद्धि हो जाती है॥ १०—१५॥

वासुदेवने कहा—देवताओ! (तप्त-कृच्छ्र-व्रतका विधान इस प्रकार है—) तीन दिन बारह पल गरम जल पिये, तीन दिन आठ पल गरम दूध पिये, तीन दिन छः पल गरम घी पिये एवं तीन दिन केवल वायु पीकर रहे॥ १६-१७॥

पुलस्त्यजी बोले—इस प्रकार कहनेपर इन्द्र आदि देवताओंने शरीरकी शुद्धिके लिये तप्त-कृच्छ्र-व्रतका एकान्त अनुष्ठान किया। उसके बाद उस व्रतका पालन हो जानेपर देवता पापसे छूट गये। पापसे छूटकर देवताओंने देवोंके स्वामी वासुदेवसे कहा—जगन्नाथ! केशव! आप कृपया यह बतलाइये कि शम्भु किस स्थानपर अवस्थित हैं? जिन्हें हमलोग दूध आदिके अभिषेकसे विधिपूर्वक स्नान करायें। उसके बाद विष्णुने देवताओंसे कहा—देवताओ! मेरे शरीरमें ये शङ्कर संयुक्त होकर स्थित हैं। क्या आपलोग नहीं देख रहे हैं?॥ १८—२१॥

उन लोगोंने विष्णुसे कहा कि हमलोग तो आपमें त्रिपुरनाशक शङ्करको नहीं देख रहे हैं। सुरेशान! आप सच बतलाइये कि महेश किस स्थानपर स्थित हैं। उसके बाद अव्ययात्मा मुरारि विष्णुने देवताओंको अपने हृदयकमलमें विश्राम करनेवाले शङ्करके लिङ्गका दर्शन करा दिया। उसके बाद देवताओंने क्रमशः दूध आदिसे उस नित्य, स्थिर एवं अक्षय लिङ्गको स्नान कराया।

गोरोचनया त्वालिप्य चन्दनेन सुगन्धिना।
बिल्वपत्राम्बुजैर्देवं पूजयामासुरञ्जसा॥ २५

प्रधूप्यागुरुणा भक्त्या निवेद्य परमौषधीः।
जप्त्वाऽष्टशतनामानं प्रणामं चक्रिरे ततः॥ २६
इत्येवं चिन्तयन्तश्च देवावेतौ हरीश्वरौ।
कथं योगत्वमापन्नौ सत्त्वान्धतमसोद्भवौ॥ २७
सुराणां चिन्तितं ज्ञात्वा विश्वमूर्तिरभूद्विभुः।
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वायुधधरोऽव्ययः॥ २८
सार्द्धं त्रिनेत्रं कमलाहिकुण्डलं
जटागुडाकेशखगर्षभध्वजम्।
समाधवं हारभुजङ्गवक्षसं
पीताजिनाच्छन्नकटिप्रदेशम्॥ २९
चक्रासिहस्तं हलशार्ङ्गपाणिं
पिनाकशूलाजगवान्वितं च।
कपर्दखट्वाङ्गकपालघण्टा-
सशङ्खटङ्काररवं महर्षे॥ ३०
दृष्ट्वैव देवा हरिशङ्करं तं
नमोऽस्तु ते सर्वगताव्ययेति।
प्रोक्त्वा प्रणामं कमलासनाद्या-
श्चक्रुर्मतिं चैकतरां नियुज्य॥ ३१
तानेकचित्तान् विज्ञाय देवान् देवपतिर्हरिः।
प्रगृह्याभ्यद्रवत्तूर्णं कुरुक्षेत्रं स्वमाश्रमम्॥ ३२

ततोऽपश्यन्त देवेशं स्थाणुभूतं जले शुचिम्।
दृष्ट्वा नमः स्थाणवेति प्रोक्त्वा सर्वे ह्युपाविशन्॥ ३३

ततोऽब्रवीत् सुरपतिरेह्येहि दीयतां वरः।
क्षुब्धं जगज्जगन्नाथ उन्मज्जस्व प्रियातिथे॥ ३४

ततस्तां मधुरां वाणीं शुश्राव वृषभध्वजः।
श्रुत्वोत्तस्थौ च वेगेन सर्वव्यापी निरञ्जनः॥ ३५

नमोऽस्तु सर्वदेवेभ्यः प्रोवाच प्रहसन् हरः।
स चागतः सुरैः सेन्द्रैः प्रणतौ विनयान्वितैः॥ ३६

फिर उन लोगोंने गोरोचन और सुगन्धित चन्दनका लेपन कर बिल्वपत्रों और कमलोंसे भक्तिपूर्वक (यथाविधि उन) देवकी पूजा की॥ २२—२५॥

उसके बाद देवोंने प्रेमपूर्वक धूप-दानकर परमौषधियों (भङ्ग आदि)-को समर्पित किया। फिर (शङ्करके) एक सौ आठ नामोंका जप करनेके बाद उन्हें प्रणाम किया। सभी देवता यह विचारने लगे कि सत्त्वगुणकी प्रधानतासे विष्णु एवं तमोगुणकी अधिकतासे आविर्भूत शिवमें एकता किस प्रकार हुई? देवताओंके विचारको जानकर अविनाशी व्यापक भगवान् सभी (शुभ) लक्षणोंसे युक्त एवं सब प्रकारके आयुधोंको धारण करनेवाले विश्वमूर्ति हो गये। महर्षे! फिर तो देवताओंने एक ही शरीरमें कानमें सर्पके कुण्डल पहने, सिरपर आपसमें चिपके लंबे बालके जटाजूट बाँधे, गलेमें सर्पके हार लटकाये, हाथमें पिनाक, शूल, आजगव धनुष, खट्वाङ्ग धारण किये तथा घण्टासे युक्त बाघाम्बर धारण करनेवाले त्रिनेत्रधारी वृषध्वज महादेव और साथ ही कमलके कुण्डलधारी, गरुड़ध्वज, हार और पीताम्बर पहने, हाथोंमें चक्र, असि, हल, शार्ङ्गधनुष, टंकार-सी ध्वनि करनेवाले शङ्खको लिये गुडाकेश विष्णुको देखा। उसके बाद 'सर्वव्यापी अविनाशी प्रभुको नमस्कार है'—इस प्रकार कहकर ब्रह्मा आदि देवताओंने उन हरि एवं शङ्करको एक रूप (अभिन्न) समझा॥ २६—३१॥

देवोंके स्वामी भगवान् विष्णु उन देवताओंको समान हृदयवाला समझ उन्हें साथ लेकर शीघ्र अपने आश्रम कुरुक्षेत्रमें चले गये। उसके बाद उन लोगोंने जलके भीतर पवित्र स्थाणुभूत उन देवेश (महादेव)-को देखा। उन्हें देखकर '**स्थाणवे नमः**' (स्थाणुको नमस्कार है)—यह कहकर वे सभी (वहीं) बैठ गये। उसके बाद इन्द्रने कहा—जगन्नाथ! अतिथिप्रिय! संसार अशान्त हो उठा है। आप (कृपया) बाहर निकलकर यहाँ आइये, यहाँ आइये (और आकर) हमें वर दीजिये। उसके बाद वृषकेतु महादेवने वह मधुर वाणी सुनी। फिर उसे सुनकर वे सर्वव्यापी परमविशुद्ध शङ्कर वेगसे उठ खड़े हुए। उन्होंने हँसते हुए 'सभी देवताओंको नमस्कार है' ऐसा कहा। इन्द्र आदि देवताओंने जलसे ऊपर आये हुए उन शङ्करको और अधिक विनयभावसे प्रणाम किया॥ ३२—३६॥

तमूचुर्देवताः सर्वास्त्यज्यतां शङ्कर द्रुतम्।
महाव्रतं त्रयो लोकाः क्षुब्धास्त्वत्तेजसावृताः॥ ३७

अथोवाच महादेवो मया त्यक्तो महाव्रतः।
ततः सुरा दिवं जग्मुर्हृष्टाः प्रयतमानसाः॥ ३८

ततोऽपि कम्पते पृथ्वी साब्धिद्वीपाचला मुने।
ततोऽभिचिन्तयद्रुद्रः किमर्थं क्षुभिता मही॥ ३९

ततः पर्यचरच्छूली कुरुक्षेत्रं समन्ततः।
ददर्शौघवतीतीरे उशनसं तपोनिधिम्॥ ४०

ततोऽब्रवीत्सुरपतिः किमर्थं तप्यते तपः।
जगत्क्षोभकरं विप्र तच्छीघ्रं कथ्यतां मम॥ ४१

उशना उवाच

तवाराधनकामार्थं तप्यते हि महत्तपः।
संजीवनीं शुभां विद्यां ज्ञातुमिच्छे त्रिलोचन॥ ४२

हर उवाच

तपसा परितुष्टोऽस्मि सुतप्तेन तपोधन।
तस्मात् संजीवनीं विद्यां भवाञ्ज्ञास्यति तत्त्वतः॥ ४३
वरं लब्ध्वा ततः शुक्रस्तपसः संन्यवर्त्तत।
तथापि चलते पृथ्वी साब्धिभूभृन्नगावृता॥ ४४
ततोऽगमन्महादेवः सप्तसारस्वतं शुचिः।
ददर्श नृत्यमानं च ऋषिं मङ्कणसंज्ञितम्॥ ४५
भावेन पोप्लूयति बालवत् स
भुजौ प्रसार्यैव ननर्त्त वेगात्।
तस्यैव वेगेन समाहता तु
चचाल भूर्भूमिधरैः सहैव॥ ४६
तं शङ्करोऽभ्येत्य करे निगृह्य
प्रोवाच वाक्यं प्रहसन् महर्षे।
किं भावितो नृत्यसि केन हेतुना
वदस्व मामेत्य किमत्र तुष्टिः॥ ४७
स ब्राह्मणः प्राह ममाद्य तुष्टि-
र्येनेह जाता शृणु तद् द्विजेन्द्र।
बहून् गणान् वै मम तप्यतस्तपः
संवत्सरान् कायविशोषणार्थम्॥ ४८
ततोऽनुपश्यामि करात् क्षतोत्थं
निर्गच्छते शाकरसं ममेह।

सभी देवताओंने उनसे कहा कि शंकर! कृपया महाव्रतको शीघ्र छोड़ दीजिये। आपके तेजसे व्याप्त होकर तीनों लोक क्षुब्ध हो गये हैं। उसके बाद महादेवने कहा कि (लीजिये), मैंने महाव्रतका त्याग कर दिया। तत्पश्चात् देवता प्रसन्न हो गये और शान्तचित्त होकर स्वर्ग चले गये। मुने! तो भी समुद्र, द्वीप और पर्वतोंसहित पृथ्वी काँप रही थी। तब (स्वयं) रुद्रने सोचा कि (अब) पृथ्वी क्यों क्षुब्ध हो रही है? फिर त्रिशूल धारण करनेवाले (शङ्कर) कुरुक्षेत्रके चारों ओर विचरण करने लगे। उन्होंने ओघवतीके किनारे (तपस्या करते) तपोनिधि उशनाको देखा। उसके बाद देवाधिदेव शंकरने उनसे कहा—विप्र! आप जगत्को क्षुब्ध करनेवाला तप क्यों कर रहे हैं? उसे मुझे शीघ्र बतलाइये॥ ३७—४१॥

उशनाने कहा—आपकी आराधना (प्रसन्नता-प्राप्ति)-की इच्छासे मैं महान् तप कर रहा हूँ। त्रिनयन! मैं मङ्गलमयी संजीवनी विद्याको जानना चाहता हूँ॥ ४२॥

महादेवने कहा—तपोधन! मैं भलीभाँति की गयी आपकी तपस्यासे प्रसन्न हूँ। इसलिये आप संजीवनी विद्याको यथार्थरूपमें जान जायँगे। शुक्र (शुक्राचार्य) वर पाकर तपस्यासे विरत हो गये। फिर भी सागर, पर्वत, वृक्ष आदिके साथ सारी पृथ्वी काँप रही थी। उसके बाद परमपावन महादेव सप्तसारस्वतमें गये। वहाँ उन्होंने मङ्कण नामके महर्षिको नाचते हुए देखा। वे बालकके समान भाव-विभोर होकर दोनों हाथ फैलाकर वेगसे (उछल-उछलकर) नाच रहे थे। उसके (उछलनेके) वेगसे आहत हो पृथ्वी पर्वतोंसहित बड़े जोरसे काँप रही थी—हिल रही थी॥ ४३—४६॥

शंकरने उनके पास जाकर एवं उनका हाथ पकड़कर हँसते हुए कहा—महर्षे! किस भावनासे प्रभावित होकर एवं किस कारणसे आप नाच रहे हैं? आप (मेरे पास) आकर मुझसे यह बतलाइये कि आपको इस विषयमें क्यों संतुष्टि है? उस ब्राह्मणने कहा—द्विजेन्द्र! आज मुझे जिस कारणसे प्रसन्नता हो रही है, उसे सुनिये। शरीरको दुर्बल करनेके लिये तपस्या करते हुए मेरे अनेक वर्ष बीत गये हैं। अब मैं देखता हूँ कि मेरे हाथके घावसे शाकरस निकल रहा है।

तेनाद्य तुष्टोऽस्मि भृशं द्विजेन्द्र
येनास्मि नृत्यामि सुभावितात्मा॥ ४९
तं प्राह शम्भुर्द्विज पश्य मह्यं
भस्म प्रवृत्तोऽङ्गुलितोऽतिशुक्लम्।
संताडनादेव न च प्रहर्षो
ममास्ति नूनं हि भवान् प्रमत्तः॥ ५०

द्विजेन्द्र! इसी कारण मुझे बहुत आनन्द मिल रहा है और मैं भावविभोर होकर नृत्य कर रहा हूँ। शम्भुने उनसे कहा—द्विज! मुझे देखो। चोट करनेसे ही मेरी अङ्गुलिसे अत्यन्त स्वच्छ सफेद भस्म निकल रहा है, परंतु इससे मुझे तो उत्कृष्ट प्रसन्नता नहीं होती। आप निश्चय ही उन्मत्त हो गये हैं॥ ४७—५०॥

श्रुत्वाऽथ वाक्यं वृषभध्वजस्य
मत्वा मुनिर्मङ्कणको महर्षे।
नृत्यं परित्यज्य सुविस्मितोऽथ
ववन्द पादौ विनयावनम्रः॥ ५१
तमाह शम्भुर्द्विज गच्छ लोकं
तं ब्रह्मणो दुर्गममव्ययस्य।
इदं च तीर्थं प्रवरं पृथिव्यां
पृथूदकस्यास्तु समं फलेन॥ ५२
सांनिध्यमत्रैव सुरासुराणां
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणाम्।
सदाऽस्तु धर्मस्य निधानमग्र्यं
सारस्वतं पापमलापहारि॥ ५३
सुप्रभा काञ्चनाक्षी च सुवेणुर्विमलोदका।
मनोहरा चौघवती विशाला च सरस्वती॥ ५४
एताः सप्त सरस्वत्यो निवसिष्यन्ति नित्यशः।
सोमपानफलं सर्वाः प्रयच्छन्ति सुपुण्यदाः॥ ५५

महर्षे! शंकरकी बात सुनकर और उसे मानकर मङ्कणक मुनिने नृत्य करना छोड़ दिया और आश्चर्यसहित तथा विनम्र भावसे झुककर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। शम्भुने उनसे कहा—द्विज! तुम अविनाशी ब्रह्मके दुर्गम लोकको जाओ। और, यह श्रेष्ठ तीर्थ पृथूदकतीर्थके सदृश पृथ्वीमें फल देनेवाला प्रसिद्ध होगा। सुर, असुर, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरलोग सदा यहाँ उपस्थित रहेंगे। यह श्रेष्ठ 'सारस्वत' तीर्थ सदा धर्मका निधान एवं पाप-मलका अपहरण करनेवाला होगा। यहाँ सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, सुवेणु, विमलोदका, मनोहरा, ओघवती, विशाला, सरस्वती नामकी सात नदियाँ नित्य निवास करेंगी। ये सभी पुण्य प्रदान करनेवाली नदियाँ यज्ञीय सोमरसके पीनेसे होनेवाले फलको देनेवाली हैं॥ ५१—५५॥

भवानपि कुरुक्षेत्रे मूर्तिं स्थाप्य गरीयसीम्।
गमिष्यति महापुण्यं ब्रह्मलोकं सुदुर्गमम्॥ ५६
इत्येवमुक्तो देवेन शङ्करेण तपोधनः।
मूर्तिं स्थाप्य कुरुक्षेत्रे ब्रह्मलोकमगाद् वशी॥ ५७
गते मङ्कणके पृथ्वी निश्चला समजायत।
अथागान्मन्दरं शम्भुर्निजमावसथं शुचिः॥ ५८
एतत् तवोक्तं द्विज शङ्करस्तु
गतस्तदासीत् तपसेऽथ शैले।
शून्येऽभ्यगाद् दुष्टमतिर्हि देव्या
संयोधितो येन हि कारणेन॥ ५९

तुम भी कुरुक्षेत्रमें अत्यन्त उत्तम मूर्ति स्थापित करके परम पवित्र सुदुर्गम ब्रह्मलोकमें जाओगे। महादेवके इस प्रकार कहनेपर जितेन्द्रिय तपस्वी मङ्कणक ऋषि कुरुक्षेत्रमें मूर्ति स्थापित करके ब्रह्मलोक चले गये। मङ्कणक ऋषिके चले जानेपर पृथ्वी शान्त हो गयी। महादेव भी अपने पवित्र निवास-स्थान मन्दर-पर्वतपर चले गये। (पुलस्त्यजीने कहा—) द्विज! मैंने तुमसे यह बतलाया कि उस समय शङ्करके तपस्या-हेतु जानेके कारण शून्य (उनकी उपस्थितिसे रहित) पर्वतपर जाकर दुष्टमति (अन्धक)-ने जिस कारणसे देवीसे युद्ध किया॥ ५६—५९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बासठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ अध्याय

अन्धकासुरका प्रसङ्ग, दण्डकाख्यानका कथन, दण्डकका अरजासे चित्राङ्गदाका वृत्तान्त-कथन

नारद उवाच

गतोऽन्धकस्तु पाताले किमचेष्टत दानवः।
शङ्करो मन्दरस्थोऽपि यच्चकार तदुच्यताम्॥ १

पुलस्त्य उवाच

पातालस्थोऽन्धको ब्रह्मन् बाध्यते मदनाग्निना।
संतप्तविग्रहः सर्वान् दानवानिदमब्रवीत्॥ २
स मे सुहृत्स मे बन्धुः स भ्राता स पिता मम।
यस्तामद्रिसुतां शीघ्रं ममान्तिकमुपानयेत्॥ ३
एवं ब्रुवति दैत्येन्द्रं अन्धके मदनान्धके।
मेघगम्भीरनिर्घोषं प्रह्लादो वाक्यमब्रवीत्॥ ४
येयं गिरिसुता वीर सा माता धर्मतस्तव।
पिता त्रिनयनो देवः श्रूयतामत्र कारणम्॥ ५
तव पित्रा ह्यपुत्रेण धर्मनित्येन दानव।
आराधितो महादेवः पुत्रार्थाय पुरा किल॥ ६
तस्मै त्रिलोचनेनासीद् दत्तोऽन्धोऽप्येव दानव।
पुत्रकः पुत्रकामस्य प्रोक्त्वेत्थं वचनं विभो॥ ७
नेत्रत्रयं हिरण्याक्ष नर्मार्थमुमया मम।
पिहितं योगसंस्थस्य ततोऽन्धमभवत्तमः॥ ८
तस्माच्च तमसो जातो भूतो नीलघनस्वनः।
तदिदं गृह्यतां दैत्य तवौपयिकमात्मजम्॥ ९
यदा तु लोकविद्विष्टं दुष्टं कर्म करिष्यति।
त्रैलोक्यजननीं चापि अभिवाञ्छिष्यतेऽधमः॥ १०
घातयिष्यति वा विप्रं यदा प्रक्षिप्य चासुरान्।
तदास्य स्वयमेवाहं करिष्ये कायशोधनम्॥ ११
एवमुक्त्वा गतः शम्भुः स्वस्थानं मन्दराचलम्।
त्वपिताऽपि समभ्यागात् त्वामादाय रसातलम्॥ १२
एतेन कारणेनाम्बा शैलेयी भविता तव।
सर्वस्यापीह जगतो गुरुः शम्भुः पिता ध्रुवम्॥ १३
भवानपि तपोयुक्तः शास्त्रवेत्ता गुणाप्लुतः।
नेदृशे पापसंकल्पे मतिं कुर्याद् भवद्विधः॥ १४

नारदजीने पूछा—मुने! अन्धक दानवने पातालमें जाकर क्या किया? शङ्करने मन्दरपर्वतपर रहकर जो कुछ किया उसे भी बतलाइये॥ १॥

पुलस्त्यजी बोले—ब्रह्मन्! पातालमें रहता हुआ अन्धक कामाग्निसे दुःखी हो गया; उसका शरीर सन्तप्त होने लगा। उसने सभी दानवोंसे यह कहा—(दानवो!) वही मेरा मित्र, वही मेरा बन्धु, वही भाई और वही पिता है, जो उस पर्वतपुत्रीको मेरे पास शीघ्र ला दे। कामसे अधीर हुए दैत्येन्द्र अन्धकके ऐसा कहनेपर प्रह्लादने बादलके समान गम्भीर शब्दमें कहा—वीर! ये जो गिरिजा हैं, वे धर्मतः तुम्हारी माता हैं और त्रिलोचन शङ्कर तुम्हारे पिता हैं; इसका जो कारण है, उसे तुम सुनो— ॥ २—५॥

दानव! पहले समयमें धर्ममें सदा तत्पर रहनेवाले पुत्रहीन तुम्हारे पिताने पुत्रकी कामनासे महादेवकी आराधना की थी। दानव! त्रिलोचन शङ्करने पुत्रकी कामनावाले उसको अन्ध पुत्र दिया और यह कहा कि शक्तिशाली हिरण्याक्ष! एक समय मैं योगमें स्थित था और उमाने परिहासार्थ मेरे तीनों नेत्रोंको बन्द कर दिया था। उसके बाद अन्धकारस्वरूप तम उत्पन्न हुआ। उस तमसे नीले मेघके समान शब्द करनेवाला एक भूत (प्राणी) उत्पन्न हुआ। दैत्य! तुम इसे ग्रहण करो। यह तुम्हारे योग्य पुत्र है॥ ६—९॥

(किंतु) यह अधम जब संसारके विरोधमें बुरा कर्म करेगा तथा त्रैलोक्य-जननीकी चाह करेगा अथवा असुरोंको भेजकर जब यह विप्रोंका वध करायेगा, तब मैं स्वयं इसके शरीरकी शुद्धि करूँगा। ऐसा कहकर शम्भु अपने स्थान मन्दराचलपर चले गये और तुम्हारे पिता तुमको लेकर रसातलमें चले आये। इसी कारण शैलपुत्री तुम्हारी माता एवं समस्त जगत्के गुरु शम्भु निश्चय ही तुम्हारे पिता हैं॥ १०—१३॥

आप भी तपस्या करनेवाले एवं शास्त्रके ज्ञाता तथा अनेक अलौकिक गुणोंसे भूषित हो। अतः आप-जैसे पुरुषको इस प्रकारके पाप करनेमें मानसिक निश्चय भी

त्रैलोक्यप्रभुरव्यक्तो भवः सर्वैर्नमस्कृतः।
अजेयस्तस्य भार्येयं न त्वमर्होऽमरार्दन॥ १५

न चापि शक्तः प्राप्तुं तां भवाञ्शैलनृपात्मजाम्।
अजित्वा सगणं रुद्रं स च कामोऽद्य दुर्लभः॥ १६

यस्तरेत् सागरं दोर्भ्यां पातयेद् भुवि भास्करम्।
मेरुमुत्पाटयेद् वापि स जयेच्छूलपाणिनम्॥ १७
उताहोस्विदिमाः शक्याः क्रियाः कर्तुं नरैर्बलात्।
न च शक्यो हरो जेतुं सत्यं सत्यं मयोदितम्॥ १८

किं त्वया न श्रुतं दैत्य यथा दण्डो महीपतिः।
परस्त्रीकामवान् मूढः सराष्ट्रो नाशमाप्तवान्॥ १९

आसीद् दण्डो नाम नृपः प्रभूतबलवाहनः।
स च वव्रे महातेजाः पौरोहित्याय भार्गवम्॥ २०

ईजे च विविधैर्यज्ञैर्नृपतिः शुक्रपालितः।
शुक्रस्यासीच्च दुहिता अरजा नाम नामतः॥ २१
शुक्रः कदाचिदगमद् वृषपर्वाणमासुरम्।
तेनार्चितश्चिरं तत्र तस्थौ भार्गवसत्तमः॥ २२

अरजा स्वगृहे वह्निं शुश्रूषन्ती महासुर।
अतिष्ठत सुचार्वङ्गी ततोऽभ्यगान्नराधिपः॥ २३

स पप्रच्छ क्व शुक्रेति तमूचुः परिचारिकाः।
गतः स भगवान् शुक्रो याजनाय दनोः सुतम्॥ २४

पप्रच्छ नृपतिः का तु तिष्ठते भार्गवाश्रमे।
तास्तमूचुर्गुरोः पुत्री संतिष्ठत्यरजा नृप॥ २५
तामाश्रमे शुक्रसुतां द्रष्टुमिक्ष्वाकुनन्दनः।
प्रविवेश महाबाहुर्ददर्शारजसं ततः॥ २६
तां दृष्ट्वा कामसंतप्तस्तत्क्षणादेव पार्थिवः।
संजातोऽन्धक दण्डस्तु कृतान्तबलचोदितः॥ २७
ततो विसर्जयामास भृत्यान् भ्रातॄन् सुहृत्तमान्।
शुक्रशिष्यानपि बली एकाकी नृप आव्रजत्॥ २८
तमागतं शुक्रसुता प्रत्युत्थाय यशस्विनी।
पूजयामास संहृष्टा भ्रातृभावेन दानव॥ २९

नहीं करना चाहिये। हे देवताओंको कष्ट देनेवाले (अमरार्दन!), तीनों लोकोंपर शासन करनेवाले और सबसे वन्दित अव्यक्त भगवान् शङ्कर (सर्वथा) अजेय हैं। उनकी ये भार्या हैं। तुम न तो इनके योग्य हो और न समर्थ ही। गणोंके सहित शङ्करको बिना जीते तुम उस पर्वतराजकी कन्याको प्राप्त करना चाहते हो, सो तो यह मनोरथ पूरा होना कठिन है। शूलपाणि शङ्करको वही जीत सकता है, जो अपनी भुजाओंसे समुद्रको पार कर जाय अथवा सूर्यको पृथ्वीपर गिरा दे या मेरुपर्वतको उखाड़ दे॥ १४—१७॥

उपर्युक्त सभी कार्य भले ही मनुष्य बलसे कर ले, किंतु शङ्कर नहीं जीते जा सकते; यह मैंने सच-सच कह दिया है। दैत्य! क्या तुमने यह नहीं सुना है कि परस्त्रीकी अभिलाषा करनेवाला दण्ड नामका मूर्ख राजा अपने राष्ट्रके साथ विनष्ट हो गया। (सुनो, प्राचीन कालमें) प्रचुर सेना एवं वाहनोंसे भरा-पूरा दण्ड नामका एक राजा था। उस महातेजस्वीने पुरोहितके स्थानपर शुक्राचार्यको वृत किया था। शुक्राचार्यके निर्देशनमें उस राजाने भाँति-भाँतिके यज्ञोंका अनुष्ठान किया। शुक्राचार्यकी अरजा नामकी एक कन्या थी॥ १८—२१॥

किसी समय शुक्राचार्य वृषपर्वा नामके असुरके पास गये हुए थे। भार्गव वंशमें श्रेष्ठ वे (शुक्र) उससे पूजित—सत्कृत होकर बहुत समयतक वहीं रुके रह गये। महासुर! सुन्दरी अरजा अपने घरमें अग्निकी सेवा—हवनादि कार्य करती हुई रह गयी थी। इतनेमें एक दिन राजा दण्ड वहाँ पहुँच गया। उसने पूछा—शुक्राचार्य कहाँ हैं? घरकी सेविकाओंने उससे कहा—वे भगवान् शुक्र दनुनन्दन (वृषपर्वा)-के यहाँ यज्ञ कराने गये हैं। राजाने पूछा—शुक्राचार्यके आश्रममें (यह) कौन स्त्री रह रही है। उन लोगोंने उत्तर दिया—राजन्! (यह) गुरुजीकी कन्या अरजा है॥ २२—२५॥

महाबाहु इक्ष्वाकुनन्दन (दण्ड) शुक्राचार्यकी उस कन्याको देखनेके लिये आश्रममें प्रविष्ट हुआ और उसने अरजाको देखा। अन्धक! कालबलसे प्रेरित होकर राजा उसे देखकर तत्काल ही कामसे पीड़ित हो गया। उसके बाद बलवान् राजाने भृत्यों, भाइयों, घनिष्ठ मित्रों एवं शुक्राचार्यके शिष्योंको भी (वहाँसे) हटा दिया और (वहाँ) अकेला आ गया। शुक्राचार्यकी यशस्विनी कन्याने आये हुए उस राजाका भ्रातृभावसे प्रसन्नतापूर्वक स्वागत-सत्कार किया॥ २६—२९॥

ततस्तामाह नृपतिर्बाले कामाग्नितापितम्।
मां समाह्लादयस्वाद्य स्वपरिष्वङ्गवारिणा॥ ३०

साऽपि प्राह नृपश्रेष्ठ मा विनीनश आतुरः।
पिता मम महाक्रोधात् त्रिदशानपि निर्दहेत्॥ ३१

मूढबुद्धे भवान् भ्राता ममासि त्वनयाप्लुतः।
भगिनी धर्मतस्तेऽहं भवाञ्शिष्यः पितुर्मम॥ ३२

सोऽब्रवीद् भीरु मां शुक्रः कालेन परिधक्ष्यति।
कामाग्निर्निर्दहति मामद्यैव तनुमध्यमे॥ ३३
सा प्राह दण्डं नृपतिं मुहूर्तं परिपालय।
तमेव याचस्व गुरुं स ते दास्यत्यसंशयम्॥ ३४

दण्डोऽब्रवीत् सुतन्वङ्गि कालक्षेपो न मे क्षमः।
च्युतावसरकर्तृत्वे विघ्नो जायेत सुन्दरि॥ ३५

ततोऽब्रवीच्च विरजा नाहं त्वां पार्थिवात्मज।
दातुं शक्ता स्वमात्मानं स्वतन्त्रा न हि योषितः॥ ३६

किं वा ते बहुनोक्तेन मा त्वं नाशं नराधिप।
गच्छस्व शुक्रशापेन सभृत्यज्ञातिबान्धवः॥ ३७
ततोऽब्रवीन्नरपतिः सुतनु शृणु चेष्टितम्।
चित्राङ्गदाया यद् वृत्तं पुरा देवयुगे शुभे॥ ३८

विश्वकर्मसुता साध्वी नाम्ना चित्राङ्गदाऽभवत्।
रूपयौवनसम्पन्ना पद्महीनेव पद्मिनी॥ ३९

सा कदाचिन्महारण्यं सखीभिः परिवारिता।
जगाम नैमिषं नाम स्नातुं कमललोचना॥ ४०

सा स्नातुमवतीर्णा च अथाभ्यागान्नरेश्वरः।
सुदेवतनयो धीमान् सुरथो नाम नामतः।
तां ददर्श च तन्वङ्गीं शुभाङ्गो मदनातुरः॥ ४१

तं दृष्ट्वा सा सखीराह वचनं सत्यसंयुतम्।
असौ नराधिपसुतो मदनेन कदर्थ्यते॥ ४२

उसके बाद राजाने उससे पूछा—बाले! मैं कामाग्निसे संतप्त हूँ। आज तुम अपने आलिङ्गनरूपी जलसे मुझे आनन्दित करो। वह (अरजा) बोली—नरपतिप्रवर! (कामसे) अधीर होकर अपनेको विनष्ट मत करो। मेरे पिता अपने महान् क्रोधसे देवताओंको भी भस्म कर सकते हैं। मूढबुद्धे! तुम मेरे भाई हो। परंतु अनीतिसे ओतप्रोत हो गये हो। मैं धर्मसे तुम्हारी बहन हूँ; क्योंकि तुम मेरे पिताके शिष्य हो। उस (दण्डक)-ने कहा—भीरु! शुक्र (भविष्यमें) किसी समय मुझे जला देंगे; परंतु कृशोदरि! कामकी आग तो मुझे आज ही (अभी) जलाये जा रही है॥ ३०—३३॥

उस (अरजा)-ने राजा दण्डसे कहा—राजन्! एक क्षण प्रतीक्षा करो। तुम उन गुरुसे ही याचना करो। वे तुम्हें निःसन्देह मुझको दे देंगे। दण्डने कहा—सुन्दरि! मैं समयकी प्रतीक्षा करनेमें असमर्थ हूँ। बहुधा अवसर चूक जानेपर कार्यमें विघ्न हो जाया करता है। उसके बाद अरजाने कहा—राजपुत्र! मैं स्वयं अपनेको तुम्हें अर्पित करनेमें समर्थ नहीं हूँ; क्योंकि स्त्रियाँ स्वतन्त्र नहीं होतीं। अथवा नरपते! तुमसे अधिक कहनेसे क्या (लाभ); (बस मैं इतना ही कहती हूँ कि इस असत् प्रस्तावके कारण—) तुम शुक्राचार्यके शापसे भृत्य,जाति और बन्धुओंके साथ अपना विनाश मत करो॥ ३४—३७॥

उसके बाद राजाने कहा—सुन्दरि! प्राचीन कालमें—पवित्र देवयुगमें घटित चित्राङ्गदाका एक वृत्तान्त सुनो। विश्वकर्माकी चित्राङ्गदा नामकी एक साध्वी कन्या थी। वह रूप और यौवनसे सम्पन्न मानो कमलसे रहित कमलिनी थी। कमलके समान नेत्रोंवाली वह किसी समय अपनी सखियोंसे घिरी हुई—सखियोंके साथ नैमिष नामके महारण्यमें स्नान करनेके लिये गयी। वह स्नान करनेके लिये जलमें जैसे ही उतरी, वैसे ही सुदेवके पुत्र बुद्धिमान् राजा सुरथ वहाँ पहुँचे। उन्होंने उस कृशाङ्गीको देखा। सुन्दर शरीरवाले वे उसे देखकर कामातुर हो गये॥ ३८—४१॥

उनको देखकर उस (चित्राङ्गदा)-ने अपनी सखियोंसे सत्य (छिपावरहित) वचन कहा—यह राजपुत्र मेरे ही लिये कामपीड़ित होकर कष्ट पा रहा है। अतः मुझे यह

मदर्थे च क्षमं मेऽस्य स्वप्रदानं सुरूपिणः।
सख्यस्तामब्रुवन् बाला न प्रगल्भाऽसि सुन्दरि॥ ४३

अस्वातन्त्र्यं तवास्तीह प्रदाने स्वात्मनोऽनघे।
पिता तवास्ति धर्मिष्ठः सर्वशिल्पविशारदः॥ ४४

न ते युक्तमिहात्मानं दातुं नरपतेः स्वयम्।
एतस्मिन्नन्तरे राजा सुरथः सत्यवाक् सुधीः॥ ४५

समभ्येत्याऽब्रवीदेनां कन्दर्पशरपीडितः।
त्वं मुग्धे मोहयसि मां दृष्ट्यैव मदिरेक्षणे॥ ४६
त्वद्दृष्टिशरपातेन स्मरेणाभ्येत्य ताडितः।
तन्मां कुचतले तल्पे अभिशायितुमर्हसि॥ ४७

नोचेत् प्रधक्ष्यते कामो भूयो भूयोऽतिदर्शनात्।
ततः सा चारुसर्वाङ्गी राज्ञो राजीवलोचना॥ ४८

वार्यमाणा सखीभिस्तु प्रादादात्मानमात्मना।
एवं पुरा तया तन्व्या परित्रातः स भूपतिः॥ ४९

तस्मान्मामपि सुश्रोणि त्वं परित्रातुमर्हसि।
अरजस्काऽब्रवीद् दण्डं तस्या यद् वृत्तमुत्तरम्॥ ५०

किं त्वया न परिज्ञातं तस्मात् ते कथयाम्यहम्।
तदा तया तु तन्वङ्ग्या सुरथस्य महीपतेः॥ ५१

आत्मा प्रदत्तः स्वातन्त्र्यात् ततस्तामशपत् पिता।
यस्माद् धर्मं परित्यज्य स्त्रीभावान्मन्दचेतसे॥ ५२

आत्मा प्रदत्तस्तस्माद्धि न विवाहो भविष्यति।
विवाहरहिता नैव सुखं लप्स्यसि भर्तृतः॥ ५३
न च पुत्रफलं नैव पतिना योगमेष्यसि।
उत्सृष्टमात्रे शापे तु ह्यपोवाह सरस्वती॥ ५४
अकृतार्थं नरपतिं योजनानि त्रयोदश।
अपकृष्टे नरपतौ साऽपि मोहमुपागता॥ ५५
ततस्तां सिषिचुः सख्यः सरस्वत्या जलेन हि।
सा सिच्यमाना सुतरां शिशिरेणाप्यथाम्भसा॥ ५६
मृतकल्पा महाबाहो विश्वकर्मसुताऽभवत्।
तां मृतामिति विज्ञाय जग्मुः सख्यस्त्वरान्विताः॥ ५७

उचित (प्रतीत होता) है कि इस सौन्दर्यशाली व्यक्तिको मैं अपनेको समर्पित कर दूँ। उसकी 'बाला' सहेलियोंने उससे कहा कि सुन्दरि! तुम सयानी (वयस्का) नहीं हो। निष्पाप बालिके! स्वयंको दान करनेमें तुम्हें स्वतन्त्रता नहीं है; तुम्हारे पिता परम धार्मिक हैं और सभी शिल्पकर्मोंमें परम निपुण हैं, इसलिये यहाँ तुम्हें अपनेको राजाके लिये (दान) दे देना ठीक नहीं है। इसी बीच कामबाणसे पीड़ित सत्यवक्ता बुद्धिमान् सुरथने उसके पास आकर कहा—मुग्धे! मदिरेक्षणे! तुम अपनी दृष्टिसे ही मुझे मोहित कर रही हो॥ ४२—४६॥

कामदेवने उपस्थित होकर तुम्हारी दृष्टिरूपी बाणसे मुझे घायल कर दिया है। इसलिये तुम मुझे अपने कुचतलरूपी शय्यापर सुलानेकी योग्या हो। ऐसा न करनेपर बार-बार तुम्हारे देखनेसे तो काम मुझे जला ही डालेगा। उसके बाद उस कमलनयनी सर्वाङ्गसुन्दरीने सखियोंके रोकनेपर भी स्वयंको राजाके प्रति अर्पित कर दिया। इस तरह प्राचीन कालमें उस कृशाङ्गीने उस राजाकी रक्षा की थी। अतः सुश्रोणि! तुम्हें भी मेरी रक्षा करनी चाहिये। शुक्रनन्दिनी अरजाने राजा दण्डसे कहा—क्या तुम उसके आगेकी घटित घटनाको नहीं जानते? (ऐसा ही लगता है;) अतः मैं तुमसे कहती हूँ, (सुनो)। जब उस कृशाङ्गीने स्वयंको राजा सुरथके लिये स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी इच्छासे दान कर दिया, तब पिताने उसको शाप दे दिया। मन्दबुद्धि! यतः तुमने स्त्रीस्वभावके कारण धर्मको छोड़कर (अपनी इच्छासे) स्वयंको प्रदान कर दिया है, अतः तुम्हारा विवाह नहीं होगा। (और तब विवाहसे रहित होनेके कारण) तुम पतिसे सुख नहीं प्राप्त कर सकोगी॥ ४७—५३॥

तुम्हें न तो पुत्रफलकी प्राप्ति होगी और न पतिसे संयोग ही होगा। फिर तो शाप देते ही सरस्वती व्यर्थ हुए मनोरथवाले राजाको तेरह योजनतक बहा ले गयी। राजाके (बहकर) दूर चले जानेपर चित्राङ्गदा भी बेहोश हो गयी। महाबाहो! उसके बाद सखियोंने सरस्वतीके जलसे उसको सींचा। सखियोंद्वारा शीतल जलसे भलीभाँति सींचे जानेपर भी वह विश्वकर्माकी पुत्री मरे हुएके समान हो गयी। सखियाँ उसे मरी हुई समझकर शीघ्रतासे कोई

काष्ठान्याहर्तुमपरा वह्निमानेतुमाकुलाः।
सा च तास्वपि सर्वासु गतासु वनमुत्तमम्॥ ५८

संज्ञां लेभे सुचार्वङ्गी दिशश्चाप्यवलोकयत्।
अपश्यन्ती नरपतिं तथा स्निग्धं सखीजनम्॥ ५९

निपतात सरस्वत्याः पयसि स्फुरितेक्षणा।
तां वेगात् काञ्चनाक्षी तु महानद्यां नरेश्वर॥ ६०

गोमत्यां परिचिक्षेप तरङ्गकुटिले जले।
तयाऽपि तस्यास्तद्भाव्यं विदित्वाऽथ विशांपते॥ ६१

महावने परिक्षिप्ता सिंहव्याघ्रभयाकुले।
एवं तस्याः स्वतन्त्राया एषाऽवस्था श्रुता मया॥ ६२

तस्मान्न दास्याम्यात्मानं रक्षन्ती शीलमुत्तमम्।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा दण्डः शक्रसमो बली।
विहस्य त्वरजां प्राह स्वार्थमर्थक्षयंकरम्॥ ६३

दण्ड उवाच

तस्या यदुत्तरं वृत्तं तत्पितुश्च कृशोदरि।
सुरथस्य तथा राज्ञस्तच्छ्रोतुं मतिमादथ॥ ६४

यदाऽवकृष्टे नृपतौ पतिता सा महावने।
तदा गगनसंचारी दृष्टवान् गुह्यकोऽञ्जनः॥ ६५

ततः सोऽभ्येत्य तां बालां परिसान्त्व्य प्रयत्नतः।
प्राह मा गच्छ सुभगे विषादं सुरथं प्रति॥ ६६

ध्रुवमेष्यसि तेन त्वं संयोगमसितेक्षणे।
तस्माद् गच्छस्व शीघ्रं त्वं द्रष्टुं श्रीकण्ठमीश्वरम्॥ ६७

इत्येवमुक्ता सा तेन गुह्यकेन सुलोचना।
श्रीकण्ठमागता तूर्णं कालिन्द्या दक्षिणे तटे॥ ६८

दृष्ट्वा महेशं श्रीकण्ठं स्नात्वा रविसुताजले।
अतिष्ठत शिरोनम्रा यावन्मध्यस्थितो रविः॥ ६९

अथाजगाम देवस्य स्नानं कर्तुं तपोधनः।
शुभः पाशुपताचार्यः सामवेदी ऋतध्वजः॥ ७०

ददर्श तत्र तन्वङ्गीं मुनिश्चित्राङ्गदां शुभाम्।
रतीमिव स्थितां पुण्यामनङ्गपरिवर्जिताम्॥ ७१

तां दृष्ट्वा स मुनिर्ध्यानमगमत् केयमित्युत।
अथ सा तमृषिं वन्द्य कृताञ्जलिरुपस्थिता॥ ७२

काष्ठ लेने एवं कुछ व्याकुल होकर अग्नि लाने चली गयीं। उत्तम वनमें उन सभीके चले जानेपर उसे चेतना प्राप्त हुई; सुन्दर अङ्गोंवाली वह चारों ओर देखने लगी। राजा एवं प्रिय सखियोंको न देखकर चञ्चल नेत्रवाली वह सरस्वतीके जलमें गिर पड़ी। नरेश्वर! काञ्चनाक्षीने वेगपूर्वक उसे महानदी गोमतीकी हिलोरे लेती हुई लहरोंवाले जलमें फेंक दिया। राजन्! उसकी भवितव्यताको जानकर उस (गोमती)-ने भी उसे सिंह एवं व्याघ्रसे पूर्ण वनमें फेंक दिया। इस प्रकार मैंने उसकी स्वतन्त्रताकी इस दुरवस्थाका वर्णन सुना है। अतः मैं अपने उत्तम शीलकी रक्षा करती हुई स्वयंको तुम्हें समर्पित नहीं करूँगी। इन्द्रके तुल्य बलवान् राजा दण्डने उसके उस वचनको सुनकर हँसते हुए उस अरजासे पुरुषार्थको नष्ट करनेवाला अपना अभिप्राय कहा॥ ५४—६३॥

दण्डने कहा—कृशोदरि! उसके पिता तथा राजा सुरथके साथ घटित हुए उसके बादके वृत्तान्तको सुननेके लिये तुम सावधान हो जाओ। राजाके दूर चले जानेपर जब वह महावनमें गिरी, उस समय आकाशमें संचरण करनेवाले अञ्जन नामके गुह्यकने उसे देखा। उसके बाद वह उस बालाके पास गया और प्रयत्नपूर्वक उसे सान्त्वना देते हुए कहा—सुभगे! सुरथके लिये उदास मत होओ। अयि कजरारे नेत्रोंवाली! तुम उससे संयोग अवश्य प्राप्त कर लोगी। अतः तुम शीघ्र भगवान् श्रीकण्ठका दर्शन करनेके लिये चली जाओ॥ ६४—६७॥

उस गुह्यकके ऐसा कहनेपर सुन्दर नेत्रोंवाली वह शीघ्रतापूर्वक कालिन्दीके दक्षिण तटपर स्थित श्रीकण्ठके निकट चली गयी। वह कालिन्दीके जलमें स्नान करके महेश्वर श्रीकण्ठका दर्शन कर दोपहरतक सिर झुकाये स्थित रही। इतनेमें देव श्रीकण्ठके पास शुभ लक्षणोंसे युक्त, पाशुपताचार्य, सामवेदी, तपोधन, ऋतध्वज स्नान करनेके लिये आये। मुनिने कामसे रहित रतिके समान कृशाङ्गी कल्याणकारिणी चित्राङ्गदाको वहाँ देखा॥ ६८—७१॥

उन मुनिने उसको देखकर ध्यान किया कि यह कौन है। इसके बाद वह उन ऋषिके निकट जाकर उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी।

तां प्राह पुत्रि कस्यासि सुता सुरसुतोपमा।
किमर्थमागतासीह निर्मनुष्यमृगे वने॥ ७३

ततः सा प्राह तमृषिं यथातथ्यं कृशोदरी।
श्रुत्वर्षिः कोपमगमदशपच्छिल्पिनां वरम्॥ ७४

यस्मात् स्वतनुजातेयं परदेयाऽपि पापिना।
योजिता नैव पतिना तस्माच्छाखामृगोऽस्तु सः॥ ७५

इत्युक्त्वा स महायोगी भूयः स्नात्वा विधानतः।
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां पूजयामास शङ्करम्॥ ७६

सम्पूज्य देवदेवेशं यथोक्तविधिना हरम्।
उवाचागम्यतां सुभ्रूं सुदतीं पतिलालसाम्॥ ७७

गच्छस्व सुभगे देशं सप्तगोदावरं शुभम्।
तत्रोपास्य महेशानं महान्तं हाटकेश्वरम्॥ ७८

तत्र स्थिताया रम्भोरु ख्याता देववती शुभा।
आगमिष्यति दैत्यस्य पुत्री कन्दरमालिनः॥ ७९

तथाऽन्या गुह्यकसुता नन्दयन्तीति विश्रुता।
अञ्जनस्यैव तत्रापि समेष्यति तपस्विनी।
तथाऽपरा वेदवती पर्जन्यदुहिता शुभा॥ ८०

यदा तिस्त्रः समेष्यन्ति सप्तगोदावरे जले।
हाटकाख्ये महादेवे तदा संयोगमेष्यसि॥ ८१

इत्येवमुक्ता मुनिना बाला चित्राङ्गदा तदा।
सप्तगोदावरं तीर्थमगमत् त्वरिता ततः॥ ८२

सम्प्राप्य तत्र देवेशं पूजयन्ती त्रिलोचनम्।
समध्यास्ते शुचिपरा फलमूलाशनाऽभवत्॥ ८३

स चर्षिर्ज्ञानसम्पन्नः श्रीकण्ठायतनेऽलिखत्।
श्लोकमेकं महाख्यानं तस्याश्च प्रियकाम्यया॥ ८४

न सोऽस्ति कश्चित् त्रिदशोऽसुरो वा
यक्षोऽथ मर्त्यो रजनीचरो वा।
इदं हि दुःखं मृगशावनेत्र्या
निर्मार्जयेद् यः स्वपराक्रमेण॥ ८५

इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम
द्रष्टुं विभुं पुष्करनाथमीड्यम्।
नदीं पयोष्णीं मुनिवृन्दवन्द्यां
संचिन्तयन्नेव विशालनेत्राम्॥ ८६

(ऋषिने) उससे पूछा—पुत्रि! देवकन्याकी भाँति तुम किसकी पुत्री हो? मनुष्य तथा पशुरहित इस वनमें तुम क्यों आयी हो? उसके बाद उस कृशोदरीने उन ऋषिसे सच्ची बात कही। उसे सुनकर ऋषि क्रुद्ध हो गये और शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्माको शाप दे दिया—यतः उस पापीने दूसरेके देनेयोग्य भी अपनी इस पुत्रीको पतिसे युक्त नहीं किया, अतः वह शाखामृग (बन्दर) हो जाय॥ ७२—७५॥

यह कहनेके बाद उन महायोगीने पुनः विधिपूर्वक स्नान एवं पश्चिम (सायंकालीन) सन्ध्या कर शङ्करजीका पूजन किया। शास्त्रमें कही गयी विधिसे देवेश्वर शङ्करकी पूजा करनेके बाद उन्होंने पतिको चाहनेवाली तथा सुन्दर भौंहों और दाँतोंवाली चित्राङ्गदासे कहा—सुभगे! कल्याण-दायक सप्तगोदावर नामके देशमें जाओ। वहाँ महान् हाटकेश्वर भगवान्‌की पूजा करते हुए निवास करो। रम्भोरु! वहाँपर रहती हुई दैत्य कन्दरमालीकी प्रसिद्ध देववती नामकी कल्याणकारिणी पुत्री तुम्हारे पास आयेगी॥ ७६—७९॥

इसके सिवाय वहींपर अञ्जन नामक गुह्यककी प्रसिद्ध नन्दयन्ती नामकी तपस्विनी पुत्री तथा वेदवती नामक पर्जन्यकी कल्याणमयी पुत्री भी आयेगी। जब वे तीनों हाटकेश्वर महादेवके पास सप्तगोदावरमें आयेंगी उस समय तुम उनसे मिलोगी। मुनिके इस प्रकार कहनेपर बाला चित्राङ्गदा वहाँसे शीघ्र सप्तगोदावर नामके तीर्थमें गयी। वहाँ जानेके बाद वह देवाधिदेव त्रिलोचनकी पूजा तथा फल-मूलका भक्षण करती हुई पवित्रतापूर्वक रहने लगी और उन ज्ञानसम्पन्न ऋषिने उसकी हित-कामनासे प्रेरित होकर श्रीकण्ठके मन्दिरमें महान् आख्यानसे युक्त एक श्लोक लिखा—'ऐसा कोई देवता, असुर, यक्ष, मनुष्य या राक्षस नहीं है, जो अपने पराक्रमसे इस मृगनयनीका दुःख दूर कर सके।' इस प्रकार श्लोक कहने (लिखने)-के बाद उस विशालाक्षीके विषयमें सोच-विचार करते हुए वे मुनि पूज्य विभु पुष्करनाथका दर्शन करनेके लिये मुनिवृन्दसे वन्द्य पयोष्णी नदीके तटपर चले गये॥ ८०—८६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तिरसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६३॥

चौंसठवाँ अध्याय

चित्राङ्गदा-सन्दर्भ, विश्वकर्माका बन्दर होना, वेदवती आदिका उपाख्यान, जाबालिका बन्धन-मोचन

दण्ड उवाच

चित्राङ्गदायास्त्वरजे तत्र सत्या यथासुखम्।
स्मरन्त्याः सुरथं वीरं महान् कालः समभ्यगात्॥ १
विश्वकर्माऽपि मुनिना शप्तो वानरतां गतः।
न्यपतन्मेरुशिखराद् भूपृष्ठं विधिचोदितः॥ २
वनं घोरं सुगुल्माढ्यं नदीं शालूकिनीमनु।
शाल्वेयं पर्वतश्रेष्ठं समावसति सुन्दरि॥ ३
तत्रासतोऽस्य सुचिरं फलमूलान्यथाश्नतः।
कालोऽत्यगाद् वरारोहे बहुवर्षगणो वने॥ ४

दण्डने कहा—अरजे! वहाँ वीर सुरथका स्मरण करते हुए आनन्दपूर्वक चित्राङ्गदाका लंबा समय व्यतीत हो गया। मुनिद्वारा शापित हो जानेके कारण विश्वकर्मा भी बन्दर हो गये। होनहारवश वे मेरुकी ऊँची चोटीसे गिरकर पृथ्वीपर आ गये। सुन्दरि! (फिर) वे शालूकिनी नदीके निकट घने झुरमुटोंसे भरे भयङ्कर वनवाले पर्वतश्रेष्ठ शाल्वेयपर रहने लगे। वरारोहे! उस वनमें फल-मूल खाकर रहते हुए उनके बहुत वर्षोंके युग निकल गये॥ १—४॥

एकदा दैत्यशार्दूलः कन्दराख्यः सुतां प्रियाम्।
प्रतिगृह्य समभ्यागात् ख्यातां देववतीमिति॥ ५
तां च तद् वनमायान्तीं समं पित्रा वराननाम्।
ददर्श वानरश्रेष्ठः प्रजग्राह बलात् करे॥ ६
ततो गृहीतां कपिना स दैत्यः स्वसुतां शुभे।
कन्दरो वीक्ष्य संक्रुद्धः खड्गमुद्यम्य चाद्रवत्॥ ७
तमापतन्तं दैत्येन्द्रं दृष्ट्वा शाखामृगो बली।
तथैव सह चार्वङ्ग्या हिमाचलमुपागतः॥ ८

एक समय कन्दर नामका दैत्य वीर 'देववती' नामसे प्रसिद्ध अपनी प्रिय पुत्रीको साथ लेकर वहाँ आया। उसके बाद पिताके साथ वनमें आ रही उस सुन्दरीको उस वानरश्रेष्ठने देखा, (उसने) बलपूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया। शुभे! दैत्य कन्दर अपनी कन्याको बन्दरसे पकड़ी गयी देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और तलवार उठाकर दौड़ पड़ा। बलशाली बन्दर (अपने पीछे) उस दैत्येन्द्रको आते देखकर उस सुन्दरी कन्याको साथ लिये हिमालयपर चला गया॥ ५—८॥

ददर्श च महादेवं श्रीकण्ठं यमुनातटे।
तस्याविदूरे गहनमाश्रमं ऋषिवर्जितम्॥ ९
तस्मिन् महाश्रमे पुण्ये स्थाप्य देववतीं कपिः।
न्यमज्जत स कालिन्द्यां पश्यतो दानवस्य हि॥ १०
सोऽजानत् तां मृतां पुत्रीं समं शाखामृगेण हि।
जगाम च महातेजाः पातालं निलयं निजम्॥ ११
स चापि वानरो देव्या कालिन्द्या वेगतो हृतः।
नीतः शिवीति विख्यातं देशं शुभजनावृतम्॥ १२

उसने यमुनाके तटपर महादेव श्रीकण्ठका दर्शन किया। (उसने) उससे थोड़ी दूरपर ऋषियोंसे रहित एक दुर्गम आश्रम भी देखा। उस पवित्र महाश्रममें देववतीको रखकर वह बन्दर दैत्य कन्दरके देखते-देखते कालिन्दी (-के जल)-में डूब गया। उस कन्दरने बन्दरके साथ पुत्रीको (डूबकर) मरी हुई समझ लिया। अतः (निराश होकर) वह महातेजस्वी पातालमें स्थित अपने घरमें चला गया और वेगपूर्वक उस बन्दरको भी देवी कालिन्दी शुभजनोंसे व्याप्त शिवि नामसे प्रसिद्ध स्थानमें बहाकर ले गयी॥ ९—१२॥

ततस्तीर्त्वाऽथ वेगेन स कपिः पर्वतं प्रति।
गन्तुकामो महातेजा यत्र न्यस्ता सुलोचना॥ १३

उसके बाद महातेजस्वी उस बन्दरने तेजीसे तैरकर उसे पार करनेके बाद उस पर्वतपर जानेकी इच्छा की,

अथापश्यत् समायान्तमञ्जनं गुह्यकोत्तमम्।
नन्दयन्त्या समं पुत्र्या गत्वा जिगमिषुः कपिः॥ १४

तां दृष्ट्वाऽमन्यत श्रीमान् सेयं देववती ध्रुवम्।
तन्मे वृथा श्रमो जातो जलमज्जनसम्भवः॥ १५

इति संचिन्तयन्नेव समाद्रवत सुन्दरीम्।
सा तद्भयाच्च न्यपतन्नदीं चैव हिरण्वतीम्॥ १६

गुह्यको वीक्ष्य तनयां पतितामापगाजले।
दुःखशोकसमाक्रान्तो जगामाञ्जनपर्वतम्॥ १७

तत्रासौ तप आस्थाय मौनव्रतधरः शुचिः।
समास्ते वै महातेजाः संवत्सरगणान् बहून्॥ १८

नन्दयन्त्यपि वेगेन हिरण्वत्याऽपवाहिता।
नीता देशं महापुण्यं कौशलं साधुभिर्युतम्॥ १९

गच्छन्ती सा च रुदती ददृशे वटपादपम्।
प्ररोहप्रावृततनुं जटाधरमिवेश्वरम्॥ २०

तं दृष्ट्वा विपुलच्छायं विशश्राम वरानना।
उपविष्टा शिलापट्टे ततो वाचं प्रशुश्रुवे॥ २१

न सोऽस्ति पुरुषः कश्चिद् यस्तं ब्रूयात् तपोधनम्।
यथा स तनयस्तुभ्यमुद्बद्धो वटपादपे॥ २२

सा श्रुत्वा तां तदा वाणीं विस्पष्टाक्षरसंयुताम्।
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव समन्तादवलोकयत्॥ २३

ददृशे वृक्षशिखरे शिशुं पञ्चाब्दिकं स्थितम्।
पिङ्गलाभिर्जटाभिस्तु उद्बद्धं यत्नतः शुभे॥ २४

तं विब्रुवन्तं दृष्ट्वैव नन्दयन्ती सुदुःखिता।
प्राह केनासि बद्धस्त्वं पापिना वद बालक॥ २५

स तामाह महाभागे बद्धोऽस्मि कपिना वटे।
जटास्वेवं सुदुष्टेन जीवामि तपसो बलात्॥ २६

पुरोन्मत्तपुरेत्येव तत्र देवो महेश्वरः।
तत्रास्ति तपसो राशिः पिता मम ऋतध्वजः॥ २७

तस्यास्मि जपमानस्य महायोगं महात्मनः।
जातोऽलिवृन्दसंयुक्तः सर्वशास्त्रविशारदः॥ २८

जहाँ वह सुनयना रखी गयी थी। इसके बाद उसने नन्दयन्ती नामकी पुत्रीके साथ आते हुए श्रेष्ठ गुह्यक अञ्जनको देखा। जानेकी इच्छा करनेवाला वह बन्दर (उसके) निकट गया। उसे देखकर श्रीमान् कपिने सोचा कि सचमुच यह वही देववती है। अतः जलमें डूबनेका मेरा परिश्रम व्यर्थ हो गया। इस प्रकार सोचता हुआ वह बन्दर उस सुन्दरीकी ओर दौड़ा। उसके भयसे वह कन्या हिरण्वती नदीमें कूद पड़ी॥ १३—१६॥

कन्याको नदीके जलमें कूदती हुई देखकर गुह्यक दुःख और शोकसे विह्वल होता हुआ अञ्जनपर्वतपर चला गया। वह महातेजस्वी वहाँ पवित्रतापूर्वक मौन-व्रत धारण करके बहुत वर्षोंतक तप करता रहा। हिरण्वती भी (जलधाराके) वेगसे नन्दयन्तीको भी बहा ले गयी और सज्जनोंसे सेवित महापवित्र कोशल देशमें उसे पहुँचा दिया। जाते समय रोती हुई उसने जटा-धारी शङ्करकी भाँति बरोहोंसे घिरी हुई जड़वाले एक वटवृक्षको देखा॥ १७—२०॥

वह सुमुखी घनी छायावाले उस वृक्षको देखकर एक पत्थरपर बैठ गयी और विश्राम करने लगी। उसके बाद उसने यह वाणी सुनी—'क्या कोई ऐसा पुरुष नहीं है जो उस तपोधन (ऋतध्वज)-से कहे कि तुम्हारा वह पुत्र वटवृक्षमें बँधा हुआ है।' उसने उस समय सुस्पष्ट अक्षरोंसे युक्त उस वाणीको सुनकर चारों ओर ऊपर-नीचे देखा। शुभे! (तब) उसने वृक्षकी सबसे ऊँची चोटीपर यत्नपूर्वक पिङ्गलवर्णकी जटाओंसे बँधे पाँच वर्षके एक बालकको देखा॥ २१—२४॥

अत्यन्त दुःखित होती हुई नन्दयन्तीने उस बोलनेवालेको ऊपर देखकर कहा—अरे बालक! बतलाओ, किस पापीने तुम्हें बाँधा है? उस बालकने उससे कहा—महाभागे! एक महादुष्ट बन्दरने मुझे जटाओंद्वारा इस वटमें बाँध दिया है। मैं अपने तपोबलसे ही जी रहा हूँ। पहले उन्मत्तपुरमें देव महेश्वर प्रतिष्ठित थे। वहाँ तपके राशिस्वरूप (महातपस्वी) मेरे पिता ऋतध्वज निवास करते थे। महायोगका जप-तप कर रहे उन महात्माका मैं सभी शास्त्रोंमें निपुण एवं भौंरोंके समूहसे युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ॥ २५—२८॥

ततो मामब्रवीत् तातो नाम कृत्वा शुभानने।
जाबालीति परिख्याय तच्छृणुष्व शुभानने॥ २९

पञ्चवर्षसहस्राणि बाल एव भविष्यसि।
दशवर्षसहस्राणि कुमारत्वे चरिष्यसि॥ ३०

विंशतिं यौवनस्थायी वीर्येण द्विगुणं ततः।
पञ्चवर्षशतान् बालो भोक्ष्यसे बन्धनं दृढम्॥ ३१

दशवर्षशतान्येव कौमारे कायपीडनम्।
यौवने परमान् भोगान् द्विसहस्रसमास्तथा॥ ३२
चत्वारिंशच्छतान्येव वार्धके क्लेशमुत्तमम्।
लप्स्यसे भूमिशय्याढ्यं कदन्नाशनभोजनम्॥ ३३

इत्येवमुक्तः पित्राऽहं बालः पञ्चाब्ददेशिकः।
विचरामि महीपृष्ठं गच्छन् स्नातुं हिरण्वतीम्॥ ३४

ततोऽपश्यं कपिवरं सोऽवदन्मां क्व यास्यसि।
इमां देववतीं गुह्यं मूढ न्यस्तां महाश्रमे॥ ३५

ततोऽसौ मां समादाय विस्फुरन्तं प्रयत्नतः।
वटाग्रेऽस्मिन्नुद्बबन्ध जटाभिरपि सुन्दरि॥ ३६
तथा च रक्षा कपिना कृता भीरु निरन्तरैः।
लतापाशैर्महायन्त्रमधस्ताद् दुष्टबुद्धिना॥ ३७

अभेद्योऽयमनाक्रम्य उपरिष्टात् तथाप्यधः।
दिशां मुखेषु सर्वेषु कृतं यन्त्रं लतामयम्॥ ३८

संयम्य मां कपिवरः प्रयातोऽमरपर्वतम्।
यथेच्छया मया दृष्टमेतत् ते गदितं शुभे॥ ३९

भवती का महारण्ये ललना परिवर्जिता।
समायाता सुचार्वङ्गी केन सार्थेन मां वद॥ ४०
साऽब्रवीदञ्जनो नाम गुह्यकेन्द्रः पिता मम।
नन्दयन्तीति मे नाम प्रम्लोचागर्भसम्भवा॥ ४१
तत्र मे जातके प्रोक्तमृषिणा मुद्गलेन हि।
इयं नरेन्द्रमहिषी भविष्यति न संशयः॥ ४२

शुभानने! पिताजीने मेरा नाम जाबालि रखकर मुझसे जो कुछ कहा, उसे सुनो। उन्होंने कहा—तुम पाँच हजार वर्षोंतक बालक रहोगे एवं दस हजार वर्षोंतक कुमार रहोगे। बीस वर्षोंतक तुम्हारा पराक्रमपूर्ण यौवन रहेगा और उसके बाद उसके दुगुने समयतक बुढ़ापेकी स्थिति रहेगी। बाल्यावस्थामें पाँच सौ वर्षोंतक तुम्हें दृढ़ बन्धन भोगना पड़ेगा। उसके बाद एक हजार वर्षोंतक कुमारावस्थामें तुम्हें शारीरिक कष्ट भोगना पड़ेगा तथा युवावस्थामें दो हजार वर्षोंतक तुम उत्तम भोगोंको प्राप्त करोगे॥ २९—३२॥

बुढ़ापेमें चालीस सौ वर्षोंतक अत्यन्त क्लेश भोगना होगा। उस समय तुम्हें भूमिपर सोना तथा कुत्सित-अन्न—कदन्न—साँवा, कोदो (आदि)-का भोजन करना पड़ेगा। पिताके इस प्रकार कहनेके बाद पाँच वर्षकी अवस्थामें मैं हिरण्वतीमें स्नान करनेके उद्देश्यसे पृथ्वीपर विचरता हुआ जा रहा था। उस समय मैंने एक श्रेष्ठ बन्दरको देखा। उसने मुझसे कहा—अरे मूढ़! इस महान् आश्रममें रखी हुई इस देववतीको लेकर तू कहाँ जा रहा है? सुन्दरि! उसके बाद उसने छटपटाते हुए मुझको पकड़कर प्रयत्नपूर्वक इस वटवृक्षके शिखरपर जटाओं (बरोहों)-से बाँध दिया॥ ३३—३६॥

भीरु! उस कुमति बन्दरने बहुत-से लता-जालोंसे एक महान् यन्त्र (छज्जा) बनाकर उसके नीचे मुझे स्थापित कर दिया और सदा मेरी रक्षा करता रहा। सभी दिशाओंमें चारों ओरसे बनाया गया यह लतायन्त्र न तो टूट सकता है और न किसी प्रकार ऊपर या नीचेसे इसके ऊपर आक्रमण ही किया जा सकता है। वह श्रेष्ठ बन्दर मुझको बाँधकर स्वेच्छासे अमर-पर्वतपर चला गया। शुभे! मैंने जो कुछ देखा था उसे तुमसे कह दिया। सुन्दरि! मुझे बतलाओ कि तुम कौन हो एवं इस विस्तृत वनमें अकेली तुम किसके साथ आयी हो?॥ ३७—४०॥

उसने कहा—गुह्यकराज अञ्जन मेरे पिता हैं। मेरा नाम नन्दयन्ती है। मेरा जन्म प्रम्लोचाके गर्भसे हुआ है। मेरे जन्मके समय मुद्गल ऋषिने कहा था कि यह कन्या भविष्यमें राजरानी बनेगी।

तद्वाक्यसमकालं च व्यनदद् देवदुन्दुभिः।
शिवा चाशिवनिर्घोषा ततो भूयोऽब्रवीन्मुनिः॥ ४३

न संदेहो नरपतेर्महाराज्ञी भविष्यति।
महान्तं संशयं घोरं कन्याभावे गमिष्यसि।
ततो जगाम स ऋषिरेवमुक्त्वा वचोऽद्भुतम्॥ ४४

उनके कहनेके समय ही स्वर्गमें दुन्दुभि बजने लगी तथा तत्काल ही अमङ्गलसूचक शब्दवाली सियारिन बोलने लगी। उसके बाद मुनिने पुनः कहा—इसमें संदेह नहीं कि यह बालिका महाराजकी महारानी होगी। परंतु कन्या-अवस्थामें ही यह भयङ्कर विपत्तिमें पड़ जायगी। इस प्रकारका अद्भुत वचन कहकर वे ऋषि चले गये॥ ४१—४४॥

पिता मामपि चादाय समागन्तुमथैच्छत।
तीर्थं ततो हिरण्वत्यास्तीरात् कपिरथोत्पतत्॥ ४५

तद्भयाच्च मया ह्यात्मा क्षिप्तः सागरगाजले।
तयाऽस्मि देशमानीता इमं मानुषवर्जितम्॥ ४६

श्रुत्वा जाबालिरथ तद् वचनं वै तयोदितम्।
प्राह सुन्दरि गच्छस्व श्रीकण्ठं यमुनातटे॥ ४७

तत्रागच्छति मध्याह्ने मत्पिता शर्वमर्चितुम्।
तस्मै निवेदयात्मानं तत्र श्रेयोऽधिलप्स्यसे॥ ४८

उसके बाद मेरे पिताने तीर्थयात्रा करनेकी इच्छा की। इसी बीच मुझे (अपने साथ) लेकर बन्दर हिरण्वतीके तटसे उछला। उसके डरसे मैंने अपनेको समुद्रमें गिरनेवाली नदीके जलमें गिरा दिया (मैं नदीमें कूद पड़ी)। उस नदीके भीषण प्रवाहसे मैं इस निर्जन देशमें आ गयी हूँ। जाबालिने उसकी कही हुई बातको सुनकर कहा—सुन्दरि! तुम यमुनाके किनारे श्रीकण्ठके पास जाओ। वहाँ मेरे पिताजी मध्याह्नमें शिवजीकी पूजा करनेके लिये आते हैं। तुम वहाँ जाकर उनको अपना समाचार सुनाओ। इससे तुम्हारा कल्याण होगा॥ ४५—४८॥

ततस्तु त्वरिता काले नन्दयन्ती तपोनिधिम्।
परित्राणार्थमगमद्धिमाद्रेर्यमुनां नदीम्॥ ४९

सा त्वदीर्घेण कालेन कन्दमूलफलाशना।
सम्प्राप्ता शङ्करस्थानं यत्रागच्छति तापसः॥ ५०

ततः सा देवदेवेशं श्रीकण्ठं लोकवन्दितम्।
प्रतिवन्द्य ततोऽपश्यदक्षरांस्तान्महामुने॥ ५१

तेषामर्थं हि विज्ञाय सा तदा चारुहासिनी।
तज्जाबाल्युदितं श्लोकमलिखच्चान्यमात्मनः॥ ५२

उसके बाद नन्दयन्ती अपनी रक्षाके लिये शीघ्रतापूर्वक हिमाचलसे चल पड़ी और यमुनाके तीरपर स्थित तपोनिधि (ऋतध्वज)-के पास पहुँच गयी। कन्द-मूल-फल खाती हुई वह कुछ ही समयमें शङ्करके (भी) उस स्थानपर पहुँची जहाँ तपस्वी आया करते थे। महामुने! उसके बाद उसने विश्ववन्दित देवाधिदेव श्रीकण्ठकी पूजा कर उन (लिखे) अक्षरोंको देखा। उनका अर्थ जानकर मधुर मुस्कान करती हुई उसने जाबालिद्वारा कथित श्लोक तथा अपना एक अन्य श्लोक लिखा— ॥ ४९—५२॥

मुद्गलेनास्मि गदिता राजपत्नी भविष्यति।
सा चावस्थामिमां प्राप्ता कश्चिन्मां त्रातुमीश्वरः॥ ५३

इत्युल्लिख्य शिलापट्टे गता स्नातुं यमस्वसाम्।
ददृशे चाश्रमवरं मत्तकोकिलनादितम्॥ ५४

ततोऽमन्यत सात्रर्षिर्नूनं तिष्ठति सत्तमः।
इत्येवं चिन्तयन्ती सा सम्प्रविष्टा महाश्रमम्॥ ५५

ततो ददर्श देवाभां स्थितां देववतीं शुभाम्।
संशुष्कास्यां चलन्नेत्रां परिम्लानामिवाब्जिनीम्॥ ५६

'महर्षि मुद्गलने कहा था कि मैं राजपत्नी होऊँगी, किंतु मैं इस अवस्थामें आ गयी हूँ। क्या कोई मेरा उद्धार करनेमें समर्थ है?' शिलापट्टपर यह लिखकर वह स्नान करनेके लिये यमुनाके किनारे चली गयी और उस स्थानपर मतवाली कोकिलोंके स्वरों (काकली)-से निनादित एक सुन्दर आश्रम देखा। उसने सोचा—इस स्थानपर श्रेष्ठ ऋषि अवश्य रहते होंगे। ऐसा सोचती हुई उस महान् आश्रममें प्रविष्ट हुई। उसके बाद उसने दैवी शोभासे युक्त, मुर्झायी हुई कमलिनीके समान सूखे मुख एवं चञ्चल नेत्रोंवाली देववतीको वहाँ बैठी हुई देखा॥ ५३—५६॥

सा चापतन्तीं ददृशे यक्षजां दैत्यनन्दिनी।
केयमित्येव संचिन्त्य समुत्थाय स्थिताभवत्॥ ५७

ततोऽन्योन्यं समालिङ्ग्य गाढं गाढं सुहृत्तया।
पप्रच्छतुस्तथान्योऽन्यं कथयामासतुस्तदा॥ ५८

ते परिज्ञाततत्त्वार्थे अन्योन्यं ललनोत्तमे।
समासीने कथाभिस्ते नानारूपाभिरादरात्॥ ५९

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः श्रीकण्ठं स्नातुमादरात्।
स तत्त्वज्ञो मुनिश्रेष्ठो अक्षराण्यवलोकयन्॥ ६०

स दृष्ट्वा वाचयित्वा च तमर्थमधिगम्य च।
मुहूर्तं ध्यानमास्थाय व्यजानाच्च तपोनिधिः॥ ६१

ततः सम्पूज्य देवेशं त्वरया स ऋतध्वजः।
अयोध्यामगमत् क्षिप्रं द्रष्टुमिक्ष्वाकुमीश्वरम्॥ ६२

तं दृष्ट्वा नृपतिश्रेष्ठं तापसो वाक्यमब्रवीत्।
श्रूयतां नरशार्दूल विज्ञप्तिर्मम पार्थिव॥ ६३

मम पुत्रो गुणैर्युक्तः सर्वशास्त्रविशारदः।
उद्बद्धः कपिना राजन् विषयान्ते तवैव हि॥ ६४

तं हि मोचयितुं नान्यः शक्तस्त्वत्तनयादृते।
शकुनिर्नाम राजेन्द्र स ह्यस्त्रविधिपारगः॥ ६५

तन्मुनेर्वाक्यमाकर्ण्य पिता मम कृशोदरि।
आदिदेश प्रियं पुत्रं शकुनिं तापसान्वये॥ ६६

ततः स प्रहितः पित्रा भ्राता मम महाभुजः।
सम्प्राप्तो बन्धनोद्देशं समं हि परमर्षिणा॥ ६७

दृष्ट्वा न्यग्रोधमत्युच्चं प्ररोहास्तृतदिङ्मुखम्।
ददर्श वृक्षशिखरे उद्बद्धमृषिपुत्रकम्॥ ६८

तांश्च सर्वांल्लतापाशान् दृष्टवान् स समन्ततः।
दृष्ट्वा स मुनिपुत्रं तं स्वजटासंयतं वटे॥ ६९

धनुरादाय बलवानधिज्यं स चकार ह।
लाघवादृषिपुत्रं तं रक्षंश्चिच्छेद मार्गणैः॥ ७०

देववतीने यक्षपुत्रीको आती हुई देखा और यह कौन है—ऐसा विचारकर वह उठ खड़ी हुई। उसके बाद सखीभावसे उन दोनोंने आपसमें गाढ़ आलिङ्गन किया—वे एक-दूसरेके गले लगीं तथा परस्पर पूछ-ताछ और बातचीत करने लगीं। वे दोनों उत्तम ललनाएँ एक दूसरीकी सच्ची घटनाओंको जानकर बैठ गयीं एवं आदरपूर्वक अनेक प्रकारकी कथाएँ कहने लगीं। इसी बीच वे तत्त्वज्ञाता मुनिश्रेष्ठ श्रीकण्ठके निकट स्नान करनेके लिये आये और उन्होंने पत्थरपर लिखे हुए अक्षरोंको देखा॥ ५७—६०॥

उन्हें देख और पढ़कर तथा उनका अर्थ समझकर वे तपोनिधि एक क्षणमें ध्यान लगाकर (सब कुछ ठीक-ठीक) जान गये। उसके बाद महर्षि ऋतध्वज शीघ्रतासे देवेश्वरकी पूजा कर राजा इक्ष्वाकुका दर्शन करनेके लिये तुरंत ही अयोध्या चले गये। श्रेष्ठ नरपतिका दर्शन करके तपस्वी ऋतध्वजने कहा—नरशार्दूल! राजन्! मेरी विज्ञप्ति (याचिका) सुनिये—राजन्! आपके ही राज्यकी सीमामें एक बन्दरने सर्वशास्त्रोंमें निपुण, अच्छे गुणोंसे युक्त मेरे पुत्रको बाँध रखा है॥ ६१—६४॥

राजेन्द्र! अस्त्र-विधिमें पारङ्गत आपके शकुनि नामक पुत्रके सिवाय दूसरा कोई उसे छुड़ा नहीं सकता। कृशोदरि! मुनिके उस वचनको सुनकर मेरे पिताने अपने पुत्र (मेरे भाई) शकुनिको उन तपस्वीके पुत्रके (बन्धन छुड़ानेके) सम्बन्धमें उचित आदेश दिया। उसके बाद पिताके द्वारा भेजा गया वह शक्तिशाली मेरा भाई उन श्रेष्ठ ऋषिके साथ ही बन्धनके स्थानपर आया। चारों ओर बरोहोंसे ढके हुए अत्यन्त ऊँचे वटवृक्षको देखनेके बाद उसने वृक्षकी ऊँची चोटीपर बँधे हुए ऋषिके पुत्रको (बँधा हुआ) देखा॥ ६५—६८॥

(फिर) उसने (फैले हुए) उन समस्त लताजालोंको चारों ओरसे (अच्छी तरह) देखा एवं बड़के पेड़में अपनी जटाओंसे बँधे मुनिपुत्रको देखकर उस पराक्रमीने धनुष लेकर उसकी प्रत्यञ्चा (डोरी) चढ़ायी एवं वह ऋषि-पुत्रकी रक्षा करते हुए निपुणतासे बाणोंद्वारा लताजालोंको

कपिना यत् कृतं सर्वं लतापाशं चतुर्दिशम्।
पञ्चवर्षशते काले गते शक्तस्तदा शरैः॥ ७१

लताच्छन्नं ततस्तूर्णमारुरोह मुनिर्वटम्।
प्राप्तं स्वपितरं दृष्ट्वा जाबालिः संयतोऽपि सन्॥ ७२

आदरात् पितरं मूर्ध्ना ववन्दे तु विधानतः।
सम्परिष्वज्य स मुनिर्मूर्ध्न्याघ्राय सुतं ततः॥ ७३
उन्मोचयितुमारब्धो न शशाक सुसंयतम्।
ततस्तूर्णं धनुर्न्यस्य बाणांश्च शकुनिर्बली॥ ७४
आरुरोह वटं तूर्णं जटा मोचयितुं तदा।
न च शक्नोति संच्छन्नं दृढं कपिवरेण हि॥ ७५
यदा न शकितास्तेन सम्प्रमोचयितुं जटाः।
तदाऽवतीर्णः शकुनिः सहितः परमर्षिणा॥ ७६
जग्राह च धनुर्बाणांश्चकार शरमण्डपम्।
लाघवादर्द्धचन्द्रैस्तां शाखां चिच्छेद स त्रिधा॥ ७७
शाखया कृत्तया चासौ भारवाही तपोधनः।
शरसोपानमार्गेण अवतीर्णोऽथ पादपात्॥ ७८
तस्मिंस्तदा स्वे तनये ऋतध्वज-
स्त्राते नरेन्द्रस्य सुतेन धन्विना।
जाबालिना भारवहेन संयुतः
समाजगामाथ नदीं स सूर्यजाम्॥ ७९

काटने लगा। पाँच सौ वर्ष बीत जानेपर चारों ओर बन्दरके द्वारा बनाया गया लताजाल बाणोंसे जब काट दिया गया तब ऋषि ऋतध्वज लताओंसे ढके उस वटवृक्षपर शीघ्र चढ़ गये। जाबालिने अपने पिताको आया देखकर बँधे रहनेपर भी अत्यन्त आदरके साथ यथाविधि सिरसे (सिर झुकाकर) प्रणाम किया। उन मुनिने (पुत्रका) मस्तक सूँघकर उसको अच्छी तरह गले लगाया॥ ६९—७३॥

फिर वे बन्धन खोलने लगे; परंतु अत्यन्त दृढ़ बन्धनको वे खोल न सके। तब पराक्रमी शकुनि शीघ्र ही धनुष और बाणोंको रखकर जटा खोलनेके लिये बरगदके पेड़पर चढ़ गया। पर (वह भी) कपिद्वारा दृढ़तापूर्वक बनाये गये बन्धनको खोल न सका। जब वह जटाओंको नहीं खोल सका, तब श्रेष्ठ ऋषिके साथ शकुनि नीचे उतर आया। फिर उसने धनुष एवं बाण लिया तथा एक शरमण्डप बनाया। उसके बाद उसने हल्के हाथ अर्द्धचन्द्राकार बाणोंसे उस शाखाको तीन टुकड़ोंमें काट दिया। कटी हुई शाखाके साथ ही भारवाही तपोधन बाणकी सीढ़ियोंके मार्गसे वृक्षके नीचे उतर आये। राजाके धनुर्धारी पुत्रद्वारा अपने पुत्रकी रक्षा हो जानेके बाद ऋतध्वज भारवाही जाबालिके साथ सूर्यपुत्री (यमुना) नदीके तटपर गये॥ ७४—७९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौंसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

गालव-प्रसङ्ग, चित्राङ्गदा-वेदवती-वृत्तान्त, कन्याओंकी खोज, घृताची-वृत्तान्त, जाबालिकी जटाओंसे मुक्ति, विश्वकर्माकी शाप-मुक्ति, इन्द्रद्युम्नादिका सप्तगोदावरमें आना, शिव-स्तुति, सप्तगोदावरमें सम्मेलन, कन्याओंका विवाह

दण्डक उवाच

एतस्मिन्नन्तरे बाले यक्षासुरसुते शुभे।
समागते हरं द्रष्टुं श्रीकण्ठं योगिनां वरम्॥ १

ददृशाते परिम्लानसंशुष्ककुसुमं विभुम्।
बहुनिर्माल्यसंयुक्तं गते तस्मिन् ऋतध्वजे॥ २

दण्डकने कहा—बाले! इसी बीच यक्ष और असुरकी दोनों कन्याएँ योगीश्वर श्रीकण्ठ महादेवका दर्शन करनेके लिये आयीं। उन ऋतध्वजके चले जानेपर उन दोनोंने महादेवके चारों ओर मुर्झाये तथा सूखे हुए फूल और विसर्जनके बाद समर्पित की गयी अन्य बहुत-सी

ततस्तं वीक्ष्य देवेशं ते उभे अपि कन्यके।
स्नापयेतां विधानेन पूजयेतामहर्निशम्॥ ३

ताभ्यां स्थिताभ्यां तत्रैव ऋषिरभ्यागमद् वनम्।
द्रष्टुं श्रीकण्ठमव्यक्तं गालवो नाम नामतः॥ ४

स दृष्ट्वा कन्यकायुग्मं कस्येदमिति चिन्तयन्।
प्रविवेश शुचिः स्नात्वा कालिन्द्या विमले जले॥ ५

ततोऽनुपूजयामास श्रीकण्ठं गालवो मुनिः।
गायेते सुस्वरं गीतं यक्षासुरसुते ततः॥ ६

ततः स्वरं समाकर्ण्य गालवस्ते अजानत।
गन्धर्वकन्यके चैते संदेहो नात्र विद्यते॥ ७

सम्पूज्य देवमीशानं गालवस्तु विधानतः।
कृतजप्यः समध्यास्ते कन्याभ्यामभिवादितः॥ ८

ततः पप्रच्छ स मुनिः कन्यके कस्य कथ्यताम्।
कुलालङ्कारकरणे भक्तियुक्ते भवस्य हि॥ ९

तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठं याथातथ्यं शुभानने।
जातो विदितवृत्तान्तो गालवस्तपतां वरः॥ १०

समुष्य तत्र रजनीं ताभ्यां सम्पूजितो मुनिः।
प्रातरुत्थाय गौरीशं सम्पूज्य च विधानतः॥ ११

ते उपेत्याब्रवीद्यास्ये पुष्करारण्यमुत्तमम्।
आमन्त्रयामि वां कन्ये समनुज्ञातुमर्हथः॥ १२

ततस्ते ऊचतुर्ब्रह्मन् दुर्लभं दर्शनं तव।
किमर्थं पुष्करारण्यं भवान् यास्यत्यथादरात्॥ १३

ते उवाच महातेजा महत्कार्यसमन्वितः।
कार्तिकी पुण्यदा भाविमासान्ते पुष्करेषु हि॥ १४

ते ऊचतुर्वयं यामो भवान् यत्र गमिष्यति।
न त्वया स्म विना ब्रह्मन्निह स्थातुं हि शक्नुवः॥ १५

बाढमाह ऋषिश्रेष्ठस्ततो नत्वा महेश्वरम्।
गते ते ऋषिणा सार्द्धं पुष्करारण्यमादरात्॥ १६

वस्तुएँ पड़ी हुई देखीं। उसके बाद उन देवेशका दर्शन कर वे दोनों कन्याएँ विधिसे दिन-रात श्रीकण्ठ भगवान्‌को स्नान करातीं एवं उनका पूजन करती थीं। उसी स्थानपर उन दोनोंके रहते हुए गालव नामके ऋषि अव्यक्तस्वरूपवाले श्रीकण्ठका दर्शन करनेके लिये इस वनमें आये॥ १—४॥

उन्होंने उन दोनों कन्याओंको देखकर 'ये किसकी कन्याएँ हैं'—इस प्रकार सोचते-विचारते हुए कालिन्दीके विमल जलमें प्रवेश किया। गालव ऋषिने स्नान करनेके बाद पवित्र होकर श्रीकण्ठ महादेवकी पूजा की। उसके बाद यक्ष और असुरकी दोनों कन्याओंने मधुर स्वरसे गीत गाया। तब (उनके) स्वरको सुनकर गालवने यह जान लिया कि ये दोनों निस्सन्देह गन्धर्वकी ही कन्याएँ हैं। गालवने विधिसे श्रीकण्ठदेवकी पूजा कर जप किया। उसके बाद दोनों कन्याओंसे अभिवन्दित होकर वे बैठ गये॥ ५—८॥

उसके बाद उन मुनिने उन दोनों कन्याओंसे पूछा—कन्याओ! तुम दोनों यह बतलाओ कि शङ्करमें भक्ति करनेवाली कुलकी शोभारूपा तुम दोनों किनकी कन्याएँ हो? शुभानने! उन दोनों कन्याओंने उन मुनिश्रेष्ठसे सत्य बातें बतलायीं। तब तपस्वियोंमें श्रेष्ठ गालवने सम्पूर्ण वृत्तान्त (पूर्णतः) जान लिया। उन दोनोंसे सत्कृत होकर मुनिने वहाँ रात्रिमें निवास किया और प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक गौरीपति शङ्करका पूजन किया। उसके बाद उन दोनोंके पास जाकर उन्होंने कहा—मैं परम उत्तम पुष्कर वनमें जाऊँगा। मैं तुम दोनोंसे अनुरोधकर विदा लेना चाहता हूँ। तुम दोनों मुझे अनुज्ञा (अनुमति) दो॥ ९—१२॥

उसके बाद उन दोनोंने कहा—ब्रह्मन्! आपका दर्शन दुर्लभ है। किस कारण आप पुष्करारण्यमें जा रहे हैं। इसके बाद धार्मिक कृत्य करनेवाले महातेजस्वी (मुनि)-ने उन दोनोंसे आदरपूर्वक कहा—आगे महीनेके अन्तमें पुष्करमें पुण्यदायिनी कार्तिकी पूर्णिमा होगी। उन दोनोंने कहा—(तो) आप जहाँ जायँगे, वहीं हम भी चलेंगी। ब्रह्मन्! आपके बिना हम दोनों यहाँ नहीं रह सकतीं। ऋषिश्रेष्ठने कहा—ठीक है। उसके बाद आदरपूर्वक महेश्वरको प्रणामकर ऋषिके साथ वे दोनों (कन्याएँ) पुष्करारण्य चली गयीं॥ १३—१६॥

तथाऽन्ये ऋषयस्तत्र समायाताः सहस्रशः।
पार्थिवा जानपद्याश्च मुक्त्वैकं तमृतध्वजम्॥ १७

ततः स्नाताश्च कार्तिक्यामृषयः पुष्करेष्वथ।
राजानश्च महाभागा नाभागेक्ष्वाकुसंयुताः॥ १८

गालवोऽपि समं ताभ्यां कन्यकाभ्यामवातरत्।
स्नातुं स पुष्करे तीर्थे मध्यमे धनुषाकृतौ॥ १९

निमग्नश्चापि ददृशे महामत्स्यं जलेशयम्।
बह्वीभिर्मत्स्यकन्याभिः प्रीयमाणं पुनः पुनः॥ २०

स ताश्चाह तिमिर्मुग्धा यूयं धर्मं न जानथ।
जनापवादं घोरं हि न शक्तः सोढुमुल्बणम्॥ २१

तास्तमूचुर्महामत्स्यं किं न पश्यसि गालवम्।
तापसं कन्यकाभ्यां वै विचरन्तं यथेच्छया॥ २२

यद्यसावपि धर्मात्मा न बिभेति तपोधनः।
जनापवादात् तत्किं त्वं बिभेषि जलमध्यगः॥ २३

ततस्ताश्चाह स तिमिर्नैष वेत्ति तपोधनः।
रागान्धो नापि च भयं विजानाति सुबालिशः॥ २४

तच्छ्रुत्वा मत्स्यवचनं गालवो व्रीडया युतः।
नोत्ततार निमग्नोऽपि तस्थौ स विजितेन्द्रियः॥ २५

स्नात्वा ते अपि रम्भोरू समुत्तीर्य तटे स्थिते।
प्रतीक्षन्त्यौ मुनिवरं तद्दर्शनसमुत्सुके॥ २६

वृत्ता च पुष्करे यात्रा गता लोका यथागतम्।
ऋषयः पार्थिवाश्चान्ये नाना जानपदास्तदा॥ २७

तत्र स्थितैका सुदती विश्वकर्मतनूरुहा।
चित्राङ्गदा सुचार्वङ्गी वीक्षन्ती तनुमध्यमे॥ २८

ते स्थिते चापि वीक्षन्त्यौ प्रतीक्षन्त्यौ च गालवम्।
संस्थिते निर्जने तीर्थे गालवोऽन्तर्जले तथा॥ २९

वहाँ केवल उन ऋतध्वजके सिवाय अन्य हजारों ऋषि, राजा एवं जनपद-निवासी भी आये। उसके बाद ऋषियों एवं नाभाग तथा इक्ष्वाकु आदि महाभाग्यवान् राजाओंने कार्तिकी पूर्णिमाके दिन पुष्करतीर्थमें स्नान किया। गालव भी उन दोनों कन्याओंके साथ धनुषकी आकृतिवाले मध्यम पुष्करतीर्थमें स्नान करनेके लिये उतरे। (जलमें) निमग्न होनेपर उन्होंने देखा कि एक जलचर महामत्स्य जलमें स्थित है और अनेक मत्स्य-कन्याएँ उसे पुनः-पुनः प्रसन्न करनेमें लगी हुई हैं॥ १७—२०॥

उस मत्स्यने उन (मछलियों)-से कहा—भोली प्रकृति होनेके कारण तुम सभी लोक-धर्म नहीं जानती हो। मैं जनताद्वारा किये जानेवाले कठोर अपवाद (निन्दा) सहन नहीं कर सकता। (तब) उन सभी (मछलियों)-ने कहा—क्या तुम स्वच्छन्दतासे विचरते हुए तपस्वी गालवको दो कन्याओंके साथ नहीं देख रहे हो? यदि धर्मात्मा एवं तपस्वी होते हुए भी वे लोक-निन्दासे नहीं डरते तो जलमें रहनेवाले तुम क्यों डर रहे हो? उसके बाद उस तिमि (मत्स्य)-ने उनसे कहा—तपस्वी लोक-निन्दाको नहीं जानते एवं प्रेममें अन्धा होनेसे प्रचण्डमूर्ख बनकर लोक-निन्दाके भयको भी नहीं समझते॥ २१—२४॥

मत्स्यके उस वचनको सुनकर गालव लज्जित हो गये। (फिर तो) वे जितेन्द्रिय मुनि जलमें निमग्न होनेपर भी ऊपर नहीं आये, भीतर ही डूबे रहे। वे दोनों कदली-सदृश ऊरूवाली सुन्दरियाँ स्नान करनेके बाद जलसे बाहर निकल कर तीरपर खड़ी हो गयीं एवं मुनिश्रेष्ठका दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठित होकर उनकी प्रतीक्षा करने लगीं। पुष्करकी यात्रा पूरी होनेपर सभी ऋषि, राजा और नगरवासी लोग जहाँसे आये थे, वहाँ चले गये। वहाँ केवल सुन्दर दाँतोंवाली एवं पतली सुन्दर शरीरवाली विश्वकर्माकी कन्या चित्राङ्गदा उन दोनों कृशोदरियों (कन्याओं)-को देखती हुई रह गयी॥ २५—२८॥

वे दोनों भी (उसे) देखती एवं गालवकी प्रतीक्षा करती हुई निर्जन तीर्थमें पड़ी रहीं और गालव जलके

ततोऽभ्यागाद् वेदवती नाम्ना गन्धर्वकन्यका।
पर्जन्यतनया साध्वी घृताचीगर्भसम्भवा॥ ३०

सा चाभ्येत्य जले पुण्ये स्नात्वा मध्यमपुष्करे।
ददर्श कन्यात्रितयमुभयोस्तटयोः स्थितम्॥ ३१

चित्राङ्गदामथाभ्येत्य पर्यपृच्छदनिष्ठुरम्।
कासि केन च कार्येण निर्जने स्थितवत्यसि॥ ३२

सा तामुवाच पुत्रीं मां विन्दस्व सुरवर्धकेः।
चित्राङ्गदेति सुश्रोणि विख्यातां विश्वकर्मणः॥ ३३

साहमभ्यागता भद्रे स्नातुं पुण्यां सरस्वतीम्।
नैमिषे काञ्चनाक्षीं तु विख्यातां धर्ममातरम्॥ ३४

तत्रागताथ राज्ञाऽहं दृष्ट्वा वैदर्भकेण हि।
सुरथेन स कामार्तो मामेव शरणं गतः॥ ३५

मयात्मा तस्य दत्तश्च सखीभिर्वार्यमाणया।
ततः शप्ताऽस्मि तातेन वियुक्तास्मि च भूभुजा॥ ३६

मर्तुं कृतमतिर्भद्रे वारिता गुह्यकेन च।
श्रीकण्ठमगमं द्रष्टुं ततो गोदावरं जलम्॥ ३७

तस्मादिमं समायाता तीर्थप्रवरमुत्तमम्।
न चापि दृष्टः सुरथः स मनोह्लादनः पतिः॥ ३८

भवती चात्र का बाले वृत्ते यात्राफलेऽधुना।
समागता हि तच्छंस मम सत्येन भामिनि॥ ३९

साब्रवीच्छ्रूयतां याऽस्मि मन्दभाग्या कृशोदरी।
यथा यात्राफले वृत्ते समायाताऽस्मि पुष्करम्॥ ४०

पर्जन्यस्य घृताच्यां तु जाता वेदवतीति हि।
रममाणा वनोद्देशे दृष्टाऽस्मि कपिना सखि॥ ४१

स चाभ्येत्याब्रवीत् का त्वं यासि देववतीति हि।
आनीतास्याश्रमात् केन भूपृष्ठान्मेरुपर्वतम्॥ ४२

ततो मयोक्तो नैवास्मि कपे देववतीत्यहम्।
नाम्ना वेदवतीत्येवं मेरोरपि कृताश्रया॥ ४३

भीतर ही स्थित रहे। उसके बाद वेदवती नामकी गन्धर्व-कन्या वहाँ आयी। वह साध्वी घृताचीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी एवं पर्जन्य नामक गन्धर्वकी पुत्री थी। उसने आकर मध्यम पुष्करतीर्थके पवित्र जलमें स्नान किया और दोनों तटोंपर स्थित (उन) तीनों कन्याओंको देखा। इसके बाद चित्राङ्गदाके समीप जाकर उसने सरलतासे पूछा—तुम कौन हो? और किस कार्यसे इस निर्जन स्थानमें स्थित हो?॥ २९—३२॥

उस (चित्राङ्गदा)-ने उस (वेदवती)-से कहा—हे सुश्रोणि! मुझे देवशिल्पी विश्वकर्माकी चित्राङ्गदा नामसे प्रसिद्ध पुत्री जानो। भद्रे! मैं नैमिषमें धर्मकी जननी काञ्चनाक्षी नामसे प्रसिद्ध पवित्र सरस्वती नदीमें स्नान करने आयी थी। वहाँ आनेपर विदर्भवंशमें उत्पन्न राजा सुरथने मुझे देखा और कामपीड़ित होकर मेरी शरणमें आया। सखियोंके रोकनेपर भी मैंने उन्हें अपनेको समर्पित कर दिया। उसके बाद पिताजीने मुझे शाप दे दिया और मैं राजासे वियोगिनी हो गयी॥ ३३—३६॥

भद्रे! मैंने मरनेका विचार किया; परंतु गुह्यकने मुझे रोक दिया। उसके बाद मैं श्रीकण्ठभगवान्‌का दर्शन करनेके लिये गयी और वहाँसे गोदावर जलके निकट गयी, (और अब) वहाँसे मैं इस श्रेष्ठ उत्तम तीर्थमें आ गयी हूँ। किंतु मनको आनन्दित करनेवाले उन सुरथ पतिको मैंने नहीं देखा। बाले! यात्राफलके समाप्त होनेपर (पर्वकी समाप्ति हो जानेपर) आज यहाँ आनेवाली आप कौन हैं? भामिनि! मुझे सच-सच बतलाओ। उसने कहा—कृशोदरि! मैं मन्दभागिनी कौन हूँ तथा यात्राफलके समाप्त होनेपर पुष्करमें क्यों आयी हूँ, उसे सुनो॥ ३७—४०॥

मैं पर्जन्य नामक गन्धर्वकी पुत्री हूँ तथा घृताचीके गर्भसे उत्पन्न हुई हूँ। मेरा नाम वेदवती है। सखि! वनप्रदेशमें भ्रमण कर रही मुझको एक वन्दरने देखा। उसने समीपमें आकर मुझसे कहा—तुम कौन हो? कहाँ जा रही हो? (निश्चय ही तुम) देववती हो। पृथ्वीपर रहनेवाले आश्रमसे मेरुपर्वतपर तुम्हें कौन लाया है? इसपर मैंने कहा—कपे! मैं देववती नहीं हूँ, मेरा नाम वेदवती है। मेरुपर्वतपर ही मैंने अपना

ततस्तेनातिदुष्टेन वानरेण ह्यभिद्रुता।
समारूढास्मि सहसा बन्धुजीवं नगोत्तमम्॥ ४४

तेनापि वृक्षस्तरसा पादाक्रान्तस्त्वभज्यत।
ततोऽस्य विपुलां शाखां समालिङ्ग्य स्थिता त्वहम्॥ ४५

ततः प्लवङ्गमो वृक्षं प्राक्षिपत् सागराम्भसि।
सह तेनैव वृक्षेण पतितास्म्यहमाकुला॥ ४६

ततोऽम्बरतलाद् वृक्षं निपतन्तं यदृच्छया।
ददृशुः सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥ ४७

ततो हाहाकृतं लोकैर्मां पतन्तीं निरीक्ष्य हि।
ऊचुश्च सिद्धगन्धर्वाः कष्टं सेयं महात्मनः॥ ४८

इन्द्रद्युम्नस्य महिषी गदिता ब्रह्मणा स्वयम्।
मनोः पुत्रस्य वीरस्य सहस्रक्रतुयाजिनः॥ ४९
तां वाणीं मधुरां श्रुत्वा मोहमस्म्यागता ततः।
न च जाने स केनापि वृक्षश्छिन्नः सहस्रधा॥ ५०

ततोऽस्मि वेगाद् बलिना हुतानलसखेन हि।
समानीतास्म्यहमिमं त्वं दृष्टा चाद्य सुन्दरि॥ ५१

तदुत्तिष्ठस्व गच्छावः पृच्छावः क इमे स्थिते।
कन्यके अनुपश्ये हि पुष्करस्योत्तरे तटे॥ ५२

एवमुक्त्वा वराङ्गी सा तया सुतनुकन्यया।
जगाम कन्यके द्रष्टुं प्रष्टुं कार्यसमुत्सुका॥ ५३
ततो गत्वा पर्यपृच्छत् ते ऊचतुरुभे अपि।
याथातथ्यं तयोस्ताभ्यां स्वमात्मानं निवेदितम्॥ ५४
ततस्ताश्चतुरोपीह सप्तगोदावरं जलम्।
सम्प्राप्य तीर्थे तिष्ठन्ति अर्चन्त्यो हाटकेश्वरम्॥ ५५
ततो बहून् वर्षगणान् बभ्रमुस्ते जनास्त्रयः।
तासामर्थाय शकुनिर्जाबालिः स ऋतध्वजः॥ ५६
भारवाही ततः खिन्नो दशाब्दशतिके गते।
काले जगाम निर्वेदात् समं पित्रा तु शाकलम्॥ ५७

आश्रम बना लिया है। उसके बाद अत्यन्त दुष्ट उस बन्दरसे खदेड़ी जाती हुई मैं बन्धुजीव (गुलदुपहरिया)-के उत्तम वृक्षपर शीघ्रतासे चढ़ गयी॥ ४१—४४॥

उसने शीघ्र ही पैरके आघातसे उस वृक्षको तोड़ दिया। उसके बाद मैं उस वृक्षकी एक बड़ी डालीको पकड़कर स्थित रही। फिर बन्दरने उस वृक्षको समुद्रके जलमें फेंक दिया। मैं अत्यन्त घबड़ाकर उस वृक्षके साथ ही जलमें गिर पड़ी। उसके बाद चर और अचर सभी प्राणियोंने आकाशसे गिरनेवाले उस वृक्षको देखा। उसके बाद उसीके साथ मुझको भी गिरती हुई देखकर सभी लोग हाहाकार करने लगे। सिद्ध और गन्धर्वलोग कहने लगे—हाय! यह कष्टकी बात है। इसके सम्बन्धमें तो ब्रह्माने स्वयं कहा था कि यह कन्या हजारों यज्ञोंके करनेवाले मनुके वीर पुत्र इन्द्रद्युम्नकी राजरानी होगी (पर यह क्या हो गया!)॥ ४५—४९॥

उस मधुर वाणीको सुननेके बाद मुझे मूर्च्छा आ गयी। मैं यह नहीं जानती कि उस वृक्षको किसने सहस्रों टुकड़ोंमें काट डाला। उसके बाद अग्निके सखा बलवान् वायुने मुझे शीघ्रतासे यहाँ ला दिया है। सुन्दरि! तुमको आज मैंने यहाँ देखा है। इसलिये उठो, हम दोनों चलें; और फिर पूछें तथा देखें कि पुष्करतीर्थके उत्तरी तटपर दिखायी देनेवाली ये दोनों कन्याएँ कौन हैं? ऐसा कहकर इस कार्यके करनेमें उत्कण्ठित वह सुन्दरी उस सुन्दर तथा दुर्बल देहवाली कन्याके साथ उस पारकी दोनों कन्याओंको देखने तथा वस्तुस्थिति पूछनेके लिये वहाँ गयी॥ ५०—५३॥

उसके बाद वहाँ जाकर उसने उन दोनोंसे पूछा। उन दोनोंने अपनी सच्ची घटना उन दोनोंसे बतायीं। उसके बाद चारों कन्याएँ सप्तगोदावर जलके समीप जाकर हाटकेश्वर भगवान्‌की पूजा करती हुई तीर्थमें रहने लगीं। इधर शकुनि, जाबालि और ऋतध्वज—ये तीनों व्यक्ति उन कन्याओंके लिये अनेक वर्षोंतक भ्रमण करते रहे। तब एक हजार वर्ष बीत जानेपर भार-वहन करनेवाले (जाबालि) खिन्न होकर पिताके साथ शाकल जनपदमें चले गये॥ ५४—५७॥

तस्मिन्नरपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्नो मनोः सुतः।
समध्यास्ते स विज्ञाय सार्घपात्रो विनिर्ययौ॥ ५८

सम्यक् सम्पूजितस्तेन सजाबालिर्ऋतध्वजः।
स चेक्ष्वाकुसुतो धीमान् शकुनिर्भ्रातृजोऽर्चितः॥ ५९

ततो वाक्यं मुनिः प्राह इन्द्रद्युम्नमृतध्वजः।
राजन् नष्टाऽबलास्माकं नन्दयन्तीति विश्रुता॥ ६०

तस्यार्थे चैव वसुधा अस्माभिरटिता नृप।
तस्मादुत्तिष्ठ मार्गस्व साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥ ६१

अथोवाच नृपो ब्रह्मन् ममापि ललनोत्तमा।
नष्टा कृतश्रमस्यापि कस्याहं कथयामि ताम्॥ ६२

आकाशात् पर्वताकारः पतनामो नगोत्तमः।
सिद्धानां वाक्यमाकर्ण्य बाणैश्छिन्नः सहस्त्रधा॥ ६३

न चैव सा वरारोहा विभिन्ना लाघवान्मया।
न च जानामि सा कुत्र तस्माद् गच्छामि मार्गितुम्॥ ६४

इत्येवमुक्त्वा स नृपः समुत्थाय त्वरान्वितः।
स्यन्दनानि द्विजाभ्यां स भ्रातृपुत्राय चार्पयत्॥ ६५

तेऽधिरुह्य रथांस्तूर्णं मार्गन्ते वसुधां क्रमात्।
बदर्याश्रममासाद्य ददृशुस्तपसां निधिम्॥ ६६

तपसा कर्शितं दीनं मलपङ्कजटाधरम्।
निःश्वासायासपरमं प्रथमे वयसि स्थितम्॥ ६७

तमुपेत्याब्रवीद् राजा इन्द्रद्युम्नो महाभुजः।
तपस्विन् यौवने घोरमास्थितोऽसि सुदुश्चरम्॥ ६८

तपः किमर्थं तच्छंस किमभिप्रेतमुच्यताम्।
सोऽब्रवीत् को भवान् ब्रूहि ममात्मानं सुहृत्तया॥ ६९

परिपृच्छसि शोकार्तं परिखिन्नं तपोऽन्वितम्।
स प्राह राजाऽस्मि विभो तपस्विञ्शाकले पुरे॥ ७०

मनोः पुत्रः प्रियो भ्राता इक्ष्वाकोः कथितं तव।
स चास्मै पूर्वचरितं सर्वं कथितवान् नृपः॥ ७१

वहाँ मनुके पुत्र श्रीमान् राजा इन्द्रद्युम्न निवास कर रहे थे। वे इस समाचारको जानकर अर्घपात्र हाथमें लिये बाहर निकले। उन्होंने विधिपूर्वक सुन्दर रीतिसे जाबालि और ऋतध्वजकी पूजा की तथा उस इक्ष्वाकुनन्दन बुद्धिमान् भतीजे शकुनिकी भी अर्चना की। उसके बाद ऋतध्वज मुनिने इन्द्रद्युम्नसे कहा—राजन्! हमलोगोंकी नन्दयन्ती नामसे प्रसिद्ध (अयानी) कन्या खो गयी है। राजन्! उसके लिये हमलोगोंने सारी पृथ्वीपर भ्रमण किया है। इसलिये (कृपया) उठिये, पता लगाइये और हमारी सहायता कीजिये॥ ५८—६१॥

इसके बाद राजाने कहा—ब्रह्मन्! मेरी भी एक उत्तम लाडिली कन्या खो गयी है। उसे ढूँढ़नेमें मैं परिश्रम कर चुका हूँ। उसके विषयमें मैं किससे कहूँ। सिद्धोंका वचन सुनकर आकाशसे नीचे गिरनेवाले पर्वतके समान श्रेष्ठ वृक्षको मैंने बाणोंसे हजारों टुकड़ोंमें काट डाला। मेरे हस्तकौशलसे उस सुन्दरी कन्याको चोट नहीं लगी। मैं नहीं जानता हूँ कि वह कहाँ है? अतः उसे ढूँढ़नेके लिये मैं (भी) चल रहा हूँ। ऐसा कहनेके बाद वे राजा शीघ्रतासे उठे। उन्होंने उन दोनों ब्राह्मणों तथा अपने भतीजेके लिये रथ दे दिये॥ ६२—६५॥

वे रथोंपर चढ़कर शीघ्रतासे क्रमशः पृथ्वीपर खोज करने लगे। (इस क्रममें) उन लोगोंने बदरिकाश्रममें जाकर तपस्या करनेसे दुबले और धूल-मिट्टीसे भरे, जटा धारण किये हुए, जोर-जोरसे साँस ले रहे एक तपोमूर्ति युवकको देखा। महाबाहु राजा इन्द्रद्युम्नने उसके पास जाकर कहा—तपस्विन्! यह बतलाओ कि युवा-अवस्थामें ही तुम अत्यन्त दुष्कर कठोर तप क्यों कर रहे हो? यह भी बतलाओ कि तुम्हारी अभिलाषा क्या है? उसने कहा—आप मुझसे यह बतलायें कि चिन्तासे ग्रस्त अत्यन्त दुःखी एवं तपश्चर्यासे युक्त मुझसे प्रेमपूर्वक पूछनेवाले आप कौन हैं? उसने कहा—तपस्विन्! विभो! मैं मनुका पुत्र एवं इक्ष्वाकुका प्रिय भाई शाकलपुरका राजा हूँ। मैंने अपना परिचय कह दिया। उस राजाने भी उनसे पहलेकी सारी कथा कह सुनायी॥ ६६—७१॥

श्रुत्वा प्रोवाच राजर्षिर्मा मुञ्चस्व कलेवरम्।
आगच्छ यामि तन्वङ्गीं विचेतुं भ्रातृजोऽसि मे॥ ७२

इत्युक्त्वा सम्परिष्वज्य नृपं धमनिसंततम्।
समारोप्य रथं तूर्णं तापसाभ्यां न्यवेदयत्॥ ७३

ऋतध्वजः सपुत्रस्तु तं दृष्ट्वा पृथिवीपतिम्।
प्रोवाच राजन्नेह्येहि करिष्यामि तव प्रियम्॥ ७४

यासौ चित्राङ्गदा नाम त्वया दृष्टा हि नैमिषे।
सप्तगोदावरं तीर्थं सा मयैव विसर्जिता॥ ७५
तदागच्छथ गच्छामः सौदेवस्यैव कारणात्।
तत्रास्माकं समेष्यन्ति कन्यास्तिस्त्रस्तथापराः॥ ७६
इत्येवमुक्त्वा स ऋषिः समाश्वास्य सुदेवजम्।
शकुनिं पुरतः कृत्वा सेन्द्रद्युम्नः सपुत्रकः॥ ७७
स्यन्दनेनाश्वयुक्तेन गन्तुं समुपचक्रमे।
सप्तगोदावरं तीर्थं यत्र ताः कन्यका गताः॥ ७८
एतस्मिन्नन्तरे तन्वी घृताची शोकसंयुता।
विचचारोदयगिरिं विचिन्वन्ती सुतां निजाम्॥ ७९
तमाससाद च कपिं पर्यपृच्छत् तथाप्सराः।
किं बाला न त्वया दृष्टा कपे सत्यं वदस्व माम्॥ ८०

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा स कपिः प्राह बालिकाम्।
दृष्टा देववती नाम्ना मया न्यस्ता महाश्रमे॥ ८१

कालिन्द्या विमले तीर्थे मृगपक्षिसमन्विते।
श्रीकण्ठायतनस्याग्रे मया सत्यं तवोदितम्॥ ८२

सा प्राह वानरपते नाम्ना वेदवतीति सा।
न हि देववती ख्याता तदागच्छ व्रजावहे॥ ८३
घृताच्यास्तद्वचः श्रुत्वा वानरस्त्वरितक्रमः।
पृष्ठतोऽस्याः समागच्छन्नदीमन्वेव कौशिकीम्॥ ८४
ते चापि कौशिकीं प्राप्ता राजर्षिप्रवरास्त्रयः।
द्वितयं तापसाभ्यां च रथैः परमवेगिभिः॥ ८५
अवतीर्य रथेभ्यस्ते स्नातुमभ्यागमन् नदीम्।
घृताच्यपि नदीं स्नातुं सुपुण्यामाजगाम ह॥ ८६
तामन्वेव कपिः प्रायाद् दृष्टो जाबालिना तथा।
दृष्ट्वैव पितरं प्राह पार्थिवं च महाबलम्॥ ८७

(ऊपर कही बातोंको) सुनकर राजर्षिने कहा— तुम अपने शरीरका त्याग मत करो। तुम मेरे भतीजे हो। आओ, मैं उस सुन्दरीकी खोज करने जा रहा हूँ। इतना कहकर उन्होंने उभरी शिराओंसे भरे हुए राजाको गले लगाया और उन्हें रथपर चढ़ाकर शीघ्र उन दोनों तपस्वियोंके पास पहुँचा दिया। पुत्रके सहित ऋतध्वजने उन राजाको देखकर कहा—राजन्! आइये! आइये! मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा। आपने नैमिषारण्यमें जिस चित्राङ्गदाको देखा था, उसे मैंने ही सप्तगोदावर नामके तीर्थमें छोड़ दिया था॥ ७२—७५॥

तो आइये, हमलोग सुदेवके पुत्रके कार्यसे ही वहाँ चलें। वहाँपर हमलोगोंको अन्य तीन कन्याएँ भी मिलेंगी। इस प्रकार कहकर उन्होंने ऋषि सुदेवके पुत्रको सान्त्वना दे करके एवं शकुनिको आगे कर इन्द्रद्युम्न और पुत्रके साथ घोड़े जुते रथसे सप्तगोदावर तीर्थमें जानेकी योजना बनायी—जहाँ वे कन्याएँ गयी थीं। इस बीच दुर्बलाङ्गी घृताची शोकसे चिन्तित होकर अपनी कन्याको ढूँढ़ती हुई उदयगिरिपर विचरण करने लगी॥ ७६—७९॥

वहाँ घृताची अप्सराको वह बन्दर मिल गया। घृताची अप्सराने उससे पूछा—कपे! मुझसे सच कहो कि क्या तुमने लड़कीको नहीं देखा है? उसके वचनको सुनकर उस कपिने कहा—मैंने देववती नामकी बालिकाको देखा है और उसे मृगों तथा पक्षियोंसे भरे कालिन्दीके विमलतीर्थमें श्रीकण्ठके मन्दिरके सामने स्थित महाश्रममें रख दिया है। मैंने तुमसे यह सत्य बात कही है। उस (घृताची)-ने कहा—कपिराज! वह वेदवती नामसे विख्यात है, वह देववती नहीं है। तो आओ; हम दोनों वहाँ चलें॥ ८०—८३॥

घृताचीकी उस बातको सुनकर बन्दर शीघ्रतासे पग बढ़ाता हुआ उसके पीछे-पीछे कौशिकी नदीकी ओर चला। वे तीनों श्रेष्ठ राजर्षि भी दोनों तपस्वियों (जाबालि और ऋतध्वज)-के साथ बहुत तेज चलनेवाले रथोंपर चढ़कर कौशिकी नदीके समीप पहुँचे। वे लोग रथसे उतरकर स्नान करनेके लिये नदीके निकट आये। घृताची भी उस परम पवित्र नदीमें स्नान करने आयी। बन्दर भी उनके पीछे ही आ गया। जाबालिने उसे देखा। देखते ही उन्होंने पिता एवं महाबलशाली राजासे कहा—॥ ८४—८७॥

स एव पुनरायाति वानरस्तात वेगवान्।
पूर्वं जटास्वेव बलाद्येन बद्धोऽस्मि पादपे॥ ८८

तज्जाबालिवचः श्रुत्वा शकुनिः क्रोधसंयुतः।
सशरं धनुरादाय इदं वचनमब्रवीत्॥ ८९

ब्रह्मन् प्रदीयतां मह्यमाज्ञां तात वदस्व माम्।
यावदेनं निहन्म्यद्य शरेणैकेन वानरम्॥ ९०

इत्येवमुक्ते वचने सर्वभूतहिते रतः।
महर्षिः शकुनिं प्राह हेतुयुक्तं वचो महत्॥ ९१

तात! यह वही बन्दर फिर तेजीसे (यहाँ) आ रहा है, जिसने पहले मुझे जबर्दस्ती जटाजालसे बड़के पेड़में बाँध दिया था। जाबालिके उस वचनको सुनकर अत्यन्त कुपित हुए शकुनिने बाणसहित धनुषको लेकर यह वचन कहा—ब्रह्मन्! मुझे आज्ञा दीजिये; तात! मुझसे कहिये; क्या मैं एक बाणसे ही इस बन्दरको मार डालूँ? ऐसा कहनेपर समस्त प्राणियोंकी भलाईमें लगे रहनेवाले महर्षिने शकुनिसे अत्यन्त युक्तियुक्त वचन कहा—॥ ८८—९१॥

न कश्चित्तात केनापि बध्यते हन्यतेऽपि वा।
वधबन्धौ पूर्वकर्मवश्यौ नृपतिनन्दन॥ ९२

इत्येवमुक्त्वा शकुनिमृषिर्वानरमब्रवीत्।
एह्येहि वानरास्माकं साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥ ९३

इत्येवमुक्तो मुनिना बाले स कपिकुञ्जरः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत्।
ममाज्ञा दीयतां ब्रह्मञ् शाधि किं करवाण्यहम्॥ ९४

इत्युक्ते प्राह स मुनिस्तं वानरपतिं वचः।
मम पुत्रस्त्वयोद्बद्धो जटासु वटपादपे॥ ९५

तात! (वस्तुतः) न तो किसीको कोई बाँधता है और न मारता ही है। नृपतिनन्दन! वध और बन्धन पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंके फलाधीन होते हैं। शकुनिसे इस प्रकार कहकर मुनिने बन्दरसे कहा—बन्दर! आओ, आओ! तुम्हें हमलोगोंकी सहायता करनी चाहिये। बाले! मुनिके ऐसा कहनेपर उस श्रेष्ठ कपिने करबद्ध प्रणाम करते हुए यह कहा—ब्रह्मन्! मुझे आज्ञा दीजिये; मुझे निर्देश दीजिये कि मैं क्या करूँ? उसके ऐसा कहनेपर मुनिने उस कपिपतिसे यह वचन कहा—तुमने मेरे पुत्रको बड़के पेड़में जटाओंसे बाँध रखा था॥ ९२—९५॥

न चोन्मोचयितुं वृक्षाच्छक्नुयामोऽपि यत्नतः।
तदनेन नरेन्द्रेण त्रिधा कृत्वा तु शाखिनः॥ ९६

शाखां वहति मत्सूनुः शिरसा तां विमोचय।
दशवर्षशतान्यस्य शाखां वै वहतोऽगमन्॥ ९७

न च सोऽस्ति पुमान् कश्चिद् यो ह्युन्मोचयितुं क्षमः।
स ऋषेर्वाक्यमाकर्ण्य कपिर्जाबालिनो जटाः॥ ९८

शनैरुन्मोचयामास क्षणादुन्मोचिताश्च ताः।
ततः प्रीतो मुनिश्रेष्ठो वरदोऽभूदृतध्वजः॥ ९९

विशेष यत्न करनेपर भी हमलोग उस पेड़से इसको उन्मुक्त (अलग) नहीं कर सके। इसलिये इस राजाने उस वृक्षके तीन टुकड़े कर दिये। मेरा पुत्र आजतक सिरपर उसकी डालीको ढो रहा है। अब तुम उसे उन्मुक्त कर दो। इस डालीको ढोते हुए उसको एक हजार वर्ष बीत गये हैं। ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो इसे छुड़ानेमें समर्थ हो। उस बन्दरने ऋषिकी बात सुनकर जाबालिकी जटाओंको धीरे-धीरे खोल दिया। वे जटाएँ क्षणभरमें ही खुल गयीं। उसके बाद प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ ऋतध्वज वर देनेके लिये तैयार हो गये॥ ९६—९९॥

कपिं प्राह वृणीष्व त्वं वरं यन्मनसेप्सितम्।
ऋतध्वजवचः श्रुत्वा इमं वरमयाचत॥ १००

विश्वकर्मा महातेजाः कपित्वे प्रतिसंस्थितः।
ब्रह्मन् भवान् वरं मह्यं यदि दातुमिहेच्छति॥ १०१

तत्त्वदत्तो महाघोरो मम शापो निवर्त्यताम्।
चित्राङ्गदायाः पितरं मां त्वष्टारं तपोधन॥ १०२

(फिर) उन्होंने बन्दरसे कहा—तुम अपना मनोऽभिलषित वर माँगो। ऋतध्वजकी बात सुनकर कपि-योनिमें स्थित महातेजस्वी विश्वकर्माने यह वर माँगा—ब्रह्मन्! यदि आप मुझे वर देनेके लिये इच्छा कर रहे हैं तो मुझे दिये गये अपने महाघोर शापका निवारण कर दें। तपोधन! चित्राङ्गदाके पिता मुझ त्वष्टाको आप पहचान लें।

अभिजानीहि भवतः शापाद्वानरतां गतम्।
सुबहूनि च पापानि मया यानि कृतानि हि॥ १०३
कपिचापल्यदोषेण तानि मे यान्तु संक्षयम्।
ततो ऋतध्वजः प्राह शापस्यान्तो भविष्यन्ति॥ १०४
यदा घृताच्यां तनयं जनिष्यसि महाबलम्।
इत्येवमुक्तः संहृष्टः स तदा कपिकुञ्जरः॥ १०५

आपके शापसे (ही) मैं बन्दर हो गया हूँ। कपिकी (स्वाभाविक) चञ्चलतारूपी दोषसे मैंने जिन बहुत-से पापोंको किया है, वे सभी नष्ट हो जायँ। उसके बाद ऋतध्वजने कहा—जब तुम घृताचीसे महाबलवान् पुत्र उत्पन्न करोगे तब शापका अन्त होगा। तब ऐसा कहनेपर वह कपिश्रेष्ठ अत्यन्त हर्षित हो गया॥ १००—१०५॥

स्नातुं तूर्णं महानद्यामवतीर्णः कृशोदरि।
ततस्तु सर्वे क्रमशः स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः॥ १०६

जग्मुर्हृष्टा रथेभ्यस्ते घृताची दिवमुत्पतत्।
तमन्वेव महावेगः स कपिः प्लवतां वरः॥ १०७

ददृशे रूपसम्पन्नां घृताचीं स प्लवङ्गमः।
सापि तं बलिनां श्रेष्ठं दृष्ट्वैव कपिकुञ्जरम्॥ १०८

ज्ञात्वाऽथ विश्वकर्माणं कामयामास कामिनी।
ततोऽनुपर्वतश्रेष्ठे ख्याते कोलाहले कपिः॥ १०९

रमयामास तां तन्वीं सा च तं वानरोत्तमम्।
एवं रमन्तौ सुचिरं सम्प्राप्तौ विन्ध्यपर्वतम्॥ ११०

कृशोदरि! वह शीघ्र ही महानदीमें स्नान करनेके लिये उतरा। उसके बाद वे सब क्रमशः स्नानकर पितरों और देवोंके तर्पण-अर्चन कर रथसे चले गये एवं घृताची स्वर्गमें उड़ गयी। महावेगशाली श्रेष्ठ कपिने भी उसका अनुसरण किया। उस बन्दरने रूपसे सम्पन्न घृताचीको देखा। उस कामिनी (घृताची)-ने भी बलवानोंमें श्रेष्ठ उत्तम कपिको देखकर एवं उसे विश्वकर्मा जानकर उसकी कामना की। उसके बाद कोलाहल नामसे विख्यात श्रेष्ठ पर्वतपर उस बन्दरने घृताचीके साथ एवं घृताचीने उस श्रेष्ठ बन्दरके साथ आनन्द-क्रीड़ा की। इस प्रकार बहुत दिनोंतक क्रीड़ा करते हुए वे दोनों विन्ध्यपर्वतपर पहुँचे॥ १०६—११०॥

रथैः पञ्चापि तत्तीर्थं सम्प्राप्तास्ते नरोत्तमाः।
मध्याह्नसमये प्रीताः सप्तगोदावरं जलम्॥ १११

प्राप्य विश्रामहेत्वर्थमवतेरुस्त्वरान्विताः।
तेषां सारथयश्चाश्वान् स्नात्वा पीतोदकाप्लुतान्॥ ११२

रमणीये वनोद्देशे प्रचारार्थे समुत्सृजन्।
शाड्वलाढ्येषु देशेषु मुहूर्त्तादेव वाजिनः॥ ११३

तृप्ताः समाद्रवन् सर्वे देवायतनमुत्तमम्।
तुरङ्गखुरनिर्घोषं श्रुत्वा ता योषितां वराः॥ ११४

किमेतदिति चोक्त्वैव प्रजग्मुर्हाटकेश्वरम्।
आरुह्य बलभीं तास्तु समुदैक्षन्त सर्वशः॥ ११५

वे पाँचों श्रेष्ठ व्यक्ति भी उल्लसित होकर रथद्वारा दोपहरके समय सप्तगोदावर जलवाले उस तीर्थमें पहुँचे। वहाँ जाकर वे विश्राम करनेके लिये शीघ्रतासे नीचे उतरे। उनके सारथियोंने भी स्नान किया एवं घोड़ोंको जल पिलाकर तथा नहला-धुलाकर (उन्हें) सुन्दर वन-प्रदेशमें विचरण करनेके लिये छोड़ दिया। मुहूर्तभरमें ही हरियालीसे हरे-भरे स्थानमें वे घोड़े तृप्त हो गये। उसके बाद वे सभी (घोड़े) उत्तम देव-मन्दिरके पास दौड़ने लगे। घोड़ोंके टापका शब्द सुनकर श्रेष्ठ स्त्रियाँ 'यह क्या है' ऐसा कहकर हाटकेश्वर (-के मन्दिरमें) गयीं एवं छतपर चढ़कर सभी ओर देखने लगीं॥ १११—११५॥

अपश्यंस्तीर्थसलिले स्नायमानान् नरोत्तमान्।
ततश्चित्राङ्गदा दृष्ट्वा जटामण्डलधारिणम्।
सुरथं हसती प्राह संरोहत्पुलका सखीम्॥ ११६

योऽसौ युवा नीलघनप्रकाशः
संदृश्यते दीर्घभुजः सुरूपः।

उन कन्याओंने तीर्थके जलमें स्नान करते हुए उन श्रेष्ठ पुरुषोंको देखा। फिर चित्राङ्गदाने जटा-मण्डल धारण करनेवाले नृपति सुरथको देखा। रोमाञ्चित होकर उसने हँसती हुई सखीसे कहा—नीले मेघके समान वर्ण तथा लम्बी भुजाओंवाला वह जो सुन्दर युवा पुरुष

स एव नूनं नरदेवसूनु-
वृतो मया पूर्वतरं पतिर्यः॥ ११७

यश्चैष जाम्बूनदतुल्यवर्णः
श्वेतं जटाभारमधारयिष्यत्।
स एष नूनं तपतां वरिष्ठो
ऋतध्वजो नात्र विचारमस्ति॥ ११८

ततोऽब्रवीदथो हृष्टा नन्दयन्ती सखीजनम्।
एषोऽपरोऽस्यैव सुतो जाबालिनात्र संशयः॥ ११९

इत्येवमुक्त्वा वचनं बलभ्या अवतीर्य च।
समासताग्रतः शम्भोर्गायन्त्यो गीतिकां शुभाम्॥ १२०

नमोऽस्तु शर्व शम्भो त्रिनेत्र चारुगात्र त्रैलोक्यनाथ उमापते दक्षयज्ञविध्वंसकर कामाङ्गनाशन घोर पापप्रणाशन महापुरुष महोग्रमूर्ते सर्वसत्त्वक्षयंकर शुभङ्कर महेश्वर त्रिशूलधारिन् स्मरारे गुहावासिन् दिग्वासः महाशङ्खशेखर जटाधर कपालमाला-विभूषितशरीर वामचक्षुः वामदेवप्रजाध्यक्ष भगाक्ष्णोः क्षयङ्कर भीमसेन महासेननाथ पशुपते कामाङ्गदहन चत्वरवासिन् शिव महादेव ईशान शङ्कर भीम भव वृषभध्वज जटिल प्रौढ महानाट्येश्वर भूरिरत्न अविमुक्तक रुद्र रुद्रेश्वर स्थाणो एकलिङ्ग कालिन्दीप्रिय श्रीकण्ठ नीलकण्ठ अपराजित रिपुभयङ्कर सन्तोषपते वामदेव अघोर तत्पुरुष महाघोर अघोरमूर्ते शान्त सरस्वतीकान्त कीनाट सहस्रमूर्ते महोद्भव विभो कालाग्निरुद्र रुद्र हर महीधरप्रिय सर्वतीर्थाधिवास हंस कामेश्वर केदाराधिपते परिपूर्ण मुचुकुन्द मधुनिवासिन् कृपाणपाणे भयङ्कर विद्याराज

दिखलायी पड़ रहा है, निश्चय ही पहले (जन्ममें) मैंने उसी राजपुत्रको पतिरूपसे वरण किया था। इसमें कुछ विचारनेकी आवश्यकता नहीं है। स्वर्णके समान वर्णवाले जो व्यक्ति श्वेत जटाभारको धारण किये हुए हैं वे निश्चय ही तपस्वियोंमें श्रेष्ठ ऋतध्वज ही हैं (इसमें शङ्का नहीं है)। उसके बाद नन्दयन्तीने सखियोंसे हर्षित होकर कहा—वह दूसरा व्यक्ति निःसन्देह इन्हीं ऋतध्वजके पुत्र जाबालि हैं। इस प्रकार कहकर वे सभी छतसे उतरीं एवं शङ्करके सामने बैठकर कल्याण करनेवाले गीतका गान करने (स्तुति करने) लगीं—॥ ११६—१२०॥

हे शर्व! हे शम्भो! हे तीन नेत्रवाले! हे सुन्दर गात्रवाले! हे तीनों लोकोंके स्वामिन्! हे उमापते! हे दक्ष यज्ञको विध्वस्त करनेवाले! हे कामदेवके नाश करनेवाले! हे घोर! हे पापके नष्ट करनेवाले! हे महापुरुष! हे भयङ्कर मूर्तिवाले! हे सम्पूर्ण प्राणियोंके क्षय करनेवाले! हे शुभ करनेवाले! हे महेश्वर! हे त्रिशूलधारिन्! हे कामशत्रो! हे गुफामें रहनेवाले! हे दिगम्बर! हे महाशङ्खके शिरोभूषणवाले! हे जटाधर! हे कपालमालासे विभूषित शरीरवाले! हे वामचक्षु! हे वामदेव! हे प्रजाध्यक्ष! हे भगाक्षिके क्षयकारिन्! हे भीमसेन! हे महासेननाथ! हे पशुपते! हे कामदेवके जलानेवाले! हे चत्वरवासिन् (चबूतरेपर वास करनेवाले)! हे शिव! हे महादेव! हे ईशान! हे शङ्कर! हे भीम! हे भव! हे वृषभध्वज! हे जटिल! हे प्रौढ! हे महानाट्येश्वर! हे भूरिरत्न (रत्नराशि)! हे अविमुक्तक! हे रुद्र! हे रुद्रेश्वर! हे स्थाणो! हे एकलिङ्ग! हे कालिन्दीप्रिय! हे श्रीकण्ठ! हे नीलकण्ठ! हे अपराजित! हे रिपुभयङ्कर! हे सन्तोषपते! हे वामदेव! हे अघोर! हे तत्पुरुष! हे महाघोर! हे अघोरमूर्ते! हे शान्त! हे सरस्वतीकान्त! हे कीनाट! हे सहस्रमूर्ते! हे महोद्भव! हे विभो! हे कालाग्निरुद्र! हे रुद्र! हे हर! हे महीधरप्रिय! हे सर्वतीर्थाधिवास! हे हंस! हे कामेश्वर! हे केदाराधिपते! हे परिपूर्ण! हे मुचुकुन्द! हे मधुनिवासिन्! हे कपालपाणे! हे भयङ्कर! हे विद्याराज!

सोमराज कामराज रञ्जक अञ्जनराजकन्याहृदचल-
वसते समुद्रशायिन् गजमुख घण्टेश्वर गोकर्ण ब्रह्मयोने
सहस्त्रवक्त्राक्षिचरण हाटकेश्वर नमोऽस्तु ते॥

हे सोमराज! हे कामराज! हे रञ्जक! हे अञ्जनराजकन्या (काली)-के हृदयमें सदा रहनेवाले! हे समुद्रशायिन्! हे गजमुख! हे घण्टेश्वर! हे गोकर्ण! हे ब्रह्मयोने! हे हजार मुख, आँख एवं चरणवाले! हे हाटकेश्वर! आपको नमस्कार है।

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः सर्व एवर्षिपार्थिवाः।
द्रष्टुं त्रैलोक्यकर्तारं त्र्यम्बकं हाटकेश्वरम्॥ १२१

समारूढाश्च सुस्नाता ददृशुर्योषितश्च ताः।
स्थितास्तु पुरतस्तस्य गायन्त्यो गेयमुत्तमम्॥ १२२

ततः सुदेवतनयो विश्वकर्मसुतां प्रियाम्।
दृष्ट्वा हृषितचित्तस्तु संरोहत्पुलको बभौ॥ १२३

ऋतध्वजोऽपि तन्वङ्गीं दृष्ट्वा चित्राङ्गदां स्थिताम्।
प्रत्यभिज्ञाय योगात्मा बभौ मुदितमानसः॥ १२४

ततस्तु सहसाऽभ्येत्य देवेशं हाटकेश्वरम्।
सम्पूजयन्तस्त्र्यक्षं ते स्तुवन्तः संस्थिताः क्रमात्॥ १२५

इसी बीच समस्त ऋषि एवं राजालोग तीनों लोकोंके कर्ता भगवान् त्र्यम्बक हाटकेश्वरका दर्शन करने वहाँ पहुँच गये और भलीभाँति स्नान करनेके बाद ऊपर चढ़कर उन लोगोंने देवताके अभिमुख बैठकर गीत गाती हुई (स्तुति करती हुई) स्त्रियोंको देखा। उसके बाद वसुदेवके पुत्र अपनी प्रिया विश्वकर्माकी पुत्रीको देखकर हर्षसे गद्गद हो गये। योगी ऋतध्वज भी तन्वङ्गी चित्राङ्गदाको वहाँ स्थित देख एवं पहचानकर महान् हर्षमें भर गये। उसके बाद सभी व्यक्ति शीघ्र ही देवाधिदेव हाटकेश्वर भगवान्के निकट गये एवं त्रिलोचनकी पूजाकर क्रमशः खड़े होकर स्तुति करने लगे॥ १२१—१२५॥

चित्राङ्गदापि तान् दृष्ट्वा ऋतध्वजपुरोगमान्।
समं ताभिः कृशाङ्गीभिरभ्युत्थायाभ्यवादयत्॥ १२६

स च ताः प्रतिनन्द्यैव समं पुत्रेण तापसः।
समं नृपतिभिर्हृष्टः संविवेश यथासुखम्॥ १२७

ततः कपिवरः प्राप्तो घृताच्या सह सुन्दरि।
स्नात्वा गोदावरीतीर्थे दिदृक्षुर्हाटकेश्वरम्॥ १२८

ततोऽपश्यत् सुतां तन्वीं घृताची शुभदर्शनाम्।
साऽपि तां मातरं दृष्ट्वा हृष्टाऽभूद्वरवर्णिनी॥ १२९

चित्राङ्गदाने भी उन ऋतध्वज आदिको देखकर उन तन्वङ्गी (कन्याओं)-के साथ उठकर प्रणाम किया। पुत्रसहित उन तपस्वीने उन्हें आशीर्वाद दिया और वे प्रसन्नतासे राजाओंके साथ सुखपूर्वक बैठ गये। सुन्दरि! उसके बाद गोदावरीतीर्थमें स्नानकर हाटकेश्वर भगवान्का दर्शन करनेकी इच्छावाला वह श्रेष्ठ बन्दर भी घृताचीके साथ वहाँ पहुँचा। फिर घृताचीने अपनी शोभाशालिनी कृशाङ्गी पुत्रीको देखा। वह सुन्दरी भी अपनी उस माताको देखकर हर्षित हो गयी॥ १२६—१२९॥

ततो घृताची स्वां पुत्रीं परिष्वज्य न्यपीडयत्।
स्नेहात् सवाष्पनयनां मुहुस्तां परिजिघ्रती॥ १३०

उसके बाद घृताचीने अपनी पुत्रीको भलीभाँति गले लगाया। स्नेहसे आँखोंमें आँसू भरकर वह (अपनी) पुत्रीको बार-बार सूँघने लगी—आशीर्वादात्मक शुभ भावना करने लगी। उसके बाद श्रीमान् ऋतध्वजने

ततो ऋतध्वजः श्रीमान् कपिं वचनमब्रवीत्।
गच्छानेतुं गुह्यकं त्वमञ्जनाद्रौ महाञ्जनम्॥ १३१

कपिसे कहा—तुम महाजन नामके गुह्यकको ले आनेके

पातालादपि दैत्येशं वीरं कन्दरमालिनम्।
स्वर्गाद् गन्धर्वराजानं पर्जन्यं शीघ्रमानय॥ १३२

इत्येवमुक्ते मुनिना प्राह देववती कपिम्।
गालवं वानरश्रेष्ठ इहानेतुं त्वमर्हसि॥ १३३

इत्येवमुक्ते वचने कपिर्मारुतविक्रमः।
गत्वाऽञ्जनं समामन्त्र्य जगामामरपर्वतम्॥ १३४

पर्जन्यं तत्र चामन्त्र्य प्रेषयित्वा महाश्रमे।
सप्तगोदावरे तीर्थे पातालमगमत् कपिः॥ १३५

तत्रामन्त्र्य महावीर्यं कपिः कन्दरमालिनम्।
पातालादभिनिष्क्रम्यं महीं पर्यचरज्जवी॥ १३६

गालवं तपसो योनिं दृष्ट्वा माहिष्मतीमनु।
समुत्पत्यानयच्छीघ्रं सप्तगोदावरं जलम्॥ १३७

तत्र स्नात्वा विधानेन सम्प्राप्तो हाटकेश्वरम्।
ददृशे नन्दयन्ती च स्थितां देववतीमपि॥ १३८

तं दृष्ट्वा गालवं चैव समुत्थायाभ्यवादयत्।
स चार्चिष्यन्महादेवं महर्षीनभ्यवादयत्।
ते चापि नृपतिश्रेष्ठास्तं सम्पूज्य तपोधनम्॥ १३९

प्रहर्षमतुलं गत्वा उपविष्टा यथासुखम्।
तेषूपविष्टेषु तदा वानरोपनिमन्त्रिताः॥ १४०

समायाता महात्मानो यक्षगन्धर्वदानवाः।
तानागतान् समीक्ष्यैव पुत्र्यस्ताः पृथुलोचनाः॥ १४१

स्नेहार्द्रनयनाः सर्वास्तदा सस्वजिरे पितॄन्।
नन्दयन्त्यादिका दृष्ट्वा सपितृका वरानना॥ १४२

सबाष्पनयना जाता विश्वकर्मसुता तदा।
अथ तामाह स मुनिः सत्यं सत्यध्वजो वचः॥ १४३
मा विषादं कृथाः पुत्रि पिताऽयं तव वानरः।
सा तद्वचनमाकर्ण्य व्रीडोपहतचेतना॥ १४४
कथं तु विश्वकर्माऽसौ वानरत्वं गतोऽधुना।
दुष्पुत्र्यां मयि जातायां तस्मात् त्यक्ष्ये कलेवरम्॥ १४५
इति संचिन्त्य मनसा ऋतध्वजमुवाच ह।

लिये अञ्जन नामक पर्वतपर चले जाओ। फिर पातालसे वीर दैत्येश्वर कन्दरमालीको और स्वर्गसे गन्धर्वराज पर्जन्यको यहाँ शीघ्र बुला लाओ। मुनिके इस प्रकार कहनेपर देववतीने बन्दरसे कहा—कपिश्रेष्ठ! गालवको भी आप यहाँ बुला लावें॥ १३०—१३३॥

ऐसा कहनेपर वायुके समान पराक्रमवाला कपि अञ्जनपर्वतपर पहुँच गया और (गुह्यकको) आमन्त्रित कर पुनः सुमेरुपर्वतपर प्रविष्ट हो गया। वहाँ उसने पर्जन्यको आमन्त्रित किया और सप्तगोदावरतीर्थमें स्थित महाश्रममें उन्हें भेजनेके बाद वह फिर पाताललोकमें प्रविष्ट हो गया। वहाँ (जाकर उसने) महापराक्रमी कन्दरमालीको आमन्त्रित किया। वेगशाली बन्दर फिर पातालसे निकलकर पृथ्वीपर घूमने-फिरने लगा। तपोनिधि गालवको माहिष्मतीके निकट देखकर उसने छलाँग भरी और उन्हें शीघ्र सप्तगोदावरके जलके निकट ला दिया। वहाँ विधानसे स्नान करनेके बाद वह हाटकेश्वरके समीप पहुँचा और उसने वहाँ बैठी हुई नन्दयन्ती तथा देववतीको भी देखा॥ १३४—१३८॥

उन सभीने गालवको देखकर उठकर उनको प्रणाम किया। उन्होंने भी महादेवकी पूजा कर महर्षियोंको प्रणाम किया। उन श्रेष्ठ राजाओंने भी उन तपस्वीकी पूजा की तथा वे अत्यन्त हर्षित होकर सुखपूर्वक बैठ गये। उनके बैठ जानेपर कपिद्वारा आमन्त्रित किये गये यक्ष, महानुभाव गन्धर्व एवं दानव वहाँ आ गये। उन्हें आया हुआ देखते ही उन विशालनयना पुत्रियोंके नेत्रोंमें स्नेहसे आँसू भर आये। वे सभी अपने-अपने पिताके गले लग गयीं। नन्दयन्ती आदिको पिताके साथ उपस्थित हुई देखकर विश्वकर्माकी सुन्दरी पुत्रीके नेत्रोंमें (पिताकी स्मृतिमें) आँसू छलक आये। उसके बाद ऋतध्वज मुनिने उससे सच्ची बात कह दी—॥ १३९—१४३॥

पुत्रि! तुम उदास मत होओ। यह बन्दर ही तुम्हारा पिता है। उस वचनको सुनकर वह लजा गयी; क्योंकि मुझ कुपुत्रीके जन्म लेनेके कारण ये विश्वकर्मा इस समय बन्दर हो गये हैं; अतः (उसने सोचा—) मैं अपने शरीरका त्याग करूँगी। मनमें इस प्रकार

परित्रायस्व मां ब्रह्मन् पापोपहतचेतनाम्॥ १४६

पितृघ्नी मर्तुमिच्छामि तदनुज्ञातुमर्हसि।

अथोवाच मुनिस्तन्वीं मा विषादं कृथाधुना॥ १४७

भाव्यस्य नैव नाशोऽस्ति तन्मा त्याक्षीः कलेवरम्।
भविष्यति पिता तुभ्यं भूयोऽप्यमरवर्द्धकिः॥ १४८
जातेऽपत्ये घृताच्यां तु नात्र कार्या विचारणा।
इत्येवमुक्ते वचने मुनिना भावितात्मना॥ १४९

घृताची तां समभ्येत्य प्राह चित्राङ्गदां वचः।
पुत्रि त्यजस्व शोकं त्वं मासैर्दशभिरात्मजः॥ १५०

भविष्यति पितुस्तुभ्यं मत्सकाशान्न संशयः।
इत्येवमुक्ता संहृष्टा बभौ चित्राङ्गदा तदा॥ १५१
प्रतीक्षन्ती सुचार्वङ्गी विवाहे पितृदर्शनम्।
सर्वास्ता अपि तावन्तं कालं सुतनुकन्यकाः॥ १५२

प्रत्यैक्षन्त विवाहं हि तस्या एव प्रियेप्सया।
ततो दशसु मासेषु समतीतेष्वथाप्सराः॥ १५३

तस्मिन् गोदावरीतीर्थे प्रसूता तनयं नलम्।
जातेऽपत्ये कपित्वाच्च विश्वकर्माप्यमुच्यत॥ १५४
समभ्येत्य प्रियां पुत्रीं पर्यष्वजत चादरात्।
ततः प्रीतेन मनसा सस्मार सुरवर्द्धकिः॥ १५५
सुराणामधिपं शक्रं सहैव सुरकिन्नरैः।
त्वष्टाऽथ संस्मृतः शक्रो मरुद्गणवृतस्तदा॥ १५६
सुरैः सरुद्रैः सम्प्राप्तस्तत्तीर्थं हाटकाह्वयम्।
समायातेषु देवेषु गन्धर्वेष्वप्सरस्सु च॥ १५७
इन्द्रद्युम्नो मुनिश्रेष्ठमृतध्वजमुवाच ह।
जाबालेर्दीयतां ब्रह्मन् सुता कन्दरमालिनः॥ १५८
गृह्णातु विधिवत् पाणिं दैतेय्यास्तनयस्तव।
नन्दयन्तीं च शकुनिः परिणेतुं स्वरूपवान्॥ १५९

ममेयं वेदवत्यस्तु त्वाष्ट्रेयी सुरथस्य च।

बाढमित्यब्रवीद्धृष्टो मुनिर्मनुसुतं नृपम्॥ १६०

विचारकर उसने ऋतध्वजसे कहा—ब्रह्मन्! मैं पापसे नष्टमतिवाली हूँ। आप मेरी रक्षा करें। पिताका घात करनेवाली मैं मरना चाहती हूँ। अतः आप स्वीकृति दें। तब मुनिने उस तन्वङ्गीसे कहा—अब विषाद मत करो॥ १४४—१४७॥

भवितव्यताका विनाश नहीं होता—होनी होकर रहती है। इसलिये देहका परित्याग मत करो। घृताचीकी कोखसे पुत्रके उत्पन्न हो जानेपर तुम्हारे पिता फिर देवताओंके शिल्पी हो जायँगे—इसमें संदेह नहीं है। मनके ऊपर नियन्त्रण रखनेवाले मुनिके इस प्रकार कहनेपर घृताचीने चित्राङ्गदाके पास जाकर उससे कहा—पुत्रि! तुम चिन्ता करना छोड़ दो। तुम्हारे पिताद्वारा मुझसे दस महीनोंमें निःसंदेह एक पुत्र उत्पन्न होगा। (फिर सुतरां शाप-विमोचन हो जायगा।) ऐसा कहनेपर चित्राङ्गदा हर्षित हो गयी॥ १४८—१५१॥

सुन्दरी (चित्राङ्गदा) अपने विवाहमें मिलनेवाले पिताके दर्शनकी (उत्सुकतासे) प्रतीक्षा करने लगी। वे सुन्दरी सभी कन्याएँ भी प्रियकी प्राप्तिकी वाञ्छासे उसके विवाहके समयकी प्रतीक्षा करने लगीं। दस महीने बीत जानेपर अप्सराने उस गोदावरीतीर्थमें पुत्रको उत्पन्न किया, जो (आगे चलकर) नल (नामक) हुआ। पुत्रके उत्पन्न हो जानेपर विश्वकर्मा भी वानरत्वसे छूट गये॥ १५२—१५४॥

अपनी प्रिय पुत्रीके पास जाकर उन्होंने उसको स्नेहपूर्वक गले लगाया। उसके बाद प्रसन्न मनसे देवशिल्पीने देवताओं एवं किन्नरोंसहित देवराज इन्द्रका स्मरण किया। देवशिल्पीके स्मरण करनेपर इन्द्र मरुद्गणों, देवों एवं रुद्रोंके साथ हाटक नामके तीर्थमें आ गये। देवताओं, गन्धर्वों और अप्सराओंके आनेपर इन्द्रद्युम्नने मुनिश्रेष्ठ ऋतध्वजसे कहा—ब्रह्मन्! जाबालिको कन्दरमालीकी कन्याका दान कर दें। आपका पुत्र विधिवत् दैत्यनन्दिनीका पाणिग्रहण कर ले। स्वरूपवान् शकुनि नन्दयन्तीसे विवाह करें॥ १५५—१५९॥

यह वेदवती मेरी (इन्द्रद्युम्नकी) और त्वष्टा (विश्वकर्मा)-की पुत्री (चित्राङ्गदा) सुरथकी पत्नी हो। मुनिने मनुपुत्र राजासे कहा—ठीक है।

ततोऽनुचक्रुः संहृष्टा विवाहविधिमुत्तमम्।
ऋत्विजोऽभूद् गालवस्तु हुत्वा हव्यं विधानतः॥ १६१

गायन्ते तत्र गन्धर्वा नृत्यन्तेऽप्सरसस्तथा।
आदौ जाबालिनः पाणिर्गृहीतो दैत्यकन्यया॥ १६२

इन्द्रद्युम्नेन तदनु वेदवत्या विधानतः।
ततः शकुनिना पाणिर्गृहीतो यक्षकन्यया॥ १६३

चित्राङ्गदायाः कल्याणि सुरथः पाणिमग्रहीत्।
एवं क्रमाद् विवाहस्तु निर्वृत्तस्तनुमध्यमे॥ १६४

उसके बाद उन लोगोंने प्रसन्नतापूर्वक भलीभाँति विवाहकी विधिको पूरा किया। विधिसे हव्यका हवन करनेवाले गालव ऋत्विक् बने। उस समय वहाँ गन्धर्वोंने गाना गाया और अप्सराओंने नृत्य किया। सबसे पहले दैत्य-कन्याने जाबालिका पाणिग्रहण किया। कल्याणि! उसके बाद विधिपूर्वक इन्द्रद्युम्नने वेदवतीका, शकुनिने यक्ष-कन्याका तथा सुरथने चित्राङ्गदाका पाणिग्रहण किया। (कृशोदरि!) इस प्रकार विवाहकार्य क्रमशः सम्पन्न हुआ॥ १६०—१६४॥

वृत्ते मुनिर्विवाहे तु शक्रादीन् प्राह दैवतान्।
अस्मिंस्तीर्थे भवद्भिस्तु सप्तगोदावरे सदा॥ १६५

स्थेयं विशेषतो मासमिमं माधवमुत्तमम्।
बाढमुक्त्वा सुराः सर्वे जग्मुर्हृष्टा दिवं क्रमात्॥ १६६

मुनयो मुनिमादाय सपुत्रं जग्मुरादरात्।
भार्याश्चादाय राजानः स्वं स्वं नगरमागताः॥ १६७

प्रहृष्टाः सुखिनस्तस्थुः भुञ्जते विषयान् प्रियान्।
चित्राङ्गदायाः कल्याणि एवं वृत्तं पुरा किल।
तन्मां कमलपत्राक्षि भजस्व ललनोत्तमे॥ १६८

इत्येवमुक्त्वा नरदेवसूनु-
स्तां भूमिदेवस्य सुतां वरोरुम्।
स्तुवन्मृगाक्षीं मृदुना क्रमेण
सा चापि वाक्यं नृपतिं बभाषे॥ १६९

विवाह-कार्य सम्पन्न हो जानेपर मुनि (ऋतध्वज)-ने इन्द्र आदि देवताओंसे कहा—इस सप्तगोदावर तीर्थमें आपलोग सदा निवास करें। विशेषरूपसे इस उत्तम वैशाखके महीनेमें आपलोग यहाँ अवश्य रहें। देवतालोग 'ऐसा ही हो'—(ऐसा) कहकर प्रसन्नतापूर्वक स्वर्ग चले गये। मुनिलोग पुत्रसहित मुनि (ऋतध्वज)-को सादर साथ लेकर चले गये। राजालोग भी अपनी-अपनी पत्नीके साथ अपने-अपने नगरमें आ गये। सभी लोग प्रिय विषयोंका उपभोग करते हुए आनन्दपूर्वक रहने लगे। कल्याणि! चित्राङ्गदाका पूर्व वृत्तान्त इस प्रकारका है। इसलिये सरोजनयने! ललनोत्तमे! तुम मुझे अङ्गीकार करो। ऐसा कहकर राजपुत्र (दण्ड) ब्राह्मणकी उस सुन्दरी मृगनयनी पुत्रीकी कोमल वाणीसे स्तुति करने लगे। उसने भी राजासे (आगेवाला वचन) कहा—॥ १६५—१६९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पैंसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ अध्याय

दण्डक-अरजाके प्रसङ्गमें शुक्रद्वारा दण्डकको शाप, प्रह्लादका अन्धकको उपदेश और अन्धक-शिव-सन्दर्भ

अरजा उवाच

नात्मानं तव दास्यामि बहुनोक्तेन किं तव।
रक्षन्ती भवतः शापादात्मानं च महीपते॥ १

अरजाने कहा—पृथिवीपते! आपके अधिक कहनेसे क्या लाभ? (थोड़ेमें समझ लीजिये कि पिताके) शापसे आपकी और अपनी रक्षा करती हुई (ही) मैं अपनेको आपके लिये समर्पित नहीं करूँगी॥ १॥

प्रह्लाद उवाच

इत्थं विवदमानां तां भार्गवेन्द्रसुतां बलात्।
कामोपहतचित्तात्मा व्यध्वंसयत मन्दधीः॥ २

तां कृत्वा च्युतचारित्रां मदान्धः पृथिवीपतिः।
निश्चक्रामाश्रमात् तस्माद् गतश्च नगरं निजम्॥ ३

साऽपि शुक्रसुता तन्वी अरजा रजसाप्लुता।
आश्रमादथ निर्गत्य बहिस्तस्थावधोमुखी॥ ४

चिन्तयन्ती स्वपितरं रुदती च मुहुर्मुहुः।
महाग्रहोपतप्तेव रोहिणी शशिनः प्रिया॥ ५

ततो बहुतिथे काले समाप्ते यज्ञकर्मणि।
पातालादागमच्छुक्रः स्वमाश्रमपदं मुनिः॥ ६

आश्रमान्ते च ददृशे सुतां दैत्य रजस्वलाम्।
मेघलेखामिवाकाशे संध्यारागेण रञ्जिताम्॥ ७

तां दृष्ट्वा परिपप्रच्छ पुत्रि केनासि धर्षिता।
कः क्रीडति सरोषेण सममाशीविषेण हि॥ ८

कोऽद्यैव याम्यां नगरीं गमिष्यति सुदुर्मतिः।
कस्त्वां शुद्धसमाचारां विध्वंसयति पापकृत्॥ ९

ततः स्वपितरं दृष्ट्वा कम्पमाना पुनः पुनः।
रुदन्ती व्रीडयोपेता मन्दं मन्दमुवाच ह॥ १०
तव शिष्येण दण्डेन वार्यमाणेन चासकृत्।
बलादनाथा रुदती नीताऽहं वचनीयताम्॥ ११

एतत् पुत्र्या वचः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा इदं वचनमब्रवीत्॥ १२

यस्मात् तेनाविनीतेन मत्तो ह्यभयमुत्तमम्।
गौरवं च तिरस्कृत्य च्युतधमाऽरजा कृता॥ १३

तस्मात् सराष्ट्रः सबलः सभृत्यो वाहनैः सह।
सप्तरात्रान्तराद् भस्म ग्राववृष्ट्या भविष्यति॥ १४

इत्येवमुक्त्वा मुनिपुङ्गवोऽसौ
शप्त्वा स दण्डं स्वसुतामुवाच।
त्वं पापमोक्षार्थमिहैव पुत्रि
तिष्ठस्व कल्याणि तपश्चरन्ती॥ १५

प्रह्लादने कहा—कामसे अंधे हुए उस मूर्खने इस प्रकार विवाद (निषेध) करती हुई श्रेष्ठ भार्गव कुलमें प्रसूत उस कन्याको हठात् अपावन (ध्वस्तशील) कर दिया। मदसे अंधा बना हुआ वह चरित्रसे च्युत हो करके उस आश्रमसे बाहर निकलकर अपने नगर चला गया। उसके बाद रजसे लपटायी वह कृशाङ्गी शुक्रपुत्री अरजा भी आश्रमसे बाहर निकलकर नीचे मुख लटकाये बैठ गयी। राहुसे पीड़ित चन्द्र-प्रिया रोहिणीके समान वह अपने पिताका चिन्तन करती हुई बारम्बार (बिलख-बिलखकर) रोने लगी॥ २—५॥

उसके बाद जब बहुत तिथिवाला समय बीत गया और यज्ञ समाप्त हो गया तब शुक्रमुनि पातालसे अपने आश्रममें आये। दैत्य! उन्होंने आश्रमसे बाहर आकाशमें सन्ध्याके समय लालिमासे रञ्जित मेघमालाकी तरह धूलसे लिपटी हुई अपनी पुत्रीको देखा। उसे देखकर उन्होंने पूछा—पुत्रि! किसने तुम्हारा धर्षण (अपमान) किया है? क्रोधभरे साँपसे कौन खेल कर रहा है? पवित्र आचरणवाली तुम्हें शीलसे च्युत कर कौन दुर्बुद्धि पापी आज ही यमपुरी जानेवाला है? उसके बाद अपने पिताको देखकर बारम्बार काँपती, रोती एवं लजाती हुई अरजाने धीरे-धीरे कहा—॥ ६—१०॥

बार-बार बरजनेपर भी आपके शिष्य दण्डने रोती हुई मुझ अनाथाको बलपूर्वक निन्दनीया बना दिया है—हमारा शीलभ्रंश कर दिया है। कन्याकी इस बातको सुनकर शुक्राचार्यकी आँखें क्रोधसे अत्यन्त लाल हो गयीं। उन्होंने आचमन करके शुद्ध होकर यह (शाप) वचन कहा—यतः उस उद्दण्डने मुझसे प्राप्त उत्तम अभय एवं गौरवको तिरस्कृतकर अरजाको धर्मसे च्युत किया है, अतः वह सात रात्रियों (दिनों)-में उपलवृष्टिके कारण राष्ट्र, सेना, भृत्य एवं वाहनोंसहित विनष्ट हो जायगा—हो जाय॥ ११—१४॥

उन मुनिश्रेष्ठने ऐसा कहकर दण्डको शाप देनेके बाद अपनी पुत्रीसे कहा—पुत्रि! कल्याणि! पापसे छुटकारा पानेके लिये तुम तपस्या करती हुई यहीं रहो।

शप्त्वेत्थं भगवाञ् शुक्रो दण्डमिक्ष्वाकुनन्दनम्।
जगाम शिष्यसहितः पातालं दानवालयम्॥ १६

दण्डोऽपि भस्मसाद् भूतः सराष्ट्रबलवाहनः।
महता ग्राववर्षेण सप्तरात्रान्तरे तदा॥ १७

एवं दण्डकारण्यं परित्यजन्ति देवताः।
आलयं राक्षसानां तु कृतं देवेन शम्भुना॥ १८

भगवान् शुक्र इक्ष्वाकुनन्दन दण्डको इस प्रकार शाप देकर शिष्यके साथ दानवोंके निवास-स्थान पाताललोकमें चले गये। उसके बाद दण्ड भी बहुत बड़ी उपलवृष्टिके कारण सात रात्रियोंके भीतर ही अपने राष्ट्र, सेना और वाहनोंके साथ नष्ट हो गया। यही कारण है कि देवताओंने दण्डकारण्यको छोड़ दिया और शम्भुने उसे राक्षसोंका स्थान बना दिया॥ १५—१८॥

एवं परकलत्राणि नयन्ति सुकृतीनपि।
भस्मभूतान् प्राकृतांस्तु महान्तं च पराभवम्॥ १९

तस्मादन्धक दुर्बुद्धिर्न कार्या भवता त्वियम्।
प्राकृताऽपि दहेन्नारी किमुताहोद्रिनन्दिनी॥ २०

शङ्करोऽपि न दैत्येश शक्यो जेतुं सुरासुरैः।
द्रष्टुमप्यमितौजस्कः किमु योधयितुं रणे॥ २१

इस प्रकार (जैसा कि ऊपर वर्णित है) परनारियाँ (अपनेको अपवित्र करनेवाले) पुण्यात्माओंको भी जलाकर राख (नष्ट) कर देती हैं, फिर साधारण मनुष्य तो बहुत बड़ा तिरस्कार प्राप्त करते हैं। अतः अन्धक! आपको ऐसी दुर्बुद्धि नहीं करनी चाहिये। साधारण स्त्री भी जला सकती है तो पार्वतीका क्या कहना। दैत्येश! सुर या असुर कोई भी महादेवको नहीं जीत सकता। जब रणमें अत्यधिक ओजसे सम्पन्न शंकरको देखा भी नहीं जा सकता तब उनसे युद्ध करना कैसे सम्भव है॥१९—२१॥

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ते वचने क्रुद्धस्ताम्रेक्षणः श्वसन्।
वाक्यमाह महातेजाः प्रह्लादं चान्धकासुरः॥ २२

किं ममासौ रणे योद्धुं शक्तस्त्रिणयनोऽसुर।
एकाकी धर्मरहितो भस्मारुणितविग्रहः॥ २३

नान्धको बिभियादिन्द्रान्नामरेभ्यः कथंचन।
स कथं वृषपत्राक्षाद् बिभेति स्त्रीमुखेक्षकात्॥ २४

तच्छ्रुत्वाऽस्य वचो घोरं प्रह्लादः प्राह नारद।
न सम्यगुक्तं भवता विरुद्धं धर्मतोऽर्थतः॥ २५

पुलस्त्यजी बोले—ऐसा वचन कहनेपर क्रुद्ध एवं लाल-लाल आँखें किये हुए महातेजस्वी अन्धकासुरने लंबी साँस लेते हुए प्रह्लादसे कहा—असुर! क्या शरीरपर राख लपेटे, (किंतु, लोक) धर्मसे रहित अकेला वह त्रिनयन लड़ाईके मैदानमें मुझसे युद्ध कर सकता है? जो अन्धक इन्द्र या (अन्य) देवताओंसे कभी नहीं डरता वह बैलकी सवारी करनेवाले तथा स्त्रीका मुख निहारनेवाले त्रिनेत्र (शंकर)-से कैसे डर सकता है? नारद! उसके उस कठोर वचनको सुनकर प्रह्लादने कहा—आप यह उचित नहीं कह रहे हैं। आपका कहना धर्म एवं अर्थके विपरीत है॥ २२—२५॥

हुताशनपतङ्गाभ्यां सिंहक्रोष्टुकयोरिव।
गजेन्द्रमशकाभ्यां च रुक्मपाषाणयोरिव॥ २६

एतेषाभिरुदितं यावदन्तरमन्धक।
तावदेवान्तरं चास्ति भवतो वा हरस्य च॥ २७

वारितोऽसि मया वीर भूयो भूयश्च वार्यसे।
शृणुष्व वाक्यं देवर्षेरसितस्य महात्मनः॥ २८

अन्धक! अग्नि और जुगनू, सिंह और सियार, गजेन्द्र और मशक तथा सोने और पत्थरमें जितना अन्तर कहा जाता है, उतना ही अन्तर आप और शङ्करकी तुलनामें है। वीर! आपको मैंने रोका है और (अब भी) बार-बार रोक रहा हूँ। आप देवर्षि असितका वचन सुनें—

यो धर्मशीलो जितमानरोषो
विद्याविनीतो न परोपतापी।
स्वदारतुष्टः परदारवर्जी
न तस्य लोके भयमस्ति किंचित्॥ २९

यो धर्महीनः कलहप्रियः सदा
परोपतापी श्रुतिशास्त्रवर्जितः।
परार्थदारेप्सुरवर्णसंगमी
सुखं न विन्देत परत्र चेह॥ ३०

धर्मान्वितोऽभूद् भगवान् प्रभाकरः
संत्यक्तरोषश्च मुनिः स वारुणिः।
विद्याऽन्वितोऽभून्मनुरर्कपुत्रः
स्वदारसंतुष्टमनास्त्वगस्त्यः ॥ ३१

एतानि पुण्यानि कृतान्यमीभि-
र्मया निबद्धानि कुलक्रमोक्त्या।
तेजोऽन्विताः शापवरक्षमाश्च
जाताश्च सर्वे सुरसिद्धपूज्याः॥ ३२

अधर्मऽयुक्तोऽङ्गसुतो बभूव
विभुश्च नित्यं कलहप्रियोऽभूत्।
परोपतापी नमुचिर्दुरात्मा
पराबलेप्सुर्नहुषश्च राजा॥ ३३

परार्थलिप्सुर्दितिजो हिरण्यदृक्
मूर्खस्तु तस्याप्यनुजः सुदुर्मतिः।
अवर्णसंगी यदुरुत्तमौजा
एते विनष्टास्त्वनयात् पुरा हि॥ ३४

तस्माद् धर्मो न संत्याज्यो धर्मो हि परमा गतिः।
धर्महीना नरा यान्ति रौरवं नरकं महत्॥ ३५

धर्मस्तु गदितः पुम्भिस्तारणे दिवि चेह च।
पतनाय तथाऽधर्म इह लोके परत्र च॥ ३६

त्याज्यं धर्मान्वितैर्नित्यं परदारोपसेवनम्।
नयन्ति परदारा हि नरकानेकविंशतिम्।
सर्वेषामपि वर्णानामेष धर्मो ध्रुवोऽन्धक॥ ३७

परार्थपरदारेषु यदा वाञ्छां करिष्यति।
स याति नरकं घोरं रौरवं बहुलाः समाः॥ ३८

जो व्यक्ति धर्मनिष्ठ, अभिमान और क्रोधको जीतनेवाला, विद्यासे विनम्र, किसीको दुःख न देनेवाला, अपनी पत्नीमें सन्तुष्ट तथा परस्त्रीका त्याग करनेवाला होता है, उसे संसारमें कोई भय नहीं होता॥ २६—२९॥

जो व्यक्ति धर्मसे हीन, कलहसे प्रेम रखनेवाला, सदा दूसरोंको दुःख देनेवाला, वेद-शास्त्र (-के अध्ययन)-से रहित, दूसरेके धन और दूसरेकी स्त्रीकी इच्छा रखनेवाला तथा भिन्न वर्णके साथ सम्बन्ध करनेवाला होता है, वह इस लोक और परलोकमें सुख नहीं पा सकता। भगवान् सूर्य धर्मसे युक्त थे, महर्षि वारुणि (वसिष्ठ)-ने क्रोध छोड़ दिया था, सूर्यपुत्र मनु विद्यावान् थे और अगस्त्य ऋषि अपनी पत्नीमें सन्तुष्ट थे। मैंने कुलके क्रमानुसार इन पुण्य करनेवालोंका उल्लेख किया है। शाप और वर देनेमें समर्थ ये सभी तेजस्वीलोग देवताओं और सिद्धोंके पूज्य हुए। अङ्गपुत्र (वेन) अधार्मिक और शक्तिशाली तथा नित्य कलहप्रिय था। दुरात्मा नमुचि परसंतापी एवं राजा नहुष परस्त्रीपर अधिकार प्राप्त करना चाहता था॥ ३०—३३॥

दितिका पुत्र हिरण्याक्ष परधनका लालची था। उसका छोटा भाई दुर्बुद्धि एवं मूर्ख था तथा पराक्रमी यदु भिन्न जातिके साथ सम्बन्ध करनेवाला था। ये सभी पूर्वकालमें दुर्नीतिके कारण नष्ट हो गये। इसलिये धर्मको नहीं छोड़ना चाहिये; क्योंकि धर्म ही उत्तम गति है। धर्मसे हीन मनुष्य महान् रौरव नरकमें जाते हैं। पूर्वजोंने धर्मको ही परलोकको पार करनेवाला बताया है तथा अधर्मको इस लोक और परलोकमें पतनका हेतु बताया है। धर्मनिष्ठ व्यक्तियोंको परस्त्रीका सेवन करना सदैव वर्जनीय बताया है यतः परस्त्रियाँ इक्कीस नरकोंमें ले जाती हैं। अन्धक! सभी वर्णोंके लिये यह निश्चित धर्म है॥ ३४—३७॥

जो मनुष्य दूसरेके धन और दूसरेकी स्त्रीमें कामना करता है, वह बहुत वर्षोंके लिये भयंकर रौरव नरकमें

एवं पुराऽसुरपते देवर्षिरसितोऽव्ययः।
प्राह धर्मव्यवस्थानं खगेन्द्रायारुणाय हि॥ ३९

तस्मात् सुदूरतो वर्जेत् परदारान् विचक्षणः।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम्॥ ४०

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ते वचने प्रह्लादं प्राह चान्धकः।
भवान् धर्मपरस्त्वेको नाहं धर्मं समाचरे॥ ४१

इत्येवमुक्त्वा प्रह्लादमन्धकः प्राह शम्बरम्।
गच्छ शम्बर शैलेन्द्रं मन्दरं वद शङ्करम्॥ ४२

भिक्षो किमर्थं शैलेन्द्रं स्वर्गतुल्यं सकन्दरम्।
परिभुञ्जसि केनाद्य तव दत्तो वदस्व माम्॥ ४३

तिष्ठन्ति शासने मह्यं देवाः शक्रपुरोगमाः।
तत् किमर्थं निवससे मामनादृत्य मन्दरे॥ ४४

यदीष्टस्तव शैलेन्द्रः क्रियतां वचनं मम।
येयं हि भवतः पत्नी सा मे शीघ्रं प्रदीयताम्॥ ४५

इत्युक्तः स तदा तेन शम्बरो मन्दरं द्रुतम्।
जगाम तत्र यत्रास्ते सह देव्या पिनाकधृक्॥ ४६

गत्वोवाचान्धकवचो याथातथ्यं दनोः सुतः।
तमुत्तरं हरः प्राह शृण्वत्या गिरिकन्यया॥ ४७

ममायं मन्दरो दत्तः सहस्राक्षेण धीमता।
तन्न शक्नोम्यहं त्यक्तुं विनाज्ञां वृत्रवैरिणः॥ ४८

यच्चाब्रवीद् दीयतां मे गिरिपुत्रीति दानवः।
तदेषा यातु स्वं कामं नाहं वारयितुं क्षमः॥ ४९

ततोऽब्रवीद् गिरिसुता शम्बरं मुनिसत्तम।
ब्रूहि गत्वान्धकं वीर मम वाक्यं विपश्चितम्॥ ५०

अहं पताका संग्रामे भवानीशश्च देविनौ।
प्राणद्यूतं परिस्तीर्य यो जेष्यति स लप्स्यते॥ ५१

इत्येवमुक्तो मतिमाञ् शम्बरोऽन्धकमागमत्।
समागम्याब्रवीद् वाक्यं शर्वगौर्योश्च भाषितम्॥ ५२

चला जाता है। राक्षसराज! प्राचीन समयमें महात्मा देवर्षि असितने गरुड़ तथा अरुणसे धर्मकी यह व्यवस्था कही थी। इसलिये विद्वान् व्यक्ति दूसरी स्त्रियोंको दूरसे ही परित्याग कर दे; क्योंकि परस्त्रियाँ नीच बुद्धिवाले मनुष्योंको तिरस्कृत करा देती हैं॥ ३८—४०॥

पुलस्त्यजी बोले— इस प्रकारका वचन कहनेपर अन्धकने प्रह्लादसे कहा कि आप अकेले धर्मनिष्ठ हैं। मैं धर्मका व्यवहार नहीं करता। प्रह्लादसे इस प्रकार कहकर अन्धकने शम्बरसे कहा—शम्बर! तुम मन्दर-पर्वतपर जाओ और शंकरसे कहो—भिक्षुक! तुम गुफामें रहनेवाले होकर और सबके समान मन्दर-पर्वतका उपभोग क्यों कर रहे हो? मुझे बतलाओ कि तुमको इसे किसने दे दिया है? इन्द्र आदि देवता मेरा शासन मानते हैं। तुम मेरा अपमान करके इस मन्दर-पर्वतपर कैसे रह रहे हो?॥ ४१—४४॥

यदि यह पर्वतराज तुम्हें अभीष्ट है तो मेरे कहनेके अनुसार कार्य करो। तुम्हारी जो यह स्त्री है, उसे मुझे शीघ्र दे दो। उसके ऐसा कहनेपर शम्बर शीघ्रतासे उस मन्दरपर्वतपर गया, जहाँ पिनाक-पाणि शंकर देवीके साथ निवास कर रहे थे। दनु-पुत्रने वहाँ जाकर अन्धकके वचनको ज्यों-का-त्यों कहा। शङ्करने पर्वतनन्दिनीके सुनते हुए उसे उत्तर दिया। बुद्धिमान् इन्द्रने मुझे यह मन्दरपर्वत दिया है। इसलिये वृत्रासुरके वैरी इन्द्रकी आज्ञाके बिना मैं इसे नहीं छोड़ सकता॥ ४५—४८॥

दानवने जो यह कहा कि गिरिनन्दिनीको मुझे दे दो, तो ये अपनी इच्छासे जा सकती हैं। मैं इन्हें नहीं रोक सकता। मुनिसत्तम! उसके बाद गिरिपुत्री पार्वतीने शम्बरसे कहा—वीर! तुम जाकर विद्वान् अन्धकसे मेरी बात कहो—संग्राममें मैं तो पताका हूँ। आप और शंकर खेलनेवाले हैं। प्राणोंका द्यूत फैलाकर (हार-जीतका दाँव लगाकर) जो जीतेगा वह मुझे प्राप्त करेगा! ऐसा कहनेपर बुद्धिमान् शम्बर अन्धकके पास गया एवं उसने शंकर तथा गौरीकी कही हुई बातें (ज्यों-की-त्यों) उससे कह दीं॥ ४९—५२॥

तच्छ्रुत्वा दानवपतिः क्रोधदीप्तेक्षणः श्वसन्।
समाहूयाब्रवीद् वाक्यं दुर्योधनमिदं वचः॥ ५३

गच्छ शीघ्रं महाबाहो भेरीं सान्नाहिकीं दृढाम्।
ताडयस्व सुविश्रब्धं दुःशीलामिव योषितम्॥ ५४

समादिष्टोऽन्धकेनाथ भेरीं दुर्योधनो बलात्।
ताडयामास वेगेन यथा प्राणेन भूयसा॥ ५५

सा ताडिता बलवता भेरी दुर्योधनेन हि।
सत्वरं भैरवं रावं रुराव सुरभी यथा॥ ५६

उसे सुनकर दानवपतिकी आँखें क्रोधसे जलने लगीं। लंबी साँस लेते हुए दुर्योधनको बुलाकर उसने कहा—महाबाहो! शीघ्र जाओ एवं मारू या संग्रामके समयमें बजनेवाले जुझाऊ नगाड़ेको (मस्तीसे) जोर-जोरसे ऐसे पीटो जैसे दुराचारिणीको कोई (उसके अपराधके कारण उसका अभिभावक आदि निर्भयतासे) ताड़ित करता है। उसके बाद अन्धकसे आदेश प्राप्त कर दुर्योधन अत्यन्त बलपूर्वक जी-जानसे वेगपूर्वक भेरीको बजाने लगा। बलवान् दुर्योधनद्वारा बलपूर्वक बजायी जाती हुई वह भेरी सहसा भयंकर ध्वनिमें घरघराने लगी, जिस प्रकार सुरभी घरघराती है॥ ५३—५६॥

तस्यास्तं स्वरमाकर्ण्य सर्व एव महासुराः।
समायाताः सभां तूर्णं किमेतदिति वादिनः॥ ५७

याथातथ्यं च तान् सर्वानाह सेनापतिर्बली।
ते चापि बलिनां श्रेष्ठाः सन्नद्धा युद्धकाङ्क्षिणः॥ ५८

सहान्धका निर्ययुस्ते गजैरुष्ट्रैर्हयै रथैः।
अन्धको रथमास्थाय पञ्चनल्वप्रमाणतः॥ ५९

त्र्यम्बकं स पराजेतुं कृतबुद्धिर्विनिर्ययौ।
जम्भः कुजम्भो हुण्डश्च तुहुण्डः शम्बरो बलिः॥ ६०

बाणः कार्तस्वरो हस्ती सूर्यशत्रुर्महोदरः।
अयःशंकुः शिबिः शाल्वो वृषपर्वा विरोचनः॥ ६१

हयग्रीवः कालनेमिः संह्लादः कालनाशनः।
शरभः शलभश्चैव विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्॥ ६२

दुर्योधनश्च पाकश्च विपाकः कालशम्बरौ।
एते चान्ये च बहवो महावीर्या महाबलाः।
प्रजग्मुरुत्सुका योद्धुं नानायुधधरा रणे॥ ६३

इत्थं दुरात्मा दनुसैन्यपाल-
स्तदान्धको योद्धुमना हरेण।
महाचलं मन्दरमभ्युपेयिवान्
स कालपाशावसितो हि मन्दधीः॥ ६४

उसकी उस ध्वनिको सुनकर सभी बड़े असुर 'यह क्या है?'—ऐसा कहते हुए शीघ्रतासे सभामें आ गये। पराक्रमी सेनापतिने उन सभीसे उचित और सत्य वचन कहा। युद्धकी इच्छा करनेवाले बलवानोंमें श्रेष्ठ वे सभी वीर तैयार हो गये। हाथी, ऊँट, घोड़ों और रथोंसहित वे सभी अन्धकके साथ बाहर निकले। पाँच नल्व—अर्थात् दो हजार हाथके प्रमाणवाले रथपर चढ़कर अन्धक त्रिलोचन शंकरको जीतनेका निश्चय कर बाहर निकला। जम्भ, कुजम्भ, हुण्ड, तुहुण्ड, शम्बर, बलि, बाण, कार्तस्वर, हस्ती, सूर्यशत्रु, महोदर, अयःशंकु, शिबि, शाल्व, वृषपर्वा, विरोचन, हयग्रीव, कालनेमि, संह्लाद, कालनाशन, शरभ, शलभ, पराक्रमी विप्रचित्ति, दुर्योधन, पाक, विपाक, काल एवं शम्बर—ये सभी तथा अन्य अनेक महापराक्रमशाली एवं महाबलवान् राक्षस भाँति-भाँतिके आयुधोंको लेकर प्रबल इच्छासे संग्राममें लड़नेके लिये चल पड़े। इस प्रकार काल-पाशसे बँधा हुआ वह अल्पमति दनुसैन्यपति दुष्टात्मा अन्धक शंकरसे युद्ध करनेके विचारसे महान् पर्वत मन्दरपर गया॥ ५७—६४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छाछठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६६॥

सड़सठवाँ अध्याय

नन्दिद्वारा आहूत गणोंका वर्णन, उनसे हरि और हरका एकत्व प्रतिपादन, गणोंको सदाशिवका दर्शन और गणोंद्वारा मन्दरका भर जाना

पुलस्त्य उवाच

हरोऽपि शम्बरे याते समाहूयाथ नन्दिनम्।
प्राहामन्त्रय शैलादीन् ये स्थितास्तव शासने॥ १

ततो महेशवचनान्नन्दी तूर्णतरं गतः।
उपस्पृश्य जलं श्रीमान् सस्मार गणनायकान्॥ २

नन्दिना संस्मृताः सर्वे गणनाथाः सहस्रशः।
समुत्पत्य त्वरायुक्ताः प्रणतास्त्रिदशेश्वरम्॥ ३

आगतांश्च गणान्नन्दी कृताञ्जलिपुटोऽव्ययः।
सर्वान् निवेदयामास शङ्कराय महात्मने॥ ४

नन्द्युवाच

यानेतान् पश्यसे शम्भो त्रिनेत्राञ्जटिलाञ्शुचीन्।
एते रुद्रा इति ख्याताः कोट्य एकादशैव तु॥ ५

वानरास्यान् पश्यसे यान् शार्दूलसमविक्रमान्।
एतेषां द्वारपालास्ते मन्नामानो यशोधनाः॥ ६

षण्मुखान् पश्यसे यांश्च शक्तिपाणीञ्शिखिध्वजान्।
षट् च षष्टिस्तथा कोट्यः स्कन्दनाम्नः कुमारकान्॥ ७

एतावत्यस्तथा कोट्यः शाखा नाम षडाननाः।
विशाखास्तावदेवोक्ता नैगमेयाश्च शङ्कर॥ ८

सप्तकोटिशतं शम्भो अमी वै प्रमथोत्तमाः।
एकैकं प्रति देवेश तावत्यो ह्यपि मातरः॥ ९

भस्मारुणितदेहाश्च त्रिनेत्राः शूलपाणयः।
एते शैवा इति प्रोक्तास्तव भक्ता गणेश्वराः॥ १०

तथा पाशुपताश्चान्ये भस्मप्रहरणा विभो।
एते गणास्त्वसंख्याताः सहायार्थं समागताः॥ ११

पिनाकधारिणो रौद्रा गणाः कालमुखापरे।
तव भक्ताः समायाता जटामण्डलिनोऽद्भुताः॥ १२

पुलस्त्यजी बोले— शम्बरके चले जानेपर शंकरने भी नन्दीको बुलाकर कहा—नन्दिन्! तुम्हारे शासनमें जो पर्वत आदि रहते हैं, उन्हें इस (माङ्गलिक) कार्यमें आनेके लिये आमन्त्रित करो। उसके बाद महेशके कहनेसे नन्दी शीघ्रातिशीघ्र गये और उन्होंने जलका आचमन कर गणनायकोंका स्मरण किया। नन्दीसे स्मरण किये गये सभी गणनाथोंने हजारोंकी संख्यामें शीघ्रतासे आकर त्रिदशेश्वर शंकरको प्रणाम किया। अविनाशी नन्दीने महात्मा शंकरसे हाथ जोड़कर सभी आये हुए गणोंको निवेदित किया॥ १—४॥

नन्दीने कहा— शम्भो! तीन नेत्रोंवाले और जटा धारण करनेवाले तथा पवित्र जिन गणोंको आप देख रहे हैं, उन्हें रुद्र कहते हैं। इनकी संख्या ग्यारह कोटि है। बन्दरके समान मुँह और सिंहके समान पराक्रमवाले जिन्हें आप देख रहे हैं, वे मेरे नामको धारण करनेवाले यशस्वी इनके द्वारपाल हैं। हाथमें शक्ति लिये तथा मयूरध्वजी जिन छः मुखवालोंको आप देख रहे हैं, वे स्कन्द नामके कुमार हैं। इनकी संख्या छाछठ करोड़ है। शंकर! इतने ही छः मुख धारण करनेवाले शाखा नामके गण हैं और इतने ही विशाख और नैगमेय नामके गण हैं॥ ५—८॥

शम्भो! इन उत्तम प्रमथोंकी संख्या सात सौ करोड़ है। देवेश! प्रत्येकके साथ उतनी ही मातृकाएँ भी हैं। इन भस्मविभूषित शरीरवाले शूलपाणि त्रिनेत्रधारियोंको शैव कहा जाता है। ये सभी गणेश्वर आपके भक्त हैं। विभो! भस्मरूपी अस्त्र धारण करनेवाले अन्य अनगिनत पाशुपत गण सहायताके लिये आये हैं। पिनाक धारण करनेवाले जटामण्डलसे युक्त, अद्भुत भयङ्कर कालमुख नामक आपके अन्य गण (भी) आये हैं॥ ९—१२॥

खट्वाङ्गयोधिनो वीरा रक्तचर्मसमावृताः।
इमे प्राप्ता गणा योद्धुं महाव्रतिन उत्तमाः॥ १३

दिग्वाससो मौनिनश्च घण्टाप्रहरणास्तथा।
निराश्रया नाम गणाः समायाता जगद्गुरो॥ १४

सार्धद्विनेत्राः पद्माक्षाः श्रीवत्साङ्कितवक्षसः।
समायाताः खरारूढा वृषभध्वजिनोऽव्ययाः॥ १५

महापाशुपता नाम चक्रशूलधरास्तथा।
भैरवो विष्णुना सार्द्धमभेदेनार्चितो हि यैः॥ १६

इमे मृगेन्द्रवदनाः शूलबाणधनुर्धराः।
गणास्त्वद्रोमसम्भूता वीरभद्रपुरोगमाः॥ १७

एते चान्ये च बहवः शतशोऽथ सहस्रशः।
सहायार्थं तवायाता यथा प्रीत्यादिशस्व तान्॥ १८

ततोऽभ्येत्य गणाः सर्वे प्रणेमुर्वृषभध्वजम्।
तान् करेणैव भगवान् समाश्वास्योपवेशयत्॥ १९

महापाशुपतान् दृष्ट्वा समुत्थाय महेश्वरः।
सम्परिष्वजताध्यक्षांस्ते प्रणेमुर्महेश्वरम्॥ २०

ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा सर्वे गणेश्वराः।
सुचिरं विस्मिताक्षाश्च वैलक्ष्यमगमत् परम्॥ २१

विस्मिताक्षान् गणान् दृष्ट्वा शैलादिर्योगिनां वरः।
प्राह प्रहस्य देवेशं शूलपाणिं गणाधिपम्॥ २२

विस्मितामी गणा देव सर्व एव महेश्वर।
महापाशुपतानां हि यत् त्वयालिङ्गनं कृतम्॥ २३

तदेतेषां महादेव स्फुटं त्रैलोक्यविन्दकम्।
रूपं ज्ञानं विवेकं च वदस्व स्वेच्छया विभो॥ २४

प्रमथाधिपतेर्वाक्यं विदित्वा भूतभावनः।
बभाषे तान् गणान् सर्वान् भावाभावविचारिणः॥ २५

रुद्र उवाच

भवद्भिर्भक्तिसंयुक्तैर्हरो भावेन पूजितः।
अहंकारविमूढैश्च निन्दद्भिर्वैष्णवं पदम्॥ २६

खट्वाङ्गसे संग्राम करनेवाले, लाल ढालसे युक्त महाव्रती नामके ये उत्तम युद्धके लिये आये हैं। जगद्गुरो! घण्टा नामके आयुधको धारण करनेवाले दिगम्बर और मौनी तथा निराश्रय नामक गण उपस्थित हुए हैं। तीन नेत्रोंवाले, पद्माक्ष एवं श्रीवत्ससे चिह्नित वक्षःस्थलवाले गरुड़ पक्षीपर चढ़े हुए तथा अविनाशी वृषभध्वजी गण यहाँ आ गये हैं। चक्र तथा शूल धारण करनेवाले महापाशुपत नामके गण आ गये हैं, जिन्होंने अभिन्नभावसे विष्णुके साथ भैरवकी पूजा (यहाँ) की है॥ १३—१६॥

आपके रोमोंसे उत्पन्न ये सभी सिंहके समान मुखवाले शूल, बाण और धनुष धारण करनेवाले वीरभद्र आदि गण तथा दूसरे भी सैकड़ों एवं हजारों गण आपकी सहायताके लिये आ गये हैं। अपनी इच्छाके अनुसार आप इन्हें आदेश दें। उसके बाद सभी गणोंने पास जाकर वृषभध्वजको प्रणाम किया। भगवान्ने हाथसे उन्हें विश्वस्तकर बैठाया। महापाशुपत नामके अपने अध्यक्षोंको देखनेके बाद महेश्वरने उठकर उनको गले लगाया। उन लोगोंने महेश्वरको अभिवन्दित किया॥ १७—२०॥

उसके बाद उस अत्यन्त विचित्र दृश्यको देखकर सभी गणेश्वरोंकी आँखें आश्चर्यसे भर गयीं। उसके बाद वे सभी बहुत ही लज्जित हो गये। गणोंको अचरजभरे नेत्रोंवाला देखकर योगिश्रेष्ठ शैलादि नन्दीने हँसकर गणाधिप देवेश शूलपाणिसे कहा—देव! महेश्वर! महापाशुपतोंको आपने जो गले लगाया है, उससे ये सभी गण आश्चर्यमें पड़ गये हैं। अतः महादेव! विभो! इनके तीनों लोकोंमें विख्यात रूप, ज्ञान एवं विवेकका अपने इच्छानुसार वर्णन करें। प्रमथोंके अधिपति नन्दीकी बात सुनकर भूतभावन महादेव भाव और अभावका विचार करनेवाले उन गणोंसे कहने लगे—॥ २१—२५॥

रुद्रने कहा— अहंकारसे विमूढ किंतु मेरी भक्तिसे युक्त आपलोगोंने वैष्णवपदकी निन्दा करते हुए

तेनाज्ञानेन भवतोनादृत्यानुविरोधिताः।
योऽहं स भगवान् विष्णुर्विष्णुर्यः सोऽहमव्ययः॥ २७

नावयोर्वै विशेषोऽस्ति एका मूर्तिर्द्विधा स्थिता।
तदमीभिर्नरव्याघ्रैर्भक्तिभावयुतैर्गणैः ॥ २८

यथाहं वै परिज्ञातो न भवद्भिस्तथा ध्रुवम्।
येनाहं निन्दितो नित्यं भवद्भिर्मूढबुद्धिभिः॥ २९

तेन ज्ञानं हि वै नष्टं नातस्त्वालिङ्गिता मया।
इत्येवमुक्ते वचने गणाः प्रोचुर्महेश्वरम्॥ ३०
कथं भवान् यथैक्येन संस्थितोऽस्ति जनार्दनः।
भवान् हि निर्मलः शुद्धः शान्तः शुक्लो निरञ्जनः॥ ३१

स चाप्यञ्जनसंकाशः कथं तेनेह युज्यते।
तेषां वचनमर्थाढ्यं श्रुत्वा जीमूतवाहनः॥ ३२

विहस्य मेघगम्भीरं गणानिदमुवाच ह।
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये स्वयशोवर्द्धनं वचः॥ ३३

न त्वेव योग्या यूयं हि महाज्ञानस्य कर्हिचित्।
अपवादभयाद् गुह्यं भवतां हि प्रकाशये॥ ३४
प्रियत्वं मयि चैतेन यन्मच्चित्तास्तु नित्यशः।
एकरूपात्मकं देहं कुरुध्वं यत्नमास्थिताः॥ ३५
पयसां हविषाद्यैश्च स्नपनेन प्रयत्नतः।
चन्दनादिभिरेकाग्रैर्न मे प्रीतिः प्रजायते॥ ३६
यत्नात् क्रकचमादाय छिन्दध्वं मम विग्रहम्।
नरकार्हा भवद्भक्ता रक्षामि स्वयशोऽर्थतः॥ ३७
माऽयं वदिष्यते लोको महान्तमपवादिनम्।
यथा पतन्ति नरके हरभक्तास्तपस्विनः॥ ३८
व्रजन्ति नरकं घोरमित्येवं परिवादिनः।
अतोऽर्थं न क्षिपाम्यद्य भवतो नरकेऽद्भुते॥ ३९
यन्निन्दध्वं जगन्नाथं पुष्कराक्षं च मन्मयम्।
स चैव भगवाञ्शर्वः सर्वव्यापी गणेश्वरः॥ ४०
न तस्य सदृशो लोके विद्यते सचराचरे।
श्वेतमूर्तिः स भगवान् पीतो रक्तोऽञ्जनप्रभः॥ ४१

भावपूर्वक शंकरकी पूजा की है। इसी अज्ञानके हेतु आप सभीका अनादर कर उनका विशेष आग्रह किया गया। जो मैं हूँ वही भगवान् विष्णु हैं एवं जो विष्णु हैं वही अविनाशी मैं हूँ। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। एक ही मूर्ति दो रूपोंमें अवस्थित है। अतः भक्तिभावसे युक्त इन पुरुषश्रेष्ठ गणोंने जैसा मुझे जाना है, निश्चय ही उस प्रकार आपलोग मुझे नहीं जानते। जड-बुद्धिवाले आपलोगोंने यतः नित्य मेरी निन्दा की है, अतः आपलोगोंका ज्ञान नष्ट हो गया। इसीलिये मैंने आपलोगोंको गले नहीं लगाया है। इस प्रकार कहनेपर गणोंने महेश्वरसे कहा—॥ २६—३०॥

आप एवं जनार्दन ऐक्यरूपसे कैसे रहते हैं? आप निर्मल, शुद्ध, शान्त, शुक्ल और निर्दोष एवं अज्ञानसे रहित हैं। किंतु वे अञ्जनके तुल्य हैं; अतः उनसे आपका मेल कैसे होता है? उनके अभिप्राययुक्त वचनको सुननेके बाद जीमूतवाहन शंकरने मेघके समान गम्भीर वाणीमें हँसकर कहा—अपनी कीर्ति बढ़ानेवाली सम्पूर्ण बात मैं बतलाता हूँ; उसे सुनो—तुमलोग कभी भी महाज्ञानके योग्य नहीं हो। परंतु अपकीर्तिके डरसे मैं आप सभीके सामने गोपनीय वस्तु-स्थितिको प्रकाशित करता हूँ॥ ३१—३४॥

मुझमें निरन्तर चित्त लगाये रहनेसे भी अन्य लोग प्रिय हैं। तुमलोग यत्नपूर्वक एक देहात्मक रूपको समझो। प्रयत्नपूर्वक दूध या घीसे स्नान कराने तथा स्थिरचित्ततापूर्वक चन्दन आदिद्वारा लेप करनेसे मुझे प्रसन्नता नहीं उत्पन्न होती। आरा लेकर मेरी देहको भले ही चीर डालो, परंतु अपनी कीर्तिके लिये नरकके योग्य आप भक्तोंकी मैं (उससे) रक्षा करता ही हूँ। (क्योंकि) यह संसार मुझे इस प्रकारका महान् कलङ्क न लगाये कि शंकरके तपस्वी भक्त नरकमें जाते हैं॥ ३५—३८॥

इस प्रकारकी निन्दा करनेवाले लोग भयंकर नरकमें जाते हैं। इसलिये मैं आपलोगोंको अद्भुत नरकमें नहीं डालता। आपलोग मेरे स्वरूप जिन कमलनयन जगन्नाथकी निन्दा करते हैं, वे ही सर्वव्यापी गणेश्वर भगवान् शर्व हैं। इस समस्त चर और अचर लोकमें उनके समान कोई नहीं है। वे भगवान् श्वेतमूर्ति पीत, रक्त एवं

तस्मात् परतरं लोके नान्यद् धर्मं हि विद्यते।
सात्त्विकं राजसं चैव तामसं मिश्रकं तथा।
स एव धत्ते भगवान् सर्वपूज्यः सदाशिवः॥ ४२
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा शैवाद्याः प्रमथोत्तमाः।
प्रत्यूचुर्भगवन् ब्रूहि सदाशिवविशेषणम्॥ ४३
तेषां तद् भाषितं श्रुत्वा प्रमथानामथेश्वरः।
दर्शयामास तद्रूपं सदाशैवं निरञ्जनम्॥ ४४
ततः पश्यन्ति हि गणाः तमीशं वै सहस्रशः।
सहस्रवक्त्रचरणं सहस्रभुजमीश्वरम्॥ ४५
दण्डपाणिं सुदुर्दृश्यं लोकैर्व्याप्तं समन्ततः।
दण्डसंस्थाऽस्य दृश्यन्ते देवप्रहरणास्तथा॥ ४६
तत एकमुखं भूयो ददृशुः शङ्करं गणाः।
रौद्रैश्च वैष्णवैश्चैव वृतं चिह्नैः सहस्रशः॥ ४७
अर्द्धेन वैष्णववपुरर्द्धेन हरविग्रहः।
खगध्वजं वृषारूढं खगारूढं वृषध्वजम्॥ ४८
यथा यथा त्रिनयनो रूपं धत्ते गुणाग्रणीः।
तथा तथा त्वजायन्त महापाशुपता गणाः॥ ४९
ततोऽभवच्चैकरूपी शङ्करो बहुरूपवान्।
द्विरूपश्चाभवद् योगी एकरूपोऽप्यरूपवान्।
क्षणाच्छ्वेतः क्षणाद् रक्तः पीतो नीलः क्षणादपि॥ ५०
मिश्रको वर्णहीनश्च महापाशुपतस्तथा।
क्षणाद् भवति रुद्रेन्द्रः क्षणाच्छम्भुः प्रभाकरः॥ ५१
क्षणार्द्धाच्छङ्करो विष्णुः क्षणाच्छर्वः पितामहः।
ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा शैवादयो गणाः॥ ५२
अजानन्त तदैक्येन ब्रह्मविष्ण्वीशभास्करान्।
यदाऽभिन्नममन्यन्त देवदेवं सदाशिवम्॥ ५३
तदा निर्धूतपापास्ते समजायन्त पार्षदाः।
तेष्वेवं धूतपापेषु अभिन्नेषु हरीश्वरः॥ ५४
प्रीतात्मा विबभौ शम्भुः प्रीतियुक्तोऽब्रवीद् वचः।
परितुष्टोऽस्मि वः सर्वे ज्ञानेनानेन सुव्रताः॥ ५५
वृणुध्वं वरमानन्त्यं दास्ये वो मनसेप्सितम्।
ऊचुस्ते देहि भगवन् वरमस्माकमीश्वर।
भिन्नदृष्ट्युद्भवं पापं यत्तद् भ्रंशं प्रयातु नः॥ ५६

अञ्जनके सदृश कान्तिवाले हैं। संसारमें उनसे श्रेष्ठ कोई दूसरा धर्म नहीं है। सर्वपूज्य वे सदाशिव (सदा मङ्गल करनेवाले) भगवान् ही सभी सात्त्विक, राजस, तामस एवं मिश्रित भावोंको धारण करते हैं॥ ३९—४२॥

शंकरके वचनको सुनकर शैव आदि श्रेष्ठ गणोंने कहा—भगवन्! आप सदाशिवकी विशेषता प्रकट करनेवाले गुणको कहिये। प्रमथेश्वरने उनके इस वचनको सुनकर उन्हें निरञ्जन सदाशिवरूपको दिखलाया। उसके बाद हजारों गणोंने उन ईश्वरको हजारों मुख, चरण एवं भुजाओंवाला हुआ देखा। वे लोकोंसे सभी ओर व्याप्त थे तथा दण्डपाणि एवं अत्यधिक सुदुर्दृश्य थे। देवताओंके अस्त्र उनके दण्डमें दिखलायी पड़ रहे थे॥ ४३—४६॥

उसके बाद पुनः गणोंने रुद्र एवं विष्णुके हजारों चिह्नोंसे युक्त एकमुख शंकरको देखा। उस रूपका आधा भाग शंकरके शरीरका था और आधा भाग गरुडध्वज था। (एक आधा भाग) गरुडध्वज वृषारूढ था एवं (दूसरा आधा भाग) वृषभध्वज गरुड़पर आरूढ़ था। गुणोंमें अग्रणी त्रिलोचन जैसे-जैसे रूप धारण करते जाते थे, वैसे-वैसे ही महापाशुपतगण भी होते जाते थे। उसके बाद एकरूपवाले शंकर बहुत रूपवाले हो गये। वे योगी दो रूप धारण करनेवाले, एक रूप धारण करनेवाले एवं बिना रूपके भी हो गये। वे प्रतिक्षण श्वेत, रक्त, पीत, नील, मिश्र वर्णवाले एवं वर्णहीन होते गये। महापाशुपतोंका भी स्वरूप उनके रूपके अनुरूप होता गया। श्रीशंकर किसी क्षणमें इन्द्र, किसी क्षणमें सूर्य, किसी क्षणमें विष्णु एवं किसी क्षणमें पितामहके रूपमें स्वरूप बदलते गये। यह अत्यन्त आश्चर्यजनक दृश्य देखकर शैव आदि गणोंने ब्रह्मा, विष्णु, ईश एवं सूर्यको (इनसे) अभिन्न समझा। उन लोगोंने जब देवाधिदेव सदाशिवको (सभी देवोंसे) अभिन्न मान लिया तब वे सभी पार्षद पापसे रहित हो गये। इस प्रकार अभेद-बुद्धिके कारण उनके पापसे विमुक्त हो जानेसे हरीश्वर शम्भु प्रसन्न हो गये। उन्होंने संतुष्ट होकर कहा—सुव्रतो! तुम्हारे इस प्रकारके ज्ञानसे मैं प्रसन्न हूँ। अब बहुतों-से वर फिर माँगो। मैं तुम्हें इच्छित वर दूँगा। उन्होंने कहा—भगवन्! महेश्वर! हमें यह वर दें कि भेदभाव रखनेके कारण उत्पन्न हमारे (शेष) सभी पाप नष्ट हो जायँ॥ ४७—५६॥

पुलस्त्य उवाच

बाढमित्यब्रवीच्छर्वश्चक्रे निर्धूतकल्मषान्।
सम्परिष्वजताव्यक्तस्तान् सर्वान् गणयूथपान्॥ ५७

इति विभुना प्रणतार्तिहरेण
गणपतयो वृषमेघरथेन।
श्रुतिगदितानुगमेनेव मन्दरं
गिरिमवतत्य समध्यवसन्तम्॥ ५८

आच्छादितो गिरिवरः प्रमथैर्घनाभै-
राभाति शुक्लतनुरीश्वरपादजुष्टः।
नीलाजिनातततनुः शरदभ्रवर्णो
यद्वद् विभाति बलवान् वृषभो हरस्य॥ ५९

पुलस्त्यजी बोले— शंकरने कहा—'ऐसा ही होगा'। उसके बाद अदृश्य होते हुए शंकरने उन सभी गणाधिपोंको आलिङ्गित कर उन्हें पापसे (सर्वथा) रहित कर दिया। उसके बाद श्रुतिकी उक्तिका जैसे (शास्त्रोंमें) अनुगमन होता है उसी प्रकार वृष एवं मेघवाहन शरणागतोंके कष्टको हरण करनेवाले शंकरके साथ सभी गणपति मन्दरपर्वतको चारों ओरसे घेरकर रहने लगे। मेघके समान प्रमथोंसे घिरे शिव-चरणकी सेवा करनेवाले शुक्ल शरीरवाला पर्वतराज ऐसे सुशोभित हो रहा था जैसे नीले मृगचर्मसे ढके शरीरवाला एवं शरत्कालीन मेघके समान धवल रंगवाला शंकरका बलवान् वृषभ सुशोभित होता है॥ ५७—५९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सड़सठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ अध्याय

भगवान् शंकरका अन्धकसे युद्धके लिये प्रस्थान, रुद्रगणोंका दानववर्गसे युद्ध और तुहुण्ड आदि दैत्योंका विनाश

पुलस्त्य उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः समं दैत्यैस्तथाऽन्धकः।
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं प्रमथाश्रितकन्दरम्॥ १

प्रमथा दानवान् दृष्ट्वा चक्रुः किलकिलाध्वनिम्।
प्रमथाश्चापि संरब्धा जघ्नुस्तूर्याण्यनेकशः॥ २

स चावृणोन्महानादो रोदसी प्रलयोपमः।
शुश्राव वायुमार्गस्थो विघ्नराजो विनायकः॥ ३

समभ्ययात् सुसंक्रुद्धः प्रमथैरभिसंवृतः।
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं ददृशे पितरं तथा॥ ४

प्रणिपत्य तथा भक्त्या वाक्यमाह महेश्वरम्।
किं तिष्ठसि जगन्नाथ समुत्तिष्ठ रणोत्सुकः॥ ५

ततो विघ्नेशवचनाज्जगन्नाथोऽम्बिकां वचः।
प्राह यास्येऽन्धकं हन्तुं स्थेयमेवाप्रमत्तया॥ ६

पुलस्त्यजी बोले— (नारदजी!) इसी बीच दैत्योंके साथ वह अन्धक प्रमथोंसे सेवित गुफाओंवाले पर्वतश्रेष्ठ मन्दरगिरिपर आ गया। प्रमथोंने दानवोंको देखकर हर्षसूचक 'किलकिला'-ध्वनि की और फिर उन्होंने बहुत-सी तुरहियाँ बजायीं। प्रलय (कालीन ध्वनि)-के समान वह भयङ्कर ध्वनि आकाश और पृथ्वीके बीच भर गयी। आकाशमें स्थित विघ्नराज गणेशने उस ध्वनिको सुना। प्रमथोंसे घिरे हुए वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर पर्वतश्रेष्ठ मन्दरपर गये और उन्होंने अपने पिताको देखा॥ १—४॥

(फिर) श्रद्धापूर्वक प्रणामकर महेश्वरसे (यह) वाक्य कहा —हे जगन्नाथ! आप बैठे क्यों हैं? युद्ध करनेके लिये प्रबल इच्छा रखकर आप उठें। विघ्नेश्वर गणेशके कहनेपर जगत्पति महादेवने अम्बिकासे कहा — मैं अन्धकको मारनेके लिये जाऊँगा, तुम सावधानीसे रहना।

ततो गिरिसुता देवं समालिङ्ग्य पुनः पुनः।
समीक्ष्य सस्नेहहरं प्राह गच्छ जयान्धकम्॥ ७

ततोऽमरगुरोर्गौरी चन्दनं रोचनाञ्जनम्।
प्रतिवन्द्य सुसम्प्रीता पादावेवाभ्यवन्दत॥ ८

उसके बाद पर्वतनन्दिनीने महादेवको बार-बार गले लगाकर एवं प्रेमपूर्ण दृष्टिसे उन्हें देखकर (मङ्गल वचन) कहा—जाइये और अन्धकपर विजय प्राप्त कीजिये। उसके बाद गौरीने देवश्रेष्ठ शंकरको चन्दन, रोचना एवं अञ्जन लगाया तथा अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उनके चरणोंकी वन्दना की॥ ५—८॥

ततो हरः प्राह वचो यशस्यं मालिनीमपि।
जयां च विजयां चैव जयन्तीं चापराजिताम्॥ ९
युष्माभिरप्रमत्ताभिः स्थेयं गेहे सुरक्षिते।
रक्षणीया प्रयत्नेन गिरिपुत्री प्रमादतः॥ १०
इति संदिश्य ताः सर्वाः समारुह्य वृषं विभुः।
निर्जगाम गृहात् तुष्टो जयेप्सुः शूलधृग् बली॥ ११
निर्गच्छतस्तु भवनादीश्वरस्य गणाधिपाः।
समन्तात् परिवार्यैव जयशब्दांश्च चक्रिरे॥ १२

उसके बाद महादेवने मालिनी, जया, विजया, जयन्ती और अपराजितासे कीर्ति बढ़ानेवाला यह वचन कहा—तुमलोग सुरक्षित घरमें सतर्कतासे रहना और प्रयत्नपूर्वक पार्वतीको असावधानीसे बचाना। उन सभीको इस प्रकार समझाने-बुझानेके बाद वृषभपर सवार होकर शूल धारण करनेवाले विजयाभिलाषी बलशाली भगवान् शंकर (आत्मविश्वासके साथ) संतुष्ट होकर घरसे चल पड़े। घरसे निकलते समय गणाधिपोंने शंकरको चारों ओरसे घेरकर 'जय-जयकार' किया॥ ९—१२॥

रणाय निर्गच्छति लोकपाले
महेश्वरे शूलधरे महर्षे।
शुभानि सौम्यानि सुमङ्गलानि
जातानि चिह्नानि जयाय शम्भोः॥ १३
शिवा स्थिता वामतरेऽथ भागे
प्रयाति चाग्रे स्वनमुन्नदन्ती।
क्रव्यादसंघाश्च तथामिषैषिणः
प्रयान्ति हृष्टास्तृषितासृगर्थे॥ १४
दक्षिणाङ्गं नखान्तं वै समकम्पत शूलिनः।
शकुनिश्चापि हारीतो मौनी याति पराङ्मुखः॥ १५
निमित्तानीदृशान् दृष्ट्वा भूतभव्यभवो विभुः।
शैलादिं प्राह वचनं सस्मितं शशिशेखरः॥ १६

महर्षे! शूल धारण करनेवाले संसारके पालक महेश्वरके युद्ध करनेके लिये घरसे निकलनेपर उनकी जयके लिये शुभ, सौम्य और मङ्गलजनक लक्षण (शकुन) प्रकट हुए। उनकी बायीं बगलमें शृगालिनी स्थित होकर ऊँचे स्वरमें बोलती हुई आगे-आगे जा रही थी। मांसभक्षी प्राणियोंका समूह प्रसन्नतापूर्वक रक्तके लिये जा रहा था। शूलपाणिका सारा दायाँ अङ्ग फड़क उठा। हारीत पक्षी मौन होकर पीछेकी ओर जा रहा था। भूत, भविष्य एवं वर्तमानस्वरूप एवं व्यापक चन्द्रमौलि महादेव शंकरने इस प्रकारके लक्षणोंको देखकर शैलादि (नन्दी)-से प्रसन्नतापूर्वक वचन कहा—॥ १३—१६॥

हर उवाच

नन्दिञ् जयोऽद्य मे भावी न कथंचित् पराजयः।
निमित्तानीह दृश्यन्ते सम्भूतानि गणेश्वर॥ १७
तच्छम्भुवचनं श्रुत्वा शैलादिः प्राह शङ्करम्।
कः संदेहो महादेव यत् त्वं जयसि शात्रवान्॥ १८
इत्येवमुक्त्वा वचनं नन्दी रुद्रगणांस्तथा।
समादिदेश युद्धाय महापाशुपतैः सह॥ १९
तेऽभ्येत्य दानवबलं मर्दयन्ति स्म वेगिताः।
नानाशस्त्रधरा वीरा वृक्षानशनयो यथा॥ २०

शंकरने कहा— नन्दिन्! गणेश्वर! इस समय कल्याणकारी लक्षण दिखायी दे रहे हैं। इसलिये आज मेरी विजय होगी। किसी भी प्रकार पराजय नहीं हो सकती। शंकरके उस वचनको सुनकर शैलादिने उनसे कहा—महादेव! आप शत्रुओंको जीत लेंगे, इसमें संदेह ही कौन-सा है? ऐसा कहकर नन्दीने महापाशुपतके सहित रुद्रगणोंको युद्ध करनेके लिये आदेश दिया। (फिर तो) भाँति-भाँतिके शस्त्रोंको धारण करनेवाले वे वीर दानवसैन्यके पास पहुँचकर उसे ऐसे कुचलकर नष्ट करने लगे जैसे वज्र वृक्षोंको नष्ट करता है॥ १७—२०॥

ते वध्यमाना बलिभिः प्रमथैर्दैत्यदानवाः।
प्रवृत्ताः प्रमथान् हन्तुः कूटमुद्‌गरपाणयः॥ २१
ततोऽम्बरतले देवाः सेन्द्रविष्णुपितामहाः।
ससूर्याग्निपुरोगास्तु समायाता दिदृक्षवः॥ २२
ततोऽम्बरतले घोषः सस्वनः समजायत।
गीतवाद्यादिसम्मिश्रो दुन्दुभीनां कलिप्रिय॥ २३
ततः पश्यत्सु देवेषु महापाशुपतादयः।
गणास्तद्दानवं सैन्यं जिघांसन्ति स्म कोपिताः॥ २४

बलशाली प्रमथोंद्वारा मारे जा रहे वे दैत्य-दानवगण (भी) हाथोंमें कूट-मुद्गर लेकर प्रमथोंको मारने लगे। उसके बाद (युद्ध) देखनेकी लालसासे इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा,सूर्य एवं अग्नि आदि देवगण आकाशमें एकत्र हो गये। नारदजी! उसके बाद गाने-बजानेके साथ दुन्दुभियोंकी ध्वनि आकाशमें गूँजने लगी। फिर तो देवताओंके देखते-ही-देखते क्रुद्ध होकर महापाशुपत आदि गण दानव-सेनाका विध्वंस करने लगे॥ २१—२४॥

चतुरङ्गबलं दृष्ट्वा हन्यमानं गणेश्वरैः।
क्रोधान्वितस्तुहुण्डस्तु वेगेनाभिससार ह॥ २५
आदाय परिघं घोरं पट्टोद्बद्धमयस्मयम्।
राजतं राजतेऽत्यर्थमिन्द्रध्वजमिवोच्छ्रितम्॥ २६
तं भ्रामयानो बलवान् निजघान रणे गणान्।
रुद्राद्याः स्कन्दपर्यन्तास्तेऽभज्यन्त भयातुराः॥ २७
तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा गणनाथो विनायकः।
समाद्रवत वेगेन तुहुण्डं दनुपुङ्गवम्॥ २८

गणेश्वरोंद्वारा चतुरङ्गिणी—रथ, हाथी, घोड़े, पैदल चार अङ्गोंवाली सेनाको मारी जाती हुई देख करके क्रुद्ध होकर तुहुण्ड तेजीसे आगे बढ़ा। ढालसे बँधे हुए लौहके बने चमचमाते भयङ्कर परिघको लेकर वह इन्द्रके ऊँचे ध्वजके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा था। बलशाली तुहुण्ड उस परिघको घुमाते हुए युद्धमें गणोंको मारने लगा। रुद्रसे लेकर स्कन्दतक वे सभी गण भयभीत होकर भाग चले। उस सेनाको नष्ट हुई देखकर गणनाथ विनायक दानवश्रेष्ठ तुहुण्डकी ओर तेजीसे दौड़े॥ २५—२८॥

आपतन्तं गणपतिं दृष्ट्वा दैत्यो दुरात्मवान्।
परिघं पातयामास कुम्भपृष्ठे महाबलः॥ २९
विनायकस्य तत्कुम्भे परिघं वज्रभूषणम्।
शतधा त्वगमद् ब्रह्मन् मेरोः कूट इवाशनिः॥ ३०
परिघं विफलं दृष्ट्वा समायान्तं च पार्षदम्।
बबन्ध बाहुपाशेन राहू रक्षन् हि मातुलम्॥ ३१
स बद्धो बाहुपाशेन बलादाकृष्य दानवम्।
समाजघान शिरसि कुठारेण महोदरः॥ ३२

महाबलशाली दुष्टात्मा दैत्यने गणपतिको सामने आते देखकर (उनके) कुम्भस्थलमें परिघका वार कर दिया। ब्रह्मन्! वज्रसे अलंकृत वह परिघ विनायकके कुम्भस्थलपर ऐसे सैकड़ों टुकड़े हो गया, जैसे मेरुके शिखरपर वज्र सैकड़ों टुकड़े हो जाता है। परिघको विफल हुआ देखकर अपने मामाकी रक्षा करते हुए राहुने आनेवाले पार्षदको अपने भुजापाशमें जकड़ लिया। भुजापाशमें बँधे हुए (होनेपर भी) उन महोदरने दानवको बलपूर्वक खींचकर उसके मस्तकपर कुठारसे वार किया॥ २९—३२॥

काष्ठवत् स द्विधा भूतो निपपात धरातले।
तथाऽपि नात्यजद् राहुर्बलवान् दानवेश्वरः।
स मोक्षार्थेऽकरोद् यत्नं न शशाक च नारद॥ ३३
विनायकं संयतमीक्ष्य राहुणा
कुण्डोदरो नाम गणेश्वरोऽथ।
प्रगृह्य तूर्णं मुशलं महात्मा
राहुं दुरात्मानमसौ जघान॥ ३४

वह काष्ठके समान दो टुकड़े होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। फिर भी बलशाली दानवेश्वर राहुने उन्हें नहीं छोड़ा। नारदजी! उन्होंने छूटनेका प्रयत्न तो किया, किंतु उससे वे छूट न सके। राहुद्वारा विनायकको बँधा हुआ देखकर कुण्डोदर नामके गणेश्वरने तुरंत मुसल उठा लिया और उन महात्माने दुरात्मा राहुपर (दे) मारा।

ततो गणेशः कलशध्वजस्तु
प्रासेन राहुं हृदये बिभेद।
घटोदरो वै गदया जघान
खड्गेन रक्षोऽधिपतिः सुकेशी॥ ३५
स तैश्चतुर्भिः परिताड्यमानो
गणाधिपं राहुरथोत्ससर्ज।
संत्यक्तमात्रोऽथ परश्वधेन
तुहुण्डमूर्द्धानमथो बिभेद॥ ३६
हते तुहुण्डे विमुखे च राहौ
गणेश्वराः क्रोधविषं मुमुक्षवः।
पञ्चैककालानलसन्निकाशा
विशन्ति सेनां दनुपुङ्गवानाम्॥ ३७
तां वध्यमानां स्वचमूं समीक्ष्य
बलिर्बली मारुततुल्यवेगः।
गदां समाविध्य जघान मूर्ध्नि
विनायकं कुम्भतटे करे च॥ ३८
कुण्डोदरं भग्नकटिं चकार
महोदरं शीर्णशिरःकपालम्।
कुम्भध्वजं चूर्णितसंधिबन्धं
घटोदरं चोरुविभिन्नसंधिम्॥ ३९
गणाधिपांस्तान् विमुखान् स कृत्व
बलान्वितो वीरतरोऽसुरेन्द्रः।
समभ्यधावत् त्वरितो निहन्तुं
गणेश्वरान् स्कन्दविशाखमुख्यान्॥ ४०
तमापतन्तं भगवान् समीक्ष्य
महेश्वरः श्रेष्ठतमं गणानाम्।
शैलादिमामन्त्र्य वचो बभाषे
गच्छस्व दैत्यान् जहि वीर युद्धे॥ ४१
इत्येवमुक्तो वृषभध्वजेन
वज्रं समादाय शिलादसूनुः।
बलिं समभ्येत्य जघान मूर्ध्नि
सम्मोहितः सोऽवनिमाससाद॥ ४२
सम्मोहितं भ्रातृसुतं विदित्वा
बली कुजम्भो मुसलं प्रगृह्य।
सम्भ्रामयंस्तूर्णतरं स वेगात्
ससर्ज नन्दिं प्रति जातकोपः॥ ४३
तमापतन्तं मुसलं प्रगृह्य
करेण तूर्णं भगवान् स नन्दी।
जघान तेनैव कुजम्भमाहवे
न प्राणहीनो निपपात भूमौ॥ ४४

उसके बाद कलशके ध्वजवाले गणेशने प्रासद्वारा राहुके हृदयपर (भी) चोट कर दिया। घटोदरने गदासे तथा राक्षसोंके अधिपति सुकेशीने तलवारसे वार किया। उन चारोंद्वारा प्रहार किये जानेपर राहुने गणाधिपतिको छोड़ दिया। छूटते ही उन्होंने फरसेसे तुहुण्डके मस्तकको काट दिया॥ ३३—३६॥

तुहुण्डके मारे जाने और राहुके पीठ दिखा देनेपर क्रोधरूपी विषको छोड़नेकी कामनावाले प्रलयकालकी अग्निके समान पाँचों गणेश्वर एक साथ दानवश्रेष्ठोंकी सेनामें पैठ गये। अपनी उस सेनाको मारी जाती हुई देखकर वायुके समान तीव्र गतिवाले बलशाली बलिने गदा लेकर विनायकके कुम्भस्थल, मस्तक एवं सूँड़पर वार किया। कुण्डोदरकी कमर तोड़ दी, महोदरके सिरकी खोपड़ीको विधुन दिया, कुम्भध्वजके जोड़ोंको चूर-चूर कर डाला एवं घटोदरकी जाँघोंको तोड़ दिया। उन गणाधिपोंको पीछे भगाकर वीरश्रेष्ठ वह बलशाली असुरेन्द्र तुरंत स्कन्द, विशाख आदि मुख्य-मुख्य गणेश्वरोंको मारनेके लिये दौड़ पड़ा॥ ३७—४०॥

भगवान् महेश्वरने उसे आते हुए देखकर गणोंमें सर्वश्रेष्ठ शैलादिको बुलाकर कहा—वीर! जाओ और संग्राममें दैत्योंको मारो। वृषभध्वजके ऐसा कहनेपर शिलादके पुत्र नन्दीने वज्र ले करके बलिके पास जाकर उसके सिरपर वार किया, जिससे वह अचेत होकर धरतीपर गिर पड़ा। अपने भतीजेको बेहोश जानकर बलवान् कुजम्भने क्रुद्ध हो मुसल लेकर उसे घुमाते हुए नन्दीकी ओर तेजीसे फेंका। भगवान् नन्दीने आते हुए उस मुसलको तुरंत हाथसे पकड़ लिया और उसीसे युद्धमें कुजम्भको मार दिया। वह प्राणहीन होकर भूमिपर गिर पड़ा॥ ४१—४४॥

हत्वा कुजम्भं मुसलेन नन्दी
वज्रेण वीरः शतशो जघान।
ते वध्यमाना गणनायकेन
दुर्योधनं वै शरणं प्रपन्नाः॥ ४५
दुर्योधनः प्रेक्ष्य गणाधिपेन
वज्रप्रहारैर्निहतान् दितीशान्।
प्रासं समाविध्य तडित्प्रकाशं
नन्दिं प्रचिक्षेप हतोऽसि वै ब्रुवन्॥ ४६
तमापतन्तं कुलिशेन नन्दी
बिभेद गुह्यं पिशुनो यथा नरः।
तत्प्रासमालक्ष्य तदा निकृत्तं
संवर्त्त्य मुष्टिं गणमाससाद॥ ४७
ततोऽस्य नन्दी कुलिशेन तूर्णं
शिरोऽच्छिनत् तालफलप्रकाशम्।
हतोऽथ भूमौ निपपात वेगाद्
दैत्याश्च भीता विगता दिशो दश ॥ ४८

वीर नन्दीने कुजम्भको मुसलसे मारकर वज्रद्वारा सैकड़ों दानवोंको भी मार डाला। गणनायकद्वारा मारे जा रहे वे सभी दानव दुर्योधनकी शरणमें गये। दुर्योधनने गणाधिपद्वारा वज्रके आघातसे दैत्योंको मारा हुआ देखकर बिजलीके सदृश प्रकाशसे युक्त प्रास ले लिया तथा 'तुम मारे गये' ऐसा कहते हुए उसे नन्दीकी ओर फेंका। नन्दीने आ रहे उस (प्रास)-को वज्रसे इस प्रकार टुकड़े-टुकड़े काट दिया, जैसे चुगलखोर व्यक्ति गुप्त विषयका भेदन कर देता है। उसके बाद उस प्रासको विदीर्ण हुआ देख (दुर्योधन) मुट्ठी बाँधकर गण (नन्दी)-के पास पहुँचा। उसके बाद ही नन्दीने शीघ्रतासे तालके समान उसके मस्तकको कुलिशसे काट डाला। मारे जानेपर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और भयभीत हुए सभी दैत्य तेजीसे दसों दिशाओंमें भाग गये॥ ४५—४८॥

ततो हतं स्वं तनयं निरीक्ष्य
हस्ती तदा नन्दिनमाजगाम।
प्रगृह्य बाणासनमुग्रवेगं
बिभेद बाणैर्यमदण्डकल्पैः॥ ४९
गणान् सनन्दीन् वृषभध्वजांस्तान्
धाराभिरेवाम्बुधरास्तु शैलान्।
ते छाद्यमानासुरबाणजालै-
र्विनायकाद्या बलिनोऽपि वीराः।
सिंहप्रणुन्ना वृषभा यथैव
भयातुरा दुद्रुविरे समन्तात्॥ ५०
पराङ्मुखान् वीक्ष्य गणान् कुमारः
शक्त्या पृषत्कानथ वारयित्वा।
तूर्णं समभ्येत्य रिपुं समीक्ष्य
प्रगृह्य शक्त्या हृदये बिभेद॥ ५१
शक्तिनिर्भिन्नहृदयो हस्ती भूम्यां पपात ह।
ममार चारिपृतना जाता भूयः पराङ्मुखी॥ ५२
अमरारिबलं दृष्ट्वा भग्नं क्रुद्धा गणेश्वराः।
पुरतो नन्दिनं कृत्वा जिघांसन्ति स्म दानवान्॥ ५३
ते वध्यमानाः प्रमथैर्दैत्याश्चापि पराङ्मुखाः।
भूयो निवृत्ता बलिनः कार्त्तस्वरपुरोगमाः॥ ५४

हस्ती (नामक असुर) अपने पुत्रको मारा गया देखकर नन्दीके समीप आ गया। उसने धनुष लेकर तीव्र वेगसे यमदण्डके समान बाणोंसे वार किया। बादल जिस प्रकार जलकी धाराओंसे पर्वतोंको ढँक लेता है, उसी प्रकार उसने नन्दीके साथ वृषभध्वजके उन गणोंको ढँक दिया। असुरके बाणसमूहसे घिरे वे विनायक आदि बलशाली वीर सिंहके द्वारा आक्रमण किये जानेपर वृषभोंकी भाँति भयसे व्याकुल होकर चारों ओर भागने लगे। कुमारने गणोंको विमुख होते देख शक्तिद्वारा बाणोंको रोक दिया और तुरन्त ही शत्रुके पास पहुँचकर शक्तिसे उसके हृदयको बेध डाला। शक्तिसे हृदयके बिंध जानेपर हस्ती भूमिपर गिर पड़ा तथा मर गया और शत्रुसेना फिर पीठ दिखाकर विमुख हो गयी। दैत्यसेनाको छिन्न-भिन्न हुई देखकर कुपित हुए गणेश्वर नन्दीको आगे कर दानवोंको और मारने लगे; किंतु प्रमथोंद्वारा मारे जा रहे वे सभी विमुख बलशाली कार्त्तस्वरादि दैत्य फिर लौट पड़े॥ ४९—५४॥

तान् निवृत्तान् समीक्ष्यैव क्रोधदीप्तेक्षणः श्वसन्।
नन्दिषेणो व्याघ्रमुखो निवृत्तश्चापि वेगवान्॥ ५५

उन्हें लौटकर आते देख वेगशाली व्याघ्रमुख नन्दिषेण भी क्रोधसे आँखें लाल कर हाँफता हुआ लौट

तस्मिन् निवृत्ते गणपे पट्टिशाग्रकरे तदा।
कार्त्तस्वरो निववृते गदामादाय नारद॥ ५६
तमापतन्तं ज्वलनप्रकाशं
गणः समीक्ष्यैव महासुरेन्द्रम्।
तं पट्टिशं भ्राम्य जघान मूर्ध्नि
कार्त्तस्वरं विस्वरमुन्नदन्तम्॥ ५७
तस्मिन् हते भ्रातरि मातुलेये
पाशं समाविध्य तुरङ्गकन्धरः।
बबन्ध वीरः सह पट्टिशेन
गणेश्वरं चाप्यथ नन्दिषेणम्॥ ५८
नन्दिषेणं तथा बद्धं समीक्ष्य बलिनां वरः।
विशाखः कुपितोऽभ्येत्य शक्तिपाणिरवस्थितः॥ ५९
तं दृष्ट्वा बलिनां श्रेष्ठः पाशपाणिरयःशिराः।
संयोधयामास बली विशाखं कुक्कुटध्वजम्॥ ६०

पड़ा। नारदजी! उसके बाद हाथके अग्रभागमें पट्टिश लिये हुए उस गणाधिपके लौटनेपर कार्त्तस्वर भी गदा लेकर लौट पड़ा। अग्निके समान प्रकाशवाले उस महासुरेन्द्रको आते देखकर गणपतिने पट्टिश घुमाकर उसके मस्तकपर मारा। कार्त्तस्वर चीत्कार करता हुआ मर गया। उस ममेरे भाईके मारे जानेपर वीर तुरङ्गकन्धरने पाशको लेकर पट्टिशके सहित नन्दिषेण गणेश्वरको बाँध लिया। नन्दिषेणको बँधा देखकर बलवानोंमें श्रेष्ठ विशाख क्रुद्ध होकर उसके पास गये और हाथमें शक्ति लिये हुए (उसके सामने) खड़े हो गये। उन्हें देखकर बलवानोंमें श्रेष्ठ अयःशिरा हाथमें पाश लेकर कुक्कुटध्वज विशाखके साथ संग्राम करने लगा॥ ५५—६०॥

विशाखं संनिरुद्धं वै दृष्ट्वाऽयःशिरसा रणे।
शाखश्च नैगमेयश्च तूर्णमाद्रवतां रिपुम्॥ ६१

एकतो नैगमेयेन भिन्नः शक्त्या त्वयःशिराः।
एकतश्चैव शाखेन विशाखप्रियकाम्यया॥ ६२

स त्रिभिः शङ्करसुतैः पीड्यमानो जहौ रणम्।
ते प्राप्ताः शम्बरं तूर्णं प्रेक्ष्यमाणा गणेश्वराः॥ ६३

पाशं शक्त्या समाहत्य चतुर्भिः शङ्करात्मजैः।
जगाम विलयं तूर्णमाकाशादिव भूतलम्॥ ६४

पाशे निराशतां याते शम्बरः कातरेक्षणः।
दिशोऽथ भेजे देवर्षे कुमारः सैन्यमर्दयत्॥ ६५

तैर्वध्यमाना पृतना महर्षे
सा दानवी रुद्रसुतैर्गणैश्च।
विषण्णरूपा भयविह्वलाङ्गी
जगाम शुक्रं शरणं भयार्ता॥ ६६

विशाखको अयःशिराके द्वारा युद्धमें घिरा हुआ देखकर शाख तथा नैगमेय नामके गण शीघ्रतासे शत्रुकी ओर दौड़ पड़े। विशाखको प्रसन्न करनेकी इच्छासे एक ओरसे नैगमेयने और दूसरी ओरसे शाखने शक्तिद्वारा अयःशिराको मारा। शंकरके तीनों पुत्रोंद्वारा ग्रस्त होनेपर उस अयःशिराने युद्ध छोड़ दिया। वे गणेश्वर शम्बरको देखकर शीघ्र ही उसके समीप पहुँचे। शम्बरने पाशको घुमाकर उनपर चलाया। शंकरके चार पुत्रोंने पाशपर वार किया, (इससे वह पाश) आकाशसे भूमिपर गिरकर नष्ट हो गया। पाशके नष्ट हो जानेपर भयभीत होकर शम्बर (इधर-उधर) दिशाओंमें भाग गया और कुमार सेनाको रौंदने लगे। महर्षे! उन रुद्र-पुत्रों एवं गणोंद्वारा मारी जा रही वह दानवी सेना दुःखी एवं भयसे व्याकुल होकर शुक्रकी शरणमें गयी॥ ६१—६६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अड़सठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

शुक्रद्वारा संजीवनीका प्रयोग, नन्दि-दानव-युद्ध, शिवका शुक्रको उदरस्थ रखना, शुक्रकृत शिवस्तुति और विश्वदर्शन, प्रमथ-देवोंसे युद्धमें दैत्योंकी हार, शिव-वेशमें अन्धकका पार्वतीहेतु विफलप्रयास, पुनः दैत्य-देव और इन्द्र-जम्भ-युद्ध, मातलिका जन्म और सारथ्य, दैत्योंका नाश, जम्भ-कुजम्भ-वध

पुलस्त्य उवाच

ततः स्वसैन्यमालक्ष्य निहतं प्रमथैरथ।
अन्धकोऽभ्येत्य शुक्रं तु इदं वचनमब्रवीत्॥ १

भगवंस्त्वां समाश्रित्य वयं बाधाम देवताः।
अथान्यानपि विप्रर्षे गन्धर्वसुरकिन्नरान्॥ २

तदियं पश्य भगवन् मया गुप्ता वरूथिनी।
अनाथेव यथा नारी प्रमथैरपि काल्यते॥ ३

कुजम्भाद्याश्च निहता भ्रातरो मम भार्गव।
अक्षयाः प्रमथाश्चामी कुरुक्षेत्रफलं यथा॥ ४

तस्मात् कुरुष्व श्रेयो नो न जयेम यथा परैः।
जयेम च परान् युद्धे तथा त्वं कर्तुमर्हसि॥ ५

शुक्रोऽन्धकवचः श्रुत्वा सान्त्वयन् परमाद्भुतम्।
वचनं प्राह देवर्षे ब्रह्मर्षिदानवेश्वरम्।
त्वद्धितार्थं यतिष्यामि करिष्यामि तव प्रियम्॥ ६

इत्येवमुक्त्वा वचनं विद्यां संजीवनीं कविः।
आवर्तयामास तदा विधानेन शुचिव्रतः॥ ७

तस्यामावर्त्यमानायां विद्यायामसुरेश्वराः।
ये हताः प्रथमं युद्धे दानवास्ते समुत्थिताः॥ ८

कुजम्भादिषु दैत्येषु भूय एवोत्थितेष्वथ।
युद्धायाभ्यागतेष्वेव नन्दी शङ्करमब्रवीत्॥ ९

महादेव वचो मह्यं शृणु त्वं परमाद्भुतम्।
अविचिन्त्यमसह्यं च मृतानां जीवनं पुनः॥ १०

ये हताः प्रमथैर्दैत्या यथाशक्त्या रणाजिरे।
ते समुज्जीविता भूयो भार्गवेणाथ विद्यया॥ ११

तदिदं तैर्महादेव महत्कर्मकृतं रणे।
संजातं स्वल्पमेवेश शुक्रविद्याबलाश्रयात्॥ १२

पुलस्त्यजी बोले—(नारदजी!) उसके बाद अन्धकने अपनी सेनाको प्रमथोंद्वारा मारी गयी जान करके शुक्राचार्यके निकट जाकर यह वचन कहा—भगवन्! विप्रर्षे! हम आपके ही बलपर देवता, गन्धर्व, असुर, किन्नर एवं अन्य प्राणियोंको बाधित (पराभूत) करते हैं। परंतु भगवन्! आप देखिये कि मेरे द्वारा संरक्षित (हमारी) यह सेना अनाथिनी नारी-सी होकर प्रमथोंद्वारा कालके मुखमें भेजी जा रही है। भार्गव! कुजम्भ आदि मेरे भाई तो मारे गये और ये प्रमथगण (अबतक) कुरुक्षेत्रतीर्थके फलके सदृश अक्षय बने हुए हैं॥ १—४॥

अतः आप हमलोगोंके लिये कल्याणका विधान करें, जिससे हमलोग शत्रुओंके द्वारा जीते न जायँ और ऐसा भी उपाय करें जिससे हमलोग युद्धमें दूसरोंको जीत सकें। देवर्षे! ब्रह्मर्षि शुक्राचार्यने अन्धककी बातको सुनकर दानवेश्वरको आश्वासन देते हुए उससे कहा—मैं तुम्हारे कल्याणके लिये उद्योग करूँगा और तुम्हारा प्रिय करूँगा। ऐसा कहकर पवित्र व्रतवाले शुक्राचार्यने विधानके अनुसार संजीवनी विद्याको प्रकट किया। उस विद्याके प्रकट होनेपर युद्धमें पहले मारे गये (सभी) असुरेश्वर और दानव जी उठे॥ ५—८॥

उसके बाद कुजम्भ आदि दैत्योंके फिर उठ खड़े होने तथा युद्ध करनेके लिये उपस्थित होनेपर नन्दीने शंकरसे कहा—महादेव! आप मेरा अत्यन्त अद्भुत वचन सुनिये। मरे हुए लोगोंका फिर भी जी उठना कल्पनासे परे तथा असहनीय है। संग्राममें प्रमथोंने जिन दैत्योंको बलपूर्वक मारा था, उन्हें भार्गवने संजीवनी विद्याद्वारा पुनः जीवित कर दिया। अतः हे महादेव! हे ईश! उन सभीने युद्धमें जो उत्कृष्ट कार्य किया था, वह शुक्रकी विद्याके बलसे महत्त्वहीन हो गया है—सबपर पानी फिर गया है॥ ९—१२॥

इत्येवमुक्ते वचने नन्दिना कुलनन्दिना।
प्रत्युवाच प्रभुः प्रीत्या स्वार्थसाधनमुत्तमम्॥ १३

गच्छ शुक्रं गणपते ममान्तिकमुपानय।
अहं तं संयमिष्यामि यथायोगं समेत्य हि॥ १४

इत्येवमुक्तो रुद्रेण नन्दी गणपतिस्ततः।
समाजगाम दैत्यानां चमूं शुक्रजिघृक्षया॥ १५

तं ददर्शासुरश्रेष्ठो बलवान् हयकन्धरः।
संरुरोध तदा मार्गं सिंहस्येव पशुर्वने॥ १६

समुपेत्याहनन्नन्दी वज्रेण शतपर्वणा।
स पपाताथ निःसंज्ञो ययौ नन्दी ततस्त्वरन्॥ १७

ततः कुजम्भो जम्भश्च बलो वृत्रस्त्वयःशिराः।
पञ्च दानवशार्दूला नन्दिनं समुपाद्रवन्॥ १८
तथाऽन्ये दानवश्रेष्ठा मयह्लादपुरोगमाः।
नानाप्रहरणा युद्धे गणनाथमभिद्रवन्॥ १९
ततो गणानामधिपं कुट्यमानं महाबलैः।
समपश्यन्त देवास्तं पितामहपुरोगमाः॥ २०
तं दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा प्राह शक्रपुरोगमान्।
साहाय्यं क्रियतां शम्भोरेतदन्तरमुत्तमम्॥ २१

पितामहोक्तं वचनं श्रुत्वा देवाः सवासवाः।
समापतन्त वेगेन शिवसैन्यमथाम्बरात्॥ २२

तेषामापततां वेगः प्रमथानां बले बभौ।
आपगानां महावेगं पतन्तीनां महार्णवे॥ २३

ततो हलहलाशब्दः समजायत चोभयोः।
बलयोर्घोरसंकाशो सुरप्रमथयोरथ॥ २४

तमन्तरमुपागम्य नन्दी संगृह्य वेगवान्।
रथाद् भार्गवमाक्रामत् सिंहः क्षुद्र मृगं यथा॥ २५

तमादाय हराभ्याशमागमद् गणनायकः।
निपात्य रक्षिणः सर्वानथ शुक्रं न्यवेदयत्॥ २६

तमानीतं कविं शर्वः प्राक्षिपद् वदने प्रभुः।
भार्गवं त्वावृततनुं जठरे स न्यवेशयत्॥ २७

स शम्भुना कविश्रेष्ठो ग्रस्तो जठरमास्थितः।
तुष्टाव भगवन्तं तं मुनिर्वाग्भिरथादरात्॥ २८

कुलको आनन्द देनेवाले नन्दीके इस प्रकार कहनेपर महादेवने स्नेहपूर्वक स्वार्थसिद्ध करनेवाला उत्तम वचन कहा—गणपते! तुम जाओ और शुक्रको मेरे समीप लिवा लाओ। (फिर तो) मैं उन्हें पाकर योगक्रियासे संयमित कर दूँगा। रुद्रके ऐसा कहनेपर गणपति नन्दी शुक्राचार्यको पकड़ लानेकी कामनासे दैत्योंकी सेनामें गये। हयकन्धर नामके बलवान् श्रेष्ठ असुरने उन्हें सेनामें आते हुए देखा और जिस प्रकार साधारण पशु (दुस्साहससे) वनमें सिंहका मार्ग रोक दे, उसी प्रकार उनके मार्गको उसने रोका। नन्दीने समीप जाकर शतपर्व (वज्र)-से उसे मारा और वह अचेत होकर गिर पड़ा। उसके बाद नन्दी तुरंत वहाँसे चल दिये॥ १३—१७॥

उसके बाद कुजम्भ, जम्भ, बल, वृत्र और अयःशिरा नामके पाँच श्रेष्ठ दानव नन्दीकी ओर दौड़े। इसी प्रकार युद्धमें भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करनेवाले मय एवं ह्लाद आदि दानवश्रेष्ठोंने भी नन्दीका पीछा किया। फिर पितामहादि देवोंने महाबली दानवोंके द्वारा कूटे जा रहे गणाधिपको देखा। भगवान् ब्रह्माने उसे देखकर इन्द्र आदि देवताओंसे कहा—आपलोग इस उत्तम (उपयुक्त) अवसरपर शम्भुकी सहायता करें॥ १८—२१॥

पितामहके कहे हुए वचनको सुनकर इन्द्र आदि देवता आकाशमार्गसे जल्दी ही शिवकी सेनामें आ गये। समुद्रमें जाती हुई नदियोंके महावेगके सदृश प्रमथोंकी सेनामें (आकाशसे) आते हुए देवताओंका वेग सुशोभित हुआ। उसके बाद प्रमथों और असुरों—दोनों पक्षोंकी सेनाओंमें भीषण 'हलहला' शब्द उत्पन्न हुआ। उसी समय अवसर पाकर तीव्र गतिवाले नन्दी, जिस प्रकार सिंह क्षुद्र मृगको दबोच लेता है, उसी प्रकार भार्गवको लेकर रथसे भाग चले। गणनायक उन्हें लेकर सभी रक्षा करनेवालोंको मारते हुए शंकरके पास पहुँच गये। शुक्राचार्यको उन्होंने उनके निकट निवेदित कर दिया। समर्थ शंकरने लाये गये उन शुक्रको अपने मुखमें फेंका और अक्षुण्ण शरीरवाले भार्गवको अपने उदरमें (ज्यों-का-त्यों) रख लिया। शम्भुसे ग्रस्त होकर उनके उदरमें स्थित हुए वे मुनिश्रेष्ठ शुक्र प्रेमपूर्वक उन भगवान्‌की स्तुति करने लगे॥ २२—२८॥

शुक्र उवाच

वरदाय नमस्तुभ्यं हराय गुणशालिने।
शङ्कराय महेशाय त्र्यम्बकाय नमो नमः॥ २९

जीवनाय नमस्तुभ्यं लोकनाथ वृषाकपे।
मदनाग्ने कालशत्रो वामदेवाय ते नमः॥ ३०

स्थाणवे विश्वरूपाय वामनाय सदागते।
महादेवाय शर्वाय ईश्वराय नमो नमः॥ ३१

त्रिनयन हर भव शङ्कर उमापते जीमूतकेतो गुहागृहश्मशाननिरत भूतिविलेपन शूलपाणे पशुपते गोपते तत्पुरुषसत्तम नमो नमस्ते।

इत्थं स्तुतः कविवरेण हरोऽथ भक्त्या
प्रीतो वरं वरय दद्मि तवेत्युवाच।
स प्राह देववर देहि वरं ममाद्य
यद्वै तवैव जठरात् प्रतिनिर्गमोऽस्तु॥ ३२

ततो हरोऽक्षीणि तदा निरुध्य
प्राह द्विजेन्द्राद्य विनिर्गमस्व।
इत्युक्तमात्रो विभुना चचार
देवोदरे भार्गवपुङ्गवस्तु॥ ३३

परिभ्रमन् ददर्शाथ शम्भोरेवोदरे कविः।
भुवनार्णवपातालान् वृतान् स्थावरजङ्गमैः॥ ३४

आदित्यान् वसवो रुद्रान् विश्वेदेवान् गणांस्तथा।
यक्षान् किंपुरुषाद्यादीन् गन्धर्वाप्सरसां गणान्॥ ३५

मुनीन् मनुजसाध्यांश्च पशुकीटपिपीलिकान्।
वृक्षगुल्मान् गिरीन् वल्ल्यः फलमूलौषधानि च॥ ३६

स्थलस्थांश्च जलस्थांश्चानिमिषान्निमिषानपि।
चतुष्पदान् सद्विपदान् स्थावराञ् जङ्गमानपि॥ ३७

अव्यक्तांश्चैव व्यक्तांश्च सगुणान्निर्गुणानपि।
स दृष्ट्वा कौतुकाविष्टः परिबभ्राम भार्गवः।
तत्रासतो भार्गवस्य दिव्यः संवत्सरो गतः॥ ३८

न चान्तमलभद् ब्रह्मंस्ततः श्रान्तोऽभवत् कविः।
स श्रान्तं वीक्ष्य चात्मानं नालभन्निर्गमं वशी।
भक्तिनम्रो महादेवं शरणं समुपागमत्॥ ३९

शुक्रने कहा—प्रभो! गुणसे सम्पन्न आप वरदानी हरको नमस्कार है। शंकर, महेश, त्रिनेत्रको बार-बार नमस्कार है। लोकोंके स्वामिन्! वृषाकपे! आप जीवनस्वरूपको नमस्कार है। हे कामदेवके लिये अग्निस्वरूप! कालशत्रो! आप वामदेवको नमस्कार है। स्थाणु, विश्वरूप, वामन, सदागति, महादेव, शर्व और ईश्वर! आपको बार-बार नमस्कार है। हे त्रिनयन! हे हर! हे भव! हे शङ्कर! हे उमापते! हे जीमूतकेतो! हे गुहागृह! हे श्मशाननिरत! हे भूतिविलेपन! हे शूलपाणे! हे पशुपते! हे गोपते! हे श्रेष्ठ परमपुरुष! आपको बार-बार नमस्कार है। इस प्रकार कविवर (शुक्राचार्य)-के भक्तिपूर्वक स्तुति करनेपर शंकरने कहा—मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम वर माँगो; मैं तुम्हें वर दूँगा। उन्होंने कहा—हे देववर! इस समय मुझे यही वर दीजिये कि मैं पुनः आपके उदरसे बाहर निकलूँ। उसके बाद शंकरने नेत्रोंको बंदकर कहा—हे द्विजेन्द्र! अब तुम बाहर निकल जाओ! (परंतु) शंकरके इस प्रकार कहनेपर भी वे भार्गवश्रेष्ठ शुक्राचार्य उनके उदरमें विचरण करने लगे॥ २९—३३॥

(भगवान् शंकरके उदरमें) विचरण करते हुए शुक्राचार्यने शंकरके ही उदरमें चराचर प्राणियोंसे व्याप्त सारा जगत्, समुद्र एवं पातालोंको देखा। आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, विश्वेदेवों, गणों, यक्षों, किम्पुरुषों, गन्धर्वों, अप्सराओं, मुनियों, मनुष्यों, साध्यों, पशुओं, कीटों, पिपीलिकाओं, वृक्षों, गुल्मों, पर्वतों, लताओं, फलों, मूलों, ओषधियों, स्थलपर रहनेवालों, जलमें रहनेवालों, अनिमिषों, निमिषों, चतुष्पदों, द्विपदों, स्थावरों, जङ्गमों, अव्यक्तों, व्यक्तों, सगुणों एवं निर्गुणोंको देखते हुए कुतूहलवश (उसी उदरमें ही) भार्गव चारों ओर घूमने लगे। भृगुवंशी शुक्राचार्यको वहाँ इस प्रकार रहते हुए एक दिव्य वर्ष बीत गया। परंतु ब्रह्मन्! शुक्रको अन्त नहीं मिला और वे थक गये। स्वयंको थका हुआ देखकर और बाहर निकलनेका मार्ग न पाकर आत्माको वशमें करनेवाले वे भक्तिसे नम्र होकर महादेवकी शरणमें आ गये॥ ३४—३९॥

शुक्र उवाच

विश्वरूप महारूप विश्वरूपाक्षसूत्रधृक्।
सहस्त्राक्ष महादेव त्वामहं शरणं गतः॥ ४०
नमोऽस्तु ते शङ्कर शर्व शम्भो
सहस्त्रनेत्राङ्घ्रिभुजङ्गभूषण ।
दृष्ट्वैव सर्वान् भुवनांस्तवोदरे
श्रान्तो भवन्तं शरणं प्रपन्नः॥ ४१
इत्येवमुक्ते वचने महात्मा
शम्भुर्वचः प्राह ततो विहस्य।
निर्गच्छ पुत्रोऽसि ममाधुना त्वं
शिश्नेन भो भार्गववंशचन्द्र॥ ४२
नाम्ना तु शुक्रेति चराचरास्त्वां
स्तोष्यन्ति नैवात्र विचारमन्यत्।
इत्येवमुक्त्वा भगवान् मुमोच
शिश्नेन शुक्रं स च निर्जगाम॥ ४३
विनिर्गतो भार्गववंशचन्द्रः
शुक्रत्वमापद्य महानुभावः।
प्रणम्य शम्भुं स जगाम तूर्णं
महासुराणां बलमुत्तमौजाः॥ ४४

शुक्रने कहा—हे विश्वरूप! हे महारूप! हे विश्वरूपाक्ष! हे सूत्रधारिन्! हे सहस्त्राक्ष! हे महादेव! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे शङ्कर! हे शर्व! हे शम्भो! हे सहस्त्रनेत्राङ्घ्रि! हे भुजङ्गभूषण! आपके उदरमें सभी भुवनोंको देखते-देखते थककर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। इस प्रकारके वचन कहनेपर महात्मा शम्भुने हँसकर यह वचन कहा—अब तुम मेरे पुत्र हो गये हो। इसलिये हे भार्गववंशके चन्द्र! मेरे शिश्नसे बाहर निकलो। अब समस्त चराचर जगत् तुम्हारी स्तुति शुक्रके नामसे करेगा। इसमें किसी अन्य प्रकारके विचारका स्थान नहीं है। ऐसा कहकर भगवान्ने शिश्न-मार्गसे शुक्रको मुक्त कर दिया और वे बाहर निकल आये। शुक्रत्व प्राप्तकर बाहर निकले ओजस्वी महानुभाव भार्गववंशचन्द्र शम्भुको प्रणामकर शीघ्र महासुरोंकी सेनामें चले गये॥ ४०—४४॥

भार्गवे पुनरायाते दानवा मुदिताभवन्।
पुनर्युद्धाय विदधुर्मतिं सह गणेश्वरैः॥ ४५
गणेश्वरास्तानसुरान् सहामरगणैरथ।
युयुधुः संकुलं युद्धं सर्व एव जयेप्सवः॥ ४६
ततोऽसुरगणानां च देवतानां च युध्यताम्।
द्वन्द्वयुद्धं समभवद् घोररूपं तपोधन॥ ४७
अन्धको नन्दिनं युद्धे शङ्कुकर्णं त्वयःशिराः।
कुम्भध्वजं बलिर्धीमान् नन्दिषेणं विरोचनः॥ ४८

शुक्राचार्यके वापस आ जानेपर दानव प्रसन्न हो गये। उन्होंने गणेश्वरोंके साथ फिर युद्ध करनेका विचार किया। उसके बाद देवताओंसहित विजयकी कामनावाले सभी गणेश्वरोंने उन असुरोंसे भयंकर युद्ध किया। हे तपोधन! उसके बाद युद्ध करनेमें लगे हुए असुर-गणों एवं देवताओंमें भयानक द्वन्द्वयुद्ध हुआ। अन्धक नन्दीके साथ, अयःशिरा शंकुकर्णके साथ, बुद्धिमान् बलि कुम्भध्वजके साथ एवं विरोचन नन्दिषेणके साथ भिड़ गये॥ ४५—४८॥

अश्वग्रीवो विशाखं च शाखो वृत्रमयोधयत्।
बाणस्तथा नैगमेयं बलं राक्षसपुङ्गवः॥ ४९
विनायको महावीर्यः परश्वधधरो रणे।
संक्रुद्धो राक्षसश्रेष्ठं तुहुण्डं समयोधयत्।
दुर्योधनश्च बलिनं घण्टाकर्णमयोधयत्॥ ५०
हस्ती च कुण्डजठरं ह्लादो वीरं घटोदरम्।
एते हि बलिनां श्रेष्ठा दानवाः प्रमथास्तथा।
संयोधयन्ति देवर्षे दिव्याब्दानां शतानि षट्॥ ५१
शतक्रतुमथायान्तं वज्रपाणिमभिस्थितम्।
वारयामास बलवाञ् जम्भो नाम महासुरः॥ ५२

अश्वग्रीव विशाखके साथ और शाख वृत्रके साथ, बाण नैगमेयके साथ और राक्षसपुंगव बलके साथ लड़ने लगा। युद्धमें कुपित होकर परशु धारण करनेवाले महापराक्रमी विनायक राक्षसश्रेष्ठ तुहुण्डके साथ भिड़ गये और दुर्योधन बलशाली घण्टाकर्णके साथ युद्ध करने लगा। हस्ती कुण्डजठरके साथ और ह्लाद वीर घटोदरसे लड़ने लगा। देवर्षे! बलवानोंमें श्रेष्ठ ये सभी दानव एवं प्रमथगण आपसमें छः सौ दिव्य वर्षोंतक संग्राम करते रहे। जम्भ नामके बलशाली असुरने सामने आ रहे वज्रपाणि इन्द्रको रोक लिया॥ ४९—५२॥

शम्भुनामाऽसुरपतिः स ब्रह्माणमयोधयत्।
महौजसं कुजम्भश्च विष्णुं दैत्यान्तकारिणम्॥ ५३
विवस्वन्तं रणे शाल्वो वरुणं त्रिशिरास्तथा।
द्विमूर्धा पवनं सोमं राहुर्मित्रं विरूपधृक्॥ ५४
अष्टौ ये वसवः ख्याता धराद्यास्ते महासुरान्।
अष्टावेव महेष्वासान् वारयामासुराहवे॥ ५५
सरभः शलभः पाकः पुरोऽथ विपृथुः पृथुः।
वातापी चेल्वलश्चैव नानाशस्त्रास्त्रयोधिनः॥ ५६
विश्वेदेवगणान् सर्वान् विष्वक्सेनपुरोगमान्।
एक एव रणे रौद्रः कालनेमिर्महासुरः॥ ५७

शम्भु नामका असुरराज ब्रह्मासे लड़ने लगा और कुजम्भ दैत्योंका अन्त करनेवाले महान् ओजस्वी विष्णुसे युद्ध करने लगा। शाल्व सूर्यसे, त्रिशिरा वरुणसे, द्विमूर्धा पवनसे, राहु सोमसे और विरूपधृक् मित्रसे लड़ने लगा। धरादि नामसे विख्यात आठ वसुओंने सरभ, शलभ, पाक, पुर, विपृथु, पृथु, वातापी और इल्वल—इन आठ महान् धनुर्धारी असुरोंको युद्धमें लड़कर (पीछे) हटा दिया। ये असुर भाँति-भाँतिके शस्त्र और अस्त्र लेकर लड़ने लगे। कालनेमि नामका भयंकर महासुर युद्धमें अकेला ही विष्वक्सेन आदि विश्वेदेव गणोंसे युद्ध करने लगा॥ ५३—५७॥

एकादशैव ये रुद्रास्तानेकोऽपि रणोत्कटः।
योधयामास तेजस्वी विद्युन्माली महासुरः॥ ५८
द्वावश्विनौ च नरको भास्करानेव शम्बरः।
साध्यान् मरुद्गणांश्चैव निवातकवचादयः॥ ५९
एवं द्वन्द्वसहस्राणि प्रमथामरदानवैः।
कृतानि च सुराब्दानां दशतीः षण्महामुने॥ ६०
यदा न शकिता योद्धुं दैवतैरमरारयः।
तदा मायां समाश्रित्य ग्रसन्तः क्रमशोऽव्ययान्॥ ६१

रणमें उत्कट तेजवाले विद्युन्माली नामके महासुरने अकेले ही एकादश रुद्रोंका (डटकर) सामना किया। नरकने दोनों अश्विनीकुमारोंसे, शम्बरने (द्वादश) भास्करोंसे एवं निवातकवचादिने साध्यों तथा मरुद्गणोंसे युद्ध किया। महामुने! इस प्रकार आठ दिव्य वर्षोंतक प्रमथों एवं दानवोंके हजारोंकी संख्यामें दो-दो लड़ाके वीर आपसमें द्वन्द्वयुद्ध करते रहे। जब असुरगण इस प्रकार देवोंसे युद्ध करनेमें समर्थहीन हो गये, तब उन लोगोंने मायाका सहारा लेकर देवोंको क्रमशः निगलना प्रारम्भ कर दिया॥ ५८—६१॥

ततोऽभवच्छैलपृष्ठं प्रावृडभ्रसमप्रभैः।
आवृतं वर्जितं सर्वैः प्रमथैरमरैरपि॥ ६२
दृष्ट्वा शून्यं गिरिप्रस्थं ग्रस्तांश्च प्रमथामरान्।
क्रोधादुत्पादयामास रुद्रो जृम्भायिकां वशी॥ ६३
तया स्पृष्टा दनुसुता अलसा मन्दभाषिणः।
वदनं विकृतं कृत्वा मुक्तशस्त्रं विजृम्भिरे॥ ६४
जृम्भमाणेषु च तदा दानवेषु गणेश्वराः।
सुराश्च निर्ययुस्तूर्णं दैत्यदेहेभ्य आकुलाः॥ ६५

उसके बाद सारे प्रमथों और देवोंसे रहित पर्वत वर्षाकालीन मेघके समान दानवोंसे ढक गया। पर्वतप्रान्तको शून्य और प्रमथों तथा देवोंको ग्रसित हुआ देखकर विजितेन्द्रिय रुद्रने क्रोधसे जृम्भायिकाको उत्पन्न किया। उसके स्पर्श करनेपर अस्त्रोंको छोड़कर धीरे-धीरे बोलते हुए आलस्यसे पूर्ण दानव मुखको विवर्ण बनाकर जँभाई लेने लगे। दानवोंके जँभाई लेते समय आकुल होकर गणेश्वर एवं देवतालोग दैत्योंकी देहसे अविलम्ब बाहर निकल गये॥ ६२—६५॥

मेघप्रभेभ्यो दैत्येभ्यो निर्गच्छन्तोऽमरोत्तमाः।
शोभन्ते पद्मपत्राक्षा मेघेभ्य इव विद्युतः॥ ६६
गणामरेषु च समं निर्गतेषु तपोधन।
अयुध्यन्त महात्मानो भूय एवातिकोपिताः॥ ६७

मेघके समान दैत्योंके शरीरसे बाहर निकल रहे कमलके सदृश आँखोंवाले श्रेष्ठ देवगण बादलसे निकलनेवाली बिजलीकी भाँति शोभित हो रहे थे। तपोधन! गणों और देवोंके बाहर आ जानेपर वे महान् (दैत्य)

ततस्तु देवैः सगणैः दानवाः शर्वपालितैः।
पराजीयन्त संग्रामे भूयो भूयस्त्वहर्निशम्॥ ६८

ततस्त्रिनेत्रः स्वां संध्यां सप्ताब्दशतिके गते।
कालेऽभ्युपासत तदा सोऽष्टादशभुजोऽव्ययः॥ ६९

संस्पृश्यापः सरस्वत्यां स्नात्वा च विधिना हरः।
कृतार्थो भक्तिमान् मूर्ध्ना पुष्पाञ्जलिमुपाक्षिपत्॥ ७०

ततो ननाम शिरसा ततश्चक्रे प्रदक्षिणम्।
हिरण्यगर्भेत्यादित्यमुपतस्थे जजाप ह॥ ७१

त्वष्ट्रे नमो नमस्तेऽस्तु सम्यगुच्चार्य शूलधृक्।
ननर्त भावगम्भीरं दोर्दण्डं भ्रामयन् बलात्॥ ७२

परिनृत्यति देवेशे गणाश्चैवामरास्तथा।
नृत्यन्ते भावसंयुक्ता हरस्यानुविलासिनः॥ ७३

सन्ध्यामुपास्य देवेशः परिनृत्य यथेच्छया।
युद्धाय दानवैः सार्द्धं मतिं भूयः समादधे॥ ७४

ततोऽमरगणैः सर्वैस्त्रिनेत्रभुजपालितैः।
दानवा निर्जिताः सर्वे बलिभिर्भयवर्जितैः॥ ७५

स्वबलं निर्जितं दृष्ट्वा मत्वाऽजेयं च शङ्करम्।
अन्धकः सुन्दमाहूय इदं वचनमब्रवीत्॥ ७६

सुन्द भ्राताऽसि मे वीर विश्वास्यः सर्ववस्तुषु।
तद्वदाम्यद्य यद्वाक्यं तच्छ्रुत्वा यत्क्षमं कुरु॥ ७७

दुर्जयोऽसौ रणपटुर्धर्मात्मा कारणान्तरैः।
समासते हि हृदये पद्माक्षी शैलनन्दिनी॥ ७८

तदुत्तिष्ठस्व गच्छामो यत्रास्ते चारुहासिनी।
तत्रैनां मोहयिष्यामि हररूपेण दानव॥ ७९

भवान् भवस्यानुचरो भव नन्दी गणेश्वरः।
ततो गत्वाऽथ भुक्त्वा तां जेष्यामि प्रमथान् सुरान्॥ ८०

इत्येवमुक्ते वचने बाढं सुन्दोऽभ्यभाषत।
समजायत शैलादिरन्धकः शङ्करोऽप्यभूत्॥ ८१

नन्दिरुद्रौ ततो भूत्वा महासुरचमूपती।
सम्प्राप्तौ मन्दरगिरिं प्रहारैः क्षतविग्रहौ॥ ८२

अत्यन्त कुपित होकर युद्ध करने लगे। उसके बाद शम्भुसे पालित गणों एवं देवोंने युद्धमें दानवोंको दिन-रात बारम्बार हराया। उसके बाद सात सौ वर्षोंका समय बीत जानेपर अठारह भुजाओंवाले अविनाशी त्र्यम्बक शंकर अपनी नित्यक्रियाकी सन्ध्या करने लगे॥ ६६—६९॥

उन भक्तिमान् शंकरने जलका स्पर्शकर (आचमनकर) विधिपूर्वक सरस्वतीमें स्नान किया। वे कृतार्थ हो गये। उन्होंने पुष्पाञ्जलि सिरसे लगाकर समर्पित की। उसके बाद उन्होंने सिर झुकाकर प्रणाम एवं उसके पश्चात् प्रदक्षिणा कर 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि मन्त्रसे सूर्यकी वन्दना की और जप किया। उसके बाद **'त्वष्ट्रे नमो नमस्तेऽस्तु'** इसका स्पष्टरूपसे उच्चारण कर शूलपाणि शंकर बलपूर्वक अपना बाहुदण्ड घुमाते हुए भाव-गम्भीर होकर नाचने लगे। देवेश्वरके नाचनेपर उनके अनुगामी गण और देवता भी (वैसे ही) भाव-विभोर होकर नाचने लगे॥ ७०—७३॥

सन्ध्योपासन करके इच्छानुकूल नृत्य करनेके बाद शंकरने फिर दानवोंसे संग्राम करनेका विचार किया। फिर तो शंकरकी भुजाओंसे रक्षित बलशाली और निर्भय सम्पूर्ण देवताओंने सारे दानवोंको जीत लिया। अपनी सेनाको पराजित देखकर तथा महादेवको पराजित करनेमें कठिनाई जान करके अन्धकने सुन्दको बुलाकर यह वचन कहा—वीर सुन्द! तुम मेरे भाई हो और सभी विषयोंमें तुम मेरे विश्वासी हो। इसलिये आज मैं तुमसे जो कहता हूँ, उसे सुनकर यथाशक्ति उसे पूर्ण करो॥ ७४—७७॥

किन्हीं मुख्य कारणोंसे युद्ध करनेमें परम चतुर ये धर्मात्मा दुर्जेय हैं। मेरे हृदयमें कमलनयनी पार्वती बसी हुई है। अतः उठो; हम वहाँ चलें, जहाँ वह मधुर मुसकानवाली स्थित है। दानव! वहाँ मैं शंकरका रूप धारण करके उसे मुग्ध कर दूँगा (भुलावेमें डाल दूँगा)। तुम शंकरका अनुचर गणेश्वर नन्दी बनो। तब वहाँ पहुँच करके और उसका सुख भोगकर प्रमथों एवं देवोंको जीतूँगा। ऐसा कहनेपर सुन्दने कहा—ठीक है। उसके बाद वह शैलादि (नन्दी) बन गया और अन्धक शिव बन गया॥ ७८—८१॥

उसके बाद महासुर (अन्धक) और सेनापति (सुन्द) शस्त्रास्त्रोंकी मारसे अधिक घायल हुए शरीरवाले रुद्र और नन्दीका रूप धारण कर मन्दरगिरिपर पहुँचे।

हस्तमालम्ब्य सुन्दस्य अन्धको हरमन्दिरम्।
विवेश निर्विशङ्केन चित्तेनासुरसत्तमः॥ ८३
ततो गिरिसुता दूरादायान्तं वीक्ष्य चान्धकम्।
महेश्वरवपुश्छन्नं प्रहारैर्जर्जरच्छविम्॥ ८४
सुन्दं शैलादिरूपस्थमवष्टभ्याविशत् ततः।
तं दृष्ट्वा मालिनीं प्राह सुयशां विजयां जयाम्॥ ८५
जये पश्यस्व देवस्य मदर्थे विग्रहं कृतम्।
शत्रुभिर्दानववरैस्तदुत्तिष्ठस्व सत्वरम्॥ ८६

घृतमानय पौराणं बीजिकां लवणं दधि।
व्रणभङ्गं करिष्यामि स्वयमेव पिनाकिनः॥ ८७

कुरुष्व शीघ्रं सुयशे स्वभर्तुर्व्रणनाशनम्।
इत्येवमुक्त्वा वचनं समुत्थाय वरासनात्॥ ८८

अभ्युद्ययौ तदा भक्त्या मन्यमाना वृषध्वजम्।
शूलपाणेस्ततः स्थित्वा रूपं चिह्नानि यत्नतः॥ ८९

अन्वियेष ततो ब्रह्मन्नोभौ पार्श्वस्थितौ वृषौ।
सा ज्ञात्वा दानवं रौद्रं मायाच्छादितविग्रहम्॥ ९०
अपयानं तदा चक्रे गिरिराजसुता मुने।
देव्याश्चिन्तितमाज्ञाय सुन्दं त्यक्त्वान्धकोऽसुरः॥ ९१
समाद्रवत वेगेन हरकान्तां विभावरीम्।
समाद्रवत दैतेयो येन मार्गेण साऽगमत्॥ ९२
अपस्कारान्तरं भञ्जन् पादप्लुतिभिराकुलः।
तमापतन्तं दृष्ट्वैव गिरिजा प्राद्रवद् भयात्॥ ९३
गृहं त्यक्त्वा ह्युपवनं सखीभिः सहिता तदा।
तत्राप्यनुजगामासौ मदान्धो मुनिपुङ्गव॥ ९४
तथापि न शशापैनं तपसो गोपनाय तु।
तद्भयादाविशद् गौरी श्वेतार्ककुसुमं शुचि॥ ९५
विजयाद्या महागुल्मे सम्प्रयाता लयं मुने।
नष्टायामथ पार्वत्यां भूयो हैरण्यलोचनिः॥ ९६

सुन्दं हस्ते समादाय स्वसैन्यं पुनरागमत्।
अन्धके पुनरायाते स्वबलं मुनिसत्तम॥ ९७

असुरश्रेष्ठ अन्धक सुन्दका हाथ पकड़कर निडर होकर महादेवके मन्दिरमें घुस गया। उसके बाद शैलादि नन्दीके रूपमें स्थित सुन्दको पकड़कर मारोंसे जर्जर महादेवके शरीरमें छिपे अन्धकको दूरसे आते देखकर पार्वतीने यशस्विनी मालिनी, विजया तथा जयासे कहा— ॥ ८२—८५ ॥

जये! देखो, मेरे स्वामीके शरीरको मेरे लिये दानव-शत्रुओंने किस प्रकार जर्जरित कर डाला है। इसलिये अविलम्ब उठो। पुराना घी, बीजिका, लवण और दही ले आओ। पिनाक धारण करनेवाले शंकरके घावोंको मैं स्वयं ही भरूँगी। यशस्विनि! शीघ्र अपने स्वामीके घावोंको भरो—ऐसा कहते हुए आसनसे उठकर उसे वृषध्वज शंकर समझती हुई वे भक्तिपूर्वक उसके पास गयीं। उसके बाद खड़ी होकर वे शंकरके रूप एवं चिह्नोंको भलीभाँति देखने लगीं। ब्रह्मन्! उन्होंने देखा कि उसकी बगलमें स्थित दोनों वृष नहीं हैं। इसलिये उन्हें यह मालूम हो गया कि यह मायासे छिपे शरीरवाला भयानक दानव है॥ ८६—९० ॥

मुने! उसके बाद गिरिराजकी कन्या भाग चलीं। देवीके विचारको समझकर अन्धकासुर सुन्दको छोड़कर शीघ्रतापूर्वक शंकरप्रिया विभावरीके पीछे उसी रास्तेसे दौड़ा, जिससे वे गयी थीं। चरणके चपेटोंसे राहकी रुकावटोंको चूर-चूर करते हुए वह अधीरतापूर्वक दौड़ पड़ा। उसे आते देखकर गिरितनया भयसे (और) भाग चलीं। मुनिवर! उसके बाद देवी सखियोंके साथ घर छोड़कर उपवनमें चली गयीं। वहाँ भी मदान्ध (अन्धक)-ने उनका पीछा किया। इतनेपर भी अपने तपकी रक्षाके लिये उन्होंने उसे शाप नहीं दिया। किंतु गौरी स्वयं उसके डरसे पवित्र सफेद अर्कके फूलमें छिप गयीं॥ ९१—९५ ॥

मुने! विजया आदि भी घनी झाड़ियोंमें छिप गयीं। उसके बाद पार्वतीके अदृश्य हो जानेपर हिरण्याक्षका पुत्र (अन्धक) सुन्दका हाथ पकड़कर पुनः अपनी सेनामें वापस आ गया। मुनिसत्तम! अन्धकके अपनी सेनामें पुनः लौट आनेपर प्रमथों और असुरोंमें घमासान

प्रावर्तत महायुद्धं प्रमथासुरयोरथ।
ततोऽमरगणश्रेष्ठो विष्णुश्चक्रगदाधरः॥ ९८

निजघानासुरबलं शङ्करप्रियकाम्यया।
शार्ङ्गचापच्युतैर्बाणैः संस्यूता दानवर्षभाः॥ ९९

पञ्च षट् सप्त चाष्टौ वा ब्रध्नपादैर्घना इव।
गदया कांश्चिदवधीच्चक्रेणान्याञ् जनार्दनः॥ १००

खड्गेन च चकर्तान्यान् दृष्ट्यान्यान् भस्मसाद् व्यधात्।
हलेनाकृष्य चैवान्यान् मुसलेन व्यचूर्णयत्॥ १०१

गरुडः पक्षपाताभ्यां तुण्डेनाप्युरसाऽहनत्।
स चादिपुरुषो धाता पुराणः प्रपितामहः॥ १०२

भ्रामयन् विपुलं पद्मभ्यषिञ्चत वारिणा।
संस्पृष्टा ब्रह्मतोयेन सर्वतीर्थमयेन हि॥ १०३

गणामरगणाश्चासन् नवनागशताधिकाः।
दानवास्तेन तोयेन संस्पृष्टाश्चाघहारिणा॥ १०४

सवाहनाः क्षयं जग्मुः कुलिशेनेव पर्वताः।
दृष्ट्वा ब्रह्महरी युद्धे घातयन्तौ महासुरान्॥ १०५

शतक्रतुश्च दुद्राव प्रगृह्य कुलिशं बली।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य बलो दानवसत्तमः॥ १०६

मुक्त्वा देवं गदापाणिं विमानस्थं च पद्मजम्।
शक्रमेवाद्रवद् योद्धुं मुष्टिमुद्यम्य नारद।
बलवान् दानवपतिरजेयो देवदानवैः॥ १०७

तमापतन्तं त्रिदशेश्वरस्तु
दोष्णां सहस्रेण यथाबलेन।
वज्रं परिभ्राम्य बलस्य मूर्ध्नि
चिक्षेप हे मूढ हतोऽस्युदीर्य॥ १०८

स तस्य मूर्ध्नि प्रवरोऽपि वज्रो
जगाम तूर्णं हि सहस्रधा मुने।
बलोऽद्रवद् देवपतिश्च भीतः
पराङ्मुखोऽभूत् समरान्महर्षे॥ १०९

तं चापि जम्भो विमुखं निरीक्ष्य
भूत्वाऽग्रतः प्राह न युक्तमेतत्।
तिष्ठस्व राजाऽसि चराचरस्य
न राजधर्मे गदितं पलायनम्॥ ११०

लड़ाई होने लगी। उसके बाद अमरगणोंमें श्रेष्ठ चक्र एवं गदा धारण करनेवाले विष्णुभगवान् शंकरका प्रिय करनेकी इच्छासे असुर-सेनाका संहार करने लगे। शार्ङ्ग नामक धनुषसे निकले हुए बाणोंसे पाँच-पाँच, छः-छः, सात-सात, आठ-आठ श्रेष्ठ दानव उसी प्रकार विदीर्ण होने लगे जैसे सूर्यकी किरणोंसे 'घन' (अन्धकार) विदीर्ण हो जाते हैं। जनार्दनने कुछको गदासे तथा कुछको चक्रसे मार डाला। किन्हींको तलवारसे काट डाला और किन्हींको देखकर ही भस्म कर दिया तथा कुछ असुरोंको हलद्वारा खींचकर मूसलसे चूर्ण-विचूर्ण कर दिया॥ ९६—१०१॥

गरुड़ने अपने दोनों डैनोंकी मारसे चोंच तथा छातीके बलसे अनेक दैत्योंको मौतके घाट उतार दिया। पुरातन आदिपुरुष धाता प्रपितामहने विशाल कमलको घुमाते हुए सभी (देवगणों)-को जलसे अभिषिञ्चित किया। सर्वतीर्थरूप ब्रह्म जलका स्पर्श होनेसे गण तथा देवतालोग नौजवान हाथियोंसे भी अधिक पराक्रमवाले हो गये। और सौ, पाप दूर करनेवाले उस जलके स्पर्शके प्रभावसे सवारीके साथ दानव ऐसे नष्ट होने लगे जैसे वज्रसे पर्वत नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा और विष्णुको संग्राममें महासुरोंको मारते देखकर (उत्साहमें आकर) बलशाली इन्द्र भी अपना वज्र लेकर दौड़ पड़े। [पुलस्त्यजी कहते हैं—] नारदजी! उन्हें आते देखकर देवों तथा दानवोंसे अजेय शक्तिशाली श्रेष्ठ दानवपति बल, गदाधर विष्णु और विमानारूढ़ ब्रह्मासे लड़ना छोड़कर मुट्ठी तानकर इन्द्रसे ही युद्ध करनेके लिये दौड़ पड़ा॥ १०२—१०७॥

उसे आते देखकर देवताओंके स्वामी इन्द्रने हजारों भुजाओंसे अपनी शक्तिभर वज्रको घुमाते हुए उसे बलके सिरपर 'हे मूढ़! अब तुम मारे गये'—कहकर फेंक दिया। मुने! वह श्रेष्ठ वज्र भी उसके सिरपर शीघ्र ही हजारों टुकड़ोंमें टूक-टूक हो गया। (फिर) बल (इन्द्रकी ओर) दौड़ा। महर्षे! देवराज भयभीत होकर युद्धसे विमुख हो गये—भाग गये। उन्हें विमुख होकर भागते देख जम्भने आगे आकर कहा कि यह उचित नहीं है। रुकिये; आप समस्त स्थावर-जङ्गमके राजा हैं। राजधर्ममें लड़ाईके मैदानसे भागनेका नियम नहीं है।

सहस्राक्षो जम्भवाक्यं निशम्य
भीतस्तूर्णं विष्णुमागान्महर्षे।
उपेत्याह श्रूयतां वाक्यमीश
त्वं मे नाथो भूतभव्येश विष्णो॥ १११

जम्भस्तर्जयतेऽत्यर्थं मां निरायुधमीक्ष्य हि।
आयुधं देहि भगवन् त्वामहं शरणं गतः॥ ११२

तमुवाच हरिः शक्रं त्यक्त्वा दर्पं व्रजाधुना।
प्रार्थयस्वायुधं वह्निं स ते दास्यत्यसंशयम्॥ ११३

जनार्दनवचः श्रुत्वा शक्रस्त्वरितविक्रमः।
शरणं पावकमगादिदं चोवाच नारद॥ ११४

शक्र उवाच

निघ्नतो मे बलं वज्रं कृशानो शतधा गतम्।
एष चाहूयते जम्भस्तस्माद्देह्यायुधं मम॥ ११५

पुलस्त्य उवाच

तमाह भगवान् वह्निः प्रीतोऽस्मि तव वासव।
यत्त्वं दर्पं परित्यज्य मामेव शरणं गतः॥ ११६

इत्युच्चार्य स्वशक्त्यास्तु शक्तिं निष्क्राम्य भावतः।
प्रादादिन्द्राय भगवान् रोचमानो दिवं गतः॥ ११७

तामादाय तदा शक्तिं शतघण्टां सुदारुणाम्।
प्रत्युद्ययौ तदा जम्भं हन्तुकामोऽरिमर्दनः॥ ११८

तेनातियशसा दैत्यः सहसैवाभिसंद्रुतः।
क्रोधं चक्रे तदा जम्भो निजघान गजाधिपम्॥ ११९

जम्भमुष्टिनिपातेन भग्नकुम्भकटो गजः।
निपपात यथा शैलः शक्रवज्रहतः पुरा॥ १२०

पतमानाद् द्विपेन्द्रात्तु शक्रश्चाप्लुत्य वेगवान्।
त्यक्त्वैव मन्दरगिरिं पपात वसुधातले॥ १२१

पतमानं हरिं सिद्धाश्चारणाश्च तदाऽब्रुवन्।
मा मा शक्र पतस्वाद्य भूतले तिष्ठ वासव॥ १२२

स तेषां वचनं श्रुत्वा योगी तस्थौ क्षणं तदा।
प्राह चैतान् कथं योत्स्ये अपत्रः शत्रुभिः सहः॥ १२३

महर्षे! जम्भका वचन सुनकर भयभीत होकर इन्द्र जल्दीसे विष्णुके समीप चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने कहा—हे ईश! आप मेरी बात सुनें। हे भूत तथा भव्यके स्वामी विष्णो! आप मेरे स्वामी हैं॥ १०८—१११॥

जम्भ मुझे शस्त्रास्त्रसे रहित देखकर बहुत अधिक ललकार रहा है। भगवन्! आप मुझे आयुध दें। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। विष्णुने इन्द्रसे कहा—इस समय (अपने पदके) अहंकारको छोड़कर तुम अग्निदेवके पास जाओ और उनसे आयुधके लिये प्रार्थना करो। वे निस्सन्देह तुम्हें आयुध प्रदान करेंगे। नारदजी! जनार्दनकी बात सुनकर तीव्र गतिवाले इन्द्र अग्निकी शरणमें चले गये और उनसे उन्होंने कहा—॥ ११२—११४॥

इन्द्रने कहा—अग्निदेव! बलको मारनेमें मेरा वज्र सैकड़ों टुकड़े हो गया; यह जम्भ मुझे ललकार रहा है। अतः आप मुझे आयुध प्रदान करें॥ ११५॥

पुलस्त्यजी बोले—भगवन्! अग्निदेवने उनसे कहा—वासव! मैं आपके ऊपर प्रसन्न हूँ; क्योंकि आप अहंकार छोड़कर मेरी शरणमें आये हैं। ऐसा कहनेके बाद प्रकाशयुक्त भगवान् अग्निदेवने भावपूर्वक अपनी शक्तिसे एक दूसरी शक्ति निकालकर उसे इन्द्रको दे दिया और वे स्वर्ग चले गये। शत्रुका मर्दन करनेवाले इन्द्र सैकड़ों घण्टाओंसे युक्त उस भीषण शक्तिको लेकर जम्भको मारनेके लिये चले गये। उन अत्यन्त यशस्वीके सहसा पीछा करनेपर जम्भने कोपपूर्वक गजाधिप (ऐरावत)-पर वार कर दिया॥ ११६—११९॥

जम्भकी मुट्ठीके आघातसे हाथीका कुम्भस्थल विदीर्ण हो गया। उसके बाद वह इस प्रकार गिर पड़ा जैसे पूर्वकालमें इन्द्रके वज्रसे आहत होकर पर्वत गिरता था। इन्द्र गिरते हुए गजेन्द्रसे वेगपूर्वक उछले और मन्दर-पर्वतको भी छोड़कर पृथ्वीकी ओर नीचे गिर पड़े। उसके बाद गिरते हुए इन्द्रसे सिद्धों एवं चारणोंने कहा—इन्द्र! आप पृथ्वीपर न गिरें। आप रुकें। उनकी बात सुनकर योगी इन्द्र उस समय क्षणभरके लिये रुक गये और बोले—मैं बिना वाहनके इन शत्रुओंसे कैसे लड़ूँगा?॥ १२०—१२३॥

तमूचुर्देवगन्धर्वा मा विषादं व्रजेश्वर।
युध्यस्व त्वं समारुह्य प्रेषयिष्याम यद् रथम्॥ १२४

इत्येवमुक्त्वा विपुलं रथं स्वस्तिकलक्षणम्।
वानरध्वजसंयुक्तं हरिभिर्हरिभिर्युतम्॥ १२५

शुद्धजाम्बूनदमयं किङ्किणीजालमण्डितम्।
शक्राय प्रेषयामासुर्विश्वावसुपुरोगमाः॥ १२६

तमागतमुदीक्ष्याथ हीनं सारथिना हरिः।
प्राह योत्स्ये कथं युद्धे संयमिष्ये कथं हयान्॥ १२७

यदि कश्चिद्धि सारथ्यं करिष्यति ममाधुना।
ततोऽहं घातये शत्रून् नान्यथेति कथंचन॥ १२८

ततोऽब्रुवंस्ते गन्धर्वा नास्माकं सारथिर्विभो।
विद्यते स्वयमेवाश्वांस्त्वं संयन्तुमिहार्हसि॥ १२९

इत्येवमुक्ते भगवांस्त्यक्त्वा स्यन्दनमुत्तमम्।
क्ष्मातलं निपपातैव परिभ्रष्टस्त्रगम्बरः॥ १३०

चलन्मौलिर्मुक्तकचः परिभ्रष्टायुधाङ्गदः।
पतमानं सहस्राक्षं दृष्ट्वा भूः समकम्पत॥ १३१

पृथिव्यां कम्पमानायां शमीकर्षेस्तपस्विनी।
भार्याऽब्रवीत् प्रभो बालं बहिः कुरु यथासुखम्॥ १३२

स तु शीलावचः श्रुत्वा किमर्थमिति चाब्रवीत्।
सा चाह श्रूयतां नाथ दैवज्ञपरिभाषितम्॥ १३३

यदेयं कम्पते भूमिस्तदा प्रक्षिप्यते बहिः।
यद्बाह्यतो मुनिश्रेष्ठ तद् भवेद् द्विगुणं मुने॥ १३४

एतद्वाक्यं तदा श्रुत्वा बालमादाय पुत्रकम्।
निराशङ्को बहिः शीघ्रं प्राक्षिपत् क्ष्मातले द्विजः॥ १३५

भूयो गोयुगलार्थाय प्रविष्टो भार्यया द्विजः।
निवारितो गता वेला अर्द्धहानिर्भविष्यति॥ १३६

इत्येवमुक्ते देवर्षेर्बहिर्निर्गम्य वेगवान्।
ददर्श बालद्वितयं समरूपमवस्थितम्॥ १३७

देवताओं और गन्धर्वोंने उत्तर दिया—हे ईश्वर (इन्द्र)! आप चिन्तित न हों। हमलोग जो रथ भेज रहे हैं उसपर चढ़कर आप युद्ध करें। ऐसा कहकर विश्वावसु आदिने स्वस्तिकके आकारवाले कपिध्वजसे युक्त हरितवर्णके अश्वोंसे जुते शुद्ध स्वर्णसे बनाये गये तथा किंकिणीजालसे मण्डित विशाल रथ इन्द्रके लिये भेज दिया। इन्द्र सारथिसे रहित उस रथको देखकर बोले—मैं युद्धमें कैसे लड़ूँगा और कैसे घोड़ोंको संयत करूँगा—दोनों काम एक साथ कैसे होंगे?॥ १२४—१२७॥

इस समय मेरे सारथिका काम यदि कोई करे तो मैं शत्रुओंका नाश कर सकता हूँ; अन्य किसी प्रकार नहीं। उसके बाद गन्धर्वोंने कहा—विभो! हमारे पास कोई सारथि नहीं है। आप स्वयं घोड़ोंको नियन्त्रित कर सकते हैं। ऐसा कहनेपर भगवान् इन्द्र उत्तम रथको छोड़कर अस्त-व्यस्त हुए माल्य और वस्त्रोंके साथ पृथ्वीपर गिर गये। (पृथ्वीपर गिरते समय इन्द्रका) सिर काँप रहा था, उनके बाल बिखर गये थे और उनके आयुध तथा बाजूबंद नीचे गिर पड़े थे। इन्द्रको गिरते देख पृथ्वी काँपने लगी॥ १२८—१३१॥

पृथ्वीके काँपनेपर शमीक ऋषिकी तपस्विनी पत्नीने कहा—'प्रभो! बालकको सँभालकर बाहर ले जाइये। उन्होंने शीलाकी बात सुनकर कहा—क्यों? उसने कहा—हे नाथ! सुनिये, ज्योतिषियोंका कहना है कि इस भूमिके काँपनेपर वस्तुएँ बाहर निकाल दी जाती हैं; क्योंकि मुनिश्रेष्ठ! उस समय बाहरमें रखी हुई वस्तु दुगुनी हो जाती है। इस वाक्यको सुनकर उस समय ब्राह्मणने अपने बालक पुत्रको लेकर निःशंक हो पृथ्वीपर बाहर रख दिया'॥ १३२—१३५॥

फिर दो गायोंके लिये भीतर प्रविष्ट होनेपर पत्नीने ब्राह्मणको निवारित करते हुए कहा—समय बीत चुका है; अब इस समय आधे भागकी हानि हो जायगी। [पुलस्त्यजी कहते हैं—] देवर्षे! ऐसा कहनेपर (ब्राह्मणने) शीघ्रतासे बाहर निकलकर देखा कि समान आकारके दो

तं दृष्ट्वा देवताः पूज्य भार्यां चाद्भुतदर्शनाम्।
प्राह तत्त्वं न विन्दामि यत् पृच्छामि वदस्व तत्॥ १३८

बालस्यास्य द्वितीयस्य के भविष्यद्गुणा वद।
भाग्यानि चास्य यच्चोक्तं कर्म तत् कथयाधुना॥ १३९

बालक पड़े हुए हैं। उन्हें देखकर उसने देवताओंकी पूजा करनेके बाद अपनी अद्भुत ज्ञानमती पत्नीसे कहा—मैं इसका रहस्य नहीं समझता। अतः मैं जो पूछता हूँ उसे बतलाओ। यह बतलाओ कि इस दूसरे बालकमें कौन-से गुण होंगे? उसके भाग्यों एवं कर्मोंको भी तुम अभी बतलाओ॥ १३६—१३९॥

साऽब्रवीन्नाद्य ते वक्ष्ये वदिष्यामि पुनः प्रभो।
सोऽब्रवीद् वद मेऽद्यैव नोचेन्नाश्नामि भोजनम्॥ १४०

सा प्राह श्रूयतां ब्रह्मन् वदिष्ये वचनं हितम्।
कातरेणाद्य यत्पृष्टं भाव्यः कारुरयं किल॥ १४१

इत्युक्तवति वाक्ये तु बाल एव त्वचेतनः।
जगाम साह्यं शक्रस्य कर्तुं सौत्यविशारदः॥ १४२

तं व्रजन्तं हि गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः।
ज्ञात्वेन्द्रस्यैव साहाय्ये तेजसा समवर्धयन्॥ १४३

पत्नीने कहा—स्वामिन्! मैं तुम्हें आज नहीं बतलाऊँगी। फिर कभी दूसरे समय बतलाऊँगी। उन्होंने कहा—आज ही मुझे बताओ; अन्यथा मैं भोजन नहीं करूँगा। उसने कहा—ब्रह्मन्! आप सुनिये, आपने आर्त्ततासे जो पूछा है उस हितकर बातको मैं कहती हूँ। यह (बालक) निश्चय ही कारु (शिल्पी) होगा। ऐसा कहनेपर अज्ञान (अवस्थामें) होते हुए भी वह सूत-कर्ममें कुशल बालक इन्द्रकी सहायताके लिये गया। विश्वावसु आदि गन्धर्वोंने उस बालकको इन्द्रकी सहायताके लिये जाते हुए जानकर उसके तेजको बढ़ा दिया॥ १४०—१४३॥

गन्धर्वतेजसा युक्तः शिशुः शक्रं समेत्य हि।
प्रोवाचैह्येहि देवेश प्रियो यन्ता भवामि ते॥ १४४

तच्छ्रुत्वास्य हरिः प्राह कस्य पुत्रोऽसि बालक।
संयन्ताऽसि कथं चाश्वान् संशयः प्रतिभाति मे॥ १४५

सोऽब्रवीदृषितेजोत्थं क्ष्माभवं विद्धि वासव।
गन्धर्वतेजसा युक्तं वाजियानविशारदम्॥ १४६

तच्छ्रुत्वा भगवाञ्छक्रः खं भेजे योगिनां वरः।
स चापि विप्रतनयो मातलिर्नामविश्रुतः॥ १४७

ततोऽधिरूढस्तु रथं शक्रस्त्रिदशपुङ्गवः।
रश्मीन् शमीकतनयो मातलिः प्रगृहीतवान्॥ १४८

गन्धर्वोंके तेजसे परिपूर्ण होकर बालकने इन्द्रके निकट जाकर कहा—देवेश! आइये, आइये! मैं आपका प्रिय सारथि बनूँगा। उसे सुनकर इन्द्रने कहा—हे बालक! तुम किसके पुत्र हो? तुम घोड़ोंको कैसे संयमित करोगे? इस विषयमें मुझे संदेह हो रहा है। उसने कहा—वासव! मुझे ऋषिके तेजसे बल-वैभवमें बढ़े, भूमिसे उत्पन्न एवं गन्धर्वोंके तेजसे युक्त अश्वयानमें पारंगत समझो। यह सुनकर योगिश्रेष्ठ भगवान् इन्द्र आकाशमें चले गये। मातलि नामसे विख्यात वह ब्राह्मणपुत्र भी आकाशमें चला गया। उसके बाद देवश्रेष्ठ इन्द्र रथपर चढ़ गये और शमीकपुत्र मातलिने प्रग्रह (लगाम) पकड़ लिया॥ १४४—१४८॥

ततो मन्दरमागम्य विवेश रिपुवाहिनीम्।
प्रविशन् ददृशे श्रीमान् पतितं कार्मुकं महत्॥ १४९

सशरं पञ्चवर्णाभं सितरक्तासितारुणम्।
पाण्डुच्छायं सुरश्रेष्ठस्तं जग्राह समार्गणम्॥ १५०

ततस्तु मनसा देवान् रजःसत्त्वतमोमयान्।
नमस्कृत्य शरं चापे साधिज्ये विनियोजयत्॥ १५१

उसके बाद मन्दरगिरिपर पहुँचकर वे (इन्द्र) शत्रुसेनामें प्रविष्ट हो गये। प्रवेश करते समय सुरश्रेष्ठ श्रीमान् (इन्द्र)-ने बाणयुक्त, सफेद, लाल, काला, उषाकालीन लालिमावाले एवं सफेद रंगसे मिले पीले रंगवाले—पँचरंगे—एक महान् धनुषको पड़ा हुआ देखा और बाणके साथ ही उसे उठा लिया। उसके बाद रजःसत्त्वतमोमय—त्रिगुणमय—(ब्रह्मा, विष्णु और महेश)

ततो निश्चेरुरत्युग्राः शरा बर्हिणवाससः।
ब्रह्मेशविष्णुनामाङ्काः सूदयन्तोऽसुरान् रणे॥ १५२

आकाशं विदिशः पृथ्वीं दिशश्च स शरोत्करैः।
सहस्राक्षोऽतिपटुभिश्छादयामास नारद॥ १५३
गजो विद्धो हयो भिन्नः पृथिव्यां पतितो रथः।
महामात्रो धरां प्राप्तः सद्यः सीदच्छरातुरः॥ १५४
पदातिः पतितो भूम्यां शक्रमार्गणताडितः।
हतप्रधानभूयिष्ठं बलं तदभवद् रिपोः॥ १५५
तं शक्रबाणाभिहतं दुरासदं
सैन्यं समालक्ष्य तदा कुजम्भः।
जम्भासुरश्चापि सुरेशमव्ययं
प्रजग्मतुर्गृह्य गदे सुघोरे॥ १५६
तावापतन्तौ भगवान् निरीक्ष्य
सुदर्शनेनारिविनाशनेन।
विष्णुः कुजम्भं निजघान वेगात्
स स्यन्दनाद् गामगमद् गतासुः॥ १५७
तस्मिन् हते भ्रातरि माधवेन
जम्भस्ततः क्रोधवशं जगाम।
क्रोधान्वितः शक्रमुपाद्रवद् रणे
सिंहं यथैणोऽतिविपन्नबुद्धिः॥ १५८
तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य शक्र-
स्त्यक्त्वैव चापं सशरं महात्मा।
जग्राह शक्तिं यमदण्डकल्पां
तामग्निदत्तां रिपवे ससर्ज॥ १५९
शक्तिं सघण्टां कृतनिःस्वनां वै
दृष्ट्वा पतन्तीं गदया जघान।
गदां च कृत्वा सहसैव भस्मसाद्
बिभेद जम्भं हृदये च तूर्णम्॥ १६०
शक्त्या स भिन्नो हृदये सुरारिः
पपात भूम्यां विगतासुरेव।
तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
दैत्यास्तु भीता विमुखा बभूवुः॥ १६१
जम्भे हते दैत्यबले च भग्ने
गणास्तु हृष्टा हरिमर्चयन्तः।
वीर्यं प्रशंसन्ति शतक्रतोश्च
स गोत्रभिच्छर्वमुपेत्य तस्थौ॥ १६२

देवोंको मनसे नमस्कार करके उन्होंने प्रत्यञ्चा चढ़ाकर बाण संधान किया। उससे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरके नामोंसे अंकित मोरके पंख लगे हुए अत्यन्त भयंकर बाण निकले और असुरोंका संहार करने लगे॥ १४९—१५२॥

[पुलस्त्यजी कहते हैं—] नारदजी! उन इन्द्रने बड़ी चतुराईसे बाणोंकी बौछारसे आकाश, पृथ्वी, दिशाओं एवं विदिशाओंको छा (भर) दिया। हाथी बुरी तरह बिंध गये, घोड़े विदीर्ण हो गये, रथ पृथ्वीपर गिर पड़े एवं हाथीका संचालक (महावत) बाणोंसे व्याकुल होकर कराहता हुआ धरतीपर गिर गया। इन्द्रके बाणोंसे घायल हुए पैदल युद्ध करनेवाले वीर भूमिपर गिर पड़े। (इस प्रकार) शत्रुकी उस सेनाके बहुतेरे प्रधान (वीर) मारे गये। उस दुर्धर्ष (अपराजेय) सेनाको इन्द्रके बाणोंसे मारी जाती हुई देखकर असुर कुजम्भ और जम्भ भयानक गदाओंको लेकर अविनाशी सुरेन्द्रकी ओर तेजीसे बढ़ चले॥ १५३—१५६॥

भगवान् विष्णुने उन दोनों (कुजम्भ और जम्भ)-को शीघ्रतासे सामने आते देखकर शत्रु-संहारक सुदर्शनचक्रसे कुजम्भको मारा। वह प्राणहीन होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। लक्ष्मीपति श्रीविष्णुके द्वारा भाईके मारे जानेपर जम्भ क्रुद्ध हो गया। कुपित होकर वह युद्धमें इन्द्रकी ओर ऐसे दौड़ा, जैसे विचारशक्ति नष्ट हो जानेपर मृग सिंहकी ओर दौड़ता है। उसे आते देखकर महात्मा इन्द्रने धनुष-बाणको छोड़ अग्निद्वारा प्रदत्त यमदण्डके समान शक्तिको लेकर उसे शत्रुकी ओर फेंका। घण्टासे घनघनाती हुई उस शक्तिको देखकर (जम्भने) उसपर बल लगाकर गदासे वार किया। (उस शक्तिने) गदाको एकाएक भस्मकर शीघ्र ही जम्भका हृदय (भी) विदीर्ण कर दिया। शक्तिसे हृदयके विदीर्ण हो जानेपर वह देवशत्रु असुर जम्भ प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे मरा और भूमिपर गिरा देख करके दैत्यगण डरकर पीठ दिखाकर भाग गये। जम्भके मारे जाने एवं दैत्यसेनाके हार जानेपर सभी गण हरिका अर्चन एवं इन्द्रके पराक्रमका गुणगान करने लगे। (फिर) वे इन्द्र शंकरके निकट जाकर खड़े हो गये॥ १५७—१६२॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ६९॥

सत्तरवाँ अध्याय

अन्धकका शिव-शूलसे भेदन, भैरवादिकी उत्पत्ति, अन्धककृत शिवस्तुति, अन्धकका भृङ्गित्व, देवादिकोंका भेजना, अर्द्धकुसुमसे पार्वतीका प्राकट्य और अन्धकद्वारा उनकी स्तुति

पुलस्त्य उवाच

तस्मिंस्तदा दैत्यबले च भग्ने
शुक्रोऽब्रवीदन्धकमासुरेन्द्रम्।
एह्येति वीराद्य गृहं महासुर
योत्स्याम भूयो हरमेत्य शैलम्॥ १
तमुवाचान्धको ब्रह्मन् न सम्यग्भवतोदितम्।
रणान्नैवापयास्यामि कुलं व्यपदिशन् स्वयम्॥ २
पश्य त्वं द्विजशार्दूल मम वीर्यं सुदुर्धरम्।
देवदानवगन्धर्वाञ् जेष्ये सेन्द्रमहेश्वरम्॥ ३
इत्येवमुक्त्वा वचनं हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः।
समाश्वास्याब्रवीच्छम्भुं सारथिं मधुराक्षरम्॥ ४
सारथे वाहय रथं हराभ्याशं महाबल।
यावन्निहन्मि बाणौघैः प्रमथामरवाहिनीम्॥ ५
इत्यन्धकवचः श्रुत्वा सारथिस्तुरगांस्तदा।
कृष्णवर्णान् महावेगान् कशयाऽभ्याहनन्मुने॥ ६
ते यत्नतोऽपि तुरगाः प्रेर्यमाणा हरं प्रति।
जघनेष्ववसीदन्तः कृच्छ्रेणोहुश्च तं रथम्॥ ७
वहन्तस्तुरगा दैत्यं प्राप्ताः प्रमथवाहिनीम्।
संवत्सरेण साग्रेण वायुवेगसमा अपि॥ ८
ततः कार्मुकमानम्य बाणजालैर्गणेश्वरान्।
सुरान् संछादयामास सेन्द्रोपेन्द्रमहेश्वरान्॥ ९
बाणैश्छादितमीक्ष्यैव बलं त्रैलोक्यरक्षिता।
सुरान् प्रोवाच भगवांश्चक्रपाणिर्जनार्दनः॥ १०

विष्णुरुवाच

किं तिष्ठध्वं सुरश्रेष्ठा हतेनानेन वै जयः।
तस्मान्मद्वचनं शीघ्रं क्रियतां वै जयेप्सवः॥ ११
शात्यन्तामस्य तुरगाः समं रथकुटुम्बिना।
भज्यतां स्यन्दनश्चापि विरथः क्रियतां रिपुः॥ १२

पुलस्त्यजी बोले—उस समय दैत्यसेनाके हार जानेपर शुक्रने असुरोंके स्वामी अन्धकसे कहा—वीर महासुर! इस समय घर चलो। फिर पर्वतपर आकर शंकरसे युद्ध करेंगे। अन्धकने उनसे कहा—ब्रह्मन्! आपने उचित बात नहीं कही। अपने कुलको कलंकित करते हुए मैं युद्धसे नहीं भागूँगा। द्विजश्रेष्ठ! मेरा अत्यन्त प्रबल पराक्रम तो देखिये। मैं (उस पराक्रमसे) इन्द्र और महेश्वरके सहित सभी देवों और दानवों तथा गन्धर्वोंको जीत लूँगा। ऐसा वचन कहकर हिरण्याक्ष-पुत्र अन्धकने शम्भु (नामक) सारथिसे मीठी वाणीमें अच्छी तरह आश्वस्त करते हुए कहा—॥ १—४॥

महाबलशाली सारथे! तुम रथको महादेवके (आमने) सामने ले चलो। मैं बाणोंकी वर्षासे प्रमथों एवं देवोंकी सेनाको मार भगाऊँगा। मुने! अन्धकके वचनको सुनकर सारथिने (अपने रथके) काले रंगके तीव्रगामी घोड़ोंको कोड़ेसे मारा। शंकरकी ओर चेष्टापूर्वक चलाये जाते हुए भी वे घोड़े जाँघोंमें कष्टका अनुभव करते हुए कठिनाईसे उस रथको खींच रहे थे। दैत्यको ढोनेवाले वे घोड़े वायुके वेगके समान होनेपर भी एक वर्षसे भी अधिक समयमें प्रमथोंकी सेनामें पहुँच सके॥ ५—८॥

उसके बाद (अन्धकने) धनुषको झुकाकर बाणसमूहोंसे गणेश्वरों एवं इन्द्र, विष्णु और महेश्वरके साथ सभी देवोंको ढक दिया। (पूरी) सेनाको बाणोंसे ढकी देखकर तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले चक्रपाणि भगवान् जनार्दनने देवोंसे कहा—॥ ९-१०॥

विष्णुने कहा—सुरश्रेष्ठो! आपलोग व्यर्थमें क्यों बैठे हैं? इसके मारे जानेसे ही विजय होगी। इसलिये विजयकी अभिलाषा रखकर आपलोग शीघ्र मेरे कहनेके अनुसार कार्य करें। (पहले) रथके सारथिके साथ इस (अन्धक)-के घोड़ोंको मार डालें एवं रथको तोड़कर

विरथं तु कृतं पश्चादेनं धक्ष्यति शङ्करः।
नोपेक्ष्यः शत्रुरुद्दिष्टो देवाचार्येण देवताः॥ १३

इत्येवमुक्ताः प्रमथा वासुदेवेन सामराः।
चक्रुर्वेगं सहेन्द्रेण समं चक्रधरेण च॥ १४

शत्रुको बिना रथका कर दें। बिना रथका करनेके बाद तो शंकर इसे भस्म कर देंगे। देवो! देवताओंके आचार्य बृहस्पतिने कहा है कि शत्रुकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। भगवान् वासुदेवके ऐसा कहनेपर इन्द्र एवं विष्णुसहित प्रमथों तथा देवोंने शीघ्रतासे चढ़ाई कर दी॥ ११—१४॥

तुरगाणां सहस्त्रं तु मेघाभानां जनार्दनः।
निमिषान्तरमात्रेण गदया विनिपोथयत्॥ १५

हताश्वात् स्यन्दनात् स्कन्दः प्रगृह्य रथसारथिम्।
शक्त्या विभिन्नहृदयं गतासुं व्यसृजद् भुवि॥ १६

विनायकाद्याः प्रमथाः समं शक्रेण दैवतैः।
सध्वजाक्षं रथं तूर्णमभञ्जन्त तपोधनाः॥ १७

सहसा स महातेजा विरथस्त्यज्य कार्मुकम्।
गदामादाय बलवानभिदुद्राव दैवतान्॥ १८

जनार्दन (विष्णु)-ने क्षणमात्रमें ही अपनी (कौमोदकी) गदासे बादल-जैसे काले रंगवाले हजारों घोड़ोंको मार डाला। स्कन्दने मारे गये घोड़ोंवाले रथसे सारथिको खींचकर शक्तिसे उसके हृदयको विदीर्ण कर दिया और प्राणहीन हो जानेपर उसे पृथ्वीपर फेंक दिया। इन्द्र आदि देवताओंके साथ तपोधन विनायक प्रभृति प्रमथोंने शीघ्र ध्वजा और पहिये तथा धुरेके साथ रथको तोड़ डाला। (जब) महातेजस्वी पराक्रमी (अन्धक)-ने बिना रथके हो जानेपर धनुषको छोड़ दिया और गदा लेकर वह देवताओंकी ओर दौड़ पड़ा—॥ १५—१८॥

पदान्यष्टौ ततो गत्वा मेघगम्भीरया गिरा।
स्थित्वा प्रोवाच दैत्येन्द्रो महादेवं स हेतुमत्॥ १९

भिक्षो भवान् सहानीकस्त्वसहायोऽस्मि साम्प्रतम्।
तथाऽपि त्वां विजेष्यामि पश्य मेऽद्य पराक्रमम्॥ २०

तद्वाक्यं शङ्करः श्रुत्वा सेन्द्रान्सुरगणांस्तदा।
ब्रह्मणा सहितान् सर्वान् स्वशरीरे न्यवेशयत्॥ २१

शरीरस्थांस्तान् प्रमथान् कृत्वा देवांश्च शङ्करः।
प्राह एह्येहि दुष्टात्मन् अहमेकोऽपि संस्थितः॥ २२

तब दैत्येन्द्रने आठ पग चलकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें महादेवसे अपना अभीष्ट वचन कहा—भिक्षुक! यद्यपि इस समय तुम सेनावाले हो और मैं असहाय हूँ, फिर भी मैं तुमको जीत लूँगा। आज मेरी शक्ति देखो। उसका वचन सुनकर शंकरने इन्द्र और ब्रह्माके साथ सभी देवताओंको अपने शरीरमें निवेशित कर लिया—छिपा लिया। उन प्रमथों एवं देवोंको अपने शरीरमें छिपानेके बाद शंकरने कहा—दुष्टात्मन्! आओ, आओ! मैं अकेला रहनेपर भी (तुमसे लड़नेके लिये) खड़ा हूँ॥ १९—२२॥

तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं सर्वामरगणक्षयम्।
दैत्यः शङ्करमभ्यागाद् गदामादाय वेगवान्॥ २३

तमापतन्तं भगवान् दृष्ट्वा त्यक्त्वा वृषोत्तमम्।
शूलपाणिर्गिरिप्रस्थे पदातिः प्रत्यतिष्ठत॥ २४

वेगेनैवापतन्तं च बिभेदोरसि भैरवः।
दारुणं सुमहद् रूपं कृत्वा त्रैलोक्यभीषणम्॥ २५

दंष्ट्राकरालं रविकोटिसंनिभं
मृगारिचर्माभिवृतं जटाधरम्।
भुजङ्गहारामलकण्ठकन्दरं
विंशार्धबाहुं सषडर्धलोचनम्॥ २६

समस्त देवगणोंसे संहार किये जाते उस महान् आश्चर्यको देखकर वह दैत्य गदा लेकर शीघ्रतासे शंकरके पास चला गया। भगवान् शूलपाणि उसे आते देख अपने श्रेष्ठ वृषभ (नन्दी)-को छोड़कर पर्वतपर पैरोंके बल खड़े हो गये। भैरवने तीनों लोकोंको डरा देनेवाला अत्यन्त भयानक रूप धारण करके तेजीसे आ रहे उस (अन्धक)-का हृदय विदीर्ण कर दिया। (उस समय शंकरका रूप) भयानक दाढ़ोंवाले करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान, बाघम्बर पहने, जटासे सुशोभित, सर्पके हारसे अलंकृत ग्रीवावाला तथा दस भुजा और तीन नयनोंसे युक्त था॥ २३—२६॥

एतादृशेन रूपेण भगवान् भूतभावनः।
बिभेद शत्रुं शूलेन शुभदः शाश्वतः शिवः॥ २७
सशूलं भैरवं गृह्य भिन्नेप्युरसि दानवः।
विजहारातिवेगेन क्रोशमात्रं महामुने॥ २८
ततः कथंचिद् भगवान् संस्तभ्यात्मानमात्मना।
तूर्णमुत्पाटयामास शूलेन सगदं रिपुम्॥ २९
दैत्याधिपस्त्वपि गदां हरमूर्ध्नि न्यपातयत्।
कराभ्यां गृह्य शूलं च समुत्पतत दानवः॥ ३०
संस्थितः स महायोगी सर्वाधारः प्रजापतिः।
गदापातक्षताद् भूरि चतुर्धाऽसृगथापतत्॥ ३१

पूर्वधारासमुद्भूतो भैरवोऽग्निसमप्रभः।
विद्याराजेति विख्यातः पद्ममालाविभूषितः॥ ३२

तथा दक्षिणधारोत्थो भैरवः प्रेतमण्डितः।
कालराजेति विख्यातः कृष्णाञ्जनसमप्रभः॥ ३३

अथ प्रतीचीधारोत्थो भैरवः पत्रभूषितः।
अतसीकुसुमप्रख्यः कामराजेति विश्रुतः॥ ३४
उदग्धाराभवश्चान्यो भैरवः शूलभूषितः।
सोमराजेति विख्यातश्चक्रमालाविभूषितः॥ ३५
क्षतस्य रुधिराज्जातो भैरवः शूलभूषितः।
स्वच्छन्दराजो विख्यात इन्द्रायुधसमप्रभः॥ ३६
भूमिस्थाद् रुधिराज्जातो भैरवः शूलभूषितः।
ख्यातो ललितराजेति सौभाञ्जनसमप्रभः॥ ३७
एवं हि सप्तरूपोऽसौ कथ्यते भैरवो मुने।
विघ्नराजोऽष्टमः प्रोक्तो भैरवाष्टकमुच्यते॥ ३८
एवं महात्मना दैत्यः शूलप्रोतो महासुरः।
छत्रवद् धारितो ब्रह्मन् भैरवेण त्रिशूलिना॥ ३९

तस्यासृगुल्बणं ब्रह्मञ्छूलभेदादवापतत्।
येनाकण्ठं महादेवो निमग्नः सप्तमूर्तिमान्॥ ४०

ततः स्वेदोऽभवद् भूरि श्रमजः शङ्करस्य तु।
ललाटफलके तस्माज्जाता कन्याऽसृगाप्लुता॥ ४१

ऐसे लक्षणोंसे संयुक्त मङ्गलदाता, शाश्वत, भूतभावन भगवान् शिवने शूलसे शत्रुको विदीर्ण कर दिया। महामुने! हृदयके विदीर्ण हो जानेपर भी दानव शूलके साथ भैरवको पकड़कर एक कोसतक उन्हें खींच ले गया। तब भगवान्‌ने किसी प्रकार अपनेसे अपनेको रोककर गदा लिये हुए शत्रुको अपने शूलसे तुरंत मारा। दैत्योंके स्वामी (अन्धक)-ने भी शंकरके सिरपर गदाका वार किया और शूलको दोनों हाथोंसे पकड़कर ऊपर उछल गया॥ २७—३०॥

सबके आधारस्वरूप महायोगी वे प्रजापति शंकरजी खड़े रहे; परंतु इसके बाद गदाके आघातसे हुए चोटसे (चारों दिशाकी) चार धाराओंमें बहुत अधिक रक्त प्रवाहित होने लग गया। पूर्व दिशाकी धारासे अग्निके समान प्रभावाले, कमलकी मालासे सुशोभित 'विद्याराज' नामसे प्रसिद्ध भैरव उत्पन्न हुए। दक्षिण दिशाकी धारासे प्रेतसे मण्डित काले अञ्जनके समान प्रभावाले 'कालराज' नामसे प्रसिद्ध भैरव उत्पन्न हुए। उसके बाद पश्चिम दिशाकी धारासे अलसीके फूलके समान पत्रसे शोभित 'कामराज' नामसे विख्यात भैरव उत्पन्न हुए॥ ३१—३४॥

उत्तर दिशाकी धारासे चक्रमालासे सुशोभित (एवं) शूल लिये 'सोमराज' नामसे प्रसिद्ध अन्य भैरव उत्पन्न हुए। घावके रक्तसे इन्द्रधनुषके समान चमकवाले (एवं) शूल लिये 'स्वच्छन्दराज' नामसे विख्यात भैरव उत्पन्न हुए। पृथ्वीपर गिरे हुए रक्तसे सौभाञ्जन (सहिजन)-के समान (एवं) शूल लिये शोभायुक्त 'ललितराज' नामसे विख्यात भैरव उत्पन्न हुए। मुने! इस प्रकार इन भैरवका सात रूप कहा जाता है। 'विघ्नराज' आठवें भैरव हैं। इन्हें भैरवाष्टक (आठों भैरव) कहा जाता है॥ ३५—३८॥

[पुलस्त्यजी कहते हैं—] ब्रह्मन्! इस प्रकार त्रिशूल धारण करनेवाले महात्मा भैरवने शूलसे विद्ध हुए महासुर दैत्यको छातेकी भाँति ऊपर उठा लिया। ब्रह्मन्! शूलसे विद्ध होनेके कारण उसका बहुत अधिक रक्त गिरा। उससे सात मूर्तिवाले महादेव गलेतक लहू-लुहान हो गये। परिश्रम करनेके कारण शंकरके पूरे ललाटपर बहुत अधिक पसीना आ गया। उससे खूनसे लथपथ

यद्भूम्यां न्यपतद् विप्र स्वेदबिन्दुः शिवाननात्।
तस्मादङ्गारपुञ्जाभो बालकः समजायत॥ ४२

स बालस्तृषितोऽत्यर्थं पपौ रुधिरमान्धकम्।
कन्या चोत्कृत्य संजातमसृग्विलिलिहेऽद्भुता॥ ४३

ततस्तामाह बालार्कप्रभां भैरवमूर्तिमान्।
शङ्करो वरदो लोके श्रेयोऽर्थाय वचो महत्॥ ४४

त्वां पूजयिष्यन्ति सुरा ऋषयः पितरोरगाः।
यक्षविद्याधराश्चैव मानवाश्च शुभङ्करि॥ ४५

त्वां स्तोष्यन्ति सदा देवि बलिपुष्पोत्करैः करैः।
चर्च्चिकेति शुभं नाम यस्माद् रुधिरचर्चिता॥ ४६

इत्येवमुक्ता वरदेन चर्चिका
भूतानुजाता हरिचर्मवासिनी।
महीं समन्ताद् विचचार सुन्दरी
स्थानं गता हैङ्गुलताद्रिमुत्तमम्॥ ४७

तस्यां गतायां वरदः कुजस्य
प्रादाद् वरं सर्ववरोत्तमं यत्।
ग्रहाधिपत्यं जगतां शुभाशुभं
भविष्यति त्वद्वशगं महात्मन्॥ ४८

हरोऽन्धकं वर्षसहस्रमात्रं
दिव्यं स्वनेत्रार्कहुताशनेन।
चकार संशुष्कतनुं त्वशोणितं
त्वगस्थिशेषं भगवान् स भैरवः॥ ४९

तत्राग्निना नेत्रभवेन शुद्धः
स मुक्तपापोऽसुरराड् बभूव।
ततः प्रजानां बहुरूपमीशं
नाथं हि सर्वस्य चराचरस्य॥ ५०

ज्ञात्वा स सर्वेश्वरमीशमव्ययं
त्रैलोक्यनाथं वरदं वरेण्यम्।
सर्वैः सुराद्यैर्नतमीड्यमाद्यं
ततोऽन्धकः स्तोत्रमिदं चकार॥ ५१

अन्धक उवाच

नमोऽस्तु ते भैरव भीममूर्ते
त्रिलोकगोप्त्रे शितशूलधारिणे।
विंशार्द्धबाहो भुजगेशहार
त्रिनेत्र मां पाहि विपन्नबुद्धिम्॥ ५२

जयस्व सर्वेश्वर विश्वमूर्ते
सुरासुरैर्वन्दितपादपीठ ।
त्रैलोक्यमातुर्गुरवे वृषाङ्क
भीतः शरण्यं शरणागतोऽस्मि॥ ५३

एक कन्या उत्पन्न हुई। विप्र! शिवके मुखसे भूमिपर गिरे पसीनोंकी बूँदोंसे अंगारे-जैसी कान्तिवाला एक बालक उत्पन्न हुआ॥ ३९—४२॥

अत्यन्त प्यासा वह बालक अन्धकका रक्त पीने लगा और अद्भुत कन्या भी काटकर उत्पन्न हुए रक्तको चाटने लगी। उसके बाद भैरवका रूप धारण करनेवाले वरदानी शंकरने प्रात:कालके सूर्यके समान कान्तिवाली उस कन्यासे जगत्-कल्याणकारी महान् वचन कहा—शुभकारिणि! देवता, ऋषि, पितर, सर्पादि, यक्ष, विद्याधर एवं मानव तुम्हारी पूजा करेंगे। देवि! (वे लोग) बलि एवं पुष्पाञ्जलिसे तुम्हारी स्तुति करेंगे। यत: तुम रक्तसे चर्चित (लथपथ) हो, अत: तुम्हारा शुभ नाम 'चर्चिका' होगा॥ ४३—४६॥

वरदानी शंकरके ऐसा कहनेपर व्याघ्रचर्मको वस्त्ररूपमें धारण करनेवाली और सब भूतोंके बाद उत्पन्न हुई सुन्दरी चर्चिका पृथ्वीपर चारों ओर विचरती हुई इंगुरके रंगवाले उत्तम पर्वतपर चली गयी। उसके (वहाँ) चले जानेपर वरदानी शंकरने कुज (मंगल)-को सर्वश्रेष्ठ वर दिया। (उन्होंने कहा —) महात्मन्! तुम ग्रहोंके स्वामी बनोगे तथा संसारका शुभ और अशुभ तुम्हारे अधीन होगा। उन भैरव-रूपधारी भगवान् शिवने अपने अग्नि और सूर्यरूपी नेत्रोंसे एक हजार दिव्य वर्षोंतक अन्धकके शरीरको सुखाकर रक्तरहित कर हड्डी तथा चाम शेष रखकर कंकाल बना दिया। शंकरके नेत्रसे उत्पन्न अग्निद्वारा शुद्ध होनेके कारण वह असुरराज पापसे छूट गया। उसके बाद अनेक रूप धारण करके प्रजाओंका नियमन करनेवाले, समस्त चर और अचरके स्वामी, सर्वेश्वर, अविनाशी ईश, त्रैलोक्यपति, वरदानी, वरेण्य, सभी सुरादिकोंद्वारा विनयपूर्वक स्तुति करनेयोग्य एवं सबके आदिमें रहनेवाले शंकरको वास्तवरूपमें जानकर अन्धकने यह स्तुति की—॥ ४७—५१॥

अन्धकने कहा—हे विशालकाय भैरव! हे त्रिलोककी रक्षा करनेवाले! हे तीक्ष्ण शूल धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। हे दस भुजाओंवाले तथा नागेशका हार धारण करनेवाले त्रिनेत्र! आप मुझ नष्टमतिकी रक्षा करें। हे देवों तथा असुरोंसे वन्दित पादपीठवाले विश्वमूर्ति सर्वेश्वर! आपकी जय हो। हे त्रिलोक-जननीके स्वामी वृषाङ्क! मैं भयभीत होकर आप शरणागतकी रक्षा करनेवालेकी शरणमें आया हूँ।

त्वां नाथ देवाः शिवमीरयन्ति
सिद्धा हरं स्थाणुं महर्षयश्च।
भीमं च यक्षा मनुजा महेश्वरं
भूताश्च भूताधिपमामनन्ति॥ ५४

निशाचरा उग्रमुपार्चयन्ति
भवेति पुण्याः पितरो नमन्ति।
दासोऽस्मि तुभ्यं हर पाहि मह्यं
पापक्षयं मे कुरु लोकनाथ॥ ५५

हे नाथ! देवता आपको शिव (मङ्गलमय) कहते हैं। सिद्धलोग आपको हर (पापहारी), महर्षिलोग स्थाणु (अचल), यक्षलोग भीम, मनुष्य महेश्वर और भूत भूताधिपति मानते हैं। निशाचर उग्र नामसे आपकी अर्चना करते हैं तथा पुण्यात्मा पितृगण भव नामसे आपको नमस्कार करते हैं। हे हर! मैं आपका दास हूँ, आप मेरी रक्षा करें। हे लोकनाथ! मेरे पापोंका आप विनाश कीजिये॥ ५२—५५॥

भवांस्त्रिदेवस्त्रियुगस्त्रिधर्मा
त्रिपुष्करश्चासि विभो त्रिनेत्र।
त्रय्यारुणिस्त्रिश्रुतिरव्ययात्मन्
पुनीहि मां त्वां शरणं गतोऽस्मि॥ ५६

त्रिणाचिकेतस्त्रिपदप्रतिष्ठः
षडङ्गवित् त्वं विषयेष्वलुब्धः।
त्रैलोक्यनाथोऽसि पुनीहि शम्भो
दासोऽस्मि भीतः शरणागतस्ते॥ ५७

कृतं महच्छङ्कर तेऽपराधं
मया महाभूतपते गिरीश।
कामारिणा निर्जितमानसेन
प्रसादये त्वां शिरसा नतोऽस्मि॥ ५८

पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां देव ईशान सर्वपापहरो भव॥ ५९

हे सर्वसमर्थ त्रिनेत्र! आप त्रिदेव, त्रियुग, त्रिधर्मा तथा त्रिपुष्कर हैं। हे अव्ययात्मन्! आप त्रय्यारुणि तथा त्रिश्रुति हैं। आप मुझे पवित्र करें। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप त्रिणाचिकेत, त्रिपदप्रतिष्ठ (स्वर्ग, मर्त्य, पातालरूप तीनों पदोंपर प्रतिष्ठित) षडङ्गवित् (वेदके शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष—इन छः अङ्गोंके जाननेवाले), विषयोंके प्रति अनासक्त तथा तीनों लोकोंके स्वामी हैं। हे शम्भो! आप मुझे पवित्र करें। मैं आपका दास हूँ। भयभीत होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे शंकर! हे महाभूतपते! हे गिरीश! कामरूपी शत्रुने मेरे मनको जीत लिया था, इसलिये मैंने आपका महान् अपराध किया है। मैं आपको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मैं पापी, पापकर्मा, पापात्मा तथा पापसे उत्पन्न हूँ। हे देव ईशान! हे समस्त पापोंको हरण करनेवाले महादेव! आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ५६—५९॥

मा मे क्रुध्यस्व देवेश त्वया चैतादृशोऽस्म्यहम्।
सृष्टः पापसमाचारो मे प्रसन्नो भवेश्वर॥ ६०

त्वं कर्ता चैव धाता च त्वं जयस्त्वं महाजयः।
त्वं मङ्गल्यस्त्वमोंकारस्त्वमीशानो ध्रुवोऽव्ययः॥ ६१

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकृन्नाथस्त्वं विष्णुस्त्वं महेश्वरः।
त्वमिन्द्रस्त्वं वषट्कारो धर्मस्त्वं च सुरोत्तमः॥ ६२

सूक्ष्मस्त्वं व्यक्तरूपस्त्वं त्वमव्यक्तस्त्वमीश्वरः।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥ ६३

देवेश! आप मेरे ऊपर कुपित न हों। आपने ही मुझे इस प्रकारके पापका आचरण करनेवाला बनाया है। ईश्वर! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। आप सृष्टि तथा पालन-पोषण करनेवाले हैं। आप ही जय और आप ही महाजय हैं। आप मङ्गलमय हैं। आप ओंकार हैं। आप ही ईशान, अव्यय तथा ध्रुव हैं। आप सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा तथा (सब कुछ करनेमें) समर्थ हैं। आप विष्णु और महेश्वर हैं। आप इन्द्र हैं, आप वषट्कार हैं, आप धर्म तथा देवोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। आप (कठिनतासे देखे जाने योग्य) सूक्ष्म हैं, आप (प्रतीतिका विषय होनेसे) व्यक्तरूप हैं, आप अप्रकटरहस्य—अव्यक्त हैं, आप ईश्वर हैं, आपसे ही यह चर-अचर जगत् व्याप्त (ओतप्रोत या ढका) है।

त्वमादिरन्तो मध्यश्च त्वमनादिः सहस्त्रपात्।
विजयस्त्वं सहस्त्राक्षो विरूपाक्षो महाभुजः॥ ६४

अनन्तः सर्वगो व्यापी हंसः प्राणाधिपोऽच्युतः।
गीर्वाणपतिरव्यग्रो रुद्रः पशुपतिः शिवः॥ ६५

त्रैविद्यस्त्वं जितक्रोधो जितारिर्विजितेन्द्रियः।
जयश्च शूलपाणिस्त्वं त्राहि मां शरणागतम्॥ ६६

आप आदि, मध्य एवं अन्त हैं, (साथ ही) आप आदि-रहित एवं हजारों पैरोंवाले सहस्त्रपात् हैं। आप विजय हैं। आप हजारों आँखोंवाले, विरूप आँखवाले एवं बड़ी भुजावाले हैं। आप अन्तसे रहित, सर्वगत, व्यापी, हंस, प्राणोंके स्वामी (सदा स्वस्वरूपमें स्थित) अच्युत, देवाधिदेव, शान्त, रुद्र, पशुपति एवं शिव हैं। आप तीनों वेदोंके जाननेवाले, क्रोधको जीत लेनेवाले, शत्रुओंको विजित करनेवाले, इन्द्रियजयी, जय एवं शूलपाणि हैं। आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ६०—६६॥

पुलस्त्य उवाच

इत्थं महेश्वरो ब्रह्मन् स्तुतो दैत्याधिपेन तु।
प्रीतियुक्तः पिङ्गलाक्षो हैरण्याक्षिमुवाच ह॥ ६७

सिद्धोऽसि दानवपते परितुष्टोऽस्मि तेऽन्धक।
वरं वरय भद्रं ते यमिच्छसि विनाऽम्बिकाम्॥ ६८

पुलस्त्यजी बोले—ब्रह्मन्! दैत्योंके स्वामी अन्धकके इस प्रकार स्तुति करनेपर लालिमा लिये भूरे रंगकी आँखवाले महेश्वरने प्रसन्न होकर हिरण्याक्षके पुत्र अन्धकसे कहा—दानवपति अन्धक! तुम सिद्ध हो गये हो; मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। अम्बिकाके सिवाय तुम जो चाहो, वह वर माँगो। तुम्हारा कल्याण हो॥ ६७-६८॥

अन्धक उवाच

अम्बिका जननी मह्यं भगवांस्त्र्यम्बकः पिता।
वन्दामि चरणौ मातुर्वन्दनीया ममाम्बिका॥ ६९

वरदोऽसि यदीशान तद् यातु विलयं मम।
शारीरं मानसं वाग्जं दुष्कृतं दुर्विचिन्तितम्॥ ७०

तथा मे दानवो भावो व्यपयातु महेश्वर।
स्थिराऽस्तु त्वयि भक्तिस्तु वरमेतत् प्रयच्छ मे॥ ७१

अन्धकने (विनीत भावसे) **कहा**—अम्बिका मेरी माता और आप त्र्यम्बक मेरे पिता हैं। अम्बिका मेरी वन्दनीया हैं। मैं उन माताके चरणोंकी वन्दना करता हूँ। ईशान! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मेरे शरीरसम्बन्धी, मनसम्बन्धी एवं वचनसम्बन्धी पाप तथा नीच विचार नष्ट हो जायँ। महेश्वर! मेरा दानवीय विचार भी दूर हो जाय एवं आपमें मेरी अटल भक्ति हो जाय—मुझे यही वर दीजिये॥ ६९—७१॥

महादेव उवाच

एवं भवतु दैत्येन्द्र पापं ते यातु संक्षयम्।
मुक्तोऽसि दैत्यभावाच्च भृङ्गी गणपतिर्भव॥ ७२

इत्येवमुक्त्वा वरदः शूलाग्रादवतार्य तम्।
निर्माज्र्य निजहस्तेन चक्रे निर्व्रणमन्धकम्॥ ७३

ततः स्वदेहतो देवान् ब्रह्मादीनाजुहाव सः।
ते निश्चेरुर्महात्मानो नमस्यन्तस्त्रिलोचनम्॥ ७४

गणान् सनन्दीनाहूय सन्निवेश्य तदाग्रतः।
भृङ्गिनं दर्शयामास ध्रुवं नैषोऽन्धकेति हि॥ ७५

(भगवान्) महादेवने कहा—दैत्येन्द्र! ऐसा ही हो। तुम्हारे पाप नष्ट हो जायँ। तुम दानवीय विचारसे मुक्त हो गये। अब तुम भृङ्गी नामके गणपति हो गये। इस प्रकार कहकर वरदानी महादेवने उस अन्धकको शूलकी नोकसे उतारा और अपने हाथसे सहलाकर बिना घावका कर दिया। उसके बाद उन्होंने अपने शरीरमें स्थित ब्रह्मादि देवोंका आह्वान किया। वे सभी महान् देवगण त्र्यम्बक शिवको नमस्कार करते हुए बाहर निकले। नन्दीके साथ गणोंको बुलाकर और सामने बैठाकर भृङ्गीको दिखलाते हुए उन्होंने कहा—निश्चय ही यह अन्धक (पहले-जैसा) नहीं रह गया है॥ ७२—७५॥

तं दृष्ट्वा दानवपतिं संशुष्कपिशितं रिपुम्।
गणाधिपत्यमापन्नं प्रशशंसुर्वृषध्वजम्॥ ७६

उस सूखे हुए मांसवाले शत्रु दानवपतिको गणाधिप हुआ देखकर वे सभी वृषध्वज (शंकर)-की प्रशंसा

ततस्तान् प्राह भगवान् सम्परिष्वज्य देवताः।
गच्छध्वं स्वानि धिष्ण्यानि भुञ्जध्वं त्रिदिवं सुखम्॥ ७७

सहस्राक्षोऽपि संयातु पर्वतं मलयं शुभम्।
तत्र स्वकार्यं कृत्वैव पश्चाद् यातु त्रिविष्टपम्॥ ७८

इत्येवमुक्त्वा त्रिदशान् समाभाष्य व्यसर्जयत्।
पितामहं नमस्कृत्य परिष्वज्य जनार्दनम्।
ते विसृष्टा महेशेन सुरा जग्मुस्त्रिविष्टपम्॥ ७९
महेन्द्रो मलयं गत्वा कृत्वा कार्यं दिवं गतः।
गतेषु शक्रप्राग्र्येषु देवेषु भगवाञ्छिवः॥ ८०

विसर्जयामास गणाननुमान्य यथार्हतः।
गणाश्च शङ्करं दृष्ट्वा स्वं स्वं वाहनमास्थिताः॥ ८१

जग्मुस्ते शुभलोकानि महाभोगानि नारद।
यत्र कामदुघा गावः सर्वकामफलद्रुमाः॥ ८२

नद्यस्त्वमृतवाहिन्यो ह्रदाः पायसकर्दमाः।
स्वां स्वां गतिं प्रयातेषु प्रमथेषु महेश्वरः॥ ८३

समादायान्धकं हस्ते सनन्दिः शैलमभ्यगात्।
द्वाभ्यां वर्षसहस्राभ्यां पुनरागाद्धरो गृहम्॥ ८४

ददृशे च गिरेः पुत्रीं श्वेतार्ककुसुमस्थिताम्।
समायातं निरीक्ष्यैव सर्वलक्षणसंयुतम्॥ ८५

त्यक्त्वाऽर्कपुष्पं निर्गत्य सखीस्ताः समुपाह्वयत्।
समाहूताश्च देव्या ता जयाद्यास्तूर्णमागमन्॥ ८६
ताभिः परिवृता तस्थौ हरदर्शनलालसा।
ततस्त्रिनेत्रो गिरिजां दृष्ट्वा प्रेक्ष्य च दानवम्॥ ८७

नन्दिनं च तथा हर्षादालिलिङ्गे गिरेः सुताम्।
अथोवाचैष दासस्ते कृतो देवि मयाऽन्धकः॥ ८८

पश्यस्व प्रणतिं यातं स्वसुतं चारुहासिनि।
इत्युच्चार्यान्धकं चैव पुत्र एह्येति सत्वरम्॥ ८९

करने लगे। उसके बाद भगवान् शंकरने उन देवोंको गले लगाकर कहा—देवताओ! आपलोग अपने-अपने स्थानको जाइये और स्वर्ग-सुखका उपभोग कीजिये। इन्द्र भी सुखद मलयपर्वतपर जायँ तथा वहाँ अपना काम समाप्त करके ही स्वर्ग चले जायँ। ऐसा कहकर देवोंसे वार्तालाप कर देवोंको विदा कर दिया। महेशने पितामहको नमस्कार तथा जनार्दनको गले लगाकर उन सभीको विदा कर दिया। (महेशसे विदा किये गये) वे देवगण स्वर्गको चले गये॥ ७६—७९॥

महेन्द्र भी मलयाचलपर जा करके (अपना) कार्य सम्पन्नकर स्वर्ग चले गये। शिवने इन्द्र आदि देवोंके चले जानेपर गणोंको यथायोग्य सम्मानित कर विदा कर दिया। [पुलस्त्यजी कहते हैं कि] नारदजी! गण भी शंकरका दर्शन कर अपने वाहनोंपर आरूढ़ हो विशाल भोगसे सम्पन्न उन सुखद लोकोंको चले गये, जहाँकी गौएँ इच्छित वस्तु प्रदान करनेवाली थीं, वृक्ष समस्त कर्मरूपी फलोंके दाता थे, नदियाँ अमृतकी धारा बहानेवाली थीं और सरोवर दूधके पङ्कसे भरे थे। महेश्वर प्रमथोंके अपने-अपने स्थानपर चले जानेपर अन्धकका हाथ पकड़कर (उसे साथ लिये हुए) नन्दीसहित पर्वतपर चले गये। (वे) शंकर दो हजार वर्षोंके बाद फिर अपने घर लौटे। उन्होंने सफेद अर्क (आक या मन्दार)-के फूलमें स्थित गिरिजाको देखा। पार्वती समस्त चिह्नोंसे युक्त शंकरको आया हुआ देखते ही अर्कके फूलको छोड़कर बाहर निकल आयीं और उन्होंने (अपनी जयादि) सखियोंको पुकारा। पुकारी गयीं वे जया आदि सभी देवियाँ शीघ्र वहाँ चली आयीं॥ ८०—८६॥

उन (अपनी सहेली जयादि देवियों)-से घिरी हुई पार्वतीजी शिवके दर्शनकी अभिलाषासे (प्रतीक्षामें) खड़ी रहीं। त्रिनेत्रधारी शंकरने गिरिजाको देखकर दानव एवं नन्दीके ऊपर भी दृष्टिपात किया; फिर प्रसन्नतापूर्वक गिरिसुताको गले लगा लिया। उसके बाद उन्होंने कहा—देवि! मैंने अन्धकको तुम्हारा दास बना लिया है। चारुहासिनि! प्रणाम कर रहे अपने पुत्रको देखो। ऐसा कहनेके बाद उन्होंने कहा—पुत्र!

व्रजस्व शरणं मातुरेषा श्रेयस्करी तव।
इत्युक्तो विभुना नन्दी अन्धकश्च गणेश्वरः॥ ९०

समागम्याम्बिकापादौ ववन्दतुरुभावपि।
अन्धकोऽपि तदा गौरीं भक्तिनम्रो महामुने।
स्तुतिं चक्रे महापुण्यां पापघ्नीं श्रुतिसम्मिताम्॥ ९१

अन्धक उवाच

ॐ नमस्ये भवानीं भूतभव्यप्रियां लोकधात्रीं जनित्रीं स्कन्दमातरं महादेवप्रियां धारिणीं स्यन्दिनीं चेतनां त्रैलोक्यमातरं धरित्रीं देवमातरमथेज्यां श्रुतिं स्मृतिं दयां लज्जां कान्तिमग्र्यामसूयां मतिं सदापावनीं दैत्यसैन्यक्षयकरीं महामायां वैजयन्तीं सुशुभां कालरात्रिं गोविन्दभगिनीं शैलराजपुत्रीं सर्वदेवार्चितां सर्वभूतार्चितां विद्यां सरस्वतीं त्रिनयनमहिषीं नमस्यामि मृडानीं शरण्यां शरणमुपागतोऽहं नमो नमस्ते॥

इत्थं स्तुता सान्धकेन पुरितुष्टा विभावरी।
प्राह पुत्र प्रसन्नाऽस्मि वृणुष्व वरमुत्तमम्॥ ९२

भृङ्गिरुवाच

पापं प्रशममायातु त्रिविधं मम पार्वति।
तथेश्वरे च सततं भक्तिरस्तु ममाम्बिके॥ ९३

पुलस्त्य उवाच

बाढमित्यब्रवीद् गौरी हिरण्याक्षसुतं ततः।
स चास्ते पूजयञ्शर्वं गणानामधिपोऽभवत्॥ ९४

एवं पुरा दानवसत्तमं तं
महेश्वरेणाथ विरूपदृष्ट्या।
कृत्वैव रूपं भयदं च भैरवं
भृङ्गित्वमीशेन कृतं स्वभक्त्या॥ ९५

एतत् तवोक्तं हरकीर्तिवर्धनं
पुण्यं पवित्रं शुभदं महर्षे।
संकीर्तनीयं द्विजसत्तमेषु
धर्मायुरारोग्यधनैषिणा सदा॥ ९६

शीघ्र यहाँ आओ। अपनी इस माताकी शरणमें जाओ! ये तुम्हारा कल्याण करेंगी। प्रभुके इस प्रकार कहनेपर गणेश्वर नन्दी एवं अन्धक दोनोंने जाकर अम्बिकाके चरणोंमें प्रणाम किया। महामुने! उसके बाद श्रद्धापूर्वक नम्र होकर अन्धकने गौरीकी पाप नाश करनेवाली एवं अत्यन्त पवित्र वेद-सम्मत स्तुति की॥ ८७—९१॥

अन्धकने कहा— ॐ मैं भवानीको प्रणाम करता हूँ। मैं भूतभव्य—शङ्करकी प्रिया, लोकधात्री, जनित्री, कार्तिकेयकी जननी, महादेवकी प्रिया, लोकोंको धारण करनेवाली, स्यन्दिनी, चेतना, त्रैलोक्यजननी, धरित्री, देवमाता, इज्या, श्रुति, स्मृति, दया, लज्जा, श्रेष्ठ कान्ति, अग्र्या, असूया, मति, सदापावनी, दैत्योंकी सेनाओंका विनाश करनेवाली, महामाया वैजयन्ती, अत्यन्त शोभावाली, कालरात्रि, गोविन्दभगिनी, शैलराजपुत्री, सर्वदेवोंसे पूजित, सर्वभूतोंसे पूजित, विद्या, सरस्वती, शंकरकी महारानीको प्रणाम करता हूँ। मैं शरणागतोंकी रक्षा करनेवाली मृडानीकी शरणमें आया हूँ। (देवि!) आपको बार-बार प्रणाम है। अन्धकके इस प्रकार स्तुति करनेपर भवानीने प्रसन्न होकर कहा—पुत्र! मैं प्रसन्न हूँ। तुम उत्तम वर माँगो॥ ९२॥

भृङ्गिने कहा—पार्वति! अम्बिके! मेरे त्रिविध—मानसिक, कायिक, वाचिक पाप दूर हो जायँ एवं भगवान् शिवमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे॥ ९३॥

पुलस्त्यजी बोले— उसके बाद गौरीने हिरण्याक्षके पुत्र अन्धकसे कहा—ऐसा ही हो। वह वहाँ रहकर शिवकी पूजा करते हुए गणाधिप हो गया। इस प्रकार पहले समयमें महेश्वरने उस दानवश्रेष्ठको अपनी विरूपदृष्टिसे भयदायक भीषण रूप प्रदानकर अपनी भक्तिसे 'भृङ्गी' बना दिया। महर्षे (नारदजी)! मैंने आपसे शिवकी कीर्तिको बढ़ानेवाला यह पुण्य पवित्र एवं शुभद आख्यान कहा। धर्म, आयु, आरोग्य एवं धनको चाहनेवालोंको श्रेष्ठ द्विजातियोंमें इसका कीर्तन सदा करना चाहिये॥ ९४—९६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७०॥

एकहत्तरवाँ अध्याय

इन्द्रका मलयपर असुरोंसे युद्ध, उनका 'पाकशासन' और 'गोत्रभिद्' होनेका हेतु; मरुतोंकी उत्पत्तिकी कथा

नारद उवाच

मलयेऽपि महेन्द्रेण यत्कृतं ब्राह्मणर्षभ।
निष्पादितं स्वकं कार्यं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां यन्महेन्द्रेण मलये पर्वतोत्तमे।
कृतं लोकहितं ब्रह्मन्नात्मनश्च तथा हितम्॥ २
अन्धासुरस्यानुचरा मयतारपुरोगमाः।
ते निर्जिताः सुरगणैः पातालगमनोत्सुकाः॥ ३
ददृशुर्मलयं शैलं सिद्धाध्युषितकन्दरम्।
लतावितानसंछन्नं मत्तसत्त्वसमाकुलम्॥ ४
चन्दनैरुरगाक्रान्तैः सुशीतैरभिसेवितम्।
माधवीकुसुमामोदं ऋष्यर्चितहरं गिरिम्॥ ५
तं दृष्ट्वा शीतलच्छायं श्रान्ता व्यायामकर्षिताः।
मयतारपुरोगास्ते निवासं समरोचयन्॥ ६
तेषु तत्रोपविष्टेषु प्राणतृप्तिप्रदोऽनिलः।
विवाति शीतः शनकैर्दक्षिणो गन्धसंयुतः॥ ७
तत्रैव च रतिं चक्रुः सर्व एव महासुराः।
कुर्वन्तो लोकसम्पूज्ये विद्वेषं देवतागणे॥ ८
ताञ्ज्ञात्वा शङ्करः शक्रं प्रेषयन्मलयेऽसुरान्।
स चापि ददृशे गच्छन् पथि गोमातरं हरिः॥ ९
तस्याः प्रदक्षिणां कृत्वा दृष्ट्वा शैलं च सुप्रभम्।
ददृशे दानवान् सर्वान् संहृष्टान् भोगसंयुतान्॥ १०
अथाजुहाव बलहा सर्वानेव महासुरान्।
ते चाप्याययुरव्यग्रा विकिरन्तः शरोत्करान्॥ ११
तानागतान् बाणजालैः रथस्थोऽद्भुतदर्शनः।
छादयामास विप्रर्षे गिरीन् वृष्ट्या यथा घनः॥ १२
ततो बाणैरवच्छाद्य मयादीन् दानवान् हरिः।
पाकं जघान तीक्ष्णाग्रैर्मार्गणैः कङ्कवाससैः॥ १३

नारदने कहा— द्विजश्रेष्ठ! महेन्द्रने मलयपर्वतपर भी अपना जो कार्य पूरा किया उसे आप मुझसे कहिये॥ १॥

पुलस्त्यजी बोले— ब्रह्मन्! महेन्द्रने श्रेष्ठ मलयपर्वतपर जगत्के हित तथा अपने कल्याणके लिये जो कार्य किया था, उसे सुनिये। मय, तार आदि अन्धकासुरके अनुचर दैत्य देवताओंसे पराजित होकर पाताललोकमें जानेके लिये अत्यन्त उत्सुक होने लगे। उन लोगोंने सिद्धोंसे भरे कन्दराओंवाले तथा लतासमूहसे ढके, आमोदभरे प्राणियोंसे व्याप्त, साँपोंसे घिरे सुशीतल चन्दनसे युक्त तथा सुगन्धित माधवी लताके फूलोंकी सुगन्धिसे पूर्ण ऋषियोंद्वारा पूजित शंकरके मलयगिरिको देखा॥ २—५॥

परिश्रमसे थके-माँदे तथा शक्तिहीन मय, तार आदि दानवोंने शीतल छायावाले उस पर्वतको देखकर वहाँ निवास करनेकी इच्छा की। उन लोगोंके वहाँ ठहर जानेपर प्राणोंको संतुष्टि प्रदान करनेवाली सुगन्धसे पूर्ण तथा शीतल दक्षिणी हवा मन्द-मन्द बहने लगी। जगत्-पूज्य देवताओंसे शत्रुता करते हुए सभी श्रेष्ठ दैत्य सुखसे वहीं रहने लगे। शंकरने उन असुरोंको मलयपर्वतपर रहते हुए जानकर इन्द्रको वहाँ भेजा। मार्गमें जाते हुए इन्द्रने गोमाताको देखा॥ ६—९॥

उसकी प्रदक्षिणा करनेके बाद उन्होंने सुकान्तिसे सम्पन्न पर्वतपर भोगसे संयुत तथा हर्षित सभी दानवोंको देखा। उसके बाद इन्द्रने सभी महासुरोंको ललकारा। वे भी बिना किसी हिचकके बाणोंकी वर्षा करते हुए आ गये। विप्रर्षे! रथपर बैठे हुए अद्भुत दिखायी पड़नेवाले इन्द्रने आये हुए उन दानवोंको बाणोंके समूहोंसे इस प्रकार ढक दिया जिस प्रकार बादल जलकी वर्षासे पर्वतोंको ढक देता है। उसके बाद इन्द्रने मय आदि दानवोंको बाणोंसे ढककर कङ्क पक्षीके पंख लगे तेज—नुकीली धारवाले बाणोंसे पाक नामके दानवका वध कर दिया॥ १०—१३॥

तत्र नाम विभुर्लेभे शासनत्वात् शरैर्दृढैः।
पाकशासनतां शक्रः सर्वामरपतिर्विभुः॥ १४

तथाऽन्यं पुरनामानं बाणासुरसुतं शरैः।
सुपुङ्खैर्दारयामास ततोऽभूत् स पुरन्दरः॥ १५

हत्वेत्थं समरेऽजैषीद् गोत्रभिद् दानवं बलम्।
तच्चापि विजितं ब्रह्मन् रसातलमुपागमत्॥ १६

एतदर्थं सहस्राक्षः प्रेषितो मलयाचलम्।
त्र्यम्बकेन मुनिश्रेष्ठ किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ १७

नारद उवाच

किमर्थं दैवतपतिर्गोत्रभित् कथ्यते हरिः।
एष मे संशयो ब्रह्मन् हृदि सम्परिवर्तते॥ १८

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां गोत्रभिच्छक्रः कीर्तितो हि यथा मया।
हते हिरण्यकशिपौ यच्चकारारिमर्दनः॥ १९
दितिर्विनष्टपुत्रा कश्यपं प्राह नारद।
विभो नाथोऽसि मे देहि शक्रहन्तारमात्मजम्॥ २०
कश्यपस्तामुवाचाथ यदि त्वमसितेक्षणे।
शौचाचारसमायुक्ता स्थास्यसे दशतीर्दश॥ २१
संवत्सराणां दिव्यानां ततस्त्रैलोक्यनायकम्।
जनयिष्यसि पुत्रं त्वं शत्रुघ्नं नान्यथा प्रिये॥ २२
इत्येवमुक्ता सा भर्त्रा दितिर्नियममास्थिता।
गर्भाधानमृषिः कृत्वा जगामोदयपर्वतम्॥ २३

गते तस्मिन् मुनिश्रेष्ठे सहस्राक्षोऽपि सत्वरम्।
तमाश्रममुपागम्य दितिं वचनमब्रवीत्॥ २४

करिष्याम्यनुशुश्रूषां भवत्या यदि मन्यसे।
बाढमित्यब्रवीद् देवी भाविकर्मप्रचोदिता॥ २५

समिदाहरणादीनि तस्याश्चक्रे पुरन्दरः।
विनीतात्मा च कार्यार्थी छिद्रान्वेषी भुजङ्गवत्॥ २६

एकदा सा तपोयुक्ता शौचे महति संस्थिता।
दशवर्षशतान्ते तु शिरःस्नाता तपस्विनी॥ २७

मजबूत बाणोंसे पाकको दण्डित (शासित) करनेके कारण सभी अमरोंके पति विभु इन्द्रको पाकशासनताकी प्राप्ति हुई। इसी प्रकार उन्होंने सुन्दर पुंख लगे बाणोंसे दूसरे पुर नामक बाणासुरके पुत्रका (भी) वध कर दिया। इसीसे वे पुरन्दर हुए। ब्रह्मन्! इस प्रकार उन दानवोंका नाश कर इन्द्रने युद्धमें दानव-सेनाको जीत लिया। हारा हुआ वह दानवोंका सेना-समूह रसातलमें चला गया। मुनिश्रेष्ठ! इसीलिये शंकरने इन्द्रको मलयपर्वतपर भेजा था। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ १४—१७॥

नारदने कहा (पूछा)— ब्रह्मन्! मेरे हृदयमें यह संदेह है कि देवपति (इन्द्र)-को गोत्रभिद् क्यों कहा जाता है॥ १८॥

पुलस्त्यजी बोले— मैंने इन्द्रको गोत्रभिद् जैसे कहा तथा हिरण्यकशिपुके मार दिये जानेपर शत्रुमर्दन इन्द्रने जो किया? आप (सब) सुनें। नारदजी! पुत्रकी मृत्यु हो जानेपर दितिने कश्यपसे कहा—प्रभो! आप मेरे पति हैं, मुझे इन्द्रका वध करनेवाला पुत्र दीजिये। कश्यपने उससे कहा—असितनयने! यदि तुम सौ दिव्य वर्षोंतक पवित्र आचरण करोगी तो तुम तीनों लोकोंका मार्गदर्शक एवं शत्रुसंहारकारी पुत्र उत्पन्न करोगी। प्रिये! इसके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है॥ १९—२२॥

पतिके ऐसा कहनेपर दितिने नियमका निर्वाह करना प्रारम्भ कर दिया। कश्यप ऋषि गर्भाधान करके उदयगिरिपर चले गये। उन मुनिश्रेष्ठके उदयगिरिपर चले जानेके पश्चात् इन्द्रने शीघ्रतासे उस आश्रममें जाकर दितिसे यह वचन कहा—यदि आप अनुमति प्रदान करें तो मैं आपकी सेवा करूँ। भवितव्यतासे प्रेरित होकर देवीने कहा—ठीक है। विनीत बना हुआ इन्द्र अपने कार्यकी सिद्धिके लिये बिल खोजनेवाले सर्पकी भाँति अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए उस (दिति)-के लिये लकड़ी आदि लानेका कार्य करने लगे॥ २३—२६॥

एक हजार वर्ष बीत जानेपर मनोयोगसे पवित्रताका पालन करनेमें लगी हुई वह तपस्विनी एक दिन सिरसे स्नान करनेके बाद बालोंको खोले हुए अपने घुटनोंपर

जानुभ्यामुपरि स्थाप्य मुक्तकेशा निजं शिरः।
सुष्वाप केशप्रान्तैस्तु संश्लिष्टचरणाऽभवत्॥ २८

तमन्तरमशौचस्य ज्ञात्वा वेदः सहस्रदृक्।
विवेश मातुरुदरं नासारन्ध्रेण नारद॥ २९

प्रविश्य जठरं क्रुद्धो दैत्यमातुः पुरन्दरः।
ददर्शोर्ध्वमुखं बालं कटिन्यस्तकरं महत्॥ ३०

तस्यैवास्तेऽथ ददृशे पेशीं मांसस्य वासवः।
शुद्धस्फटिकसंकाशां कराभ्यां जगृहेऽथ ताम्॥ ३१

ततः कोपसमाध्मातो मांसपेशीं शतक्रतुः।
कराभ्यां मर्दयामास ततः सा कठिनाऽभवत्॥ ३२

ऊर्ध्वेनार्धं च ववृधे त्वधोऽथ ववृधे तथा।
शतपर्वाऽथ कुलिशः संजातो मांसपेशितः॥ ३३

तेनैव गर्भं दितिजं वज्रेण शतपर्वणा।
चिच्छेद सप्तधा ब्रह्मन् स रुरोद च विस्वरम्॥ ३४

ततोऽप्यबुध्यत दितिरजानाच्छक्रचेष्टितम्।
शुश्राव वाचं पुत्रस्य रुदमानस्य नारद॥ ३५

शक्रोऽपि प्राह मा मूढ रुदस्वेति सुघर्घरम्।
इत्येवमुक्त्वा चैकैकं भूयश्चिच्छेद सप्तधा॥ ३६

ते जाता मरुतो नाम देवभृत्याः शतक्रतोः।
मातुरेवापचारेण चलन्ते ते पुरस्कृताः॥ ३७

ततः सकुलिशः शक्रो निर्गम्य जठरात् तदा।
दितिं कृताञ्जलिपुटः प्राह भीतस्तु शापतः॥ ३८

ममास्ति नापराधोऽयं यच्छस्तस्तनयस्तव।
तवैवापनयाच्छस्तस्तन्मे न क्रोद्धुमर्हसि॥ ३९

दितिरुवाच

न तवात्रापराधोऽस्ति मन्ये दिष्टमिदं पुरा।
सम्पूर्णे त्वपि काले वै याऽशौचत्वमुपागता॥ ४०

सिर रखकर सो गयी। उसके बालोंके ऊपरी भाग (लटककर) पैरोंसे लग गये। नारदजी! सहस्राक्ष इन्द्रदेव अपवित्रताके लिये उस अवसरको (उपयुक्त) जानकर नासिकाके छिद्रसे माताके उदरमें प्रवेश कर गये। इन्द्रने दैत्यमाताकी विशाल कोखमें प्रवेश कर कमरपर हाथ रखे ऊपरको मुख किये हुए एक बालकको देखा॥ २७—३०॥

इन्द्रने उस बालकके मुँहमें एक शुद्ध स्फटिकके समान मांसपेशी देखी। इन्होंने उस मांसपेशीको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया। उसके बाद क्रोधकी आगसे संतप्त हुए शतक्रतुने अपने दोनों हाथोंसे उस मांसपेशीको मसल दिया जिससे वह कठोर हो गयी (अब वह पिण्डके रूपमें हो गयी)। उस पिण्डका आधा भाग ऊपरकी ओर और आधा भाग नीचेकी ओर बढ़ गया। इस प्रकार उस मांसपेशीसे सौ पोरोंवाला वज्र बन गया। ब्रह्मन्! (इन्द्रने) उन्हीं पोरोंवाले वज्रसे दितिके द्वारा धारण किये हुए गर्भको सात भागोंमें काट डाला। फिर वह गर्भमें रहनेवाला बालक बिलखते स्वरमें रोने लगा॥ ३१—३४॥

[पुलस्त्यजी कहते हैं—] नारदजी! उसके बाद दिति जग गयी और उसने इन्द्रकी की हुई चेष्टाको जान लिया। उसने रोते हुए पुत्रकी वाणी सुनी। इन्द्रने भी कहा—मूर्ख! घर्घर शब्दसे मत रोओ। ऐसा कहकर उन्होंने प्रत्येक टुकड़ेको पुनः सात-सात टुकड़ोंमें काट डाला। वे (कटे हुए टुकड़े) इन्द्रके मरुत् नामके देवभृत्य हो गये। माताके ही अनुचित कार्य करनेके कारण वे आगे चलते हैं। उसके बाद वज्र लिये हुए इन्द्रने जठरसे बाहर आकर एवं शापसे भयभीत होकर हाथ जोड़कर दितिसे कहा—आपके पुत्रको जो मैंने काटा है इसमें मेरा अपराध नहीं है। आपके ही अपचरण (पवित्रताका पालन न करने)-से वह काटा गया। अतः मेरे ऊपर आपको कुपित नहीं होना चाहिये॥ ३५—३९॥

दितिने कहा— इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। मैं इसे पूर्वनियोजित मानती हूँ। इसीसे समय पूरा होनेपर भी मैंने अपवित्रताका आचरण कर दिया॥ ४०॥

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा तान् बालान् परिसान्त्व्य दितिः स्वयम्।
देवराज्ञा सहैतांस्तु प्रेषयामास भामिनी॥ ४१
एवं पुरा स्वानपि सोदरान् स गर्भस्थितानुज्जरितुं भयार्तः।
बिभेद वज्रेण ततः स गोत्रभित् ख्यातो महर्षे भगवान् महेन्द्रः॥ ४२

पुलस्त्यजी बोले—भामिनी दितिने ऐसा कहनेके बाद उन बालकोंको सान्त्वना देकर उन्हें देवराजके साथ ही भेज दिया। महर्षे! इस प्रकार पूर्वकालमें भयार्त्त होकर महेन्द्रने गर्भस्थित अपने ही सहोदरोंके विनाशके लिये उन्हें वज्रद्वारा काट दिया। इसीसे वे 'गोत्रभित्' नामसे प्रसिद्ध हो गये॥ ४१-४२॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें एकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७१॥

बहत्तरवाँ अध्याय

स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत चाक्षुष-मन्वन्तरोंके मरुद्गणकी उत्पत्तिका वर्णन

नारद उवाच

यदमी भवता प्रोक्ता मरुतो दितिजोत्तमाः।
तत् केन पूर्वमासन् वै मरुन्मार्गेण कथ्यताम्॥ १

पूर्वमन्वन्तरेष्वेव समतीतेषु सत्तम।
के त्वासन् वायुमार्गस्थास्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ २

नारदजीने कहा—(पुलस्त्यजी!) आपने दितिसे उत्पन्न उत्तम मरुद्गणोंका जो वर्णन किया उसके विषयमें यह कहिये कि पहले वे मरुत् किस मार्गमें अवस्थित थे; सत्तम! आप मुझे विशेषरूपसे यह बतलाइये कि पूर्व मन्वन्तरके बीत जानेपर कौन (मरुत्) वायुमार्गमें स्थित थे?॥ १-२॥

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां पूर्वमरुतामुत्पत्तिं कथयामि ते।
स्वायम्भुवं समारभ्य यावन्मन्वन्तरं त्विदम्॥ ३

स्वायम्भुवस्य पुत्रोऽभून्मनोर्नाम प्रियव्रतः।
तस्यासीत् सवनो नाम पुत्रस्त्रैलोक्यपूजितः॥ ४

स चानपत्यो देवर्षे नृपः प्रेतगतिं गतः।
ततोऽरुदत् तस्य पत्नी सुदेवा शोकविह्वला॥ ५

न ददाति तदा दग्धुं समालिङ्ग्य स्थिता पतिम्।
नाथ नाथेति बहुशो विलपन्ती त्वनाथवत्॥ ६

पुलस्त्यजी बोले—(नारदजी!) स्वायम्भुव मन्वन्तरसे लेकर इस मन्वन्तरतकके पहलेतकके मरुद्गणोंकी उत्पत्ति आपसे कहता हूँ, उसे सुनिये—स्वायम्भुव मनुके पुत्रका नाम प्रियव्रत था। तीनों लोकोंमें सत्कार प्राप्त सवन उन प्रियव्रतके पुत्र थे। देवर्षे! वे राजा पुत्रहीन ही मृत्युको प्राप्त हो गये। उसके बाद उनकी सुदेवा नामकी पत्नी शोकसे विह्वल होकर रोने लगी। उसने उस मृत-शरीरको दाह-संस्कार करनेके लिये नहीं दिया। पतिके गलेसे लिपटी हुई वह 'हा नाथ, हा नाथ' कहती हुई असहायकी भाँति अत्यधिक विलाप करने लगी॥ ३—६॥

तामन्तरिक्षादशरीरिणी वाक्
प्रोवाच मा राजपत्नीह रोदीः।

उस समय आकाशसे अशरीरिणीवाणीने उससे

यद्यस्ति ते सत्यमनुत्तमं तदा
भवत्वयं ते पतिना सहाग्निः ॥ ७
सा तां वाणीमन्तरिक्षान्निशम्य
प्रोवाचेदं राजपुत्री सुदेवा।
शोचाम्येनं पार्थिवं पुत्रहीनं
नैवात्मानं मन्दभाग्यं विहङ्ग ॥ ८
सोऽथाब्रवीन्मा रुदस्वायताक्षि
पुत्रास्त्वत्तो भूमिपालस्य सप्त।
भविष्यन्ति वह्निमारोह शीघ्रं
सत्यं प्रोक्तं श्रद्दधत्स्व त्वमद्य ॥ ९
इत्येवमुक्ता खचरेण बाला
चितौ समारोप्य पतिं वरार्हम्।
हुताशमासाद्य पतिव्रता तं
संचिन्तयन्ती ज्वलनं प्रपन्ना ॥ १०

कहा—राजपत्नि! तुम रोओ मत। यदि तुम्हारा सत्य (पति-सेवा)-व्रत श्रेष्ठ है तो यह अग्नि पतिके साथ तुम्हारे हितके लिये हो। आकाशसे हुई उस वाणीको सुनकर राजपुत्री सुदेवाने कहा—आकाशचारिन्! मैं इस सुत-हीन राजाके लिये सोच कर रही हूँ; न कि अपने दुर्भाग्यके लिये। उस आकाशवाणीने फिर कहा—विशालनयने! तुम रोओ मत। तुम्हारे गर्भसे तो राजाको सात पुत्र होंगे। तुम शीघ्र चितापर चढ़ जाओ। मैं सच कहता हूँ। इसपर तुम आज विश्वास करो। आकाश-चारीके ऐसा कहनेपर उस बालाने श्रेष्ठ पतिको चितापर रखा और पतिका ध्यान करती हुई जलती चितामें प्रवेश कर वह पतिव्रता अग्निकी शरणमें चली गयी (जल मरी) ॥ ७—१० ॥

ततो मुहूर्तान्नृपतिः श्रिया युतः
समुत्तस्थौ सहितो भार्ययाऽसौ।
खमुत्पपाताथ स कामचारी
समं महिष्या च सुनाभपुत्र्या ॥ ११
तस्याम्बरे नारद पार्थिवस्य
जाता रजोगा महिषी तु गच्छतः।
स दिव्ययोगात् प्रतिसंस्थितोऽम्बरे
भार्यासहायो दिवसानि पञ्च ॥ १२
ततस्तु षष्ठेऽहनि पार्थिवेन
रितुर्न वन्ध्योऽद्य भवेद् विचिन्त्य।
रराम तन्व्या सह कामचारी
ततोऽम्बरात् प्राच्यवतास्य शुक्रम् ॥ १३
शुक्रोत्सर्गावसाने तु नृपतिर्भार्यया सह।
जगाम दिव्यया गत्या ब्रह्मलोकं तपोधन ॥ १४

उसके बाद क्षणभरमें शोभासे सम्पन्न वह राजा पत्नीके साथ उठा और सुनाभकी पुत्री अपनी राजरानीके साथ आकाशमें जाकर स्वच्छन्दतासे भ्रमण करने लगा। नारदजी! आकाशमें जाते हुए उस राजाकी रानी रजस्वला हो गयी। वह राजा दिव्ययोगसे आकाशमें भार्या (सुदेवा)-के साथ पाँच दिनोंतक रहा। उसके बाद छठे दिन आज ऋतु व्यर्थ न हो जाय—ऐसा सोचकर कामचारी राजा भार्याके साथ विहार करने लगा। उसके बाद आकाशसे उसका शुक्र स्खलित हो गया। तपोधन! शुक्र-त्याग करनेके पश्चात् राजा पत्नीके साथ दिव्यगतिसे ब्रह्मलोकको चला गया ॥ ११—१४ ॥

तदम्बरात् प्रचलितमभ्रवर्णं
शुक्रं समाना नलिनी वपुष्मती।
चित्रा विशाला हरितालिनी च
सप्तर्षिपत्न्यो ददृशुर्यथेच्छया ॥ १५
तद् दृष्ट्वा पुष्करे न्यस्तं प्रत्यैच्छन्त तपोधन।
मन्यमानास्तदमृतं सदा यौवनलिप्सया ॥ १६
ततः स्नात्वा च विधिवत् सम्पूज्य तान् निजान् पतीन्।
पतिभिः समनुज्ञाताः पपुः पुष्करसंस्थितम् ॥ १७

समाना, नलिनी, वपुष्मती, चित्रा, विशाला, हरिता एवं अलिनी—इन सात ऋषि-पत्नियोंने आकाशसे गिरते हुए अभ्रकके समान वर्णवाले शुक्रको इच्छाभर देखा। तपोधन! उसे देखकर उसको अमृत समझती हुई उन सबोंने स्थायी युवावस्था प्राप्त करनेकी लालसासे उसे कमलमें रख लिया। उसके बाद वे स्नान करके अपने-अपने पतियोंका पूजनकर उन पतियोंकी अनुमतिसे कमलमें रखे राजाके उस शुक्रको अमृत मानती हुई

तच्छुक्रं पार्थिवेन्द्रस्य मन्यमानास्तदाऽमृतम्।
पीतमात्रेण शुक्रेण पार्थिवेन्द्रोद्भवेन ताः॥ १८
ब्रह्मतेजोविहीनास्ता जाताः पत्न्यस्तपस्विनाम्।
ततस्तु तत्यजुः सर्वे सदोषास्ताश्च पत्नयः॥ १९
सुषुवुः सप्त तनयान् रुदतो भरवं मुने।
तेषां रुदितशब्देन सर्वमापूरितं जगत्॥ २०
अथाजगाम भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
समभ्येत्याब्रवीद् बालान् मा रुदध्वं महाबलाः॥ २१
मरुतो नाम यूयं वै भविष्यध्वं वियच्चराः।
इत्येवमुक्त्वा देवेशो ब्रह्मा लोकपितामहः॥ २२
तानादाय वियच्चारी मारुतानादिदेश ह।
ते त्वासन् मरुतस्त्वाद्या मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ २३
स्वारोचिषे तु मरुतो वक्ष्यामि शृणु नारद।
स्वारोचिषस्य पुत्रस्तु श्रीमानासीत् क्रतुध्वजः॥ २४
तस्य पुत्राभवन् सप्त सप्तार्च्चिः प्रतिमा मुने।
तपोऽर्थं ते गताः शैलं महामेरुं नरेश्वराः॥ २५
आराधयन्तो ब्रह्माणं पदमैन्द्रमथेप्सवः।
ततो विपश्चिन्नामाथ सहस्राक्षो भयातुरः॥ २६
पूतनामप्सरोमुख्यां प्राह नारद वाक्यवित्।
गच्छस्व पूतने शैलं महामेरुं विशालिनम्॥ २७
तत्र तप्यन्ति हि तपः क्रतुध्वजसुता महत्।
यथा हि तपसो विघ्नं तेषां भवति सुन्दरि॥ २८
तथा कुरुष्व मा तेषां सिद्धिर्भवतु सुन्दरि।
इत्येवमुक्ता शक्रेण पूतना रूपशालिनी॥ २९
तत्राजगाम त्वरिता यत्रातप्यन्त ते तपः।
आश्रमस्याविदूरे तु नदी मन्दोदवाहिनी॥ ३०
तस्यां स्नातुं समायाताः सर्व एव सहोदराः।
साऽपि स्नातुं सुचार्वङ्गी त्ववतीर्णा महानदीम्॥ ३१
ददृशुस्ते नृपाः स्नातां ततश्चुक्षुभिरे मुने।
तेषां च प्राच्यवच्छुक्रं तत्पपौ जलचारिणी॥ ३२
शङ्खिनी ग्राहमुख्यस्य महाशङ्खस्य वल्लभा।
तेऽपि विभ्रष्टतपसो जग्मू राज्यं तु पैतृकम्॥ ३३

पान कर गयीं। राजाके शुक्रका पान करते ही तपस्वियोंकी वे पत्नियाँ ब्रह्मतेजसे रहित हो गयीं। उसके बाद उन तपस्वी लोगोंने अपनी उन दोषिणी पत्नियोंका त्याग कर दिया॥ १५—१९॥

मुने! उन ऋषिकी पत्नियोंने भयंकर रुदन करते हुए सात पुत्रोंको जन्म दिया। उनकी रुलाई सारे संसारमें भर गयी। उसके बाद भगवान् लोकपितामह ब्रह्मा आ गये। बालकोंके समीप जाकर उन्होंने कहा—हे महाबलवानो! रोओ मत। तुम्हारा नाम मरुत् होगा। तुम आकाशमें विचरण करनेवाले होओगे। इतना कहकर लोकपितामह देवेश ब्रह्मा उन मरुतोंको लेकर आकाशमें चले गये और उन्हें (आकाशमें रहनेका) आदेश दे दिया। वे ही स्वायम्भुव मनुके समयमें 'आद्य मरुत्' हुए॥ २०—२३॥

नारदजी! अब मैं स्वारोचिष मन्वन्तरके मरुतोंका वर्णन करता हूँ, (उसे) सुनो। स्वारोचिषके पुत्र श्रीमान् क्रतुध्वज थे। मुने! उनके अग्निके समान सात पुत्र थे। वे सभी नरेश्वर तपस्या करनेके लिये महामेरुपर्वतपर चले गये। वे इन्द्रपदको प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्रह्माकी आराधना करने लगे। उसके बाद बुद्धिमान् इन्द्र भयभीत हो गये। नारदजी! वक्ताके अभिप्रायको स्पष्टतः समझनेवाले इन्द्रने अप्सराओंमें प्रधान पूतनासे कहा—पूतने! तुम महान् विशाल मेरुपर्वतपर जाओ॥ २४—२७॥

वहाँ क्रतुध्वजके पुत्र महान् तप कर रहे हैं। सुन्दरि! उनके तपमें जिस प्रकार विघ्न हो तथा हे सुन्दरि! उन्हें सिद्धिकी प्राप्ति जैसे न हो सके—ऐसा उपाय करो। इन्द्रके कहनेपर रूपवती पूतना शीघ्र वहाँ गयी, जहाँ वे तपस्या कर रहे थे। आश्रमके पास ही मन्द जल-प्रवाहवाली नदी थी। सभी सगे भाई उस नदीमें स्नान करनेके लिये आये। वह सुन्दरी भी स्नान करनेके लिये उस महानदीमें उतरी॥ २८—३१॥

मुने! उन राजपुत्रोंने स्नान करती हुई उस पूतनाको देखा और वे क्षुभित हो गये; परिणामतः उनका शुक्रपात हो गया। मछलियोंमें प्रधान महाशङ्खकी प्रिया शङ्खिनीने उसे पी लिया। तपके भ्रष्ट हो जानेपर वे भी अपने

सा चाप्सराः शक्रमेत्य याथातथ्यं न्यवेदयत्।
ततो बहुतिथे काले सा ग्राही शङ्खरूपिणी॥ ३४

समुद्धृता महाजालैर्मत्स्यबन्धेन मानिनी।
स तां दृष्ट्वा महाशङ्खीं स्थलस्थां मत्स्यजीविकः॥ ३५

निवेदयामास तदा क्रतुध्वजसुतेषु वै।
तथाऽभ्येत्य महात्मानो योगिनो योगधारिणः॥ ३६

पिताके राज्यमें चले गये। उस अप्सराने भी इन्द्रके पास जाकर उनसे सत्य तथ्यको बतला दिया। उसके बाद बहुत समयके पश्चात् किसी धीवरने महाजालद्वारा उस शङ्खरूपिणी मानिनी बड़ी मछलीको पकड़ लिया। मछलीसे जीवनका निर्वाह करनेवाले (धीवर)-ने भूमिपर पड़ी हुई उस महाशङ्खीको देखकर क्रतुध्वजके पुत्रोंसे निवेदित किया। योगको धारण करनेवाले वे महात्मा योगी उसके निकट गये॥ ३२—३६॥

नीत्वा स्वमन्दिरं सर्वे पुरवाप्यां समुत्सृजन्।
ततः क्रमाच्छङ्खिनी सा सुषुवे सप्त वै शिशून्॥ ३७

जातमात्रेषु पुत्रेषु मोक्षभावमगाच्च सा।
अमातृपितृका बाला जलमध्यविहारिणः॥ ३८

स्तन्यार्थिनो वै रुरुदुरथाभ्यागात् पितामहः।
मा रुदध्वमितीत्याह मरुतो नाम पुत्रकाः॥ ३९

यूयं देवा भविष्यध्वं वायुस्कन्धविचारिणः।
इत्येवमुक्त्वाथादाय सर्वांस्तान् दैवतान् प्रति॥ ४०

नियोज्य च मरुन्मार्गे वैराजं भवनं गतः।
एवमासंश्च मरुतो मनोः स्वारोचिषेऽन्तरे॥ ४१

उन सभीने उसको अपने घर लाकर नगरके तालाबमें छोड़ दिया। उस शङ्खिनीने क्रमशः सात पुत्रोंको जन्म दिया। पुत्रोंका जन्म होते ही वह शङ्खिनी संसारसे बिदा हो गयी। अब बिना माता-पिताके वे बालक जलमें विचरण करने लगे। दूधके लिये वे विलखने लगे। उस समय वहाँ पितामह आ गये। उन्होंने 'मत रोओ' ऐसा कहा। इसीलिये उनका नाम मरुत् हुआ। 'तुमलोग वायुके कंधेपर विचरण करनेवाले देवता होगे' यह कहनेके बाद वे उन सभी देवताओंको ले जाकर उन्हें वायुमार्गमें नियुक्त कर ब्रह्मलोकको चले गये। इस प्रकार स्वारोचिष मनुके समयमें मरुत् हुए॥ ३७—४१॥

उत्तमे मरुतो ये च ताञ्छृणुष्व तपोधन।
उत्तमस्यान्ववाये तु राजासीन्निषधाधिपः॥ ४२

वपुष्मानिति विख्यातो वपुषा भास्करोपमः।
तस्य पुत्रो गुणश्रेष्ठो ज्योतिष्मान् धार्मिकोऽभवत्॥ ४३

स पुत्रार्थी तपस्तेपे नदीं मन्दाकिनीमनु।
तस्य भार्या च सुश्रोणी देवाचार्यसुता शुभा॥ ४४

तपश्चरणयुक्तस्य बभूव परिचारिका।
सा स्वयं फलपुष्पाम्बुसमित्कुशं समाहरत्॥ ४५

तपोधन! उत्तम (मन्वन्तर)-में जो मरुत् थे, अब उनके विषयमें सुनिये। उत्तमके वंशमें शरीरसे सूर्यके सदृश वपुष्मान् नामके प्रसिद्ध निषधोंके एक राजा थे। उनका उत्तम गुणोंवाला ज्योतिष्मान् नामका एक धार्मिक पुत्र था। वह पुत्रकी कामनासे मन्दाकिनी नदीके किनारे तपस्या करने लगा। देवताओंके आचार्य बृहस्पतिकी सुन्दरी पुत्री उसकी कल्याणकारिणी पत्नी थी। वह उस तपस्वीकी सेविका बनी। वह स्वयं फल, पुष्प, जल, समिधा एवं कुश लाती थी॥ ४२—४५॥

चकार पद्मपत्राक्षी सम्यक् चातिथिपूजनम्।
पतिं शुश्रूषमाणा सा कृशा धमनिसंतता॥ ४६

तेजोयुक्ता सुचार्वङ्गी दृष्टा सप्तर्षिभिर्वने।
तां तथा चारुसर्वाङ्गीं दृष्ट्वाऽथ तपसा कृशाम्॥ ४७

पप्रच्छुस्तपसो हेतुं तस्यास्तद्भर्तुरेव च।
साऽब्रवीत् तनयार्थाय आवाभ्यां वै तपःक्रिया॥ ४८

कमलदलके समान नयनोंवाली वह अच्छी तरह अतिथियोंका सत्कार करती थी। पतिकी सेवा करते हुए उसका शरीर दुबला हो गया तथा नाड़ियाँ दिखायी देने लगीं। सप्तर्षियोंने उस तेजस्विनी सर्वाङ्गसुन्दरीको वनमें देखा। तपसे दुर्बल उस सर्वाङ्गसुन्दरीको देखकर उन लोगोंने उसकी तथा उसके पतिकी तपस्याका कारण पूछा। उसने कहा—हम दोनों पुत्रके लिये तप कर रहे हैं।

ते चास्यै वरदा ब्रह्मन् जाताः सप्त महर्षयः।
व्रजध्वं तनयाः सप्त भविष्यन्ति न संशयः॥ ४९
युवयोर्गुणसंयुक्ता महर्षीणां प्रसादतः।
इत्येवमुक्त्वा जग्मुस्ते सर्व एव महर्षयः॥ ५०

ब्रह्मन्! सातों महर्षियोंने उसे वर दिया—तुम जाओ; महर्षियोंकी कृपासे तुम दोनोंको निःसन्देह सात गुणवान् पुत्र होंगे। इस प्रकार कहकर वे सभी महर्षि चले गये॥ ४६—५०॥

स चापि राजर्षिरगात् सभार्यो नगरं निजम्।
ततो बहुतिथे काले सा राज्ञो महिषी प्रिया॥ ५१
अवाप गर्भं तन्वङ्गी तस्मान्नृपतिसत्तमात्।
गुर्विण्यामथ भार्यायां ममारासौ नराधिपः॥ ५२
सा चाप्यारोढुमिच्छन्ती भर्तारं वै पतिव्रता।
निवारिता तदामात्यैर्न तथापि व्यतिष्ठत॥ ५३
समारोप्याथ भर्त्तारं चितायामारुहच्च सा।
ततोऽग्निमध्यात् सलिले मांसपेश्यपतन्मुने॥ ५४
साऽम्भसा सुखशीतेन संसिक्ता सप्तधाऽभवत्।
तेऽजायन्ताथ मरुत उत्तमस्यान्तरे मनोः॥ ५५

वे राजर्षि भी अपनी पत्नीके सहित नगरमें गये। उसके बाद बहुत समय बीत जानेपर राजाकी उस प्रिय रानीने उन नृपतिश्रेष्ठसे गर्भ धारण किया। भार्याके गर्भिणी होनेपर वे राजा संसारसे चल बसे। उस पतिव्रताने अपने पतिके साथ चितापर आरूढ़ होनेकी इच्छा की। मन्त्रियोंने उसे रोका, परंतु वह रुकी नहीं। पतिको चितापर रखकर वह भी उसपर चढ़ गयी। मुने! उसके बाद अग्निके बीचसे जलमें एक मांसपेशी गिरी। अत्यन्त शीतल जलसे संसिक्त होनेपर वह (मांसपेशी) सात टुकड़ोंमें अलग-अलग हो गयी। वे ही टुकड़े उत्तम मनुके कालमें मरुत् हुए॥ ५१—५५॥

तामसस्यान्तरे ये च मरुतोप्यभवन् पुरा।
तानहं कीर्तयिष्यामि गीतनृत्यकलिप्रिय॥ ५६
तामसस्य मनोः पुत्रो ऋतध्वज इति श्रुतः।
स पुत्रार्थी जुहावाग्नौ स्वमांसं रुधिरं तथा॥ ५७
अस्थीनि रोमकेशांश्च स्नायुमज्जायकृद्घनम्।
शुक्रं च चित्रगौ राजा सुतार्थी इति नः श्रुतम्॥ ५८

हे गीतनृत्यकलिप्रिय (नारदजी)! पहले तामस मन्वन्तरमें जो मरुत् हुए (अब मैं) उनका वर्णन करूँगा। तामस मनुके पुत्र ऋतध्वज नामसे विख्यात थे। उन्होंने पुत्रकी अभिलाषासे अग्निमें अपने शरीरके मांस और रक्तका हवन किया। हमलोगोंने सुना है कि पुत्रके अभिलाषी (उन) राजाने अस्थि, रोम, केश, स्नायु, मज्जा, यकृत् और घने शुक्रकी अग्निमें आहुति दी॥ ५६—५८॥

सप्तस्वेवार्चिषु ततः शुक्रपातादनन्तरम्।
मा मा क्षिपस्वेत्यभवच्छब्दः सोऽपि मृतो नृपः॥ ५९
ततस्तस्माद्धुतवहात् सप्त तत्तेजसोपमाः।
शिशवः समजायन्त ते रुदन्तोऽभवन् मुने॥ ६०
तेषां तु ध्वनिमाकर्ण्य भगवान् पद्मसम्भवः।
समागम्य निवार्य्याथ स चक्रे मरुतः सुतान्॥ ६१
ते त्वासन् मरुतो ब्रह्मंस्तामसे देवतागणाः।
येऽभवन् रैवते तांश्च शृणुष्व त्वं तपोधन॥ ६२

उसके बाद सातों अग्नियोंमें शुक्रपात होनेपर 'मत फेंको, मत फेंको' इस प्रकारका शब्द होने लगा। वे राजा भी मर गये। मुने! उसके बाद उस अग्निसे सात तेजस्वी शिशु उत्पन्न हुए और वे रोने लगे। उनके रोनेकी ध्वनि सुनकर भगवान् कमलयोनि (ब्रह्मा)-ने आकर मना किया और उन पुत्रोंको मरुत् नामका देवता बना दिया। ब्रह्मन्! वे ही तामस मन्वन्तरमें (मरुद्गण) नामक देवता हुए। हे तपोधन! रैवत मन्वन्तरमें जो (मरुद्गण) हुए उनका विवरण आगे सुनिये—॥ ५९—६२॥

रैवतस्यान्ववाये तु राजासीद् रिपुजिद् वशी।
रिपुजिन्नामतः ख्यातो न तस्यासीत् सुतः किल॥ ६३

रैवतके वंशमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवाले संयमी रिपुजित् नामसे विख्यात एक राजा थे। उनको

स समाराध्य तपसा भास्करं तेजसां निधिम्।
अवाप कन्यां सुरतिं तां प्रगृह्य गृहं ययौ॥ ६४

तस्यां पितृगृहे ब्रह्मन् वसन्त्यां स पिता मृतः।
साऽपि दुःखपरीताङ्गी स्वां तनुं त्यक्तुमुद्यता॥ ६५

ततस्तां वारयामासुर्ऋषयः सप्त मानसाः।
तस्यामासक्तचित्तास्तु सर्व एव तपोधनाः॥ ६६

अपारयन्ती तद्दुःखं प्रज्वाल्याग्निं विवेश ह।
ते चापश्यन्त ऋषयस्तच्चित्ता भावितास्तथा॥ ६७

तां मृतामृषयो दृष्ट्वा कष्टं कष्टेति वादिनः।
प्रजग्मुर्ज्वलनाच्चापि सप्ताजायन्त दारकाः॥ ६८

ते च मात्रा विना भूता रुरुदुस्तान् पितामहः।
निवारयित्वा कृतवांल्लोकनाथो मरुद्गणान्॥ ६९

रैवतस्यान्तरे जाता मरुतोऽमी तपोधन।
शृणुष्व कीर्तयिष्यामि चाक्षुषस्यान्तरे मनोः॥ ७०

आसीन्मङ्किरिति ख्यातस्तपस्वी सत्यवाक् शुचिः।
सप्तसारस्वते तीर्थे सोऽतप्यत महत्तपः॥ ७१

विघ्नार्थं तस्य तुषिता देवाः संप्रेषयन् वपुम्।
सा चाभ्येत्य नदीतीरे क्षोभयामास भामिनी॥ ७२

ततोऽस्य प्राच्यवच्छुक्रं सप्तसारस्वते जले।
तां चैवाप्यशपन्मूढां मुनिर्मङ्कणको वपुम्॥ ७३

गच्छ लब्धाऽसि मूढे त्वं पापस्यास्य महत् फलम्।
विध्वंसयिष्यति हयो भवतीं यज्ञसंसदि॥ ७४

एवं शप्त्वा ऋषिः श्रीमाञ् जगामाथ स्वमाश्रमम्।
सरस्वतीभ्यः सप्तभ्यः सप्त वै मरुतोऽभवन्॥ ७५

एतत् तवोक्ता मरुतः पुरा यथा
जाता वियद्व्याप्तिकरा महर्षे।
येषां श्रुते जन्मनि पापहानि-
र्भवेच्च धर्माभ्युदयो महान् वै॥ ७६

पुत्र नहीं था। उन्होंने तपद्वारा तेजोनिधि सूर्यकी आराधना कर सुरति नामकी कन्या प्राप्त की और उसे लेकर वे घर चले गये। ब्रह्मन्! उस कन्याके पितृ-गृहमें रहते हुए पिताका देहावसान हो गया। वह भी शोकसे आकुल होकर अपने शरीरका परित्याग करनेके लिये तैयार हुई। उसके बाद सात मानस ऋषियोंने उसे मना किया। किंतु वे सभी तपोधन उसमें आसक्तचित्त हो गये थे॥ ६३—६६॥

किंतु वह कन्या उस दुःखको सहन न कर सकनेके कारण आग जलाकर उसमें प्रवेश कर गयी। उसमें आसक्त तथा प्रभावित ऋषियोंने उसे देखा। उसे मरा हुआ देखकर वे ऋषि 'दुःखकी बात है', 'दुःखकी बात है' कहते हुए चले गये। उसके बाद उस अग्निसे सात पुत्र हुए। माताके अभावमें वे रोने लगे। लोकनाथ पितामह ब्रह्माने उन्हें (रोनेसे) रोककर मरुद्गणका पद दे दिया। तपोधन! वे ही रैवत मन्वन्तरमें मरुद्गण हुए। अब मैं चाक्षुष मनुके कालके मरुद्गणोंका वर्णन करूँगा, उसे सुनिये— ॥ ६७—७०॥

मङ्कि नामसे विख्यात सत्यवादी और पवित्र एक तपस्वी थे। उन्होंने सप्तसारस्वततीर्थमें महान् तप किया था। देवताओंने उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये 'वपु' नामकी अप्सराको भेजा। उस भामिनीने नदीके किनारे आकर मुनिको क्षोभित कर दिया। उसके बाद उनका शुक्र च्युत होकर सप्तसारस्वतके जलमें गिर गया। मुनि मङ्कणकने उस मूढ़ा वपुको भी शाप दे दिया। हे मूढ़े! चली जाओ। तुम इस पापका दारुण फल प्राप्त करोगी। यज्ञसंसद्में तुमको अश्व विध्वस्त करेगा। श्रीमान् ऋषि इस प्रकार शाप देकर अपने आश्रममें चले गये। उसके बाद सप्तसरस्वतियोंसे सात मरुत् उत्पन्न हुए। महर्षे! पूर्वकालमें आकाशव्यापी मरुद्गण जिस प्रकार उत्पन्न हुए थे, उसे मैंने आपसे कहा। इनका वर्णन सुननेसे पापका नाश तथा धर्मका महान् अभ्युदय होता है॥ ७१—७६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७२॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

बलि, मय-प्रभृति दैत्योंका देवताओंके साथ युद्ध, कालनेमिके साथ विष्णुभगवान्‌का युद्ध और कालनेमिका वध

पुलस्त्य उवाच

एतदर्थं बलिर्दैत्यः कृतो राजा कलिप्रिय।
मन्त्रप्रदाता प्रह्लादः शुक्रश्चासीत् पुरोहितः॥ १

ज्ञात्वाऽभिषिक्तं दैतेयं विरोचनसुतं बलिम्।
दिदृक्षवः समायाताः समयाः सर्व एव हि॥ २

तानागतान्निरीक्ष्यैव पूजयित्वा यथाक्रमम्।
पप्रच्छ कुलजान् सर्वान् किंनु श्रेयस्करं मम॥ ३

तमूचुः सर्व एवैनं शृणुष्व सुरमर्दन।
यत् ते श्रेयस्करं कर्म यदस्माकं हितं तथा॥ ४

पितामहस्तव बली आसीद् दानवपालकः।
हिरण्यकशिपुर्वीरः स शक्रोऽभूज्जगत्त्रये॥ ५

तमागम्य सुरश्रेष्ठो विष्णुः सिंहवपुर्धरः।
प्रत्यक्षं दानवेन्द्राणां नखैस्तं हि व्यदारयत्॥ ६

अपकृष्टं तथा राज्यमन्धकस्य महात्मनः।
तेषामर्थे महाबाहो शङ्करेण त्रिशूलिना॥ ७

तथा तव पितृव्योऽपि जम्भः शक्रेण घातितः।
कुजम्भो विष्णुना चापि प्रत्यक्षं पशुवत् तव॥ ८

शम्भुः पाको महेन्द्रेण भ्राता तव सुदर्शनः।
विरोचनस्तव पिता निहतः कथयामि ते॥ ९

श्रुत्वा गोत्रक्षयं ब्रह्मन् कृतं शक्रेण दानवः।
उद्योगं कारयामास सह सर्वैर्महासुरैः॥ १०

रथैरन्ये गजैरन्ये वाजिभिश्चापरेऽसुराः।
पदातयस्तथैवान्ये जग्मुर्युद्धाय दैवतैः॥ ११

मयोऽग्रे याति बलवान् सेनानाथो भयङ्करः।
सैन्यस्य मध्ये च बलिः कालनेमिश्च पृष्ठतः॥ १२

पुलस्त्यजी बोले—कलिप्रिय (नारदजी)! बलि दैत्यको इसीलिये राजा बनाया गया था। प्रह्लाद उसके परामर्श देनेवाले मन्त्री तथा शुक्राचार्य पुरोहित थे। विरोचनके पुत्र बलि दैत्यको राज्यपर अभिषिक्त हुआ जानकर मयके साथ सभी दैत्य उसे देखनेकी इच्छासे आये। उन (वहाँ) आये हुए अपने कुलपुरुषोंको देखकर (बलिने) यथाक्रम उनकी पूजा की एवं उनसे पूछा कि मेरे लिये क्या कल्याणकारी है? उन सभीने उससे कहा—देवमर्दन! तुम्हारे लिये जो कल्याणकारी और हमारे लिये हितकर कर्म है, उसे सुनो— ॥१—४॥

तुम्हारे पितामह, हिरण्यकशिपु बलवान्, वीर और दानवकुलके पालन करनेवाले थे। तीनों लोकोंके वे इन्द्र हो गये थे। किंतु सिंहशरीर धारणकर देवोंमें श्रेष्ठ श्रीविष्णुने उनके पास आकर श्रेष्ठ दानवोंके सामने ही उन्हें अपने नखोंसे विदीर्ण कर डाला। महाबाहो! त्रिशूल धारण करनेवाले शंकरने भी उन (देवों)-के लिये महान् बलशाली अन्धकका राज्य छीन लिया था। और इन्द्रने तुम्हारे चाचा (पिताके भाई) जम्भको मार दिया एवं विष्णुने तुम्हारे सामने कुजम्भको पशुकी तरह मार डाला॥ ५—८॥

मैं तुमसे बतला दे रहा हूँ कि महेन्द्रने शम्भु, पाक और तुम्हारे भाई सुदर्शन एवं तुम्हारे पिता विरोचनको मार डाला है। [पुलस्त्यजी कहते हैं कि] ब्रह्मन्! इन्द्रद्वारा किये गये अपने कुलका विनाश सुनकर दानव बलिने समस्त महान् असुरोंको युद्ध करनेके लिये तैयारी करनेकी प्रेरणा दी। फिर तो कुछ असुर रथोंपर, कुछ हाथियोंपर, कुछ घोड़ोंपर और कुछ पैदल ही देवताओंसे युद्ध करनेके लिये चल पड़े। सेनाके आगे-आगे भयङ्कर महाबलशाली सेनापति मय चल रहा था। सेनाके बीचमें

वामपार्श्वमवष्टभ्य शाल्वः प्रथितविक्रमः।
प्रयाति दक्षिणं घोरं तारकाख्यो भयङ्करः॥ १३

बलि, पीछे कालनेमि, बायीं ओर प्रसिद्ध पराक्रमवाला शाल्व तथा दाहिनी बगलमें भयङ्कर तारक नामका असुर कुशलतासे चल रहा था॥ ९—१३॥

दानवानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
सम्प्रयातानि युद्धाय देवैः सह कलिप्रिय॥ १४

श्रुत्वाऽसुराणामुद्योगं शक्रः सुरपतिः सुरान्।
उवाच याम दैत्यांस्तान् योद्धुं सबलसंयुतान्॥ १५

इत्येवमुक्त्वा वचनं सुरराट् स्यन्दनं बली।
समारुरोह भगवान् यतमातलिवाजिनम्॥ १६

समारूढे सहस्राक्षे स्यन्दनं देवतागणाः।
स्वं स्वं वाहनमारुह्य निश्चेरुर्युद्धकाङ्क्षिणः॥ १७

कलिप्रिय (नारदजी)! हजारों, दस-दस लाखों, (ही नहीं,) दस-दस करोड़ोंकी संख्यामें—असंख्य दैत्य देवताओंसे युद्ध करनेके लिये निकल पड़े। असुरोंकी (इस प्रकारकी) युद्ध करनेकी तैयारीको सुनकर देवताओंके स्वामी इन्द्रने देवताओंसे कहा—देवताओ! हम सब देवगण भी लड़ाई करनेके लिये दल-बलके साथ आये हुए दैत्योंसे लड़नेके लिये चलें। इस प्रकारकी घोषणा कर बलवान् भगवान् देवपति इन्द्र अपने सारथि मातलिद्वारा नियन्त्रित घोड़ोंवाले रथपर चढ़ गये। इन्द्रके रथपर चढ़ जानेपर देवतालोग भी अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर युद्धकी इच्छासे बाहर निकल चले॥ १४—१७॥

आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वेऽश्विनौ तथा।
विद्याधरा गुह्यकाश्च यक्षराक्षसपन्नगाः॥ १८
राजर्षयस्तथा सिद्धा नानाभूताश्च संहताः।
गजानन्ये रथानन्ये हयानन्ये समारुहन्॥ १९
विमानानि च शुभ्राणि पक्षिवाह्यानि नारद।
समारुह्याद्रवन् सर्वे यतो दैत्यबलं स्थितम्॥ २०
एतस्मिन्नन्तरे धीमान् वैनतेयः समागतः।
तस्मिन् विष्णुः सुरश्रेष्ठ अधिरुह्य समभ्यगात्॥ २१

आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, विद्याधर, गुह्यक, यक्ष, राक्षस, पन्नग, राजर्षि, सिद्ध तथा अनेक प्रकारके भूत एकत्र हो गये। कुछ हाथियोंपर, कुछ रथोंपर और कुछ घोड़ोंपर आरूढ़ हुए। नारदजी! कुछ देवगण पक्षियोंद्वारा वाहित होनेवाले उज्ज्वल विमानोंपर चढ़कर वहाँ पहुँच गये, जहाँ दैत्योंकी सेना (पहलेसे) डटी हुई थी। इसी समय बुद्धिमान् गरुड़जी आ गये। देवोंमें श्रेष्ठ विष्णु उनपर आरूढ़ होकर आ गये॥ १८—२१॥

तमागतं सहस्राक्षस्त्रैलोक्यपतिमव्ययम्।
ववन्द मूर्ध्नावनतः सह सर्वैः सुरोत्तमैः॥ २२
ततोऽग्रे देवसैन्यस्य कार्तिकेयो गदाधरः।
पालयञ्जघनं विष्णुर्याति मध्ये सहस्रदृक्॥ २३
वामं पार्श्वमवष्टभ्य जयन्तो व्रजते मुने।
दक्षिणं वरुणः पार्श्वमवष्टभ्याव्रजद् बली॥ २४
ततोऽमराणां पृतना यशस्विनी
स्कन्देन्द्रविष्ण्वम्बुपसूर्यपालिता।
नानास्त्रशस्त्रोद्यतदोःसमूहा
समाससादारिबलं महीध्रे॥ २५

फिर तो हजार आँखोंवाले इन्द्रने सभी देवताओंके साथ सिर झुकाकर उन आये हुए तीनों लोकोंके स्वामी नित्य (विष्णुभगवान्)-की वन्दना की। उसके बाद कार्तिकेय देवसेनाके अग्रभागकी, गदाधारी श्रीविष्णु सेनाके पीछे भागकी और सहस्रलोचन इन्द्र बीचभागकी रक्षा करते हुए चलने लगे। नारद मुने! जयन्त बायीं ओरकी सेनाको समेटकर चले एवं बलवान् वरुण दाहिनी बगलकी सेनाको समेटकर चले। उसके बाद नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करनेवालोंसे गठित और स्कन्द, विष्णु, वरुण एवं सूर्यसे संरक्षित देवोंकी यशस्विनी सेना शत्रुसैन्यके निकट पर्वतपर पहुँच गयी॥ २२—२५॥

उदयाद्रितटे रम्ये शुभे समशिलातले।
निर्वृक्षे पक्षिरहिते जातो देवासुरो रणः॥ २६

उदयाचलके वृक्ष एवं पक्षियोंसे रहित रमणीय शुभ एवं समतल पथरीले मैदानमें देवों और दैत्योंका

संनिपातस्तयो रौद्रः सैन्ययोरभवन्मुने।
महीधरोत्तमे पूर्वं यथा वानरहस्तिनोः॥ २७

रणरेणू रथोद्धूतः पिङ्गलो रणमूर्धनि।
संध्यानुरक्तः सदृशो मेघः खे सुरतापस॥ २८

तदासीत् तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किंचन।
श्रूयते त्वनिशं शब्दश्छिन्धि भिन्धीति सर्वतः॥ २९
ततो विशसनो रौद्रो दैत्यानां दैवतैः सह।
जातो रुधिरनिष्यन्दो रजःसंयमनात्मकः॥ ३०

शान्ते रजसि देवाद्यास्तद् दानवबलं महत्।
अभिद्रवन्ति सहिताः समं स्कन्देन धीमता॥ ३१

निजघ्नुर्दानवान् देवाः कुमारभुजपालिताः।
देवान् निजघ्नुर्दैत्याश्च मयगुप्ताः प्रहारिणः॥ ३२

ततोऽमृतरसास्वादाद् विना भूताः सुरोत्तमाः।
निर्जिताः समरे दैत्यैः समं स्कन्देन नारद॥ ३३
विनिर्जितान् सुरान् दृष्ट्वा वैनतेयध्वजोऽरिहा।
शार्ङ्गमानम्य बाणौघैर्निजघान ततस्ततः॥ ३४

ते विष्णुना हन्यमानाः पतत्त्रिभिरयोमुखैः।
दैतेयाः शरणं जग्मुः कालनेमिं महासुरम्॥ ३५

तेभ्यः स चाभयं दत्त्वा ज्ञात्वाऽजेयं च माधवम्।
विवृद्धिमगमद् ब्रह्मन् यथा व्याधिरुपेक्षितः॥ ३६

यं यं करेण स्पृशति देवं यक्षं सकिन्नरम्।
तं तमादाय चिक्षेप विस्तृते वदने बली॥ ३७
संरम्भाद् दानवेन्द्रो विमृदति दितिजैः
संयुतो देवसैन्यं
सेन्द्रं सार्कं सचन्द्रं करचरणनखै-
रस्त्रहीनोऽपि वेगात्।
चक्रैर्वैश्वानराभैस्त्ववनिगगनयो-
स्तिर्यगूर्ध्वं समन्तात्
प्राप्तेऽन्ते कालवह्नेर्जगदखिलमिदं
रूपमासीद् दिधक्षोः॥ ३८

भारी युद्ध हुआ। मुनि नारदजी! पहले समयमें जैसा युद्ध बन्दर एवं हाथियोंके बीच हुआ था, वैसा ही घमासान संग्राम उन दोनों सेनाओंमें हुआ। सुरतापस! रथसे उड़ी हुई युद्धकी पिङ्गल वर्णकी धूल युद्ध-भूमिके ऊपर आकाशमें स्थित सन्ध्याकालके लाल बादलकी भाँति लग रही थी। उस समय चल रहे घनघोर युद्धमें कुछ भी नहीं जाना जा रहा था। चारों ओर लगातार '(काटकर) टुकड़े-टुकड़े कर दो', 'विदीर्ण कर दो'के शब्द ही सुनायी पड़ रहे थे॥ २६—२९॥

उसके बाद देवोंके साथ दैत्योंकी भयङ्कर मार-काटसे उत्पन्न रक्तप्रवाहकी धारा बह चली, जो धूलको शान्त करनेवाली हो गयी—रक्त और धूल मिलकर कीच बन गयी। धूलके शान्त हो जानेपर देवता आदि बुद्धिमान् कार्तिकेयके साथ बड़े दानव-दलपर टूट पड़े। कुमार कार्तिकेयके बाहुबलसे रक्षित देवताओंने दैत्योंका हनन किया और मयके द्वारा रक्षित दैत्योंने प्रहार करते हुए देवताओंको मारा। किंतु नारदजी! उसके बाद अमृतरसका आस्वाद न लेने—अमृत न पीनेके कारण कार्तिकेयके सहित श्रेष्ठ देवता युद्धमें दैत्योंसे पराजित हो गये॥ ३०—३३॥

देवताओंको पराजित हुआ देखकर शत्रुओंका दमन करनेवाले गरुडध्वज विष्णु शार्ङ्गधनुषको चढ़ाकर चारों ओर बाणोंकी वर्षा करने लगे। श्रीविष्णुद्वारा लोहेके मुँहवाले बाणोंसे मारे जा रहे दैत्य कालनेमि नामके महान् असुरकी शरणमें गये। ब्रह्मन्! उन्हें (दैत्योंको) अभय दान देकर और माधव (विष्णु)-को अजेय जानकर भी (वह) उपेक्षित व्याधिके सदृश (घमण्डमें) बढ़ने लगा। बलवान् वह कालनेमि जिस देवता, यक्ष या किन्नरको हाथसे छू (पकड़) लेता था उसे लेकर अपने फैले मुँहमें झोंक देता था॥ ३४—३७॥

वह दैत्येन्द्र कालनेमि बिना अस्त्रका था; फिर भी दानवोंके साथ मिलकर क्रोध करके हाथ, पैर और नखके प्रहारसे ही इन्द्र, सूर्य और चन्द्रमाके साथ देवसेनाको तेजीसे मारने लगा। वह आगके समान चक्रोंसे आकाश एवं पृथ्वीपर नीचे-ऊपर चारों ओर वार करने लगा। उस समय उसका रूप प्रलय-कालमें समस्त जगत्को दग्ध करनेवाली आग (प्रलयाग्नि)-के समान था।

तं दृष्ट्वा वर्द्धमानं रिपुमतिबलिनं
देवगन्धर्वमुख्याः
सिद्धाः साध्याश्विमुख्या भयतरलदृशः
प्राद्रवन् दिक्षु सर्वे।
पोप्लूयन्तश्च दैत्या हरिममरगणै-
रर्चितं चारुमौलिं
नानाशस्त्रास्त्रपातैर्विगलितयशसं
चक्रुरुत्सिक्तदर्पाः ॥ ३९

तानित्थं प्रेक्ष्य दैत्यान् मयबलिपुरगान्
कालनेमिप्रधानान्
बाणैराकृष्य शार्ङ्गं त्वनवरतमुरो-
भेदिभिर्वज्रकल्पैः।
कोपादारक्तदृष्टिः सरथगजहयान्
दृष्टिनिर्धूतवीर्यान्
नाराचाख्यैः सुपुङ्खैर्जलद इव गिरीन्
छादयामास विष्णुः॥ ४०

तैर्बाणैश्छाद्यमाना हरिकरनुदितैः
कालदण्डप्रकाशै-
र्नाराचैरर्धचन्द्रैर्बलिमयपुरगा
भीतभीतास्त्वरन्तः।
प्रारम्भे दानवेन्द्रं शतवदनमथो
प्रेषयन् कालनेमिं
स प्रायाद् देवसैन्यप्रभुममितबलं
केशवं लोकनाथम्॥ ४१

उस बलिष्ठ शत्रुको बढ़ते देखकर देवता, गन्धर्व, सिद्ध, साध्य, अश्विनीकुमार आदि भयसे इधर-उधर (देखते हुए घबड़ाकर) चारों ओर भागने लगे। उछलते-कूदते हुए दैत्य अत्यन्त घमण्डके साथ देवोंसे पूजित सुन्दर मुकुटवाले विष्णुभगवान्के सामने जाकर अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंके आघातसे उनके (अजेयत्ववाले) यशको समाप्त करने लगे—विष्णुकी पराजय मानने लगे। इस प्रकार प्रहार कर रहे मय, बलि एवं कालनेमि आदि दैत्योंको देखकर विष्णुके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। फिर तो उन्होंने अपनी दृष्टिसे ही रथ, हाथी और घोड़ोंको शक्ति और पराक्रमसे रहित कर दिया तथा उसी तरह सुन्दर पंखोंवाले लोहेके बने अर्द्धचन्द्रके समान 'नाराच' बाणोंसे पर्वतको ढक दिया, जैसे मेघ पर्वतको ढक देते हैं। विष्णुके हाथोंसे छोड़े गये कालदण्डके समान अर्धचन्द्राकार उन लोहेके बने 'नाराच' बाणोंसे ढके हुए बलि एवं मय आदि दैत्योंने डरकर तुरंत पहले दानवेन्द्र शतमुख कालनेमिको प्रेषित किया। वह अति बलवान् देव सेनापति लोकनाथ केशवके सामने उपस्थित हुआ॥ ३८—४१॥

तं दृष्ट्वा शतशीर्षमुद्यतगदं शैलेन्द्रशृङ्गाकृतिं
विष्णुः शार्ङ्गमपास्य सत्वरमथो जग्राह चक्रं करे।
सोऽप्येनं प्रसमीक्ष्य दैत्यविटपप्रच्छेदनं मानिनं
प्रोवाचाथ विहस्य तं च सुचिरं मेघस्वनो दानवः॥ ४२

अयं स दनुपुत्रसैन्यवित्रासकृद्रिपुः
परमकोपितः स मधोर्विघातकृत्।
हिरण्यनयनान्तकः कुसुमपूजारतिः
क्व याति मम दृष्टिगोचरे निपतितः खलः॥ ४३

यद्येष संप्रति ममाहवमभ्युपैति
नूनं न याति निलयं निजमम्बुजाक्षः।
मन्मुष्टिपिष्टशिथिलाङ्गमुपात्तभस्म
संद्रक्ष्यते सुरजनो भयकातराक्षः॥ ४४

गदा उठाये हुए सौ सिरवाले पर्वतशृंगके समान कालनेमिको देखकर विष्णुने (अपने) शार्ङ्गधनुषको छोड़कर हाथमें जल्दीसे चक्रको ले लिया। इनको देखकर बहुत देरतक जोरसे हँसते हुए मेघके समान बोलनेवाले उस कालनेमि दानवने दैत्यरूपी वृक्षोंके काटनेवाले सुख-दुःखकी परवाह न करनेवाले मनस्वी हरिसे कहा—यही दानव-सेनाको डरानेवाला शत्रु, अत्यन्त क्रोधी, मधुको मारनेवाला, हिरण्याक्षका वध करनेवाला और फूलोंसे की गयी पूजासे प्रसन्न होनेवाला है। यह खल मेरी आँखोंके सामने आकर अब कहाँ जा सकता है। यह कमलनयन यदि इस समय मेरे साथ युद्ध करे तो अपने घर नहीं जा सकेगा और तब देवतालोग मेरी मुट्ठीमें पिसनेसे शिथिल अङ्गोंवाले इस (विष्णु)-को भयसे कातर नेत्रोंसे धूलिधूसरित हुआ देखेंगे।

इत्येवमुक्त्वा मधुसूदनं वै
स कालनेमिः स्फुरिताधरोष्ठः।
गदां खगेन्द्रोपरि जातकोपो
मुमोच शैले कुलिशं यथेन्द्रः॥ ४५
तामापतन्तीं प्रसमीक्ष्य विष्णु-
र्घोरां गदां दानवबाहुमुक्ताम्।
चक्रेण चिच्छेद सुदुर्गतस्य
मनोरथं पूर्वकृतेव कर्म॥ ४६
गदां छित्त्वा दानवाभ्याशमेत्य
भुजौ पीनौ सम्प्रचिच्छेद वेगात्।
भुजाभ्यां कृत्ताभ्यां दग्धशैलप्रकाशः
संदृश्येताप्यपरः कालनेमिः॥ ४७
ततोऽस्य माधवः कोपाच्छिरश्चक्रेण भूतले।
छित्त्वा निपातयामास पक्वं तालफलं यथा॥ ४८
तथा विबाहुर्विशिरा मुण्डतालो यथा वने।
तस्थौ मेरुरिवाकम्प्यः कबन्धः क्ष्माधरेश्वरः॥ ४९
तं वैनतेयोऽप्युरसा खगोत्तमो
निपातयामास मुने धरण्याम्।
यथाऽम्बराद् बाहुशिरः प्रणष्ट-
बलं महेन्द्रः कुलिशेन भूम्याम्॥ ५०
तस्मिन् हते दानवसैन्यपाले
सम्पीड्यमानास्त्रिदशैस्तु दैत्याः।
विमुक्तशस्त्रालकचर्मवस्त्राः
सम्प्राद्रवन् बाणमृतेऽसुरेन्द्राः॥ ५१

मधुसूदन भगवान् विष्णुसे ऐसा कहकर क्रोधसे अधरोष्ठको फड़काते हुए कालनेमिने, गरुड़पर अपनी गदा इस प्रकार फेंकी जैसे इन्द्र पर्वतपर वज्र फेंकते हैं। भगवान् विष्णुने दानवके हाथसे छूटी हुई उस भयदायिनी गदाको आते देखकर चक्रसे उसे ऐसे नष्ट कर दिया जैसे पूर्वकृत कर्म भाग्यहीन मनुष्यके मनोरथको नष्ट कर देता है॥ ४२—४६॥

गदाको काटकर विष्णुभगवान् दानवके निकट चले गये और उन्होंने शीघ्रतासे उसकी मोटी-मोटी बाहुओंको काट डाला। भुजाओंके कट जानेपर कालनेमि दूसरे दग्ध पर्वतके समान दिखलायी पड़ने लगा। उसके बाद माधव (लक्ष्मीपति)-ने क्रोधपूर्वक चक्रसे उसके सिरको काटकर पके हुए ताड़के फलके समान धरतीपर गिरा दिया। वनमें ठूँठे तरकुलके समान बाहुओं एवं सिरसे हीन कबन्ध अचल पर्वतराज मेरुके समान खड़ा रहा। मुने! जैसे महेन्द्रने वज्रसे बाँह और सिररहित बलको पृथिवीपर गिराया था, उसी प्रकार पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ने अपनी छातीसे धक्का देकर उस (कबन्ध)-को पृथ्वीपर गिरा दिया। उस दानव-सेनापति (कालनेमि)-के मारे जानेपर बाणासुरके सिवा देवोंसे अत्यन्त पीड़ित सभी दैत्य शस्त्र, पट्टा, ढाल और वस्त्रको छोड़कर भाग गये॥ ४७—५१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

बलि-बाणका देवताओंसे युद्ध, बलिकी विजय, प्रह्लादका स्वर्गमें आना, बलिको प्रह्लादका उपदेश

पुलस्त्य उवाच

संनिवृत्ते ततो बाणे दानवाः सत्वरं पुनः।
निवृत्ता देवतानां च सशस्त्रा युद्धलालसाः॥ १

विष्णुरप्यमितौजास्तं ज्ञात्वाऽजेयं बलेः सुतम्।
प्राहामन्त्र्य सुरान् सर्वान् युध्यध्वं विगतज्वराः॥ २

पुलस्त्यजी बोले—उसके बाद बाणासुरके लौट आनेपर फिर दानव तुरंत शस्त्र लेकर देवताओंसे युद्ध करनेकी इच्छासे लौट पड़े। अत्यधिक तेजस्वी विष्णुने बलिके पुत्र बाणको अजेय जान करके देवताओंको बुलाकर कहा—आपलोग निर्भय होकर (सतर्कतासे)

विष्णुनाऽथ समादिष्टा देवाः शक्रपुरोगमाः।
युयुधुर्दानवैः सार्धं विष्णुस्त्वन्तरधीयत॥ ३

माधवं गतमाज्ञाय शुक्रो बलिमुवाच ह।
गोविन्देन सुरास्त्यक्तास्त्वं जयस्वाधुना बले॥ ४
स पुरोहितवाक्येन प्रीतो याते जनार्दने।
गदामादाय तेजस्वी देवसैन्यमभिद्रुतः॥ ५
बाणो बाहुसहस्रेण गृह्य प्रहरणान्यथ।
देवसैन्यमभिद्रुत्य निजघान सहस्रशः॥ ६
मयोऽपि मायामास्थाय तैस्तै रूपान्तरैर्मुने।
योधयामास बलवान् सुराणां च वरूथिनीम्॥ ७
विद्युज्जिह्वः पारिभद्रो वृषपर्वा शतेक्षणः।
विपाको विक्षरः सैन्यं तेऽपि देवानुपाद्रवन्॥ ८
ते हन्यमाना दितिजैर्देवाः शक्रपुरोगमाः।
गते जनार्दने देवे प्रायशो विमुखाऽभवन्॥ ९
तान् प्रभग्नान् सुरगणान् बलिबाणपुरोगमाः।
पृष्ठतश्चाद्रवन् सर्वे त्रैलोक्यविजिगीषवः॥ १०
सम्बाध्यमाना दैतेयैर्देवाः सेन्द्रा भयातुराः।
त्रिविष्टपं परित्यज्य ब्रह्मलोकमुपागताः॥ ११
ब्रह्मलोकं गतेष्वित्थं सेन्द्रेष्वपि सुरेषु वै।
स्वर्गभोक्ता बलिर्जातः सपुत्रभ्रातृबान्धवः॥ १२
शक्रोऽभूद् भगवान् ब्रह्मन् बलिबाणो यमोऽभवत्।
वरुणोऽभून्मयः सोमो राहुर्ह्लादो हुताशनः॥ १३

स्वर्भानुरभवत् सूर्यः शुक्रश्चासीद् बृहस्पतिः।
येऽन्येऽप्यधिकृता देवास्तेषु जाताः सुरारयः॥ १४

पञ्चमस्य कलेरादौ द्वापरान्ते सुदारुणः।
देवासुरोऽभूत् संग्रामो यत्र शक्रोऽप्यभूद् बलिः॥ १५

पातालाः सप्त तस्यासन् वशे लोकत्रयं तथा।
भूर्भुवःस्वरिति ख्यातं दशलोकाधिपो बलिः॥ १६
स्वर्गे स्वयं निवसति भुञ्जन् भोगान् सुदुर्लभान्।
तत्रोपासन्त गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः॥ १७

युद्ध कीजिये। विष्णुसे आदेश पाकर इन्द्र आदि देवता दानवोंके साथ युद्ध करने लगे। किंतु विष्णु अदृश्य हो गये। विष्णुको वहाँसे चला गया जानकर शुक्रने बलिसे कहा—बले! विष्णुने देवताओंको अकेले युद्धके लिये छोड़ दिया है। अब तुम जय प्राप्त करो॥ १—४॥

दुष्टजनोंको ताड़ना देनेवाले भगवान् विष्णुके चले जानेपर तेजस्वी बलि पुरोहित (शुक्राचार्य)-के वाक्यसे हर्षित हो गदा लेकर देवसेनाकी ओर दौड़ा। बाणासुरने हजार हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लेकर देवसेनापर चढ़ाई कर दी और हजारोंका वध कर दिया। मुने! बलवान् मय दानव भी मायाके द्वारा विभिन्न रूपोंको धारणकर अमरोंकी सेनाके साथ युद्ध करने लगा। विद्युज्जिह्व, पारिभद्र, वृषपर्वा, शतेक्षण, विपाक तथा विक्षर भी देवताओंकी सेनापर टूट पड़े॥ ५—८॥

भगवान् विष्णुके चले जानेपर इन्द्र आदि देवता दैत्योंके द्वारा मारे जानेपर युद्धसे पराङ्मुख हो गये। तीनों लोकोंपर विजय पानेकी इच्छावाले बलि एवं बाण आदि सभी (दैत्य) भागते हुए देवताओंके पीछे दौड़ पड़े। दैत्योंके द्वारा पीड़ित इन्द्र आदि देवता डरकर और स्वर्गको छोड़कर ब्रह्मलोक चले गये। फिर तो इन्द्रके साथ ही देवताओंके ब्रह्मलोक चले जानेपर बलि अपने पुत्र, भाई और बान्धवोंके साथ स्वर्गका भोक्ता हो गया॥ ९—१२॥

ब्रह्मन्! भाग्यशाली बलि इन्द्र हुआ और बाण यम बना। मय दानव वरुण बन गया, राहु चन्द्र बना और ह्लाद अग्नि बन गया। केतु सूर्य बना और शुक्राचार्य बृहस्पति बन गये। इसी प्रकार अन्य विभिन्न अधिकार-प्राप्त देवताओंके पदोंपर असुरोंने अधिकार जमा लिया। पाँचवें कलियुगके प्रारम्भ और द्वापरयुगके आखिरी भागमें देवताओं और दैत्योंका भयङ्कर युद्ध हुआ, जब कि बलि इन्द्र बन गया। सातों पाताल और भूः, भुवः, स्वः नामके प्रसिद्ध तीनों लोक उसके वशमें हो गये थे। इस प्रकार बलि दस लोकोंका शासक बन गया था॥ १३—१६॥

इन्द्र बना हुआ बलि अत्यन्त दुर्लभ भोगोंको स्वयं भोगता हुआ स्वर्गमें रहने लगा। वहाँ विश्वावसु आदि

तिलोत्तमाद्याप्सरसो नृत्यन्ति सुरतापस।
वादयन्ति च वाद्यानि यक्षविद्याधरादयः॥ १८

विविधानपि भोगांश्च भुञ्जन् दैत्येश्वरो बलिः।
सस्मार मनसा ब्रह्मन् प्रह्लादं स्वपितामहम्॥ १९

संस्मृतो नमृणा चासौ महाभागवतोऽसुरः।
समभ्यागात् त्वरायुक्तः पातालात् स्वर्गमव्ययम्॥ २०
तमागतं समीक्ष्यैव त्यक्त्वा सिंहासनं बलिः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ववन्दे चरणावुभौ॥ २१

पादयोः पतितं वीरं प्रह्लादस्त्वरितो बलिम्।
समुत्थाप्य परिष्वज्य विवेश परमासने॥ २२

तं बलिः प्राह भोस्तात त्वत्प्रसादात् सुरा मया।
निर्जिताः शक्रराज्यं च हृतं वीर्यबलान्मया॥ २३

तदिदं तात मद्वीर्यविनिर्जितसुरोत्तमम्।
त्रैलोक्यराज्यं भुङ्क्ष्व त्वं मयि भृत्ये पुरःस्थिते॥ २४
एतावता पुण्ययुतः स्यामहं तात यत् स्वयम्।
त्वदङ्घ्रिपूजाभिरतस्त्वदुच्छिष्टान्नभोजनः ॥ २५

न सा पालयतो राज्यं धृतिर्भवति सत्तम।
या धृतिर्गुरुशुश्रूषां कुर्वतो जायते विभो॥ २६

ततस्तदुक्तं बलिना वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तम।
प्रह्लादः प्राह वचनं धर्मकामार्थसाधनम्॥ २७

मया कृतं राज्यमकण्टकं पुरा
प्रशासिता भूः सुहृदोऽनुपूजिताः।
दत्तं यथेष्टं जनितास्तथात्मजाः
स्थितो बले सम्प्रति योगसाधकः॥ २८
गृहीतं पुत्र विधिवन्मया भूयोऽर्पितं तव।
एवं भव गुरूणां त्वं सदा शुश्रूषणे रतः॥ २९

इत्येवमुक्त्वा वचनं करे त्वादाय दक्षिणे।
शाक्रे सिंहासने ब्रह्मन् बलिं तूर्णं न्यवेशयत्॥ ३०

सोपविष्टो महेन्द्रस्य सर्वरत्नमये शुभे।
सिंहासने दैत्यपतिः शुशुभे मघवानिव॥ ३१

गन्धर्व उसकी सेवा करने लगे। देवर्षे! तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ (उसे प्रसन्न करनेके लिये) नृत्य किया करती थीं और यक्ष तथा विद्याधर आदि बाजे बजाते थे। ब्रह्मन्! विविध भोगोंका भोग करते हुए दैत्येश्वर बलिने अपने पितामह प्रह्लादका मनसे स्मरण किया। पौत्र (बलि)-के स्मरण करते ही वे महान् भागवत (विष्णुके परम भक्त) असुर प्रह्लादजी पातालसे अक्षय स्वर्गलोकमें चले आये॥ १७—२०॥

उन्हें आया हुआ देखते ही बलिने सिंहासन छोड़कर और हाथ जोड़कर उनके चरणोंकी वन्दना की। प्रह्लाद चरणोंमें पड़े हुए वीर बलिको जल्दीसे उठाकर और गले लगाकर उचित सुन्दर आसनपर बैठ गये। बलिने उनसे कहा—अये तात! मैंने आपके पुण्य-प्रसादसे (प्राप्त) पराक्रम और बलसे देवताओंको जीत लिया और इन्द्रके राज्यको छीन लिया है। तात! आप मेरे पराक्रमसे जीते गये देवोंवाले इन उत्तम तीनों लोकोंके राज्यका भोग करें और मैं आपके सामने नौकर बनकर रहूँ॥ २१—२४॥

तात! इस प्रकार आपके चरणोंकी पूजासे और आपके जूठे अन्नका भोजन करनेसे मैं पुण्यवान् हो जाऊँगा। सत्तम! विभो! राज्यका पालन करनेवाले शासकमें वह धीरता नहीं होती, जो धीरता गुरुकी सेवा करनेवालोंमें होती है। द्विजोत्तम! उसके बाद प्रह्लादने बलिके कहे वचनको सुनकर धर्म, अर्थ और कामका साधक वचन कहा। बलिराज! मैंने पहले शत्रुओंकी विघ्न-बाधासे रहित राज्य किया है। (मैं) पृथ्वीका शासन और मित्रोंका सत्कार कर चुका हूँ, इच्छानुसार दान दे चुका हूँ। (गृहस्थ-धर्मके नाते) मैंने पुत्रोंको भी उत्पन्न किया है। किंतु (इन सबसे शान्ति न पाकर) इस समय मैं योगसाधक बन गया हूँ॥ २५—२८॥

पुत्र! मैंने तुम्हारे दिये (राज्य)-को विधिपूर्वक ग्रहणकर पुनः तुमको दे दिया। तुम गुरुओंकी सेवामें इसी प्रकार सदा लगे रहो। (पुलस्त्यजी कहते हैं—) ब्रह्मन्! ऐसा वचन कहकर (प्रह्लादने बलिका) दाहिना हाथ पकड़कर उसे तुरंत इन्द्रके सिंहासनपर आसीन करा दिया। महेन्द्रके सभी रत्नोंसे बने शुभ सिंहासनपर बैठा हुआ वह दैत्यपति बलि इन्द्रके समान शोभित

तत्रोपविष्टश्चैवासौ कृताञ्जलिपुटो नतः।
प्रह्लादं प्राह वचनं मेघगम्भीरया गिरा॥ ३२

यन्मया तात कर्तव्यं त्रैलोक्यं परिरक्षता।
धर्मार्थकाममोक्षेभ्यस्तदादिशतु मे भवान्॥ ३३

तद्वाक्यसमकालं च शुक्रः प्रह्लादमब्रवीत्।
यद्युक्तं तन्महाबाहो वदस्वाद्योत्तरं वचः॥ ३४

वचनं बलिशुक्राभ्यां श्रुत्वा भागवतोऽसुरः।
प्राह धर्मार्थसंयुक्तं प्रह्लादो वाक्यमुत्तमम्॥ ३५

यदायत्यां क्षमं राजन् यद्धितं भुवनस्य च।
अविरोधेन धर्मस्य अर्थस्योपार्जनं च यत्॥ ३६

सर्वसत्त्वानुगमनं कामवर्गफलं च यत्।
परत्रेह च यच्छ्रेयः पुत्र तत्कर्म आचर॥ ३७

यथा श्लाघ्यं प्रयास्यद्य यथा कीर्तिर्भवेत्तव।
यथा नायशसो योगस्तथा कुरु महामते॥ ३८

एतदर्थं श्रियं दीप्तां काङ्क्षन्ते पुरुषोत्तमाः।
येनैतानि गृहेऽस्माकं निवसन्ति सुनिर्वृताः॥ ३९
कुलजो व्यसने मग्नः सखा चार्थबहिः कृतः।
वृद्धो ज्ञातिर्गुणी विप्रः कीर्तिश्च यशसा सह॥ ४०
तस्माद् यथैते निवसन्ति पुत्र
राज्यस्थितस्येह कुलोद्गताद्याः।
तथा यतस्वामलसत्त्वचेष्ट
यथा यशस्वी भविताऽसि लोके॥ ४१
भूम्यां सदा ब्राह्मणभूषितायां
क्षत्रान्वितायां दृढवापितायाम्।
शुश्रूषणासक्तसमुद्भवाया-
मृद्धिं प्रयान्तीह नराधिपेन्द्राः॥ ४२
तस्माद् द्विजाग्र्याः श्रुतिशास्त्रयुक्ता
नराधिपांस्ते प्रतियाजयन्तु।
दिव्यैर्यजन्तु क्रतुभिर्द्विजेन्द्रा
यज्ञाग्निधूमेन नृपस्य शान्तिः॥ ४३
तपोऽध्ययनसम्पन्ना याजनाध्यापने रताः।
सन्तु विप्रा बले पूज्यास्त्वत्तोऽनुज्ञामवाप्य हि॥ ४४

हुआ। उसपर बैठनेके बाद उसने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर मेघके गर्जनके समान गम्भीर वाणीमें प्रह्लादसे कहा॥ २९—३२॥

तात! तीनों लोकोंकी रक्षा करते हुए जो मेरे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—(इन चारों पुरुषार्थों)-के लिये करणीय कार्य है, उसके लिये आप मुझे आदेश दें। उस (बलि)-के वाक्यके साथ ही शुक्रने (भी) प्रह्लादसे कहा—महाबाहो! जो उचित हो वह उत्तर दीजिये। विष्णुके भक्त प्रह्लादने बलि और शुक्रकी बात सुनकर धर्म और अर्थसे युक्त श्रेष्ठ वचन कहा—पुत्र! भविष्यके लिये जो उपयुक्त हो, संसारके लिये जो हितकारी हो और धर्मके अनुकूल जो अर्थका उपार्जन और सभी प्राणियोंके अनुकूल जो कामवर्गका फल है एवं इस लोक और परलोकमें जो कल्याणकारी कर्म हो उसका आचरण करो। महामते! तुम जैसे प्रशंसनीय बन सको तथा जैसे तुम्हें यश प्राप्त हो एवं अकीर्ति न हो वैसे ही कर्तव्यको किया करो॥ ३३—३८॥

उत्तम पुरुष उत्कृष्ट लक्ष्मीकी अभिलाषा इसीलिये करते हैं कि विपत्तिमें पड़ा हुआ अच्छे कुलका व्यक्ति, धनहीन मित्र, वृद्ध, ज्ञाति, गुणी ब्राह्मण एवं यशोदायिनी कीर्ति उनके गृहमें शान्तिपूर्वक निवास कर सकें। अतः हे पवित्र विचार एवं चेष्टावाले पुत्र! राज्यके स्थिर हो जानेपर जैसे (उपर्युक्त) कुलोत्पन्नादि (तुम्हारे गृहमें) रह सकें एवं जैसे तुम लोकमें यशस्वी हो सको वैसा ही प्रयत्न करो। पृथ्वीके सदा ब्राह्मणोंसे सुशोभित होने, क्षत्रियोंसे सनाथ होने, (वैश्योंद्वारा) भलीभाँति (जोते)-बोये जाने तथा सेवारत (शूद्रों)-से सम्पन्न होनेपर अच्छे राजाओंको समृद्धि प्राप्त होती है॥ ३९—४२॥

इसलिये (तुम्हारे शासनमें) वेद-शास्त्रसे सम्पन्न उत्तम ब्राह्मण राजाओंसे यज्ञ करवावें एवं श्रेष्ठ द्विजगण दिव्य यज्ञ किया करें। यज्ञकी अग्निके धूएँसे राजाको शान्ति मिलती है। बले! तपस्या और वेदाध्ययनसे संयुक्त यजन और अध्यापनमें लगे रहनेवाले ब्राह्मण तुम्हारी

स्वाध्याययज्ञनिरता दातारः शस्त्रजीविनः।
क्षत्रियाः सन्तु दैत्येन्द्र प्रजापालनधर्मिणः॥ ४५

यज्ञाध्ययनसम्पन्ना दातारः कृषिकारिणः।
पाशुपाल्यं प्रकुर्वन्तु वैश्या विपणिजीविनः॥ ४६
ब्राह्मणक्षत्रियविशां सदा शुश्रूषणे रताः।
शूद्राः सन्त्वसुरश्रेष्ठ तवाज्ञाकारिणः सदा॥ ४७

यदा वर्णाः स्वधर्मस्था भवन्ति दितिजेश्वर।
धर्मवृद्धिस्तदा स्याद्वै धर्मवृद्धौ नृपोदयः॥ ४८

तस्माद् वर्णाः स्वधर्मस्थास्त्वया कार्याः सदा बले।
तद्वृद्धौ भवतो वृद्धिस्तद्धानौ हानिरुच्यते॥ ४९

इत्थं वचः श्राव्य महासुरेन्द्रो
बलिं महात्मा स बभूव तूष्णीम्।
ततो यदाज्ञापयसे करिष्ये
इत्थं बलिः प्राह वचो महर्षे॥ ५०

अनुमति पाकर पूजित हों। दैत्येन्द्र! क्षत्रिय स्वाध्याय एवं यज्ञमें निरत, दान देनेवाले, शस्त्र-जीवी तथा प्रजा-पालन करनेवाले हों। वैश्यगण यज्ञाध्ययनसे सम्पन्न, दाता, कृषिकर्त्ता एवं वाणिज्यजीवी हों तथा पशुपालनका कर्म करें॥ ४३—४६॥

असुरश्रेष्ठ! शूद्रगण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवामें सदा लगे रहें और तुम्हारे आदेशका सदा पालन करें। दितिजेश्वर! जब सभी वर्णके लोग अपने-अपने धर्ममें स्थित रहते हैं तब निश्चय ही धर्मकी वृद्धि होती है और धर्मकी वृद्धि होनेपर राजाकी उन्नति होती है। इसलिये बले! तुम सभी वर्णोंको उनके धर्ममें सदा लगाये रहो। उसकी (स्वधर्मकी) वृद्धिसे राजाकी वृद्धि होती है। उसकी हानिसे हानि कही गयी है। महासुरेन्द्र महात्मा प्रह्लाद बलिसे ऐसा कहकर मौन हो गये। (पुलस्त्यजी कहते हैं—) महर्षे! उसके बाद बलिने इस प्रकार कहा—आपने जो आदेश दिया, उसीके अनुसार मैं कार्य करूँगा॥ ४७—५०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७४॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

त्रैलोक्य-लक्ष्मीका बलिके यहाँ आना, श्वेत लक्ष्मी आदिकी उत्पत्ति, निधियोंका वर्णन, जयश्रीका बलिमें मिलना और बलिकी समृद्धिका वर्णन

पुलस्त्य उवाच

ततो गतेषु देवेषु ब्रह्मलोकं प्रति द्विज।
त्रैलोक्यं पालयामास बलिर्धर्मान्वितः सदा॥ १

कलिस्तदा धर्मयुतं जगद् दृष्ट्वा कृते यथा।
ब्रह्माणं शरणं भेजे स्वभावस्य निषेवणात्॥ २

गत्वा स ददृशे देवं सेन्द्रैर्देवैः समन्वितम्।
स्वदीप्त्या द्योतयन्तं च स्वदेशं ससुरासुरम्॥ ३

प्रणिपत्य तमाहाथ तिष्यो ब्रह्माणमीश्वरम्।
मम स्वभावो बलिना नाशितो देवसत्तम॥ ४

पुलस्त्यजी बोले—द्विज! देवोंके ब्रह्मलोक चले जानेपर बलि सदा धर्मसे युक्त (धार्मिक) रहते हुए तीनों लोकोंका पालन करने लगा। उस समय संसारको सत्ययुगकी भाँति धर्मसे सम्पन्न हुआ देखकर कलियुग अपने कर्त्तव्यका सेवन करनेके हेतु ब्रह्माकी शरणमें गया। वहाँ जाकर उसने ब्रह्माको इन्द्र आदि देवोंके साथ देखा। वे अपनी प्रभासे सुरों और असुरोंसे युक्त अपने लोकको प्रदीपित कर रहे थे। उन ईश्वर ब्रह्माको प्रणामकर कलिने उनसे कहा—देवश्रेष्ठ! बलिने मेरे स्वाभाविक कर्मको नष्ट कर दिया है॥ १—४॥

तं प्राह भगवान् योगी स्वभावं जगतोऽपि हि।
न केवलं हि भवतो हृतं तेन बलीयसा॥ ५
पश्यस्व तिष्य देवेन्द्रं वरुणं च समारुतम्।
भास्करोऽपि हि दीनत्वं प्रयातो हि बलाद् बलेः॥ ६
न तस्य कश्चित् त्रैलोक्ये प्रतिषेद्धाऽस्ति कर्मणः।
ऋते सहस्रं शिरसं हरिं दशशताङ्घ्रिकम्॥ ७
स भूमिं च तथा नाकं राज्यं लक्ष्मीं यशोऽव्ययः।
समाहरिष्यति बलेः कर्तुः सद्धर्मगोचरम्॥ ८

योगी भगवान् ब्रह्माने उससे कहा—केवल तुम्हारा ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण लोकका स्वभाव उस बलशालीने हरण कर लिया है। कले! मरुत्के साथ वरुण और देवेन्द्रको देखो। बलिके पराक्रमसे सूर्य भी निस्तेज-से हो गये हैं। सहस्रशीर्षा तथा सहस्रपाद् (विष्णु)-के सिवा तीनों लोकोंमें उसके कर्मको बंद करनेवाला कोई नहीं दीखता है। वे अविनाशी बलिद्वारा किये गये सद्धर्मके हेतु मिली हुई उसकी भूमि, स्वर्ग, राज्य, लक्ष्मी एवं यशका अपहरण करेंगे॥ ५—८॥

इत्येवमुक्तो देवेन ब्रह्मणा कलिरव्ययः।
दीनान् दृष्ट्वा स शक्रादीन् विभीतकवनं गतः॥ ९
कृतः प्रावर्त्तत तदा कलेर्नाशाज्जगत्त्रये।
धर्मोऽभवच्चतुष्पादश्चातुर्वर्ण्येऽपि नारद॥ १०
ततोऽहिंसा च सत्यं च शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दया दानं त्वानृशंस्यं शुश्रूषा यज्ञकर्म च॥ ११
एतानि सर्वजगतः परिव्याप्य स्थितानि हि।
बलिना बलवान् ब्रह्मन् तिष्योऽपि हि कृतः कृतः॥ १२

भगवान् ब्रह्माके इस प्रकार कहनेपर अव्यय कलि, इन्द्र आदि देवताओंको चिन्तित हुआ देखकर विभीतक वनमें चला गया। नारदजी! कलिके अदृश्य हो जानेसे तीनों लोकोंमें सत्ययुग प्रवर्तित हो गया। चारों वर्णोंमें चारों चरणोंसे धर्म व्याप्त हो गया। तपस्या, अहिंसा, सत्य, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, दया, दान, मृदुता, सेवा और यज्ञकार्य—ये सभी समस्त जगत्में छा गये। ब्रह्मन्! बलिने बलशाली कलिको भी सत्ययुग बना दिया॥ ९—१२॥

स्वधर्मस्थायिनो वर्णा ह्याश्रमांश्चाविशन् द्विजाः।
प्रजापालनधर्मस्थाः सदैव मनुजर्षभाः॥ १३
धर्मोत्तरे वर्तमाने ब्रह्मन्नस्मिञ्जगत्त्रये।
त्रैलोक्यलक्ष्मीर्वरदा त्वायाता दानवेश्वरम्॥ १४
तामागतां निरीक्ष्यैव सहस्राक्षश्रियं बलिः।
पप्रच्छ काऽसि मां ब्रूहि केनास्यर्थेन चागता॥ १५
सा तद्वचनमाकर्ण्य प्राह श्रीः पद्ममालिनी।
बले शृणुष्व याऽस्मि त्वामायाता महिषी बलात्॥ १६

सभी वर्ण अपने-अपने धर्ममें स्थित हो गये। द्विजगण अपने-अपने आश्रमोंका पालन करने लगे तथा राजा प्रजापालनरूपी धर्मका आचरण करने लगे। ब्रह्मन्! इन तीनों लोकोंके धर्म-परायण होनेपर वरदायिनी त्रैलोक्यलक्ष्मी दानवराज बलिके पास आयीं। इन्द्रकी लक्ष्मीको उपस्थित हुई देखकर बलिने पूछा—मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो और किस उद्देश्यसे आयी हो। कमलकी मालासे अलंकृत लक्ष्मीने उसकी बात सुनकर कहा—बले! मैं हठात् तुम्हारे पास आयी हूँ; मैं जो (स्त्री) हूँ उसे सुनो—॥ १३—१६॥

अप्रमेयबलो देवो योऽसौ चक्रगदाधरः।
तेन त्यक्तस्तु मघवा ततोऽहं त्वामिहागता॥ १७
स निर्ममे युवतयश्चतस्रो रूपसंयुताः।
श्वेताम्बरधरा चैव श्वेतस्रगनुलेपना॥ १८
श्वेतवृन्दारकारूढा सत्त्वाढ्या श्वेतविग्रहा।
रक्ताम्बरधरा चान्या रक्तस्रगनुलेपना॥ १९

अमित शक्तिशाली चक्र और गदाको धारण करनेवाले देव विष्णुने इन्द्रको छोड़ दिया है। अतः मैं यहाँ तुम्हारे पास आयी हूँ। उन्होंने (विष्णुने) रूपसे सम्पन्न चार युवतियोंकी सृष्टि की। (पहली युवती) सत्त्वप्रधाना, श्वेतवर्णकी शरीरवाली, श्वेतवर्णका वस्त्र धारण करनेवाली, श्वेतमाल्य और अनुलेपनसे युक्त एवं श्वेत गजपर आरूढ़ थी। (दूसरी युवती) रजोगुणप्रधाना, रक्तवर्णकी शरीरवाली, रक्तवर्णके वस्त्रको धारण करनेवाली, रक्तवर्णके माल्य और अनुलेपनसे युक्त

रक्तवाजिसमारूढा रक्ताङ्गी राजसी हि सा।
पीताम्बरा पीतवर्णा पीतमाल्यानुलेपना॥ २०

सौवर्णस्यन्दनचरा तामसं गुणमाश्रिता।
नीलाम्बरा नीलमाल्या नीलगन्धानुलेपना॥ २१

नीलवृषसमारूढा त्रिगुणा सा प्रकीर्तिता।
या सा श्वेताम्बरा श्वेता सत्त्वाढ्या कुञ्जरस्थिता॥ २२

सा ब्रह्माणं समायाता चन्द्रं चन्द्रानुगानपि।
या रक्ता रक्तवसना वाजिस्था रजसान्विता॥ २३

तां प्रादाद् देवराजाय मनवे तत्समेषु च।
पीताम्बरा या सुभगा रथस्था कनकप्रभा॥ २४

प्रजापतिभ्यस्तां प्रादाच्छुक्राय च विशःसु च।
नीलवस्त्राऽलिसदृशी या चतुर्थी वृषस्थिता॥ २५

सा दानवान् नैर्ऋतांश्च शूद्रान् विद्याधरानपि।
विप्राद्याः श्वेतरूपां तां कथयन्ति सरस्वतीम्॥ २६
स्तुवन्ति ब्रह्मणा सार्धं मखे मन्त्रादिभिः सदा।
क्षत्रिया रक्तवर्णां ता जयश्रीमिति शंसिरे॥ २७
सा चेन्द्रेणासुरश्रेष्ठ मनुना च यशस्विनी।
वैश्यास्तां पीतवसनां कनकाङ्गीं सदैव हि॥ २८
स्तुवन्ति लक्ष्मीमित्येवं प्रजापालास्तथैव हि।
शूद्रास्तां नीलवर्णाङ्गीं स्तुवन्ति च सुभक्तितः॥ २९
श्रिया देवीति नाम्ना तां समं दैत्यैश्च राक्षसैः।
एवं विभक्तास्ता नार्यस्तेन देवेन चक्रिणा॥ ३०
एतासां च स्वरूपस्थास्तिष्ठन्ति निधयोऽव्ययाः।
इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गास्तथोक्तयः॥ ३१
चतुःषष्टिकलाः श्वेता महापद्मो निधिः स्थितः।
मुक्तासुवर्णरजतं रथाश्वगजभूषणम्॥ ३२
शस्त्रास्त्रादिकवस्त्राणि रक्ता पद्मो निधिः स्मृतः।
गोमहिष्यः खरोष्ट्रं च सुवर्णाम्बरभूमयः॥ ३३
ओषध्यः पशवः पीता महानीलो निधिः स्थितः।
सर्वासामपि जातीनां जातिरेका प्रतिष्ठिता॥ ३४

तथा रक्तवर्णके अश्वपर आरूढ़ थी। (तीसरी युवती) तमोगुण-प्रधाना, पीतवर्णके शरीरवाली, पीतवर्णका वस्त्र धारण करनेवाली, पीतवर्णकी माला और अनुलेपनसे युक्त तथा सुवर्णके बने रथपर आरूढ़ थी। (चौथी युवती) त्रिगुण-प्रधाना, नील शरीरवाली, नीलेवर्णका वस्त्र धारण करनेवाली एवं नीले वर्णकी माला, चन्दन और अनुलेपनसे युक्त तथा नील वर्णके वृषपर आरूढ़ थी। सत्त्वप्रधाना, श्वेतवर्णकी शरीरवाली, श्वेतवस्त्र धारण करनेवाली हाथीपर आरूढ़ (युवती) ब्रह्मा, चन्द्रमा एवं चन्द्रमाके अनुयायियोंके पास चली गयी। रजोगुणसे युक्त, रक्तवर्णकी शरीरवाली, रक्तवस्त्र धारण करनेवाली एवं घोड़ेपर आरूढ़ युवतीको (उन्होंने) इन्द्र, मनु तथा उनके समानवाले लोगोंको प्रदान किया। कनकवर्णकी शरीरवाली, पीतवर्णके वस्त्र धारण करनेवाली, सौभाग्यवती, रथपर आरूढ़ा युवतीको (उन्होंने) प्रजापतियों, शुक्र एवं वैश्योंको दिया। नीलवर्णके वस्त्रको धारण करनेवाली, भ्रमरके समान, वृषपर स्थित चौथी (युवती) दानवों, नैर्ऋतों, शूद्रों एवं विद्याधरोंके पास चली गयी। उस श्वेतरूपाको विप्र आदि सरस्वती कहते हैं॥ १७—२६॥

यज्ञमें वे ब्रह्माके सहित उसका मन्त्रादिसे सदा स्तुति करते हैं। क्षत्रियजन उस रक्तवर्णाको जयश्री कहते हैं। असुरश्रेष्ठ! वह इन्द्र तथा मनुके साथ यशोमती हुई। वैश्य तथा प्रजापतिगण उस पीतवसना कनकाङ्गीकी स्तुति सदा लक्ष्मीके नामसे करते हैं। दैत्यों एवं राक्षसोंके साथ शूद्रगण श्रीदेवीके नामसे भक्तिपूर्वक उस नीलवर्णाङ्गीकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार उन चक्र धारण करनेवाले देवने उन नारियोंका विभाजन किया॥ २७—३०॥

अक्षय निधियाँ इनके स्वरूपमें स्थित हैं। इतिहास, पुराण, साङ्ग वेद, स्मृतियाँ, चौंसठ कलाएँ तथा महापद्म निधि श्वेताङ्गीके अन्तर्गत हैं। मुक्ता, सुवर्ण, रजत, रथ, अश्व, गज, भूषण, शस्त्र, अस्त्र एवं वस्त्रस्वरूप पद्मनिधि रक्ताङ्गीके अन्तर्गत हैं। गौ, भैंस, गर्दभ, उष्ट्र, सुवर्ण, वस्त्र, भूमि, ओषधियाँ एवं पशुस्वरूप महानील निधि पीताङ्गीमें स्थित हैं। अन्य सभी जातियोंको अपनेमें समाविष्ट करनेवाली सारी जातियोंमें सर्वश्रेष्ठ जाति

अन्येषामपि संहर्त्री नीला शङ्खो निधिः स्थितः।
एतासु संस्थितानां च यानि रूपाणि दानव।
भवन्ति पुरुषाणां वै तान् निबोध वदामि ते॥ ३५

(परसामान्यात्मक) स्वरूप शङ्खनिधिकी नीलाङ्गी देवीमें स्थिति है। दानव! इन (निधियों)-के स्वरूपके अन्तर्गत पुरुषोंके जो लक्षण होते हैं, मैं उनका वर्णन कर रही हूँ, उन्हें समझो—॥ ३१—३५॥

सत्यशौचाभिसंयुक्ता मखदानोत्सवे रताः।
भवन्ति दानवपते महापद्माश्रिता नराः॥ ३६
यज्विनः सुभगा दृप्ता मानिनो बहुदक्षिणाः।
सर्वसामान्यसुखिनो नराः पद्माश्रिताः स्मृताः॥ ३७
सत्यानृतसमायुक्ता दानाहरणदक्षिणाः।
न्यायान्यायव्ययोपेता महानीलाश्रिता नराः॥ ३८
नास्तिकाः शौचरहिताः कृपणा भोगवर्जिताः।
स्तेयानृतकथायुक्ता नराः शङ्खश्रिता बले॥ ३९
इत्येवं कथितस्तुभ्यं तेषां दानव निर्णयः॥ ४०

दानवपते! महापद्मके आश्रित रहनेवाले मनुष्य सत्य और शौचसे युक्त तथा यजन, दान और उत्सव करनेमें लीन रहते हैं। पद्मके आश्रित रहनेवाले मनुष्य यज्ञ करनेवाले, सौभाग्यशाली, अहङ्कारी, मानप्रिय, बहुत दक्षिणा देनवाले तथा सर्वसाधारण लोगोंसे सुखी होते हैं। महानीलके आश्रित रहनेवाले व्यक्ति सत्य तथा असत्यसे युक्त, देने और लेनेमें चतुर तथा न्याय, अन्याय और व्यय करनेवाले होते हैं। बले! शङ्खके आश्रित रहनेवाले पुरुष नास्तिक, अपवित्र, कृपण, भोगहीन, चोरी करनेवाले एवं असत्य बोलनेवाले होते हैं। दानव! मैंने इस प्रकार आपसे उनके स्वरूपका वर्णन किया॥ ३६—४०॥

अहं सा रागिणी नाम जयश्रीस्त्वामुपागता।
ममास्ति दानवपते प्रतिज्ञा साधुसम्मता॥ ४१
समाश्रयामि शौर्याढ्यं न च क्लीबं कथंचन।
न चास्ति भवतस्तुल्यो त्रैलोक्येऽपि बलाधिकः॥ ४२
त्वया बलविभूत्या हि प्रीतिर्मे जनिता ध्रुवा।
यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराजो विनिर्जितः॥ ४३
अतो मम पुरा प्रीतिर्जाता दानव शाश्वती।
दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं सर्वेभ्योऽपि बलाधिकम्॥ ४४

वही रागिणी नामकी जयश्री मैं आपके पास आयी हूँ। दानवपते! मेरी साधुजनोंसे अनुमोदित एक प्रतिज्ञा है। मैं वीर पुरुषका आश्रयण करती हूँ। नपुंसकके पास कभी नहीं जाती। तीनों लोकोंमें आपके सदृश बलवान् दूसरा कोई नहीं है। अपनी बल-सम्पत्तिसे तुमने मेरेमें दृढ़ प्रीति उत्पन्न की है, क्योंकि संग्राममें पराक्रम कर तुमने देवराजको जीता है। दानव! इसीसे आपके श्रेष्ठ सत्त्व एवं सभीसे अधिक बलको देखकर (आपके प्रति) मेरी स्थायी एवं उत्तम प्रीति उत्पन्न हो गयी है॥ ४१—४४॥

शौण्डीर्यमानिनं वीरं ततोऽहं स्वयमागता।
नाश्चर्यं दानवश्रेष्ठ हिरण्यकशिपोः कुले॥ ४५
प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्म यदीदृशम्।
विशेषितस्त्वया राजन् दैतेयः प्रपितामहः॥ ४६
विजितं विक्रमाद् येन त्रैलोक्यं वै परैर्हृतम्।
इत्येवमुक्त्वा वचनं दानवेन्द्रं तदा बलिम्॥ ४७
जयश्रीश्चन्द्रवदना प्रविष्टाऽद्योतयच्छुभा।
तस्यां चाथ प्रविष्टायां विधवा इव योषितः॥ ४८
समाश्रयन्ति बलिनं ह्रीश्रीधीधृतिकीर्त्तयः।
प्रभा मतिः क्षमा भूतिर्विद्या नीतिर्दया तथा॥ ४९

अतः मैं अत्यन्त बलशाली तथा मानी वीर आपके पास अपने-आप ही आयी हूँ। दानवश्रेष्ठ! हिरण्यकशिपुके वंशमें उत्पन्न आप असुरेन्द्रके लिये इस प्रकारके कर्मोंके करनेमें कोई आश्चर्य नहीं है। राजन्! शत्रुओंद्वारा अधिकृत त्रैलोक्यको अपने पराक्रमसे जीतकर आपने दितिके पुत्र अपने प्रपितामहको और विशिष्ट कर दिया है। दानवेन्द्र बलिसे इस प्रकार कहकर चन्द्रवदना शुभा जयश्री (बलिमें) प्रवेश करके (उन्हें) प्रकाशित करने लगी। उनके प्रवेश कर जानेपर ह्री, श्री, धी (बुद्धि), धृति, कीर्त्ति, प्रभा, मति, क्षमा, भूति (समृद्धि), विद्या, नीति, दया,

श्रुतिः स्मृतिर्धृतिः कीर्तिर्मूर्तिः शान्तिः क्रियान्विताः।
पुष्टिस्तुष्टी रुचिस्त्वन्या तथा सत्त्वाश्रिता गुणाः।
ताः सर्वा बलिमाश्रित्य व्यश्राम्यन्त यथासुखम्॥ ५०

एवं गुणोऽभूद् दनुपुङ्गवोऽसौ
बलिर्महात्मा शुभबुद्धिरात्मवान्।
यज्वा तपस्वी मृदुरेव सत्यवाग्
दाता विभर्ता स्वजनाभिगोप्ता॥ ५१

त्रिविष्टपं शासति दानवेन्द्रे
नासीत् क्षुधार्तो मलिनो न दीनः।
सदोज्ज्वलो धर्मरतोऽथ दान्तः
कामोपभोक्ता मनुजोऽपि जातः॥ ५२

श्रुति, स्मृति, धृति, कीर्त्ति, मूर्ति, शान्ति, क्रिया, पुष्टि, तुष्टि, रुचि एवं अन्य सभी सत्त्वगुणके आश्रित अन्य देवियाँ भी विधवा स्त्रियोंकी भाँति बलिकी छत्रछायामें आनन्दपूर्वक रहने लगीं। अच्छी बुद्धिवाले, आत्मनिष्ठ, यज्ञ करनेवाले, तपस्वी, कोमल स्वभाववाले, सत्यवक्ता, दानी, अभावग्रस्तोंके अभावको दूरकर पालन-पोषण एवं स्वजनोंकी रक्षा करनेवाले दैत्यश्रेष्ठ महात्मा बलि इस प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न थे। दानवेन्द्र बलिके स्वर्गका शासन करते समय कोई भूखसे दुखी, मलिन एवं अभावग्रस्त नहीं था। मनुष्य भी सदा शुद्ध धर्म-परायण, इन्द्रियविजयी एवं इच्छानुकूल भोगसे सम्पन्न हो गये॥ ४५—५२॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

प्रायश्चित्त-हेतु इन्द्रकी तपस्या, माताके आश्रममें आना, अदितिकी तपस्या और वासुदेवकी स्तुति, वासुदेवका अदितिके पुत्र बननेका आश्वासन और स्वतेजसे अदितिके गर्भमें प्रवेश

पुलस्त्य उवाच

गते त्रैलोक्यराज्ये तु दानवेषु पुरन्दरः।
जगाम ब्रह्मसदनं सह देवैः शचीपतिः॥ १
तत्रापश्यत् स देवेशं ब्रह्माणं कमलोद्भवम्।
ऋषिभिः सार्धमासीनं पितरं स्वं च कश्यपम्॥ २
ततो ननाम शिरसा शक्रः सुरगणैः सह।
ब्रह्माणं कश्यपं चैव तांश्च सर्वांस्तपोधनान्॥ ३
प्रोवाचेन्द्रः सुरैः सार्धं देवनाथं पितामहम्।
पितामह हृतं राज्यं बलिना बलिना मम॥ ४
ब्रह्मा प्रोवाच शक्रैतद् भुज्यते स्वकृतं फलम्।
शक्रः पप्रच्छ भो ब्रूहि किं मया दुष्कृतं कृतम्॥ ५
कश्यपोऽप्याह देवेशं भ्रूणहत्या कृता त्वया।
दित्युदरात् त्वया गर्भः कृत्तो वै बहुधा बलात्॥ ६

पुलस्त्यजी बोले—(नारदजी!) तीनों लोकोंका राज्य दानवोंके अधीन हो जानेपर शचीपति इन्द्र देवोंके साथ ब्रह्मलोक गये। वहाँ उन्होंने ऋषियोंके साथ बैठे हुए कमलयोनि ब्रह्मा एवं अपने पिता कश्यपको देखा। उसके बाद इन्द्रने देवताओंके सहित ब्रह्मा, कश्यप एवं उन सभी तपोधनोंको सिर झुकाकर प्रणाम किया। देवोंके साथ इन्द्रने देवनाथ पितामहसे कहा—पितामह! बलवान् बलिने मेरा राज्य छीन लिया है। ब्रह्माने कहा—इन्द्र! यह तुम अपने किये हुए कर्मका फल भोग रहे हो। इन्द्रने पूछा—कृपया आप बतलाइये कि मैंने कौन-सा दुष्कर्म किया है। कश्यपने भी (उत्तरमें) इन्द्रसे कहा—तुमने भ्रूण (गर्भस्थित बालक)-की हत्या की है। तुमने दितिके उदरमें स्थित गर्भको बलपूर्वक अनेक टुकड़ोंमें काट डाला है॥ १—६॥

पितरं प्राह देवेन्द्रः स मातुर्दोषतो विभो।
कृन्तनं प्राप्तवान् गर्भो यदशौचा हि साभवत्॥ ७
ततोऽब्रवीत् कश्यपस्तु मातुर्दोषः स दासताम्।
गतस्ततो विनिहतो दासोऽपि कुलिशेन भो॥ ८
तच्छ्रुत्वा कश्यपवचः प्राह शक्रः पितामहम्।
विनाशं पाप्मनो ब्रूहि प्रायश्चित्तं विभो मम॥ ९
ब्रह्मा प्रोवाच देवेशं वसिष्ठः कश्यपस्तथा।
हितं सर्वस्य जगतः शक्रस्यापि विशेषतः॥ १०
शङ्खचक्रगदापाणिर्माधवः पुरुषोत्तमः।
तं प्रपद्यस्व शरणं स ते श्रेयो विधास्यति॥ ११
सहस्राक्षोऽपि वचनं गुरूणां स निशम्य वै।
प्रोवाच स्वल्पकालेन कस्मिन् प्राप्यो बहूदयः।
तमूचुर्देवता मर्त्ये स्वल्पकाले महोदयः॥ १२
इत्येवमुक्तः सुरराड् विरिञ्चिना
मरीचिपुत्रेण च कश्यपेन।
तथैव मित्रावरुणात्मजेन
वेगान्महीपृष्ठमवाप्य तस्थौ॥ १३
कालिञ्जरस्योत्तरतः सुपुण्य-
स्तथा हिमाद्रेरपि दक्षिणस्थः।
कुशस्थलात् पूर्वत एव विश्रुतो
वसोः पुरात् पश्चिमतोऽवतस्थे॥ १४
पूर्वं गयेन नृवरेण यत्र
यष्टोऽश्वमेधः शतकृत्सदक्षिणः।
मनुष्यमेधः शतकृत्सहस्रकृन्
नरेन्द्रसूयश्च सहस्रकृद् वै॥ १५
तथा पुरा दुर्यजनः सुरासुरैः
ख्यातो महामेध इति प्रसिद्धः।
यत्रास्य चक्रे भगवान् मुरारिः
वास्तव्यमव्यक्ततनुः खमूर्तिमत्।
ख्यातिं जगामाथ गदाधरेति
महाघवृक्षस्य शितः कुठारः॥ १६
यस्मिन् द्विजेन्द्राः श्रुतिशास्त्रवर्जिताः
समत्वमायान्ति पितामहेन।
सकृत् पितॄन् यत्र च सम्प्रपूज्य
भक्त्या त्वनन्येन हि चेतसैव।
फलं महामेधमखस्य मानवा
लभन्त्यनन्त्यं भगवत्प्रसादात्॥ १७
महानदी यत्र सुरर्षिकन्या
जलापदेशाद्धिमशैलमेत्य ।

इन्द्रने अपने पिता कश्यपसे कहा—विभो! जननीके दोषसे वह गर्भ छिन्न हुआ था; क्योंकि वे अपवित्र हो गयी थीं। उसके बाद कश्यपने कहा—माताके दोषसे वह दासताको प्राप्त हो चुका था, उसके बाद तुमने दासको भी वज्रसे मारा। कश्यपके उस वचनको सुनकर इन्द्रने पितामहसे कहा—विभो! मुझे पापका नाश करनेवाला प्रायश्चित्त बतला दीजिये। ब्रह्मा, वसिष्ठ एवं कश्यपने देवेश (इन्द्र)-से सब जगत्के लिये—विशेषरूपसे इन्द्रके लिये हितकारी वचन कहा—तुम शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले पुरुषोत्तमभगवान् लक्ष्मीपति श्रीविष्णुकी शरणमें जाओ। वे तुम्हारा कल्याण करेंगे। उन सहस्राक्षने गुरुजनोंका वचन सुनकर कहा—थोड़े समयमें अधिक-से-अधिक उन्नतिकी प्राप्ति कहाँ सम्भव है? देवोंने उनसे कहा—स्वल्प समयमें महती उन्नति मर्त्यलोकमें सम्भव है॥ ७—१२॥

ब्रह्मा, मरीचिपुत्र कश्यप एवं वसिष्ठके ऐसा कहनेपर सुरराज इन्द्र तेजीसे पृथ्वीतलपर आ गये। वे कालिञ्जर पर्वतके उत्तर, हिमाद्रिके दक्षिण, कुशस्थलके पूर्व एवं वसुपुरके पश्चिममें स्थित विख्यात पुण्य स्थानमें रहने लगे—जहाँ पहले राजा गयने दक्षिणाके साथ सौ अश्वमेधयज्ञ, ग्यारह सौ नरमेधयज्ञ तथा एक हजार राजसूययज्ञका अनुष्ठान किया था। उसी प्रकार पहले (उसने) जहाँपर सुरों एवं असुरोंसे कठिनाईसे किया जा सकनेवाला महामेध नामक प्रसिद्ध यज्ञ अनुष्ठित किया था और उसके लिये जहाँ आकाशस्वरूप अव्यक्तशरीरी मुरारि (विष्णु)-ने वहाँ निवास किया था। इसके बाद वे गदाधर नामसे प्रसिद्ध हुए, जो महान् अघरूपी वृक्षके लिये तीक्ष्ण कुठारस्वरूप हैं॥ १३—१६॥

जहाँ वेद-शास्त्रसे रहित होनेपर भी कुलीन श्रेष्ठ ब्राह्मण ब्रह्मकी समानता प्राप्त करते हैं एवं मनोयोगसे भक्तिसहित मनुष्य एक बार भी पितरोंका पूजन करके भगवान्‌के अनुग्रहसे महामेध नामक यज्ञका अनन्त फल प्राप्त कर लेते हैं, वहाँ देवर्षिकी कन्या श्रेष्ठ महानदी है, जो जलरूपसे हिमालयपर प्रवहमान होकर अपने दर्शन,

चक्रे जगत्पापविनष्टिमग्र्यां
संदर्शनप्राशनमज्जनेन ॥ १८
तत्र शक्रः समभ्येत्य महानद्यास्तटेऽद्भुते।
आराधनाय देवस्य कृत्वाश्रममवस्थितः॥ १९
प्रातःस्नायी त्वधःशायी एकभुक्तस्त्वयाचितः।
तपस्तेपे सहस्राक्षः स्तुवन् देवं गदाधरम्॥ २०
तस्यैवं तप्यतः सम्यग्जितसर्वेन्द्रियस्य हि।
कामक्रोधविहीनस्य साग्रः संवत्सरो गतः॥ २१
ततो गदाधरः प्रीतो वासवं प्राह नारद।
गच्छ प्रीतोऽस्मि भवतो मुक्तपापोऽसि साम्प्रतम्॥ २२
निजं राज्यं च देवेश प्राप्स्यसे नचिरादिव।
यतिष्यामि तथा शक्र भावि श्रेयो यथा तव॥ २३
इत्येवमुक्तोऽथ गदाधरेण
विसर्जितः स्नाप्य मनोहरायाम्।
स्नातस्य देवस्य तदैनसो नरा-
स्तं प्रोचुरस्माननुशासयस्व॥ २४
प्रोवाच तान् भीषणकर्मकारान्
नाम्ना पुलिन्दान् मम पापसम्भवाः।
वसध्वमेवान्तरमद्रिमुख्ययो-
र्हिमाद्रिकालिञ्जरयोः पुलिन्दाः॥ २५
इत्येवमुक्त्वा सुरराट् पुलिन्दान्
विमुक्तपापोऽमरसिद्धयक्षैः ।
सम्पूज्यमानोऽनुजगाम चाश्रमं
मातुस्तदा धर्मनिवासमीड्यम्॥ २६
दृष्ट्वाऽदितिं मूर्ध्नि कृताञ्जलिस्तु
विनम्रमौलिः समुपाजगाम।
प्रणम्य पादौ कमलोदराभौ
निवेदयामास तपस्तदात्मनः॥ २७
पप्रच्छ सा कारणमीश्वरं त-
माघ्राय चालिङ्ग्य सहाश्रुदृष्ट्या।
स चाचचक्षे बलिना रणे जयं
तदात्मनो देवगणैश्च सार्धम्॥ २८
श्रुत्वैव सा शोकपरिप्लुताङ्गी
ज्ञात्वा जितं दैत्यसुतैः सुतं तम्।
दुःखान्विता देवमनाद्यमीड्यं
जगाम विष्णुं शरणं वरेण्यम्॥ २९

नारद उवाच

कस्मिन् जनित्री सुरसत्तमानां
स्थाने हृषीकेशमनन्तमाद्यम्।
चराचरस्य प्रभवं पुराण-
माराधयामास शुभे वद त्वम्॥ ३०

पान एवं मज्जन करनेसे जगत्के पापोंको विनष्ट करती है। विष्णुकी आराधना करनेके लिये इन्द्र वहाँ महानदीके विचित्र तटपर गये और आश्रम बनाकर रहने लगे। वे प्रातःकाल स्नान, भूमिपर शयन एवं बिना माँगे मिले हुए पदार्थसे एक समय भोजन करते हुए गदाधारी देवकी स्तुति करते हुए तपस्या करने लगे। सर्वथा जितेन्द्रिय एवं काम-क्रोधादिसे रहित होकर इस प्रकार तपस्या करते हुए उनका एक वर्ष बीत गया। नारदजी! उसके बाद गदा धारण करनेवाले विष्णुने प्रसन्न होकर इन्द्रसे कहा—जाओ, मैं प्रसन्न हूँ; अब तुम पापसे मुक्त हो गये हो॥ १७—२२॥

देवेश! (अब) तुम शीघ्र ही अपना राज्य प्राप्त कर लोगे। इन्द्र! जैसे तुम्हारा आगेका श्रेय (कल्याण) होगा, वैसा ही मैं प्रयत्न करूँगा। गदाधर श्रीविष्णुने ऐसा कहनेके बाद इन्द्रको मनोहरा नदीमें स्नान कराकर बिदा कर दिया। इन्द्रके स्नान कर लेनेपर उनके पाप-पुरुषोंने उनसे कहा—हमें अनुशासित कीजिये। (इन्द्रने) उन भयंकर कर्म करनेवाले लोगोंसे कहा—मेरे पापसे उत्पन्न तुम लोग पुलिन्द कहे जाओगे। तुम लोग हिमालय एवं कालिञ्जर नामके दोनों श्रेष्ठ पर्वतोंके बीचकी भूमिमें निवास करो। पुलिन्दोंसे ऐसा कहनेके पश्चात् पापसे मुक्त हुए सुरराज देवों, सिद्धों एवं यक्षोंसे पूजित होते हुए माताके धर्मके आश्रयरूप पूज्य आश्रममें चले गये॥ २३—२६॥

अदितिका दर्शन कर हाथ जोड़ तथा सिर झुकाकर इन्द्र उनके समीप आये एवं उनके कमलकी कान्तिवाले चरणोंमें प्रणाम करनेके बाद उन्होंने अपनी तपस्याका वर्णन किया। उन (अदिति)-ने अश्रुपूर्ण दृष्टिसे (इन्द्रको) सूँघा एवं उनको गले लगाकर (तपस्याका कारण) पूछा। इन्द्रने बलिद्वारा देवोंसहित अपने पराजित होनेका पूरा समाचार कह सुनाया। यह सुननेके बाद अपने उस पुत्रको दितिके पुत्रोंद्वारा पराजित जान शोकसे भर गयीं एवं दुःखसे दुखी होकर (अदिति) वरेण्य एवं अनादि देव विष्णुकी शरणमें गयीं॥ २७—२९॥

नारदने कहा (पूछा)—(कृपया) आप यह बतलाइये कि देवोंकी माता अदितिने किस शुभ स्थानपर अनादि, अनन्त, चर और अचरके उत्पन्न करनेवाले एवं पुरातन हृषीकेशकी आराधना की?॥ ३०॥

पुलस्त्य उवाच

सुरारणिः शक्रमवेक्ष्य दीनं
पराजितं दानवनायकेन।
सितेऽथ पक्षे मकरर्क्षगेऽर्के
घृतार्चिषः स्यादथ सप्तमेऽह्नि॥ ३१
दृष्ट्वैव देवं त्रिदशाधिपं तं
महोदये शक्रदिशाधिरूढम्।
निराशना संयतवाक् सुचित्ता
तदोपतस्थे शरणं सुरेन्द्रम्॥ ३२

अदितिरुवाच

जयस्व दिव्याम्बुजकोशचौर
जयस्व संसारतरोः कुठार।
जयस्व पापेन्धनजातवेद-
स्तमौघसंरोध नमो नमस्ते॥ ३३
नमोऽस्तु ते भास्कर दिव्यमूर्ते
त्रैलोक्यलक्ष्मीतिलकाय ते नमः।
त्वं कारणं सर्वचराचरस्य
नाथोऽसि मां पालय विश्वमूर्ते॥ ३४
त्वया जगन्नाथ जगन्मयेन
नाथेन शक्रो निजराज्यहानिम्।
अवाप्तवाञ् शत्रुपराभवं च
ततो भवन्तं शरणं प्रपन्ना॥ ३५
इत्येवमुक्त्वा सुरपूजितं सा
आलिख्य रक्तेन हि चन्दनेन।
सम्पूजयित्वा करवीरपुष्पैः
संधूप्य धूपैः कणमर्कभोज्यम्॥ ३६
निवेद्य चैवाज्ययुतं महार्ह-
मन्नं महेन्द्रस्य हिताय देवी।
स्तवेन पुण्येन च संस्तुवन्ती
स्थिता निराहारमथोपवासम्॥ ३७
ततो द्वितीयेऽह्नि कृतप्रणामा
स्नात्वा विधानेन च पूजयित्वा।
दत्त्वा द्विजेभ्यः कणकं तिलाज्यं
ततोऽग्रतः सा प्रयता बभूव॥ ३८
ततः प्रीतोऽभवद् भानुर्घृतार्चिः सूर्यमण्डलात्।
विनिःसृत्याग्रतः स्थित्वा इदं वचनमब्रवीत्॥ ३९
व्रतेनानेन सुप्रीतस्तवाहं दक्षनन्दिनि।
प्राप्स्यसे दुर्लभं कामं मत्प्रसादान्न संशयः॥ ४०
राज्यं त्वत्तनयानां वै दास्ये देवि सुरारणि।
दानवान् ध्वंसयिष्यामि सम्भूयैवोदरे तव॥ ४१

पुलस्त्यजी बोले—दानव-नायकद्वारा पराजित हुए दीन बने इन्द्रको देखकर अदिति सूर्यके मकर-राशिमें स्थित हो जानेपर शुक्लपक्षकी सूर्य-सप्तमीके दिन उन सुरोंके स्वामी सूर्यदेवको महान् उदयाचलपर पूर्व दिशामें उगनेपर देखकर उपवास करती हुई वाणी एवं मनको संयत करके उन सुरेन्द्र (सूर्य)-की शरणमें गयीं॥ ३१-३२॥

अदितिने कहा—हे दिव्य कमलकोशको अपनेमें छिपाकर रखनेवाले! आपकी जय हो। हे संसाररूपी वृक्षके कुठार! आपकी जय हो। हे पापरूपी इन्धनके लिये अग्नि! आपकी जय हो। हे अन्धकार (अज्ञान)-के समूहके विनाश करनेवाले! आपको बारम्बार नमस्कार है। हे भास्कर! हे दिव्यमूर्ते! आपको नमस्कार है। हे त्रैलोक्य-लक्ष्मीके स्वामिन्! आपको नमस्कार है। आप समस्त चर और अचर जगत्के कारण तथा स्वामी हैं। हे विश्वमूर्ते! आप मेरी रक्षा कीजिये। हे जगन्नाथ! जगन्मय आप स्वामीके ही कारण इन्द्रको अपने राज्यकी हानि एवं शत्रुसे पराभवकी भी प्राप्ति हुई है। अतः मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। ऐसा कहनेके बाद रक्तचन्दनद्वारा देवोंसे पूजित सूर्यको चित्रितकर उन देवी (अदिति)-ने कनैरके पुष्पोंसे उनका पूजन किया और धूपसे धूपित करनेके बाद महेन्द्रकी भलाईके लिये सूर्यके लिये घृतसे बने उत्तम अन्न अर्पित किया तथा निराहार रहकर पवित्र स्तोत्रोंसे स्तुति करती हुई (साधनामें) बैठी रहीं॥ ३३—३७॥

दूसरे दिन प्रणाम करनेके बाद विधिसे स्नान एवं पूजा करके उन्होंने ब्राह्मणोंको कणक, तिल एवं घृत प्रदान किया और उसके बाद वे और अधिक संयत रहने लगीं। इससे घृतार्चि भानु प्रसन्न हो गये। (वे) सूर्य-मण्डलसे निकले एवं अदितिके सामने खड़े होकर यह वचन बोले—दक्षनन्दिनि! तुम्हारे इस व्रतसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अतः मेरी कृपासे तुम निःसन्देह मनोवाञ्छित दुर्लभ वस्तु प्राप्त करोगी। देवि! देवजननि! मैं तुम्हारा पुत्र होकर देवपुत्रोंको राज्य दूँगा और दानवोंका नाश करूँगा॥ ३८—४१॥

तद्वाक्यं वासुदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मन् सुरारणिः।
प्रोवाच जगतां योनिं वेपमाना पुनः पुनः॥ ४२

कथं त्वामुदरेणाहं वोढुं शक्ष्यामि दुर्धरम्।
यस्योदरे जगत्सर्वं वसते स्थाणुजङ्गमम्॥ ४३

कस्त्वां धारयितुं नाथ शक्तस्त्रैलोक्यधार्यसि।
यस्य सप्तार्णवाः कुक्षौ निवसन्ति सहाद्रिभिः॥ ४४

तस्माद् यथा सुरपतिः शक्रः स्यात् सुरराडिह।
यथा च न मम क्लेशस्तथा कुरु जनार्दन॥ ४५

[पुलस्त्यजी कहते हैं—] ब्रह्मन्! वासुदेवका वह वाक्य सुनकर बार-बार काँपती हुई देवोंकी माता अदितिने संसारको उत्पन्न करनेवाले विष्णुसे कहा—जिसके (विशाल) उदरमें स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त संसार निवास करता है, ऐसे त्रिलोकीको धारण करनेवाले आपको मैं अपने उदरमें कैसे धारण कर सकूँगी? नाथ! आप तीनों लोकोंको धारण करनेवाले हैं। जिसकी कुक्षिमें पर्वतोंके साथ सातों समुद्र अवस्थित हैं ऐसे आपको कौन धारण कर सकता है? अतः हे जनार्दन! आप वैसा ही करें जिससे इन्द्र देवताओंके स्वामी बन जायँ और मुझे भी कष्ट न हो॥ ४२—४५॥

विष्णुरुवाच

सत्यमेतन्महाभागे दुर्धरोऽस्मि सुरासुरैः।
तथापि सम्भविष्यामि अहं देव्युदरे तव॥ ४६
आत्मानं भुवनान् शैलांस्त्वाञ्च देवि सकश्यपाम्।
धारयिष्यामि योगेन मा विषादं कृथाऽम्बिके॥ ४७
तवोदरेऽहं दाक्षेयि सम्भविष्यामि वै यदा।
तदा निस्तेजसो दैत्याः सम्भविष्यन्त्यसंशयम्॥ ४८
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विवेश
तस्याश्च भूयोऽरिगणप्रमर्दी।
स्वतेजसोंऽशेन विवेश देव्याः
तदोदरे शक्रहिताय विप्र॥ ४९

विष्णुने कहा—महाभागे! यह सत्य है कि मैं देवों और दैत्योंसे धृत नहीं हो सकता, फिर भी हे देवि! मैं आपके उदरसे उत्पन्न होऊँगा। देवि! स्वयंको, (चौदहों) भुवनों, पर्वतों एवं कश्यपसहित आपको भी मैं योगद्वारा धारण करूँगा। मातः! आप विषाद न करें। दक्षात्मजे! जब मैं आपके उदरमें आऊँगा तब दैत्य निस्सन्देह तेजोहीन हो जायँगे। [पुलस्त्यजी कहते हैं—] विप्र! ऐसा कहकर शत्रुओंके नाश करनेवाले भगवान् विष्णु इन्द्रकी भलाईके लिये अपने तेजके अंशमात्रसे उन देवीके उदरमें प्रविष्ट हो गये॥ ४६—४९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७६॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

प्रह्लादसे अदितिके गर्भमें विष्णुके प्रविष्ट होनेकी बात जानकर बलिका विष्णुको दुर्वचन, प्रह्लादद्वारा बलिको शाप और अनुनय करनेपर उपदेश

पुलस्त्य उवाच

देवमातुः स्थिते देवे उदरे वामनाकृतौ।
निस्तेजसोऽसुरा जाता यथोक्तं विश्वयोनिना॥ १
निस्तेजसोऽसुरान् दृष्ट्वा प्रह्लादं दानवेश्वरम्।
बलिर्दानवशार्दूल इदं वचनमब्रवीत्॥ २

पुलस्त्यजी बोले—(नारदजी) संसारके उत्पन्न करनेवाले भगवान्के वचनानुसार देवमाता अदितिके गर्भमें वामनरूपमें देवके स्थित हो जानेपर असुर निस्तेज हो गये। असुरोंको निस्तेज देखकर दानवोंमें श्रेष्ठ बलिने दानवेश्वर प्रह्लादसे यह वचन कहा—॥ १-२॥

बलिरुवाच

तात निस्तेजसो दैत्याः केन जातास्तु हेतुना।
कथ्यतां परमज्ञोऽसि शुभाशुभविशारद॥ ३

पुलस्त्य उवाच

तत्पौत्रवचनं श्रुत्वा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः।
किमर्थं तेजसो हानिरिति कस्मादतीव च॥ ४

स ज्ञात्वा वासुदेवोत्थं भयं दैत्येष्वनुत्तमम्।
चिन्तयामास योगात्मा क्व विष्णुः साम्प्रतं स्थितः॥ ५

अधो नाभेः स पातालान् सप्त संचिन्त्य नारद।
नाभेरुपरि भूरादींल्लोकांश्चर्तुमियाद् वशी॥ ६

भूमिं स पङ्कजाकारां तन्मध्ये पङ्कजाकृतिम्।
मेरुं ददर्श शैलेन्द्रं शातकौम्भं महर्द्धिमत्॥ ७

तस्योपरि महापुर्यस्त्वष्टौ लोकपतींस्तथा।
तेषामुपरि वैराजीं ददृशे ब्रह्मणः पुरीम्॥ ८

तदधस्तान्महापुण्यमाश्रमं सुरपूजितम्।
देवमातुः स ददृशे मृगपक्षिगणैर्वृतम्॥ ९
तां दृष्ट्वा देवजननीं सर्वतेजोऽधिकां मुने।
विवेश दानवपतिरन्वेष्टुं मधुसूदनम्॥ १०

स दृष्टवाञ्जगन्नाथं माधवं वामनाकृतिम्।
सर्वभूतवरेण्यं तं देवमातुरथोदरे॥ ११

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम्।
सुरासुरगणैः सर्वैः सर्वतो व्याप्तविग्रहम्॥ १२

तेनैव क्रमयोगेन दृष्ट्वा वामनतां गतम्।
दैत्यतेजोहरं विष्णुं प्रकृतिस्थोऽभवत् ततः॥ १३

अथोवाच महाबुद्धिर्विरोचनसुतं बलिम्।
प्रह्लादो मधुरं वाक्यं प्रणम्य मधुसूदनम्॥ १४

प्रह्लाद उवाच

श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यतो वो भयमागतम्।
येन निस्तेजसो दैत्या जाता दैत्येन्द्र हेतुना॥ १५
भवता निर्जिता देवाः सेन्द्ररुद्रार्कपावकाः।
प्रयाताः शरणं देवं हरिं त्रिभुवनेश्वरम्॥ १६

बलिने कहा—तात! आप यह बतलानेकी कृपा करें कि दानव किस कारणसे निस्तेज हो गये हैं? शुभ और अशुभके जाननेवाले आप महान् ज्ञानी हैं॥ ३॥

पुलस्त्यजी बोले—अपने पौत्र (बलि)-के उस वचनको सुनकर (दानवोंके) तेजकी अत्यधिक हानि क्यों और किससे हुई है—(यह जाननेके लिये) प्रह्लादने क्षणभर ध्यान किया और दैत्योंके लिये वासुदेवद्वारा उत्पन्न हुए अतुलनीय भयको जानकर उन योगात्माने यह सोचा कि इस समय विष्णु कहाँपर स्थित हैं? नारदजी! नाभिके नीचेके स्थानमें सात पातालोंका चिन्तन करनेके बाद (सातों पातालोंमें पता लगानेके बाद) सभीको अपने वशमें करनेवाले वे नाभिके ऊपर भूः आदि लोकमें देखनेके लिये (पता लगानेके लिये) पहुँचे। उन्होंने कमलके आकारकी भूमि और उसके बीच महान् समृद्धिसे सम्पन्न सुवर्णमय कमलके आकार-जैसे पर्वतश्रेष्ठ मेरुको देखा। उसके ऊपर महापुरियोंमें आठ लोक-पति तथा उनके ऊपर ब्रह्माकी वैराजपुरीको देखा॥ ४—८॥

उसके नीचे उन्होंने महान् पुण्यसे युक्त देवताओंसे पूजित तथा पशु-पक्षियोंसे भरे देवमाता अदितिके आश्रमको देखा। मुने! समस्त तेजोंसे भी अधिक तेजस्विनी उस देवमाता अदितिको देखकर दानवपति प्रह्लादने मधुसूदनको ढूँढ़नेके लिये (उनके उदरमें) प्रवेश किया। उन्होंने सभी प्राणियोंमें श्रेष्ठ वामनके रूपमें उन जगत्पति माधवको देवमाताके उदरमें देखकर सारे सुरों और असुरोंसे चारों ओर व्याप्त शरीरवाले शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले उन पुण्डरीकनयन भगवान्‌को देखा। उसी योगके क्रममें वामनरूपको प्राप्त हुए दैत्योंके तेजको हरण करनेवाले विष्णुको जानकर वे प्रकृति-भावमें स्थित हो गये। उसके बाद मधुसूदनको प्रणाम कर महाबुद्धिमान् प्रह्लादने विरोचनपुत्र बलिसे मधुर वचन कहा॥ ९—१४॥

प्रह्लादने कहा—दैत्येन्द्र! आपलोगोंको जिससे भय प्राप्त हुआ है और जिस कारण दैत्यगण तेजसे रहित हो गये हैं, वह सब मैं कहता हूँ, सुनो। आपके द्वारा जीते गये इन्द्रसहित रुद्र, सूर्य तथा अग्नि आदि देवता

स तेषामभयं दत्त्वा शक्रादीनां जगद्गुरुः।
अवतीर्णो महाबाहुरदित्या जठरे हरिः॥ १७

हृतानि वस्तेन बले तेजांसीति मतिर्मम।
नालं तमो विषहितुं स्थातुं सूर्योदयं बले॥ १८

त्रिभुवनके स्वामी देव हरिकी शरणमें गये। वे लोकगुरु महाबाहु हरि इन्द्र आदि देवताओंको अभय देकर अदितिके उदरमें अवतीर्ण हुए हैं। बले! मेरा ऐसा विचार है कि उन्होंने तुम लोगोंके तेजको हरण कर लिया है। बले! (जैसे कि) सूर्योदयके होते ही अन्धकार ठहर नहीं सकता है॥ १५—१८॥

पुलस्त्य उवाच

प्रह्लादवचनं श्रुत्वा क्रोधप्रस्फुरिताधरः।
प्रह्लादमाहाथ बलिर्भाविकर्मप्रचोदितः॥ १९

पुलस्त्यजी बोले—प्रह्लादके वचनको सुनकर क्रोधसे ओठ फड़फड़ाते हुए बलिने होनहारसे प्रेरित होकर प्रह्लादसे कहा॥ १९॥

बलिरुवाच

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम्।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिकाः॥ २०
सहस्रशो यैरमराः सेन्द्ररुद्राग्निमारुताः।
निर्जित्य त्याजिताः स्वर्गं भग्नदर्पा रणाजिरे॥ २१
ये सूर्यरथाद् वेगाच्चक्रं कृष्टं महाजवम्।
स विप्रचित्तिर्बलवान् मम सैन्यपुरस्सरः॥ २२
अयःशङ्कुः शिवः शम्भुरसिलोमा विलोमकृत्।
त्रिशिरा मकराक्षश्च वृषपर्वा नतेक्षणः॥ २३
एते चान्ये च बलिनो नानायुधविशारदाः।
येषामेकैकशो विष्णुः कलां नार्हति षोडशीम्॥ २४

बलिने कहा—तात! ये हरि कौन हैं जिनके कारण हमें भय प्राप्त हुआ है? हमारे पास वासुदेवसे अधिक बलवान् सैकड़ों दैत्य हैं। उन लोगोंने इन्द्रसहित रुद्र, अग्नि तथा वायु आदि हजारों देवोंको युद्धमें जीतकर उनके अहंकारको नष्ट किया एवं उन्हें स्वर्गसे खदेड़ दिया। वह बलशाली विप्रचित्ति मेरी सेनाका अगुआ है, जिसने धावा बोलकर सूर्यके रथसे महान् तीव्रगामी चक्रको खींच लिया था। अयःशङ्कु, शिव, शम्भु, असिलोमा, विलोमकृत्, त्रिशिरा, मकराक्ष, वृषपर्वा एवं नतेक्षण—ये तथा अन्य बहुत-से भाँति-भाँतिके आयुधोंको चलानेमें निपुण बलवान् (दैत्य मेरे सहायक हैं,) जिनमें हर एककी सोलहवीं कलाके भी समान विष्णु नहीं हैं॥ २०—२४॥

पुलस्त्य उवाच

पौत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा प्रह्लादः क्रोधमूर्च्छितः।
धिग्धिगित्याह स बलिं वैकुण्ठाक्षेपवादिनम्॥ २५
धिक् त्वां पापसमाचारं दुष्टबुद्धिं सुबालिशम्।
हरिं निन्दयतो जिह्वा कथं न पतिता तव॥ २६
शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः।
यत् त्रैलोक्यगुरुं विष्णुमभिनिन्दसि दुर्मते॥ २७
शोच्यश्चास्मि न संदेहो येन जातः पिता तव।
यस्य त्वं कर्कशः पुत्रो जातो देवावमान्यकः॥ २८

पुलस्त्यने कहा—पौत्रके इस वचनको सुनकर अत्यन्त कुपित हुए उन प्रह्लादने विष्णुकी निन्दा करनेवाले बलिसे कहा—पापकर्मा दुष्टबुद्धि तुम मूर्खको धिक्कार है। विष्णुकी निन्दा करते हुए तुम्हारी जीभ क्यों नहीं गिर गयी? दुर्बुद्धे! दुर्मते! तुम शोक करने लायक और सज्जनोंद्वारा निन्दा किये जाने योग्य हो। क्योंकि तुम तीनों लोकोंके गुरु विष्णुकी निन्दा कर रहे हो। निस्सन्देह मैं भी शोक किये जाने लायक हूँ, जिसने तुम्हारे उस पिताको जन्म दिया, जिससे तुम देवताओंकी निन्दा करनेवाले तथा उग्र पुत्र हुए॥ २५—२८॥

भवान् किल विजानाति तथा चामी महासुराः।
यथा नान्यः प्रियः कश्चिन्मम तस्माज्जनार्दनात्॥ २९
जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम।
सर्वेश्वरेश्वरं देवं कथं निन्दितवानसि॥ ३०
गुरुः पूज्यस्तव पिता पूज्यस्तस्याप्यहं गुरुः।
ममापि पूज्यो भगवान् गुरुर्लोकगुरुर्हरिः॥ ३१

निश्चय ही तुम और ये महासुर भी जानते हैं कि जनार्दनसे अधिक दूसरा कोई मेरा प्रिय नहीं है। विष्णु मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, यह जानते हुए भी तुमने सर्वेश्वरेश्वर देवकी निन्दा किस प्रकार की? तुम्हारे पिता (तुम्हारे लिये) गुरु एवं पूजनीय हैं। उनका भी गुरु तथा पूजनीय मैं हूँ। लोकगुरु भगवान् विष्णु मेरे भी

गुरोर्गुरुगुरुर्मूढ पूज्यः पूज्यतमस्तव।
पूज्यं निन्दयते पाप कथं न पतितोऽस्यधः॥ ३२

शोचनीया दुराचारा दानवामी कृतास्त्वया।
येषां त्वं कर्कशो राजा वासुदेवस्य निन्दकः॥ ३३

यस्मात् पूज्योऽर्चनीयश्च भवता निन्दितो हरिः।
तस्मात् पापसमाचार राज्यनाशमवाप्नुहि॥ ३४

यथा नान्यत् प्रियतरं विद्यते मम केशवात्।
मनसा कर्मणा वाचा राज्यभ्रष्टस्तथा पत॥ ३५

यथा न तस्मादपरं व्यतिरिक्तं हि विद्यते।
चतुर्दशसु लोकेषु राज्यभ्रष्टस्तथा पत॥ ३६

सर्वेषामपि भूतानां नान्यल्लोके परायणम्।
यथा तथाऽनुपश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम्॥ ३७

पुलस्त्य उवाच

एवमुच्चारिते वाक्ये बलिः सत्वरितस्तदा।
अवतीर्यासनाद् ब्रह्मन् कृताञ्जलिपुटो बली॥ ३८
शिरसा प्रणिपत्याह प्रसादं यातु मे गुरुः।
कृतापराधानपि हि क्षमन्ति गुरवः शिशून्॥ ३९
तत्साधु यदहं शप्तो भवता दानवेश्वर।
न बिभेमि परेभ्योऽहं न च राज्यपरिक्षयात्॥ ४०
नैव दुःखं मम विभो यदहं राज्यविच्युतः।
दुःखं कृतापराधत्वाद् भवतो मे महत्तरम्॥ ४१
तत् क्षम्यतां तात ममापराधो
बालोऽस्म्यनाथोऽस्मि सुदुर्मतिश्च।
कृतेऽपि दोषे गुरवः शिशूनां
क्षमन्ति दैन्यं समुपागतानाम्॥ ४२

पुलस्त्य उवाच

स एवमुक्तो वचनं महात्मा
विमुक्तमोहो हरिपादभक्तः।
चिरं विचिन्त्याद्भुतमेतदित्थ-
मुवाच पौत्रं मधुरं वचोऽथ॥ ४३

प्रह्लाद उवाच

तात मोहेन मे ज्ञानं विवेकश्च तिरस्कृतः।
येन सर्वगतं विष्णुं जानंस्त्वां शप्तवानहम्॥ ४४

नूनमेतेन भाव्यं वै भवतो येन दानव।
ममाविशन्महाबाहो विवेकप्रतिषेधकः॥ ४५

पूजनीय और गुरु हैं। मूढ़ पापिन्! गुरुके भी गुरु तुम्हारे लिये पूज्य एवं पूज्यतम हैं। तुम पूजनीयकी निन्दा करते हो, इसलिये तुम नीचे क्यों नहीं गिर गये॥ २९—३२॥

तुमने दुराचरण करनेवाले इन दानवोंको शोचनीय बना दिया। क्योंकि वासुदेवकी निन्दा करनेवाले कठोर-स्वभावके तुम इनके राजा हो। हे पापका आचरण करनेवाले! यतः तुमने पूजनीय एवं अर्चनीय विष्णुकी निन्दा की है, अतः तुम्हारे राज्यका विनाश होगा। क्योंकि मन, कर्म एवं वाणीसे मेरा केशवसे अधिक दूसरा कोई प्रिय नहीं है, अतः राज्यसे भ्रष्ट होकर तुम अधःपतित हो जाओ। क्योंकि चौदहों लोकोंमें उनसे भिन्न दूसरा कोई नहीं है, अतः राज्य-भ्रष्ट होकर तुम पतित हो जाओ; क्योंकि संसारमें सभी भूतोंका (वासुदेवके अतिरिक्त) दूसरा कोई आधार नहीं है, अतः मैं तुम्हें राज्यच्युत हुआ देखूँ॥ ३३—३७॥

पुलस्त्यजी बोले—ब्रह्मन्! इस प्रकार कहे जानेपर बलशाली बलि शीघ्र ही आसनसे नीचे उतरा और हाथ जोड़कर उसने सिरसे झुककर प्रणाम कर कहा—गुरो! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों। बड़े लोग अपराध करनेपर भी बालकोंको क्षमा करते हैं। दानवेश्वर! आपका मुझे शाप देना ठीक है। मैं शत्रुओंसे तथा राज्यके विनाश होनेसे भयभीत नहीं हूँ। विभो! मुझे राज्यसे भ्रष्ट हो जानेका कष्ट भी नहीं है, परंतु आपका अपराध करनेका मुझे सबसे अधिक दुःख है। इसलिये तात! आप मेरे अपराधको क्षमा करें। मैं एक अनाथ दुर्बुद्धि शिशु हूँ। गुरुजन दोष करनेपर भी आर्त बने हुए बालकोंको क्षमा कर देते हैं॥ ३८—४२॥

(फिर) पुलस्त्यजी बोले—इस प्रकारके वचन कहनेपर विष्णुके चरणोंमें श्रद्धा रखनेवाले ज्ञानी महात्मा (प्रह्लाद)-ने बहुत देरतक विचारकर पौत्रसे इस प्रकार अद्भुत एवं मधुर यह वचन कहा॥ ४३॥

प्रह्लादने कहा—तात! अज्ञानने मेरे ज्ञान एवं विवेकको ढक दिया था। इसीसे विष्णुको सर्वव्यापी जानते हुए भी मैंने तुम्हें शाप दे दिया। दानव! निश्चय ही तुम्हारी इस प्रकारकी होनहार थी। इसीसे विवेकका प्रतिबन्धक—विषय-वासनारूप अज्ञान मुझमें प्रवेश कर

तस्माद् राज्यम्प्रति विभो न ज्वरं कर्तुमर्हसि।
अवश्यं भाविनो ह्यर्था न विनश्यन्ति कर्हिचित्॥ ४६
पुत्रमित्रकलत्रार्थे राज्यभोगधनाय च।
आगमे निर्गमे प्राज्ञो न विषादं समाचरेत्॥ ४७
यथा यथा समायान्ति पूर्वकर्मविधानतः।
सुखदुःखानि दैत्येन्द्र नरस्तानि सहेत् तथा॥ ४८

आपदामागमं दृष्ट्वा न विषण्णो भवेद् वशी।
सम्पदं च सुविस्तीर्णां प्राप्य नोऽधृतिमान् भवेत्॥ ४९

धनक्षये न मुह्यन्ति न हृष्यन्ति धनागमे।
धीराः कार्येषु च सदा भवन्ति पुरुषोत्तमाः॥ ५०

एवं विदित्वा दैत्येन्द्र न विषादं कथंचन।
कर्तुमर्हसि विद्वांस्त्वं पण्डितो नावसीदति॥ ५१
तथाऽन्यच्च महाबाहो हितं शृणु महार्थकम्।
भवतोऽथ तथाऽन्येषां श्रुत्वा तच्च समाचर॥ ५२
शरण्यं शरणं गच्छ तमेव पुरुषोत्तमम्।
स ते त्राता भयादस्माद् दानवेन्द्र भविष्यति॥ ५३
ये संश्रिता हरिमनन्तमनादिमध्यं
विष्णुं चराचरगुरुं हरिमीशितारम्।
संसारगर्तपतितस्य करावलम्बं
नूनं न ते भुवि नरा ज्वरिणो भवन्ति॥ ५४
तन्मना दानवश्रेष्ठ तद्भक्तश्च भवाधुना।
स एष भवतः श्रेयो विधास्यति जनार्दनः॥ ५५
अहं च पापोपशमार्थमीश-
माराध्य यास्ये प्रतितीर्थयात्राम्।
विमुक्तपापश्च ततो गमिष्ये
यत्राच्युतो लोकपतिर्नृसिंहः॥ ५६

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमाश्वास्य बलिं महात्मा
संस्मृत्य योगाधिपतिं च विष्णुम्।
आमन्त्र्य सर्वान् दनुयूथपालान्
जगाम कर्तुं त्वथ तीर्थयात्राम्॥ ५७

गया था। इसलिये विभो! राज्यके लिये कष्ट मत करो। अवश्यम्भावी विषय कभी भी विनष्ट नहीं होते। बुद्धिमान् व्यक्तिको पुत्र, मित्र, पत्नी, राज्यभोग और धनके आने तथा जानेपर चिन्तित नहीं होना चाहिये॥ ४४—४७॥

दैत्येन्द्र! पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंके विधानसे जैसे-जैसे सुख और दुःख आते हैं, मनुष्यको उसी प्रकार उनको सहन कर लेना चाहिये। संयम करनेवाले व्यक्तिको आपत्तियोंका आगमन देखकर पीड़ित नहीं होना चाहिये एवं अत्यन्त अधिक सम्पत्तिको देखकर धीरता नहीं खो देनी चाहिये। उत्तम पुरुष धनके नष्ट होनेपर चिन्ता एवं धनकी प्राप्ति होनेपर हर्ष नहीं करते। वे कर्तव्य कर्मके प्रति सदा धीर बने रहते हैं। दैत्येन्द्र! इस प्रकार जानकर तुम्हें किसी प्रकारका शोक नहीं करना चाहिये; तुम विद्वान् हो! विद्वान् व्यक्ति दुःखी नहीं होते॥ ४८—५१॥

महाबाहो! तुम अपने लिये तथा अन्योंके लिये महान् अर्थपूर्ण एवं कल्याणकर (वचन) सुनो और सुनकर वैसा ही करो। दानवेन्द्र! तुम उन्हीं शरणागतकी रक्षा करनेवाले पुरुषोत्तमकी शरणमें जाओ। वे ही इस भयसे तुम्हारी रक्षा करेंगे। आदि, मध्य और अन्तसे हीन, चर और अचरके गुरु, संसाररूपी गर्त्तमें गिरे हुओंके लिये हाथका आश्रय देनेवाले एवं सबके नियन्ता हरि विष्णुकी शरणमें जानवाले मनुष्य निश्चय ही संसारमें संतप्त नहीं होते। दानवश्रेष्ठ! अब तुम अपना मन उन्हींमें लगाकर उनके भक्त बनो। वे जनार्दन ही तुम्हारा कल्याण करेंगे। मैं भी पापके विनाशके लिये ईश्वरकी आराधनाकर तीर्थयात्रा करने जाऊँगा और पापसे विमुक्त होकर मैं वहाँ जाऊँगा, जहाँ लोकपति अच्युत नृसिंह हैं॥ ५२—५६॥

पुलस्त्यजी बोले—इस प्रकार बलिको आश्वासन देनेके बाद महात्मा (प्रह्लाद)-ने योगके अधिपति विष्णुका स्मरण किया और दानवसमूहोंके पालकोंसे अनुमति लेकर तीर्थयात्रा करने चले गये॥ ५७॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७७॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

प्रह्लादकी तीर्थयात्रा, धुन्धु और वामन-प्रसङ्ग, धुन्धुका यज्ञानुष्ठान, वामनका प्रादुर्भाव और उनके लिये दान देनेका धुन्धुका निश्चय, वामनका त्रिविक्रम होना और धुन्धुका वध

नारद उवाच

कानि तीर्थानि विप्रेन्द्र प्रह्लादोऽनुजगाम ह।
प्रह्लादतीर्थयात्रां मे सम्यगाख्यातुमर्हसि॥ १

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्व कथयिष्यामि पापपङ्कप्रणाशिनीम्।
प्रह्लादतीर्थयात्रां ते शुद्धपुण्यप्रदायिनीम्॥ २

संत्यज्य मेरुं कनकाचलेन्द्रं
तीर्थं जगामामरसंघजुष्टम्।
ख्यातं पृथिव्यां शुभदं हि मानसं
यत्र स्थितो मत्स्यवपुः सुरेशः॥ ३

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः।
सम्पूज्य च जगन्नाथमच्युतं श्रुतिभिर्युतम्॥ ४

उपोष्य भूयः सम्पूज्य देवर्षिपितृमानवान्।
जगाम कच्छपं द्रष्टुं कौशिक्यां पापनाशनम्॥ ५

तस्यां स्नात्वा महानद्यां सम्पूज्य च जगत्पतिम्।
समुपोष्य शुचिर्भूत्वा दत्त्वा विप्रेषु दक्षिणाम्॥ ६

नमस्कृत्य जगन्नाथमथो कूर्मवपुर्धरम्।
ततो जगाम कृष्णाख्यं द्रष्टुं वाजिमुखं प्रभुम्।
तत्र देवह्रदे स्नात्वा तर्पयित्वा पितॄन् सुरान्॥ ७

सम्पूज्य हयशीर्षं च जगाम गजसाह्वयम्।
तत्र देवं जगन्नाथं गोविन्दं चक्रपाणिनम्॥ ८

स्नात्वा सम्पूज्य विधिवज्जगाम यमुनां नदीम्।
तस्यां स्नातः शुचिर्भूत्वा संतर्प्यर्षिसुरान् पितॄन्।
ददर्श देवदेवेशं लोकनाथं त्रिविक्रमम्॥ ९

नारद उवाच

साम्प्रतं भगवान् विष्णुस्त्रैलोक्याक्रमणं वपुः।
करिष्यति जगत्स्वामी बलेर्बन्धनमीश्वरः॥ १०

नारदने कहा (पूछा)—श्रेष्ठ विप्र! प्रह्लाद (क्रमशः) किन-किन तीर्थोंमें गये। कृपया आप मुझसे प्रह्लादकी तीर्थयात्राका भलीभाँति वर्णन कीजिये॥ १॥

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी! सुनिये; मैं आपसे पापरूपी कीचड़को नष्ट करनेवाली एवं पवित्र पुण्यको देनेवाली प्रह्लादकी तीर्थयात्राको कहता हूँ। सुवर्णमय श्रेष्ठ मेरुपर्वतको छोड़कर वे (सबसे पहले) देवोंसे सेवित (और) पृथ्वीमें प्रसिद्ध कल्याणदायी मानसतीर्थमें गये, जहाँ मत्स्यशरीरधारी (मत्स्यावतारी) देवाधिदेव निवास करते हैं। उस उत्तम तीर्थमें स्नान और पितृ-देव-तर्पण कर उन्होंने वेद-मन्त्रोंसे अच्युत भगवान् विश्वेशका पूजन किया। फिर वहाँ उपवास रहकर देवों, ऋषियों, पितरों और मनुष्योंकी (यथायोग्य) पूजा कर कौशिकीमें (अवस्थित) पापका नाश करनेवाले भगवान् कच्छपका दर्शन करने गये। उस महानदीमें स्नान करनेके बाद उन्होंने जगत्स्वामी भगवान्की पूजा की और उपवास (व्रत) करके पवित्र होकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी। उसके बाद कच्छपावतार जगन्नाथ भगवान्को नमस्कार कर वे वहाँसे कृष्ण नामके अश्वमुख भगवान्का दर्शन करने चले गये। वहाँ उन्होंने देवह्रदमें स्नानकर देवों एवं पितरोंका तर्पण किया और हयग्रीव भगवान्का अर्चन कर वे हस्तिनापुर चले गये। वहाँ स्नान करनेके बाद चक्रपाणि विश्वपति गोविन्ददेवकी विधिसे पूजा करनेके बाद वे यमुना नदीके पास पहुँच गये। उसमें स्नान करके पवित्र होकर उन्होंने ऋषियों, पितरों और देवोंका तर्पण किया तथा देवोंके देव जगन्नाथ त्रिविक्रम (वामन भगवान्)-का दर्शन किया॥ २—९॥

नारदजीने पूछा—इस समय जगत्स्वामी भगवान् विष्णु तीनों लोकोंको आक्रान्त करनेवाला (विशालतम) देह धारण करेंगे और बलिको बाँधेंगे तो वे भगवान्

तत्कथं पूर्वकालेऽपि विभुरासीत् त्रिविक्रमः।
कस्य वा बन्धनं विष्णुः कृतवांस्तच्च मे वद॥ ११

विष्णु पहले समयमें भी कैसे त्रिविक्रम हुए थे और (उस समय) उन्होंने किसका बन्धन किया था—यह मुझे बतलाइये॥ १०-११॥

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि योऽयं प्रोक्तस्त्रिविक्रमः।
यस्मिन् काले सम्बभूव यं च वञ्चितवानसौ॥ १२
आसीद् धुन्धुरिति ख्यातः कश्यपस्यौरसः सुतः।
दनुगर्भसमुद्भूतो महाबलपराक्रमः॥ १३
स समाराध्य वरदं ब्रह्माणं तपसाऽसुरः।
अवध्यत्वं सुरैः सेन्द्रैः प्रार्थयत् स तु नारद॥ १४
तद् वरं तस्य च प्रादात् तपसा पङ्कजोद्भवः।
परितुष्टः स च बली निर्जगाम त्रिविष्टपम्॥ १५
चतुर्थस्य कलेरादौ जित्वा देवान् सवासवान्।
धुन्धुः शक्रत्वमकरोद्धिरण्यकशिपौ सति॥ १६
तस्मिन् काले स बलवान् हिरण्यकशिपुस्ततः।
चचार मन्दरगिरौ दैत्यं धुन्धुं समाश्रितः॥ १७
ततोऽसुरा यथा कामं विहरन्ति त्रिविष्टपे।
ब्रह्मलोके च त्रिदशाः संस्थिता दुःखसंयुताः॥ १८

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी! वे त्रिविक्रम भगवान् कौन हैं, कब हुए और उन्होंने किसको ठगा? यह सब जो आपने पूछा है उसे मैं कहता हूँ; आप सुनिये—दनुके गर्भसे उत्पन्न अत्यन्त बलवान् एवं पराक्रमी धुन्धु नामसे प्रसिद्ध कश्यपका एक औरस पुत्र था। नारदजी! उस दैत्यने तपस्यासे वरदानी ब्रह्माकी आराधना करके उनसे इन्द्र आदि देवताओंसे (अपनेको) अवध्य होनेकी याचना की। (उसकी) तपस्यासे प्रसन्न होकर कमल-योनि ब्रह्माजीने उसे वह (वाञ्छित) वर दे दिया। उसके बाद वह बलवान् धुन्धु स्वर्गमें चला गया। चतुर्थ कलियुगके आदिमें हिरण्यकशिपुके वर्तमान रहते समय धुन्धु इन्द्रसहित देवोंको जीतकर स्वयं इन्द्र बन गया। उस समय धुन्धुका आश्रय लेकर बलवान् दैत्य हिरण्यकशिपु मन्दरपर्वतपर (स्वच्छन्दतासे) विचरण कर रहा था। दैत्यगण भी स्वच्छन्दतासे स्वर्गमें विचरण करने लगे। (इससे) सभी देवता दुखी होकर ब्रह्मलोकमें जाकर रहने लगे॥ १२—१८॥

ततोऽमरान् ब्रह्मसदो निवासिनः
श्रुत्वाऽथ धुन्धुर्दितिजानुवाच।
व्रजाम दैत्या वयमग्रजस्य
सदो विजेतुं त्रिदशान् सशक्रान्॥ १९
ते धुन्धुवाक्यं तु निशम्य दैत्याः
प्रोचुर्न नो विद्यति लोकपाल।
गतिर्यया याम पितामहाजिरं
सुदुर्गमोऽयं परतो हि मार्गः॥ २०
इतः सहस्रैर्बहुयोजनाख्यै-
र्लोको महर्नाम महर्षिजुष्टः।
येषां हि दृष्ट्याऽर्पणचोदितेन
दह्यन्ति दैत्याः सहसेक्षितेन॥ २१
ततोऽपरो योजनकोटिना वै
लोको जनो नाम वसन्ति यत्र।
गोमातरोऽस्मासु विनाशकारि
यासां रजोऽपीह महासुरेन्द्र॥ २२
ततोऽपरो योजनकोटिभिस्तु
षड्भिस्तपो नाम तपस्विजुष्टः।
तिष्ठन्ति यत्रासुर साध्यवर्या
येषां हि निश्वासमरुत् त्वसह्यः॥ २३

तब देवताओंका ब्रह्मलोकमें रहना सुनकर धुन्धुने दैत्योंसे कहा—दैत्यो! इन्द्रसहित देवोंको जीतनेके लिये हमलोग (अब) ब्रह्मलोक चलें। धुन्धुका वचन सुनकर उन दैत्योंने कहा—लोकपाल! हमलोगोंमें वह गति नहीं है, जिससे पितामह (ब्रह्मा)-के लोकमें जा सकें। (वहाँका) मार्ग बहुत दूर एवं बीहड़ है। यहाँसे हजारों योजन दूर महर्षियोंसे सेवित 'मह' नामका लोक है। उन ऋषियोंकी सहसा दृष्टि पड़ते ही समस्त दैत्य जल जाते हैं। उससे भी आगे कोटि योजन दूर 'जन' नामक एक लोक है जहाँ गोमाताएँ रहती हैं! महासुरेन्द्र! उनकी धूलि भी हमलोगोंका विनाश कर सकती है। उसके बाद छः करोड़ योजनकी दूरीपर तपस्वियोंसे भरा 'तप' लोक है। असुरराज! वहाँ श्रेष्ठ साध्यगण रहते हैं। उनका निःश्वास-वायु असहनीय है॥ १९—२३॥

ततोऽपरो योजनकोटिभिस्तु
त्रिंशद्भिरादित्यसहस्रदीप्तिः ।
सत्याभिधानो भगवन्निवासो
वरप्रदोऽभूद् भवतो हि योऽसौ॥ २४

यस्य वेदध्वनिं श्रुत्वा विकसन्ति सुरादयः।
संकोचमसुरा यान्ति ये च तेषां सधर्मिणः॥ २५

तस्मान्मा त्वं महाबाहो मतिमेतां समादधः।
वैराजभुवनं धुन्धो दुरारोहं सदा नृभिः॥ २६

तेषां वचनमाकर्ण्य धुन्धुः प्रोवाच दानवान्।
गन्तुकामः स सदनं ब्रह्मणो जेतुमीश्वरान्॥ २७
कथं तु कर्मणा केन गम्यते दानवर्षभाः।
कथं तत्र सहस्राक्षः सम्प्राप्तः सह दैवतैः॥ २८

ते धुन्धुना दानवेन्द्राः पृष्टाः प्रोचुर्वचोऽधिपम्।
कर्म तन्न वयं विद्मः शुक्रस्तद् वेत्त्यसंशयम्॥ २९

दैत्यानां वचनं श्रुत्वा धुन्धुर्दैत्यपुरोहितम्।
पप्रच्छ शुक्रं किं कर्म कृत्वा ब्रह्मसदोगतिः॥ ३०

ततोऽस्मै कथयामास दैत्याचार्यः कलिप्रिय।
शक्रस्य चरितं श्रीमान् पुरा वृत्ररिपोः किल॥ ३१

शक्रः शतं तु पुण्यानां क्रतूनामयजत् पुरा।
दैत्येन्द्र वाजिमेधानां तेन ब्रह्मसदो गतः॥ ३२

तद्वाक्यं दानवपतिः श्रुत्वा शुक्रस्य वीर्यवान्।
यष्टुं तुरगमेधानां चकार मतिमुत्तमाम्।
अथामन्त्र्यासुरगुरुं दानवांश्चाप्यनुत्तमान्॥ ३३

प्रोवाच यक्ष्येऽहं यज्ञैरश्वमेधैः सदक्षिणैः।
तदागच्छध्वमवनीं गच्छामो वसुधाधिपान्॥ ३४

विजित्य हयमेधान् वै यथाकामगुणान्वितान्।
आहूयन्तां च निधयस्त्वाज्ञाप्यन्तां च गुह्यकाः॥ ३५

आमन्त्र्यन्तां च ऋषयः प्रयामो देविकातटम्।
सा हि पुण्या सरिच्छ्रेष्ठा सर्वसिद्धिकरी शुभा।
स्थानं प्राचीनमासाद्य वाजिमेधान् यजामहे॥ ३६

इत्थं सुरारेर्वचनं निशम्यासुरयाजकः।
बाढमित्यब्रवीद्धृष्टो निधयः संदिदेश सः॥ ३७

उसके बाद तीस करोड़ योजनकी दूरीपर हजारों सूर्योंके समान प्रदीप्त 'सत्य'नामका लोक है। वह लोक उन्हीं भगवान्का निवास-स्थल है, जिन्होंने आपको वर दिया था। जिनकी वेदध्वनि सुनकर देवता आदि विकसित हो जाते हैं तथा दैत्य और उनके समान धर्मवाले संकुचित (म्लान) हो जाते हैं। अतः महाबाहु धुन्धो! आप ऐसी बुद्धि न करें; क्योंकि ब्रह्मलोक मनुष्यों (एवं दैत्यों)-के लिये सदैव अगम्य है। उनकी बात सुनकर (भी) देवोंको जीतनेके लिये ब्रह्मलोक जानेकी इच्छावाले धुन्धुने दानवोंसे (फिर) कहा— ॥ २४—२७ ॥

दानवश्रेष्ठो! वहाँ कैसे और किस कर्मसे जाया जा सकता है? इन्द्र देवोंके साथ वहाँ कैसे पहुँचे? धुन्धुके पूछनेपर उन श्रेष्ठ दानवोंने कहा—हमलोग उस कर्मको तो नहीं जानते, किंतु शुक्राचार्य उसको निःसंदेह जानते हैं। दैत्योंका वचन सुनकर धुन्धुने दैत्योंके पुरोहित शुक्राचार्यजीसे पूछा—(आचार्यजी!) किस कर्मको करनेसे ब्रह्मलोकमें जाया जा सकता है? (पुलस्त्यजी कहते हैं—) कलिप्रिय! उसके बाद दैत्योंके गुरु श्रीमान् शुक्राचार्यने उससे वृत्रशत्रु इन्द्रका चरित कहा। उन्होंने कहा—दैत्येन्द्र! पहले समयमें इन्द्रने सौ पवित्र अश्वमेध-यज्ञ किये थे। इसीसे वे ब्रह्मलोक गये॥ २८—३२ ॥

शुक्राचार्यके उस वाक्यको सुनकर बलवान् दानवपतिने अश्वमेधयज्ञ करनेकी उत्कट इच्छा की। उसके बाद दैत्योंके गुरुको और अच्छे दैत्योंको बुलाकर उसने कहा—मैं दक्षिणासहित अश्वमेधयज्ञोंका अनुष्ठान करूँगा। इसलिये आओ, हमलोग पृथ्वीपर चलें और राजाओंको जीतकर इच्छानुकूल सामग्री एवं विधिसे पूर्ण अश्वमेधोंका अनुष्ठान करें। निधियोंको बुलाओ एवं गुह्यकोंको आदेश दे दो और ऋषियोंको आमन्त्रित करो। हमलोग देविकाके तटपर चलें। वह पुनीत उत्तम नदी कल्याणदायिनी तथा सर्वसिद्धिकारिणी है। उस प्राचीन स्थानपर पहुँचकर हम अश्वमेधयज्ञ करेंगे॥ ३३—३६ ॥

देवोंके शत्रु धुन्धुके उस वचनको सुनकर दैत्योंके यज्ञ करानेवाले शुक्राचार्यने 'ठीक है'—ऐसा कहा और प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने निधियोंको आदेश दे दिया। उसके

ततो धुन्धुर्देविकायाः प्राचीने पापनाशने।
भार्गवेन्द्रेण शुक्रेण वाजिमेधाय दीक्षितः॥ ३८

सदस्या ऋत्विजश्चापि तत्रासन् भार्गवा द्विजाः।
शुक्रस्यानुमते ब्रह्मञ् शुक्रशिष्याश्च पण्डिताः॥ ३९

यज्ञभागभुजस्तत्र स्वर्भानुप्रमुखा मुने।
कृताश्चासुरनाथेन शुक्रस्यानुमतेऽसुराः॥ ४०

ततः प्रवृत्तो यज्ञस्तु समुत्सृष्टस्तथा हयः।
हयस्यानुययौ श्रीमानसिलोमा महासुरः॥ ४१

ततोऽग्निधूमेन मही सशैला
व्याप्ता दिशः खं विदिशश्च पूर्णाः।
तेनोग्रगन्धेन दिवस्पृशेन
मरुद्ववौ ब्रह्मलोके महर्षे॥ ४२

तं गन्धमाघ्राय सुरा विषण्णा
जानन्त धुन्धुं हयमेधदीक्षितम्।
ततः शरण्यं शरणं जनार्दनं
जग्मुः सशक्रा जगतः परायणम्॥ ४३

प्रणम्य वरदं देवं पद्मनाभं जनार्दनम्।
प्रोचुः सर्वे सुरगणा भयगद्गदया गिरा॥ ४४

भगवन् देवदेवेश चराचरपरायण।
विज्ञप्तिः श्रूयतां विष्णो सुराणामार्तिनाशन॥ ४५

धुन्धुनामासुरपतिर्बलवान् वरबृंहितः।
सर्वान् सुरान् विनिर्जित्य त्रैलोक्यमहरद् बलिः॥ ४६

ऋते पिनाकिनो देवात् त्राताऽस्मान् न यतो हरे।
अतो विवृद्धिमगमद् यथा व्याधिरुपेक्षितः॥ ४७

साम्प्रतं ब्रह्मलोकस्थानपि जेतुं समुद्यतः।
शुक्रस्य मतमास्थाय सोऽश्वमेधाय दीक्षितः॥ ४८

शतं क्रतूनामिष्ट्वाऽसौ ब्रह्मलोकं महासुरः।
आरोढुमिच्छति वशी विजेतुं त्रिदशानपि॥ ४९

बाद भार्गवश्रेष्ठ शुक्राचार्यने पापोंका नाश करनेवाले देविकाके प्राचीन तटपर अश्वमेधयज्ञके (अनुष्ठानके) लिये धुन्धुको दीक्षित किया। ब्रह्मन्! शुक्राचार्यकी अनुमतिसे उनके शिष्य तथा भार्गव-गोत्रीय विद्वान् ब्राह्मण उस यज्ञमें सदस्य एवं ऋत्विक् बने। मुने! शुक्राचार्यकी अनुमतिसे दैत्यस्वामीने स्वर्भानु आदि असुरोंको (देवोंके स्थानपर) यज्ञभागका रक्षक और भोक्ता बनाया। उसके बाद यज्ञ आरम्भ हुआ और (दिग्विजय-सूचक) अश्व छोड़ा गया। असिलोमा नामका विराट् दैत्य घोड़ेके पीछे (उसकी रक्षाके लिये) चला॥ ३७—४१॥

महर्षे! उसके बाद यज्ञके धूएँसे पहाड़ोंके साथ पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ और विदिशाएँ भर गयीं। आकाशमें फैले उस उत्कट सुगन्धवाले धूएँसे मिली हुई वायु ब्रह्मलोकमें बहने लगी। उस गन्धको सूँघकर देवगण उदास हो गये। उन्हें यह पता चल गया कि धुन्धुने अश्वमेधकी दीक्षा ग्रहण की है (और यज्ञानुष्ठान कर रहा है)। उसके बाद वे इन्द्रसहित संसारके आश्रय और शरण देनेवाले भगवान् जनार्दनकी शरणमें गये। कमलनालको धारण करनेवाले वरदानी जनार्दन देवको प्रणाम कर सभी देवोंने भयसे विकल वाणीमें कहा—देवोंके दुःखको दूर करनेवाले तथा चर और अचरके कल्याण करनेमें नित्य उद्यत रहनेवाले देवाधिदेव विष्णो! आप हमारा निवेदन सुनें—॥ ४२—४५॥

धुन्धु नामका बलवान् दैत्यपति शंकरसे वर प्राप्त कर लेनेके कारण बढ़ गया है। उस बलवान्ने सभी देवोंको पराजितकर (उनसे) त्रिलोकी (-के अधिकार)-को छीन लिया है। हरे! पिनाक धारण करनेवाले शंकरके सिवा हम देवोंका कोई रक्षक न होनेसे वह असुर उपेक्षित रोगकी तरह (बहुत) बढ़ गया है। इस समय वह ब्रह्मलोकमें शरण लिये हुए रहनेपर भी हमलोगोंको (फिर) जीतनेके लिये तैयार होकर शुक्राचार्यके मतके अनुसार अश्वमेधयज्ञमें दीक्षित हो गया है। वह दैत्य (धुन्धु) सौ अश्वमेधयज्ञ करके देवताओंपर विजय पानेके लिये ब्रह्मलोकमें आक्रमण करना चाहता है।

तस्मादकालहीनं तु चिन्तयस्व जगद्गुरो।
उपायं मखविध्वंसे येन स्याम सुनिर्वृताः॥ ५०

श्रुत्वा सुराणां वचनं भगवान् मधुसूदनः।
दत्त्वाऽभयं महाबाहुः प्रेषयामास साम्प्रतम्।
विसृज्य देवताः सर्वा ज्ञात्वाऽजेयं महासुरम्॥ ५१
बन्धनाय मतिं चक्रे धुन्धोर्धर्मध्वजस्य वै।
ततः कृत्वा स भगवान् वामनं रूपमीश्वरः॥ ५२
देहं त्यक्त्वा निरालम्बं काष्ठवद् देविकाजले।
क्षणान्मज्जंस्तथोन्मज्जन्मुक्तकेशो यदृच्छया॥ ५३
दृष्टोऽथ दैत्यपतिना दैत्यैश्चान्यैस्तथर्षिभिः।
ततः कर्म परित्यज्य यज्ञियं ब्राह्मणोत्तमाः॥ ५४
समुत्तारयितुं विप्रमाद्रवन्त समाकुलाः।
सदस्या यजमानश्च ऋत्विजोऽथ महौजसः॥ ५५
निमज्जमानमुज्जह्रुः सर्वे ते वामनं द्विजम्।
समुत्तार्य प्रसन्नास्ते प्रप्रच्छुः सर्व एव हि।
किमर्थं पतितोऽसीह केनाक्षिप्तोऽसि नो वद॥ ५६
तेषामाकर्ण्य वचनं कम्पमानो मुहुर्मुहुः।
प्राह धुन्धुपुरोगांस्ताञ्छ्रूयतामत्र कारणम्॥ ५७
ब्राह्मणो गुणवानासीत् प्रभास इति विश्रुतः।
सर्वशास्त्रार्थवित् प्राज्ञो गोत्रतश्चापि वारुणः॥ ५८
तस्य पुत्रद्वयं जातं मन्दप्रज्ञं सुदुःखितम्।
तत्र ज्येष्ठो मम भ्राता कनीयानपरस्त्वहम्॥ ५९
नेत्रभास इति ख्यातो ज्येष्ठो भ्राता ममासुर।
मम नाम पिता चक्रे गतिभासेति कौतुकात्॥ ६०
रम्यश्चावसथो धुन्धो शुभश्चासीत् पितुर्मम।
त्रिविष्टपगुणैर्युक्तश्चारुरूपो महासुर॥ ६१
ततः कालेन महता आवयोः स पिता मृतः।
तस्यौर्ध्वदेहिकं कृत्वा गृहमावां समागतौ॥ ६२
ततो मयोक्तः स भ्राता विभजाम गृहं वयम्।
तेनोक्तो नैव भवतो विद्यते भाग इत्यहम्॥ ६३
कुब्जवामनखञ्जानां क्लीबानां श्वित्रिणामपि।
उन्मत्तानां तथान्धानां धनभागो न विद्यते॥ ६४

इसलिये जगद्गुरो! आप उसके यज्ञको विध्वस्त करनेका उपाय बिना समय बिताये (तत्काल) सोचें, जिससे हमलोग निश्चिन्त हो सकें॥ ४६—५०॥

सभी देवताओंको अभयदान देकर उन महाबाहुने उन देवताओंको लौटा दिया और उस महान् धर्मध्वजी (धर्मके नामपर पाखण्ड रचनेवाले) दैत्य धुन्धुको अजेय समझकर उन्होंने (श्रीहरिने) उसे बाँधनेका विचार किया। उसके बाद भगवान् विष्णुने बौनाका रूप धर लिया और देविका नदीके जलमें (अपनी) देहको लकड़ीकी तरह निरालम्ब छोड़ दिया। खुले हुए केशोंवाले वे क्षणमात्रमें अपने-आप डूबने-उतराने लगे। उसके बाद दैत्यपतिने तथा अन्य दैत्यों एवं ऋषियोंने उन्हें देखा। उसके बाद व्याकुल होकर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण यज्ञके सभी काम छोड़कर उस ब्राह्मणको निकालनेके लिये दौड़े। सभी सदस्य, यजमान एवं अति तेजस्वी ऋत्विजोंने डूबते हुए बौनाके आकारवाले ब्राह्मणको (नदीके जलसे बाहर) निकाला और उससे पूछा—हमें यह बतलाओ कि तुम यहाँ क्यों गिरे अथवा तुम्हें किसने फेंका?॥ ५१—५६॥

उसने उनके वचनको सुनकर बार-बार काँपते हुए धुन्धु आदिसे कहा—आपलोग इसका कारण सुनें। वरुण-गोत्रमें उत्पन्न प्रभास नामके एक ब्राह्मण थे। वे सभी शास्त्रोंके तात्पर्यको जाननेवाले और बुद्धिमान् थे। उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। वे दोनों ही अल्पबुद्धि और अत्यन्त दुःखग्रस्त थे। उनमें मेरा भाई बड़ा और मैं छोटा हूँ। अये दैत्य! मेरा बड़ा भाई 'नेत्रभास' नामसे प्रसिद्ध है। मेरे पिताने कुतूहलवश मेरा नाम 'गतिभास' रख दिया॥ ५७—६०॥

महासुर धुन्धो! मेरे पिताका निवास-स्थान सुन्दर, आनन्ददायक, स्वर्गीय गुणोंसे युक्त एवं मनोहर था। उसके बाद बहुत दिनोंके पश्चात् हम दोनोंके पिता स्वर्ग चले गये। उनकी दाह-संस्कारादि-श्राद्धक्रिया करके हम दोनों भाई घर आ गये। उसके बाद मैंने (अपने उन) बड़े भाईसे कहा—हम दोनों आपसमें घरका बँटवारा कर लें। उसने मुझसे कहा—तुम्हारा हिस्सा नहीं है; क्योंकि कुबड़े, बौने, लँगड़े, हिजड़े, चरकवाले, पागल और अन्धोंका धनमें हिस्सा नहीं होता है। उन्हें केवल सोने

शय्यासनस्थानमात्रं स्वेच्छयान्नभुजक्रिया।
एतावद् दीयते तेभ्यो नार्थभागहरा हि ते॥ ६५

एवमुक्ते मया सोक्तः किमर्थं पैतृकाद् गृहात्।
धनार्धभागमर्हामि नाहं न्यायेन केन वै॥ ६६

इत्युक्तवति वाक्येऽसौ भ्राता मे कोपसंयुतः।
समुत्क्षिप्याक्षिपन्नद्यामस्यां मामिति कारणात्॥ ६७

ममास्यां निम्नगायां तु मध्येन प्लवतो गतः।
कालः संवत्सराख्यस्तु युष्माभिरिह चोद्धृतः॥ ६८

के भवन्तोऽत्र सम्प्राप्ताः सस्नेहा बान्धवा इव।
कोऽयं च शक्रप्रतिमो दीक्षितो यो महाभुजः॥ ६९

तन्मे सर्वं समाख्यात याथातथ्यं तपोधनाः।
महर्द्धिसंयुता यूयं सानुकम्पाश्च मे भृशम्॥ ७०

तद् वामनवचः श्रुत्वा भार्गवा द्विजसत्तमाः।
प्रोचुर्वयं द्विजा ब्रह्मन् गोत्रतश्चापि भार्गवाः॥ ७१

असावपि महातेजा धुन्धुर्नाम महासुरः।
दाता भोक्ता विभक्ता च दीक्षितो यज्ञकर्मणि॥ ७२

इत्येवमुक्त्वा देवेशं वामनं भार्गवास्ततः।
प्रोचुर्दैत्यपतिं सर्वे वामनार्थकरं वचः॥ ७३

दीयतामस्य दैत्येन्द्र सर्वोपस्करसंयुतम्।
श्रीमदावसथं दास्यो रत्नानि विविधानि च॥ ७४

इति द्विजानां वचनं श्रुत्वा दैत्यपतिर्वचः।
प्राह द्विजेन्द्र ते दद्मि यावदिच्छसि वै धनम्॥ ७५

दास्ये गृहं हिरण्यं च वाजिनः स्यन्दनान् गजान्।
प्रयच्छाम्यद्य भवतो व्रियतामीप्सितं विभो॥ ७६

तद्वाक्यं दानवपतेः श्रुत्वा देवोऽथ वामनः।
प्राहासुरपतिं धुन्धुं स्वार्थसिद्धिकरं वचः॥ ७७

सोदरेणापि हि भ्रात्रा ह्रियन्ते यस्य सम्पदः।
तस्याक्षमस्य यद्दत्तं किमन्यो न हरिष्यति॥ ७८

भरका स्थान तथा अपनी इच्छाके अनुसार अन्नभोगका अधिकार दिया जाता है। वे सम्पत्तिके भागी—अधिकारी नहीं होते॥ ६१—६५॥

ऐसा कहनेपर मैंने उससे कहा कि अपने पिताके घरके धनके आधे हिस्सेका अधिकारी मैं किस न्यायसे और क्यों नहीं हूँ? ऐसा अभिप्राय-पूर्ण वाक्य कहनेपर क्रोधमें आकर मेरे भाईने मुझे उठाकर इस नदीमें फेंक दिया। मुझे इस नदीमें तैरते हुए एक वर्षका समय बीत गया। (अब) आपलोगोंने यहाँ मेरा उद्धार किया है। प्रेमी बान्धवोंके समान यहाँ उपस्थित आपलोग कौन हैं तथा यज्ञके लिये दीक्षित इन्द्रके समान ये महाबलशाली कौन हैं? तपोधनो! आपलोग यह सब ठीक-ठीक मुझे बतलाइये। आपलोग महान् ऐश्वर्यशाली और मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह करनेवाले हैं॥ ६६—७०॥

वामनके उस वचनको सुनकर भार्गवकुलके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने कहा—ब्रह्मन्! हमलोग भार्गव गोत्रवाले ब्राह्मण हैं। ये अति तेजस्वी दाता, भोक्ता और विभक्ता धुन्धु नामके महान् असुर हैं। ये यज्ञकर्ममें दीक्षित हुए हैं। देवेश वामनसे ऐसा कहकर सभी भार्गव-गोत्रीय (ब्राह्मणोंने) असुरस्वामी धुन्धुसे वामनके प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला वचन कहा—दैत्येन्द्र! आप इन्हें सम्पूर्ण साज-सज्जासे पूर्ण सम्पत्तिसे सम्पन्न घर, दासियाँ और विविध प्रकारके रत्न (आदि) प्रदान करें। ब्राह्मणोंके उस वचनको सुनकर असुरराज धुन्धुने यह वचन कहा—द्विजेन्द्र! मैं आपको आपकी इच्छाके अनुकूल धन दूँगा॥ ७१—७५॥

विभो! आप अपने अभीष्ट पदार्थकी माँग करें। मैं आज आपको घर, सोना, घोड़े, रथ एवं हाथी प्रदान करूँगा। दैत्य-स्वामीके उस वाक्यको सुनकर (विप्ररूप धारण करनेवाले) भगवान् वामनने दानवपति धुन्धुसे अपने स्वार्थको साधनेवाला वचन कहा—सहोदर भाईने जिसकी (पैतृक) सम्पत्तिको ले लिया उस असमर्थको जो कुछ मिलेगा उसे क्या कोई दूसरा नहीं छीन लेगा?

दासीदासांश्च भृत्यांश्च गृहं रत्ने परिच्छदम्।
समर्थेषु द्विजेन्द्रेषु प्रयच्छस्व महाभुज॥ ७९

मम प्रमाणमालोक्य मामकं च पदत्रयम्।
सम्प्रयच्छस्व दैत्येन्द्र नाधिकं रक्षितुं क्षमः॥ ८०

महाबाहो! आप दिये हुएकी रक्षा करनेमें समर्थ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दासी, दास, नौकर, घर, रत्न और अच्छे वस्त्र दें। दैत्येन्द्र! मुझे तो मेरा परिमाण देखकर (केवल) तीन पग (भूमि) ही दे दें। (इससे) अधिककी रक्षा करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ॥ ७६—८०॥

इत्येवमुक्ते वचने महात्मना
विहस्य दैत्याधिपतिः स ऋत्विजः।
प्रादाद् द्विजेन्द्राय पदत्रयं तदा
यदा स नान्यं प्रगृहाण किंचित्॥ ८१
क्रमत्रयं तावदवेक्ष्य दत्तं
महासुरेन्द्रेण विभुर्यशस्वी।
चक्रे ततो लङ्घयितुं त्रिलोकीं
त्रिविक्रमं रूपमनन्तशक्तिः॥ ८२
कृत्वा च रूपं दितिजांश्च हत्वा
प्रणम्य चर्षीन् प्रथमक्रमेण।
महीं महीध्रैः सहितां सहार्णवां
जहार रत्नाकरपत्तनैर्युताम्॥ ८३

उन (विप्र वामन) महात्माके ऐसा वचन कहनेपर, जब उन्होंने और कुछ ग्रहण नहीं किया तब ऋत्विजोंसहित दानवपतिने हँसकर उन द्विजेन्द्रको तीन पग (भूमि) प्रदान कर दी। महान् असुरेन्द्रद्वारा तीन पग भूमि प्रदान की हुई देखकर अनन्त शक्तिवाले यशस्वी एवं विभु वामन भगवान्ने तीनों लोकोंको नाप लेनेके लिये त्रिविक्रम (विराट्) रूप धारण कर लिया। (विशाल) रूप धर लेनेके बाद उन्होंने दैत्योंका वध कर ऋषियोंको प्रणाम किया और प्रथम पादन्यासमें ही पर्वत, सागर, रत्नोंकी खान एवं नगरोंसे युक्त पृथ्वीको नापकर ले लिया॥ ८१—८३॥

भुवं सनाकं त्रिदशाधिवासं
सोमार्कऋक्षैरभिमण्डितं नभः।
देवो द्वितीयेन जहार वेगात्
क्रमेण देवप्रियमीप्सुरीश्वरः॥ ८४
क्रमं तृतीयं न यदाऽस्य पूरितं
तदाऽतिकोपाद् दनुपुङ्गवस्य।
पपात पृष्ठे भगवांस्त्रिविक्रमो
मेरुप्रमाणेन तु विग्रहेण॥ ८५
पतता वासुदेवेन दानवोपरि नारद।
त्रिंशद्योजनसाहस्त्री भूमेर्गर्ता दृढीकृता॥ ८६

देवताओंका प्रिय करनेकी इच्छावाले भगवान् वामनदेवने द्वितीय पगसे तुरंत ही देवताओंके निवास—स्वर्गके साथ ही भुवर्लोक, चन्द्र, सूर्य एवं नक्षत्रोंसे मण्डित आकाशको भी ग्रहण कर लिया। उनका तृतीय पादक्रम जब पूरा नहीं हुआ तो अत्यन्त क्रोधसे भगवान् त्रिविक्रम मेरुके समान शरीरसे दानवश्रेष्ठकी पीठपर गिर पड़े। नारदजी! वासुदेवके दानवके ऊपर गिरनेसे भूमिमें हजार योजनका सुदृढ़ गड्ढा बन गया॥ ८४—८६॥

ततो दैत्यं समुत्पाट्य तस्यां प्रक्षिप्य वेगतः।
अवर्षत् सिकतावृष्ट्या तां गर्तामपूरयत॥ ८७
ततः स्वर्गं सहस्त्राक्षो वासुदेवप्रसादतः।
सुराश्च सर्वे त्रैलोक्यमवापुर्निरुपद्रवाः॥ ८८
भगवानपि दैत्येन्द्रं प्रक्षिप्य सिकतार्णवे।
कालिन्द्या रूपमाधाय तत्रैवान्तरधीयत॥ ८९
एवं पुरा विष्णुरभूच्च वामनो
धुन्धुं विजेतुं च त्रिविक्रमोऽभूत्।
यस्मिन् स दैत्येन्द्रसुतो जगाम
महाश्रमे पुण्ययुतो महर्षे॥ ९०

उसके बाद उन्होंने दैत्यको उठाकर जोरसे उसमें फेंक दिया और बालूकी बरसासे उस गड्ढेको भर दिया। उसके बाद वासुदेवकी कृपासे इन्द्रने स्वर्ग पा लिया और उपद्रवोंसे रहित सम्पूर्ण देवोंको त्रिलोकीकी प्राप्ति हो गयी। कालिन्दी भी अपना स्वरूप धारणकर वहीं अन्तर्हित हो गयी। प्राचीन कालमें इस प्रकार धुन्धुको जीतनेके लिये विष्णु भगवान् वामन तथा (उसके बाद) त्रिविक्रम बने। महर्षि नारदजी! वह पुण्यात्मा दैत्येन्द्रपुत्र प्रह्लाद (तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें) उसी आश्रममें गया॥ ८७—९०॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७८॥

उन्नासीवाँ अध्याय

पुरूरवाको रूपकी प्राप्ति और उसी सन्दर्भमें प्रेत और वणिक्‌की भेंट तथा परस्पर वृत्तान्तका कहना एवं श्रवण-द्वादशीका माहात्म्य, गयामें श्राद्ध करनेसे प्रेत-योनिसे मुक्ति और पुरूरवाको सुरूपकी प्राप्ति

पुलस्त्य उवाच

कालिन्दीसलिले स्नात्वा पूजयित्वा त्रिविक्रमम्।
उपोष्य रजनीमेकां लिङ्गभेदं गिरिं ययौ॥ १

तत्र स्नात्वा च विमले भवं दृष्ट्वा च भक्तितः।
उपोष्य रजनीमेकां तीर्थं केदारमाव्रजत्॥ २

तत्र स्नात्वाऽर्च्य चेशानं माधवं चाप्यभेदतः।
उषित्वा वासरान् सप्त कुब्जाम्रं प्रजगाम ह॥ ३

ततः सुतीर्थे स्नात्वा च सोपवासी जितेन्द्रियः।
हृषीकेशं समभ्यर्च्य ययौ बदरिकाश्रमम्॥ ४

तत्रोष्य नारायणमर्च्य भक्त्या
स्नात्वाऽथ विद्वान् स सरस्वतीजले।
वराहतीर्थे गरुडासनं स
दृष्ट्वाऽथ सम्पूज्य सुभक्तिमांश्च॥ ५

भद्रकर्णे ततो गत्वा जयेशं शशिशेखरम्।
दृष्ट्वा सम्पूज्य च शिवं विपाशामभितो ययौ॥ ६

तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य देवदेवं द्विजप्रियम्।
उपवासी इरावत्यां ददर्श परमेश्वरम्॥ ७

यमाराध्य द्विजश्रेष्ठ शाकले वै पुरूरवाः।
समवाप परं रूपमैश्वर्यं च सुदुर्लभम्॥ ८

कुष्ठरोगाभिभूतश्च यं समाराध्य वै भृगुः।
आरोग्यमतुलं प्राप संतानमपि चाक्षयम्॥ ९

नारद उवाच

कथं पुरूरवा विष्णुमाराध्य द्विजसत्तम।
विरूपत्वं समुत्सृज्य रूपं प्राप श्रिया सह॥ १०

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्।
पूर्वं त्रेतायुगस्यादौ यथावृत्तं तपोधन॥ ११

पुलस्त्यजी बोले—यमुनाजलमें स्नानकर प्रह्लादने त्रिविक्रम भगवान्‌की पूजा की। एक रात उपवास करनेके बाद (फिर) वे लिङ्गभेद नामक पर्वतपर चले गये। वहाँ विमल जलमें स्नानकर उन्होंने भक्तिसे भगवान् शंकरका दर्शन किया; एवं वहाँ भी एक रात निवासकर केदार नामके तीर्थमें गये। वहाँ स्नान करनेके बाद (उन्होंने) अभेदबुद्धिसे शिव एवं विष्णुका पूजन किया, (वहाँ) सात दिनोंतक रहकर कुब्जाम्रमें चले गये। उसके बाद उस सुन्दर तीर्थमें स्नानकर उपवास करनेवाले इन्द्रियजयी (प्रह्लाद) हृषीकेशका अर्चनकर बदरिकाश्रम चले गये॥ १—४॥

वहाँ रहते हुए सरस्वतीके जलमें स्नानकर उन विद्वान् (प्रह्लादजी)-ने नारायणका पूजन किया। फिर अत्यन्त भक्तिके साथ उन्होंने वराहतीर्थमें गरुडासन विष्णुका दर्शन और पूजन किया। वहाँसे भद्रकर्णमें पहुँचकर जयेश शशिशेखर शिवका दर्शन तथा पूजन करके बादमें विपाशाकी ओर चले गये। उस विपाशामें स्नानके बाद द्विजप्रिय देवाधिदेवका अर्चन कर (प्रह्लाद) उपवास करते हुए इरावतीकी ओर चले गये। द्विजोत्तम! (उन्होंने) वहाँ उन भगवान्‌का दर्शन किया, जिनकी शाकलमें आराधना करनेसे (पहले) पुरूरवाको उत्तम रूप एवं सुदुर्लभ ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था। कुष्ठरोगसे अभिभूत भृगुने उन परमेश्वरकी आराधना करके अतुलनीय नीरोगता और अक्षय सन्तान प्राप्त की थी॥ ५—९॥

नारदने पूछा—द्विजोत्तम! पुरूरवाने विष्णुकी आराधना करनेके बाद विरूपताको छोड़कर ऐश्वर्यके साथ सुदुर्लभ सुन्दर रूप कैसे प्राप्त किया?॥ १०॥

पुलस्त्यजी बोले—तपोधन! सुनिये; मैं प्राचीन कालमें त्रेतायुगके आदिमें घटित, पापको नष्ट करनेवाली कथा

मद्रदेश इति ख्यातो देशो वै ब्रह्मणः सुत।
शाकलं नाम नगरं ख्यातं स्थानीयमुत्तमम्॥ १२
तस्मिन् विपणिवृत्तिस्थः सुधर्माख्योऽभवद् वणिक्।
धनाढ्यो गुणवान् भोगी नानाशास्त्रविशारदः॥ १३
स त्वेकदा निजाद् राष्ट्रात् सुराष्ट्रं गन्तुमुद्यतः।
सार्थेन महता युक्तो नानाविपणपण्यवान्॥ १४
गच्छतः पथि तस्याथ मरुभूमौ कलिप्रिय।
अभवद् दस्युतो रात्रौ अवस्कन्दोऽतिदुःसहः॥ १५
ततः स हृतसर्वस्वो वणिग्दुःखसमन्वितः।
असहायो मरौ तस्मिंश्चचारोन्मत्तवद् वशी॥ १६
चरता तदरण्यं वै दुःखाक्रान्तेन नारद।
आत्मा इव शमीवृक्षो मरावासादितः शुभः॥ १७
तं मृगैः पक्षिभिश्चैवं हीनं दृष्ट्वा शमीतरुम्।
श्रान्तः क्षुत्तृट्परीतात्मा तस्याधः समुपाविशत्॥ १८
सुप्तश्चापि सुविश्रान्तो मध्याह्ने पुनरुत्थितः।
समपश्यदथायान्तं प्रेतं प्रेतशतैर्वृतम्॥ १९
उह्यमानमथान्येन प्रेतेन प्रेतनायकम्।
पिण्डाशिभिश्च पुरतो धावद्भी रूक्षविग्रहैः॥ २०
अथाजगाम प्रेतोऽसौ पर्यटित्वा वनानि च।
उपागम्य शमीमूले वणिक्पुत्रं ददर्श सः॥ २१
स्वागतेनाभिवाद्यैनं समाभाष्य परस्परम्।
सुखोपविष्टश्छायायां पृष्ट्वाकुशलमाप्तवान्॥ २२
ततः प्रेताधिपतिना पृष्टः स तु वणिक्सखः।
कुत आगम्यते ब्रूहि क्व साधो वा गमिष्यसि॥ २३
कथं चेदं महारण्यं मृगपक्षिविवर्जितम्।
समापन्नोऽसि भद्रं ते सर्वमाख्यातुमर्हसि॥ २४

एवं प्रेताधिपतिना वणिक् पृष्टः समासतः।
सर्वमाख्यातवान् ब्रह्मन् स्वदेशधनविच्युतिम्॥ २५

तस्य श्रुत्वा स वृत्तान्तं तस्य दुःखेन दुःखितः।
वणिक्पुत्रं ततः प्राह प्रेतपालः स्वबन्धुवत्॥ २६

एवं गतेऽपि मा शोकं कर्तुमर्हसि सुव्रत।
भूयोऽप्यर्थाः भविष्यन्ति यदि भाग्यबलं तव॥ २७

कहता हूँ। ब्रह्मपुत्र! प्रसिद्ध मद्रदेशमें शाकल नामसे प्रसिद्ध उत्तम नगर है। वहाँ सुधर्मा नामका एक धनी, गुणशाली, भोगी एवं नाना शास्त्रोंमें निपुण व्यापारी रहता था। एक समय वह अपने देशसे सुराष्ट्र जानेको तैयार हुआ। कलिप्रिय! अनेक बेंची जानेवाली वस्तुओंसे युक्त व्यापारियोंके भारी समुदायके साथ जाते समय मार्गमें मरुभूमिमें रातमें (उसके ऊपर) डाकुओंका अत्यन्त उग्र असहनीय आक्रमण हुआ॥ ११—१५॥

उसके बाद सब कुछ लुट जानेसे दुखी हुआ वह असहाय वणिक् मरुभूमिमें पागलकी भाँति इधर-उधर घूमने लगा। नारदजी! दुःखसे ग्रसित होकर उस वनमें घूमते हुए उसे मरुभूमिमें अपने जनके समान एक सुन्दर शमीका वृक्ष मिला। थका तथा भूख-प्याससे अभिभूत हुआ वह वणिक् उस शमीवृक्षको पशु-पक्षियोंसे रहित देखकर उसके नीचे बैठ गया और सो गया तथा पूर्ण विश्राम कर दोपहरको जगा। उसके बाद उसने सैकड़ों प्रेतोंसे घिरे एक प्रेतको आते हुए देखा॥ १६—१९॥

प्रेतनायकको एक दूसरा प्रेत ढो रहा था और आगे रूखे शरीरवाले प्रेत दौड़ रहे थे। वनोंमें घूमनेके बाद वह प्रेत लौट रहा था। शमीवृक्षके नीचे आकर उसने वणिक्पुत्रको देखा। स्वागतके साथ उसे अभिवादन किया। फिर (दोनोंने) परस्पर वार्तालाप किया। इसके बाद वह प्रेत छायामें सुखपूर्वक बैठ गया और उसने उससे कुशल पूछी और जानी। उसके बाद प्रेताधिपतिने वणिक्-बन्धुसे पूछा—साधो! यह बतलाओ कि तुम कहाँसे आ रहे हो और कहाँ जाओगे?॥ २०—२३॥

तुम्हारा कल्याण हो। मुझे यह बताओ कि पशु एवं पक्षियोंसे रहित इस बड़े जंगलमें तुम कैसे आये? (पुलस्त्यजी कहते हैं—) ब्रह्मन्! प्रेतराजके इस प्रकार पूछनेपर वणिक्‌ने थोड़ेमें उसे अपने देशका एवं धन-नाशका पूरा विवरण कह सुनाया। उसका पूरा वृत्तान्त सुन लेनेके बाद उसके दुःखसे दुखी होकर प्रेतपालने अपने बन्धुके समान (उसे मानते हुए) उस वणिक्-पुत्रसे कहा—सुव्रत! ऐसा होनेपर भी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। यदि तुम्हारा भाग्य प्रबल होगा तो धन फिर हो जायगा॥ २४—२७॥

भाग्यक्षयेऽर्थाः क्षीयन्ते भवन्त्यभ्युदये पुनः।
क्षीणस्यास्य शरीरस्य चिन्तया नोदयो भवेत्॥ २८

इत्युच्चार्य समाहूय स्वान् भृत्यान् वाक्यमब्रवीत्।
अद्यातिथिरयं पूज्यः सदैव स्वजनो मम॥ २९

अस्मिन् दृष्टे वणिक्पुत्रे यथा स्वजनदर्शनम्।
अस्मिन् समागते प्रेताः प्रीतिर्जाता ममातुला॥ ३०

एवं हि वदतस्तस्य मृत्पात्रं सुदृढं नवम्।
दध्योदनेन सम्पूर्णमाजगाम यथेप्सितम्॥ ३१

तथा नवा च सुदृढा सम्पूर्णा परमाम्भसा।
वारिधानी च सम्प्राप्ता प्रेतानामग्रतः स्थिता॥ ३२

(देखो,) भाग्यके क्षय होनेपर धनोंका क्षय हो जाता है और फिर भाग्योदय हो जानेपर पुनः धन प्राप्त हो जाते हैं। चिन्तासे क्षीण हुए शरीरका उत्थान (वृद्धि) नहीं होता। ऐसा कहकर उसने अपने सेवकोंको बुलाया और उनसे कहा—मेरे अपने जनके समान इस अतिथिका सब प्रकारसे सत्कार करो। प्रेतो! स्वजनदर्शनके समान ही मुझे इस वणिक्पुत्रका दर्शन हुआ है। इसके मिलनेसे मुझे अत्यधिक प्रीति प्राप्त हुई है। उसके ऐसा कहनेपर इच्छाभर (भोजन-योग्य) दही और भातसे भरा अत्यन्त दृढ़ एक नया मिट्टीका पात्र आ गया। इसी प्रकार निर्मल शीतल जलसे भरा एक पानीका पात्र भी उन प्रेतोंके सामने उपस्थित हो गया॥ २८—३२॥

तमागतं ससलिलमन्नं वीक्ष्य महामतिः।
प्राहोत्तिष्ठ वणिक्पुत्र त्वमाह्निकमुपाचर॥ ३३
ततस्तु वारिधान्यास्तौ सलिलेन विधानतः।
कृताह्निकावुभौ जातौ वणिक् प्रेतपतिस्तथा॥ ३४
ततो वणिक्सुतायादौ दध्योदनमथेच्छया।
दत्त्वा तेभ्यश्च सर्वेभ्यः प्रेतेभ्यो व्यददात् ततः॥ ३५
भुक्तवत्सु च सर्वेषु कामतोऽम्भसि सेविते।
अनन्तरं स बुभुजे प्रेतपालो वराशनम्॥ ३६

उस अन्न एवं जलको प्रस्तुत हुए देखकर महामति प्रेतने कहा—वणिक्पुत्र! तुम उठो एवं दैनिक (नित्य) कृत्य करो। उसके बाद वणिक् एवं प्रेतपति—दोनोंने घड़ेके जलसे विधिपूर्वक नित्य-क्रिया सम्पन्न की। उसके बाद (प्रेतपतिने) पहले वणिक्पुत्रको पर्याप्त दही और भात दिया और तब उन प्रेतोंको दिया। सभीके इच्छाभर भोजन एवं जलपान करनेके बाद प्रेतनायकने उत्तम भोजन किया॥ ३३—३६॥

प्रकामतृप्ते प्रेते च वारिधान्योदनं तथा।
अन्तर्धानमगाद् ब्रह्मन् वणिक्पुत्रस्य पश्यतः॥ ३७

ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा स मतिमान् वणिक्।
पप्रच्छ तं प्रेतपालं कौतूहलमना वशी॥ ३८

अरण्ये निर्जने साधो कुतोऽन्नस्य समुद्भवः।
कुतश्च वारिधानीयं सम्पूर्णा परमाम्भसा॥ ३९

तथामी तव ये भृत्यास्त्वत्तस्ते वर्णतः कृशाः।
भवानपि च तेजस्वी किंचित्पुष्टवपुः शुभः॥ ४०

शुक्लवस्त्रपरीधानो बहूनां परिपालकः।
सर्वमेतन्ममाचक्ष्व को भवान् का शमी त्वियम्॥ ४१

(पुलस्त्यजी कहते हैं कि) ब्रह्मन्! प्रेतके भलीभाँति तृप्त हो जानेपर वणिक्पुत्रके देखते-ही-देखते जलपात्र और ओदन आँखोंसे ओझल हो गये। तब उस अत्यन्त ही आश्चर्यजनक दृश्यको देखकर उस बुद्धिमान् संयमी वणिक्ने उत्सुकतापूर्वक उस प्रेतपतिसे पूछा—साधो! इस निर्जन वनमें अन्न एवं उत्तम जलसे भरा घड़ा कहाँसे आ गया? अपेक्षाकृत तुम्हारे वर्णकी दृष्टिसे दुबले ये तुम्हारे भृत्य कौन हैं? कुछ हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले सुन्दर, तेजसे सम्पन्न और शुक्लवस्त्रधारी (हमारे-जैसे) बहुतोंकी परिरक्षा करनेवाले आप भी कौन हैं? आप मुझे यह सम्पूर्ण विवरण बतलाएँ कि आप कौन हैं एवं यह शमीवृक्ष कौन है?॥ ३७—४१॥

इत्थं वणिक्सुतवचः श्रुत्वाऽसौ प्रेतनायकः।
शशंस सर्वमस्याद्यं यथावृत्तं पुरातनम्॥ ४२
अहमासं पुरा विप्रः शाकले नगरोत्तमे।
सोमशर्मेति विख्यातो बहुलागर्भसम्भवः॥ ४३

वणिक्पुत्रके ऐसे वचनको सुनकर उस प्रेतनायकने उससे सारे पुराने वृत्तान्तको कहा। (उसने कहा—) प्राचीन कालमें उत्तम शाकल नामके श्रेष्ठ नगरमें बहुलाके गर्भसे उत्पन्न हुआ मैं सोमशर्मा—इस नामसे

ममास्ति च वणिक् श्रीमान् प्रातिवेश्यो महाधनः।
स तु सोमश्रवा नाम विष्णुभक्तो महायशाः॥ ४४

सोऽहं कदर्यो मूढात्मा धनेऽपि सति दुर्मतिः।
न ददामि द्विजातिभ्यो न चाश्नाम्यन्नमुत्तमम्॥ ४५

प्रमादाद् यदि भुञ्जामि दधिक्षीरघृतान्वितम्।
ततो रात्रौ नृभिर्घोरैस्ताड्यते मम विग्रहः॥ ४६

प्रातर्भवति मे घोरा मृत्युतुल्या विषूचिका।
न च कश्चिन्ममाभ्यासे तत्र तिष्ठति बान्धवः॥ ४७

कथं कथमपि प्राणा मया सम्प्रति धारिताः।
एवमेतादृशः पापी निवसाम्यतिनिर्घृणः॥ ४८

सौवीरतिलपिण्याकसक्तुशाकादिभोजनैः।
क्षपयामि कदन्नाद्यैरात्मानं कालयापनैः॥ ४९

एवं तत्रासतो मह्यं महान् कालोऽभ्यगादथ।
श्रवणद्वादशी नाम मासि भाद्रपदेऽभवत्॥ ५०

ततो नागरिको लोको गतः स्नातुं हि सङ्गमम्।
इरावत्या नड्वलाया ब्रह्मक्षत्रपुरस्सरः॥ ५१

प्रातिवेश्यप्रसङ्गेन तत्राप्यनुगतोऽस्म्यहम्।
कृतोपवासः शुचिमानेकादश्यां यतव्रतः॥ ५२

ततः सङ्गमतोयेन वारिधानीं दृढां नवाम्।
सम्पूर्णां वस्तुसंवीतां छत्रोपानहसंयुताम्॥ ५३

मृत्पात्रमपि मिष्टस्य पूर्णं दध्योदनस्य ह।
प्रदत्तं ब्राह्मणेन्द्राय शुचये ज्ञानधर्मिणे॥ ५४

तदेव जीवतो दत्तं मया दानं वणिक्सुत।
वर्षाणां सप्ततीनां वै नान्यद् दत्तं हि किंचन॥ ५५

मृतः प्रेतत्वमापन्नो दत्त्वा प्रेतान्नमेव हि।
अमी चादत्तदानास्तु मदन्नेनोपजीविनः॥ ५६

एतत्ते कारणं प्रोक्तं यत्तदन्नं मयाम्भसा।
दत्तं तदिदमायाति मध्याह्नेऽपि दिने दिने॥ ५७

यावन्नाहं च भुञ्जामि न तावत् क्षयमेति वै।
मयि भुक्ते च पीते च सर्वमन्तर्हितं भवेत्॥ ५८

प्रसिद्ध ब्राह्मण था। मेरा एक पड़ोसी बहुत धनवान्, लक्ष्मीवान् वणिक् था, जिसका नाम था सोमश्रवा। वह महान् यशस्वी और विष्णुका भक्त था। मैं कृपण एवं दुर्मति था। अतः धन होते हुए भी न तो ब्राह्मणोंको दान करता था और न अच्छे अन्नका भोजन ही करता था॥ ४२—४५॥

यदि मैं कभी भूलसे दही, दूध एवं घीसे युक्त पदार्थ भोजन कर लेता था तो रात्रिमें भयङ्कर मनुष्य मेरे शरीरको पीड़ित करते थे। प्रातःकाल मुझे मरणके समान (कष्ट देनेवाली) भयङ्कर विषूचिका (हैजा) हो जाया करती थी। उस समय मेरे पास कोई भी बन्धु नहीं रहता था। मैं किसी-किसी प्रकार अपने प्राणोंको धारण करता था। इस प्रकार मैं अति निर्लज्ज पापयुक्त जीवन बिताता रहा। बेर, तिलपिण्याक, सत्तू, शाकादि एवं बुरे अन्नों (मोटे अन्न—) कोदो, साँवा आदिको खाकर समय बिताते हुए मैं स्वयंको दुर्बल कर रहा था॥ ४६—४९॥

मुझे वहाँ इस ढंगसे रहते हुए बहुत समय बीत गया। (एक बार) भाद्रपदमासमें श्रवणद्वादशीकी तिथि आयी। तब ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नागरिक लोग इरावती और नड्वला नदियोंके संगममें स्नान करनेके लिये गये। पड़ोसी होनेके कारण मैं भी उनके पीछे-पीछे चला गया। एकादशीके दिन मैंने व्रत रहकर पवित्रतासे उपवास किया। उसके बाद मैंने अनेक वस्तुओं—छाता, जूता और साथ ही सङ्गमके जलसे भरा नवीन दृढ़ जलपात्र एवं मिष्टान्न, दधि तथा ओदनसे पूर्ण मिट्टीका पात्र ज्ञानी, धार्मिक, पवित्र, श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रदान किया॥ ५०—५४॥

वणिक्पुत्र! मैंने अपने सत्तर वर्षोंके (पूरे) जीवनमें (केवल) वही दान दिया था। इसके सिवा अन्य कुछ भी नहीं दान किया। प्रेतान्न दान करके मृत्युके बाद मैं प्रेत हो गया। मेरे अन्नसे जीवन धारण करनेवाले इन लोगोंने भी दान कभी नहीं किया है। मैंने तुम्हें वह कारण बतलाया जिससे मेरे द्वारा दिये गये अन्न-जल प्रतिदिन दोपहरके समय (मेरे समीप) आ जाते हैं। जबतक मैं नहीं खाता, तबतक उनका क्षय नहीं होता। मेरे खाने और पीनेके बाद सभी कुछ अदृश्य हो जाता है॥ ५५—५८॥

यच्चातपत्रमददं सोऽयं जातः शमीतरुः।
उपानद्युगले दत्ते प्रेतो मे वाहनोऽभवत्॥ ५९

इयं तवोक्ता धर्मज्ञ मया कीनाशतात्मनः।
श्रवणद्वादशीपुण्यं तवोक्तं पुण्यवर्धनम्॥ ६०

इत्येवमुक्ते वचने वणिक्पुत्रोऽब्रवीद् वचः।
यन्मया तात कर्त्तव्यं तदनुज्ञातुमर्हसि॥ ६१

तत् तस्य वचनं श्रुत्वा वणिक्पुत्रस्य नारद।
प्रेतपालो वचः प्राह स्वार्थसिद्धिकरं ततः॥ ६२
यत् त्वया तात कर्त्तव्यं मद्धितार्थं महामते।
कथयिष्यामि तत् सम्यक् तव श्रेयस्करं मम॥ ६३

गयायां तीर्थजुष्टायां स्नात्वा शौचसमन्वितः।
मम नाम समुद्दिश्य पिण्डनिर्वपणं कुरु॥ ६४

तत्र पिण्डप्रदानेन प्रेतभावादहं सखे।
मुक्तस्तु सर्वदातॄणां यास्यामि सहलोकताम्॥ ६५

यथेयं द्वादशी पुण्या मासि प्रौष्ठपदे सिता।
बुधश्रवणसंयुक्ता साऽतिश्रेयस्करी स्मृता॥ ६६
इत्येवमुक्त्वा वणिजं प्रेतराजोऽनुगैःसह।
स्वनामानि यथान्यायं सम्यगाख्यातवाञ्छुचिः॥ ६७

प्रेतस्कन्धे समारोप्य त्याजितो मरुमण्डलम्।
रम्येऽथ शूरसेनाख्ये देशे प्राप्तः स वै वणिक्॥ ६८

स्वकर्मधर्मयोगेन धनमुच्चावचं बहु।
उपार्जयित्वा प्रययौ गयाशीर्षमनुत्तमम्॥ ६९

पिण्डनिर्वपणं तत्र प्रेतानामनुपूर्वशः।
चकार स्वपितॄणां च दायादानामनन्तरम्॥ ७०
आत्मनश्च महाबुद्धिर्महाबोध्यं तिलैर्विना।
पिण्डनिर्वपणं चक्रे तथान्यानपि गोत्रजान्॥ ७१

एवं प्रदत्तेष्वथ वै पिण्डेषु प्रेतभावतः।
विमुक्तास्ते द्विज प्रेता ब्रह्मलोकं ततो गताः॥ ७२

मैंने जो छाताका दान किया था, वही इस शमीवृक्षके रूपमें उत्पन्न हुआ है। एक जोड़ा जूताका दान करनेसे प्रेत मेरा वाहन बना है। धर्मज्ञ! अपने प्रेतत्व-प्राप्तिका यह समस्त विवरण मैंने तुमसे कह सुनाया तथा परम पवित्र और पुण्यको बढ़ानेवाली श्रवणद्वादशीका भी वर्णन कर दिया। प्रेतके ऐसा कहनेपर वणिक्पुत्रने कहा—तात! मुझे जो करना हो उसकी आज्ञा दें। (पुलस्त्यजी कहते हैं कि) नारदजी! वणिक्पुत्रका वह वचन सुनकर प्रेतपति अपनी स्वार्थसिद्धिकी बात कहने लगा—॥ ५९—६२॥

महामते! मेरे हितके लिये तुम्हें करने योग्य कर्म मैं बतलाता हूँ। उसे अच्छी तरह सम्पन्न कर लेनेसे तुम्हारा और मेरा (दोनोंका) कल्याण होगा। (देखो,) गया-तीर्थमें (जाकर और) स्नानसे पवित्र होकर मेरे नाम (उद्देश्य)-से तुम पिण्डदान करो। सखे! वहाँ पिण्डदान करनेसे मैं प्रेतभावसे मुक्त होकर सर्वस्व दान करनेवालोंको मिलनेवाले लोकको प्राप्त कर लूँगा। भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी बुधवार एवं श्रवण नक्षत्रसे युक्त पुण्य बढ़ानेवाली अत्यन्त माङ्गलिक यह द्वादशी (तिथि) कही गयी है॥ ६३—६६॥

वणिक्से ऐसा कहकर प्रेतराजने अपने अनुचरोंसहित पवित्रतापूर्वक यथोचित क्रमसे अपने (पितरोंके) नामोंको बताया। उसे प्रेतके कन्धेपर चढ़ाकर मरु-भूमिसे बाहर छोड़ दिया गया। इस प्रकार वह वणिक् शूरसेन नामके सुन्दर देशमें पहुँच गया। अपने कर्म तथा धर्मसे उसने अधिक मात्रामें उत्कृष्ट एवं हीन धन उपार्जित कर लिया। उसके बाद वह उत्तम गयाशीर्ष नामके तीर्थमें गया। वहाँ क्रमशः प्रेतोंके उद्देश्यसे पिण्डदान करनेके बाद उसने अपने पितरों एवं दायादोंको भी पिण्डदान किया॥ ६७—७०॥

उस महाबुद्धि (वणिक्)-ने अपने लिये तिलसे रहित महाबोध्य नामका पिण्डदान किया। उसके बाद अन्य गोत्रोंमें उत्पन्न हुओंके उद्देश्यसे भी पिण्डदान किया। द्विज! इस प्रकार पिण्डदान करनेपर वे प्रेत प्रेत-योनिसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकको चले गये।

स चापि हि वणिक्पुत्रो निजमालयमाव्रजत्।
श्रवणद्वादशीं कृत्वा कालधर्ममुपेयिवान्॥ ७३

गन्धर्वलोके सुचिरं भोगान् भुक्त्वा सुदुर्लभान्।
मानुष्यं जन्ममासाद्य स बभौ शाकले विराट्॥ ७४

वह वणिक्पुत्र भी अपने घर चला गया और श्रवणद्वादशीका (यथोचित रीतिसे) (व्रत) पालन करते हुए वह भी समय आनेपर स्वर्गीय हो गया। गन्धर्वलोकमें चिरकालतक अत्यन्त दुर्लभ भोगोंका उपभोग करनेके बाद मनुष्य-जन्म प्राप्त कर वह शाकलपुरीका सम्राट् बना॥ ७१—७४॥

स्वधर्मकर्मवृत्तिस्थः श्रवणद्वादशीरतः।
कालधर्ममवाप्यासौ गुह्यकावासमाश्रयत्॥ ७५

तत्रोष्य सुचिरं कालं भोगान् भुक्त्वाऽथ कामतः।
मर्त्यलोकमनुप्राप्य राजन्यतनयोऽभवत्॥ ७६

तत्रापि क्षत्रवृत्तिस्थो दानभोगरतो वशी।
गोग्रहेऽरिगणाञ्जित्वा कालधर्ममुपेयिवान्।
शक्रलोकं स सम्प्राप्य देवैः सर्वैः सुपूजितः॥ ७७

पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टः शाकले सोऽभवद् द्विजः।
ततो विकटरूपोऽसौ सर्वशास्त्रार्थपारगः॥ ७८

अपने धर्म तथा कर्ममें स्थित रहता हुआ वह श्रवणद्वादशी (व्रत)-में रत रहता रहा। (समय आनेपर) मृत्युके बाद उसने गुह्यकोंका लोक प्राप्त कर लिया। वहाँ बहुत कालतक ठहरकर और इच्छानुकूल भाँति-भाँतिके भोग्य पदार्थोंका भोग करनेके बाद वह मृत्युलोकमें आकर राजपुत्र बना। वहाँ भी क्षत्रिय-वृत्तिसे निर्वाह करते हुए वह दान और भोगमें लगा रहा। गौओंके अपहरणमें उसने शत्रुओंको जीतकर कालधर्म (मृत्यु)-को प्राप्त हुआ। फिर वह इन्द्रलोकमें गया और सभी देवोंसे पूजित हुआ। पुण्यका क्षय होनेसे **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'**—नियमसे स्वर्गच्युत होकर वह फिर शाकल देशमें ब्राह्मण हुआ। उसका रूप तो अत्यन्त विद्रूप (भयङ्कर) था, परंतु वह (विद्यासे) सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारङ्गत था॥ ७५—७८॥

विवाहयद् द्विजसुतां रूपेणानुपमां द्विज।
साऽवमेने च भर्त्तारं सुशीलमपि भामिनी॥ ७९
विरूपमिति मन्वाना ततः सोऽभूत् सुदुःखितः।
ततो निर्वेदसंयुक्तो गत्वाश्रमपदं महत्॥ ८०
इरावत्यास्तटे श्रीमान् रूपधारिणमासदत्।
तमाराध्य जगन्नाथं नक्षत्रपुरुषेण हि॥ ८१
सुरूपतामवाप्याग्र्यां तस्मिन्नेव च जन्मनि।
ततः प्रियोऽभूद् भार्याया भोगवांश्चाभवद् वशी।
श्रवणद्वादशीभक्तः पूर्वाभ्यासादजायत॥ ८२
एवं पुराऽसौ द्विजपुङ्गवस्तु
कुरूपरूपो भगवत्प्रसादात्।
अनङ्गरूपप्रतिमो बभूव
मृतश्च राजा स पुरूरवाऽभूत्॥ ८३

द्विज! उसने अनुपम सुन्दरी ब्राह्मण-कन्यासे विवाह किया। वह ललना (अपने) अत्यन्त शीलवान् पतिको भी कुरूप मानकर निरादर करती रहती। इससे वह बहुत दुःखित हो गया। उसके बाद ग्लानिसे भरकर वह इरावतीके तीरपर स्थित महान् आश्रममें पहुँचा और नक्षत्र-पुरुषके द्वारा स्थापित सुन्दर रूप धारण करनेवाले जगन्नाथ भगवान्‌की आराधना की। इस प्रकार उसी जन्ममें परम सुन्दर रूप प्राप्त कर वह अपनी भार्याका प्यारा एवं ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो गया। पूर्वके अभ्याससे संयत रहनेवाला वह श्रवणद्वादशीका भक्त बना रहा। इस प्रकार पहले कुरूप रहनेपर भी भगवान्‌की कृपासे वह श्रेष्ठ ब्राह्मण कामदेवके समान सुन्दर रूपवाला हो गया और स्वर्गीय होकर दूसरे जन्ममें राजा पुरूरवा हुआ॥ ७९—८३॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७९॥

अस्सीवाँ अध्याय

नक्षत्र-पुरुषके वर्णन-प्रसङ्गमें नक्षत्र-पुरुषकी पूजाका विधान और नक्षत्र-पुरुषके व्रतका माहात्म्य

नारद उवाच

पुरूरवा द्विजश्रेष्ठ यथा देवं श्रियः पतिम्।
नक्षत्रपुरुषाख्येन आराधयत तद् वद॥ १

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि नक्षत्रपुरुषव्रतम्।
नक्षत्राङ्गानि देवस्य यानि यानीह नारद॥ २

मूलर्क्षं चरणौ विष्णोर्जङ्घे द्वे रोहिणी स्मृते।
द्वे जानुनी तथाश्विन्यौ संस्थिते रूपधारिणः॥ ३

आषाढे द्वे द्वयं चौर्वोर्गुह्यस्थं फाल्गुनीद्वयम्।
कटिस्थाः कृत्तिकाश्चैव वासुदेवस्य संस्थिताः॥ ४

प्रौष्ठपद्याद्वयं पार्श्वे कुक्षिभ्यां रेवती स्थिता।
उरःसंस्था त्वनुराधा श्रविष्ठा पृष्ठसंस्थिता॥ ५

विशाखा भुजयोर्हस्तः करद्वयमुदाहृतम्।
पुनर्वसुरथाङ्गुल्यो नखाः सार्पस्तथोच्यते॥ ६

ग्रीवास्थिता तथा ज्येष्ठा श्रवणं कर्णयोः स्थितम्।
मुखसंस्थस्तथा पुष्यः स्वातिर्दन्ताः प्रकीर्तिताः॥ ७

हनू द्वे वारुणश्चोक्तो नासा पैत्र उदाहृतः।
मृगशीर्षं नयनयो रूपधारिणि तिष्ठति॥ ८

चित्रा चैव ललाटे तु भरणी तु तथा शिरः।
शिरोरुहस्था चैवार्द्रा नक्षत्राङ्गमिदं हरेः॥ ९

विधानं सम्प्रवक्ष्यामि यथायोगेन नारद।
सम्पूजितो हरिः कामान् विदधाति यथेप्सितान्॥ १०

नारदजीने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! पुरूरवाने नक्षत्र-पुरुष नामक व्रतके द्वारा लक्ष्मीपति वासुदेवकी जिस विधिसे आराधना की थी, उसे कहिये॥ १॥

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी! मैं नक्षत्र-पुरुष-व्रत एवं देवके सभी नक्षत्ररूपी अङ्गोंका वर्णन करता हूँ; आप सुनें—मूल नक्षत्र भगवान् विष्णुके दोनों चरणों, रोहिणी नक्षत्र दोनों जंघाओं एवं अश्विनी नक्षत्र दोनों घुटनोंका रूप धारण करके स्थित हैं। पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नामके दो नक्षत्र वासुदेवके दोनों ऊरुओंमें, पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तराफाल्गुनी नामवाले दोनों नक्षत्र गुह्य प्रदेशमें और कृत्तिका नक्षत्र कटि-भागमें स्थित है। पूर्वाभाद्रपदा तथा उत्तराभाद्रपदा भगवान्के दोनों पार्श्वोंमें, रेवती दोनों कुक्षियोंमें, अनुराधा हृदयमें तथा धनिष्ठा नक्षत्र पृष्ठदेशमें स्थित है॥ २—५॥

दोनों भुजाओंके स्थानमें विशाखा नक्षत्र है। हस्त नक्षत्रको भगवान्का दोनों हाथ कहा गया है। पुनर्वसु नक्षत्र भगवान्की अंगुलियाँ और आश्लेषा नक्षत्र उनके नख हैं। ग्रीवामें ज्येष्ठा, दोनों कानोंमें श्रवण तथा मुखमें पुष्य नक्षत्र स्थित है। दाँतोंको स्वाति नक्षत्र कहा गया है। शतभिषा नक्षत्र दोनों हनुएँ तथा मघाको नासिका कहा गया है। (नक्षत्रोंका) रूप धारण करनेवाले भगवान्के दोनों नेत्रोंमें मृगशिरा नक्षत्रका निवास है। चित्रा ललाटमें, भरणी सिरमें तथा आर्द्रा नक्षत्र केशमें रहता है। भगवान् विष्णुका यह नक्षत्र-शरीर है॥ ६—९॥

नारदजी! अब मैं उस व्रतके विधानका वर्णन करूँगा, जिस व्रतसे नियमपूर्वक आराधित होनेपर भगवान् विष्णु इच्छित फल प्रदान करते हैं।

चैत्रमासे सिताष्टम्यां यदा मूलगतः शशी।
तदा तु भगवत्पादौ पूजयेत् तु विधानतः।
नक्षत्रसंनिधौ दद्याद् विप्रेन्द्राय च भोजनम्॥ ११

जानुनी चाश्विनीयोगे पूजयेदथ भक्तितः।
दोहदे च हविष्यान्नं पूर्ववद् द्विजभोजनम्॥ १२

आषाढाभ्यां तथा द्वाभ्यां द्वा ऊरू पूजयेद् बुधः।
सलिलं शिशिरं तत्र दोहदे च प्रकीर्तितम्॥ १३
फाल्गुनीद्वितीये गुह्यं पूजनीयं विचक्षणैः।
दोहदे च पयो गव्यं देयं च द्विजभोजनम्॥ १४

कृत्तिकासु कटिः पूज्या सोपवासो जितेन्द्रियः।
देयं च दोहदं विष्णोः सुगन्धकुसुमोदकम्॥ १५

पार्श्वे भाद्रपदायुग्मे पूजयित्वा विधानतः।
गुडं सलेहकं दद्याद् दोहदे देवकीर्तितम्॥ १६

द्वे कुक्षी रेवतीयोगे दोहदे मुद्गमोदकाः।
अनुराधासु जठरं षष्ठिकान्नं च दोहदे॥ १७
श्रविष्ठायां तथा पृष्ठं शालिभक्तं च दोहदे।
भुजयुग्मं विशाखासु दोहदे परमोदनम्॥ १८

हस्ते हस्तौ तथा पूज्यौ यावकं दोहदे स्मृतम्।
पुनर्वसावङ्गुलीश्च पटोलस्तत्र दोहदे॥ १९

आश्लेषासु नखान् पूज्य दोहदे तित्तिरामिषम्।
ज्येष्ठायां पूजयेद् ग्रीवां दोहदे तिलमोदकम्॥ २०

श्रवणे श्रवणौ पूज्यौ दधिभक्तं च दोहदे।
पुष्ये मुखं पूजयेत दोहदे घृतपायसम्॥ २१

स्वातियोगे च दशना दोहदे तिलशष्कुली।
दातव्या केशवप्रीत्यै ब्राह्मणस्य च भोजनम्॥ २२

चैत्रमासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें चन्द्रमाके मूल नक्षत्रमें स्थित होनेपर भगवान्‌के दोनों पैरोंकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। नक्षत्रकी संनिधिमें ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। अश्विनी नक्षत्रके योगमें श्रद्धापूर्वक भगवान्‌के दोनों घुटनोंकी अर्चना करनी चाहिये एवं 'दोहद'में (यात्रा-दोषकी शान्तिके लिये खाये-पिये जानेवाले निश्चित पदार्थमें) हविष्यान्न समर्पित करना एवं पूर्ववत् ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। विद्वान् मनुष्य पूर्वाषाढ तथा उत्तराषाढके योगमें विष्णुके दोनों ऊरुओंकी पूजा करे। (इसमें देय) दोहदमें शीतल जलका विधान है॥ १०—१३॥

[अनुक्रान्त विधानमें पुलस्त्यजी कहते हैं—] विद्वान् पुरुष दोनों फाल्गुनी नक्षत्रोंमें भगवान्‌के गुह्य-देशकी पूजा करे। दोहदके लिये दूध और घी दे और ब्राह्मण-भोजन कराये। कृत्तिका नक्षत्रमें उपवासपूर्वक जितेन्द्रिय रहकर भगवान्‌के कटि-देशकी अर्चना करे और सुगन्धित कुसुमसे युक्त जलका 'दोहद' दान करे। दोनों भाद्रपदाओंमें कहे हुए विधानसे भगवान्‌की दोनों बगलोंकी अर्चना करके 'दोहद'में देवद्वारा कथित—शास्त्रानुमोदित चाटनेवाली वस्तुसे युक्त गुड़ देना चाहिये। रेवती नक्षत्रके योगमें भगवान्‌की दोनों कुक्षियोंकी पूजाके बाद दोहदमें मूँगके लड्डू प्रदान करने चाहिये। अनुराधा नक्षत्रमें उदरकी पूजा करके दोहदमें साठीका चावल देना चाहिये॥ १४—१७॥

धनिष्ठा नक्षत्रमें पृष्ठकी पूजा करके दोहदमें शालिका भात देना चाहिये। विशाखा नक्षत्रमें भगवान्‌की दोनों भुजाओंकी पूजा कर दोहदमें उत्तम अन्न देना चाहिये। हस्त नक्षत्रमें भगवान्‌के दोनों करोंकी पूजा करके दोहदमें जौसे बना पक्वान्न देना चाहिये। पुनर्वसु नक्षत्रमें अंगुलियोंकी पूजा करके दोहदमें रेशमी वस्त्र या परवल प्रदान करना चाहिये। आश्लेषा नक्षत्रमें नखकी पूजा कर दोहदमें तित्तिरकी आकृति प्रदान करे। ज्येष्ठामें ग्रीवाकी पूजा करके दोहदमें तिलका लड्डू प्रदान करे। श्रवण नक्षत्रमें दोनों कानोंकी पूजा करके दोहदमें दही और भात प्रदान करे। पुष्य नक्षत्रमें मुखकी पूजा करे और दोहदमें घी मिला हुआ पायस प्रदान करे॥ १८—२१॥

स्वाति नक्षत्रके योगमें भगवान्‌के दाँतोंका पूजन करके तिल और शष्कुली (पूड़ी)-का दोहद दे एवं केशवको प्रसन्न करनेके लिये ब्राह्मणको भोजन कराये।

हनू शतभिषायोगे पूजयेच्च प्रयत्नतः।
प्रियङ्गुरक्तशाल्यन्नं दोहदं मधुविद्विषः॥ २३

मघासु नासिका पूज्या मधु दद्याच्च दोहदे।
मृगोत्तमाङ्गे नयने मृगमांसं च दोहदे॥ २४

चित्रायोगे ललाटं च दोहदे चारुभोजनम्।
भरणीषु शिरः पूज्यं चारु भक्तं च दोहदे॥ २५
सम्पूजनीया विद्वद्भिरार्द्रायोगे शिरोरुहाः।
विप्रांश्च भोजयेद् भक्त्या दोहदे च गुडार्द्रकम्॥ २६

नक्षत्रयोगेष्वेतेषु सम्पूज्य जगतः पतिम्।
पारिते दक्षिणां दद्यात् स्त्रीपुंसोश्चारुवाससी॥ २७

छत्रोपानत् श्वेतयुगं सप्तधान्यानि काञ्चनम्।
घृतपात्रं च मतिमान् ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ २८

प्रतिनक्षत्रयोगेन पूजनीया द्विजातयः।
नक्षत्रमय एवैष पुरुषः शाश्वतो मतः॥ २९
नक्षत्रपुरुषाख्यं हि व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
पूर्वं कृतं हि भृगुणा सर्वपातकनाशनम्॥ ३०

अङ्गोपाङ्गानि देवर्षे पूजयित्वा जगद्गुरोः।
सुरूपाण्यभिजायन्ते प्रत्यङ्गाङ्गानि चैव हि॥ ३१

सप्तजन्मकृतं पापं कुलसंगागतं च यत्।
पितृमातृसमुत्थं च तत्सर्वं हन्ति केशवः॥ ३२

सर्वाणि भद्राण्याप्नोति शरीरारोग्यमुत्तमम्।
अनन्तां मनसः प्रीतिं रूपं चातीव शोभनम्॥ ३३
वाङ्माधुर्यं तथा कान्तिं यच्चान्यदभिवाञ्छितम्।
ददाति नक्षत्रपुमान् पूजितस्तु जनार्दनः॥ ३४
उपोष्य सम्यगेतेषु क्रमेणर्क्षेषु नारद।
अरुन्धती महाभागा ख्यातिमग्र्यां जगाम ह॥ ३५
आदित्यस्तनयार्थाय नक्षत्राङ्गं जनार्दनम्।
सम्पूजयित्वा गोविन्दं रेवन्तं पुत्रमाप्तवान्॥ ३६

शतभिषा नक्षत्रमें प्रयत्नपूर्वक भगवान्‌के ठुड्डीकी पूजा करे और विष्णुको अत्यन्त प्रिय लगनेवाला प्रियङ्गु (कँगनी) एवं लाल चावलका दोहद दे। मघामें नासिकाकी पूजा करनी चाहिये एवं दोहदमें मधु देना चाहिये। मृगशिरा नक्षत्रमें मस्तकमें स्थित दोनों नेत्रोंकी पूजा करके दोहदमें मृगके मानका फलका गूदा देना चाहिये। चित्रा नक्षत्रके योगमें ललाटकी पूजा करके दोहदमें सुन्दर भोजन देना चाहिये। भरणी नक्षत्रमें सिरकी पूजा करनी चाहिये और दोहदमें सुन्दर भात प्रदान करना चाहिये॥ २२—२५॥

आर्द्राके योगमें विद्वान् लोगोंको (भगवान्‌के) केशोंकी पूजा करनी चाहिये और श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराना तथा दोहदमें गुड़ एवं अदरखका दान करना चाहिये। इन नक्षत्रोंके योगोंमें जगत्पति (विष्णु)-की पूजा करनेके बाद पारणकर स्त्री और पुरुषके लिये दो सुन्दर वस्त्र दे। बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणको सफेद छाता, एक जोड़ा जूता, सप्तधान्य, स्वर्ण एवं घीसे भरे पात्रका दान करे। प्रत्येक नक्षत्रके योगमें ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। यही नक्षत्रमय नित्य सनातन पुरुष माने गये हैं॥ २६—२९॥

नक्षत्र-पुरुष नामका व्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ है। प्राचीन समयमें भृगुने समस्त पापोंके विनाश करनेवाले इस व्रतको किया था। देवर्षे! भगवान्‌के अङ्गों और उपाङ्गोंकी पूजा करनेसे मनुष्यके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दर होते हैं। सात जन्मोंमें (अपने स्वयंके) किये हुए, कुलक्रमसे प्राप्त एवं माता-पिताके कारण प्राप्त पापों—सब प्रकारके पापोंको केशव पूर्णतया नष्ट कर देते हैं; और इस प्रकार भगवान्‌का पूजन करनेसे समस्त प्रकारके कल्याण प्राप्त होते हैं; शरीर उत्तम आरोग्यसे सम्पन्न होता है, मनमें अनन्त प्रसन्नता प्राप्त होती है और अत्यन्त सुन्दर रूप भी प्राप्त हो जाता है॥ ३०—३३॥

इस प्रकार पूजित होनेपर नक्षत्र-पुरुष जनार्दन भगवान् मधुर वाणी, कान्ति तथा अन्य मनोऽभिलषित पदार्थ प्रदान करते हैं। नारदजी! इन नक्षत्रोंके योगमें क्रमशः उपवासकर महाभाग्यशालिनी अरुन्धतीने उत्तम प्रसिद्धि प्राप्त की थी। आदित्यने पुत्रकी इच्छासे नक्षत्र-पुरुष जनार्दनकी अर्चनाकर रेवन्त-नामक पुत्र प्राप्त किया था।

रम्भा रूपमवापाग्र्यं वाङ्माधुर्यं च मेनका।
कान्तिं विधुरवापाग्र्यां राज्यं राजा पुरूरवाः॥ ३७

एवं विधानतो ब्रह्मन्नक्षत्राङ्गो जनार्दनः।
पूजितो रूपधारी यैस्तैः प्राप्ता तु सुकामिता॥ ३८

एतत् तवोक्तं परमं पवित्रं
धन्यं यशस्यं शुभरूपदायि।
नक्षत्रपुंसः परमं विधान
शृणुष्व पुण्यामिह तीर्थयात्राम्॥ ३९

(नक्षत्राङ्ग जनार्दनकी पूजा करके) रम्भाने श्रेष्ठ रूप, मेनकाने वाणीकी मधुरता, चन्द्रने उत्तम कान्ति तथा पुरूरवाने राज्य प्राप्त किया था। [पुलस्त्यजी कहते हैं कि] ब्रह्मन्! इस प्रकार जिसने नक्षत्राङ्ग-रूपधारी जनार्दनकी पूजा की, उसने अपने मनोरथोंकी भलीभाँति पूर्ति कर ली। मैंने आपसे भगवान् नक्षत्र-पुरुषके परम पवित्र धन देनेवाले, कीर्ति बढ़ानेवाले और सुन्दर रूपको देनेवाले व्रतके विधानका वर्णन कर दिया। अब पवित्र तीर्थयात्राका वर्णन सुनिये॥ ३४—३९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अस्सीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८०॥

इक्यासीवाँ अध्याय

प्रह्लादकी आनुक्रमिक तीर्थयात्राका वर्णन और जलोद्भवका आख्यान

पुलस्त्य उवाच

इरावतीमनुप्राप्य पुण्यां तामृषिकन्यकाम्।
स्नात्वा सम्पूजयामास चैत्राष्टम्यां जनार्दनम्॥ १
नक्षत्रपुरुषं चीर्त्वा व्रतं पुण्यप्रदं शुचिः।
जगाम स कुरुक्षेत्रं प्रह्लादो दानवेश्वरः॥ २
ऐरावतेन मन्त्रेण चक्रतीर्थं सुदर्शनम्।
उपामन्त्र्य ततः सस्नौ वेदोक्तविधिना मुने॥ ३
उपोष्य क्षणदां भक्त्या पूजयित्वा कुरुध्वजम्।
कृतशौचो जगामाथ द्रष्टुं पुरुषकेसरिम्॥ ४

पुलस्त्यजी बोले—(नारदजी!) प्रह्लादने परम पवित्र ऋषिकन्या उस इरावती नदीके पास जाकर स्नान किया और चैत्रमासकी अष्टमी तिथिमें जनार्दनकी पूजा की। वहाँ पवित्र पुण्यदायक नक्षत्र-पुरुषके व्रतका अनुष्ठान कर दानवेश्वर प्रह्लाद कुरुक्षेत्र चले गये। मुने! उन्होंने ऐरावत-मन्त्रसे सुदर्शनचक्र तीर्थका आवाहन करके वेद-विहित विधिसे स्नान किया। वहाँ एक रात्रि निवास कर श्रद्धासे कुरुध्वजका पूजन किया और शौचाचारसे शुद्ध होकर नृसिंहका दर्शन करनेके लिये चले गये॥ १—४॥

स्नात्वा तु देविकायां च नृसिंहं प्रतिपूज्य च।
तत्रोष्य रजनीमेकां गोकर्णं दानवो ययौ॥ ५

तस्मिन् स्नात्वा तथा प्राचीं पूज्येशं विश्वकर्मिणम्।
प्राचीने चापरे दैत्यो द्रष्टुं कामेश्वरं ययौ॥ ६

तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च पूजयित्वा च शङ्करम्।
द्रष्टुं ययौ च प्रह्लादः पुण्डरीकं महाम्भसि॥ ७

दानव (प्रह्लाद)-ने वहाँ देविकामें स्नान कर नृसिंहकी पूजा की और एक रात वहाँ निवासकर गोकर्ण-तीर्थ चले गये। वहाँ प्राची (पूज्य-पूजकके मध्य स्थान)-में स्नान कर पहले उन्होंने विश्वकर्मा भगवान्‌की पूजा की। उसके बाद दूसरे प्राचीन (परकोटा या चहारदीवारी)-में कामेश्वरका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ स्नान करनेके बाद शंकरभगवान्‌का दर्शन और पूजनकर प्रह्लाद श्रेष्ठ जलमें स्थित पुण्डरीकका दर्शन करने चले गये।

तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च संतर्प्य पितृदेवताः।
पुण्डरीकं च सम्पूज्य उवास दिवसत्रयम्॥ ८

विशाखयूपे तदनु दृष्ट्वा देवं तथाजितम्।
स्नात्वा तथा कृष्णतीर्थे त्रिरात्रं न्यवसच्छुचिः॥ ९

ततो हंसपदे हंसं दृष्ट्वा सम्पूज्य चेश्वरम्।
जगामासौ पयोष्णायामखण्डं द्रष्टुमीश्वरम्॥ १०

स्नात्वा पयोष्ण्याः सलिले पूज्याखण्डं जगत्पतिम्।
द्रष्टुं जगाम मतिमान् वितस्तायां कुमारिलम्॥ ११

तत्र स्नात्वाऽर्च्य देवेशं बालखिल्यैर्मरीचिपैः।
आराध्यमानं यद्यत्र कृतं पापप्रणाशनम्॥ १२

यत्र सा सुरभिर्देवी स्वसुतां कपिलां शुभाम्।
देवप्रियार्थमसृजद्धितार्थं जगतस्तथा॥ १३

तत्र देवह्रदे स्नात्वा शम्भुं सम्पूज्य भक्तितः।
विधिवद्दधि च प्राश्य मणिमन्तं ततो ययौ॥ १४

तत्र तीर्थवरे स्नात्वा प्राजापत्ये महामतिः।
ददर्श शम्भुं ब्रह्माणं देवेशं च प्रजापतिम्॥ १५

विधानतस्तु तान् देवान् पूजयित्वा तपोधन।
षड्रात्रं तत्र च स्थित्वा जगाम मधुनन्दिनीम्॥ १६

मधुमत्सलिले स्नात्वा दैवं चक्रधरं हरम्।
शूलबाहुं च गोविन्दं ददर्श दनुपुङ्गवः॥ १७

वहाँ भी स्नानकर उन्होंने पितरोंका तर्पण और पुण्डरीकका दर्शन-पूजन किया। तीन दिनोंतक वहाँ निवास किया। उसके बाद विशाखयूपमें देव अजितका दर्शनकर उन्होंने कृष्णतीर्थमें स्नान किया और तीन रात्रितक वहाँ भी पवित्रतापूर्वक निवास किया॥ ५—९॥

उसके बाद हंसपदमें भगवान् हंसका दर्शन एवं पूजन कर वे पयोष्णीके समीपमें अखण्डेश्वरका दर्शन करने चले गये। पयोष्णीके जलमें स्नानकर उन्होंने जगत्पति अखण्डेश्वरकी पूजा की। उसके बाद बुद्धिमान् (प्रह्लादजी) वितस्तामें कुमारिलके दर्शनार्थ चले गये। वहाँ स्नान करनेके पश्चात् (सूर्यकी) किरणोंका पान करनेवाले बालखिल्योंसे आराधित किये जा रहे पापोंको नष्ट करनेवाले देवेशका पूजन किया। जहाँ देवी सुरभिने देवकी प्रीति एवं जगत्की भलाईके लिये अपनी पुत्री कल्याणी कपिलाका त्याग किया था॥ १०—१३॥

वहाँ देवह्रदमें स्नानकर उन्होंने भक्तिपूर्वक शंभुका पूजन किया और विधिपूर्वक दही खानेके बाद मणिमान्-तीर्थमें गये। प्रजापतिके उस उत्तम तीर्थमें स्नानकर महामति (प्रह्लाद)-ने शंकर, ब्रह्मा एवं देवेश प्रजापतिका दर्शन किया। (पुलस्त्यजी कहते हैं—) तपोधन! विधिपूर्वक उन देवोंका पूजन करनेके बाद वहाँ छः रात्रियोंतक निवासकर (वे) मधुनन्दिनीमें चले गये। मधुमत्के जलमें स्नानकर दानवश्रेष्ठ (प्रह्लाद)-ने चक्रधारी शिव और शूलधारी गोविन्दका दर्शन किया॥ १४—१७॥

नारद उवाच

किमर्थं भगवान् शम्भुर्दधाराथ सुदर्शनम्।
शूलं तथा वासुदेवो ममैतद् ब्रूहि पृच्छतः॥ १८

नारदजीने पूछा—मुझ प्रश्नकर्त्ताको आप (कृपया) यह बतलाइये कि भगवान् शिवने सुदर्शन और वासुदेवने शूल क्यों धारण किया था?॥ १८॥

पुलस्त्य उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम्।
कथयामास यां विष्णुर्भविष्यमनवे पुरा॥ १९

जलोद्भवो नाम महासुरेन्द्रो
घोरं स तप्त्वा तप उग्रवीर्यः।
आराधयामास विरञ्चिमारात्
स तस्य तुष्टो वरदो बभूव॥ २०

देवासुराणामजयो महाहवे
निर्जैश्च शस्त्रैरमरैरवध्यः।
ब्रह्मर्षिशापैश्च निरीप्सितार्थो
जले च वह्नौ स्वगुणोपहर्ता॥ २१

पुलस्त्यजी बोले—(नारदजी!) सुनिये; मैं इस पुरानी कथाको कहता हूँ। पहले समयमें इसे भगवान् विष्णुने भावी मनुसे कहा था। जलोद्भव नामका एक महान् दैत्यपति था। उस शक्तिशाली दैत्यने घोर तपकर परिश्रमसे ब्रह्माकी आराधना की। संतुष्ट होकर ब्रह्माने उसे वर दिया कि युद्धमें उसे देवता एवं दैत्य नहीं जीत सकेंगे। देवोंके अपने शस्त्रोंसे भी उसका वध नहीं हो सकेगा। ब्रह्मर्षि (जनों)-के शापोंका भी उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और जल एवं अग्निका भी प्रभाव नहीं होगा।

एवम्प्रभावो दनुपुङ्गवोऽसौ
देवान् महर्षीन् नृपतीन् समग्रान्।
आबाधमानो विचचार भूम्यां
सर्वाः क्रिया नाशयदुग्रमूर्तिः॥ २२

ततोऽमरा भूमिभवाः सभूपाः
जग्मुः शरण्यं हरिमीशितारम्।
तैश्चापि सार्द्धं भगवाञ्जगाम
हिमालयं यत्र हरस्त्रिनेत्रः॥ २३

सम्मन्त्र्य देवर्षिहितं च कार्यं
मतिं च कृत्वा निधनाय शत्रोः।
निजायुधानां च विपर्ययं तौ
देवाधिपौ चक्रतुरुग्रकर्मिणौ॥ २४

ततश्चासौ दानवो विष्णुशर्वौ
समायातौ तज्जिघांसू सुरेशौ।
मत्वाऽजेयौ शत्रुभिर्घोररूपौ
भयात्तोये निम्नगायां विवेश॥ २५

ज्ञात्वा प्रनष्टं त्रिदिवेन्द्रशत्रुं
नदीं विशालां मधुमत्सुपुण्याम्।
द्वयोः सशस्त्रौ तटयोर्हरीशौ
प्रच्छन्नमूर्ती सहसा बभूवतुः॥ २६

जलोद्भवश्चापि जलं विमुच्य
ज्ञात्वा गतौ शङ्करवासुदेवौ।
दिशस्समीक्ष्य भयकातराक्षो
दुर्गं हिमाद्रिं च तदारुरोह॥ २७

महीध्रशृङ्गोपरि विष्णुशम्भू
चञ्चूर्यमाणं स्वरिपुं च दृष्ट्वा।
वेगादुभौ दुद्रुवतुः सशस्त्रौ
विष्णुस्त्रिशूली गिरिशश्च चक्री॥ २८

ताभ्यां स दृष्टस्त्रिदशोत्तमाभ्यां
चक्रेण शूलेन च भिन्नदेहः।
पपात शैलात् तपनीयवर्णो
यथाऽन्तरिक्षाद् विमला च तारा॥ २९

एवं त्रिशूलं च दधार विष्णु-
श्चक्रं त्रिनेत्रोऽप्यरिसूदनार्थम्।
यत्राघहन्त्री ह्यभवद् वितस्ता
हराङ्घ्रिपाताच्छिशिराचलात्तु ॥ ३०

तत्राप्य तीर्थं त्रिदशाधिपाभ्यां
पूजां च कृत्वा हरिशङ्कराभ्याम्।
उपोष्य भक्त्या हिमवन्तमागाद्
द्रष्टुं गिरीशं शिवविष्णुगुप्तम्॥ ३१

इस प्रकारका प्रभावशाली वह दनुश्रेष्ठ सभी देवताओं, महर्षियों और राजाओंको कष्ट पहुँचाता हुआ पृथ्वीपर विचरण करने लगा। (फिर तो) उस क्रूरने समस्त कर्मोंका विनाश कर दिया॥ १९—२२॥

उसके बाद पृथ्वीपर आविर्भूत हुए देवगण राजाओंके साथ शरण देनेवाले एवं (सबके) नियामक विष्णुकी शरणमें गये। भगवान् भी उन सभीके साथ हिमालयपर गये, जहाँ त्रिनेत्र हर अवस्थित थे। देवता और ऋषियोंके कल्याणकारी कार्यकी मन्त्रणा करनेके बाद शत्रुको मारनेका निश्चय कर उन दोनों उग्रकर्मी देवाधिपोंने अपने आयुधोंका परिवर्तन कर लिया। फिर मारनेकी इच्छासे आ रहे देवाधिप शंकर एवं विष्णुको देखकर और उन भयंकर मूर्त्तिधारियोंको शत्रुओंसे अजेय जानकर वह दानव भयसे नदीके जलमें पैठ गया। देवशत्रुको पुण्यशालिनी मधुमती विशाला नदीमें उसे छिपा हुआ जानकर शस्त्रसहित शंकर और विष्णु सहसा नदीके दोनों तटोंपर छिप गये॥ २३—२६॥

शंकर और वासुदेवको गया हुआ जानकर जलोद्भव भी जलसे बाहर निकला तथा भयसे चञ्चल नेत्रोंसे दिशाओंमें (इधर-उधर) देखकर दुर्गम हिमालय पर्वतपर चढ़ गया। पर्वतकी चोटीपर अपने शत्रुको विचरण करते हुए देखकर त्रिशूलधारी विष्णु एवं चक्रधारी शिव शस्त्र लिये हुए तुरंत दौड़ पड़े। उन सुरोत्तमोंने उसे देखकर चक्र और शूलसे उसके शरीरका भेदन कर दिया। वह सुवर्णके समान कान्तिवाला अन्तरिक्षसे गिरनेवाले विमल तारेके समान पर्वतसे गिर पड़ा। इस प्रकार शत्रुके विनाशके लिये विष्णुने त्रिशूल तथा शंकरने चक्र धारण किया था। जहाँ शंकरका चरण गिरा था, उस हिमालय पर्वतसे पापविनाशिनी वितस्ता उत्पन्न हुई। उस तीर्थमें पहुँचकर प्रह्लादने उन विष्णु एवं शंकर—इन दोनों देवोंकी अर्चा की तथा भक्तिसे वहाँ निवास कर वे शिव एवं विष्णुसे रक्षित गिरिराज हिमालयका दर्शन करने चले गये।

तं समभ्यर्च्य विधिवद् दत्त्वा दानं द्विजातिषु।
विस्तृते हिमवत्पादे भृगुतुङ्गं जगाम सः॥ ३२

यत्रेश्वरो देववरस्य विष्णोः
प्रादाद्रथाङ्गप्रवरायुधं वै।
येन प्रचिच्छेद त्रिधैव शङ्करं
जिज्ञासमानोऽस्त्रबलं महात्मा॥ ३३

प्रह्लाद वहाँ विधिके अनुसार उसकी पूजा करनेके बाद ब्राह्मणोंको दान देकर हिमालयके विस्तृत चरणमें (उपत्यकामें विद्यमान) भृगुतुङ्गतीर्थमें गये। वहाँ भगवान् शंभुने देवश्रेष्ठ विष्णुको श्रेष्ठ अस्त्र दिया था। उस अस्त्र-चक्रके बलको जाननेकी इच्छासे उन महात्माने उससे शंकरको तीन टुकड़ोंमें काट दिया था॥ २७—३३॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८१॥

बयासीवाँ अध्याय

चक्रदानके कथा-प्रसङ्गमें उपमन्यु तथा श्रीदामाका वृत्तान्त, शिवद्वारा विष्णुको चक्र देना, हरका विरूपाक्ष हो जाना और श्रीदाम-वध

नारद उवाच

भगवँल्लोकनाथाय विष्णवे विषमेक्षणः।
किमर्थमायुधं चक्रं दत्तवाँल्लोकपूजितम्॥ १

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्।
चक्रप्रदानसम्बद्धां शिवमाहात्म्यवर्धिनीम्॥ २

आसीद् द्विजातिप्रवरो वेदवेदाङ्गपारगः।
गृहाश्रमी महाभागो वीतमन्युरिति स्मृतः॥ ३

तस्यात्रेयी महाभागा भार्यासीच्छीलसम्मता।
पतिव्रता पतिप्राणा धर्मशीलेति विश्रुता॥ ४

तस्यामस्य महर्षेस्तु ऋतुकालाभिगामिनः।
सम्बभूव सुतः श्रीमान् उपमन्युरिति स्मृतः॥ ५

तं माता मुनिशार्दूल शालिपिष्टरसेन वै।
पोषयामास वदती क्षीरमेतत् सुदुर्गता॥ ६

नारदजीने पूछा—भगवन्! तीन नेत्रोंवाले शंकरने जगत्पति विष्णुको समस्त लोकोंमें पूजित चक्र नामका आयुध क्यों दिया था?॥ १॥

पुलस्त्यजी बोले—(नारदजी!) आप चक्रके प्रदान करनेसे सम्बद्ध और शिवकी महिमाको बढ़ानेवाली इस प्राचीन कथाको सावधान होकर सुनिये—वेद-वेदाङ्ग-पारङ्गत, गृहस्थ और महाभाग्यशाली वीतमन्यु नामके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। उनकी महाभाग्यशालिनी, शीलसे सम्पन्न, पतिव्रता एवं पतिमें ही अपने प्राणोंको निहित किये रहनेवाली आत्रेयी नामकी पत्नी थी। वह धर्मशीला नामसे प्रसिद्ध थी। ऋतुकालमें ही उसके साथ समागम करनेवाले उन महर्षिके उससे उपमन्यु नामका एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ॥ २—५॥

मुनिश्रेष्ठ! अत्यन्त दरिद्रतासे जर्जर हुई उसकी माता पिसे हुए चावलके जलको यह दूध है—ऐसा कहकर उससे उस (पुत्र)-का पालन करती थी।

सोऽजानानोऽथ क्षीरस्य स्वादुतां पय इत्यथ।
सम्भावनामप्यकरोच्छालिपिष्टरसेऽपि हि॥ ७

स त्वेकदा समं पित्रा कुत्रचिद् द्विजवेश्मनि।
क्षीरौदनं च बुभुजे सुस्वादु प्राणपुष्टिदम्॥ ८

स लब्ध्वानुपमं स्वादं क्षीरस्य ऋषिदारकः।
मात्रा दत्तं द्वितीयेऽह्नि नादत्ते पिष्टवारि तत्॥ ९

दूधके स्वादसे अपरिचित होनेके कारण वह पिसे चावलके रस (जल)-में ही दूधकी संभावना करता था। एक दिन उसने अपने पिताके साथ किसी ब्राह्मणके घर प्राणको स्वस्थ बनानेवाली मधुर खीरका भोजन किया। ऋषिके उस पुत्रने दूधके अद्भुत स्वादको पाकर दूसरे दिन माताके द्वारा दिये गये पिसे हुए चावलके उस रसको ग्रहण नहीं किया॥ ६—९॥

रुरोदाथ ततो बाल्यात् पयोऽर्थी चातको यथा।
तं माता रुदती प्राह वाष्पगद्गदया गिरा॥ १०

उमापतौ पशुपतौ शूलधारिणि शङ्करे।
अप्रसन्ने विरूपाक्षे कुतः क्षीरेण भोजनम्॥ ११

यदीच्छसि पयो भोक्तुं सद्यः पुष्टिकरं सुत।
तदाराधय देवेशं विरूपाक्षं त्रिशूलिनम्॥ १२

तस्मिंस्तुष्टे जगद्धाम्नि सर्वकल्याणदायिनि।
प्राप्यतेऽमृतपायित्वं किं पुनः क्षीरभोजनम्॥ १३

उसके बाद दूध चाहनेवाला वह बालक बचपनके कारण प्यासे चातककी भाँति रोने लगा। रोती हुई माताने आँखोंमें आँसू भरे गद्गद वाणीमें उससे कहा—शूल धारण करनेवाले पार्वतीपति पशुपति विरूपाक्ष शंकरके असंतुष्ट रहते दूधसे मिला भोजन कहाँसे प्राप्त हो सकता है? पुत्र! यदि तुम तत्काल स्वास्थ्यकर दूध पीना चाहते हो तो त्रिशूल धारण करनेवाले विरूपाक्ष महादेवकी सेवा करो। संसारके आधार, सभी प्रकारसे कल्याण करनेवाले उन शंकरके संतुष्ट होनेपर अमृत पीनेको मिल सकता है, दूध पीनेकी तो बात ही क्या है॥ १०—१३॥

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा वीतमन्युसुतोऽब्रवीत्।
कोऽयं विरूपाक्ष इति त्वयाराध्यस्तु कीर्तितः॥ १४

ततः सुतं धर्मशीला धर्माढ्यं वाक्यमब्रवीत्।
योऽयं विरूपाक्ष इति श्रूयतां कथयामि ते॥ १५

आसीन्महासुरपतिः श्रीदाम इति विश्रुतः।
तेनाक्रम्य जगत्सर्वं श्रीर्नीता स्ववशं पुरा॥ १६

निःश्रीकास्तु त्रयो लोकाः कृतास्तेन दुरात्मना।
श्रीवत्सं वासुदेवस्य हर्तुमैच्छन्महाबलः॥ १७

माताके उस वचनको सुनकर वीतमन्युके पुत्रने कहा—आप जिनकी सेवा-पूजा करनेको कहती हैं, वे विरूपाक्ष कौन हैं? उसके बाद धर्मशीलाने पुत्रसे धर्मसे युक्त वचन कहा—(बेटा!) सुनो, मैं तुम्हें बतलाती हूँ कि ये विरूपाक्ष कौन हैं? प्राचीन कालमें श्रीदामा नामसे विख्यात एक महान् असुरोंका राजा था। उसने सारे संसारको अपने अधीन करके लक्ष्मीको अपने वशमें कर लिया। (सारे विश्वपर अपना अधिकार जमा लिया।) (फिर तो) उस दुष्टात्माने तीनों लोकोंको ही श्रीसे रहित कर दिया। उसके बाद उस महाबलशाली असुरने वासुदेवके श्रीवत्सको छीन लेनेकी कामना की॥ १४—१७॥

तमस्य दुष्टं भगवानभिप्रायं जनार्दनः।
ज्ञात्वा तस्य वधाकाङ्क्षी महेश्वरमुपागमत्॥ १८

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्योगमूर्तिधरोऽव्ययः।
तस्थौ हिमाचलप्रस्थमाश्रित्य श्लक्ष्णभूतलम्॥ १९

अथाभ्येत्य जगन्नाथं सहस्रशिरसं विभुम्।
आराधयामास हरिः स्वयमात्मानमात्मना॥ २०

उसकी उस दूषित इच्छाको जानकर भगवान् जनार्दन उसके मारनेकी इच्छासे महेश्वरके पास गये। उस समय योगमूर्तिके धारण करनेवाले अविनाशी शंकर हिमालयकी ऊँची चोटीके चिकने भूतलपर स्थित थे। उसके बाद सहस्रशीर्षा सर्वसमर्थ जगन्नाथजीके पास जाकर विष्णुने अपने द्वारा स्वयं अपनी ही अर्चना की।

साग्रं वर्षसहस्रं तु पादाङ्गुष्ठेन तस्थिवान्।
गृणंस्तत्परमं ब्रह्म योगिज्ञेयमलक्षणम्॥ २१

ततः प्रीतः प्रभुः प्रादाद् विष्णवे परमं वरम्।
प्रत्यक्षं तैजसं श्रीमान् दिव्यं चक्रं सुदर्शनम्॥ २२
तद् दत्त्वा देवदेवाय सर्वभूतभयप्रदम्।
कालचक्रनिभं चक्रं शङ्करो विष्णुमब्रवीत्॥ २३
वरायुधोऽयं देवेश सर्वायुधनिबर्हणः।
सुदर्शनो द्वादशारः षण्णाभिर्द्वियुगो जवी॥ २४
आरासंस्थास्त्वमी चास्य देवा मासाश्च राशयः।
शिष्टानां रक्षणार्थाय संस्थिता ऋतवश्च षट्॥ २५
अग्निः सोमस्तथा मित्रो वरुणोऽथ शचीपतिः।
इन्द्राग्नी चाप्यथो विश्वे प्रजापतय एव च॥ २६
हनूमांश्चाथ बलवान् देवो धन्वन्तरिस्तथा।
तपश्चैव तपस्यश्च द्वादशैते प्रतिष्ठिताः।
चैत्राद्याः फाल्गुनान्ताश्च मासास्तत्र प्रतिष्ठिताः॥ २७
त्वमेवमाधाय विभो वरायुधं
शत्रुं सुराणां जहि मा विशङ्किथाः।
अमोघ एषोऽमरराजपूजितो
धृतो मया नेत्रगतस्तपोबलात्॥ २८

इत्युक्तः शम्भुना विष्णुः भवं वचनमब्रवीत्।
कथं शम्भो विजानीयाममोघो मोघ एव वा॥ २९
यद्यमोघो विभो चक्रः सर्वत्राप्रतिघस्तव।
जिज्ञासार्थं तवैवेह प्रक्षेप्स्यामि प्रतीच्छ भोः॥ ३०
तद्वाक्यं वासुदेवस्य निशम्याह पिनाकधृक्।
यद्येवं प्रक्षिपस्वेति निर्विशङ्केन चेतसा॥ ३१
तन्महेशानवचनं श्रुत्वा विष्णुः सुदर्शनम्।
मुमोच तेजो जिज्ञासुः शङ्करम्प्रति वेगवान्॥ ३२

मुरारिकरविभ्रष्टं चक्रमभ्येत्य शूलिनम्।
त्रिधा चकार विश्वेशं यज्ञेशं यज्ञयाजकम्॥ ३३

हरं हरिस्त्रिधाभूतं दृष्ट्वा कृत्तं महाभुजः।
व्रीडोपप्लुतदेहस्तु प्रणिपातपरोऽभवत्॥ ३४

पादप्रणामावनतं वीक्ष्य दामोदरं भवः।
प्राह प्रीतिपरः श्रीमानुत्तिष्ठेति पुनः पुनः॥ ३५

योगियोंद्वारा जाननेयोग्य उस अव्यक्त परम ब्रह्मका जप करते हुए वे एक हजार वर्षसे अधिक समयतक पैरके अँगूठेपर खड़े रहे॥ १८—२१॥

उसके बाद श्रीमान् महादेवने संतुष्ट होकर विष्णुको परमश्रेष्ठ प्रत्यक्ष तेजसे युक्त दिव्य सुदर्शनचक्र प्रदान किया। सभी प्राणियोंके लिये भयदायक कालचक्रके समान वह चक्र देवाधिदेव विष्णुको देकर शंकरने उनसे कहा—देवेश! बारह अरों, छः नाभियों एवं दो युगोंसे युक्त तीव्रगतिशील और समस्त आयुधोंका नाश करनेवाला सुदर्शन नामका यह श्रेष्ठ आयुध है। सज्जनोंकी रक्षा करनेके लिये इसके अरोंमें देवता, मास, राशियाँ, छः ऋतुएँ, अग्नि, सोम, मित्र, वरुण, शचीपति इन्द्र, अग्नि, विश्वेदेव, प्रजापति, बलवान् हनूमान्, धन्वन्तरि देव, तप एवं तपस्या—ये तथा चैत्रसे लेकर फाल्गुनतकके बारह महीने प्रतिष्ठित हैं॥ २२—२७॥

विभो! आप इस श्रेष्ठ आयुधको ले करके निर्भीक होकर देवोंके शत्रुका संहार करें। मैंने असुर-राजसे आराधित इस अमोघ आयुधको तपके बलसे अपने नेत्रमें स्थित कर लिया था। शम्भुके इस प्रकार कहनेपर विष्णुने शंकरसे यह वचन कहा—शम्भो! मुझे यह कैसे मालूम होगा कि यह अस्त्र अमोघ या मोघ है? विभो! यदि आपका यह चक्र अमोघ तथा सर्वत्र बिना किसी बाधाके निरन्तर गतिशील है तो इसको जाननेके लिये मैं आपके ही ऊपर इसे चलाता हूँ। आप इसे स्वीकार करें। वासुदेवके उस वचनको सुनकर पिनाकधारीने कहा—यदि ऐसा है तो निश्चिन्त होकर मेरे ऊपर इसे चलाइये॥ २८—३१॥

महेशके उस वचनको सुनकर विष्णुने सुदर्शनके तेजको जाननेकी अभिलाषासे उसे वेगसे शंकरके ऊपर चलाया। विष्णुके हाथसे छोड़ा गया वह चक्र शंकरके निकट गया और उन्हें काटकर विश्वेश, यज्ञेश तथा यज्ञयाजकके रूपमें तीन भागोंमें अलग कर दिया। शंकरको तीन खण्डोंमें कटा हुआ देखकर महाबाहु विष्णु संकुचित हो गये। वे (शंकरको) प्रणाम करने लगे। चरणोंमें प्रणत हुए दामोदरको देखकर श्रीमान् भव (शंकर)-ने प्रसन्नतापूर्वक बार-बार 'उठो-उठो' कहते हुए (यह) कहा—॥ ३२—३५॥

प्राकृतोऽयं महाबाहो विकारश्चक्रनेमिना।
निकृत्तो न स्वभावो मे सोऽच्छेद्योऽदाह्य एव च॥ ३६

तद्यदेतानि चक्रेण त्रीणि भागानि केशव।
कृतानि तानि पुण्यानि भविष्यन्ति न संशयः॥ ३७

हिरण्याक्षः स्मृतो ह्येकः सुवर्णाक्षस्तथा परः।
तृतीयश्च विरूपाक्षस्त्रयोऽमी पुण्यदा नृणाम्॥ ३८

उत्तिष्ठ गच्छस्व विभो निहन्तुममरार्दनम्।
श्रीदाम्नि निहते विष्णो नन्दयिष्यन्ति देवताः॥ ३९

इत्येवमुक्तो भगवान् हरेण गरुडध्वजः।
गत्वा सुरगिरिप्रस्थं श्रीदामानं ददर्श ह॥ ४०

तं दृष्ट्वा देवदर्पघ्नं दैत्यं देववरो हरिः।
मुमोच चक्रं वेगाढ्यं हतोऽसीति ब्रुवन्मुहुः॥ ४१

महाबाहो! चक्रकी नेमिद्वारा मेरा यह प्राकृत विकार ही काटा गया है। इसके द्वारा मेरा स्वभाव नहीं क्षत हुआ है। वह तो अच्छेद्य एवं अदाह्य है। केशव! चक्रद्वारा किये गये ये तीनों अंश निस्सन्देह पुण्य प्रदान करनेवाले होंगे। एक अंश हिरण्याक्ष नामधारी, दूसरा सुवर्णाक्ष नामधारी और तीसरा विरूपाक्ष नामका होगा। ये तीनों अंश मनुष्योंके लिये पुण्यप्रदाता होंगे। विभो! उठिये और देव-शत्रुका वध करनेके लिये जाइये। विष्णो! श्रीदामाके वध किये जानेपर देवता प्रसन्न होंगे। शंकरके इस प्रकार कहनेपर भगवान् गरुडध्वजने पर्वतकी ऊँची चोटीपर जाकर श्रीदामाको देखा। देवताओंके दर्पका विनाश करनेवाले उस दैत्यको देखकर देव-श्रेष्ठ विष्णुने बार-बार (यह लो) 'तुम मारे गये' ऐसा कहते हुए तीव्र गतिसे चक्र चलाया॥ ३६—४१॥

ततस्तु तेनाप्रतिपौरुषेण
चक्रेण दैत्यस्य शिरो निकृत्तम्।
संछिन्नशीर्षो निपपात शैलाद्
वज्राहतं शैलशिरो यथैव॥ ४२

तस्मिन् हते देवरिपौ मुरारि-
रीशं समाराध्य विरूपनेत्रम्।
लब्ध्वा च चक्रं प्रवरं महायुधं
जगाम देवो निलयं पयोनिधिम्॥ ४३

सोऽयं पुत्र विरूपाक्षो देवदेवो महेश्वरः।
तमाराधय चेत् साधो क्षीरेणेच्छसि भोजनम्॥ ४४

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा वीतमन्युसुतो बली।
तमाराध्य विरूपाक्षं प्राप्तः क्षीरेण भोजनम्॥ ४५

एवं तवोक्तं परमं पवित्रं
संछेदनं शर्वतनोः पुरा वै।
तत्तीर्थवर्यं स महासुरो वै
समाससादाथ सुपुण्यहेतोः॥ ४६

फिर तो अनुपम पौरुषवाले उस चक्रने दैत्यका मस्तक काट डाला। मस्तक कट जानेपर दैत्य पर्वतके ऊपरसे इस प्रकार गिरा जैसे वज्रसे आहत होकर पर्वतकी ऊँची चोटी गिरती है। उस देव-शत्रुके मारे जानेपर मुरारिने विरूपाक्ष शंकरकी आराधना की और चक्ररूपी श्रेष्ठ महायुध लेकर वे देव क्षीरसागरमें स्थित अपने गृहको चले गये। [वीतमन्युकी धर्मशीला पत्नी आत्रेयी कहती हैं—] पुत्र! ये वही देव-देव महेश्वर विरूपाक्ष हैं। साधो! यदि तुम दूधके साथ भोजन करना चाहते हो तो उनकी सेवा-पूजा करो। माताके उस वचनको सुनकर वीतमन्युके बलवान् पुत्रने उन विरूपाक्ष शंकरकी आराधनाकर दुग्धसे युक्त भोजन प्राप्त किया। [पुलस्त्यजी कहते हैं—] इस प्रकार प्राचीन कालमें घटित हुई शंकरके शरीर-छेदनसे सम्बद्ध परम पवित्र कथाको मैंने तुमसे कहा। उसी श्रेष्ठ तीर्थमें वे महान् असुर प्रह्लाद सुन्दर पुण्य-प्राप्तिके लिये गये॥ ४२—४६॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बयासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८२॥

तिरासीवाँ अध्याय

प्रह्लादकी अनुक्रमागत तीर्थ-यात्रामें अनेक तीर्थोंका महत्त्व

पुलस्त्य उवाच

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं त्रिलोचनम्।
पूजयित्वा सुवर्णाक्षं नैमिषं प्रययौ ततः॥ १
तत्र तीर्थसहस्राणि त्रिंशत्पापहराणि च।
गोमत्याः काञ्चनाक्ष्याश्च गुरुदायाश्च मध्यतः॥ २
तेषु स्नात्वार्च्य देवेशं पीतवाससमच्युतम्।
ऋषीनपि च सम्पूज्य नैमिषारण्यवासिनः॥ ३
देवदेवं तथेशानं सम्पूज्य विधिना ततः।
गयायां गोपतिं द्रष्टुं जगाम स महासुरः॥ ४

पुलस्त्यजी बोले—प्रह्लादने उस उत्तम तीर्थमें स्नान कर त्रिनयन महादेवका दर्शन किया और सुवर्णाक्षकी पूजाकर वे नैमिषारण्य चले गये। वहाँ गोमती, काञ्चनाक्षी और गुरुदाके मध्यमें पाप-नाश करनेवाले तीस हजार तीर्थ हैं। उनमें स्नानकर उन्होंने पीताम्बर धारण करनेवाले देवेश्वर अच्युतकी पूजा की। नैमिषारण्यमें रहनेवाले ऋषियोंकी पूजा करनेके पश्चात् देवाधिदेव महेशका विधिपूर्वक पूजन कर वे महासुर गोपतिका दर्शन करनेके लिये गयातीर्थमें चले गये॥ १—४॥

तत्र ब्रह्मध्वजे स्नात्वा कृत्वा चास्य प्रदक्षिणाम्।
पिण्डनिर्वपणं पुण्यं पितॄणां स चकार ह॥ ५
उदपाने तथा स्नात्वा तत्राभ्यर्च्य पितॄन् वशी।
गदापाणिं समभ्यर्च्य गोपतिं चापि शङ्करम्॥ ६
इन्द्रतीर्थे तथा स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः।
महानदीजले स्नात्वा सरयूमाजगाम सः॥ ७
तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य गोप्रतारे कुशेशयम्।
उपोष्य रजनीमेकां विरजां नगरीं ययौ॥ ८

वहाँ ब्रह्मध्वजमें स्नान और उसकी प्रदक्षिणा कर उन्होंने पितरोंके निमित्त पवित्र पिण्डदान किया। (फिर) उदपानमें स्नानकर जितेन्द्रिय (प्रह्लाद)-ने पितरों, गदापाणि (विष्णु) एवं गोपति शंकरकी पूजा की। इन्द्रतीर्थमें (भी) स्नानकर उन्होंने पितरों एवं देवोंका तर्पण किया तथा महानदीके जलमें स्नानकर वे सरयूके समीप पहुँचे। उसमें स्नानकर उन्होंने गोप्रतारमें कुशेशयकी पूजा की एवं वहाँ एक रात्रि निवास कर वे विरजा नगरीमें गये॥ ५—८॥

स्नात्वा विरजसे तीर्थे दत्त्वा पिण्डं पितॄंस्तथा।
दर्शनार्थं ययौ श्रीमानजितं पुरुषोत्तमम्॥ ९
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षमक्षरं परमं शुचिः।
षड्रात्रमुष्य तत्रैव महेन्द्रं दक्षिणं ययौ॥ १०
तत्र देववरं शम्भुमर्द्धनारीश्वरं हरम्।
दृष्ट्वार्च्य सम्पूज्य पितॄन् महेन्द्रं चोत्तरं गतः॥ ११
तत्र देववरं शम्भुं गोपालं सोमपायिनम्।
दृष्ट्वा स्नात्वा सोमतीर्थे सह्याचलमुपागतः॥ १२

विरजातीर्थमें स्नान करनेके बाद पितरोंको पिण्ड-दान कर वे श्रीमान् पुरुषोत्तम अजितका दर्शन करने चले गये। वे निष्पाप प्रह्लाद अविनाशी पुण्डरीकाक्षका दर्शन करनेके पश्चात् छः रातोंतक वहाँ निवासकर दक्षिण दिशामें स्थित महेन्द्रपर्वतपर चले गये। (वे) वहाँ देवश्रेष्ठ अर्धनारीश्वर महादेवका दर्शन तथा पूजनकर पितरोंकी अर्चना करके उत्तर दिशाकी ओर चले गये। वहाँ देववर शम्भु और सोमपायी गोपालका दर्शन करनेके पश्चात् सोमतीर्थमें स्नानकर वे सह्याचलपर गये॥ ९—१२॥

तत्र स्नात्वा महोदक्यां वैकुण्ठं चार्च्य भक्तितः।
सुरान् पितॄन् समभ्यर्च्य पारियात्रं गिरिं गतः॥ १३
तत्र स्नात्वा लाङ्गलिन्यां पूजयित्वाऽपराजितम्।
कशेरुदेशं चाभ्येत्य विश्वरूपं ददर्श सः॥ १४

वहाँ महोदकीमें स्नान करनेके बाद श्रद्धापूर्वक विष्णु, देवताओं एवं पितरोंका पूजन कर वे पारियात्रपर्वतपर चले गये। वहाँ लाङ्गलिनीमें स्नान करनेके बाद उन्होंने अपराजितका पूजन किया और कशेरुदेशमें जाकर विश्वरूपका दर्शन किया।

यत्र देववरः शम्भुर्गणानां तु सुपूजितम्।
विश्वरूपमथात्मानं दर्शयामास योगवित्॥ १५
तत्र मङ्कुणिकातोये स्नात्वाभ्यर्च्य महेश्वरम्।
जगामाद्रिं स सौगन्धिं प्रह्लादो मलयाचलम्॥ १६
महाह्रदे ततः स्नात्वा पूजयित्वा च शङ्करम्।
ततो जगाम योगात्मा द्रष्टुं विन्ध्ये सदाशिवम्॥ १७
ततो विपाशासलिले स्नात्वाभ्यर्च्य सदाशिवम्।
त्रिरात्रं समुपोष्याथ अवन्तीं नगरीं ययौ॥ १८
तत्र शिप्राजले स्नात्वा विष्णुं सम्पूज्य भक्तितः।
श्मशानस्थं ददर्शाथ महाकालवपुर्धरम्॥ १९
तस्मिन् हि सर्वसत्त्वानां तेन रूपेण शङ्करः।
तामसं रूपमास्थाय संहारं कुरुते वशी॥ २०
तत्रस्थेन सुरेशेन श्वेतकिर्नाम भूपतिः।
रक्षितस्त्वन्तकं दग्ध्वा सर्वभूतापहारिणम्॥ २१
तत्रातिहृष्टो वसति नित्यं शर्वः सहोमया।
वृतः प्रमथकोटीभिर्बहुभिस्त्रिदशार्चितः॥ २२
तं दृष्ट्वाथ महाकालं कालकालान्तकान्तकम्।
यमसंयमनं मृत्योर्मृत्युं चित्रविचित्रकम्॥ २३
श्मशाननिलयं शम्भुं भूतनाथं जगत्पतिम्।
पूजयित्वा शूलधरं जगाम निषधान् प्रति॥ २४
तत्रामरेश्वरं देवं दृष्ट्वा सम्पूज्य भक्तितः।
महोदयं समभ्येत्य हयग्रीवं ददर्श सः॥ २५
अश्वतीर्थे ततः स्नात्वा दृष्ट्वा च तुरगाननम्।
श्रीधरं चैव सम्पूज्य पञ्चालविषयं ययौ॥ २६
तत्रेश्वरगुणैर्युक्तं पुत्रमर्थपतेरथ।
पाञ्चालिकं वशी दृष्ट्वा प्रयागं परतो ययौ॥ २७
स्नात्वा सन्निहिते तीर्थे यामुने लोकविश्रुते।
दृष्ट्वा वटेश्वरं रुद्रं माधवं योगशायिनम्॥ २८
द्वावेव भक्तितः पूज्यौ पूजयित्वा महासुरः।
माघमासमथोपोष्य ततो वाराणसीं गतः॥ २९
ततोऽस्यां वरणायां च तीर्थेषु च पृथक् पृथक्।
सर्वपापहराद्येषु स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः॥ ३०

प्रदक्षिणीकृत्य पुरीं पूज्याविमुक्तकेशवौ।
लोलं दिवाकरं दृष्ट्वा ततो मधुवनं ययौ॥ ३१

वहाँ योगवित् देववर शम्भुने गणोंसे पूजित अपना विश्वरूप प्रकट किया था; वहाँ मङ्कुणिकाके जलमें स्नान करनेके बाद महेश्वरका पूजनकर प्रह्लाद सुगन्धियुक्त मलयपर्वतपर गये॥ १३—१६॥

उसके बाद महाह्रदमें स्नान करनेके पश्चात् शंकरकी पूजाकर योगात्मा प्रह्लाद सदाशिवका दर्शन करनेके लिये विन्ध्यपर्वतपर गये। उसके बाद विपाशाके जलमें उन्होंने स्नान किया और सदाशिवका पूजन किया। उसके पश्चात् तीन रातोंतक वहाँ निवास करके वे अवन्ती नगरीमें गये। वहाँ शिप्राके जलमें स्नान करनेके बाद श्रद्धापूर्वक विष्णुका पूजनकर उन्होंने श्मशानमें स्थित महाकाल-शरीरधारीका दर्शन किया। वहाँ उस रूपमें स्थित आत्मवशी शंकर तामसरूप धारण करके समस्त प्राणियोंका संहार करते हैं॥ १७—२०॥

वहाँपर स्थित हुए सुरेशने सर्वभूतापहारी (समस्त भूतोंका अपहरण करनेवाले) अन्तकको जलाकर श्वेतकि नामक राजाकी रक्षा की थी। करोड़ों गणोंसे घिरे हुए एवं देवोंसे पूजित भगवान् शंकर उमाके साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वहाँ नित्य निवास करते हैं। उन कालोंके काल, अन्तकोंके अन्तक, यमोंके नियामक, मृत्युके मृत्यु, चित्रविचित्र श्मशानके वासी, भूतपति, जगत्पति, शूल धारण करनेवाले शंकरका दर्शन एवं पूजनकर वे निषधदेशकी ओर चले गये॥ २१—२४॥

वहाँ श्रद्धापूर्वक अमरेश्वर देवका दर्शन एवं अर्चन करनेके बाद उन्होंने महोदयमें जाकर हयग्रीवका दर्शन किया। उसके बाद अश्वतीर्थमें स्नान कर अश्वमुखका दर्शन तथा श्रीधरका अर्चन कर वे पाञ्चाल देशमें गये। जितेन्द्रिय प्रह्लाद वहाँ ईश्वरीय गुणोंसे सम्पन्न धनपति कुबेरके पुत्र पाञ्चालिकका दर्शनकर प्रयाग चले गये। निकटमें रहनेवाले यमुनाके विख्यात तीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् वटेश्वर रुद्र तथा योगशायी माधवका दर्शन एवं श्रद्धापूर्वक उन दोनों पूजनीयोंका अर्चन कर उन महासुरने माघमासमें वहाँ निवास किया। उसके बाद वे वाराणसी चले गये॥ २५—२९॥

उसके बाद समस्त पापोंका अपहरण करनेवाले असी और वरुणाके विभिन्न तीर्थोंमें स्नानके बाद पितरों एवं देवोंका अर्चनकर उन्होंने (वाराणसी) पुरीकी प्रदक्षिणा की। उसके बाद अविमुक्तेश्वर एवं केशवकी पूजा तथा लोलार्कका दर्शन करके वे मधुवन चले गये।

तत्र स्वयम्भुवं देवं ददर्शासुरसत्तमः।
तमभ्यर्च्य महातेजाः पुष्कराराण्यमागमत्॥ ३२
तेषु त्रिष्वपि तीर्थेषु स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः।
पुष्कराक्षमयोगन्धिं ब्रह्माणं चाप्यपूजयत्॥ ३३
ततो भूयः सरस्वत्यास्तीर्थे त्रैलोक्यविश्रुते।
कोटितीर्थे रुद्रकोटिं ददर्श वृषभध्वजम्॥ ३४
नैमिषेया द्विजवरा मागधेयाः ससैन्धवाः।
धर्मारण्याः पौष्करेया दण्डकारण्यकास्तथा॥ ३५
चाम्पेया भारुकच्छेया देविकातीरगाश्च ये।
ते तत्र शङ्करं द्रष्टुं समायाता द्विजातयः॥ ३६
कोटिसंख्यास्तपःसिद्धा हरदर्शनलालसाः।
अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येवं वादिनो मुने॥ ३७
तान् संक्षुब्धान् हरो दृष्ट्वा महर्षीन् दग्धकिल्बिषान्।
तेषामेवानुकम्पार्थं कोटिमूर्त्तिरभूद् भवः॥ ३८
ततस्ते मुनयः प्रीताः सर्व एव महेश्वरम्।
सम्पूजयन्तस्तस्थुर्वै तीर्थं कृत्वा पृथक् पृथक्।
इत्येवं रुद्रकोटीति नाम्ना शम्भुरजायत॥ ३९
तं ददर्श महातेजाः प्रह्लादो भक्तिमान् वशी।
कोटितीर्थे ततः स्नात्वा तर्पयित्वा वसून् पितॄन्।
रुद्रकोटिं समभ्यर्च्य जगाम कुरुजाङ्गलम्॥ ४०
तत्र देववरं स्थाणुं शङ्करं पार्वतीप्रियम्।
सरस्वतीजले मग्नं ददर्श सुरपूजितम्॥ ४१
सारस्वतेऽम्भसि स्नात्वा स्थाणुं सम्पूज्य भक्तितः।
स्नात्वा दशाश्वमेधे च सम्पूज्य च सुरान् पितॄन्॥ ४२
सहस्रलिङ्गं सम्पूज्य स्नात्वा कन्याह्रदे शुचिः।
अभिवाद्य गुरुं शुक्रं सोमतीर्थं जगाम ह॥ ४३
तत्र स्नात्वाऽर्च्य च पितॄन् सोमं सम्पूज्य भक्तितः।
क्षीरिकावासमभ्येत्य स्नानं चक्रे महायशाः॥ ४४
प्रदक्षिणीकृत्य तरुं वरुणं चार्च्य बुद्धिमान्।
भूयः कुरुध्वजं दृष्ट्वा पद्माख्यां नगरीं गतः॥ ४५
तत्रार्च्य मित्रावरुणौ भास्करौ लोकपूजितौ।
कुमारधारामभ्येत्य ददर्श स्वामिनं वशी॥ ४६

महातेजस्वी असुरोत्तम प्रह्लाद वहाँ स्वयम्भू देवका दर्शन एवं पूजनकर पुष्कराराण्यमें गये। उन तीनों तीर्थोंमें स्नान करनेके बाद पितरों एवं देवोंका पूजन कर उन्होंने अयोगन्धि, पुष्कराक्ष तथा ब्रह्माका अर्चन किया। उसके बाद उन्होंने कोटितीर्थमें सरस्वतीके तटपर स्थित लोकविख्यात रुद्रकोटि वृषभध्वजका दर्शन किया॥ ३०—३४॥

(कथा है कि प्राचीन समयमें) नैमिषारण्य, मगध, सिन्धुप्रदेश, धर्मारण्य, पुष्कर, दण्डकारण्य, चम्पा, भरुकच्छ एवं देविकाके तटपर रहनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ शंकरका दर्शन करने आये थे। मुने! शिवके दर्शनकी इच्छावाले करोड़ों सिद्ध तपस्वी 'मैं पहले दर्शन करूँगा', 'मैं पहले दर्शन करूँगा' इस प्रकारका विवाद करने लगे। उन निष्पाप महर्षियोंको विशेष अधीर हुआ देखकर शंकरने उनपर कृपाकर करोड़ों मूर्त्तियाँ धारण कर लीं॥ ३५—३८॥

उसके बाद वे सभी मुनि हर्षपूर्वक अलग-अलग तीर्थ बनाकर महेश्वरकी पूजा करते हुए निवास करने लगे। इस प्रकार शम्भुका नाम रुद्रकोटि हुआ। महातेजस्वी श्रद्धालु जितेन्द्रिय प्रह्लादने उनका दर्शन किया एवं कोटितीर्थमें स्नानकर वसुओं तथा पितरोंका तर्पण किया। उसके बाद रुद्रकोटिका अर्चनकर वे कुरुजाङ्गलमें चले गये। उन्होंने वहाँ सरस्वतीके जलमें निमग्न हुए देवताओंसे पूजित स्थाणु—पार्वतीपति भगवान् शंकरका दर्शन किया। सरस्वतीके जलमें स्नानकर उन्होंने श्रद्धापूर्वक स्थाणुकी पूजा की तथा दशाश्वमेधमें स्नानकर देवों एवं पितरोंका अर्चन किया॥ ३९—४२॥

कन्याह्रदमें स्नान करनेके बाद पवित्र होकर उन्होंने सहस्रलिङ्गका अर्चन किया। इसके बाद (शुक्रतीर्थमें) गुरु शुक्राचार्यको प्रणामकर वे सोमतीर्थ चले गये। वहाँ स्नान करनेके बाद श्रद्धापूर्वक पितरों एवं सोमका अर्चन करके उन महायशस्वीने क्षीरिकावासमें जाकर स्नान किया। वहाँके वृक्षकी प्रदक्षिणाकर तथा वरुणकी पूजा करनेके पश्चात् बुद्धिमान् प्रह्लाद फिर कुरुध्वजका दर्शनकर पद्मा नामकी नगरीमें चले गये। वहाँ लोकपूजित तेजस्वी मित्रावरुणका पूजन करनेके बाद कुमारधारामें जाकर जितेन्द्रिय प्रह्लादने स्वामी कार्तिकेयका दर्शन किया।

स्नात्वा कपिलधारायां संतर्प्यार्च्य पितॄन् सुरान्।
दृष्ट्वा स्कन्दं समभ्यर्च्य नर्मदायां जगाम ह॥ ४७
तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य वासुदेवं श्रियः पतिम्।
जगाम भूधरं द्रष्टुं वाराहं चक्रधारिणम्॥ ४८

कपिलधारामें स्नान करके पितृतर्पण, देवपूजन एवं स्कन्दका दर्शन तथा अर्चन कर वे नर्मदाके निकट गये। उसमें स्नान करके लक्ष्मीपति वासुदेवकी अर्चना कर वे चक्र धारण करनेवाले भूधर वाराहदेवका दर्शन करने गये॥ ४३—४८॥

स्नात्वा कोकामुखे तीर्थे सम्पूज्य धरणीधरम्।
त्रिसौवर्णं महादेवमर्बुदेशं जगाम ह॥ ४९
तत्र नारीह्रदे स्नात्वा पूजयित्वा च शङ्करम्।
कालिञ्जरं समभ्येत्य नीलकण्ठं ददर्श सः॥ ५०
नीलतीर्थजले स्नात्वा पूजयित्वा ततः शिवम्।
जगाम सागरानूपे प्रभासे द्रष्टुमीश्वरम्॥ ५१
स्नात्वा च संगमे नद्याः सरस्वत्यार्णवस्य च।
सोमेश्वरं लोकपतिं ददर्श स कपर्दिनम्॥ ५२
यो दक्षशापनिर्दग्धः क्षयी ताराधिपः शशी।
आप्यायितः शङ्करेण विष्णुना सकपर्दिना॥ ५३

वे कोकामुखतीर्थमें स्नान और धरणीधरकी पूजा करके अर्बुदेशमें त्रिसौवर्ण महादेवके पास गये। वहाँ उन्होंने नारीह्रदमें स्नान और शंकरकी अर्चना करनेके बाद कालिंजरमें आकर नीलकण्ठका दर्शन किया। नीलतीर्थके जलमें स्नान करनेके बाद शिवका पूजन कर वे समुद्रके तटपर प्रभासतीर्थमें भगवान्‌का दर्शन करने गये। वहाँ उन्होंने सरस्वती नदी और सागरके संगममें स्नानकर लोकपति कपर्दी सोमेश्वरका दर्शन किया। कपर्दी शंकर एवं विष्णुने दक्षके शापसे दग्ध हुए एवं क्षयरोगसे ग्रसित ताराधिप चन्द्रमाको पूर्ण किया था॥ ४९—५३॥

तावर्च्य देवप्रवरौ प्रजगाम महालयम्।
तत्र रुद्रं समभ्यर्च्य प्रजगामोत्तरान् कुरून्॥ ५४
पद्मनाभं स तत्रार्च्य सप्तगोदावरं ययौ।
तत्र स्नात्वाऽर्च्य विश्वेशं भीमं त्रैलोक्यवन्दितम्॥ ५५
गत्वा दारुवने श्रीमान् लिङ्गं स ददर्श ह।
तमर्च्य ब्राह्मणीं गत्वा स्नात्वाऽर्च्य त्रिदशेश्वरम्॥ ५६
प्लक्षावतरणं गत्वा श्रीनिवासमपूजयत्।
ततश्च कुण्डिनं गत्वा सम्पूज्य प्राणतृप्तिदम्॥ ५७
शूर्पारके चतुर्बाहुं पूजयित्वा विधानतः।
मागधारण्यमासाद्य ददर्श वसुधाधिपम्॥ ५८
तमर्चयित्वा विश्वेशं स जगाम प्रजामुखम्।
महातीर्थे ततः स्नात्वा वासुदेवं प्रणम्य च॥ ५९
शोणं सम्प्राप्य सम्पूज्य रुक्मवर्माणमीश्वरम्।
महाकोश्यां महादेवं हंसाख्यं भक्तिमानथ॥ ६०
पूजयित्वा जगामाथ सैन्धवारण्यमुत्तमम्।
तत्रेश्वरं सुनेत्राख्यं शङ्खशूलधरं गुरुम्।
पूजयित्वा महाबाहुः प्रजगाम त्रिविष्टपम्॥ ६१

उन दोनों श्रेष्ठ देवोंका पूजनकर वे महालय गये; वहाँ रुद्रका पूजन कर वे उत्तरकुरु गये। वहाँ पद्मनाभका अर्चन कर वे सप्तगोदावरतीर्थमें गये। वहाँ स्नान करनेके बाद उन्होंने तीनों लोकोंसे वन्दित भीमविश्वेश्वरका पूजन किया। दारुवनमें जाकर श्रीमान् प्रह्लादने लिङ्गका दर्शन किया। उनकी पूजा करनेके पश्चात् ब्राह्मणी (नदी)-में जाकर उन्होंने स्नान और त्रिदशेश्वर महादेवकी अर्चना की। उसके बाद प्लक्षावतरणमें जाकर उन्होंने श्रीनिवासकी अर्चना की। फिर कुण्डिनमें जाकर प्राणोंके तृप्तिदाता देवका अर्चन किया। उन्होंने शूर्पारकमें चतुर्भुज देवकी भलीभाँति पूजा करनेके बाद मागधारण्यमें जाकर वसुधाधिपका दर्शन किया। उन विश्वेशका पूजन कर वे प्रजामुखमें गये। उसके बाद उन्होंने महातीर्थमें स्नानकर वासुदेवको प्रणाम किया। उन्होंने शोणतटपर जाकर स्वर्णकवच धारण करनेवाले ईश्वरका पूजन किया। उसके बाद श्रद्धालु (प्रह्लाद)-ने महाकोशीमें हंस नामक महादेवका अर्चन किया एवं श्रेष्ठ सैन्धवारण्यमें जाकर शङ्ख तथा शूल धारण करनेवाले सुनेत्र नामक पूज्य ईश्वरका पूजन किया। उसके बाद वे महाबाहु त्रिविष्टप चले गये॥ ५४—६१॥

तत्र देवं महेशानं जटाधरमिति श्रुतम्।
तं दृष्ट्वाऽर्च्य हरिं चासौ तीर्थं कनखलं ययौ॥ ६२

वहाँ जटाधर नामसे प्रसिद्ध महेशान देवका दर्शन और विष्णुकी पूजा कर वे कनखलतीर्थमें गये।

तत्रार्च्य भद्रकालीशं वीरभद्रं च दानवः।
धनाधिपं च मेघाङ्कं ययावथ गिरिव्रजम्॥ ६३
तत्र देवं पशुपतिं लोकनाथं महेश्वरम्।
सम्पूजयित्वा विधिवत्कामरूपं जगाम ह॥ ६४
शशिप्रभं देववरं त्रिनेत्रं
सम्पूजयित्वा सह वै मृडान्या।
जगाम तीर्थप्रवरं महाख्यं
तस्मिन् महादेवमपूजयत् सः॥ ६५
ततस्त्रिकूटं गिरिमत्रिपुत्रं
जगाम द्रष्टुं स हि चक्रपाणिनम्।
तमीड्य भक्त्या तु गजेन्द्रमोक्षणं
जजाप जप्यं परमं पवित्रम्॥ ६६
तत्रोष्य दैत्येश्वरसूनुरादरा-
न्मासत्रयं मूलफलाम्बुभक्षी।
निवेद्य विप्रप्रवरेषु काञ्चनं
जगाम घोरं स हि दण्डकं वनम्॥ ६७
तत्र दिव्यं महाशाखं वनस्पतिवपुर्धरम्।
ददर्श पुण्डरीकाक्षं महाश्वापदवारणम्॥ ६८
तस्याधस्थात् त्रिरात्रं स महाभागवतोऽसुरः।
स्थितः स्थण्डिलशायी तु पठन् सारस्वतं स्तवम्॥ ६९
तस्मात् तीर्थवरं विद्वान् सर्वपापप्रमोचनम्।
जगाम दानवो द्रष्टुं सर्वपापहरं हरिम्॥ ७०
तस्याग्रतो जजापासौ स्तवौ पापप्रणाशनौ।
यौ पुरा भगवान् प्राह क्रोडरूपी जनार्दनः॥ ७१
तस्मादथागाद् दैत्येन्द्रः शालग्रामं महाफलम्।
यत्र संनिहितो विष्णुश्चरेषु स्थावरेषु च॥ ७२
तत्र सर्वगतं विष्णुं मत्वा चक्रे रतिं बली।
पूजयन् भगवत्पादौ महाभागवतो मुने॥ ७३
इयं तवोक्ता मुनिसंघजुष्टा
प्रह्लादतीर्थानुगतिः सुपुण्या।
यत्कीर्त्तनाच्छ्रवणात् स्पर्शनाच्च
विमुक्तपापा मनुजा भवन्ति॥ ७४

दानव प्रह्लाद वहाँ भद्रकालीश और वीरभद्र तथा धनाधिप मेघाङ्ककी पूजा कर गिरिव्रज चले गये। वहाँ लोकनाथ महेश्वर पशुपति देवका विधिवत् अर्चन कर वे कामरूप चले गये। वहाँ चन्द्रकी कान्तिसे युक्त देवश्रेष्ठ त्रिनेत्र शंकरकी मृडानी (पार्वती)-के साथ विधिवत् अर्चना कर प्रह्लाद श्रेष्ठ महाख्यतीर्थमें गये और वहाँपर (भी) उन्होंने महादेवकी अर्चना की॥ ६२—६५॥

उसके बाद वे अत्रिपुत्र चक्रपाणि विष्णुका दर्शन करनेके लिये त्रिकूटपर्वतपर चले गये और श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा कर उन्होंने परम पवित्र जपनेयोग्य गजेन्द्र-मोक्षणस्तवका पाठ किया। मूल, फल एवं जलका भक्षण करते हुए दैत्येश्वर-पुत्र प्रह्लादने वहाँ तीन मासतक श्रद्धापूर्वक निवास किया। उसके बाद श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सुवर्ण दान कर वे घोर दण्डकवन चले गये। वहाँ उन्होंने महान् हिंस्र पशुओंके निवारक, महान् शाखाओंसे युक्त वनस्पतिका शरीर धारण करनेवाले पुण्डरीकाक्षका दर्शन किया। सारस्वतस्तोत्रका पाठ करते हुए महान् विष्णुभक्त असुर प्रह्लादने तीन रातोंतक उसके नीचे बिना विस्तरके चबूतरेपर शयन किया॥ ६६—६९॥

विद्वान् दानव (प्रह्लादजी) वहाँसे सर्वपापहारी हरिका दर्शन करनेके लिये सर्वपापनाशक श्रेष्ठ तीर्थमें चले गये। उन्होंने उनके सामने प्राचीन कालमें क्रोडरूपी जनार्दनसे कथित पापनाश करनेवाले दो स्तोत्रोंका पाठ किया। उसके बाद वे वहाँसे दैत्येन्द्र (प्रह्लाद) महाफलदायक शालग्रामतीर्थमें गये। वहाँ विष्णु समस्त चर और स्थावर पदार्थोंमें विराजमान हैं। (पुलस्त्यजी कहते हैं—) मुने! वहाँ महान् विष्णुभक्त बलवान् प्रह्लाद विष्णुको सर्वव्यापी जानकर भगवान्के चरणोंकी पूजा करते हुए उन (-की भक्ति)-में परायण हो गये। मैंने तुमसे मुनियोंके समूहोंसे सेवित अत्यन्त पवित्र प्रह्लादकी तीर्थयात्राका वर्णन कर दिया, जिसके कीर्तन, श्रवण एवं स्पर्शसे मनुष्य निष्पाप हो जाते हैं॥ ७०—७४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तिरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८३॥

चौरासीवाँ अध्याय

प्रह्लादके तीर्थयात्रा-प्रसङ्गमें त्रिकूटगिरिस्थित सरोवरमें ग्राहद्वारा गजेन्द्रका पकड़ा जाना, गजेन्द्रद्वारा विष्णुकी स्तुति, गज-ग्राहका उद्धार एवं 'गजेन्द्रमोक्षणस्तोत्र' की फलश्रुति

नारद उवाच

यान् जप्यान् भगवद्भक्त्या प्रह्लादो दानवोऽजपत्।
गजेन्द्रमोक्षणादींस्तु चतुरस्तान् वदस्व मे॥ १

नारदजीने कहा—दनुवंशमें उत्पन्न हुए प्रह्लादने भगवान्‌की भक्तिसे भावित होकर जप (पाठ) करनेयोग्य गजेन्द्रमोक्षणादि जिन चार स्तोत्रोंका जप किया था उन चारों स्तोत्रोंको आप मुझे बतलावें॥ १॥

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्व कथयिष्यामि जप्यानेतांस्तपोधन।
दुःस्वप्रनाशो भवति यैरुक्तैः संश्रुतैः स्मृतैः॥ २

गजेन्द्रमोक्षणं त्वादौ शृणुष्व तदनन्तरम्।
सारस्वतं ततः पुण्यौ पापप्रशमनौ स्तवौ॥ ३

सर्वरत्नमयः श्रीमांस्त्रिकूटो नाम पर्वतः।
सुतः पर्वतराजस्य सुमेरोर्भास्करद्युतेः॥ ४

क्षीरोदजलवीच्यग्रैर्धौतामलशिलातलः ।
उत्थितः सागरं भित्त्वा देवर्षिगणसेवितः॥ ५

पुलस्त्यजी बोले—तपोधन! मैं उन (जप करनेयोग्य) स्तोत्रोंका वर्णन करता हूँ जिनके कहने, सुनने और स्मरण करनेसे दुःस्वप्नोंका विनाश होता है उसे आप सुनें। पहले गजेन्द्रमोक्षणस्तोत्र सुनिये। उसके बाद सारस्वतस्तोत्र एवं उसके बाद पापोंके प्रशमन करनेवाले (दो पवित्र) स्तोत्रोंका वर्णन करूँगा। सूर्यके सदृश कान्तिवाले पर्वतराज सुमेरुका पुत्र सर्वरत्नोंसे भरा श्रीसे सम्पन्न त्रिकूट नामका एक पर्वत है। क्षीरसागरके जलकी लहरोंसे धुले हुए निर्मल शिलातलवाला वह पर्वत समुद्रका भेदन कर उसके ऊपर निकल आया है एवं देवता और ऋषिगण वहाँ सदा निवास करते हैं॥ २—५॥

अप्सरोभिः परिवृतः श्रीमान् प्रस्त्रवणाकुलः।
गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैः सिद्धचारणपन्नगैः॥ ६

विद्याधरैः सपत्नीकैः संयतैश्च तपस्विभिः।
वृकद्वीपिगजेन्द्रैश्च वृतगात्रो विराजते॥ ७

पुन्नागैः कर्णिकारैश्च बिल्वामलकपाटलैः।
चूतनीपकदम्बैश्च चन्दनागुरुचम्पकैः॥ ८

शालैस्तालैस्तमालैश्च सरलार्जुनपर्पटैः।
तथान्यैर्विविधैर्वृक्षैः सर्वतः समलङ्कृतः॥ ९

अप्सराओंसे घिरा, झरते हुए झरनोंवाला, गन्धर्वों, किन्नरों, यक्षों, सिद्धों, चारणों, पन्नगों, पत्नीके साथ विद्याधरों, संयमका पालन करनेवाले तपस्वियों और भेड़ियों, चीतों एवं गजेन्द्रोंसे भरा-पूरा वह शोभाशाली पर्वत अत्यन्त सुशोभित है। पुंनाग, कर्णिकार, बिल्व, आमलक, पाटल, आम्र, नीप, कदम्ब, चन्दन, अगुरु, चम्पक, शाल, ताल, तमाल, सरल, अर्जुन, पर्पट तथा दूसरे बहुत प्रकारके वृक्षोंसे वह पर्वत सब तरहसे सुशोभित है॥ ६—९॥

नानाधात्वङ्कितैः शृङ्गैः प्रस्त्रवद्भिः समन्ततः।
शोभितो रुचिरप्रख्यैस्त्रिभिर्विस्तीर्णसानुभिः॥ १०

मृगैः शाखामृगैः सिंहैर्मातङ्गैश्च सदामदैः।
जीवंजीवकसंघुष्टैश्चकोरशिखिनादितैः ॥ ११

तस्यैकं काञ्चनं शृङ्गं सेवते यं दिवाकरः।
नानापुष्पसमाकीर्णं नानागन्धादिवासितम्॥ १२

द्वितीयं राजतं शृङ्गं सेवते यं निशाकरः।
पाण्डुराम्बुदसंकाशं तुषारचयसंनिभम्॥ १३

वज्रेन्द्रनीलवैडूर्यतेजोभिर्भासयन् दिशः।
तृतीयं ब्रह्मसदनं प्रकृष्टं शृङ्गमुत्तमम्॥ १४

न तत् कृतघ्नाः पश्यन्ति न नृशंसा न नास्तिकाः।
नातप्ततपसो लोके ये च पापकृतो जनाः॥ १५

तस्य सानुमतः पृष्ठे सरः काञ्चनपङ्कजम्।
कारण्डवसमाकीर्णं राजहंसोपशोभितम्॥ १६

कुमुदोत्पलकह्लारैः पुण्डरीकैश्च मण्डितम्।
कमलैः शतपत्रैश्च काञ्चनैः समलङ्कृतम्॥ १७

पत्रैर्मरकतप्रख्यैः पुष्पैः काञ्चनसंनिभैः।
गुल्मैः कीचकवेणूनां समन्तात् परिवेष्टितम्॥ १८

तस्मिन् सरसि दुष्टात्मा विरूपोऽन्तर्जलेशयः।
आसीद् ग्राहो गजेन्द्राणां रिपुराकेकरेक्षणः॥ १९

अथ दन्तोज्ज्वलमुखः कदाचिद् गजयूथपः।
मदस्त्रावी जलाकाङ्क्षी पादचारीव पर्वतः॥ २०

वासयन्मदगन्धेन गिरिमैरावतोपमः।
गजो ह्यञ्जनसंकाशो मदाच्चलितलोचनः॥ २१

तृषितः पातुकामोऽसौ अवतीर्णश्च तज्जलम्।
सलीलः पङ्कजवने यूथमध्यगतश्चरन्॥ २२

वह पर्वत भाँति-भाँतिकी धातुओंसे चमकती चोटियों, चारों ओरसे बहनेवाले झरनों और अत्यन्त मनोहर तथा सुदूर देशमें फैले हुए तीन शिखरोंसे शोभित है। वह पर्वत हरिण, बन्दर, सिंह, मदसे मतवाले हाथी, चातक, चकोर एवं मोर आदिके शब्दोंसे सदा शब्दायमान होता रहता है। कई प्रकारके फूलोंसे भरे-पूरे एवं तरह-तरहकी सुगन्धोंसे सुवासित उसके एक सुनहले शिखरका सेवन सूर्य करते हैं। सफेद बादलोंकी तरह एवं बर्फके ढेरके समान चाँदी-जैसी उसकी दूसरी चोटीका सेवन चन्द्रमा करते हैं॥ १०—१३॥

हीरा, इन्द्रनील, वैडूर्य आदि रत्नोंकी चमकसे दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला उसका अत्यन्त उत्तम तीसरा शिखर ब्रह्माका निवास-स्थान है। कृतघ्न, क्रूर, नास्तिक, तपस्यासे हीन एवं लोकमें पापकर्म करनेवाले मनुष्य उसे नहीं देख सकते। उस पर्वतके पीछेकी ओर कमलोंसे युक्त, कारण्डव पक्षियोंसे भरे, राजहंसोंसे सुशोभित, कुमुद, उत्पल, कह्लार, पुण्डरीक आदि अनेक प्रकारके सुनहले कमलोंसे अलङ्कृत एवं सुनहले शतपत्रोंवाले तथा अन्य प्रकारके कमलोंसे (और भी) सुशोभित एवं मरकतके सदृश पत्तों तथा सोनेके समान पुष्पों और हवासे चूँ-चूँ शब्द करनेवाले बाँसके झाड़ोंसे चारों ओरसे घिरा एक सरोवर है॥ १४—१८॥

उस सरोवरके जलमें हाथियोंका शत्रु दुष्ट स्वभावका आधी खुली आँखोंवाला कुरूप एक मगर रहता था। एक समय उज्ज्वल दाँतोंवाला, मदस्त्रावी, पैरसे चलनेवाले पर्वतके समान, मदके गन्धसे वासित ऐरावतके सदृश अञ्जनकी भाँति काला, मदके कारण चञ्चल नेत्रोंवाला, प्यासा एक गजयूथपति पानी पीनेकी इच्छासे उस सरोवरके जलमें पैठा और कमलोंके समूहमें अपने झुंडके बीचमें रहकर क्रीडा करने लगा।

गृहीतस्तेन रौद्रेण ग्राहेणाव्यक्तमूर्तिना।
पश्यन्तीनां करेणूनां क्रोशन्तीनां च दारुणम्॥ २३

ह्रियते पङ्कजवने ग्राहेणातिबलीयसा।
वारुणैः संयतः पाशैर्निष्प्रयत्नगतिः कृतः॥ २४

वेष्ट्यमानः सुघोरैस्तु पाशैर्नागो दृढैस्तथा।
विस्फूर्य च यथाशक्ति विक्रोशंश्च महारवान्॥ २५

व्यथितः स निरुत्साहो गृहीतो घोरकर्मणा।
परमापदमापन्नो मनसाऽचिन्तयद्धरिम्॥ २६

स तु नागवरः श्रीमान् नारायणपरायणः।
तमेव शरणं देवं गतः सर्वात्मना तदा॥ २७

एकात्मा निगृहीतात्मा विशुद्धेनान्तरात्मना।
जन्मजन्मान्तराभ्यासाद् भक्तिमान् गरुडध्वजे॥ २८

नान्यं देवं महादेवात् पूजयामास केशवात्।
मथितामृतफेनाभं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ २९

सहस्रशुभनामानमादिदेवमजं विभुम्।
प्रगृह्य पुष्कराग्रेण काञ्चनं कमलोत्तमम्।
आपद्विमोक्षमन्विच्छन् गजः स्तोत्रमुदीरयत्॥ ३०

गजेन्द्र उवाच

ॐ नमो मूलप्रकृतये अजिताय महात्मने।
अनाश्रिताय देवाय निःस्पृहाय नमोऽस्तु ते॥ ३१

नम आद्याय बीजाय आर्षेयाय प्रवर्तिने।
अनन्तराय चैकाय अव्यक्ताय नमो नमः॥ ३२

नमो गुह्याय गूढाय गुणाय गुणवर्तिने।
अप्रतर्क्याप्रमेयाय अतुलाय नमो नमः॥ ३३

नमः शिवाय शान्ताय निश्चिन्ताय यशस्विने।
सनातनाय पूर्वाय पुराणाय नमो नमः॥ ३४

(जलके भीतर) अपने शरीरको छिपाये हुए एक भयंकर ग्राहने उसे पकड़ लिया। करुण स्वरसे चिग्घाड़ कर रही हथिनियोंके देखते-ही-देखते अत्यन्त बलवान् ग्राह उसे कमलोंसे संकुल जलमें खींच ले गया और वरुणके पाशोंसे बाँधकर उसे चेष्टारहित एवं गतिहीन (विवश) कर दिया॥ १९—२४॥

वहाँ सुदृढ और भयङ्कर पाशोंसे आबद्ध हो जानेके कारण गजराज यथाशक्ति छटपटाकर ऊँचे स्वरसे चिग्घाड़ने लगा। क्रूर कर्मवाले (उस ग्राह)-के द्वारा पकड़े जानेपर वह पीड़ित और उत्साहरहित हो गया। भारी विपत्तिमें पड़कर वह मनसे भगवान् श्रीहरिका ध्यान करने लगा। वह सुन्दर गजराज (पूर्वजन्मका) नारायणका भक्त था। इसलिये वह उस समय सर्वतोभावेन उन्हीं देवकी शरणमें प्रपन्न हो गया। वह गजराज जन्म-जन्मान्तरके अभ्याससे एकाग्र एवं संयतचित्त होकर विशुद्ध अन्तःकरणसे गरुडध्वज भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लग गया था। उसने महान् देव केशव (श्रीविष्णु)-के सिवा अन्य देवताओंकी पूजा नहीं की। उस गजने मथे हुए अमृतके फेनके समान कान्तिवाले, शङ्ख तथा चक्र और गदाको धारण करनेवाले, सहस्रों शुभ नामोंवाले, आदिदेव एवं अजन्मा सर्वव्यापक विष्णु (नारायण)-का ध्यान किया और अपने शुण्डके अग्रभागमें एक उत्तम स्वर्ण-कमल लेकर (इस) आपत्तिसे मुक्ति प्राप्त करनेकी इच्छासे इस स्तोत्रका पाठ करने लगा॥ २५—३०॥

गजेन्द्र बोला—ॐ मूलप्रकृतिस्वरूप महान् आत्मा अजित विष्णुभगवान्‌को नमस्कार है। अन्योंपर आश्रित न रहनेवाले एवं (किसी वस्तुकी प्राप्तिकी) इच्छासे रहित आप देवको नमस्कार है। आद्यबीजस्वरूप, ऋषियोंके आराध्यदेव संसारचक्रके प्रवर्तक आपको नमस्कार है। अन्तररहित—सर्वत्र व्याप्त एकमात्र अव्यक्तको पुनः-पुनः नमस्कार है। गुह्य, गूढ़, गुणस्वरूप एवं गुणोंमें रहनेवालेको नमस्कार है। तर्कसे अतीत, निर्णयात्मिका बुद्धिसे भी नहीं समझे जानेयोग्य, अतुलनीय (आप)-को बार-बार नमस्कार है। प्रथम मङ्गलमय, शान्त, निश्चिन्त, यशस्वी, सनातन और पुराणपुरुषको बार-बार नमस्कार है॥ ३१—३४॥

नमो देवाधिदेवाय स्वभावाय नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठाय गोविन्दाय नमो नमः॥ ३५

नमोऽस्तु पद्मनाभाय नमो योगोद्भवाय च।
विश्वेश्वराय देवाय शिवाय हरये नमः॥ ३६

नमोऽस्तु तस्मै देवाय निर्गुणाय गुणात्मने।
नारायणाय विश्वाय देवानां परमात्मने॥ ३७

नमो नमः कारणवामनाय
नारायणायामितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥ ३८

गुह्याय वेदनिलयाय महोदराय
सिंहाय दैत्यनिधनाय चतुर्भुजाय।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिचारणसंस्तुताय
देवोत्तमाय वरदाय नमोऽच्युताय॥ ३९

नागेन्द्रदेहशयनासनसुप्रियाय
गोक्षीरहेमशुकनीलघनोपमाय।
पीताम्बराय मधुकैटभनाशनाय
विश्वाय चारुमुकुटाय नमोऽजराय॥ ४०

नाभिप्रजातकमलस्थचतुर्मुखाय
क्षीरोदकार्णवनिकेतयशोधराय।
नानाविचित्रमुकुटाङ्गदभूषणाय
सर्वेश्वराय वरदाय नमो वराय॥ ४१

भक्तिप्रियाय वरदीप्तिसुदर्शनाय
फुल्लारविन्दविपुलायतलोचनाय।
देवेन्द्रविघ्नशमनोद्यतपौरुषाय
योगेश्वराय विरजाय नमो वराय॥ ४२

आप देवाधिदेवको नमस्कार है। स्वभावस्वरूपी आपको बार-बार नमस्कार है। जगत्‌की प्रतिष्ठा करनेवाले (आप)-को नमस्कार है। गोविन्दको बार-बार नमस्कार है। पद्मनाभको नमस्कार है और योगसे उत्पन्न होनेवाले (आप) योगोद्भवको नमस्कार है। विश्वेश्वर, देव, शिव, हरिको नमस्कार है। निर्गुण और गुणात्मा उन (प्रसिद्ध) देवको नमस्कार है। विश्वात्मा, नारायण एवं देवोंके परम आत्मा (आप)-को नमस्कार हैं। कारणवश वामनरूप धारण करनेवाले, अतुल विक्रमवाले नारायणको नमस्कार है। श्री, शार्ङ्ग, चक्र, तलवार एवं गदा धारण करनेवाले उन पुरुषोत्तमको नमस्कार है॥ ३५—३८॥

गुह्य, वेदनिलय, महोदर, दैत्यके निधनके लिये सिंहरूप धारण करनेवाले, चार भुजाओंवाले, ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, मुनि तथा चारणोंके द्वारा स्तुत किये गये वरदानी देवोत्तम अच्युतभगवान्‌को नमस्कार है। शेषनागके शरीरपर प्रसन्नतापूर्वक शयन करनेवाले, गोदुग्ध, स्वर्ण, शुक एवं नीलघनकी उपमासे युक्त, पीला वस्त्र धारण करनेवाले, मधु-कैटभका विनाश करनेवाले, सुन्दर मुकुट धारण करनेवाले, वृद्धावस्थासे रहित, विश्वकी आत्मा आप देवको नमस्कार है। नाभिसे उत्पन्न हुए कमलपर स्थित ब्रह्मासे युक्त, क्षीरसमुद्रको अपना निवास बनानेवाले, यशस्वी, अनेक प्रकारके विचित्र मुकुट एवं अङ्गद आदि आभूषणोंसे युक्त, वरदानी तथा वरस्वरूप सर्वेश्वरको नमस्कार है। भक्तिके प्रेमी, श्रेष्ठ दीप्तिसे सर्वथा पूर्ण सुन्दर दिखलायी देनेवाले, खिले हुए कमलके समान विशाल आँखोंवाले, देवेन्द्रके विघ्नोंका विनाश करनेके लिये पुरुषार्थ करनेको उद्यत वरस्वरूप, विरज योगेश्वरको नमस्कार है॥ ३९—४२॥

ब्रह्मायनाय त्रिदशायनाय
लोकाधिनाथाय भवापनाय।
नारायणायात्महितायनाय
महावराहाय नमस्करोमि॥ ४३

ब्रह्मा और अन्य देवोंके आधारस्वरूप, लोकाधिनाथ, भवहर्त्ता, नारायण आत्महितके आश्रय-स्थान महावराहको नमस्कार करता हूँ। मैं कूटस्थ, अव्यक्त, अचिन्त्य रूपवाले, कारणस्वरूप, आदिदेव

कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्यरूपं
नारायणं कारणमादिदेवम्।

युगान्तशेषं पुरुषं पुराणं
तं देवदेवं शरणं प्रपद्ये॥ ४४
योगेश्वरं चारुविचित्रमौलि-
मज्ञेयमग्र्यं प्रकृतेः परस्थम्।
क्षेत्रज्ञमात्मप्रभवं वरेण्यं
तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥ ४५
अदृश्यमव्यक्तमचिन्त्यमव्ययं
महर्षयो ब्रह्ममयं सनातनम्।
वदन्ति यं वै पुरुषं सनातनं
तं देवगुह्यं शरणं प्रपद्ये॥ ४६
यदक्षरं ब्रह्म वदन्ति सर्वगं
निशम्य यं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।
तमीश्वरं तृप्तमनुत्तमैर्गुणैः
परायणं विष्णुमुपैमि शाश्वतम्॥ ४७
कार्यं क्रिया कारणमप्रमेयं
हिरण्यबाहुं वरपद्मनाभम्।
महाबलं वेदनिधिं सुरेशं
व्रजामि विष्णुं शरणं जनार्दनम्॥ ४८
किरीटकेयूरमहार्हनिष्कै-
र्मण्युत्तमालङ्कृतसर्वगात्रम्।
पीताम्बरं काञ्चनभक्तिचित्रं
मालाधरं केशवमभ्युपैमि॥ ४९
भवोद्भवं वेदविदां वरिष्ठं
योगात्मनां सांख्यविदां वरिष्ठम्।
आदित्यरुद्राश्विवसुप्रभावं
प्रभुं प्रपद्येऽच्युतमात्मवन्तम्॥ ५०

नारायण, युगान्तमें शेष रहनेवाले पुराणपुरुष, देवाधिदेवकी शरण ग्रहण करता हूँ। मैं योगेश्वर, सुन्दर विचित्र रंगोंसे युक्त मुकुटको धारण करनेवाले, अज्ञेय, सर्वश्रेष्ठ, प्रकृतिके परे अवस्थित, क्षेत्रज्ञ, आत्मप्रभव, वरेण्य उन वासुदेवकी शरण ग्रहण करता हूँ। ब्रह्मर्षिजन जिन्हें अदृश्य, अव्यक्त, अचिन्तनीय, अव्यय, ब्रह्ममय और सनातन पुरुष कहते हैं, उन देवगुह्यकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ ४३—४६॥

(ब्रह्मवेत्ता) जिसे अक्षर एवं सर्वव्यापी ब्रह्म कहते हैं तथा जिसके श्रवणसे मृत्युके मुखसे मुक्ति मिल जाती है, मैं उसी श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त, आत्मतृप्त, शाश्वत आश्रयस्वरूप ईश्वरकी शरण ग्रहण करता हूँ। मैं कार्य, क्रिया और कारणस्वरूप, प्रमाणसे अगम्य, हिरण्यबाहु, नाभिमें श्रेष्ठ कमल धारण करनेवाले, महाबलशाली, वेदोंकी निधि, सुरेश्वर जनार्दन विष्णुकी शरणमें जाता हूँ। मैं किरीट, केयूर एवं अतिमूल्यवान् श्रेष्ठ मणियोंसे सुसज्जित समस्त शरीरवाले, पीताम्बर धारण करनेवाले, स्वर्णिम पत्र-रचनासे अलङ्कृत, माला धारण करनेवाले केशवकी शरणमें जाता हूँ। मैं संसारको उत्पन्न करनेवाले, वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, योगात्माओं तथा सांख्यशास्त्रके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ, आदित्य, रुद्र, अश्विनीकुमार एवं वसुओंके प्रभावसे युक्त अच्युत, आत्मस्वरूप प्रभुकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ४७—५०॥

श्रीवत्साङ्कं महादेवं देवगुह्यमनौपमम्।
प्रपद्ये सूक्ष्ममचलं वरेण्यमभयप्रदम्॥ ५१

प्रभवं सर्वभूतानां निर्गुणं परमेश्वरम्।
प्रपद्ये मुक्तसङ्गानां यतीनां परमां गतिम्॥ ५२

भगवन्तं गुणाध्यक्षमक्षरं पुष्करेक्षणम्।
शरण्यं शरणं भक्त्या प्रपद्ये भक्तवत्सलम्॥ ५३

त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं सर्वेषां प्रपितामहम्।
योगात्मानं महात्मानं प्रपद्येऽहं जनार्दनम्॥ ५४

मैं श्रीवत्स-चिह्न धारण करनेवाले, महान् देव, देवताओंमें गुह्य, उपमासे रहित, सूक्ष्म, अचल तथा अभय देनेवाले वरेण्य देवकी शरण ग्रहण करता हूँ। मैं समस्त प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले, निर्गुण, निःसङ्ग, यम और नियमका पालन करनेवाले संन्यासियोंकी परम गतिस्वरूप परमेश्वरकी शरण ग्रहण करता हूँ। मैं गुणाध्यक्ष, अक्षर, कमलनयन, आश्रय ग्रहण करनेयोग्य, शरण देनेवाले, भक्तोंसे प्रेम रखनेवाले भगवान्‌की श्रद्धापूर्वक शरण ग्रहण करता हूँ। मैं तीन पगोंमें तीनों लोकोंको नाप लेनेवाले, तीनों लोकोंके ईश्वर, सभीके प्रपितामह, योगकी मूर्ति, महात्मा जनार्दनकी शरण ग्रहण

आदिदेवमजं शम्भुं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्।
नारायणमणीयांसं प्रपद्ये ब्राह्मणप्रियम्॥ ५५

नमो वराय देवाय नमः सर्वसहाय च।
प्रपद्ये देवदेवेशमणीयांसमणोः सदा॥ ५६
एकाय लोकतत्त्वाय परतः परमात्मने।
नमः सहस्रशिरसे अनन्ताय महात्मने॥ ५७

त्वामेव परमं देवमृषयो वेदपारगाः।
कीर्तयन्ति च यं सर्वे ब्रह्मादीनां परायणम्॥ ५८

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयप्रद।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम्॥ ५९

पुलस्त्य उवाच

भक्तिं तस्यानुसंचिन्त्य नागस्यामोघसम्भवः।
प्रीतिमानभवद् विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः॥ ६०
सान्निध्यं कल्पयामास तस्मिन् सरसि केशवः।
गरुडस्थो जगत्स्वामी लोकाधारस्तपोधनः॥ ६१
ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं तं तं च ग्राहं जलाशयात्।
उज्जहाराप्रमेयात्मा तरसा मधुसूदनः॥ ६२
स्थलस्थं दारयामास ग्राहं चक्रेण माधवः।
मोक्षयामास नागेन्द्रं पाशेभ्यः शरणागतम्॥ ६३
स हि देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः।
ग्राहत्वमगमत् कृष्णाद् वधं प्राप्य दिवंगतः॥ ६४
गजोऽपि विष्णुना स्पृष्टो जातो दिव्यवपुः पुमान्।
आपद्विमुक्तौ युगपद् गजगन्धर्वसत्तमौ॥ ६५
प्रीतिमान् पुण्डरीकाक्षः शरणागतवत्सलः।
अभवत् त्वथ देवेशस्ताभ्यां चैव प्रपूजितः॥ ६६
इदं च भगवान् योगी गजेन्द्रं शरणागतम्।
प्रोवाच मुनिशार्दूल मधुरं मधुसूदनः॥ ६७

श्रीभगवानुवाच

ये मां त्वां च सरश्चैव ग्राहस्य च विदारणम्।
गुल्मकीचकरेणूनां रूपं मेरोः सुतस्य च॥ ६८

करता हूँ। मैं आदिदेव, अजन्मा, शम्भु, व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप, सनातन, परम सूक्ष्म, ब्राह्मणप्रिय नारायणकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ५१—५५॥

श्रेष्ठ देवको नमस्कार है। सर्वशक्तिमान्‌को नमस्कार है। मैं सदा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म देवदेवेशकी शरण हूँ। लोकतत्त्वस्वरूप, एकमात्र परात्पर परमात्मा, सहस्रशीर्ष महात्मा अनन्तको नमस्कार है। वेदोंके पारगामी ऋषिगण आपको ही परम देव एवं ब्रह्मा आदि देवोंका आश्रयस्थान कहते हैं। हे पुण्डरीकाक्ष! हे भक्तोंको अभयदान देनेवाले! आपको नमस्कार है। सुब्रह्मण्य! आपको नमस्कार है। आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ५६—५९॥

पुलस्त्यजी बोले—शङ्ख, चक्र एवं गदाको धारण करनेवाले, सफलताके आश्रय विष्णु उस गजेन्द्रकी भक्तिका विचार कर प्रसन्न हो गये। उसके बाद संसारके आधार जगत्स्वामी तपोधन केशव गरुड़पर सवार हो उस सरोवरके निकट गये। अप्रमेय आत्मस्वरूप मधुसूदनने ग्राहके द्वारा पकड़े गये उस गजेन्द्र तथा उस ग्राहको वेगपूर्वक सरोवरसे बाहर निकाला। माधवने पृथ्वीपर स्थित ग्राहको चक्रके द्वारा विदीर्ण कर शरणापन्न गजेन्द्रको बन्धनसे मुक्त कर दिया। देवलके शापसे ग्राह बना हुआ गन्धर्वश्रेष्ठ हूहू भगवान् श्रीकृष्णसे मृत्यु पाकर स्वर्ग चला गया॥ ६०—६४॥

भगवान् विष्णुका स्पर्श होनेसे वह हाथी भी दिव्य शरीर धारण करनेवाला पुरुष हो गया। इस प्रकार हाथी एवं गन्धर्वश्रेष्ठ दोनों एक ही साथ संकटसे मुक्त हो गये। मुनिवर! उसके बाद उन दोनोंसे पूजित होकर शरणागतवत्सल पुण्डरीकाक्ष देवेश प्रसन्न हुए और उन योगी भगवान् मधुसूदनने शरणागत गजेन्द्रसे यह मधुर वचन कहा—॥ ६५—६७॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—स्थिर बुद्धिसे पवित्र व्रत धारण करनेवाले जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक मेरा, तुम्हारा तथा इस सरोवरका एवं ग्राहके विदारण, गुल्म, कीचक, रेणु

अश्वत्थं भास्करं गङ्गां नैमिषारण्यमेव च।
संस्मरिष्यन्ति मनुजाः प्रयताः स्थिरबुद्धयः॥ ६९

कीर्तयिष्यन्ति भक्त्या च श्रोष्यन्ति च शुचिव्रताः।
दुःस्वप्नो नश्यते तेषां सुस्वप्नश्च भविष्यति॥ ७०

मात्स्यं कौर्मञ्च वाराहं वामनं तार्क्ष्यमेव च।
नारसिंहं च नागेन्द्रं सृष्टिप्रलयकारकम्॥ ७१

एतानि प्रातरुत्थाय संस्मरिष्यन्ति ये नराः।
सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते पुण्यं लोकमवाप्नुयुः॥ ७२

पुलस्त्य उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशो गजेन्द्रं गरुडध्वजः।
स्पर्शयामास हस्तेन गजं गन्धर्वमेव च॥ ७३

ततो दिव्यवपुर्भूत्वा गजेन्द्रो मधुसूदनम्।
जगाम शरणं विप्र नारायणपरायणः॥ ७४

ततो नारायणः श्रीमान् मोक्षयित्वा गजोत्तमम्।
पापबन्धाच्च शापाच्च ग्राहं चाद्भुतकर्मकृत्॥ ७५

ऋषिभिः स्तूयमानश्च देवगुह्यपरायणैः।
गतः स भगवान् विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः॥ ७६

गजेन्द्रमोक्षणं दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः।
ववन्दिरे महात्मानं प्रभुं नारायणं हरिम्॥ ७७

महर्षयश्चारणाश्च दृष्ट्वा गजविमोक्षणम्।
विस्मयोत्फुल्लनयनाः संस्तुवन्ति जनार्दनम्॥ ७८

प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा चक्रपाणिविचेष्टितम्।
गजेन्द्रमोक्षणं दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत्॥ ७९

य इदं शृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः।
प्राप्नुयात् परमां सिद्धिं दुःस्वप्नस्तस्य नश्यति॥ ८०

गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
कथितेन स्मृतेनाथ श्रुतेन च तपोधन।
गजेन्द्रमोक्षणेनेह सद्यः पापात् प्रमुच्यते॥ ८१

एतत्पवित्रं परमं सुपुण्यं
संकीर्तनीयं चरितं मुरारेः।
यस्मिन् किलोक्ते बहुपापबन्धनात्
लभ्येत मोक्षो द्विरदेन यद्वत्॥ ८२

अजं वरेण्यं वरपद्मनाभं
नारायणं ब्रह्मनिधिं सुरेशम्।

एवं मेरु पुत्रके रूप, पीपल, सूर्य, गङ्गा और नैमिषारण्यका श्रद्धापूर्वक स्मरण एवं कीर्तन तथा श्रवण करेंगे उनके दुःस्वप्नका विनाश हो जायगा एवं सुस्वप्नकी सृष्टि होगी। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, वामनावतार, गरुड़, नरसिंहावतार, गजेन्द्र और सृष्टि-प्रलय करनेवाले (भगवान्)-का स्मरण करेंगे, वे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर पुण्यलोकको प्राप्त करेंगे॥ ६८—७२॥

पुलस्त्यजी बोले—(नारदजी!) गजेन्द्रसे ऐसा कहकर गरुड़ध्वज हृषीकेशने हाथसे गजेन्द्र और गन्धर्व दोनोंका स्पर्श किया। हे विप्र! उसके बाद नारायणकी आराधना करनेमें लीन गजेन्द्र दिव्य शरीर धारणकर मधुसूदनकी शरणमें चला गया। उसके बाद अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीमान् नारायणने गजोत्तम एवं ग्राहको पाप-बन्धसे एवं शापसे मुक्त किया। भगवद्भक्त ऋषियोंद्वारा स्तुत होते हुए वे अविज्ञेय गतिवाले प्रभु भगवान् विष्णु (अपने धाम) चले गये॥ ७३—७६॥

गजेन्द्रके मोक्षको देखकर इन्द्र आदि देवोंने महात्मा प्रभु नारायण श्रीहरिकी वन्दना की। गजको ग्राहसे मुक्त हुए देखकर विस्मयसे खिले नेत्रोंवाले महर्षियों एवं चारणोंने जनार्दनकी स्तुति की। चक्रपाणिके गजेन्द्रमोक्षणरूपी कर्मको देखकर प्रजापति ब्रह्माने यह वचन कहा—जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन इसे सुनेगा, वह परमसिद्धिको प्राप्त करेगा और उसका दुःस्वप्न विनष्ट हो जायगा॥ ७७—८०॥

तपोधन! गजेन्द्रमोक्ष पवित्र और सब प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला है। इस गजेन्द्रमोक्षके कहने, स्मरण करने और सुननेसे मनुष्य तुरंत सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। मुरारि विष्णुका यह पवित्र चरित्र पुण्य प्रदान करनेवाला तथा कीर्तन करने योग्य है। इसे कहनेसे मनुष्य गजेन्द्रके समान अनेक पापोंके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। मैं अज, वरेण्य, श्रेष्ठ, पद्मनाभ, नारायण, ब्रह्मनिधि, सुरेश,

तं देवगुह्यं पुरुषं पुराणं
वन्दाम्यहं लोकपतिं वरेण्यम्॥ ८३

देवगुह्य, पुराणपुरुष उन लोक-स्वामीकी वन्दना करता हूँ॥ ८१—८३॥

पुलस्त्य उवाच

एतत् तवोक्तं प्रवरं स्तवानां
स्तवं मुरारेर्वरनागकीर्तनम्।
यं कीर्त्य संश्रुत्य तथा विचिन्त्य
पापापनोदं पुरुषो लभेत॥ ८४

पुलस्त्यजी बोले—स्तुतियोंमें श्रेष्ठ गजेन्द्रद्वारा कीर्तित मुरारिके इस श्रेष्ठ स्तोत्रको मैंने तुमसे कहा। इसके कीर्तन, श्रवण तथा चिन्तन करनेसे मनुष्य पापोंसे विमुक्ति पा जाता है॥ ८४॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८४॥

पचासीवाँ अध्याय

सारस्वतस्तोत्रके संदर्भमें विष्णुपञ्जरस्तोत्र, सारस्वतस्तव-कथन-प्रसङ्गमें राक्षस-वृत्तान्त, राक्षसग्रस्त मुनिकी अग्नि-प्रार्थना, सारस्वतस्तोत्र और मुनिद्वारा राक्षसको उपदेश

पुलस्त्य उवाच

कश्चिदासीद् द्विजद्रोग्धा पिशुनः क्षत्रियाधमः।
परपीडारुचिः क्षुद्रः स्वभावादपि निर्घृणः॥ १

पर्यासिताः सदा तेन पितृदेवद्विजातयः।
स त्वायुषि परिक्षीणे जज्ञे घोरो निशाचरः॥ २

तेनैव कर्मदोषेण स्वेन पापकृतां वरः।
क्रूरैश्चक्रे ततो वृत्तिं राक्षसत्वाद् विशेषतः॥ ३

तस्य पापरतस्यैवं जग्मुर्वर्षशतानि तु।
तेनैव कर्मदोषेण नान्यां वृत्तिमरोचयत्॥ ४

यं यं पश्यति सत्त्वं स तं तमादाय राक्षसः।
चखाद रौद्रकर्मासौ बाहुगोचरमागतम्॥ ५

पुलस्त्यजी बोले—(नारदजी!) ब्राह्मणसे वैर और घृणा रखनेवाला, चुगलखोर, दूसरोंको कष्ट देनेवाला, नीच, स्वभावसे भी निर्दय एक अधम क्षत्रिय था। उसने सदा ही पितरों, देवों एवं द्विजातियोंका अपमान किया। आयु समाप्त होनेपर वह भयंकर राक्षस हुआ। अपने उसी कर्मके दोष एवं विशेषकर राक्षस होनेके कारण वह नीच पापी अशुभ कर्मोंद्वारा जीवनका निर्वाह करता रहा। पापकर्म करते हुए उसके सौ वर्ष बीत गये। उसी कर्म-दोषके कारण जीविकाके दूसरे साधनोंमें उसकी इच्छा नहीं होती थी। वह निन्दनीय कर्म करनेवाला राक्षस जिस प्राणीको देखता उसे अपनी भुजाओंसे पकड़कर खा जाता था॥ १—५॥

एवं तस्यातिदुष्टस्य कुर्वतः प्राणिनां वधम्।
जगाम च महान् कालः परिणामं तथा वयः॥ ६

स कदाचित् तपस्यन्तं ददर्श सरितस्तटे।
महाभागमूर्ध्वभुजं यथावत्संयतेन्द्रियम्॥ ७

इस प्रकार प्राणियोंका संहार करते हुए उस अतिदुष्टका अधिक समय बीत गया और उसकी अवस्था ढलने लगी। किसी समय उसने नदी-तीरपर बाँह ऊपर उठाये एवं भलीभाँति इन्द्रियोंपर संयत किये हुए महाभाग्यशाली

अनया रक्षया ब्रह्मन् कृतरक्षं तपोनिधिम्।
योगाचार्यं शुचिं दक्षं वासुदेवपरायणम्॥ ८

विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री विष्णुर्दक्षिणतो गदी।
प्रतीच्यां शार्ङ्गधृग्विष्णुर्विष्णुः खड्गी ममोत्तरे॥ ९

हृषीकेशो विकोणेषु तच्छिद्रेषु जनार्दनः।
क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नारसिंहोऽम्बरे मम॥ १०

क्षुरान्तममलं चक्रं भ्रमत्येतत् सुदर्शनम्।
अस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्तुं प्रेतनिशाचरान्॥ ११

ऋषिको तपस्या करते हुए देखा। ब्रह्मन्! तपोनिधि पवित्र दक्ष और वासुदेवकी आराधना करनेमें तत्पर उस योगाचार्यने अपनी रक्षा इस रक्षामन्त्रके द्वारा कर ली थी कि 'पूर्व दिशामें चक्र धारण करनेवाले विष्णु, दक्षिण दिशामें गदा धारण करनेवाले विष्णु, पश्चिम दिशामें शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले विष्णु और उत्तर दिशामें खड्ग धारण करनेवाले विष्णु मेरी रक्षा करें। दिशाओंके कोणों (अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण, वायव्यकोण, ईशानकोणों)-में हृषीकेश, उन दिशाओं और कोणोंके मध्य अवशिष्ट स्थानोंमें जनार्दन, भूमिमें वराहरूप धारण करनेवाले हरि एवं आकाशमें नृसिंहभगवान् मेरी रक्षा करें। प्रेतों एवं निशाचरोंके संहारके लिये छुरेकी धारके समान अत्यन्त तीक्ष्ण यह निर्मल सुदर्शन चक्र घूम रहा है। इसकी किरणमालाका दर्शन होना प्रयत्न करनेपर भी सम्भव नहीं है॥ ८—११॥

गदा चेयं सहस्रार्चिरुद्वमन् पावको यथा।
रक्षोभूतपिशाचानां डाकिनीनां च शातनी॥ १२

शार्ङ्गं विस्फूर्जितं चैव वासुदेवस्य मद्रिपून्।
तिर्यङ्मनुष्यकूष्माण्डप्रेतादीन् हन्त्वशेषतः॥ १३

खड्गधाराज्वलज्ज्योत्स्नानिर्धूता ये ममाहिताः।
ते यान्तु सौम्यतां सद्यो गरुडेनेव पन्नगाः॥ १४

ये कूष्माण्डास्तथा यक्षा दैत्या ये च निशाचराः।
प्रेता विनायकाः क्रूरा मनुष्या जृम्भकाः खगाः॥ १५

सिंहादयो ये पशवो दन्दशूकाश्च पन्नगाः।
सर्वे भवन्तु मे सौम्या विष्णुचक्ररवाहताः॥ १६

ज्वाला उगलनेवाली अग्निकी भाँति हजारों किरणोंसे युक्त यह गदा राक्षसों, भूतों, पिशाचों और डाकिनियोंका संहार करे। वासुदेवका चमकनेवाला शार्ङ्गधनुष मेरे साथ शत्रुका काम करनेवाले हिंसक पशु-पक्षियों, मनुष्यों, दानवों तथा प्रेतोंका जड़-मूलसे विनाश करे। जैसे गरुड़को देखकर साँप शान्त हो जाते हैं, उसी प्रकार (विष्णुके) खड्गकी चमकती हुई तेज धारसे मेरा अहित करनेवाले निष्प्रभ होकर तत्काल शान्त हो जायँ। सारे कूष्माण्ड, यक्ष, दैत्य, निशाचर, प्रेत, विनायक, क्रूर मनुष्य, जृम्भक, पक्षी, सिंहादि पशु एवं तीव्र दाँतोंसे काट खानेवाले सर्प आदि—ये सभी विष्णुके चक्रकी तीव्र गतिसे घायल होकर मेरे प्रति सरल बन जायँ॥ १२—१६॥

चित्तवृत्तिहरा ये च ये जनाः स्मृतिहारकाः।
बलौजसां च हर्तारश्छायाविध्वंसकाश्च ये॥ १७

ये चोपभोगहर्तारो ये च लक्षणनाशकाः।
कूष्माण्डास्ते प्रणश्यन्तु विष्णुचक्ररवाहताः॥ १८

बुद्धिस्वास्थ्यं मनःस्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियकं तथा।
ममास्तु देवदेवस्य वासुदेवस्य कीर्तनात्॥ १९

जो चित्तकी वृत्तियों—मानसिक आचार-व्यवहारोंका हरण करनेवाले, स्मृतिको हरण करनेवाले, बल और ओजको अपहरण करनेवाले, कान्तिका विध्वंस करनेवाले, सुखोंका विनाश करनेवाले तथा सुलक्षणोंके विनाशक हैं, वे सभी कूष्माण्डादि (भूत-प्रेत) विष्णुके चक्रकी तीव्र गतिसे घायल होकर नष्ट हो जायँ। देवदेव वासुदेवके कीर्तनसे मुझे बुद्धि, मन तथा इन्द्रियोंकी

पृष्ठे पुरस्तादथ दक्षिणोत्तरे
विकोणतश्चास्तु जनार्दनो हरिः।
तमीड्यमीशानमनन्तमच्युतं
जनार्दनं प्रणिपतितो न सीदति॥ २०

यथा परं ब्रह्म हरिस्तथा परं
जगत्स्वरूपश्च स एव केशवः।
ऋतेन तेनाच्युतनामकीर्तनात्
प्रणाशमेतु त्रिविधं ममाशुभम्॥ २१

इत्यसावात्मरक्षार्थं कृत्वा वै विष्णुपञ्जरम्।
संस्थितोऽसावपि बली राक्षसः समुपाद्रवत्॥ २२

ततो द्विजनियुक्तायां रक्षायां रजनीचरः।
निर्धूतवेगः सहसा तस्थौ मासचतुष्टयम्॥ २३

यावद् द्विजस्य देवर्षे समाप्तिर्वै समाधितः।
जाते जप्यावसानेऽसौ तं ददर्श निशाचरम्॥ २४

दीनं हतबलोत्साहं कान्दिशीकं हतौजसम्।
तं दृष्ट्वा कृपयाविष्टः समाश्वास्य निशाचरम्॥ २५

पप्रच्छागमने हेतुं स चाचष्ट यथातथम्।
स्वभावमात्मनो द्रष्टुं रक्षया तेजसः क्षितिम्॥ २६

कथयित्वा च तद्रक्षः कारणं विविधं ततः।
प्रसीदेत्यब्रवीद् विप्रं निर्विण्णः स्वेन कर्मणा॥ २७

बहूनि पापानि मया कृतानि बहवो हताः।
कृताः स्त्रियो मया बह्व्यो विधवाः पुत्रवर्जिताः।
अनागसां च सत्त्वानामल्पकानां क्षयः कृतः॥ २८

तस्मात् पापादहं मोक्षमिच्छामि त्वत्प्रसादतः।
पापप्रशमनायालं कुरु मे धर्मदेशनम्॥ २९

पापस्यास्य क्षयकरमुपदेशं प्रयच्छ मे।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राक्षसस्य द्विजोत्तमः॥ ३०

वचनं प्राह धर्मात्मा हेतुमच्च सुभाषितम्।
कथं क्रूरस्वभावस्य सततस्तव निशाचर।
सहसैव समायाता जिज्ञासा धर्मवर्त्मनि॥ ३१

राक्षस उवाच

त्वां वै समागतोऽस्म्यद्य क्षिप्तोऽहं रक्षया बलात्।
तव संसर्गतो ब्रह्मन् जातो निर्वेद उत्तमः॥ ३२

सबलता प्राप्त हो। जनार्दन हरि मेरे पीछे, आगे, दायें, बायें एवं दिशाओंके कोणों (अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण, वायव्यकोण, ईशानकोण)-में स्थित रहें। स्तुतियोग्य उन ईशान, अनन्त, अच्युत जनार्दनको साष्टाङ्ग प्रणिपात करनेवाला मनुष्य दुःखी नहीं होता॥ १७—२०॥

जैसे ब्रह्म श्रेष्ठ है उसी प्रकार हरि भी श्रेष्ठ हैं। वे केशव ही जगत्के (नित्य) स्वरूप हैं। अच्युतभगवान्के नाम-कीर्तनके उस सत्यद्वारा मेरे तीनों प्रकारके अमङ्गल नष्ट हो जायँ। इस प्रकार अपनी रक्षाके लिये विष्णुपञ्जरस्तोत्रका पाठकर वे खड़े थे। वह बलवान् राक्षस उनकी ओर दौड़ा। देवर्षे! उसके बाद द्विजद्वारा रक्षाकी व्यवस्था रहनेपर वह राक्षस गतिहीन होकर चार मासतक, जबतक कि ब्राह्मणकी समाधि समाप्त नहीं हुई तबतक, रुका रहा। जप समाप्त होनेपर उन्होंने उस निशाचरको देखा। उन्होंने दीन, बलसे हीन, उत्साहसे रहित, भयसे आकुल तथा निस्तेज हुए उस निशाचरको देखकर दयापूर्वक उसे निर्भयता प्रदान कर दी तथा उसके आनेका कारण पूछा। उसने अपने यथार्थ स्वभाववश देखनेकी इच्छा एवं आनेपर तेजका नाश होना बताया। उसके बाद दूसरे और भी बहुत-से कारणोंका वर्णन कर अपने कर्मसे दुखी हुए उस राक्षसने ब्राह्मणसे कहा— आप प्रसन्न हो जायँ॥ २१—२७॥

मैंने बहुत पाप किये हैं। मैंने बहुत-से मनुष्योंको मारा है। मैंने बहुत-सी स्त्रियोंको विधवा एवं पुत्रसे हीन कर दिया है तथा निर्दोष और निर्बल प्राणियोंका विनाश किया है। आपकी दयासे मैं उन पापोंसे मुक्त होना चाहता हूँ; अतः आप मुझे पापोंका नाश करनेवाले धर्माचरणका उपदेश दें। आप मुझे इस पापको नष्ट करनेवाला उपदेश प्रदान करें। उस राक्षसके उस वचनको सुनकर धर्मात्मा द्विजोत्तमने युक्तियुक्त मधुर वचन कहा—निशाचर! क्रूर स्वभावके होते हुए भी एकाएक धर्मके मार्गमें तुम्हारी जिज्ञासा कैसे उत्पन्न हुई?॥ २८—३१॥

राक्षसने कहा—मैं आज आपके निकट आते ही बलपूर्वक रक्षाद्वारा फेंक दिया गया। ब्रह्मन्! आपके सम्पर्कसे मुझे श्रेष्ठ वैराग्य प्राप्त हो गया।

का सा रक्षा न तां वेद्मि वेद्मि नास्याः परायणम्।
यस्याः संसर्गमासाद्य निर्वेदं प्रापितं परम्॥ ३३

त्वं कृपां कुरु धर्मज्ञ मय्यनुक्रोशमावह।
यथा पापापनोदो मे भवत्वार्य तथा कुरु॥ ३४

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्तः स मुनिस्तदा वै तेन रक्षसा।
प्रत्युवाच महाभागो विमृश्य सुचिरं मुनिः॥ ३५

ऋषिरुवाच

यन्मामाहोपदेशार्थं निर्विण्णः स्वेन कर्मणा।
युक्तमेतद्धि पापानां निवृत्तिरुपकारिका॥ ३६

करिष्ये यातुधानानां न त्वहं धर्मदेशनम्।
तान् सम्पृच्छ द्विजान् सौम्य ये वै प्रवचने रताः॥ ३७

एवमुक्त्वा ययौ विप्रश्चिन्तामाप स राक्षसः।
कथं पापापनोदः स्यादिति चिन्ताकुलेन्द्रियः॥ ३८

न चखाद स सत्त्वानि क्षुधा सम्बाधितोऽपि सन्।
षष्ठे षष्ठे तदा काले जन्तुमेकमभक्षयत्॥ ३९

स कदाचित्क्षुधाविष्टः पर्यटन् विपुले वने।
ददर्शाथ फलाहारमागतं ब्रह्मचारिणम्॥ ४०

गृहीतो रक्षसा तेन स तदा मुनिदारकः।
निराशो जीविते प्राह सामपूर्वं निशाचरम्॥ ४१

ब्राह्मण उवाच

भो भद्र ब्रूहि यत् कार्यं गृहीतो येन हेतुना।
तदनुब्रूहि भद्रं ते अयमस्म्यनुशाधि माम्॥ ४२

राक्षस उवाच

षष्ठे काले त्वमाहारः क्षुधितस्य समागतः।
निःश्रीकस्यातिपापस्य निर्घृणस्य द्विजद्रुहः॥ ४३

ब्राह्मण उवाच

यद्यवश्यं त्वया चाहं भक्षितव्यो निशाचर।
आयास्यामि तवाद्यैव निवेद्य गुरवे फलम्॥ ४४

मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि जिसका सम्पर्क पाकर मुझे श्रेष्ठ वैराग्य उत्पन्न हुआ है वह रक्षा क्या है और उसका आधार कौन है? धर्मज्ञ! आर्य! आप कृपा करें। मेरे ऊपर दया करें। आप वह कार्य करें जिससे मेरे पापोंका विनाश हो जाय॥ ३२—३४॥

पुलस्त्यजी बोले—उस राक्षसके इस प्रकार कहनेपर उन महाभाग मुनिने बहुत देरतक विचार कर उत्तर दिया॥ ३५॥

ऋषिने उत्तर दिया—अपने कर्मसे पीड़ित होकर तुमने मुझसे जो उपदेश देनेके लिये कहा है, सो ठीक ही है। पापोंकी निवृत्तिसे उपकार होता है। परंतु मैं राक्षसोंको धर्मका उपदेश नहीं दूँगा। अतः भले राक्षस! इस विषयको तुम उन ब्राह्मणोंसे पूछो जो विषयोंपर शास्त्रीय व्याख्यान करते हैं। इस प्रकार कहकर वह ब्राह्मण चला गया। वह राक्षस चिन्तासे आकुल हो गया। मेरे पाप किस प्रकार दूर होंगे—इस विषयकी चिन्तासे उसकी इन्द्रियाँ घबड़ा गयीं। (पर) भूखसे कष्ट पानेपर भी उसने प्राणियोंका भक्षण करना छोड़ दिया। (प्रतिदिन) प्रत्येक छठे समय एक जीवका आहार करने लगा। किसी समय भूखसे पीड़ित होकर विशाल वनमें घूमते हुए उसने फल लेनेके लिये आये हुए एक ब्रह्मचारीको देखा। राक्षसने मुनिपुत्रको पकड़ लिया। उसके बाद जीवनसे निराश होकर उस ब्रह्मचारीने शान्त भाव प्रकट करनेवाला वचन कहा॥ ३६—४१॥

ब्राह्मणने कहा—भद्र! यह बतलाओ कि तुम्हारा क्या कार्य है, तुमने मुझे क्यों पकड़ा है? तुम्हारा कल्याण हो। यह मैं प्रस्तुत हूँ। मुझे आज्ञा दो॥ ४२॥

राक्षसने कहा—ब्रह्मचारिन्! इस समय मैं ब्राह्मणोंसे द्वेष और घृणा करनेके कारण श्रीसे हीन, अत्यन्त पापी और निर्दय हो गया हूँ। मुझे भूख लगी हुई है। आज छठे समयमें तुम मेरे भोजनके रूपमें आये हो॥ ४३॥

ब्राह्मणने कहा—निशाचर! यदि अवश्य ही तुम मुझे खाना चाहते हो तो मैं ये फल गुरुको समर्पित

गुर्वर्थमेतदागत्य यत्फलग्रहणं कृतम्।
ममात्र निष्ठा प्राप्तस्य फलानि विनिवेदितुम्॥ ४५

स त्वं मुहूर्तमात्रं मामत्रैव प्रतिपालय।
निवेद्य गुरवे यावदिहागच्छाम्यहं फलम्॥ ४६

करके अभी आ जाता हूँ। यहाँ आकर गुरुके लिये मैंने जो फल एकत्र किये हैं, उन्हें गुरुको समर्पित करनेके लिये मेरी अत्यन्त श्रद्धा है। अतः तुम यहाँ मुहूर्तमात्र मेरी प्रतीक्षा करो, जबतक कि मैं इन फलोंको गुरुको देकर लौट आता हूँ॥ ४४—४६॥

राक्षस उवाच

षष्ठे काले न मे ब्रह्मन् कश्चिद् ग्रहणमागतः।
प्रतिमुच्येत देवोऽपि इति मे पापजीविका॥ ४७
एक एवात्र मोक्षस्य तव हेतुः शृणुष्व तत्।
मुञ्चाम्यहमसंदिग्धं यदि तत् कुरुते भवान्॥ ४८

राक्षसने कहा—ब्रह्मन्! छठे समयमें मेरे पंजेमें आया हुआ कोई देवता भी छूट नहीं सकता। यही मेरी पापजीविका है। तुम्हारे छूटनेका एक ही उपाय है, उसे सुनो। यदि तुम उसे करो तो निःसंदेह मैं तुमको छोड़ दूँगा॥ ४७-४८॥

ब्राह्मण उवाच

गुरोर्यन्न विरोधाय यन्न धर्मोपरोधकम्।
तत् करिष्याम्यहं रक्षो यन्न व्रतहरं मम॥ ४९

ब्राह्मणने कहा—राक्षस! यदि वह कार्य गुरुकी सेवाकार्यमें विरोध डालनेवाला, धर्मके विषयमें बाधा डालनेवाला एवं मेरे व्रतको नष्ट करनेवाला न होगा तो मैं उसे करूँगा केवल तुमसे अपने छुटकारेके लिये नहीं॥ ४९॥

राक्षस उवाच

मया निसर्गतो ब्रह्मन् जातिदोषाद् विशेषतः।
निर्विवेकेन चित्तेन पापकर्म सदा कृतम्॥ ५०

आबाल्यान्मम पापेषु न धर्मेषु रतं मनः।
तत्पापसंक्षयान्मोक्षं प्राप्नुयां येन तद् वद॥ ५१

यानि पापानि कर्माणि बालत्वाच्चरितानि च।
दुष्टां योनिमिमां प्राप्य तन्मुक्तिं कथय द्विज॥ ५२

यद्येतद् द्विजपुत्र त्वं समाख्यास्यस्यशेषतः।
ततः क्षुधार्तान्मत्तस्त्वं नियतं मोक्षमाप्स्यसि॥ ५३

न चेत् तत्पापशीलोऽहमत्यर्थं क्षुत्पिपासितः।
षष्ठे काले नृशंसात्मा भक्षयिष्यामि निर्घृणः॥ ५४

राक्षसने कहा—ब्रह्मन्! मैंने स्वभावतः तथा विशेषतः जातिदोषके कारण और विचारशक्तिसे रहित मनके कारण सदा पापका कार्य किया है। बाल्यावस्थासे ही मेरा मन धर्ममें नहीं, अपितु पापमें आसक्त रहा है। इसलिये तुम वह उपाय बताओ जिससे पापका नाश होकर मेरी मुक्ति हो जाय। द्विज! इस पापयोनिको पाकर अज्ञानवश मैंने जिन पापकर्मोंका आचरण किया है, उनसे छुटकारा पानेका उपाय बतलाओ। ब्राह्मणपुत्र! यदि तुम मुझे यह भलीभाँति बतलाओ तो मुझ भूखसे पीड़ित हुएसे निःसंदेह छुटकारा पा जाओगे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो अत्यन्त भूखा-प्यासा निर्दय हुआ मैं छठे समयमें (प्राप्त हुए) तुमको खा जाऊँगा॥ ५०—५४॥

पुलस्त्य उवाच

एवमुक्तो मुनिसुतस्तेन घोरेण रक्षसा।
चिन्तामवाप महतीमशक्तस्तदुदीरणे॥ ५५

पुलस्त्यजी बोले—उस भयंकर राक्षसके इस प्रकार कहनेपर मुनिपुत्र (राक्षसकी पापसे मुक्तिका उपाय) कहनेमें असमर्थ होनेसे बहुत चिन्तित हुआ।

स विमृश्य चिरं विप्रः शरणं जातवेदसम्।
जगाम ज्ञानदानाय संशयं परमं गतः॥ ५६

यदि शुश्रूषितो वह्निर्गुरुशुश्रूषणादनु।
व्रतानि वा सुचीर्णानि सप्तार्चिः पातु मां ततः॥ ५७

न मातरं न पितरं गौरवेण यथा गुरुम्।
सर्वदैवावगच्छामि तथा मां पातु पावकः॥ ५८

यथा गुरुं न मनसा कर्मणा वचसाऽपि वा।
अवजानाम्यहं तेन पातु सत्येन पावकः॥ ५९

इत्येवं मनसा सत्यान् कुर्वतः शपथान् पुनः।
सप्तार्चिषा समादिष्टा प्रादुरासीत् सरस्वती॥ ६०

सा प्रोवाच द्विजसुतं राक्षसग्रहणाकुलम्।
मा भैर्द्विजसुताहं त्वां मोक्षयिष्यामि संकटात्॥ ६१

यदस्य रक्षसः श्रेयो जिह्वाग्रे संस्थिता तव।
तत् सर्वं कथयिष्यामि ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥ ६२

अदृश्या रक्षसा तेन प्रोक्त्वेत्थं सा सरस्वती।
अदर्शनं गता सोऽपि द्विजः प्राह निशाचरम्॥ ६३

बहुत समयतक विचार करनेके पश्चात् अत्यन्त संशययुक्त ब्राह्मण ज्ञानदानके हेतु अग्निके पास गया। (उसने कहा—) अग्निदेव! गुरुकी सेवा करनेके बाद यदि मैंने आपकी सेवा की हो तथा व्रतोंका अच्छी तरह पालन किया हो तो हे सप्तार्चि! आप मेरी रक्षा करें। अग्निदेव! यदि मैंने गौरवमें माता-पितासे गुरुको अधिक महत्त्व दिया हो तो आप मेरी रक्षा करें। यदि मन, कर्म एवं वाणीसे भी मैंने गुरुका अनादर न किया हो तो उस सत्यके कारण अग्निदेव आप मेरी रक्षा करें। इस प्रकार मनसे सत्य शपथोंके लेनेवाले उसके सामने अग्निदेवके आदेशसे सरस्वती प्रकट हुईं। उन्होंने राक्षसके द्वारा पकड़े जानेके कारण व्याकुल हुए ब्राह्मणके पुत्रसे कहा— ब्राह्मणपुत्र! डरो मत। मैं तुम्हें संकटसे मुक्त करूँगी। तुम्हारी जीभके अग्रभागपर स्थित होकर मैं राक्षसके कल्याणकारी समस्त विषयोंका कथन करूँगी। उसके बाद तुम मुक्त हो जाओगे। उस राक्षससे अदृश्य रहती हुई सरस्वती ऐसा कहनेके बाद अन्तर्धान हो गयी। उस ब्राह्मणने निशाचरसे (सरस्वतीकी शक्तिसे) कहा—॥ ५५—६३॥

ब्राह्मण उवाच

श्रूयतां तव यच्छ्रेयस्तथाऽन्येषां च पापिनाम्।
समस्तपापशुद्ध्यर्थं पुण्योपचयदं च यत्॥ ६४

प्रातरुत्थाय जप्तव्यं मध्याह्नेऽह्नःक्षयेऽपि वा।
असंशयं सदा जप्यो जपतां पुष्टिशान्तिदः॥ ६५

ॐ हरिं कृष्णं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम्।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे पापं व्यपोहतु॥ ६६

चराचरगुरुं नाथं गोविन्दं शेषशायिनम्।
प्रणतोऽस्मि परं देवं स मे पापं व्यपोहतु॥ ६७

शङ्खिनं चक्रिणं शार्ङ्गधारिणं स्रग्धरं परम्।
प्रणतोऽस्मि पतिं लक्ष्म्याः स मे पापं व्यपोहतु॥ ६८

ब्राह्मणने कहा—(निशाचर!) सुनो! तुम्हारे और दूसरे अन्य पापियोंके लिये कल्याणकर सारे पापोंकी शुद्धि एवं पुण्य बढ़ानेवाले तत्त्वोंको मैं कहता हूँ। प्रातःकाल उठकर, मध्याह्नमें अथवा सायंकाल इस जपने योग्य स्तोत्रका सदा जप करना चाहिये। यह जप जप करनेवालेको निःसंदेह शान्ति एवं पुष्टि प्रदान करता है। ॐ, हरि, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दन, जगन्नाथको मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पापको दूर करें। चर और अचरके गुरु, नाथ, शेषशय्यापर विराजमान, परमदेव गोविन्दको मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पापको दूर करें। शङ्ख धारण करनेवाले, चक्र धारण करनेवाले, शार्ङ्ग धारण करनेवाले एवं उत्तम मालाधारी, लक्ष्मीपतिको मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे

दामोदरमुदाराक्षं पुण्डरीकाक्षमच्युतम्।
प्रणतोऽस्मि स्तुतं स्तुत्यैः स मे पापं व्यपोहतु॥ ६९

नारायणं नरं शौरिं माधवं मधुसूदनम्।
प्रणतोऽस्मि धराधारं स मे पापं व्यपोहतु॥ ७०
केशवं चन्द्रसूर्याक्षं कंसकेशिनिषूदनम्।
प्रणतोऽस्मि महाबाहुं स मे पापं व्यपोहतु॥ ७१
श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं श्रीधरं श्रीनिकेतनम्।
प्रणतोऽस्मि श्रियः कान्तं स मे पापं व्यपोहतु॥ ७२
यमीशं सर्वभूतानां ध्यायन्ति यतयोऽक्षरम्।
वासुदेवमनिर्देश्यं तमस्मि शरणं गतः॥ ७३
समस्तालम्बनेभ्यो यं व्यावृत्य मनसो गतिम्।
ध्यायन्ति वासुदेवाख्यं तमस्मि शरणं गतः॥ ७४
सर्वगं सर्वभूतं च सर्वस्याधारमीश्वरम्।
वासुदेवं परं ब्रह्म तमस्मि शरणं गतः॥ ७५
परमात्मानमव्यक्तं यं प्रयान्ति सुमेधसः।
कर्मक्षयेऽक्षयं देवं तमस्मि शरणं गतः॥ ७६
पुण्यपापविनिर्मुक्ता यं प्रविश्य पुनर्भवम्।
न योगिनः प्राप्नुवन्ति तमस्मि शरणं गतः॥ ७७
ब्रह्मा भूत्वा जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
यः सृजत्यच्युतो देवस्तमस्मि शरणं गतः॥ ७८
ब्रह्मत्वे यस्य वक्त्रेभ्यश्चतुर्वेदमयं वपुः।
प्रभुः पुरातनो जज्ञे तमस्मि शरणं गतः॥ ७९
ब्रह्मरूपधरं देवं जगद्योनिं जनार्दनम्।
स्रष्टृत्वे संस्थितं सृष्टौ प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥ ८०
स्रष्टा भूत्वा स्थितो योगी स्थितावसुरसूदनः।
तमादिपुरुषं विष्णुं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥ ८१
धृता मही हता दैत्याः परित्रातास्तथा सुराः।
येन तं विष्णुमाद्येशं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥ ८२

पापको दूर करें। दामोदर, उदाराक्ष, पुण्डरीकाक्ष, स्तवनीय स्तोत्रोंसे स्तुत अच्युतको मैं नमस्कार करता हूँ। वे मेरे पापोंको दूर करें। नारायण, नर, शौरि, माधव, मधुसूदन एवं धराको धारण करनेवाले भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पापको दूर करें॥ ६४—७०॥

चन्द्र एवं सूर्यरूपी नेत्रोंवाले, कंस और केशीको मारनेवाले महाबाहु केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पापोंको दूर करें। वक्षःस्थलपर श्रीवत्स धारण करनेवाले, श्रीश, श्रीधर, श्रीनिकेतन एवं श्रीकान्तको मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पापोंको दूर करें। संयम करनेवाले लोग जिन सब प्राणियोंके स्वामी, अक्षर एवं अनिर्देश्य वासुदेवका ध्यान करते हैं मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ। (संन्यासी लोग) अन्य समस्त सहारोंसे मनकी गतिको लौटाकर जिस वासुदेव नामक ईश्वरका ध्यान करते हैं, मैं उनकी शरणमें जाता हूँ। मैं सर्वगत, सर्वभूत, सर्वाधार ईश्वर एवं वासुदेव नामक परब्रह्मकी शरण जाता हूँ। श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न लोग कर्मका नाश होनेपर जिन अदृष्ट, अविनाशी, परमात्मदेवको प्राप्त करते हैं, मैं उनकी शरणमें जाता हूँ। पुण्य तथा पापसे रहित योगीलोग जिन्हें पाकर फिर जन्म ग्रहण नहीं करते, मैं उनकी शरणमें जाता हूँ। ब्रह्माका रूप धारण कर देवता, दैत्य एवं मनुष्योंसे युक्त सारे जगत्‌की सृष्टि करनेवाले अच्युत देवकी मैं शरणमें जाता हूँ॥ ७१—७८॥

ब्रह्माका रूप धारण करनेपर जिनके मुखोंसे चारों वेदोंसे युक्त शरीर धारण करनेवाले पुरातन प्रभुका आविर्भाव हुआ था, मैं उनकी शरणमें जाता हूँ। मैं सृष्टिके लिये स्रष्टारूपसे स्थित ब्रह्मरूप धारण करनेवाले सनातन जगद्योनि जनार्दनको प्रणाम करता हूँ। सृष्टिकर्ता होकर योगिरूपमें विद्यमान एवं स्थितिकालमें राक्षसोंका नाश करनेवाले आदिपुरुष जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। मैं उन आदिपुरुष ईश्वर जनार्दन विष्णुको प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने पृथ्वीको धारण किया है, दैत्योंको

यज्ञैर्यजन्ति यं विप्रा यज्ञेशं यज्ञभावनम्।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥ ८३

पातालवीथीभूतानि तथा लोकान् निहन्ति यः।
तमन्तपुरुषं रुद्रं प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥ ८४

सम्भक्षयित्वा सकलं यथासृष्टमिदं जगत्।
यो वै नृत्यति रुद्रात्मा प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥ ८५

सुरासुराः पितृगणाः यक्षगन्धर्वराक्षसाः।
सम्भूता यस्य देवस्य सर्वगं तं नमाम्यहम्॥ ८६

मारा है एवं देवताओंकी रक्षा की है। ब्राह्मणलोग यज्ञोंके द्वारा जिनकी अर्चना करते हैं, मैं उन यज्ञपुरुष, यज्ञभावन, यज्ञेश, सनातन विष्णुको प्रणाम करता हूँ। मैं पाताललोकमें रहनेवाले प्राणियों तथा लोकोंका विनाश करनेवाले उन अन्तपुरुष सनातन रुद्रको प्रणाम करता हूँ। सृष्ट किये गये इस समस्त जगत्का भक्षणकर नृत्य करनेवाले रुद्रात्मा जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। मैं सर्वत्र गमन करनेवाले देवको प्रणाम करता हूँ, जिनसे समस्त सुर, असुर, पितृगण, यक्ष, गन्धर्व एवं राक्षस उत्पन्न हुए हैं॥ ७९—८६॥

समस्तदेवाः सकला मनुष्याणां च जातयः।
यस्यांशभूता देवस्य सर्वगं तं नतोऽस्म्यहम्॥ ८७

वृक्षगुल्मादयो यस्य तथा पशुमृगादयः।
एकांशभूता देवस्य सर्वगं तं नमाम्यहम्॥ ८८

यस्मान्नान्यत् परं किञ्चिद् यस्मिन् सर्वं महात्मनि।
यः सर्वमध्यगोऽनन्तः सर्वगं तं नमाम्यहम्॥ ८९

यथा सर्वेषु भूतेषु गूढोऽग्निरिव दारुषु।
विष्णुरेवं तथा पापं ममाशेषं प्रणश्यतु॥ ९०

यथा विष्णुमयं सर्वं ब्रह्मादि सचराचरम्।
यच्च ज्ञानपरिच्छेद्यं पापं नश्यतु मे तथा॥ ९१

शुभाशुभानि कर्माणि रजःसत्त्वतमांसि च।
अनेकजन्मकर्मोत्थं पापं नश्यतु मे तथा॥ ९२

यन्निशायां च यत्प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः।
सन्ध्ययोश्च कृतं पापं कर्मणा मनसा गिरा॥ ९३

यत्तिष्ठता यद् व्रजता यच्च शय्यागतेन मे।
कृतं यदशुभं कर्म कायेन मनसा गिरा॥ ९४

अज्ञानतो ज्ञानतो वा मदाच्चलितमानसैः।
तत् क्षिप्रं विलयं यातु वासुदेवस्य कीर्तनात्॥ ९५

मैं उन सर्वव्यापी देवको प्रणाम करता हूँ जिनके अंशसे सम्पूर्ण देव एवं मनुष्योंकी सभी जातियाँ उत्पन्न हुई हैं। वृक्ष, गुल्म आदि तथा पशु, मृग आदि जिन परमदेवके एक अंशरूप हैं, मैं उन सर्वगामी देवको प्रणाम करता हूँ। मैं उन सर्वव्यापी देवको प्रणाम करता हूँ जिनसे पृथक् कोई वस्तु नहीं है एवं जिन महात्मामें सम्पूर्ण पदार्थ स्थित हैं तथा जो सभीके अन्तःकरणमें रहनेवाले और अनन्त हैं। काष्ठमें अग्निके समान समस्त प्राणियोंमें व्याप्त विष्णु मेरे सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करें; क्योंकि विष्णुसे ब्रह्मा आदि समस्त चराचरात्मक जगत् व्याप्त है तथा जो ज्ञानके द्वारा धारण करने योग्य हैं। इसलिये मेरे पाप नष्ट हो जायँ। (विष्णुकी कृपासे) मेरे शुभ तथा अशुभ कर्म, सत्त्व, रज एवं तमोगुण तथा अनेक जन्मोंके कर्मसे उत्पन्न पाप नष्ट हो जायँ। शरीर, कर्म, मन एवं वाणीके द्वारा रात्रिमें तथा प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, अपराह्णकाल और सन्ध्याकालमें चलते, बैठते और शयन करते हुए ज्ञान या अज्ञानपूर्वक अथवा निरहंकार मनसे मैंने जो अशुभ (पाप) कर्म किये हों वे वासुदेवके नाम-कीर्तनसे शीघ्र नष्ट हो जायँ॥ ८७—९५॥

परदारपरद्रव्यवाञ्छाद्रोहोद्भवं च यत्।
परपीडोद्भवां निन्दां कुर्वता यन्महात्मनाम्॥ ९६

यच्च भोज्ये तथा पेये भक्ष्ये चोष्ये विलेहने।
तद् यातु विलयं तोये यथा लवणभाजनम्॥ ९७

परस्त्री और परधनकी कामना, द्रोह, परपीड़ा, महात्माओंकी निन्दा तथा (निषिद्ध) भोज्य, पेय, भक्ष्य, चोष्य एवं चाटनेवाले वस्तुके कारण उत्पन्न सम्पूर्ण पाप इस प्रकार नष्ट हो जायँ जैसे लवण रखनेवाला मिट्टीका

यद् बाल्ये यच्च कौमारे यत् पापं यौवने मम।
वयःपरिणतौ यच्च यच्च जन्मान्तरे कृतम्॥ ९८
तन्नारायण गोविन्द हरिकृष्णेश कीर्तनात्।
प्रयातु विलयं तोये यथा लवणभाजनम्॥ ९९
विष्णवे वासुदेवाय हरये केशवाय च।
जनार्दनाय कृष्णाय नमो भूयो नमो नमः॥ १००
भविष्यन्नरकघ्नाय नमः कंसविघातिने।
अरिष्टकेशिचाणूरदेवारिक्षयिणे नमः॥ १०१
कोऽन्यो बलेर्वञ्चयिता त्वामृते वै भविष्यति।
कोऽन्यो नाशयति बलाद् दर्पं हैहयभूपतेः॥ १०२
कः करिष्यत्यथाऽन्यो वै सागरे सेतुबन्धनम्।
वधिष्यति दशग्रीवं कः सामात्यपुरःसरम्॥ १०३
कस्त्वामृतेऽन्यो नन्दस्य गोकुले रतिमेष्यति।
प्रलम्बपूतनादीनां त्वामृते मधुसूदन।
निहन्ताऽप्यथवा शास्ता देवदेव भविष्यति॥ १०४
जपन्नेवं नरः पुण्यं वैष्णवं धर्ममुत्तमम्।
इष्टानिष्टप्रसंगेभ्यो ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा॥ १०५
कृतं तेन तु यत् पापं सप्तजन्मान्तराणि वै।
महापातकसंज्ञं वा तथा चैवोपपातकम्॥ १०६
यज्ञादीनि च पुण्यानि जपहोमव्रतानि च।
नाशयेद् योगिनां सर्वमामपात्रमिवाम्भसि॥ १०७
नरः संवत्सरं पूर्णं तिलपात्राणि षोडश।
अहन्यहनि यो दद्यात् पठत्येच्च तत्समम्॥ १०८
अविलुप्तब्रह्मचर्यं सम्प्राप्य स्मरणं हरेः।
विष्णुलोकमवाप्नोति सत्यमेतन्मयोदितम्॥ १०९
यथैतत् सत्यमुक्तं मे न ह्यल्पमपि मे मृषा।
राक्षसस्त्रस्तसर्वाङ्गं तथा मामेष मुञ्चतु॥ ११०

पुलस्त्य उवाच

एवमुच्चारिते तेन मुक्तो विप्रस्तु रक्षसा।
अकामेन द्विजो भूयस्तमाह रजनीचरम्॥ १११

ब्राह्मण उवाच

एतद् भद्र मया ख्यातं तव पातकनाशनम्।
विष्णोः सारस्वतं स्तोत्रं यज्जगाद सरस्वती॥ ११२

पात्र पानीमें (पड़ते ही) नष्ट हो जाता है। नारायण, गोविन्द, हरि, कृष्ण, ईशका कीर्तन करनेसे बाल्यकाल, कुमारावस्था, यौवन, वार्द्धक्य एवं जन्मान्तरमें किये गये मेरे सम्पूर्ण पाप इस प्रकार नष्ट हो जायँ जैसे जलमें नमक रखनेवाला मिट्टीका बर्तन विलीन हो जाता (गल जाता) है। विष्णु, वासुदेव, हरि, केशव, जनार्दन, कृष्णको पुनः-पुनः प्रणाम है। भावी नरकका नाश करनेवाले तथा कंसको मारनेवालेको नमस्कार है। अरिष्ट, केशी एवं चाणूर आदि राक्षसोंके नष्ट करनेवालेको नमस्कार है। आपके सिवाय बलिको कौन छल सकता था एवं आपके बिना हैहयनरेशके घमंडको कौन नष्ट कर सकता था? आपके सिवाय समुद्रमें सेतुको कौन बाँध सकता था तथा मन्त्री आदिके साथ ही दशग्रीव रावणको कौन मार सकता था॥ ९६—१०३॥

मधुसूदन! आपके सिवाय कौन ऐसा है जो नन्दके गोकुलमें प्रेममयी क्रीडा कर सके? देवदेव! आपके सिवा प्रलम्ब और पूतना आदिका वध एवं शासन कौन कर सकता था? इस धर्ममय उत्तम वैष्णव मन्त्रका जप करनेवाला मनुष्य इष्ट और अनिष्टके प्रसङ्गवश तथा ज्ञान या अज्ञानपूर्वक सात जन्मोंमें किये अपने महापातकों, उपपातकों, यज्ञ, होम एवं व्रत आदिके पुण्य कर्मोंके भी योगको इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे जलमें मिट्टीका कच्चा घड़ा नष्ट हो जाता है। मैं यह सत्य कहता हूँ कि अखण्डित ब्रह्मचर्य एवं हरिस्मरणपूर्वक एक वर्षतक इस स्तोत्रके पाठके साथ प्रतिदिन तिलसे भरे सोलह पात्रोंका दान करनेवाला मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त करता है। यदि मैंने यह सत्य कहा हो एवं इसमें अल्पमात्र भी असत्य न हो तो यह राक्षस सब अङ्गोंसे पीड़ित हो चुके मुझे छोड़ दे॥ १०४—११०॥

पुलस्त्यजी बोले—उसके ऐसा कहते ही राक्षसने ब्राह्मणको छोड़ दिया। पुनः द्विजने निष्कामभावसे राक्षससे कहा—॥ १११॥

ब्राह्मणने कहा—भद्र! सरस्वती देवीने जिस पापका नाश करनेवाले सारस्वत विष्णुस्तोत्रको कहा है,

हुताशनेन प्रहिता मम जिह्वाग्रसंस्थिता।
जगादैनं स्तवं विष्णोः सर्वेषां चोपशान्तिदम्॥ ११३

अनेनैव जगन्नाथं त्वमाराधय केशवम्।
ततः शापापनोदं तु स्तुते लप्स्यसि केशवे॥ ११४

अहर्निशं हृषीकेशं स्तवेनानेन राक्षस।
स्तुहि भक्तिं दृढां कृत्वा ततः पापाद् विमोक्ष्यसे॥ ११५

स्तुतो हि सर्वपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम्।
स्तुतो हि भक्त्या नृणां वै सर्वपापहरो हरिः॥ ११६

उसे मैंने तुमसे कह दिया। अग्निदेवसे भेजी गयी एवं मेरी जिह्वाके अग्रभागमें स्थित सरस्वतीने सभीको शान्ति देनेवाले इस विष्णुस्तोत्रको कहा है। तुम इसीसे जगत्स्वामी केशवकी आराधना करो। उसके बाद केशवकी स्तुति करनेसे तुम शापसे मुक्त हो जाओगे। राक्षस! इस स्तुतिके द्वारा दृढ़ भक्तिपूर्वक दिन-रात हृषीकेशकी स्तुति करो। तब तुम पापसे मुक्त हो जाओगे। स्तुति किये गये हरि नि:संदेह समस्त पापोंको नष्ट करेंगे। भक्तिपूर्वक स्तुति करनेसे सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाले हरि मनुष्योंके सब पापोंका नाश कर देते हैं॥ ११२—११६॥

पुलस्त्य उवाच

ततः प्रणम्य तं विप्रं प्रसाद्य स निशाचरः।
तदैव तपसे श्रीमान् शालग्राममगाद् वशी॥ ११७

अहर्निशं स एवैनं जपन् सारस्वतं स्तवम्।
देवक्रियारतिर्भूत्वा तपस्तेपे निशाचरः॥ ११८

समाराध्य जगन्नाथं स तत्र पुरुषोत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्तवान्॥ ११९

एतत्ते कथितं ब्रह्मन् विष्णोः सारस्वतं स्तवम्।
विप्रवक्त्रस्थया सम्यक् सरस्वत्या समीरितम्॥ १२०

य एतत् परमं स्तोत्रं वासुदेवस्य मानवः।
पठिष्यति स सर्वेभ्यः पापेभ्यो मोक्षमाप्स्यति॥ १२१

पुलस्त्यजी बोले—उसके बाद आत्मनिष्ठ वह राक्षस ब्राह्मणको प्रणाम एवं प्रसन्न करनेके पश्चात् उसी समय तपस्याके लिये शालग्राम नामक स्थानमें चला गया। वह राक्षस दिन-रात इसी सारस्वतस्तोत्रका जप करते हुए देवक्रियामें लीन होकर तप करने लगा। वहाँ पुरुषोत्तम जगन्नाथकी पूजा कर सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर उसने विष्णुलोक प्राप्त किया। ब्रह्मन्! मैंने तुमसे ब्राह्मणके मुखसे सरस्वतीद्वारा कहा गया विष्णुका यह सारस्वतस्तोत्र कहा। वासुदेवके इस श्रेष्ठ स्तोत्रको पढ़नेवाला मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जायगा॥ ११७—१२१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पचासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८५॥

छियासीवाँ अध्याय

स्तोत्रोंके क्रममें पुलस्त्यजीद्वारा उपदिष्ट महेश्वर-कथित पापप्रशमनस्तोत्र

पुलस्त्य उवाच

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ देवदेव नमोऽस्तु ते।
वासुदेव नमस्तेऽस्तु बहुरूप नमोऽस्तु ते॥ १

पुलस्त्यजी बोले—हे जगन्नाथ! आपको नमस्कार है। हे देवदेव! आपको नमस्कार है। हे वासुदेव! आपको नमस्कार है। हे अनन्त रूप धारण करनेवाले!

एकशृङ्ग नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं वृषाकपे।
श्रीनिवास नमस्तेऽस्तु नमस्ते भूतभावन॥ २

विष्वक्सेन नमस्तुभ्यं नारायण नमोऽस्तु ते।
ध्रुवध्वज नमस्तेऽस्तु सत्यध्वज नमोऽस्तु ते॥ ३

यज्ञध्वज नमस्तुभ्यं धर्मध्वज नमोऽस्तु ते।
तालध्वज नमस्तेऽस्तु नमस्ते गरुडध्वज॥ ४

वरेण्य विष्णो वैकुण्ठ नमस्ते पुरुषोत्तम।
नमो जयन्त विजय जयानन्त पराजित॥ ५

कृतावर्त महावर्त महादेव नमोऽस्तु ते।
अनाद्याद्यन्त मध्यान्त नमस्ते पद्मजप्रिय॥ ६

पुरञ्जय नमस्तुभ्यं शत्रुञ्जय नमोऽस्तु ते।
शुभञ्जय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु धनञ्जय॥ ७

सृष्टिगर्भ नमस्तुभ्यं शुचिश्रवः पृथुश्रवः।
नमो हिरण्यगर्भाय पद्मगर्भाय ते नमः॥ ८

आपको नमस्कार है। हे एकशृङ्ग! आपको नमस्कार है। हे वृषाकपे! आपको नमस्कार है। हे श्रीनिवास! आपको नमस्कार है। हे भूतभावन! आपको नमस्कार है। हे विष्वक्सेन! आपको नमस्कार है। हे नारायण! आपको नमस्कार है। हे ध्रुवध्वज! आपको नमस्कार है। हे सत्यध्वज! आपको नमस्कार है। हे यज्ञध्वज! आपको नमस्कार है। हे धर्मध्वज! आपको नमस्कार है। हे तालध्वज! आपको नमस्कार है। हे गरुडध्वज! आपको नमस्कार है। हे वरेण्य! हे विष्णो! हे वैकुण्ठ! हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। हे जयन्त! हे विजय! हे जय! हे अनन्त! हे पराजित! आपको नमस्कार है। हे कृतावर्त! हे महावर्त! हे महादेव! आपको नमस्कार है। हे अनादि एवं आदि और अन्तमें विद्यमान! हे मध्यान्त! (मध्य और अन्तवाले) हे पद्मजप्रिय! आपको प्रणाम है। हे पुरञ्जय! आपको नमस्कार है। हे शत्रुञ्जय! आपको प्रणाम है। हे शुभञ्जय! आपको प्रणाम है। हे धनञ्जय! आपको प्रणाम है। हे सृष्टिको अपनेमें सुरक्षित रखनेवाले हे सृष्टिगर्भ! श्रवणमात्रसे ही पवित्र कर देनेवाले हे सुचिश्रवः! आर्तजनोंकी पुकारको विशाल कर्णोंसे सुननेवाले हे पृथुश्रवः! आपको नमस्कार है। आप हिरण्यगर्भको नमस्कार है। आप पद्मगर्भको नमस्कार है॥ १—८॥

नमः कमलनेत्राय कालनेत्राय ते नमः।
कालनाभ नमस्तुभ्यं महानाभ नमो नमः॥ ९
वृष्टिमूल महामूल मूलावास नमोऽस्तु ते।
धर्मावास जलावास श्रीनिवास नमोऽस्तु ते॥ १०
धर्माध्यक्ष प्रजाध्यक्ष लोकाध्यक्ष नमो नमः।
सेनाध्यक्ष नमस्तुभ्यं कालाध्यक्ष नमोऽस्तु ते॥ ११
गदाधर श्रुतिधर चक्रधारिन् श्रियोधर।
वनमालाधर हरे नमस्ते धरणीधर॥ १२
आर्चिषेण महासेन नमस्तेऽस्तु पुरुष्टुत।
बहुकल्प महाकल्प नमस्ते कल्पनामुख॥ १३

आप कमलनेत्रको प्रणाम है। आप कालनेत्रको प्रणाम है। हे कालनाभ! आपको प्रणाम है। हे महानाभ! आपको बारम्बार प्रणाम है। हे वृष्टिमूल! हे महामूल! हे मूलावास! आपको प्रणाम है। हे धर्मावास! हे जलावास! हे श्रीनिवास! आपको प्रणाम है। हे धर्माध्यक्ष! हे प्रजाध्यक्ष! हे लोकाध्यक्ष! आपको बार-बार प्रणाम है। हे सेनाध्यक्ष! आपको प्रणाम है। हे कालाध्यक्ष! आपको प्रणाम है। हे गदाधर! हे श्रुतिधर! हे चक्रधर! हे श्रीधर! हे वनमाला और पृथ्वीको धारण करनेवाले हे हरे! आपको प्रणाम है। हे आर्चिषेण! हे महासेन! हे पुरुसे स्तुत! आपको प्रणाम है। हे बहुकल्प! हे महाकल्प! हे कल्पनामुख! आपको प्रणाम है।

सर्वात्मन् सर्वग विभो विरिञ्चे श्वेत केशव।
नील रक्त महानील अनिरुद्ध नमोऽस्तु ते॥ १४

द्वादशात्मक कालात्मन् सामात्मन् परमात्मक।
व्योमकात्मक सुब्रह्मन् भूतात्मक नमोऽस्तु ते॥ १५

हरिकेश महाकेश गुडाकेश नमोऽस्तु ते।
मुञ्जकेश हृषीकेश सर्वनाथ नमोऽस्तु ते॥ १६

हे सर्वात्मन्! हे सर्वग! हे विभो! हे विरिञ्चिन्! हे श्वेत! हे केशव! हे नील! हे रक्त! हे महानील! हे अनिरुद्ध! आपको नमस्कार है। हे द्वादशात्मक! हे कालात्मन्! हे सामात्मन्! हे परमात्मक! हे आकाशात्मक! हे सुब्रह्मन्! हे भूतात्मक! आपको प्रणाम है। हे हरिकेश! हे महाकेश! हे गुडाकेश! आपको प्रणाम है। हे मुञ्जकेश! हे हृषीकेश! हे सर्वनाथ! आपको प्रणाम है॥ ९—१६॥

सूक्ष्म स्थूल महास्थूल महासूक्ष्म शुभङ्कर।
श्वेतपीताम्बरधर नीलवास नमोऽस्तु ते॥ १७

कुशेशय नमस्तेऽस्तु पद्मेशय जलेशय।
गोविन्द प्रीतिकर्ता च हंस पीताम्बरप्रिय॥ १८

अधोक्षज नमस्तुभ्यं सीरध्वज जनार्दन।
वामनाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते मधुसूदन॥ १९

सहस्त्रशीर्षाय नमो ब्रह्मशीर्षाय ते नमः।
नमः सहस्त्रनेत्राय सोमसूर्यानलेक्षण॥ २०

नमश्चाथर्वशिरसे महाशीर्षाय ते नमः।
नमस्ते धर्मनेत्राय महानेत्राय ते नमः॥ २१

नमः सहस्त्रपादाय सहस्त्रभुजमन्यवे।
नमो यज्ञवराहाय महारूपाय ते नमः॥ २२

नमस्ते विश्वदेवाय विश्वात्मन् विश्वसम्भव।
विश्वरूप नमस्तेऽस्तु त्वत्तो विश्वमभूदिदम्॥ २३

न्यग्रोधस्त्वं महाशाखस्त्वं मूलकुसुमार्चितः।
स्कन्धपत्राङ्कुरलतापल्लवाय नमोऽस्तु ते॥ २४

हे सूक्ष्म! हे स्थूल! हे महास्थूल! हे महासूक्ष्म! हे शुभङ्कर! हे उज्ज्वल-पीले वस्त्रको धारण करनेवाले! हे नीलवास! आपको प्रणाम है। हे कुशपर शयन करनेवाले! हे पद्मपर शयन करनेवाले! हे जलमें शयन करनेवाले! हे गोविन्द! हे प्रीतिकर्तः! हे हंस! हे पीताम्बरप्रिय! आपको नमस्कार है। हे अधोक्षज! हे सीरध्वज! हे जनार्दन! आपको प्रणाम है। हे वामन! आपको प्रणाम है। हे मधुसूदन! आपको प्रणाम है। आप सहस्त्र सिरवालेको नमस्कार है। आप ब्रह्मशीर्षको प्रणाम है। आप सहस्त्रनेत्र और चन्द्र, सूर्य तथा अग्निरूपी आँखवालेको प्रणाम है। अथर्वशिराको नमस्कार है। महाशीर्षको प्रणाम है। धर्मनेत्रको प्रणाम है। महानेत्रको प्रणाम है। सहस्त्रपादको नमस्कार है। सहस्त्रों भुजाओं एवं सहस्त्रों यज्ञोंवालेको नमस्कार है। यज्ञवराहको नमस्कार है! आप महारूपको नमस्कार है। विश्वदेवको प्रणाम है। हे विश्वात्मन्! हे विश्वसम्भव! हे विश्वरूप! आपको नमस्कार है। आपसे यह विश्व उत्पन्न हुआ है। आप न्यग्रोध और महाशाख हैं, आप ही मूलकुसुमार्चित हैं। स्कन्ध, पत्र, अङ्कुर, लता एवं पल्लवस्वरूप आपको नमस्कार है॥ १७—२४॥

मूलं ते ब्राह्मणा ब्रह्मन् स्कन्धस्ते क्षत्रियाः प्रभो।
वैश्याः शाखा दलं शूद्रा वनस्पते नमोऽस्तु ते॥ २५

ब्राह्मणाः साग्नयो वक्त्राः दोर्दण्डाः सायुधा नृपाः।
पार्श्वाद् विशश्चोरुयुगाज्जाताः शूद्राश्च पादतः॥ २६

नेत्राद् भानुरभूत् तुभ्यं पद्भ्यां भूः श्रोत्रयोर्दिशः।
नाभ्या ह्यभूदन्तरिक्षं शशाङ्को मनसस्तव॥ २७

ब्रह्मन्! ब्राह्मण आपके मूल हैं। प्रभो! क्षत्रिय आपके स्कन्ध, वैश्य शाखा एवं शूद्र पत्ते हैं। वनस्पते! आपको नमस्कार है। अग्निसहित ब्राह्मण आपके मुख एवं शस्त्रसहित क्षत्रिय आपकी भुजाएँ हैं। वैश्य आपके दोनों जाँघोंके पार्श्वभागसे तथा शूद्र आपके चरणोंसे उत्पन्न हुए हैं। आपके नेत्रसे सूर्य उत्पन्न हुए हैं। आपके चरणोंसे पृथ्वी, कानोंसे दिशाएँ, नाभिसे अन्तरिक्ष तथा

प्राणाद् वायुः समभवत् कामाद् ब्रह्मा पितामहः।
क्रोधात् त्रिनयनो रुद्रः शीर्ष्णो: द्यौः समवर्तत॥ २८

इन्द्राग्नी वदनात् तुभ्यं पशवो मलसम्भवाः।
ओषध्यो रोमसम्भूता विराजस्त्वं नमोऽस्तु ते॥ २९

पुष्पहास नमस्तेऽस्तु महाहास नमोऽस्तु ते।
ॐकारस्त्वं वषट्कारो वौषट् त्वं च स्वधा सुधा॥ ३०

स्वाहाकार नमस्तुभ्यं हन्तकार नमोऽस्तु ते।
सर्वाकार निराकार वेदाकार नमोऽस्तु ते॥ ३१

त्वं हि वेदमयो देवः सर्वदेवमयस्तथा।
सर्वतीर्थमयश्चैव सर्वयज्ञमयस्तथा॥ ३२

नमस्ते यज्ञपुरुष यज्ञभागभुजे नमः।
नमः सहस्रधाराय शतधाराय ते नमः॥ ३३

भूर्भुवःस्वःस्वरूपाय गोदायामृतदायिने।
सुवर्णब्रह्मदात्रे च सर्वदात्रे च ते नमः॥ ३४

ब्रह्मेशाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मादे ब्रह्मरूपधृक्।
परब्रह्म नमस्तेऽस्तु शब्दब्रह्म नमोऽस्तु ते॥ ३५

विद्यास्त्वं वेद्यरूपस्त्वं वेदनीयस्त्वमेव च।
बुद्धिस्त्वमपि बोध्यश्च बोधस्त्वं च नमोऽस्तु ते॥ ३६

होता होमश्च हव्यं च हूयमानश्च हव्यवाट्।
पाता पोता च पूतश्च पावनीयश्च ॐ नमः॥ ३७

हन्ता च हन्यमानश्च ह्रियमाणस्त्वमेव च।
हर्त्ता नेता च नीतिश्च पूज्योऽग्र्यो विश्वधार्यसि॥ ३८

स्त्रुक्स्त्रुवौ परधामासि कपालोलूखलोऽरणिः।
यज्ञपात्रारणेयस्त्वमेकधा बहुधा त्रिधा॥ ३९

यज्ञस्त्वं यजमानस्त्वमीड्यस्त्वमसि याजकः।
ज्ञाता ज्ञेयस्तथा ज्ञानं ध्येयो ध्याताऽसि चेश्वर॥ ४०

ध्यानयोगश्च योगी च गतिर्मोक्षो धृतिः सुखम्।
योगाङ्गानि त्वमीशानः सर्वगस्त्वं नमोऽस्तु ते॥ ४१

मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए हैं। आपके प्राणसे वायु, कामसे पितामह ब्रह्मा, क्रोधसे त्रिनेत्र रुद्र और सिरसे द्युलोक आविर्भूत हुए हैं। आपके मुखसे इन्द्र और अग्नि, मलसे पशु तथा रोमसे ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। आप विराज हैं। आपको नमस्कार है। हे पुष्पहास! आपको प्रणाम है। हे महाहास! आपको प्रणाम है। आप ओङ्कार, वषट्कार और वौषट् हैं। आप स्वधा और सुधा हैं। हे स्वाहाकार! आपको प्रणाम है। हे हन्तकार! आपको प्रणाम है। हे सर्वाकार! हे निराकार! हे वेदाकार! आपको प्रणाम है। आप वेदमय देव तथा सर्वदेवमय हैं। आप सर्वतीर्थमय और सर्वयज्ञमय हैं॥ २५—३२॥

यज्ञपुरुष! आपको प्रणाम है। हे यज्ञभागके भोक्तः! आपको प्रणाम है। सहस्रधार और शतधारको प्रणाम है। भूर्भुवःस्वःस्वरूप, गोदाता, अमृतदाता, सुवर्ण और ब्रह्म (संसारके निमित्त और उपादान कारण आदि)-के भी जन्मदाता तथा सर्वदाता आपको प्रणाम है। आप ब्रह्मेशको नमस्कार है। हे ब्रह्मादि! हे ब्रह्मरूपधारिन्! हे परमब्रह्म! आपको प्रणाम है। हे शब्दब्रह्म! आपको प्रणाम है। आप ही विद्या, आप ही वेद्यरूप तथा आप ही जानने योग्य हैं। आप ही बुद्धि, बोध्य और बोधरूप हैं। आपको प्रणाम है। आप होता, होम, हव्य, हूयमान द्रव्य तथा हव्यवाट्, पाता, पोता, पूत तथा पावनीय ओङ्कार हैं। आपको नमस्कार है। आप हन्ता, हन्यमान, ह्रियमाण, हर्ता, नेता, नीति, पूज्य, श्रेष्ठ तथा संसारको धारण करनेवाले हैं। आप स्रुक्, स्रुव, परधाम, कपाली, उलूखल, अरणि, यज्ञपात्र, आरणेय, एकधा, त्रिधा और बहुधा हैं। आप यज्ञ हैं और आप यजमान हैं। आप स्तुत्य और याजक हैं। आप ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान, ध्येय, ध्याता तथा ईश्वर हैं। आप ध्यानयोग, योगी, गति, मोक्ष, धृति, सुख, योगाङ्ग, ईशान एवं सर्वग हैं। आपको नमस्कार है॥ ३३—४१॥

ब्रह्मा होता तथोद्गाता साम यूपोऽथ दक्षिणा।
दीक्षा त्वं त्वं पुरोडाशस्त्वं पशुः पशुवाह्यसि॥ ४२
गुह्यो धाता च परमः शिवो नारायणस्तथा।
महाजनो निरयनः सहस्रार्केन्दुरूपवान्॥ ४३
द्वादशारोऽथ षण्णाभिस्त्रिव्यूहो द्वियुगस्तथा।
कालचक्रो भवानीशो नमस्ते पुरुषोत्तमः॥ ४४
पराक्रमो विक्रमस्त्वं हयग्रीवो हरीश्वरः।
नरेश्वरोऽथ ब्रह्मेशः सूर्येशस्त्वं नमोऽस्तु ते॥ ४५
अश्ववक्त्रो महामेधाः शम्भुः शक्रः प्रभञ्जनः।
मित्रावरुणमूर्तिस्त्वममूर्तिरनघः परः॥ ४६
प्राग्वंशकायो भूतादिर्महाभूतोऽच्युतो द्विजः।
त्वमूर्ध्वकर्त्ता ऊर्ध्वश्च ऊर्ध्वरेता नमोऽस्तु ते॥ ४७
महापातकहा त्वं च उपपातकहा तथा।
अनीशः सर्वपापेभ्यस्त्वामहं शरणं गतः॥ ४८
इत्येतत् परमं स्तोत्रं सर्वपापप्रमोचनम्।
महेश्वरेण कथितं वाराणस्यां पुरा मुने॥ ४९
केशवस्याग्रतो गत्वा स्नात्वा तीर्थे सितोदके।
उपशान्तस्तथा जातो रुद्रः पापवशात् ततः॥ ५०
एतत् पवित्रं त्रिपुरघ्नभाषितं
पठन् नरो विष्णुपरो महर्षे।
विमुक्तपापो ह्युपशान्तमूर्तिः
सम्पूज्यते देववरैः प्रसिद्धैः॥ ५१

आप ब्रह्मा, होता, उद्गाता, साम, यूप, दक्षिणा तथा दीक्षा हैं। आप पुरोडाश एवं आप ही पशु तथा पशुवाही हैं। आप गुह्य, धाता, परम, शिव, नारायण, महाजन, निराश्रय तथा हजारों सूर्य और चन्द्रमाके समान रूपवान् हैं। आप बारह अरों, छः नाभियों, तीन व्यूहों एवं दो युगोंवाले कालचक्र तथा ईश एवं पुरुषोत्तम हैं। आपको नमस्कार है। आप पराक्रम, विक्रम, हयग्रीव, हरीश्वर, नरेश्वर, ब्रह्मेश और सूर्येश हैं। आपको नमस्कार है। आप अश्ववक्त्र, महामेधा, शम्भु, शक्र, प्रभञ्जन, मित्रावरुणकी मूर्ति, अमूर्ति, निष्पाप और श्रेष्ठ हैं। आप प्राग्वंशकाय (मूलपुरुष), भूतादि, महाभूत, अच्युत और द्विज हैं। आप ऊर्ध्वकर्त्ता, ऊर्ध्व और ऊर्ध्वरेता हैं। आपको नमस्कार है। आप महापातकोंका विनाश करनेवाले तथा उपपातकोंके नाशक हैं। आप सभी पापोंसे निर्लिप्त हैं। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मुने! प्राचीन कालमें महेश्वरने सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति देनेवाले इस श्रेष्ठ स्तोत्रको वाराणसीमें कहा था। तीर्थके स्वच्छ जलमें स्नान कर केशवका दर्शन करनेसे रुद्र पापके प्रभावसे मुक्त एवं शान्त हुए थे। महर्षे! त्रिपुरारिके द्वारा कहे गये इस स्तोत्रका पाठ करनेसे विष्णुभक्त मनुष्य पापसे मुक्त और सौम्य होकर प्रसिद्ध तथा श्रेष्ठ देवताओंसे पूजित होता है॥ ४२—५१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छियासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८६॥

सतासीवाँ अध्याय

अगस्त्यद्वारा कथित पापप्रशमनस्तोत्र

पुलस्त्य उवाच

द्वितीयं पापशमनं स्तवं वक्ष्यामि ते मुने।
येन सम्यगधीतेन पापं नाशं तु गच्छति॥ १

मत्स्यं नमस्ये देवेशं कूर्मं गोविन्दमेव च।
हयशीर्षं नमस्येऽहं भवं विष्णुं त्रिविक्रमम्॥ २

नमस्ये माधवेशानौ हृषीकेशकुमारिणौ।
नारायणं नमस्येऽहं नमस्ये गरुडासनम्॥ ३

ऊर्ध्वकेशं नृसिंहं च रूपधारं कुरुध्वजम्।
कामपालमखण्डं च नमस्ये ब्राह्मणप्रियम्॥ ४

अजितं विश्वकर्माणं पुण्डरीकं द्विजप्रियम्।
हंसं शम्भुं नमस्ये च ब्रह्माणं सप्रजापतिम्॥ ५

नमस्ये शूलबाहुं च देवं चक्रधरं तथा।
शिवं विष्णुं सुवर्णाक्षं गोपतिं पीतवाससम्॥ ६

नमस्ये च गदापाणिं नमस्ये च कुशेशयम्।
अर्धनारीश्वरं देवं नमस्ये पापनाशनम्॥ ७

गोपालं च सवैकुण्ठं नमस्ये चापराजितम्।
नमस्ये विश्वरूपं च सौगन्धिं सर्वदाशिवम्॥ ८

पुलस्त्यजी बोले—मुने! अब मैं आपसे पापोंका निवारण करनेवाला दूसरा स्तोत्र कहूँगा; जिसका भलीभाँति अध्ययन (पाठ) करनेसे पाप विनष्ट हो जाता है। मैं मत्स्य एवं कच्छपका रूप धारण करनेवाले देवेश गोविन्दभगवान्‌को नमस्कार करता हूँ। मैं हयशीर्ष, भव और त्रिविक्रम विष्णुभगवान्‌को नमस्कार करता हूँ। मैं माधव, ईशान, हृषीकेश और कुमारको नमस्कार करता हूँ। मैं नारायणको नमस्कार करता हूँ। मैं गरुडासन भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ। मैं ऊर्ध्वकेश तथा नरसिंहका रूप धारण करनेवाले एवं कुरुध्वज, कामपाल, अखण्ड और ब्राह्मणप्रिय देवको नमस्कार करता हूँ। मैं अजित, विश्वकर्मा, पुण्डरीक, द्विजप्रिय, हंस, शम्भु तथा प्रजापतिके सहित ब्रह्माको नमस्कार करता हूँ। मैं शूलबाहु, चक्रधरदेव, शिव, विष्णु, सुवर्णाक्ष और गोपति तथा पीतवासाको प्रणाम करता हूँ। मैं गदा धारण करनेवाले गदाधर भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ और कुशेशयको नमस्कार करता हूँ। मैं पापका नाश करनेवाले अर्धनारीश्वर देवको नमस्कार करता हूँ। मैं वैकुण्ठसहित गोपाल तथा अपराजितको नमस्कार करता हूँ। मैं विश्वरूप, सौगन्धि और सदाशिवको प्रणाम करता हूँ॥ १—८॥

पाञ्चालिकं हयग्रीवं स्वयम्भुवममरेश्वरम्।
नमस्ये पुष्कराक्षं च पयोगन्धिं च केशवम्॥ ९

मैं पाञ्चालिक, हयग्रीव, स्वयम्भुव, अमरेश्वर, पुष्कराक्ष, पयोगन्धि और केशवको नमस्कार करता हूँ।

अविमुक्तं च लोलं च ज्येष्ठेशं मध्यमं तथा।
उपशान्तं नमस्येऽहं मार्कण्डेयं सजम्बुकम्॥ १०

मैं अविमुक्त, लोल, ज्येष्ठेश, मध्यम, उपशान्त तथा जम्बुकसहित मार्कण्डेयको नमस्कार करता हूँ।

नमस्ये पद्मकिरणं नमस्ये वडवामुखम्।
कार्तिकेयं नमस्येऽहं बाह्लीकं शिखिनं तथा॥ ११

मैं पद्मकिरणको नमस्कार करता हूँ। मैं वडवामुखको नमस्कार करता हूँ। मैं कार्तिकेय, बाह्लीक तथा शिखीको प्रणाम करता हूँ।

नमस्ये स्थाणुमनघं नमस्ये वनमालिनम्।
नमस्ये लाङ्गलीशं च नमस्येऽहं श्रियः पतिम्॥ १२
नमस्ये च त्रिनयनं नमस्ये हव्यवाहनम्।
नमस्ये च त्रिसौवर्णं नमस्ये धरणीधरम्॥ १३
त्रिणाचिकेतं ब्रह्मेशं नमस्ये शशिभूषणम्।
कपर्दिनं नमस्ये च सर्वामयविनाशनम्॥ १४
नमस्ये शशिनं सूर्यं ध्रुवं रौद्रं महौजसम्।
पद्मनाभं हिरण्याक्षं नमस्ये स्कन्दमव्ययम्॥ १५

नमस्ये भीमहंसौ च नमस्ये हाटकेश्वरम्।
सदाहंसं नमस्ये च नमस्ये प्राणतर्पणम्॥ १६

मैं स्थाणु एवं अनघको नमस्कार करता हूँ तथा वनमालीको नमस्कार करता हूँ। मैं लाङ्गलीश तथा लक्ष्मीपतिको नमस्कार करता हूँ। मैं त्रिनेत्रको प्रणाम करता हूँ तथा हव्यवाहनको नमस्कार करता हूँ। मैं त्रिसौवर्णको नमस्कार करता हूँ तथा धरणीधरको नमस्कार करता हूँ। मैं त्रिणाचिकेत, ब्रह्मेश तथा शशिभूषणको प्रणाम करता हूँ। मैं सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाले कपर्दीभगवान्‌को प्रणाम करता हूँ। मैं चन्द्र, सूर्य, ध्रुव तथा महान् ओजस्वी रुद्रभगवान्‌को प्रणाम करता हूँ। मैं पद्मनाभ, हिरण्याक्ष तथा अव्यय स्कन्दको प्रणाम करता हूँ। मैं भीम और हंसको प्रणाम करता हूँ। मैं हाटकेश्वरको प्रणाम करता हूँ। मैं सदाहंसको प्रणाम करता हूँ और प्राणोंको तृप्त करनेवालेको प्रणाम करता हूँ॥ ९—१६॥

नमस्ये रुक्मकवचं महायोगिनमीश्वरम्।
नमस्ये श्रीनिवासं च नमस्ये पुरुषोत्तमम्॥ १७
नमस्ये च चतुर्बाहुं नमस्ये वसुधाधिपम्।
वनस्पतिं पशुपतिं नमस्ये प्रभुमव्ययम्॥ १८
श्रीकण्ठं वासुदेवं नीलकण्ठं सदण्डिनम्।
नमस्ये सर्वमनघं गौरीशं नकुलीश्वरम्॥ १९
मनोहरं कृष्णकेशं नमस्ये चक्रपाणिनम्।
यशोधरं महाबाहुं नमस्ये च कुशप्रियम्॥ २०
भूधरं छादितगदं सुनेत्रं शूलशङ्खिनम्।
भद्राक्षं वीरभद्रं च नमस्ये शङ्कुकर्णिकम्॥ २१
वृषध्वजं महेशं च विश्वामित्रं शशिप्रभम्।
उपेन्द्रं चैव गोविन्दं नमस्ये पङ्कजप्रियम्॥ २२
सहस्रशिरसं देवं नमस्ये कुन्दमालिनम्।
कालाग्निं रुद्रदेवेशं नमस्ये कृत्तिवाससम्॥ २३
नमस्ये छागलेशं च नमस्ये पङ्कजासनम्।
सहस्राक्षं कोकनदं नमस्ये हरिशङ्करम्॥ २४

मैं रुक्म-कवच धारण करनेवाले महायोगी ईश्वरको नमस्कार करता हूँ और पुरुषोत्तम श्रीनिवासभगवान्‌को नमस्कार करता हूँ। मैं चार भुजा धारण करनेवाले देवको प्रणाम करता हूँ। मैं पृथ्वीके अधिपतिको प्रणाम करता हूँ। मैं वनस्पति, पशुपति और अव्यय प्रभुको प्रणाम करता हूँ। मैं श्रीकण्ठ वासुदेव, दण्डसहित नीलकण्ठ, सर्व, अनघ, गौरीश तथा नकुलीश्वरभगवान्‌को नमस्कार करता हूँ। मैं मनको हरण करनेवाले कृष्णकेश चक्रपाणि भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ और यशोधारी, महाबाहु कुशप्रियको नमस्कार करता हूँ। मैं भूधर, छादितगद, सुनेत्र, शूलशंखी, भद्राक्ष, वीरभद्र तथा शंकुकर्णिकको नमस्कार करता हूँ। मैं वृषध्वज, महेश, विश्वामित्र, शशिप्रभ, उपेन्द्र, गोविन्द तथा पङ्कजप्रियको नमस्कार करता हूँ। मैं सहस्रशीर्षा तथा कुन्दमाली देवको नमस्कार करता हूँ। मैं कालाग्नि, रुद्रदेवेश तथा कृत्तिवासाको प्रणाम करता हूँ। मैं छागलेशको नमस्कार करता हूँ तथा पङ्कजासनको नमस्कार करता हूँ। मैं सहस्राक्ष, कोकनद तथा हरिशंकरको नमस्कार करता हूँ॥ १७—२४॥

अगस्त्यं गरुडं विष्णुं कपिलं ब्रह्मवाङ्मयम्।
सनातनं च ब्रह्माणं नमस्ये ब्रह्मतत्परम्॥ २५

मैं अगस्त्य, गरुड, विष्णु, कपिल, ब्रह्मवाङ्मय, सनातन, ब्रह्मा तथा ब्रह्मतत्परको नमस्कार करता हूँ।

अप्रतर्क्यं चतुर्बाहुं सहस्रांशुं तपोमयम्।
नमस्ये धर्मराजानं देवं गरुडवाहनम्॥ २६

सर्वभूतगतं शान्तं निर्मलं सर्वलक्षणम्।
महायोगिनमव्यक्तं नमस्ये पापनाशनम्॥ २७

निरञ्जनं निराकारं निर्गुणं निर्मलं पदम्।
नमस्ये पापहन्तारं शरण्यं शरणं व्रजे॥ २८

एतत् पवित्रं परमं पुराणं
प्रोक्तं त्वगस्त्येन महर्षिणा च।
धन्यं यशस्यं बहुपापनाशनं
संकीर्तनात् स्मरणात् संश्रवाच्च॥ २९

मैं अनुमानसे परे, चार भुजाधारी, सहस्रांशु, तपोमूर्ति, धर्मराज गरुड़वाहन देवको नमस्कार करता हूँ। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंमें व्याप्त, शान्तस्वरूप, निर्मल, समस्त लक्षणोंसे युक्त, महान् योगी, अव्यक्तस्वरूप एवं पाप नाश करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ। मैं निरञ्जन, निराकार, गुणोंसे रहित, निर्मलपदस्वरूप, पाप हरण करनेवालेको नमस्कार करता हूँ तथा शरणागतकी रक्षा करनेवालेकी शरणमें जाता हूँ। महर्षि अगस्त्यने इस परम पवित्र पुरातन स्तोत्रको कहा था। इसके कथन, स्मरण तथा श्रवण करनेसे अनेक पापोंका विनाश हो जाता है और मनुष्य धन्य एवं यशस्वी हो जाता है॥ २५—२९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सतासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८७॥

अट्ठासीवाँ अध्याय

बलिका कुरुक्षेत्रमें आना, वहाँके मुनियोंका पलायन, वामनका आविर्भाव, उनकी स्तुति, बलिके यज्ञमें जानेकी उत्कण्ठा और भरद्वाजसे स्वस्थानका कथन

पुलस्त्य उवाच

गतेऽथ तीर्थयात्रायां प्रह्लादे दानवेश्वरे।
कुरुक्षेत्रं समभ्यागाद् यष्टुं वैरोचनो बलिः॥ १

तस्मिन् महाधर्मयुते तीर्थे ब्राह्मणपुङ्गवः।
शुक्रो द्विजातिप्रवरानामन्त्रयत भार्गवान्॥ २

भृगूनामन्त्र्यमाणान् वै श्रुत्वात्रेयाः सगौतमाः।
कौशिकाङ्गिरसश्चैव तत्यजुः कुरुजाङ्गलान्॥ ३

उत्तराशां प्रजग्मुस्ते नदीमनु शतद्रुकाम्।
शातद्रवे जले स्नात्वा विपाशां प्रययुस्ततः॥ ४

विज्ञाय तत्राप्यरतिं स्नात्वाऽर्च्य पितृदेवताः।
प्रजग्मुः किरणां पुण्यां दिनेशकिरणच्युताम्॥ ५

पुलस्त्यजी बोले—दानवेश्वर प्रह्लादके तीर्थयात्राके लिये चले जानेपर विरोचनका पुत्र बलि कुरुक्षेत्रमें यज्ञ करनेके लिये गया। उस महान् धर्मयुक्त तीर्थमें ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्राचार्यने द्विजोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ भार्गवोंको आमन्त्रित किया। भृगुवंशीय ब्राह्मणोंका आमन्त्रित किया जाना सुनकर अत्रि, गौतम, कौशिक और अङ्गिरागोत्रीय ब्राह्मणोंने कुरुजाङ्गलका त्याग कर दिया। वे उत्तर दिशामें शतद्रु नदीके तटपर गये। शतद्रुके जलमें स्नान करनेके बाद वे वहाँसे विपाशा नदीके निकट चले गये। वहाँ भी मनके अनुकूल न होनेके कारण वे सब स्नान करनेके पश्चात् पितरों एवं देवोंका पूजन कर सूर्यकी किरणोंसे उत्पन्न किरणा नदीके समीप गये।

तस्यां स्नात्वाऽर्च्य देवर्षे सर्व एव महर्षयः।
ऐरावतीं सुपुण्योदां स्नात्वा जग्मुरथेश्वरीम्॥ ६

देविकाया जले स्नात्वा पयोष्ण्यां चैव तापसाः।
अवतीर्णा मुने स्नातुमात्रेयाद्याः शुभां नदीम्॥ ७

ततो निमग्ना ददृशुः प्रतिबिम्बमथात्मनः।
अन्तर्जले द्विजश्रेष्ठ महदाश्चर्यकारकम्॥ ८

उन्मज्जने च ददृशुः पुनर्विस्मितमानसाः।
ततः स्नात्वा समुत्तीर्णा ऋषयः सर्व एव हि॥ ९

जग्मुस्ततोऽपि ते ब्रह्मन् कथयन्तः परस्परम्।
चिन्तयन्तश्च सततं किमेतदिति विस्मिताः॥ १०

ततो दूरादपश्यन्त वनषण्डं सुविस्तृतम्।
वनं हरगलश्यामं खगध्वनिनिनादितम्॥ ११

अतितुङ्गतया व्योम आवृण्वानं नगोत्तमम्।
विस्तृताभिर्जटाभिस्तु अन्तर्भूमिं च नारद॥ १२

काननं पुष्पितैर्वृक्षैरतिभाति समन्ततः।
दशार्द्धवर्णैः सुखदैर्नभस्तारागणैरिव॥ १३

तं दृष्ट्वा कमलैर्व्याप्तं पुण्डरीकैश्च शोभितम्।
तद्वत् कोकनदैर्व्याप्तं वनं पद्मवनं यथा॥ १४

प्रजग्मुस्तुष्टिमतुलां ते ह्लादं परमं ययुः।
विविशुः प्रीतमनसो हंसा इव महासरः॥ १५

तन्मध्ये ददृशुः पुण्यमाश्रमं लोकपूजितम्।
चतुर्णां लोकपालानां वर्गाणां मुनिसत्तम॥ १६

धर्माश्रमं प्राङ्मुखं तु पलाशविटपावृतम्।
प्रतीच्यभिमुखं ब्रह्मन् अर्थस्येक्षुवनावृतम्॥ १७

दक्षिणाभिमुखं काम्यं रम्भाशोकवनावृतम्।
उदङ्मुखं च मोक्षस्य शुद्धस्फटिकवर्चसम्॥ १८

देवर्षे! उसमें स्नान और अर्चन करनेके बाद सभी महर्षि पवित्र जलवाली ऐरावती नदीके निकट गये तथा उसमें स्नान करके ईश्वरी नदीके तटपर चले गये। मुने! देविका और पयोष्णीमें स्नान करके आत्रेय आदि तपस्वियोंने शुभा नामकी नदीमें स्नान करनेके लिये प्रवेश किया। द्विजश्रेष्ठ! जलमें गोता लगानेपर उन लोगोंने जलके भीतर महान् आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली अपनी-अपनी परछाईं देखी॥ १—८॥

महर्षियोंने डुबकी लगानेके बाद जब सिर ऊपर किया, तब पुनः वैसा ही देखा; इससे वे आश्चर्यमें भर गये। उसके बाद स्नान करके सभी ऋषि बाहर निकले। ब्रह्मन्! उसके पश्चात् वे सभी लोग यह क्या है?—इस विषयमें आश्चर्यपूर्वक आपसमें बातचीत एवं विचार-विमर्श करते हुए वहाँसे भी चले गये। उसके बाद उन लोगोंने दूरसे ही अतिविस्तृत, शंकरके कण्ठकी भाँति श्यामवर्णवाले और पक्षियोंकी ध्वनिसे भरा एक वृक्षोंका समूह (वन) देखा। नारदजी! वह वन अत्यन्त ऊँचा होनेके कारण आकाशको घेरे हुए था तथा उसकी नीचेकी भूमि बिखरे हुए फूलोंसे ढकी रहती थी। वह वन तारागणोंसे जगमगाते हुए आकाशके समान खिले हुए पँचरंगे वृक्षोंसे बहुत सुन्दर लग रहा था। कमल-वनके समान कमलोंसे व्याप्त, पुण्डरीकोंसे विभूषित एवं कोकनदोंसे भरे उस वनको देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न एवं गद्‌गद हो गये। वे लोग संतुष्ट-चित्तसे उसमें इस प्रकार प्रविष्ट हुए, जिस प्रकार हंस महासरोवरमें प्रवेश करते हैं। मुनिसत्तम! उन लोगोंने उसके बीचमें लोकपालोंके चार वर्गों (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष)-का लोकपूजित पवित्र आश्रम देखा॥ ९—१६॥

ब्रह्मन्! पूर्व दिशाकी ओर मुखवाला पलाशवृक्षसे घिरा हुआ धर्माश्रम, पश्चिममुख इक्षुवनसे घिरा हुआ अर्थाश्रम, दक्षिणकी ओर कदली और अशोकके वनसे घिरा हुआ कामाश्रम तथा उत्तरकी ओर शुद्धस्फटिकके समान तेजस्वी मोक्षाश्रम स्थित था।

कृतान्ते त्वाश्रमी मोक्षः कामस्त्रेतान्तरे श्रमी।
आश्रम्यर्थो द्वापरान्ते तिष्यादौ धर्म आश्रमी॥ १९

तान्याश्रमाणि मुनयो दृष्ट्वात्रेयादयोऽव्ययाः।
तत्रैव च रतिं चक्रुरखण्डे सलिलाप्लुते॥ २०

धर्माद्यैर्भगवान् विष्णुरखण्ड इति विश्रुतः।
चतुर्मूर्तिर्जगन्नाथः पूर्वमेव प्रतिष्ठितः॥ २१

तमर्चयन्ति ऋषयो योगात्मानो बहुश्रुताः।
शुश्रूषयाऽथ तपसा ब्रह्मचर्येण नारद॥ २२

एवं ते न्यवसंस्तत्र समेता मुनयो वने।
असुरेभ्यस्तदा भीताः स्वाश्रित्याखण्डपर्वतम्॥ २३

तथाऽन्ये ब्राह्मणा ब्रह्मन् अश्मकुट्टा मरीचिपाः।
स्नात्वा जले हि कालिन्द्याः प्रजग्मुर्दक्षिणामुखाः॥ २४

अवन्तिविषयं प्राप्य विष्णुमासाद्य संस्थिताः।
विष्णोरपि प्रसादेन दुष्प्रवेशं महासुरैः॥ २५

बालखिल्यादयो जग्मुरवशा दानवाद् भयात्।
रुद्रकोटिं समाश्रित्य स्थितास्ते ब्रह्मचारिणः॥ २६

एवं गतेषु विप्रेषु गौतमाङ्गिरसादिषु।
शुक्रस्तु भार्गवान् सर्वान् निन्ये यज्ञविधौ मुने॥ २७
अधिष्ठिते भार्गवैस्तु महायज्ञेऽमितद्युते।
यज्ञदीक्षां बलेः शुक्रश्चकार विधिना स्वयम्॥ २८
श्वेताम्बरधरो दैत्यः श्वेतमाल्यानुलेपनः।
मृगाजिनावृतः पृष्ठे बर्हिपत्रविचित्रितः॥ २९
समास्ते वितते यज्ञे सदस्यैरभिसंवृतः।
हयग्रीवप्रलम्बाद्यैर्मयबाणपुरोगमैः॥ ३०
पत्नी विन्ध्यावली चास्य दीक्षिता यज्ञकर्मणि।
ललनानां सहस्रस्य प्रधाना ऋषिकन्यका॥ ३१
शुक्रेणाश्वः श्वेतवर्णो मधुमासे सुलक्षणः।
महीं विहर्तुमुत्सृष्टस्तारकाक्षोऽन्वगाच्च तम्॥ ३२

सत्ययुगके अन्तमें मोक्ष अपने आश्रममें निवास करने लगता है, त्रेतामें काम आश्रमवासी हो जाता है, द्वापरके अन्तमें अर्थ आश्रमी बन जाता है और कलिके आदिमें धर्म आश्रममें रहना प्रारम्भ करता है। अव्यय, आत्रेय आदि मुनियोंने उन आश्रमोंको देखकर अखण्ड जलसे परिपूर्ण उस स्थानमें सुखसे रहनेका निश्चय किया। धर्म आदिके द्वारा भगवान् विष्णु अखण्ड नामसे विख्यात हैं। जगन्नाथ चार मूर्तियोंवाले हैं, यह पहलेसे ही निश्चित है। नारदजी! बहुश्रुत योगात्मा ऋषिलोग सेवा, तप और ब्रह्मचर्यके द्वारा उनकी पूजा करते हैं। असुरोंसे त्रस्त होकर वे मुनिगण सम्मिलितरूपसे उस अखण्ड पर्वतका भलीभाँति आश्रयण कर रहने लगे। ब्रह्मन्! केवल पत्थरसे कूटे हुए अन्नको खानेवाले वानप्रस्थी साधु तथा सूर्यकी किरणोंका पान करनेवाले अन्य ब्राह्मण आदि कालिन्दीके जलमें स्नान कर दक्षिण दिशाकी ओर चले गये॥ १७—२४॥

वे विष्णुभगवान्की कृपासे महान् असुरोंके कारण प्रवेश पानेमें कठिन अवन्ति नगरीमें पहुँचे और उनके निकट रहने लगे। दानवोंके डरसे विवश होकर बालखिल्य आदि ब्रह्मचारी ऋषि रुद्रकोटि चले गये और वहाँ रहने लगे। मुने! इस प्रकार गौतम और आङ्गिरस आदि ब्राह्मणोंके चले जानेपर शुक्राचार्य सभी भार्गववंशीय ब्राह्मणोंको यज्ञ-कार्यमें ले गये। अमिततेजस्विन्! भार्गव-वंशीय ब्राह्मणोंसे अधिकृत शुक्राचार्यने बलिको महायज्ञमें स्वयं विधिवत् यज्ञकी दीक्षा दी। श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले, श्वेत माल्य एवं अनुलेपनसे युक्त, मृग-चर्मसे आवृत एवं मयूरपुच्छसे सुसज्जित दैत्य बलिने हयग्रीव, प्रलम्ब, मय एवं बाण आदि सदस्योंसे घिरे हुए विस्तृत यज्ञ-मण्डपमें आसन ग्रहण किया। उसकी पत्नी विन्ध्यावली भी यज्ञकर्ममें दीक्षित हुई। वह ऋषि-कन्या हजारों ललनाओंमें प्रधान थी। शुक्राचार्यने चैत्रमासमें सुलक्षण अश्व पृथ्वीपर विचरण करनेके लिये छोड़ा। तारकाक्ष नामका असुर उसके पीछे-पीछे चलने लगा॥ २५—३२॥

एवमश्वे समुत्सृष्टे वितथे यज्ञकर्मणि।
गते च मासत्रितये हूयमाने च पावके॥ ३३

पूज्यमानेषु दैत्येषु मिथुनस्थे दिवाकरे।
सुषुवे देवजननी माधवं वामनाकृतिम्॥ ३४

तं जातमात्रं भगवन्तमीशं
नारायणं लोकपतिं पुराणम्।
ब्रह्मा समभ्येत्य समं महर्षिभिः
स्तोत्रं जगादाथ विभोर्महर्षे॥ ३५

नमोऽस्तु ते माधव सत्त्वमूर्ते
नमोऽस्तु ते शाश्वत विश्वरूप।
नमोऽस्तु ते शत्रुवनेन्धनाग्ने
नमोऽस्तु वै पापमहादवाग्ने॥ ३६

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।
नमस्ते जगदाधार नमस्ते पुरुषोत्तम॥ ३७

नारायण जगन्मूर्ते जगन्नाथ गदाधर।
पीतवासः श्रियःकान्त जनार्दन नमोऽस्तु ते॥ ३८

भवांस्त्राता च गोप्ता च विश्वात्मा सर्वगोऽव्ययः।
सर्वधारी धराधारी रूपधारी नमोऽस्तु ते॥ ३९

वर्धस्व वर्धिताशेषत्रैलोक्य सुरपूजित।
कुरुष्व दैवतपते मघोनोऽश्रुप्रमार्जनम्॥ ४०

त्वं धाता च विधाता च संहर्ता त्वं महेश्वरः।
महालय महायोगिन् योगशायिन् नमोऽस्तु ते॥ ४१

इत्थं स्तुतो जगन्नाथः सर्वात्मा सर्वगो हरिः।
प्रोवाच भगवान् मह्यं कुरूपनयनं विभो॥ ४२

ततश्चकार देवस्य जातकर्मादिकाः क्रियाः।
भरद्वाजो महातेजा बार्हस्पत्यस्तपोधनः॥ ४३

व्रतबन्धं तथेशस्य कृतवान् सर्वशास्त्रवित्।
ततो ददुः प्रीतियुताः सर्व एव वरान् क्रमात्॥ ४४

इस प्रकार उस अश्वके छोड़े जानेपर यज्ञकर्मके चलते हुए अग्निमें हवन करते तीन मास व्यतीत हो जानेपर तथा दैत्योंके पूजित होने और सूर्यके मिथुन-राशिमें सङ्क्रमण करनेपर देवमाता अदितिने वामनके आकारवाले माधवको जन्म दिया। महर्षे! उन भगवान्, ईश, नारायण लोकपति पुराण-पुरुषके अवतार होते ही ब्रह्मा महर्षियोंके साथ उनके निकट गये तथा (उन) विभुकी स्तुति करने लगे। हे माधव! हे सत्त्वमूर्ते! आपको नमस्कार है। हे शाश्वत! हे विश्वरूप! आपको नमस्कार है। शत्रुरूपी वनके ईंधनके लिये हे अग्निस्वरूप! आपको नमस्कार है। पापरूपी वनके लिये हे महादवाग्निस्वरूप! आपको नमस्कार है। हे पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है। हे विश्वकी सृष्टि करनेवाले! आपको नमस्कार है। हे जगत्के आधार! आपको नमस्कार है। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। हे नारायण! हे जगन्मूर्ते! हे जगन्नाथ! हे गदाधर! हे पीताम्बर धारण करनेवाले! हे लक्ष्मीपते! हे जनार्दन! आपको नमस्कार है। आप पालन करनेवाले, रक्षक, विश्वकी आत्मा, सर्वत्र गमन करनेवाले, अविनाशी, सबको धारण करनेवाले, पृथ्वीको धारण करनेवाले तथा रूप धारण करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। हे देवपूजित! हे सारी त्रिलोकीको बढ़ानेवाले! आपका अभ्युदय हो। हे दैवतपते! आप इन्द्रके आँसू पोंछें। आप धाता, विधाता, संहर्ता, महेश्वर, महालय, महायोगी और योगशायी हैं। आपको नमस्कार है॥ ३३—४१॥

इस प्रकारकी स्तुति किये जानेपर सर्वात्मा, सर्वगामी जगन्नाथभगवान् श्रीहरिने कहा—विभो! मेरा उपनयन-संस्कार कीजिये। उसके बाद बृहस्पतिवंशमें उत्पन्न महातेजस्वी तपोधन भरद्वाजने वामनकी जातकर्म आदि सभी क्रियाएँ सम्पन्न करायीं। उसके पश्चात् सभी शास्त्रोंके वेत्ता भरद्वाजने ईश्वरका व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) कराया। उसके बाद अन्य सभीने प्रसन्न होकर वटुकको क्रमशः श्रेष्ठ दान दिये।

यज्ञोपवीतं पुलहस्त्वहं च सितवाससी।
मृगाजिनं कुम्भयोनिर्भरद्वाजस्तु मेखलाम्॥ ४५
पालाशमददद् दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः।
अक्षसूत्रं वारुणिस्तु कौश्यं वेदमथाङ्गिराः॥ ४६
छत्रं प्रादाद् रघू राजा उपानद्युगलं नृगः।
कमण्डलुं बृहत्तेजाः प्रादाद्विष्णोर्बृहस्पतिः॥ ४७
एवं कृतोपनयनो भगवान् भूतभावनः।
संस्तूयमानो ऋषिभिः साङ्गं वेदमधीयत॥ ४८
भरद्वाजादाङ्गिरसात् सामवेदं महाध्वनिम्।
महदाख्यानसंयुक्तं गन्धर्वसहितं मुने॥ ४९
मासेनैकेन भगवान् ज्ञानश्रुतिमहार्णवः।
लोकाचारप्रवृत्त्यर्थमभूच्छ्रुतिविशारदः॥ ५०
सर्वशास्त्रेषु नैपुण्यं गत्वा देवोऽक्षयोऽव्ययः।
प्रोवाच ब्राह्मणश्रेष्ठं भरद्वाजमिदं वचः॥ ५१

पुलहने यज्ञोपवीत, मैं (पुलस्त्य)-ने दो शुक्ल वस्त्र, अगस्त्यने मृगचर्म तथा भरद्वाजने मेखला दी। ब्रह्माके पुत्र मरीचिने पलाशदण्ड, वारुणि (वसिष्ठ)-ने अक्षसूत्र एवं अङ्गिराने रेशमी वस्त्र तथा वेद दिया॥ ४२—४६॥

राजा रघुने छत्र, नृगने एक जोड़ा जूता एवं अत्यन्त तेजस्वी बृहस्पतिने विष्णुको कमण्डलु दिया। इस प्रकार उपनयन-संस्कार हो जानेपर ऋषियोंसे संस्तुत होते हुए भगवान् भूतभावनने (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष—इन) अङ्गोंके साथ चारों वेदोंका अध्ययन किया। मुने! उन्होंने आङ्गिरस भरद्वाजसे गन्धर्वविद्याके साथ महान् आख्यानोंसे पूर्ण महाध्वन्यात्मक सामवेदका अध्ययन किया। इस प्रकार ज्ञानस्वरूप वेदके अगाध समुद्र भगवान् एक मासमें लोकाचारके व्यवहारके लिये वेदविशारद हो गये। समस्त शास्त्रोंमें निपुण होकर अक्षय, अव्यय वामनने ब्राह्मणश्रेष्ठ भरद्वाजजीसे यह वचन कहा—॥ ४७—५१॥

श्रीवामन उवाच

ब्रह्मन् व्रजामि देह्याज्ञां कुरुक्षेत्रं महोदयम्।
तत्र दैत्यपतेः पुण्यो हयमेधः प्रवर्तते॥ ५२
समाविष्टानि पश्यस्व तेजांसि पृथिवीतले।
ये संनिधानाः सततं मदंशाः पुण्यवर्धनाः।
तेनाहं प्रतिजानामि कुरुक्षेत्रं गतो बलिः॥ ५३

श्रीवामनजीने कहा—ब्रह्मन्! मैं अत्यन्त उत्तम कुरुक्षेत्रतीर्थमें जाना चाहता हूँ। आप आज्ञा दीजिये। वहाँ दैत्यराज बलिका पवित्र अश्वमेधयज्ञ हो रहा है। देखिये, पृथ्वीतलपर पुण्यकी वृद्धि करनेवाले मेरे स्थानोंमें तेजोंका समावेश हो रहा है। अतः मुझे यह मालूम हो रहा है कि बलि कुरुक्षेत्रमें स्थित हैं॥ ५२-५३॥

भरद्वाज उवाच

स्वेच्छया तिष्ठ वा गच्छ नाहमाज्ञापयामि ते।
गमिष्यामो वयं विष्णो बलेरध्वरं मा खिद॥ ५४
यद् भवन्तमहं देव परिपृच्छामि तद् वद।
केषु केषु विभो नित्यं स्थानेषु पुरुषोत्तम।
सान्निध्यं भवतो ब्रूहि ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ५५

भरद्वाजजीने कहा—आप अपनी इच्छासे यहाँ रहें अथवा जायँ। मैं आपको आदेश नहीं दूँगा। विष्णो! हमलोग बलिके यज्ञमें जायँगे। आप चिन्ता न करें। देव! मैं आपसे जो पूछता हूँ उसे आप बतलायें। विभो! पुरुषोत्तम! मैं यथार्थरूपसे यह जानना चाहता हूँ कि आप किन-किन स्थानोंमें रहते हैं॥ ५४-५५॥

वामन उवाच

श्रूयतां कथयिष्यामि येषु येषु गुरो अहम्।
निवसामि सुपुण्येषु स्थानेषु बहुरूपवान्॥ ५६

श्रीवामनजी बोले—गुरो! अनेक रूपोंसे युक्त होकर जिन-जिन पवित्र स्थानोंमें मैं रहता हूँ, उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ; उसे आप सुनें।

ममावतारैर्वसुधा नभस्तलं
पातालमम्भोनिधयो दिवं च।
दिशः समस्ता गिरयोऽम्बुदाश्च
व्याप्ता भरद्वाज ममानुरूपैः॥ ५७

ये दिव्या ये च भौमा
जलगगनचराः स्थावरा जङ्गमाश्च
सेन्द्राः सार्काः सचन्द्रा
यमवसुवरुणा ह्यग्नयः सर्वपालाः।
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ता द्विजखगसहिता
मूर्तिमन्तो ह्यमूर्ता-
स्ते सर्वे मत्प्रसूता बहुविविधगुणाः
पूरणार्थं पृथिव्याः॥ ५८

एते हि मुख्याः सुरसिद्धदानवैः
पूज्यास्तथा संनिहिता महीतले।
यैर्दृष्टमात्रैः सहसैव नाशं
प्रयाति पापं द्विजवर्य कीर्तनैः॥ ५९

भरद्वाजजी! मेरे अनुरूप मेरे अवतारोंसे पृथ्वी, आकाश, पाताल, समुद्र, स्वर्ग, सभी दिशाएँ, पर्वत तथा मेघ व्याप्त हैं। ब्रह्मन्! दिव्य, पार्थिव, जलचर, आकाशचर, स्थावर, जङ्गम, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, वसु, वरुण, सभी अग्नियाँ, समस्त प्राणियोंके पालक, ब्रह्मासे लेकर स्थावरतक पशु-पक्षिसहित सभी मूर्त और अमूर्त पदार्थ, भाँति-भाँतिके गुणोंसे सम्पन्न—ये सभी पदार्थ पृथ्वीकी पूर्तिके लिये मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं। पृथ्वीपर स्थित ये सभी मुख्य पदार्थ देवों, सिद्धों एवं दानवोंके पूजनीय हैं। द्विजश्रेष्ठ! इनके कीर्तन एवं दर्शनमात्रसे पाप शीघ्र नष्ट हो जाता है॥ ५६—५९॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८८॥

नवासीवाँ अध्याय

वामनभगवान्‌का विविध स्थानोंमें निवास-वर्णन और कुरुजाङ्गलके लिये प्रस्थान करना

श्रीभगवानुवाच

आद्यं मात्स्यं महद्रूपं संस्थितं मानसे ह्रदे।
सर्वपापक्षयकरं कीर्तनस्पर्शनादिभिः॥ १

कौर्ममन्यत्सन्निधानं कौशिक्यां पापनाशनम्।
हयशीर्षं च कृष्णांशे गोविन्दं हस्तिनापुरे॥ २

त्रिविक्रमं च कालिन्द्यां लिङ्गभेदे भवं विभुम्।
केदारे माधवं शौरिं कुब्जाम्रे हृष्टमूर्धजम्॥ ३

श्रीभगवान् बोले—मेरा प्रथम विशाल मत्स्यरूप मानससरोवरमें स्थित है। वह कीर्तन और स्पर्श आदिसे सभी पापोंका विनाश करनेवाला है। दूसरा पापका विनाश करनेवाला मेरा कूर्मावतार कौशिकी नदीमें स्थित है। कृष्णांशमें हयशीर्ष और हस्तिनापुरमें गोविन्द नामसे विराजमान हैं। कालिन्दीमें त्रिविक्रम तथा लिङ्गभेदमें व्यापक भव, केदारतीर्थमें माधव, शौरि और कुब्जाम्रमें हृष्टमूर्धज स्थित हैं।

नारायणं बदर्यां च वाराहे गरुडासनम्।
जयेशं भद्रकर्णे च विपाशायां द्विजप्रियम्॥ ४
रूपधारमिरावत्यां कुरुक्षेत्रे कुरुध्वजम्।
कृतशौचे नृसिंहं च गोकर्णे विश्वकर्मिणम्॥ ५
प्राचीने कामपालं च पुण्डरीकं महाम्भसि।
विशाखयूपे ह्यजितं हंसं हंसपदे तथा॥ ६
पयोष्णायामखण्डं च वितस्तायां कुमारिलम्।
मणिमत्पर्वते शम्भुं ब्रह्मण्ये च प्रजापतिम्॥ ७
मधुनद्यां चक्रधरं शूलबाहुं हिमालये।
विद्धि विष्णुं मुनिश्रेष्ठ स्थितमोषधिसानुनि॥ ८

बदरिकाश्रममें नारायण, वाराहमें गरुडासन, भद्रकर्णमें जयेश एवं विपाशा नदीके तटपर द्विजप्रिय विद्यमान हैं। इरावतीमें रूपधार, कुरुक्षेत्रमें कुरुध्वज, कृतशौचमें नृसिंह और गोकर्णमें विश्वकर्मा वर्तमान हैं। प्राचीन स्थानमें कामपाल, महाम्भस्‌में पुण्डरीक, विशाखयूपमें अजित तथा हंसपदमें हंसरूप विद्यमान हैं। पयोष्णीमें अखण्ड, वितस्तामें कुमारिल, मणिमान् पर्वतपर शम्भु एवं ब्रह्मण्यमें प्रजापति रूप स्थित हैं। मुनिश्रेष्ठ! मधुनदीमें चक्रधर, हिमालयमें शूलबाहु और ओषधिप्रस्थमें मेरे विष्णुरूपको अवस्थित जानें॥ १—८॥

भृगुतुङ्गे सुवर्णाक्षं नैमिषे पीतवाससम्।
गयायां गोपतिं देवं गदापाणिनमीश्वरम्॥ ९
त्रैलोक्यनाथं वरदं गोप्रतारे कुशेशयम्।
अर्द्धनारीश्वरं पुण्ये माहेन्द्रे दक्षिणे गिरौ॥ १०
गोपालमुत्तरे नित्यं महेन्द्रे सोमपीथिनम्।
वैकुण्ठमपि सह्याद्रौ पारियात्रे पराजितम्॥ ११
कशेरुदेशे देवेशं विश्वरूपं तपोधनम्।
मलयाद्रौ च सौगन्धिं विन्ध्यपादे सदाशिवम्॥ १२
अवन्तिविषये विष्णुं निषधेष्वमरेश्वरम्।
पाञ्चालिकं च ब्रह्मर्षे पाञ्चालेषु व्यवस्थितम्॥ १३
महोदये हयग्रीवं प्रयागे योगशायिनम्।
स्वयम्भुवं मधुवने अयोगन्धिं च पुष्करे॥ १४
तथैव विप्रप्रवर वाराणस्यां च केशवम्।
अविमुक्तकमत्रैव लोलश्चात्रैव गीयते॥ १५
पद्मायां पद्मकिरणं समुद्रे वडवामुखम्।
कुमारधारे बाह्लीशं कार्तिकेयं च बर्हिणम्॥ १६

भृगुतुङ्गमें सुवर्णाक्ष, नैमिषमें पीतवासा एवं गयामें गोपति गदाधर ईश्वररूपसे वर्तमान हैं। गोप्रतारमें वरदायक, तीनों लोकोंके स्वामी कुशेशय एवं पवित्र महेन्द्र-पर्वतपर दक्षिणमें अर्धनारीश्वर रूप विद्यमान है। महेन्द्र-पर्वतपर, उत्तरमें सोमपीथी गोपाल, सह्याद्रिपर्वतपर वैकुण्ठ एवं पारियात्रमें अपराजितरूप स्थित है। कशेरुदेशमें तपोधन, विश्वरूप देवेश, मलयपर्वतपर सौगन्धि तथा विन्ध्यपादमें सदाशिव रूप वर्तमान है। ब्रह्मर्षे! अवन्तिदेशमें विष्णु, निषधदेशमें अमरेश्वर और पाञ्चालदेशमें मेरा पाञ्चालिक रूप अवस्थित है। महोदयमें हयग्रीव, प्रयागमें योगशायी, मधुवनमें स्वयम्भुव और पुष्करमें अयोगन्धि रूप विद्यमान है। विप्रश्रेष्ठ! उसी प्रकार वाराणसीमें मेरा केशवरूप तथा यहींपर अविमुक्तक तथा लोलरूप स्थित कहा गया है। पद्मामें पद्मकिरण, समुद्रमें वडवामुख तथा कुमारधारमें बाह्लीश, वर्ही और कार्तिकेयरूपसे स्थित हैं॥ ९—१६॥

अजेशे शम्भुमनघं स्थाणुं च कुरुजाङ्गले।
वनमालिनमाहुर्मां किष्किन्धावासिनो जनाः॥ १७
वीरं कुवलयारूढं शङ्खचक्रगदाधरम्।
श्रीवत्साङ्कमुदाराङ्गं नर्मदायां श्रियः पतिम्॥ १८
माहिष्मत्यां त्रिनयनं तत्रैव च हुताशनम्।
अर्बुदे च त्रिसौपर्णं क्ष्माधरं शूकराचले॥ १९
त्रिणाचिकेतं ब्रह्मर्षे प्रभासे च कपर्दिनम्।
तथैवात्रापि विख्यातं तृतीयं शशिशेखरम्॥ २०

अजेशमें अनघ शम्भु तथा कुरुजाङ्गलमें स्थाणुमूर्ति हैं। किष्किन्धाके निवासी लोग मुझे वनमाली कहते हैं। नर्मदाके क्षेत्रमें मुझे वीर, कुवलयारूढ, शङ्ख-चक्र-गदाधर, श्रीवत्साङ्क एवं उदाराङ्ग श्रीपति कहा जाता है। माहिष्मतीमें मेरा त्रिनयन एवं हुताशन रूप विद्यमान हैं। इसी प्रकार अर्बुदमें त्रिसौपर्ण एवं शूकराचलमें मेरा क्ष्माधर रूप अवस्थित है। ब्रह्मर्षे! प्रभासमें मेरा त्रिणाचिकेत, कपर्दी और तृतीय शशिशेखर रूप विख्यात है।

उदये शशिनं सूर्यं ध्रुवं च त्रितयं स्थितम्।
हेमकूटे हिरण्याक्षं स्कन्दं शरवणे मुने॥ २१
महालये स्मृतं रुद्रमुत्तरेषु कुरुष्वथ।
पद्मनाभं मुनिश्रेष्ठ सर्वसौख्यप्रदायकम्॥ २२
सप्तगोदावरे ब्रह्मन् विख्यातं हाटकेश्वरम्।
तत्रैव च महाहंसं प्रयागेऽपि वटेश्वरम्॥ २३
शोणे च रुक्मकवचं कुण्डिने घ्राणतर्पणम्।
भिल्लीवने महायोगं माद्रेषु पुरुषोत्तमम्॥ २४

उदयगिरिमें चन्द्र, सूर्य और ध्रुव—ये तीन मूर्तियाँ अवस्थित हैं। मुने! हेमकूटमें हिरण्याक्ष एवं शरवणमें स्कन्द नामक रूप विद्यमान है। मुनिश्रेष्ठ! महालयमें रुद्र एवं उत्तरकुरुमें हर प्रकारका सुख प्रदान करनेवाला पद्मनाभ रूप विख्यात है। ब्रह्मन्! सप्तगोदावरमें हाटकेश्वर एवं महाहंस तथा प्रयागमें वटेश्वर रूप अवस्थित है। शोणमें रुक्मकवच, कुण्डिनमें घ्राणतर्पण, भिल्लीवनमें महायोग, माद्रमें पुरुषोत्तम रूप विद्यमान है॥ १७—२४॥

प्लक्षावतरणे विश्वं श्रीनिवासं द्विजोत्तम।
शूर्पारके चतुर्बाहुं मगधायां सुधापतिम्॥ २५
गिरिव्रजे पशुपतिं श्रीकण्ठं यमुनातटे।
वनस्पतिं समाख्यातं दण्डकारण्यवासिनम्॥ २६
कालिञ्जरे नीलकण्ठं सरय्वां शम्भुमुत्तमम्।
हंसयुक्तं महाकोश्यां सर्वपापप्रणाशनम्॥ २७
गोकर्णे दक्षिणे शर्वं वासुदेवं प्रजामुखे।
विन्ध्यशृङ्गे महाशौरिं कन्थायां मधुसूदनम्॥ २८
त्रिकूटशिखरे ब्रह्मन् चक्रपाणिनमीश्वरम्।
लौहदण्डे हृषीकेशं कोसलायां मनोहरम्॥ २९
महाबाहुं सुराष्ट्रे च नवराष्ट्रे यशोधरम्।
भूधरं देविकानद्यां महोदायां कुशप्रियम्॥ ३०
गोमत्यां छादितगदं शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम्।
सुनेत्रं सैन्धवारण्ये शूरं शूरपुरे स्थितम्॥ ३१
रुद्राख्यं च हिरण्वत्यां वीरभद्रं त्रिविष्टपे।
शङ्कुकर्णं च भीमायां भीमं शालवने विदुः॥ ३२

द्विजोत्तम! प्लक्षावतरणमें विश्वात्मक श्रीनिवास, शूर्पारकमें चतुर्बाहु एवं मगधामें सुधापति रूप स्थित हैं। गिरिव्रजमें पशुपति, यमुनातटपर श्रीकण्ठ एवं दण्डकारण्यमें मेरा वनस्पति रूप विख्यात है। कालिञ्जरमें नीलकण्ठ, सरयूमें उत्तम शम्भु और महाकोशीमें सभी पापोंका विनाश करनेवाला हंसयुक्त रूप स्थित है। दक्षिण गोकर्णमें शर्व, प्रजामुखमें वासुदेव, विन्ध्यपर्वतके शिखरमें महाशौरि और कन्थामें मधुसूदन रूप विद्यमान है। ब्रह्मन्! त्रिकूटपर्वतकी ऊँची चोटीपर चक्रपाणि ईश्वर, लौहदण्डमें हृषीकेश तथा कोसलामें मनोहर रूप वर्तमान हैं। सुराष्ट्रमें महाबाहु, नवराष्ट्रमें यशोधर, देविका नदीमें भूधर तथा महोदामें कुशप्रिय रूप स्थित है। गोमतीमें छादितगद, शङ्खोद्धारमें शङ्खी, सैन्धवारण्यमें सुनेत्र एवं शूरपुरमें शूररूप विद्यमान है। हिरण्वतीमें रुद्र, त्रिविष्टपमें वीरभद्र, भीमामें शङ्कुकर्ण और शालवनमें भीम नामक रूपको लोग जानते हैं॥ २५—३२॥

विश्वामित्रं च गदितं कैलासे वृषभध्वजम्।
महेशं महिलाशैले कामरूपे शशिप्रभम्॥ ३३
बलभ्यामपि गोमित्रं कटाहे पङ्कजप्रियम्।
उपेन्द्रं सिंहलद्वीपे शक्राह्वे कुन्दमालिनम्॥ ३४
रसातले च विख्यातं सहस्रशिरसं मुने।
कालाग्निरुद्रं तत्रैव तथाऽन्यं कृत्तिवाससम्॥ ३५
सुतले कूर्ममचलं वितले पङ्कजासनम्।
महातले गुरो ख्यातं देवेशं छागलेश्वरम्॥ ३६
तले सहस्रचरणं सहस्रभुजमीश्वरम्।
सहस्राक्षं परिख्यातं मुसलाकृष्टदानवम्॥ ३७

कैलासमें वृषभध्वज और विश्वामित्र, महिलाशैलमें महेश और कामरूपमें शशिप्रभ रूप वर्तमान हैं। बलभीमें गोमित्र, कटाहमें पङ्कजप्रिय, सिंहलद्वीपमें उपेन्द्र एवं शक्राह्वमें कुन्दमाली नामक रूप स्थित है। मुने! रसातलमें विख्यात सहस्रशीर्षा एवं कालाग्नि-रुद्र तथा कृत्तिवासा नामक रूप विद्यमान हैं। गुरो! सुतलमें अचल कूर्म, वितलमें पङ्कजासन तथा महातलमें छागलेश्वर नामक विख्यात देवेशरूप स्थित है। तलमें सहस्रचरण, सहस्रबाहु एवं मुसलसे दानवको आकृष्ट करनेवाला मेरा सहस्राक्ष-

पाताले योगिनामीशं स्थितं च हरिशङ्करम्।
धरातले कोकनदं मेदिन्यां चक्रपाणिनम्॥ ३८

भुवर्लोके च गरुडं स्वर्लोके विष्णुमव्ययम्।
महर्ल्लोके तथाऽगस्त्यं कपिलं च जने स्थितम्॥ ३९

तपोलोकेऽखिलं ब्रह्मन् वाङ्मयं सत्यसंयुतम्।
ब्रह्माणं ब्रह्मलोके च सप्तमे वै प्रतिष्ठितम्॥ ४०

सनातनं तथा शैवे परं ब्रह्म च वैष्णवे।
अप्रतर्क्यं निरालम्बे निराकाशे तपोमयम्॥ ४१

जम्बूद्वीपे चतुर्बाहुं कुशद्वीपे कुशेशयम्।
प्लक्षद्वीपे मुनिश्रेष्ठ ख्यातं गरुडवाहनम्॥ ४२

पद्मनाभं तथा क्रौञ्चे शाल्मले वृषभध्वजम्।
सहस्रांशुः स्थितः शाके धर्मराट् पुष्करे स्थितः॥ ४३

तथा पृथिव्यां ब्रह्मर्षे शालग्रामे स्थितोऽस्म्यहम्।
सजलस्थलपर्यन्तं चरेषु स्थावरेषु च॥ ४४

एतानि पुण्यानि ममालयानि
ब्रह्मन् पुराणानि सनातनानि।
धर्मप्रदानीह महौजसानि
संकीर्तनीयान्यघनाशनानि॥ ४५

संकीर्तनात् स्मरणाद् दर्शनाच्च
संस्पर्शनादेव च देवतायाः।
धर्मार्थकामाद्यपवर्गमेव
लभन्ति देवा मनुजाः ससाध्याः॥ ४६

एतानि तुभ्यं विनिवेदितानि
ममालयानीह तपोमयानि।
उत्तिष्ठ गच्छामि महासुरस्य
यज्ञं सुराणां हि हिताय विप्र॥ ४७

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा वचनं महर्षे
विष्णुर्भरद्वाजमृषिं महात्मा।
विलासलीलागमनो गिरीन्द्रात्
स चाभ्यगच्छत् कुरुजाङ्गलं हि॥ ४८

रूप अवस्थित है। पातालमें योगीश हरिशङ्कर, धरातलपर कोकनद तथा मेदिनीमें चक्रपाणिरूप वर्तमान है। भुवर्लोकमें गरुड, स्वर्लोकमें अव्यय विष्णु, महर्लोकमें अगस्त्य तथा जनलोकमें कपिल नामक रूप विद्यमान है। ब्रह्मन्! तपोलोकमें सत्यसे संयुक्त अखिल वाङ्मय एवं सप्तम ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा नामक रूप प्रतिष्ठित है॥ ३३—४०॥

शिवलोकमें सनातन, विष्णुलोकमें परम ब्रह्म, निरालम्बमें अप्रतर्क्य और निराकाशमें तपोमय नामक रूप स्थित है। मुनिश्रेष्ठ! जम्बूद्वीपमें चतुर्बाहु, कुशद्वीपमें कुशेशय और प्लक्षद्वीपमें गरुडवाहन नामसे विख्यात रूप वर्तमान है। क्रौञ्चद्वीपमें पद्मनाभ, शाल्मलद्वीपमें वृषभध्वज, शाकद्वीपमें सहस्रांशु तथा पुष्करद्वीपमें धर्मराज नामक रूप विद्यमान हैं। ब्रह्मर्षे! इसी प्रकार पृथ्वीमें मैं शालग्रामके भीतर अवस्थित हूँ। इस प्रकार जलसे लेकर स्थलपर्यन्त समस्त चराचरमें मैं वर्तमान हूँ। ब्रह्मन्! ये ही मेरे पुण्य, पुरातन एवं सनातन धर्मप्रद, अत्यन्त ओजस्वी, सङ्कीर्तनके योग्य एवं अघोंके नाश करनेवाले निवास-स्थान हैं। देव, मनुष्य और साध्यलोग देवताके कीर्तन, स्मरण, दर्शन और स्पर्श करनेसे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करते हैं। विप्र! मैंने आपसे अपने इन तपोमय स्थानोंको कह दिया। हे विप्र! अब आप उठिये; देवताओंका हित-साधन करनेके लिये मैं बलिके यज्ञमें जाता हूँ॥ ४१—४७॥

पुलस्त्यजी बोले—महर्षे! महात्मा विष्णु महर्षि भरद्वाजसे इस प्रकारका वचन कहकर मनोहर चालसे चलते हुए गिरीन्द्रसे कुरुजाङ्गलमें पहुँचे॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें नवासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८९॥

नब्बेवाँ अध्याय

भगवान् वामनके आगमनसे पृथ्वीकी क्षुब्धता, बलि और शुक्रके संवाद-प्रसङ्गमें कोशकारकी कथा

पुलस्त्य उवाच

ततः समागच्छति वासुदेवे
महीं चकम्पे गिरयश्च चेलुः।
क्षुब्धाः समुद्रा दिवि ऋक्षमण्डलो
बभौ विपर्यस्तगतिर्महर्षे॥ १

यज्ञः समागात् परमाकुलत्वं
न वेद्मि किं मे मधुहा करिष्यति।
यथा प्रदग्धोऽस्मि महेश्वरेण
किं मां न संधक्ष्यति वासुदेवः॥ २

ऋक्साममन्त्राहुतिभिर्हुताभि-
र्वितानकीयान् ज्वलनास्तु भागान्।
भक्त्या द्विजेन्द्रैरपि सम्प्रपादितान्
नैव प्रतीच्छन्ति विभोर्भयेन॥ ३

तान् दृष्ट्वा घोररूपांस्तु उत्पातान् दानवेश्वरः।
पप्रच्छोशनसं शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥ ४

किमर्थमाचार्य मही सशैला
रम्भेव वाताभिहता चचाल।
किमासुरीयान् सुहुतानपीह
भागान् न गृह्णन्ति हुताशनाश्च॥ ५

क्षुब्धाः किमर्थं मकरालयाश्च भो
ऋक्षा न खे किं प्रचरन्ति पूर्ववत्।
दिशः किमर्थं तमसा परिप्लुता
दोषेण कस्याद्य वदस्व मे गुरो॥ ६

पुलस्त्य उवाच

शुक्रस्तद् वाक्यमाकर्ण्य विरोचनसुतेरितम्।
अथ ज्ञात्वा कारणं च बलिं वचनमब्रवीत्॥ ७

पुलस्त्यजी बोले—महर्षे! उसके बाद वामनका रूप धारण करनेवाले वासुदेवके आनेपर पृथ्वी काँपने लगी, पर्वत अपने स्थानसे डिग गये, समुद्रमें जोरसे लहरें उठने लगीं और आकाशमें तारासमूहकी गति अव्यवस्थित हो गयी। यज्ञ भी अत्यन्त व्याकुल हो गया और सोचने लगा—न जाने मधुसूदन भगवान् वासुदेव आकर मेरी क्या गति करेंगे? जैसे महेश्वरने मुझे दग्ध कर दिया था, क्या वासुदेव भी मुझे वैसे ही दग्ध (ध्वस्त) तो नहीं कर देंगे? अग्नि विष्णुके भयसे श्रेष्ठ द्विजोंके द्वारा श्रद्धापूर्वक ऋग्वेद एवं सामवेदके मन्त्रोंकी आहुतियोंसे हवन किये गये यज्ञीय भागोंको ग्रहण नहीं कर रहे थे। उन घोर उत्पातोंको देखकर दानवेश्वर (बलि)-ने उशना शुक्राचार्यको प्रणाम किया तथा हाथ जोड़कर उनसे पूछा—आचार्यजी! पर्वतोंके साथ पृथ्वी वायुके झोंकेसे केलेके वृक्षके समान क्यों काँप रही है और अग्निदेव भी विधिपूर्वक हवन किये गये आसुरीय भागोंको क्यों नहीं स्वीकार कर रहे हैं? समुद्रमें भयंकर लहरें क्यों उठ रही हैं? आकाशमें नक्षत्र पहलेकी भाँति क्यों नहीं सुव्यवस्थित रूपसे स्थित हैं और दिशाएँ क्यों अन्धकारसे भर गयी हैं? गुरो! मुझे आप कृपया यह बतलायें कि किसके अपराधसे यह सब हो रहा है?॥ १—६॥

पुलस्त्यजी बोले—विरोचनपुत्रके द्वारा कहे गये उस वाक्यको सुननेके बाद पूछे गये प्रश्नके कारणको जानकर शुक्राचार्यने बलिसे कहा—॥ ७॥

शुक्र उवाच

शृणुष्व दैत्येश्वर येन भागान्
नामी प्रतीच्छन्ति हि आसुरीयान्।
हुताशना मन्त्रहुतानपीह
नूनं समागच्छति वासुदेवः॥ ८
तदङ्घ्रिविक्षेपमपारयन्ती
मही सशैला चलिता दितीश।
तस्यां चलत्यां मकरालयामी
उद्वृत्तवेला दितिजाद्य जाताः॥ ९

पुलस्त्य उवाच

शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा बलिर्भार्गवमब्रवीत्।
धर्म्यं सत्यं च पथ्यं च सर्वोत्साहसमीरितम्॥ १०

बलिरुवाच

आयाते वासुदेवे वद मम
भगवन् धर्मकामार्थतत्त्वं
किं कार्यं किं च देयं मणिकनक-
मथो भूगजाश्वादिकं वा।
किं वा वाच्यं मुरारेर्निजहित-
मथवा तद्धितं वा प्रयुञ्जे
तथ्यं पथ्यं प्रियं भो मम वद
शुभदं तत्करिष्ये न चान्यत्॥ ११

पुलस्त्य उवाच

तद्वाक्यं भार्गवः श्रुत्वा दैत्यनाथेरितं वरम्।
विचिन्त्य नारद प्राह भूतभव्यविदीश्वरः॥ १२
त्वया कृता यज्ञभुजोऽसुरेन्द्रा
बहिष्कृता ये श्रुतिदृष्टमार्गे।
श्रुतिप्रमाणं मखभोजिनो बहिः
सुरास्तदर्थं हरिरभ्युपैति॥ १३
तस्याध्वरं दैत्यसमागतस्य
कार्यं हि किं मां परिपृच्छसे यत्।
कार्यं न देयं हि विभो तृणाग्रं
यदध्वरे भूकनकादिकं वा॥ १४

शुक्राचार्यने कहा—दैत्येश्वर! सुनो। निश्चय ही वासुदेव आ रहे हैं। इसीलिये अग्निदेव मन्त्रके द्वारा आहुति देनेपर भी आसुरीय भागोंको नहीं ग्रहण कर रहे हैं। दितीश! उनके चरण रखनेके भारको सहन न कर सकनेके कारण पर्वतोंसहित पृथ्वी काँप रही है। दितिज! पृथ्वीके कम्पनसे ये समुद्र आज तटका उल्लङ्घन कर गये हैं॥ ८-९॥

पुलस्त्यजी बोले—शुक्राचार्यका वचन सुनकर बलिने उनसे धर्मसे युक्त, सत्य, कल्याणप्रद और सभी प्रकारके उत्साहसे भरा वचन कहा॥ १०॥

बलिने कहा—भगवन्! वासुदेवके आनेपर मेरे करने योग्य धर्म, काम एवं अर्थके तत्त्वको बतलायें। मैं उन्हें मणि, स्वर्ण, पृथ्वी, हाथी अथवा अश्वमेंसे क्या दान करूँ? मैं मुरारिसे क्या कहूँ? अपना अथवा उनका क्या कल्याण सिद्ध करूँ? आप मुझे कल्याणकारी, मङ्गलमय तथा प्रिय तथ्य बतलायें। मैं वही करूँगा, अन्य कुछ नहीं करूँगा॥ ११॥

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी! दैत्यपतिद्वारा कहे गये उस उत्तम वचनको सुननेके पश्चात् भूत एवं भविष्यके जाननेवाले भार्गवने विचार कर कहा—तुमने श्रुतिद्वारा प्रतिपादित मार्गमें अनधिकृत असुरेन्द्रों (दैत्यों)-को यज्ञभागका भोक्ता बनाया है एवं वेदप्रमाणके अनुसार यज्ञभोक्ता देवोंको अधिकाररहित कर दिया है। इसी कारण हरि आ रहे हैं। दैत्य! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया कि यज्ञमें उनके आनेपर क्या करना चाहिये, तो (उसके विषयमें मेरा यह कहना है कि) यज्ञमें तिनकेके नोकके बराबर भी पृथ्वी या सुवर्ण आदि (कुछ भी) उन्हें नहीं देना चाहिये।

वाच्यं तथा साम निरर्थकं विभो
कस्ते वरं दातुमलं हि शक्नुयात्।
यस्योदरे भूर्भुवनाकपाल-
रसातलेशा निवसन्ति नित्यशः॥ १५

इस तरहका अर्थहीन और सामयुक्त वचन उनसे कहना चाहिये कि विभो! जिसके पेटमें भूलोक, भुवर्लोक एवं स्वर्लोकके स्वामी तथा रसातलके शासक सदा निवास करते हैं ऐसे आपको दान देनेमें कौन समर्थ हो सकता है?॥ १२—१५॥

बलिरुवाच

मया न चोक्तं वचनं हि भार्गव
न चास्ति मह्यं न च दातुमुत्सहे।
समागतेऽप्यर्थिनि हीनवृत्ते
जनार्दने लोकपतौ कथं तु॥ १६
एवं च श्रूयते श्लोकः सतां कथयतां विभो।
सद्भावो ब्राह्मणेष्वेव कर्त्तव्यो भूतिमिच्छता।
दृश्यते हि तथा तच्च सत्यं ब्राह्मणसत्तम॥ १७

पूर्वाभ्यासेन कर्माणि सम्भवन्ति नृणां स्फुटम्।
वाक्कायमानसानीह योन्यन्तरगतान्यपि॥ १८

किं वा त्वया द्विजश्रेष्ठ पौराणी न श्रुता कथा।
या वृत्ता मलये पूर्वं कोशकारसुतस्य तु॥ १९

बलिने कहा—भार्गव! मैंने निम्नकोटिकी वृत्तिवाले याचकके आनेपर भी यह बात नहीं कही कि मेरे पास कुछ नहीं है और मैं देना नहीं चाहता तो लोकपति जनार्दनके याचक बनकर आनेपर मैं इस प्रकार कैसे कह सकता हूँ। विभो! सज्जनोंके द्वारा कही गयी इस तरहकी पवित्र वाणी सुनी जाती है कि ऐश्वर्य चाहनेवाले मनुष्यको ब्राह्मणोंके प्रति अच्छे भाव रखने चाहिये। ब्राह्मणश्रेष्ठ! यह सत्य भी मालूम होता है कि वचन, शरीर एवं मनके द्वारा किये गये मनुष्योंके कर्म दूसरी योनियोंमें भी पहलेके अभ्याससे स्पष्टरूपसे प्रकट होते हैं। द्विजश्रेष्ठ! प्राचीन कालमें मलयपर्वतपर घटित हुई कोशकारके पुत्रकी प्राचीन कथाको क्या आपने नहीं सुना है?॥ १६—१९॥

शुक्र उवाच

कथयस्व महाबाहो कोशकारसुताश्रयाम्।
कथां पौराणिकीं पुण्यां महाकौतूहलं हि मे॥ २०

शुक्राचार्यने कहा—महाबाहो! कोशकारकी पुत्रसम्बन्धिनी पवित्र प्राचीन कथाको मुझसे कहो। उसे सुननेके लिये मुझे महान् कौतूहल हो रहा है॥ २०॥

बलिरुवाच

शृणुष्व कथयिष्यामि कथामेतां मखान्तरे।
पूर्वाभ्यासनिबद्धां हि सत्यां भृगुकुलोद्वह॥ २१
मुद्गलस्य मुनेः पुत्रो ज्ञानविज्ञानपारगः।
कोशकार इति ख्यात आसीद् ब्रह्मंस्तपोरतः॥ २२
तस्यासीद् दयिता साध्वी धर्मिष्ठा नामतः श्रुता।
सती वात्स्यायनसुता धर्मशीला पतिव्रता॥ २३
तस्यामस्य सुतो जातः प्रकृत्या वै जडाकृतिः।
मूकवन्नालपति स न च पश्यति चान्धवत्॥ २४
तं जातं ब्राह्मणी पुत्रं जडं मूकं त्वचक्षुषम्।
मन्यमाना गृहद्वारि षष्ठेऽहनि समुत्सृजत्॥ २५

बलिने कहा—भृगुकुलश्रेष्ठ! पूर्वके अभ्याससे सम्बद्ध इस सत्य कथाको मैं यज्ञमें कह रहा हूँ; आप सुनें। ब्रह्मन्! महर्षि मुद्गलका कोशकार नामसे प्रसिद्ध एवं ज्ञान और विज्ञानसे सम्पन्न एक तपस्वी पुत्र था। उसकी पत्नीका नाम था धर्मिष्ठा। वह वात्स्यायनकी कन्या पतिव्रता, साध्वी, धर्मका आचरण करनेवाली तथा पतिकी सेवा करनेमें निष्ठा रखनेवाली थी। उस स्त्रीके गर्भसे एक पुत्र हुआ, जो स्वभावसे ही मूढ़ था। वह गूँगे मनुष्यकी तरह न बोलता और अन्धेकी भाँति वह देखता भी नहीं था। अपने उस जन्मे हुए पुत्रको मूर्ख, गूँगा और अंधा समझकर ब्राह्मणीने छठे दिन उसे घरके द्वारपर फेंक दिया।

ततोऽभ्यागाद् दुराचारा राक्षसी जातहारिणी।
स्वं शिशुं कृशमादाय सूर्पाक्षी नाम नामतः॥ २६
तत्रोत्सृज्य स्वपुत्रं सा जग्राह द्विजनन्दनम्।
तमादाय जगामाथ भोक्तुं शालोदरे गिरौ॥ २७
ततस्तामागतां वीक्ष्य तस्या भर्ता घटोदरः।
नेत्रहीनः प्रत्युवाच किमानीतस्त्वया प्रिये॥ २८

उसके बाद सूर्पाक्षी नामकी एक दुराचारिणी एवं नवजात बालकोंको चुरा लेनेवाली राक्षसी अपने दुबले-पतले पुत्रको लेकर वहाँ आयी और अपने पुत्रको वहाँ छोड़कर उसने ब्राह्मणपुत्रको उठा लिया। उसे लेकर खानेके लिये शालोदर नामक पर्वतपर चली गयी। उसके बाद उसे आयी हुई जानकर घटोदर नामके उसके अंधे पतिने पूछा—प्रिये! तुम क्या लायी हो?॥ २१—२८॥

साऽब्रवीद् राक्षसपते मया स्थाप्य निजं शिशुम्।
कोशकारद्विजगृहे तस्यानीतः प्रभो सुतः॥ २९
स प्राह न त्वया भद्रे भद्रमाचरितं त्विति।
महाज्ञानी द्विजेन्द्रोऽसौ ततः शप्स्यति कोपितः॥ ३०
तस्माच्छीघ्रमिमं त्यक्त्वा मनुजं घोररूपिणम्।
अन्यस्य कस्यचित् पुत्रं शीघ्रमानय सुन्दरि॥ ३१
इत्येवमुक्ता सा रौद्रा राक्षसी कामचारिणी।
समाजगाम त्वरिता समुत्पत्य विहायसम्॥ ३२
स चापि राक्षससुतो निसृष्टो गृहबाह्यतः।
रुरोद सुस्वरं ब्रह्मन् प्रक्षिप्याङ्गुष्ठमानने॥ ३३
सा क्रन्दितं चिराच्छ्रुत्वा धर्मिष्ठा पतिमब्रवीत्।
पश्य स्वयं मुनिश्रेष्ठ सशब्दस्तनयस्तव॥ ३४
त्रस्ता सा निर्जगामाथ गृहमध्यात् तपस्विनी।
स चापि ब्राह्मणश्रेष्ठः समपश्यत तं शिशुम्॥ ३५
वर्णरूपादिसंयुक्तं यथा स्वतनयं तथा।
ततो विहस्य प्रोवाच कोशकारो निजां प्रियाम्॥ ३६

उसने कहा—राक्षसपते! प्रभो! मैं अपने बच्चेको कोशकार मुनिके घरमें रखकर उनके पुत्रको लायी हूँ। राक्षसने कहा—भद्रे! तुमने यह ठीक नहीं किया। वह श्रेष्ठ ब्राह्मण महाज्ञानी तो है; किंतु वह (इस कार्यसे) कुपित होकर (तुम्हें) शाप दे देगा। सुन्दरि! इसलिये शीघ्र इस रौद्र रूपवाले मनुष्यको छोड़कर तुम किसी दूसरेके पुत्रको ले आओ। ऐसा कहनेपर वह स्वच्छन्दचारिणी डरावनी राक्षसी आकाशमें उड़ती हुई शीघ्र (वहाँ) चली गयी। ब्रह्मन्! घरके बाहर छोड़ा गया वह राक्षसपुत्र भी मुखमें अँगूठा डालकर उच्च स्वरसे रोने लगा। उस धर्मिष्ठाने अधिक समयके बाद रुलाई सुनकर पतिसे कहा—मुनिश्रेष्ठ! पुत्रको स्वयं देखिये, आपका यह पुत्र शब्द करने लगा। डरकर वह तपस्विनी गृहके भीतरसे बाहर निकली। उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने भी उस शिशुको देखा। अपने पुत्रके ही समान रंग और रूप आदिसे युक्त उस बालकको देखकर कोशकार मुनिने हँसकर अपनी पत्नीसे कहा—॥ २९—३६॥

एतेनाविश्य धर्मिष्ठे भाव्यं भूतेन साम्प्रतम्।
कोऽप्यस्माकं छलयितुं सुरूपी भुवि संस्थितः॥ ३७
इत्युक्त्वा वचनं मन्त्री मन्त्रैस्तं राक्षसात्मजम्।
बबन्धोल्लिख्य वसुधां सकुशेनाथ पाणिना॥ ३८
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता सूर्पाक्षी विप्रबालकम्।
अन्तर्धानगता भूमौ चिक्षेप गृहदूरतः॥ ३९

धर्मिष्ठे! इस बालकके अंदर अवश्य कोई भूत प्रवेश कर गया है। हमलोगोंको धोखा देनेके लिये सुन्दर रूपवाला कोई (भूत) इस स्थानपर विद्यमान है। ऐसा कहकर उस मन्त्रवेत्ताने हाथमें कुशा लेकर मन्त्रोंके द्वारा भूमिको रेखासे अङ्कितकर राक्षसपुत्रको बाँध दिया। इसी बीच सूर्पाक्षी वहाँ पहुँची और अदृश्यरूपमें (छिपकर) घरसे दूर स्थित होकर उसने ब्राह्मणके बालकको फेंका।

तं क्षिप्तमात्रं जग्राह कोशकारः स्वकं सुतम्।
सा चाभ्येत्य ग्रहीतुं स्वं नाशकद् राक्षसी सुतम्॥ ४०
इतश्चेतश्च विभ्रष्टा सा भर्तारमुपागमत्।
कथयामास यद् वृत्तं स्वद्विजात्मजहारिणम्॥ ४१
एवं गतायां राक्षस्यां ब्राह्मणेन महात्मना।
स राक्षसशिशुर्ब्रह्मन् भार्यायै विनिवेदितः॥ ४२
स चात्मतनयः पित्रा कपिलायाः सवत्सयाः।
दध्ना संयोजितोऽत्यर्थं क्षीरेणेक्षुरसेन च॥ ४३
द्वावेव वर्धितौ बालौ संजातौ सप्तवार्षिकौ।
पित्रा च कृतनामानौ निशाकरदिवाकरौ॥ ४४

फेंकते ही कोशकारने अपने उस पुत्रको पकड़ लिया। परंतु वह राक्षसी वहाँ जाकर अपने पुत्रको नहीं पकड़ सकी। दोनों ओरसे हाथ धोकर वह अपने पतिके पास गयी और अपने पुत्र तथा ब्राह्मणपुत्र दोनोंके खोनेकी घटना कह सुनायी। ब्रह्मन्! इस प्रकार राक्षसीके चले जानेपर महात्मा ब्राह्मणने अपनी पत्नीको उस राक्षस-पुत्रको दे दिया। पिताने अपने पुत्रको सवत्सा कपिला गायके दूध, दही और ईखके रससे पाला-पोसा। दोनों ही बालक बढ़कर सात वर्षके हो गये। पिताने उन दोनोंका नाम निशाकर और दिवाकर रखा॥ ३७—४४॥

नैशाचरिर्दिवाकीर्तिर्निशाकीर्तिः स्वपुत्रकः।
तयोश्चकार विप्रोऽसौ व्रतबन्धक्रियां क्रमात्॥ ४५
व्रतबन्धे कृते वेदं पपाठासौ दिवाकरः।
निशाकरो जडतया न पपाठेति नः श्रुतम्॥ ४६
तं बान्धवाश्च पितरौ माता भ्राता गुरुस्तथा।
पर्यनिन्दंस्तथा ये च जना मलयवासिनः॥ ४७
ततः स पित्रा क्रुद्धेन क्षिप्तः कूपे निरूदके।
महाशिलां चोपरि वै पिधानमवरोपयत्॥ ४८
एवं क्षिप्तस्तदा कूपे बहुवर्षगणान् स्थितः।
तत्रास्त्यामलकीगुल्मः पोषाय फलितोऽभवत्॥ ४९
ततो दशसु वर्षेषु समतीतेषु भार्गव।
तस्य माताऽगमत् कूपं तमन्धं शिलयाचितम्॥ ५०
सा दृष्ट्वा निचितं कूपं शिलया गिरिकल्पया।
उच्चैः प्रोवाच केनेयं कूपोपरि शिला कृता॥ ५१
कूपान्तस्थः स तां वाणीं श्रुत्वा मातुर्निशाकरः।
प्राह प्रदत्ता पित्रा मे कूपोपरि शिला त्वियम्॥ ५२

राक्षसके बालकका नाम दिवाकीर्ति (दिवाकर) और ब्राह्मणके बालकका नाम निशाकीर्ति (निशाकर) था। ब्राह्मणने क्रमशः दोनोंका उपनयन-संस्कार किया। उपनयन (जनेऊ) हो जानेपर दिवाकर वेदपाठ करने लगा। किंतु निशाकर जड़ताके कारण वेदाध्ययन नहीं करता था—ऐसा हमलोगोंने सुना है। माता, पिता, भाई, बन्धुजन, गुरु और दूसरे मलयके निवासी उसकी निन्दा करने लगे। उसके बाद पिताने कुपित होकर उसे जलरहित कुएँमें फेंक दिया और ऊपरसे एक बड़ी शिलासे ढँक दिया। इस प्रकार कुएँमें फेंक दिये जानेपर वह बालक बहुत दिनोंतक वहाँ पड़ा रहा। उस कुएँमें एक आँवलेका छोटा वृक्ष (क्षुप) था। उस बालकके लालन-पालनके लिये उसमें फल लग गये। भार्गव! उसके बाद दस वर्ष बीत जानेपर उसकी माँ अन्धकार-भरे तथा पत्थरसे ढके हुए उस कुएँके पास गयी। उस कुएँको पर्वतके सदृश शिलासे ढके हुए देखकर उसने ऊँचे स्वरसे कहा—कुएँके ऊपर इस पत्थरको किसने रखा है? कुएँके अंदर पड़े हुए पुत्र निशाकरने माताकी वाणी सुनकर कहा—मेरे पिताजीने कुएँपर इस शिलाको रखा है।

साऽतिभीताऽब्रवीत् कोऽसि कूपान्तस्थोऽद्भुतस्वरः।
सोऽप्याह तव पुत्रोऽस्मि निशाकरेति विश्रुतः॥ ५३

साऽब्रवीत् तनयो मह्यं नाम्ना ख्यातो दिवाकरः।
निशाकरेति नाम्नाऽहो न कश्चित् तनयोऽस्ति मे॥ ५४
स चाह पूर्वचरितं मातुर्निरवशेषतः।
साश्रुत्वा तां शिलां सुभ्रूः समुत्क्षिप्यान्यतोऽक्षिपत्॥ ५५
सोत्तीर्य कूपाद् भगवन् मातुः पादाववन्दत।
सा स्वानुरूपं तनयं दृष्ट्वा स्वजनमग्रतः॥ ५६
ततस्तमादाय सुतं धर्मिष्ठा पतिमेत्य च।
कथयामास तत्सर्वं चेष्टितं स्वसुतस्य च॥ ५७
ततोऽन्वपृच्छद् विप्रोऽसौ किमिदं तात कारणम्।
नोक्तवान् यद् भवान् पूर्वं महत्कौतूहलं मम॥ ५८
तच्छ्रुत्वा वचनं धीमान् कोशकारं द्विजोत्तमम्।
प्राह पुत्रोऽद्भुतं वाक्यं मातरं पितरं तथा॥ ५९

इस वाणीको सुनकर वह अत्यन्त डर गयी और बोली—कुएँके भीतर इस अपूर्व स्वरवाले तुम कौन हो? उसने भी कहा—मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। मेरा नाम निशाकर है॥ ४५—५३॥

उसने कहा—मेरे पुत्रका नाम तो दिवाकर है। निशाकर नामका मेरा कोई पुत्र नहीं है। उस बालकने मातासे अपनी पहलेकी घटित सारी घटना कह सुनायी। उसे सुननेके बाद माताने उस शिलाको उठाकर दूसरी ओर फेंक दिया। भगवन्! उस बालकने कुएँसे ऊपर आकर माताके चरणोंकी वन्दना की। उसने अपनेसे उत्पन्न हुए और अपनेसे मिलते-जुलते रूपवाले बालकको सामने देखा। उसके बाद उस बालकको लेकर वह धर्मिष्ठा पतिके पास गयी और अपने पुत्रके सारे चरितको उससे कह सुनायी। उसके बाद उस ब्राह्मणने पूछा—पुत्र! तुम पहले नहीं बोले, इसका क्या कारण है? मुझे वहुत कुतूहल हो रहा है। उस बातको सुनकर बुद्धिमान् पुत्रने ब्राह्मणश्रेष्ठ कोशकार तथा मातासे अद्भुत वचन कहा॥। ५४—५९॥

निशाकर उवाच

श्रूयतां कारणं तात येन मूकत्वमाश्रितम्।
मया जडत्वमनघ तथाऽन्धत्वं स्वचक्षुषः॥ ६०
पूर्वमासमहं विप्र कुले वृन्दारकस्य तु।
वृषाकपेश्च तनयो मालागर्भसमुद्भवः॥ ६१
ततः पिता पाठयन्मां शास्त्रं धर्मार्थकामदम्।
मोक्षशास्त्रं परं तात सेतिहासश्रुतिं तथा॥ ६२
सोऽहं तात महाज्ञानी परावरविशारदः।
जातो मदान्धस्तेनाहं दुष्कर्माभिरतोऽभवम्॥ ६३
मदात् समभवल्लोभस्तेन नष्टा प्रगल्भता।
विवेको नाशमगमत् मूर्खभावमुपागतः॥ ६४
मूढभावतया चाथ जातः पापरतोऽस्म्यहम्।
परदारपरार्थेषु मतिर्मे च सदाऽभवत्॥ ६५

निशाकरने कहा—निष्पाप पिताजी! मेरे द्वारा मूकता, जड़ता एवं अपने नेत्रोंके अन्धत्व ग्रहण करनेका कारण सुनिये। विप्र! मैं पहले वृन्दारक (सम्मानित देव)-वंशमें मालाके गर्भसे उत्पन्न हुआ वृषाकपिका पुत्र था। तात! पिताने मुझे धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि देनेवाले शास्त्र तथा इतिहास और वेदसहित मुक्तिदायक (दर्शन) शास्त्रको पढ़ाया। तात! मैं महाज्ञानी एवं लोक-ज्ञान और परलोक-ज्ञानमें कुशल था। उससे मैं अहंकारसे अन्धा होकर बुरे कर्ममें लग गया। मदसे मुझे लोभ हुआ। उससे मेरी वाक्पटुता नष्ट हो गयी। विवेकशक्तिके नष्ट हो जानेसे मैं विवेकहीन हो गया। मूढ़ताके कारण मैं पापी बन गया। मेरा मन सदा दूसरेकी स्त्री एवं धनमें आसक्त हो गया।

परदाराभिमर्शित्वात् परार्थहरणादपि।
मृतोऽस्म्युद्बन्धनेनाहं नरकं रौरवं गतः॥ ६६

तस्माद् वर्षसहस्रान्ते भुक्तशिष्टे तदागसि।
अरण्ये मृगहा पापः संजातोऽहं मृगाधिपः॥ ६७

परस्त्रीके साथ संसर्ग करने एवं दूसरोंके धनका हरण करनेके कारण कर्मफलके बन्धनसे ग्रस्त होनेपर मैं मरकर (विवशतया) रौरव नरकमें गया। एक हजार वर्षके बाद नरक-भोगसे बचे उस पापके कारण मैं पशुओंकी हत्या करनेवाला पापी बाघ होकर जंगलमें उत्पन्न हुआ॥ ६०—६७॥

व्याघ्रत्वे संस्थितस्तात बद्धः पञ्जरगः कृतः।
नराधिपेन विभुना नीतश्च नगरं निजम्॥ ६८
बद्धस्य पिञ्जरस्थस्य व्याघ्रत्वेऽधिष्ठितस्य ह।
धर्मार्थकामशास्त्राणि प्रत्यभासन्त सर्वशः॥ ६९
ततो नृपतिशार्दूलो गदापाणिः कदाचन।
एकवस्त्रपरीधानो नगरान्निर्ययौ बहिः॥ ७०
तस्य भार्या जिता नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि।
सा निर्गते तु रमणे ममान्तिकमुपागता॥ ७१
तां दृष्ट्वा ववृधे मह्यं पूर्वाभ्यासान्मनोभवः।
यथैव धर्मशास्त्राणि तथाहमवदं च ताम्॥ ७२
राजपुत्रि सुकल्याणि नवयौवनशालिनि।
चित्तं हरसि मे भीरु कोकिला ध्वनिना यथा॥ ७३
सा मद्वचनमाकर्ण्य प्रोवाच तनुमध्यमा।
कथमेवावयोर्व्याघ्र रतियोगमुपेष्यति॥ ७४
ततोऽहमब्रुवं तात राजपुत्रीं सुमध्यमाम्।
द्वारमुद्घाटयस्वाद्य निर्गमिष्यामि सत्वरम्॥ ७५

तात! एक प्रभावशाली राजाने व्याघ्रयोनिमें उत्पन्न हुए मुझको बाँधकर पिंजड़ेमें डाल दिया और अपने नगरमें ले गया। व्याघ्रकी योनिको प्राप्त हुए बन्धनसे ग्रस्त और पिंजड़ेमें पड़े हुए मुझे धर्म, अर्थ एवं कामसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी शास्त्र मनमें स्फुरित हो रहे थे। उसके कुछ समय बाद वह श्रेष्ठ राजा हाथमें गदा लिये एक वस्त्र धारणकर नगरसे बाहर चला गया। उसकी जिता नामकी भार्या मृत्युलोकमें अनुपम सुन्दरी थी। पतिके बाहर जानेपर वह मेरे पास आयी। उसे देखकर पूर्व अभ्यासके कारण धर्मशास्त्रोंके ज्ञानकी वृद्धिकी तरह मेरे मनमें कामना बढ़ने लगी। उसके बाद मैंने उससे कहा—हे नवयौवनशालिनी सुकल्याणी! राजपुत्री! तुम मेरा मन उसी प्रकार हरण करती हो जिस प्रकार कोयल अपनी कूकसे लोगोंके चित्तको। उस सुन्दरीने मेरा वचन सुनकर कहा—व्याघ्र! हम दोनोंका सम्भोग कैसे सम्भव है? तात! उसके बाद मैंने उस सुन्दरी राजपुत्रीसे कहा—तुम अभी पिंजड़ेका द्वार खोलो, मैं शीघ्र बाहर निकल आऊँगा॥ ६८—७५॥

साऽप्यब्रवीद् दिवा व्याघ्र लोकोऽयं परिपश्यति।
रात्रावुद्घाटयिष्यामि ततो रंस्याव स्वेच्छया॥ ७६
तामेवाहमवोचं वै कालक्षेपेऽहमक्षमः।
तस्मादुद्घाटय द्वारं मां बन्धाच्च विमोचय॥ ७७
ततः सा पीवरश्रोणी द्वारमुद्घाटयन्मुने।
उद्घाटिते ततो द्वारे निर्गतोऽहं बहिःक्षणात्॥ ७८
पाशानि निगडादीनि छिन्नानि हि बलान्मया।
सा गृहीता च नृपतेर्भार्या रमितुमिच्छता॥ ७९

उसने कहा—व्याघ्र! दिनमें लोग देखेंगे। रात्रिमें खोलूँगी, तब इच्छानुकूल हम दोनों विहार करेंगे। मैंने पुनः उससे कहा—देर करनेमें मैं असमर्थ हूँ। इसलिये द्वार खोलो और मुझे बन्धनसे मुक्त करो। उसके बाद उस सुन्दरीने द्वार खोल दिया। द्वार खुलनेपर मैं क्षणमात्रमें बाहर निकला। मैंने बलपूर्वक बेड़ी आदि बन्धनोंको तोड़ डाला और उस राजाकी पत्नीको रमण

ततो दृष्टोऽस्मि नृपतेर्भृत्यैरतुलविक्रमैः।
शस्त्रहस्तैः सर्वतश्च तैरहं परिवेष्टितः॥ ८०

महापाशैः शृङ्खलाभिः समाहत्य च मुद्‌गरैः।
बध्यमानोऽब्रुवमहं मा मा हिंसध्वमाकुलाः॥ ८१

ते मद्वचनमाकर्ण्य मत्वैव रजनीचरम्।
दृढं वृक्षे समुद्‌बध्य घातयन्त तपोधन॥ ८२

भूयो गतश्च नरकं परदारनिषेवणात्।
मुक्तो वर्षसहस्रान्ते जातोऽहं श्वेतगर्दभः॥ ८३
ब्राह्मणस्याग्निवेश्यस्य गेहे बहुकलत्रिणः।
तत्रापि सर्वविज्ञानं प्रत्यभासत ततो मम॥ ८४

उपवाह्यः कृतश्चास्मि द्विजयोषिद्भिरादरात्।
एकदा नवराष्ट्रीया भार्या तस्याग्रजन्मनः॥ ८५

विमतिर्नामतः ख्याता गन्तुमैच्छद् गृहं पितुः।
तामुवाच पतिर्गच्छ आरुह्य श्वेतगर्दभम्॥ ८६

मासेनागमनं कार्यं न स्थेयं परतस्ततः।
इत्येवमुक्ता सा भर्त्रा तन्वी मामधिरुह्य च॥ ८७

बन्धनादवमुच्याथ जगाम त्वरिता मुने।
ततोऽर्धपथि सा तन्वी मत्पृष्ठादवरुह्य वै॥ ८८

अवतीर्णा नदीं स्नातुं स्वरूपा चार्द्रवाससा।
साङ्गोपाङ्गां रूपवतीं दृष्ट्वा तामहमाद्रवम्॥ ८९

मया चाभिद्रुता तूर्णं पतिता पृथिवीतले।
तस्यामुपरि भो तात पतितोऽहं भृशातुरः॥ ९०

दृष्टो भर्त्रानुसृष्टेन नृणा तदनुसारिणा।
प्रोत्क्षिप्य यष्टिं मां ब्रह्मन् समाधावत् त्वरान्वितः॥ ९१

तद्भयात् तां परित्यज्य प्रद्रुतो दक्षिणामुखः।
ततोऽभिद्रवतस्तूर्णं खलीनरसना मुने॥ ९२

करनेकी कामनासे पकड़ लिया। उसके बाद राजाके अतुल पराक्रमी अनुचरोंने मुझे देखा और हाथमें शस्त्र लेकर उन लोगोंने मुझे चारों ओरसे घेर लिया। मोटी रस्सियों और जंजीरोंसे बाँधकर उन लोगोंने मुझे मुद्‌गरोंसे बहुत मारा। मारे जाते समय मैंने उनसे कहा—तुमलोग मुझे मत मारो। तपोधन! मेरा वचन सुनकर उन लोगोंने मुझे राक्षस समझा और वृक्षमें कसकर बाँधकर मार डाला। परस्त्री-सेवनके कारण फिर मैं नरकमें गया और हजारों वर्षोंके बाद वहाँसे छुटकारा होनेपर मैं सफेद गदहेकी योनिमें जनमा॥ ७६—८३॥

उस योनिमें मैं अनेक स्त्रियोंवाले अग्निवेश्य नामके ब्राह्मणके घरमें रहता था। वहाँ भी पूर्वजन्ममें अर्जित सारे ज्ञानोंका आभास मुझे हो रहा था। ब्राह्मणके घरकी स्त्रियोंने मुझे प्रेमसे सवारीके काममें लगाया। एक समय उस ब्राह्मणकी नवराष्ट्रदेशकी विमति नामक पत्नी अपने पिताके घर जानेके लिये उत्सुक हुई। उसके पतिने उससे कहा—इस सफेद गदहेपर सवार होकर चली जाओ और एक महीनेके भीतर चली आना। उससे अधिक समयतक न रहना। मुने! पतिके इस प्रकार कहनेपर वह सुन्दरी मेरा बन्धन खोल तत्काल मेरे ऊपर सवार हुई और चल पड़ी। उसके बाद आधे मार्गमें वह सुन्दरी मेरी पीठसे उतरकर नदीमें नहानेके लिये उतरी। भींगे वस्त्र होनेसे उसका अङ्ग स्पष्ट दिखायी पड़ा। उस सर्वाङ्गसुन्दरीको देखकर मैं उसकी ओर झपटा। मेरे झपटनेपर वह तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ी। तात! मैं अत्यन्त आतुर होकर उसके ऊपर गिर गया। ब्रह्मन्! स्वामीके आदेशसे उस स्त्रीके पीछे-पीछे आनेवाले अनुचरने मुझे देख लिया और डंडा उठाकर वह वेगसे मेरी ओर दौड़ पड़ा॥ ८४—९१॥

उसके आतङ्कसे उस स्त्रीको छोड़कर मैं उसी समय दक्षिण दिशाकी ओर भागा। मुने! बहुत शीघ्रतासे

ममासक्ता वंशगुल्मे दुर्मोक्षे प्राणनाशने।
तत्रासक्तस्य षड्रात्रान्ममाभूज्जीवितक्षयः॥ ९३
गतोऽस्मि नरकं भूयस्तस्मान्मुक्तोऽभवं शुकः।
महारण्ये तथा बद्धः शबरेण दुरात्मना॥ ९४
पञ्जरे क्षिप्य विक्रीतो वणिक्पुत्राय शालिने।
तेनाप्यन्तःपुरवरे युवतीनां समीपतः॥ ९५
शब्दशास्त्रविदित्येवं दोषघ्नश्चेत्यवस्थितः।
तत्रासतस्तरुण्यस्ता ओदनाम्बुफलादिभिः॥ ९६
भक्ष्यैश्च दाडिमफलैः पुष्णन्त्यहरहः पितः।
कदाचित् पद्मपत्राक्षी श्यामा पीनपयोधरा॥ ९७
सुश्रोणी तनुमध्या च वणिक्पुत्रप्रिया शुभा।
नाम्ना चन्द्रावली नाम समुद्घाट्याथ पञ्जरम्॥ ९८
मां जग्राह सुचार्वङ्गी कराभ्यां चारुहासिनी।
चकारोपरि पीनाभ्यां स्तनाभ्यां सा हि मां ततः॥ ९९
ततोऽहं कृतवान् भावं तस्यां विलसितुं प्लवन्।
ततोऽनुप्लवतस्तत्र हारे मर्कटबन्धनम्॥ १००
बद्धोऽहं पापसंयुक्तो मृतश्च तदनन्तरम्।
भूयोऽपि नरकं घोरं प्रपन्नोऽस्मि सुदुर्मतिः॥ १०१
तस्माच्चाहं वृषत्वं वै गतश्चाण्डालपक्कणे।
स चैकदा मां शकटे नियोज्य स्वां विलासिनीम्॥ १०२
समारोप्य महातेजा गन्तुं कृतमतिर्वनम्।
ततोऽग्रतः स चण्डालो गतस्त्वेवास्य पृष्ठतः॥ १०३
गायन्ती याति तच्छ्रुत्वा जातोऽहं व्यथितेन्द्रियः।
पृष्ठतस्तु समालोक्य विपर्यस्तस्तथोत्प्लुतः॥ १०४
पतितो भूमिमगमं तदक्षे क्षणविक्रमात्।
योक्त्रे सुबद्ध एवास्मि पञ्चत्वमगमं ततः॥ १०५
भूयो निमग्नो नरके दशवर्षशतान्यपि।
अतस्तव गृहे जातस्त्वहं जातिमनुस्मरन्॥ १०६
तावन्त्येवाद्य जन्मानि स्मरामि चानुपूर्वशः।
पूर्वाभ्यासाच्च शास्त्राणि बन्धनं चागतं मम॥ १०७

दौड़ते हुए मेरी लगामकी रस्सी प्राणघातिनी बाँसकी विकट झाड़ीमें फँस गयी। वहाँ फँसा हुआ मैं छः रातके बाद मर गया। उसके बाद मुझे फिर नरकमें जाना पड़ा। वहाँसे छुटकारा पानेके बाद मैं शुक पक्षीकी योनिमें उत्पन्न हुआ। उस योनिमें विशाल वनमें दुष्टात्मा शबरने मुझे बाँध लिया। पिंजड़ेमें रखकर (उसने मुझे) एक गृहस्थ वणिक्पुत्रके हाथ बेच दिया। उसने भी उत्तम महलमें युवतियोंके पास मुझे सम्पूर्ण शास्त्रका जाननेवाला तथा दोषोंको दूर करनेवाला समझकर रख दिया। पिताजी! वहाँ रहते समय वे युवतियाँ प्रतिदिन मुझे भात, जल, अनारके फल तथा अन्य भक्ष्य पदार्थ खिलाकर पालने लगीं। एक समय वणिक्पुत्रकी कमलदलके समान नेत्रोंवाली श्यामा, विशाल स्तनों तथा सुन्दर जंघाओं एवं सूक्ष्म कटिवाली कल्याणी चन्द्रावली नामकी प्रियाने पिंजड़ेको खोला। मधुर मुसकानवाली सुन्दरीने मुझे दोनों हाथोंमें पकड़ लिया और अपने दोनों स्तनोंपर रख लिया॥ ९२—९९॥

उसके बाद मैंने चन्द्रावलीके साथ विहार करनेका आशय प्रकट किया। तब पापमें आसक्त होकर घूमता हुआ मैं उसके हारमें बंदरके बन्धनकी भाँति बँधकर मर गया। मैं पुनः अत्यन्त पापमय बुद्धि होनेके कारण भयंकर नरकमें पड़ गया। उसके बाद मैं बैल होकर चाण्डालके घरमें पहुँचा। उसने एक दिन मुझे गाड़ीमें जोतकर उस गाड़ीपर अपनी स्त्रीको चढ़ाया। इस प्रकार वनमें जानेकी इच्छासे वह महातेजस्वी चाण्डाल आगे चला और उसके पीछे वह गाती हुई चली। उसका गान सुनकर मेरी इन्द्रियाँ विकल हो उठीं। मैंने पीछे घूमकर देखा और कूदा तथा उलट गया। क्षणमात्रके विपरीत गतिके कारण मैं भूमिपर गिर पड़ा और रस्सीमें अत्यन्त बँध जानसे मृत्युको प्राप्त हो गया। मैं फिर हजार वर्षतक नरकमें पड़ा रहा। वहाँसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण करता हुआ मैं आपके गृहमें उत्पन्न हुआ हूँ। मैं आज उन्हीं जन्मोंका क्रमशः स्मरण कर रहा हूँ। पूर्व अभ्याससे मुझे शास्त्रोंका ज्ञान तथा बन्धन मिला है।

तदहं जातविज्ञानो नाचरिष्ये कथंचन।
पापानि घोररूपाणि मनसा कर्मणा गिरा॥ १०८

शुभं वाप्यशुभं वाऽपि स्वाध्यायं शास्त्रजीविका।
बन्धनं वा वधो वाऽपि पूर्वाभ्यासेन जायते॥ १०९

जातिं यदा पौर्विकीं तु स्मरते तात मानवः।
तदा स तेभ्यः पापेभ्यो निवृत्तिं हि करोति वै॥ ११०

तस्माद् गमिष्ये शुभवर्धनाय
पापक्षयायाथ मुने ह्यरण्यम्।
भवान् दिवाकीर्तिमिमं सुपुत्रं
गार्हस्थ्यधर्मे विनियोजयस्व॥ १११

बलिरुवाच

इत्येवमुक्त्वा स निशाकरस्तदा
प्रणम्य मातापितरौ महर्षे।
जगाम पुण्यं सदनं मुरारेः
ख्यातं बदर्याश्रममाद्यमीड्यम्॥ ११२

एवं पुराभ्यासरतस्य पुंसो
भवन्ति दानाध्ययनादिकानि।
तस्माच्च पूर्वं द्विजवर्य वै मया
अभ्यस्तमासीन्ननु ते ब्रवीमि॥ ११३

दानं तपो वाऽध्ययनं महर्षे
स्तेयं महापातकमग्निदाहम्।
ज्ञानानि चैवाभ्यसतां हि पूर्वं
भवन्ति धर्मार्थयशांसि नाथ॥ ११४

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा बलवान् स शुक्रं
दैत्येश्वरः स्वं गुरुमीशितारम्।
ध्यायंस्तदास्ते मधुकैटभघ्नं
नारायणं चक्रगदासिपाणिम्॥ ११५

अतः ज्ञानी होकर मैं मन, कर्म और वाणीसे कभी घोर पापकर्मोंका आचरण नहीं करूँगा॥ १००—१०८॥

मङ्गल, अमङ्गल, स्वाध्याय, शास्त्रजीविका, बन्धन या वध पूर्व अभ्यासवश ही होते हैं। तात! मनुष्यको जब अपने पूर्वजन्मका स्मरण होता है तब वह उन पापोंसे दूर रहता है। अतः मुने! शुभकी वृद्धि और पापके क्षयके लिये मैं वनमें जाऊँगा। आप इस सुपुत्र दिवाकीर्तिको गृहस्थधर्ममें लगायें॥ १०९—१११॥

बलिने कहा—महर्षे! इस प्रकार कहनेके बाद माता-पिताको प्रणाम कर वह निशाकर भगवान् नारायणके श्रेष्ठ सुप्रसिद्ध पवित्र निवास बदरिकाश्रममें चला गया। इसी प्रकार पूर्वके अभ्यासवश मनुष्यके दान एवं अध्ययन आदि कार्य होते हैं। द्विजवर्य! इसीसे निश्चय ही मैं आपसे अपने पूर्व अभ्यासके तथ्यको कह रहा हूँ। महर्षे! नाथ! दान, तप, अध्ययन, चोरी, महापातक, अग्निदाह, ज्ञान, धर्म, अर्थ एवं यश आदि सभी पूर्वजन्मोंके अभ्याससे उत्पन्न होते हैं॥ ११२—११४॥

पुलस्त्यजी बोले—दैत्येश्वर बलवान् बलि अपने गुरु और नियमन करनेवाले शुक्राचार्यसे इस प्रकार कहकर मधुकैटभके संहारकारी चक्र-गदा तथा खड्ग धारण करनेवाले नारायणका ध्यान करने लगा॥ ११५॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें नब्बेवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ९०॥

इक्यानबेवाँ अध्याय

वामनकी बलिके यज्ञमें जाकर उससे तीन पग भूमिकी याचना, वामनका विराट्रूप ग्रहण करना एवं त्रिविक्रमत्व, वामनका बलिबन्धन-विषयक प्रश्न, बलिको वर, बलिका पाताल और वामनका स्वर्ग-गमन

पुलस्त्य उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो भगवान् वामनाकृतिः।
यज्ञवाटमुपागम्य उच्चैर्वचनमब्रवीत्॥ १

ॐकारपूर्वाः श्रुतयो मखेऽस्मिन्
तिष्ठन्ति रूपेण तपोधनानाम्।
यज्ञोऽश्वमेधः प्रवरः क्रतूनां
मुख्यस्तथा सत्रिषु दैत्यनाथः॥ २

इत्थं वचनमाकर्ण्य दानवाधिपतिर्वशी।
सार्घपात्रः समभ्यागाद्यत्र देवः स्थितोऽभवत्॥ ३

ततोऽर्च्य देवदेवेशमर्च्यमर्घादिनासुरः।
भरद्वाजर्षिणा सार्धं यज्ञवाटं प्रवेशयत्॥ ४

प्रविष्टमात्रं देवेशं प्रतिपूज्य विधानतः।
प्रोवाच भगवन् ब्रूहि किं दद्मि तव मानद॥ ५

पुलस्त्यजी बोले—इतनेमें वामनके रूपमें भगवान् आ गये। यज्ञशालाके निकट आकर वे ऊँचे स्वरसे बोले—ओंकारपूर्वक वेदमन्त्र तपस्वी ऋषियोंके रूपमें इस यज्ञमें स्थित हैं। यज्ञोंमें अश्वमेधयज्ञ सर्वोत्तम है और दैत्योंके स्वामी बलि यज्ञ करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। इस प्रकारकी बातको सुनकर इन्द्रियोंको जीत लेनेवाले दानवोंके स्वामी बलि अर्घ्यपात्र लेकर, जहाँ वामनदेव स्थित थे, वहाँ गये। इसके बाद अर्घ्य आदिसे देवोंके देवकी अर्चना करके दानवोंके स्वामी बलिने भरद्वाज ऋषिके साथ उन्हें यज्ञशालामें प्रवेश कराया। यज्ञशालामें प्रवेश करते ही बलिने वामनभगवान्‌की विधिपूर्वक पूजा की और कहा—मान देनेवाले भगवन्! बोलिये, मैं आपको क्या दूँ?॥ १—५॥

ततोऽब्रवीत् सुरश्रेष्ठो दैत्यराजानमव्ययः।
विहस्य सुचिरं कालं भरद्वाजमवेक्ष्य च॥ ६

गुरोर्मदीयस्य गुरुस्तस्यास्त्यग्निपरिग्रहः।
न स धारयते भूम्यां पारक्यां जातवेदसम्॥ ७

तदर्थमभियाचेऽहं मम दानवपार्थिव।
मच्छरीरप्रमाणेन देहि राजन् पदत्रयम्॥ ८

मुरारेर्वचनं श्रुत्वा बलिर्भार्यामवेक्ष्य च।
बाणं च तनयं वीक्ष्य इदं वचनमब्रवीत्॥ ९

इसके बाद देवोंमें श्रेष्ठ अविनाशी भगवान्‌ने देरतक हँसकर और भरद्वाजको देखकर दैत्यराजसे कहा—मेरे गुरुके गुरु अग्निहोत्री (यज्ञके अनुष्ठाता) हैं। वे दूसरेकी भूमिमें अग्निस्थापन नहीं करते। दानवपते! राजन्! मैं उनके लिये आपसे याचना करता हूँ कि मेरे शरीरके परिमाणसे आप तीन पग (भूमि) मुझे देनेकी कृपा करें। मुरारि (भगवान्)-का वचन सुननेके बाद बलिने पत्नी और पुत्र बाणको देखकर (अपनी पत्नीसे) यह वचन कहा—प्रिये!

न केवलं प्रमाणेन वामनोऽयं लघुः प्रिये।
येन क्रमत्रयं मौर्ख्याद् याचते बुद्धितोऽपि च॥ १०

प्रायो विधाताऽल्पधियां नराणां
बहिष्कृतानां च महानुभाग्यैः।
धनादिकं भूरि न वै ददाति
यथेह विष्णोर्न बहुप्रयासः॥ ११
न ददाति विधिस्तस्य यस्य भाग्यविपर्ययः।
मयि दातरि यश्चायमद्य याचेत् पदत्रयम्॥ १२
इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा
भूयोऽप्युवाचाथ हरिं दनूजः।
याचस्व विष्णो गजवाजिभूमिं
दासीहिरण्यं यदभीप्सितं च॥ १३
भवान् याचयिता विष्णो अहं दाता जगत्पतिः।
दातुर्याचयितुर्लज्जा कथं न स्यात् पदत्रये॥ १४
रसातलं वा पृथिवीं भुवं नाकमथापि वा।
एतेभ्यः कतमं दद्यां स्थानं याचस्व वामन॥ १५

वामन उवाच

गजाश्वभूहिरण्यादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्।
एतावता त्वहं चार्थी देहि राजन् पदत्रयम्॥ १६
इत्येवमुक्ते वचने वामनेन महासुरः।
बलिर्भृङ्गारमादाय ददौ विष्णोः क्रमत्रयम्॥ १७
पाणौ तु पतिते तोये दिव्यं रूपं चकार ह।
त्रैलोक्यक्रमणार्थाय बहुरूपं जगन्मयम्॥ १८
पादे भूमिस्तथा जङ्घे नभस्त्रैलोक्यवन्दितम्।
सत्यं तपो जानुयुग्मे उरुस्तो मेरुमन्दरौ॥ १९
विश्वेदेवा कटीभागे मरुतो वस्तिशीर्षगाः।
लिङ्गे स्थितो मन्मथश्च वृषणाभ्यां प्रजापतिः॥ २०
कुक्षिभ्यामर्णवाः सप्त जठरे भुवनानि च।
वलिषु त्रिषु नद्यश्च यज्ञास्तु जठरे स्थिताः॥ २१

यह वामन केवल प्रमाणसे ही छोटा नहीं है, बल्कि यह बुद्धिका भी छोटा है; क्योंकि अज्ञानवश यह मुझसे केवल तीन पग (भूमि)-की याचना करता है॥ ६—१०॥

विधाता प्रायः कम बुद्धिवाले अभागे मनुष्योंको अधिक धन आदि नहीं देते—जैसे इस यज्ञमें विष्णुने अधिकके लिये प्रयत्न नहीं किया। जिसका भाग्य अनुकूल नहीं होता है, उसे ईश्वर नहीं देते हैं। मेरे-जैसे दानीसे भी आज ये तीन पग (भूमि)-की याचना करते हैं! इस प्रकार कहकर महात्मा बलिने फिर हरिसे कहा—विष्णो! हाथी, घोड़ा, भूमि, दासी तथा सोना आदि (इसके अतिरिक्त और भी) जो आप चाहते हों, वह माँगिये। विष्णो! आप याचना करनेवाले हैं और मैं जगत्पति देनेवाला हूँ। ऐसी अवस्थामें केवल तीन पग (भूमि)-का दान करनेमें देने एवं लेनेवालेको क्या लज्जा न होगी? वामन! यदि आप याचना करते हैं तो (कहिये) रसातल, पृथ्वी, भुवर्लोक अथवा स्वर्गलोकमेंसे मैं किस स्थानका दान करूँ? उसे माँगिये॥ ११—१५॥

(भगवान्) वामन बोले—हाथी, घोड़ा, भूमि, सोना आदि वस्तुएँ उन्हें चाहनेवालेको ही दीजिये। राजन्! मैं इतनेकी ही याचना करता हूँ। इसलिये मुझे तीन पग (भूमि) प्रदान करें। वामनभगवान्के इस प्रकार कहनेपर महान् असुर बलिने कमण्डलु लेकर विष्णुको तीन पग (भूमि)-का दान दिया। हाथपर जल गिरते ही तीनों लोकोंको नापनेके लिये विष्णुने दिव्य रूप धारण कर लिया। तीनों लोकोंको नापनेके लिये जगन्मय विशाल रूप बना लिया। उनके पैरोंमें भूमि, जंघाओंमें तीनों लोकोंसे सत्कार-प्राप्त आकाश, दोनों जानुओंमें सत्यलोक और तपोलोक, दोनों ऊरुओंमें मेरु और मन्दरपर्वत, कटिप्रदेशमें विश्वेदेव, वस्तिप्रदेशके शीर्षस्थानपर मरुद्गण, लिङ्गमें कामदेव, वृषणोंमें प्रजापति, कुक्षियोंमें सातों समुद्र, जठरमें सम्पूर्ण भुवन, त्रिवलीमें नदियाँ एवं उनके जठरमें यज्ञ स्थित थे।

इष्टापूर्तादयः सर्वाः क्रियास्तत्र तु संस्थिताः।
पृष्ठस्था वसवो देवाः स्कन्धौ रुद्रैरधिष्ठितौ॥ २२

बाहवश्च दिशः सर्वा वसवोऽष्टौ करे स्मृताः।
हृदये संस्थितो ब्रह्मा कुलिशो हृदयास्थिषु॥ २३
श्रीसमुद्रा उरोमध्ये चन्द्रमा मनसि स्थितः।
ग्रीवादितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्थिताः॥ २४
मुखे तु साग्नयो विप्राः संस्कारा दशनच्छदाः।
धर्मकामार्थमोक्षीयाः शास्त्राः शौचसमन्विताः॥ २५
लक्ष्म्या सह ललाटस्थाः श्रवणाभ्यामथाश्विनौ।
श्वासस्थो मातरिश्वा च मरुतः सर्वसंधिषु॥ २६
सर्वसूक्तानि दशना जिह्वा देवी सरस्वती।
चन्द्रादित्यौ च नयने पक्ष्मस्थाः कृत्तिकादयः॥ २७
शिखायां देवदेवस्य ध्रुवो राजा न्यषीदत।
तारका रोमकूपेभ्यो रोमाणि च महर्षयः॥ २८
गुणैः सर्वमयो भूत्वा भगवान् भूतभावनः।
क्रमेणैकेन जगतीं जहार सचराचराम्॥ २९

जठरमें ही इष्टापूर्त आदि समस्त क्रियाएँ भी अवस्थित थीं। उनकी पीठमें वसुगण और देवगण तथा कन्धोंमें रुद्रगण स्थित थे॥ १६—२२॥

सारी दिशाएँ उनके बाहुस्वरूप थीं। उनके हाथोंमें आठों वसु, हृदयमें ब्रह्मा एवं हृदयकी हड्डियोंमें कुलिश स्थित था। छातीके बीच श्री तथा समुद्र, मनमें चन्द्रमा, ग्रीवामें देवमाता अदिति तथा वलयोंमें सारी विद्याएँ व्यवस्थित थीं। मुखमें अग्निके सहित ब्राह्मण, ओष्ठमें सभी धार्मिक संस्कार, ललाटमें लक्ष्मीसहित तथा पवित्रताके साथ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षसम्बन्धी शास्त्र, कर्णोंमें अश्विनीकुमार, श्वासमें वायु एवं सभी जोड़के स्थानोंमें मरुद्गण स्थित थे। उनके दाँतोंमें सम्पूर्ण सूक्त, जिह्वामें सरस्वती देवी, दोनों नेत्रोंमें चन्द्र और सूर्य तथा बरौनियोंमें कृत्तिका आदि नक्षत्र स्थित थे। देवदेवकी शिखामें राजा ध्रुव, रोमकूपोंमें ताराग्र और रोमोंमें महर्षि लोग अवस्थित थे। भूतभावन भगवान्‌ने गुणोंद्वारा सर्वमय होकर एक पदमें ही चराचरसहित सारी पृथ्वीका हरण कर लिया॥ २३—२९॥

भूमिं विक्रममाणस्य महारूपस्य तस्य वै।
दक्षिणोऽभूत् स्तनश्चन्द्रः सूर्योऽभूदथ चोत्तरः।
नभश्चाक्रमतो नाभिं सूर्येन्दू सव्यदक्षिणौ॥ ३०

भूमिको नापते हुए उन विशाल रूपधारीके चन्द्रमा और सूर्य दक्षिण तथा उत्तर स्तन हो गये। इसी प्रकार आकाशकी ओर पग बढ़ाते समय सूर्य और चन्द्रमा उनकी नाभिके वाम तथा दक्षिणभागमें अवस्थित हुए।

द्वितीयेन क्रमेणाथ स्वर्महर्जनतापसाः।
क्रान्तार्धार्धेन वैराजं मध्येनापूर्यताम्बरम्॥ ३१

इसके बाद उन्होंने द्वितीय चरणके आधेसे स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक और तपोलोक तथा पग बढ़ाकर शेष आधेसे वैराजलोक और मध्यभागसे आकाशको पूरा किया।

ततः प्रतापिना ब्रह्मन् बृहद्विष्णवङ्घ्रिणाम्बरे।
ब्रह्माण्डोदरमाहत्य निरालोकं जगाम ह॥ ३२

ब्रह्मन्! इसके बाद विष्णुका प्रतापी विशाल चरण आकाशमें ब्रह्माण्डके उदरभागको भेदकर निरालोकमें चला गया।

विश्वाङ्घ्रिणा प्रसरता कटाहो भेदितो बलात्।
कुटिला विष्णुपादे तु समेत्य कुटिला ततः॥ ३३

विष्णुके बढ़ते चरणने बलपूर्वक कटाहका भेदन कर दिया। विष्णुका चरण कुटिला नदीके निकट पहुँच गया।

तस्या विष्णुपदीत्येवं नामाख्यातमभून्मुने।
तथा सुरनदीत्येवं तामसेवन्त तापसाः।
भगवानप्यसम्पूर्णे तृतीये तु क्रमे विभुः॥ ३४

मुने! इससे कुटिला विष्णुपदी नामसे प्रसिद्ध हुई। तपस्या करनेवाले लोग देवनदीके रूपमें उसकी सेवा करने लगे। सर्वसमर्थ भगवान् तीसरे चरणके पूर्ण न होनेपर

समभ्येत्य बलिं प्राह ईषत् प्रस्फुरिताधरः।
ऋणाद् भवति दैत्येन्द्र बन्धनं घोरदर्शनम्।
त्वं पूरय पदं तन्मे नो चेद् बन्धं प्रतीच्छ भोः॥ ३५

तन्मुरारिवचः श्रुत्वा विहस्याथ बलेः सुतः।
बाणः प्राहामरपतिं वचनं हेतुसंयुतम्॥ ३६

बाण उवाच

कृत्वा महीमल्पतरां जगत्पते
स्वायम्भुवादिभुवनानि वै षट्।
कथं बलिं प्रार्थयसे सुविस्तृतां
यां प्राग्भवान् नो विपुलामथाकरोत्॥ ३७
विभो मही यावतीयं त्वयाऽद्य
सृष्टा समेता भुवनान्तरालैः।
दत्ता च तातेन हि तावतीयं
किं वाक्छलेनैष निबध्यतेऽद्य॥ ३८
या नैव शक्या भवता हि पूरितुं
कथं वितन्याद् दितिजेश्वरोऽसौ।
शक्तस्तु सम्पूजयितुं मुरारे
प्रसीद मा बन्धनमादिशस्व॥ ३९
प्रोक्तं श्रुतौ भवतापीश वाक्यं
दानं पात्रे भवते सौख्यदायि।
देशे सुपुण्ये वरदे यच्च काले
तच्चाशेषं दृश्यते चक्रपाणे॥ ४०

दानं भूमिः सर्वकामप्रदेयं
भवान् पात्रं देवदेवो जितात्मा।
कालो ज्येष्ठामूलयोगे मृगाङ्कः
कुरुक्षेत्रं पुण्यदेशं प्रसिद्धम्॥ ४१
किं वा देवोऽस्मद्विधैर्बुद्धिहीनैः
शिक्षापनीयः साधु वाऽसाधु चैव।
स्वयं श्रुतीनामपि चादिकर्ता
व्याप्य स्थितः सदसद् यो जगद् वै॥ ४२
कृत्वा प्रमाणं स्वयमेव हीनं
पदत्रयं याचितवान् भुवश्च।
किं त्वं न गृह्णासि जगत्त्रयं भो
रूपेण लोकत्रयवन्दितेन॥ ४३

बलिके समीप गये और ओठको किंचित् स्फुरित करते हुए बोले—दैत्येन्द्र! ऋण न चुकानेपर देखनेमें भयंकर बन्धन प्राप्त होता है। अतः तुम मेरे शेष पदको पूरा करो, नहीं तो बन्धन स्वीकार करो। मुरारि (भगवान्)-के उस वचनको सुनकर बलिके पुत्र बाणने अमरपतिसे हँसकर हेतुसे युक्त वचन कहा॥ ३०—३६॥

बाणने कहा—जगत्पते! आपने स्वायम्भुव आदि छः भुवनोंका ही निर्माणकर पृथ्वीको छोटा बनाया है। आपने भूमिको पहले ही विशाल नहीं बनाया, अतः आप बलिसे अत्यन्त विशाल भूमि कैसे माँगते हैं। विभो! भुवनोंके मध्यवर्ती स्थानोंके साथ जितनी पृथ्वीकी सृष्टि आपने की थी उसे मेरे पिताने आज आपको दे दिया। अतः आप कपटके द्वारा उन्हें क्यों बाँधते हैं? मुरारे! जिस पृथ्वीकी कमीको आप पूरा नहीं कर सकते, उसको ये दानवपति कैसे विस्तृत कर सकेंगे? ये आपकी पूजा करनेमें समर्थ हैं। अतः आप प्रसन्न हों और इन्हें बन्धन प्राप्त करनेका आदेश न दें। (प्रभो!) आपने ही श्रुतिमें यह कहा है कि पवित्र देश, काल एवं वर देनेके समय सत्पात्रमें दिया गया दान सुख देनेवाला होता है। चक्रपाणे! वह सम्पूर्ण (सुयोग) दिखलायी पड़ रहा है॥ ३७—४०॥

समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला भूमिका दान हो रहा है, देवोंके अधिदेव अपने-आपको नियन्त्रित रखनेवाले आप पात्र हैं, ज्येष्ठा एवं मूलके योगमें स्थित चन्द्रमासे युक्त काल है तथा प्रसिद्ध पवित्र कुरुक्षेत्रका देश है अथवा हम-जैसे बुद्धिहीन लोगोंके द्वारा आप भगवान्को उचित और अनुचित शिक्षा क्या दी जाय? आप स्वयं वेदोंके भी आदिस्रष्टा और सदसद्-विश्वको व्याप्त कर अवस्थित हैं। आपने स्वयं अपने प्रमाण (शारीरिक आकार)-को छोटा बनाकर तीन पग भूमि माँगी थी। देव! क्या आपने तीनों लोकोंमें अपने वन्दित रूपसे तीनों लोकोंको ग्रहण नहीं कर लिये हैं?

नात्राश्चर्यं यज्जगद् वै समग्रं
क्रमत्रयं नैव पूर्णं तवाद्य।
क्रमेण त्वं लङ्घयितुं समर्थो
लीलामेतां कृतवान् लोकनाथ॥ ४४
प्रमाणहीनां स्वयमेव कृत्वा
वसुन्धरां माधव पद्मनाभ।
विष्णो न बध्नासि बलिं न दूरे
प्रभुर्यदेवेच्छति तत्करोति॥ ४५

आपके तीन पगोंको सारा संसार पूरा नहीं कर सका—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आप इसको अपने एक पगसे ही लाँघ सकते हैं। लोकनाथ! आपने तो यह लीला ही की है। माधव! पद्मनाभ! विष्णो! पृथ्वीको अपने-आप छोटे पैमानेमें बनाकर बलिको बाँधना उचित नहीं। (ठीक है, आप) प्रभु जो चाहते हैं वही करते हैं॥ ४१—४५॥

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्ते वचने बाणेन बलिसूनुना।
प्रोवाच भगवान् वाक्यमादिकर्ता जनार्दनः॥ ४६

पुलस्त्यजी बोले—बलिपुत्र बाणके इस प्रकार कहनेपर आदिस्रष्टा भगवान् जनार्दनने यह वचन कहा॥ ४६॥

त्रिविक्रम उवाच

यान्युक्तानि वचांसीत्थं त्वया बालेय साम्प्रतम्।
तेषां वै हेतुसंयुक्तं शृणु प्रत्युत्तरं मम॥ ४७
पूर्वमुक्तस्तव पिता मया राजन् पदत्रयम्।
देहि मह्यं प्रमाणेन तदेतत् समनुष्ठितम्॥ ४८
किं न वेत्ति प्रमाणं मे बलिस्तव पितासुर।
प्रायच्छद् येन निःशङ्कं ममानन्तं क्रमत्रयम्॥ ४९
सत्यं क्रमेण चैकेन क्रमेयं भूर्भुवादिकम्।
बलेरपि हितार्थाय कृतमेतत् क्रमत्रयम्॥ ५०
तस्माद् यन्मम बालेय त्वत्पित्राम्बु करे महत्।
दत्तं तेनायुरेतस्य कल्पं यावद् भविष्यति॥ ५१
गते मन्वन्तरे बाण श्राद्धदेवस्य साम्प्रतम्।
सावर्णिके च सम्प्राप्ते बलिरिन्द्रो भविष्यति॥ ५२
इत्थं प्रोक्त्वा बलिसुतं बाणं देवस्त्रिविक्रमः।
प्रोवाच बलिमभ्येत्य वचनं मधुराक्षरम्॥ ५३

त्रिविक्रमने कहा—बलिनन्दन! तुमने इस समय इस प्रकार जिन वचनोंको कहा है उनका कारण-सहित प्रत्युत्तर मुझसे सुनो। मैंने पहले ही तुम्हारे पितासे यह कहा था कि 'राजन्! मेरे प्रमाणके अनुसार मुझे तीन पग भूमि दो।' उन्होंने भलीभाँति उसका सम्मान किया। असुर! क्या तुम्हारे पिता बलि मेरा प्रमाण नहीं जानते थे, जो उन्होंने निःशङ्क होकर मेरे अनन्त तीन पगोंका दान किया। सचमुच ही मैं अपने एक पैरसे समस्त भूः, भुवः आदि जगत्को नाप सकता हूँ। बलिके कल्याणके लिये ही मैंने ये तीन पग किये हैं। अतः बलिपुत्र! तुम्हारे पिताने मेरे हाथमें शुद्ध जल दिया है, इससे उनकी आयु एक कल्पकी होगी। बाण! श्राद्धदेवका वर्तमान मन्वन्तर बीत जानेके बाद सावर्णिक मन्वन्तरके आनेपर बलि इन्द्र बनेंगे। बलिके पुत्र बाणसे इस प्रकार कहनेके बाद त्रिविक्रम देव बलिके निकट गये और उससे मधुर वचन कहे—॥ ४७—५३॥

श्रीभगवानुवाच

आपूरणाद् दक्षिणाया गच्छ राजन् महाफलम्।
सुतलं नाम पातालं वस तत्र निरामयः॥ ५४

श्रीभगवान्‌ने कहा—राजन्! दक्षिणाकी सम्पन्नता होनेतक तुम्हें यह महान् फल प्राप्त करना होगा। तुम सुतल नामक पातालमें नीरोग—स्वस्थ होकर निवास करो॥ ५४॥

बलिरुवाच

सुतले वसतो नाथ मम भोगाः कुतोऽव्ययाः।
भविष्यन्ति तु येनाहं निवत्स्यामि निरामयः॥ ५५

बलिने कहा—नाथ! सुतलमें निवास करते समय नीरोग—स्वस्थरूपसे रहनेके लिये अक्षय अविनाशी-स्वास्थ्यप्रद भोग कहाँसे प्राप्त होंगे?॥ ५५॥

त्रिविक्रम उवाच

सुतलस्थस्य दैत्येन्द्र यानि भोगानि तेऽधुना।
भविष्यन्ति महार्हाणि तानि वक्ष्यामि सर्वशः॥ ५६
दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च।
तथाधीतान्यव्रतिभिर्दास्यन्ति भवतः फलम्॥ ५७
तथान्यमुत्सवं पुण्यं वृत्ते शक्रमहोत्सवे।
द्वारप्रतिपदा नाम तव भावी महोत्सवः॥ ५८
तत्र त्वां नरशार्दूला हृष्टाः पुष्टाः स्वलंकृताः।
पुष्पदीपप्रदानेन अर्चयिष्यन्ति यत्नतः॥ ५९
तत्रोत्सवो मुख्यतमो भविष्यति
दिवानिशं हृष्टजनाभिरामम्।
यथैव राज्ये भवतस्तु साम्प्रतं
तथैव सा भाव्यथ कौमुदी च॥ ६०
इत्येवमुक्त्वा मधुहा दितीश्वरं
विसर्जयित्वा सुतलं सभार्यम्।
यज्ञं समादाय जगाम तूर्णं
स शक्रसद्मामरसङ्घजुष्टम्॥ ६१
दत्त्वा मघोने च विभुस्त्रिविष्टपं
कृत्वा च देवान् मखभागभोक्तॄन्।
अन्तर्दधे विश्वपतिर्महर्षे
सम्पश्यतामेव सुराधिपानाम्॥ ६२
स्वर्गं गते धातरि वासुदेवे
शाल्वोऽसुराणां महता बलेन।
कृत्वा पुरं सौभमिति प्रसिद्धं
तदान्तरिक्षे विचचार कामात्॥ ६३
मयस्तु कृत्वा त्रिपुरं महात्मा
सुवर्णताम्रायसमग्र्यसौख्यम्।
स तारकाक्षः सह वैद्युतेन
संतिष्ठते भृत्यकलत्रवान् सः॥ ६४
बाणोऽपि देवेन हृते त्रिविष्टपे
बद्धे बलौ चापि रसातलस्थे।
कृत्वा सुगुप्तं भुवि शोणिताख्यं
पुरं स चास्ते सह दानवेन्द्रैः॥ ६५

त्रिविक्रमने कहा—दैत्येन्द्र! मैं इस समय तुम्हारे सामने उन सम्पूर्ण बहुमूल्य भोगोंका वर्णन करता हूँ जो पृथ्वीके तलमें निवास करते समय तुम्हें प्राप्त होंगे। अविधिपूर्वक किये गये दान, अश्रोत्रियद्वारा किये गये श्राद्ध एवं ब्रह्मचर्यव्रतरहित अध्ययन आपको फल प्रदान करेंगे। इन्द्र-पूजनके बाद आनेवाली प्रतिपदाको तुम्हारे पूजनके निमित्त दूसरा उत्सव मनाया जायगा, जिसका नाम होगा—'द्वारप्रतिपदा'। उस उत्सवके समय हृष्ट-पुष्ट, नरश्रेष्ठ लोग सुन्दर रूपसे सज-धजकर पुष्प और दीप देकर प्रयत्नपूर्वक आपकी अर्चना करेंगे। आपके राज्यमें इस समय जिस प्रकार दिन-रात जनसमुदायके प्रसन्न रहनेके कारण सुन्दर महोत्सव बना रहता है, उसी प्रकार उत्सवोंमें श्रेष्ठ वह 'कौमुदी' नामका उत्सव होगा॥ ५६—६०॥

मधुसूदनने दानवेश्वर बलिसे इस प्रकार कहकर उसे पत्नीके साथ सुतल लोकमें भेज दिया। इसके बाद वे शीघ्र यज्ञको—अग्निदेवको साथ ले देव-समूहसे सेवित इन्द्रभवन चले गये। महर्षे! उसके बाद सबका पालन-पोषण करनेवाले व्यापक भगवान् विष्णु, इन्द्रको स्वर्ग देकर और देवताओंको यज्ञ-भागका अधिकारी बनाकर देवताओंके देखते-ही-देखते अन्तर्धान हो गये। ब्रह्मा, वासुदेवके स्वर्ग चले जानेपर दानव शाल्व दैत्यकी बड़ी सेना लेकर सौभ नामका प्रसिद्ध नगर बनाकर इच्छानुसार आकाशमें घूमने लगा। नौकरों और अपनी पत्नीके साथ महात्मा मय सोने, ताँबे एवं लोहेके तीन नगरोंका निर्माण करके तारकाक्ष तथा वैद्युतके साथ अत्यन्त सुखपूर्वक उनमें रहने लगा॥ ६१—६४॥

बाणासुर भी विष्णुके द्वारा स्वर्ग छीन लिये जानेपर और बलिके बँधने तथा रसातलमें रहनेपर अत्यन्त सुरक्षित शोणित नामके पुरका निर्माण कर दानवेन्द्रोंके

एवं पुरा चक्रधरेण विष्णुना
बद्धो बलिर्वामनरूपधारिणा।
शक्रप्रियार्थं सुरकार्यसिद्धये
हिताय विप्रर्षभगोद्विजानाम्॥ ६६

प्रादुर्भवस्ते कथितो महर्षे
पुण्यः शुचिर्वामनस्याघहारी।
श्रुते यस्मिन् संस्मृते कीर्तिते च
पापं याति प्रक्षयं पुण्यमेति॥ ६७

एतत् प्रोक्तं भवतः पुण्यकीर्त्तेः
प्रादुर्भावो बलिबन्धोऽव्ययस्य।
यच्चाप्यन्यच्छ्रोतुकामोऽसि विप्र
तत्प्रोच्यतां कथयिष्याम्यशेषम्॥ ६८

साथ रहने लगा। इस प्रकार प्राचीन कालमें चक्र धारण करनेवाले विष्णुने वामनरूप धारण कर इन्द्रकी भलाई, देवताओंकी कार्यसिद्धि तथा ब्राह्मणों, ऋषियों (गायोंके समूह) और द्विजोंके हितके लिये बलिको बाँधा था। महर्षे! मैंने आपसे वामनके पापहारी, पुण्ययुक्त एवं पवित्र प्रादुर्भावका वर्णन किया। इसके सुनने और कीर्तनसे पापका नाश एवं पुण्यकी प्राप्ति होती है। विप्र! मैंने अक्षय पुण्यकीर्तिवाले वामनदेवके आविर्भाव तथा बलिको बाँधनेकी कथाका आपसे वर्णन किया। अब आप अन्य जो कुछ सुनना चाहते हों, उसे कहिये। मैं पूर्णतया उसका वर्णन करूँगा॥ ६५—६८॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ९१॥

बानबेवाँ अध्याय

ब्रह्मलोकमें वामनभगवान्‌की पूजा, ब्रह्मकृत वामनकी स्तुति और वामनरूपमें विष्णुका स्वर्गमें निवास

नारद उवाच

श्रुतं यथा भगवता बलिर्बद्धो महात्मना।
किंत्वस्त्यन्यत्तु प्रष्टव्यं तच्छ्रुत्वा कथयाद्य मे॥ १

भगवान् देवराजाय दत्त्वा विष्णुस्त्रिविष्टपम्।
अन्तर्धानं गतः क्वासौ सर्वात्मा तात कथ्यताम्॥ २

सुतलस्थश्च दैत्येन्द्रः किमकार्षीत् तथा वद।
का चेष्टा तस्य विप्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३

नारदजीने कहा—महात्मा भगवान्‌ने जिस प्रकार बलिको बाँधा था उसे मैंने सुना। परंतु प्रभो! आपसे और अन्य विषय भी मुझे पूछना है। उसे सुनकर आप मुझे उसके सम्बन्धमें बतलाइये। तात! आप यह बतलाइये कि देवराज इन्द्रको स्वर्ग देनेके बाद वे सर्वात्मस्वरूप भगवान् विष्णु अन्तर्हित होकर कहाँ चले गये। इसके सिवाय यह भी बतलाइये कि सुतलमें रहनेवाले दैत्यश्रेष्ठने क्या किया और विप्रवर! आप मुझे विशेषरूपसे यह बतायें कि उसके बाद उसकी कौन-सी चेष्टा रही?॥ १—३॥

पुलस्त्य उवाच

अन्तर्धाय सुरावासं वामनोऽभूदवामनः।
जगाम ब्रह्मसदनमधिरुह्योरगाशनम्॥ ४
वासुदेवं समायान्तं ज्ञात्वा ब्रह्माऽव्ययात्मकः।
समुत्थायाथ सौहार्दात् सस्वजे कमलासनः॥ ५

परिष्वज्यार्च्य विधिना वेधाः पूजादिना हरिम्।
पप्रच्छ किं चिरेणेह भवतागमनं कृतम्॥ ६

अथोवाच जगत्स्वामी मया कार्यं महत्कृतम्।
सुराणां क्रतुभागार्थं स्वयंभो बलिबन्धनम्॥ ७

पितामहस्तद् वचनं श्रुत्वा मुदितमानसः।
कथं कथमिति प्राह त्वं मां दर्शितुमर्हसि॥ ८

इत्येवमुक्ते वचने भगवान् गरुडध्वजः।
दर्शयामास तद्रूपं सर्वदेवमयं लघु॥ ९

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं योजनायुतविस्तृतम्।
तावानेवोर्ध्वमानेन ततोऽजः प्रणतोऽभवत्॥ १०

ततः प्रणम्य सुचिरं साधु साध्वित्युदीर्य च।
भक्तिनम्रो महादेवं पद्मजः स्तोत्रमीरयत्॥ ११

ॐ नमस्ते देवाधिदेव वासुदेव एकशृङ्ग बहुरूप वृषाकपे भूतभावन सुरासुरवृष सुरासुरमथन पीतवासः श्रीनिवास असुरनिर्मितान्त अमितनिर्मित कपिल महाकपिल विष्वक्सेन नारायण। ध्रुवध्वज सत्यध्वज खड्गध्वज तालध्वज वैकुण्ठ पुरुषोत्तम वरेण्य विष्णो अपराजित जय जयन्त विजय कृतावर्त महादेव अनादे अनन्त आद्यन्तमध्यनिधन पुरञ्जय धनञ्जय शुचिश्रव पृश्निगर्भ। कमलगर्भ कमलायताक्ष श्रीपते विष्णुमूल मूलाधिवास धर्माधिवास धर्मवास धर्माध्यक्ष प्रजाध्यक्ष गदाधर श्रीधर श्रुतिधर वनमालाधर लक्ष्मीधर धरणीधर पद्मनाभ। विरिञ्चे

पुलस्त्यजी बोले—वामनदेवने अन्तर्धान होनेके बाद अपना वामनस्वरूप छोड़ दिया एवं गरुडपर चढ़कर वे देवोंके स्थान ब्रह्मलोकको चले गये। वासुदेवको आया हुआ जानकर कमलके आसनपर बैठे हुए नित्य-स्वरूपवाले ब्रह्मा (अपने आसनसे) उठे और सौहार्द्रभावसे विष्णुको गले लगा लिये। आलिङ्गनके बाद विधिपूर्वक अर्चा आदिद्वारा हरिकी पूजा कर ब्रह्माने पूछा—(भगवन्) 'बहुत समयके बाद आपके यहाँ आनेका क्या कारण है?' उसके बाद जगत्पतिने कहा—ब्रह्मन्! 'मैंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। एक—देवोंके यज्ञभागके लिये मैंने बलिको बाँधा है।' यह वचन सुनकर ब्रह्माने प्रसन्न होकर कहा—यह कैसे! यह कैसे! आप उस (बाँधनेके लिये धृत) रूपको मुझे दिखलाइये। ऐसा वचन कहे जानेपर भगवान् गरुडध्वज (विष्णु)-ने शीघ्रतासे वह सर्वदेव-स्वरूप अपना रूप दिखला दिया। कमलनयन भगवान्‌के दस हजार योजन विस्तृत तथा उतने ही ऊँचे उस रूपको देखकर पितामहने प्रणाम किया। उसके बाद देरतक प्रणाम कर ब्रह्माने साधु, साधु कहा और श्रद्धापूर्वक नम्रतासे (उन) महादेवकी स्तुति करने लगे—॥ ४—११॥

हे देवोंके देव! वासुदेव! एकशृङ्ग! बहुरूप! वृषाकपे! भूतभावन! सुरों और असुरोंमें श्रेष्ठ! देवताओं और असुरोंका मथन करनेवाले पीतवस्त्रधारी! श्रीनिवास! असुरनिर्मितान्त! अमितनिर्मित! कपिल! महाकपिल! विष्वक्सेन! नारायण! आपको नमस्कार है। ध्रुवध्वज! सत्यध्वज! खड्गध्वज! तालध्वज! वैकुण्ठ! पुरुषोत्तम! वरेण्य! विष्णो! अपराजित! जय! जयन्त! विजय! कृतावर्त! महादेव! अनादे! अनन्त! आद्यन्त! मध्यनिधन! पुरञ्जय! धनञ्जय! शुचिश्रव! पृश्निगर्भ! (आपको नमस्कार है।) कमलगर्भ! कमलायताक्ष! श्रीपते! विष्णुमूल! मूलाधिवास! धर्माधिवास! धर्मवास! धर्माध्यक्ष! प्रजाध्यक्ष! गदाधर! श्रीधर! श्रुतिधर! वनमालाधर! लक्ष्मीधर! धरणीधर! पद्मनाभ! (आपको नमस्कार है।) विरिञ्चे!

आर्ष्टिषेण महासेन सेनाध्यक्ष पुरुष्टुत बहुकल्प महाकल्प कल्पनामुख अनिरुद्ध सर्वग सर्वात्मन् द्वादशात्मक सूर्यात्मक सोमात्मक कालात्मक व्योमात्मक भूतात्मक। रसात्मक परमात्मन् सनातन मुञ्जकेश हरिकेश गुडाकेश केशव नील सूक्ष्म स्थूल पीत रक्त श्वेत श्वेताधिवास रक्ताम्बरप्रिय प्रीतिकर प्रीतिवास हंस नीलवास सीरध्वज सर्वलोकाधिवास। कुशेशय अधोक्षज गोविन्द जनार्दन मधुसूदन वामन नमस्ते। सहस्रशीर्षोऽसि सहस्रदृगसि सहस्रपादोऽसि त्वं कमलोऽसि महापुरुषोऽसि सहस्रबाहुरसि सहस्रमूर्तिरसि त्वां देवाः प्राहुः सहस्रवदनं ते नमस्ते। ॐ नमस्ते विश्वदेवेश विश्वभूः विश्वात्मक विश्वरूप विश्वसम्भव त्वत्तो विश्वमिदमभवद् ब्राह्मणास्त्वन्मुखेभ्योऽभवन् क्षत्रिया दोःसम्भूताः ऊरुयुग्माद् विशोऽभवन् शूद्राश्चरणकमलेभ्यः। नाभ्या भवतोऽन्तरिक्षमजायत इन्द्राग्नी वक्त्रतो नेत्राद् भानुरभून्मनसः शशाङ्कः अहं प्रसादजस्तव क्रोधात् त्र्यम्बकः प्राणाज्जातो भवतो मातरिश्वा शिरसो द्यौरजायत श्रोत्राद् दिशो भूरियं चरणादभूत् श्रोत्रोद्भवा दिशो भवतः स्वयंभो नक्षत्रास्तेजोद्भवाः। मूर्त्तयश्चामूर्तयश्च सर्वे त्वत्तः समुद्भूताः। अतो विश्वात्मकोऽसि ॐ नमस्ते पुष्पहासोऽसि महाहासोऽसि परमोऽसि ॐकारोऽसि वषट्कारोऽसि स्वाहाकारोऽसि वौषट्कारोऽसि स्वधाकारोऽसि वेदमयोऽसि तीर्थमयोऽसि यजमानमयोऽसि। यज्ञमयोऽसि सर्वधाताऽसि यज्ञभोक्ताऽसि शुक्रधाताऽसि भूर्द भुवर्द स्वर्द स्वर्णद गोद अमृतदोऽसीति। ॐ ब्रह्मादिरसि ब्रह्ममयोऽसि यज्ञोऽसि वेदकामोऽसि वेद्योऽसि यज्ञधारोऽसि महामीनोऽसि महासेनोऽसि महाशिरा असि। नृकेसर्यसि होताऽसि होम्योऽसि हव्योऽसि हूयमानोऽसि हयमेधोऽसि पोताऽसि पावयिताऽसि पूतोऽसि

आर्ष्टिषेण! महासेन! सेनाध्यक्ष! पुरुष्टुत! बहुकल्प! महाकल्प! कल्पनामुख! अनिरुद्ध! सर्वग! सर्वात्मन्! द्वादशात्मक! सूर्यात्मक! सोमात्मक! कालात्मक! व्योमात्मक! भूतात्मक! (आपको नमस्कार है।) रसात्मक! परमात्मन्! सनातन! मुञ्जकेश! हरिकेश! गुडाकेश! केशव! नील! सूक्ष्म! स्थूल! पीत! रक्त! श्वेत! श्वेताधिवास! रक्ताम्बरप्रिय! प्रीतिकर! प्रीतिवास! हंस! नीलवास! सीरध्वज! सर्वलोकाधिवास! कुशेशय! अधोक्षज! गोविन्द! जनार्दन! मधुसूदन! वामन! आपको नमस्कार है। आप सहस्रशीर्ष, सहस्रनेत्र, सहस्रपाद, कमल, महापुरुष, सहस्रबाहु एवं सहस्रमूर्ति हैं। आपको देवगण सहस्रवदन कहते हैं। आपको नमस्कार है। ॐ विश्वदेवेश! विश्वभू! विश्वात्मक! विश्वरूप! विश्वसम्भव! आपको नमस्कार है। आपसे यह विश्व उत्पन्न हुआ है। आपके मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, दोनों जाँघोंसे वैश्य एवं चरणकमलोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं। स्वयम्भो! आपकी नाभिसे अन्तरिक्ष, मुखसे इन्द्र एवं अग्नि, नेत्रसे सूर्य, मनसे चन्द्रमा और आपके प्रसादसे मैं हुआ हूँ। आपके क्रोधसे त्रिनेत्र (शंकरजी), प्राणसे वायु, सिरसे स्वर्गलोक, कर्णसे दिशाएँ, चरणोंसे यह पृथ्वी, कानसे दिशाएँ एवं तेजसे नक्षत्र उत्पन्न हुए हैं। सम्पूर्ण मूर्त और अमूर्त पदार्थ आपसे उत्पन्न हुए हैं। अतः आप विश्वात्मक हैं। ॐ आपको नमस्कार है। आप पुष्पहास, महाहास, परम, ॐकार, वषट्कार, स्वाहाकार, वौषट्कार, स्वधाकार, वेदमय, तीर्थमय, यजमानमय, यज्ञमय, सर्वधाता, यज्ञभोक्ता, शुक्रधाता, भूर्द, भुवर्द, स्वर्द, स्वर्णद, गोद एवं अमृतद हैं। ॐ आप ब्रह्मादि, ब्रह्ममय, यज्ञ, वेदकाम, वेद्य, यज्ञधार, महामीन, महासेन, महाशिरा, नृकेसरी, होता, होम्य, हव्य, हूयमान, हयमेध, पोता, पावयिता, पूत,

पूज्योऽसि दाताऽसि हन्यमानोऽसि ह्रियमाणोऽसि हर्त्तासीति। ॐ नीतिरसि नेताऽसि अग्र्योऽसि विश्वधामाऽसि शुभाण्डोऽसि ध्रुवोऽसि आरणेयोऽसि। ध्यानोऽसि ध्येयोऽसि श्रेयोऽसि ज्ञानोऽसि यष्टाऽसि दानोऽसि भूमाऽसि ईक्ष्योऽसि ब्रह्माऽसि होताऽसि उद्गाताऽसि गतिमतां गतिरसि ज्ञानिनां ज्ञानमसि योगिनां योगोऽसि मोक्षगामिनां मोक्षोऽसि श्रीमतां श्रीरसि गृह्योऽसि पाताऽसि परमसि। सोमोऽसि सूर्योऽसि दीक्षाऽसि दक्षिणाऽसि नरोऽसि त्रिनयनोऽसि महानयनोऽसि आदित्यप्रभवोऽसि सुरोत्तमोऽसि शुचिरसि शुक्रोऽसि नभोऽसि नभस्योऽसि इषोऽसि ऊर्जोऽसि सहोऽसि सहस्योऽसि तपोऽसि तपस्योऽसि मधुरसि। माधवोऽसि कालोऽसि संक्रमोऽसि विक्रमोऽसि पराक्रमोऽसि अश्वग्रीवोऽसि महामेधोऽसि शङ्करोऽसि हरीश्वरोऽसि शम्भुरसि ब्रह्मेशोऽसि सूर्योऽसि मित्रावरुणोऽसि प्राग्वंशकायोऽसि भूतादिरसि महाभूतोऽसि ऊर्ध्वकर्माऽसि कर्त्ताऽसि। सर्वपापविमोचनोऽसि त्रिविक्रमोऽसि ॐ नमस्ते।

पुलस्त्य उवाच

इत्थं स्तुतः पद्मभवेन विष्णु-
स्तपस्विभिश्चाद्भुतकर्मकारी ।
प्रोवाच देवं प्रपितामहं तु
वरं वृणीष्वामलसत्त्ववृत्ते॥ १२
तमब्रवीत् प्रीतियुतः पितामहो
वरं ममेहाद्य विभो प्रयच्छ।
रूपेण पुण्येन विभो ह्यनेन
संस्थीयतां मद्भवने मुरारे॥ १३
इत्थं वृते देववरेण प्रादात्
प्रभुस्तथास्त्विति तमव्ययात्मा।
तस्थौ हि रूपेण हि वामनेन
सम्पूज्यमानः सदने स्वयम्भोः॥ १४
नृत्यन्ति तत्राप्सरसां समूहा
गायन्ति गीतानि सुरेन्द्रगायनाः।
विद्याधरास्तूर्यवरांश्च वादयन्
स्तुवन्ति देवासुरसिद्धसङ्घाः॥ १५
ततः समाराध्य विभुं सुराधिपः
पितामहो धौतमलः स शुद्धः।
स्वर्गे विरिञ्चिः सदनात् सुपुष्पा-
ण्यानीय पूजां प्रचकार विष्णोः॥ १६

पूज्य, दाता, हन्यमान, ह्रियमाण एवं हर्ता हैं। ॐ आप नीति, नेता, अग्र्य, विश्वधाम, शुभाण्ड, ध्रुव, आरणेय, ध्यान, ध्येय, ज्ञेय, ज्ञान, यष्टा, दान, भूमा, ईक्ष्य, ब्रह्मा, होता, उद्गाता, गतिमानोंकी गति, ज्ञानियोंके ज्ञान, योगियोंके योग, मोक्षार्थियोंके मोक्ष, श्रीमानोंकी श्री, गृह्य, पाता एवं परम हैं। आप सोम, सूर्य, दीक्षा, दक्षिणा, नर, त्रिनयन, महानयन, आदित्यप्रभव, सुरोत्तम, शुचि, शुक्र, नभ, नभस्य, इष ऊर्ज, सह, सहस्य, तप, तपस्य, मधु, माधव, काल, संक्रम, विक्रम, पराक्रम, अश्वग्रीव, महामेध, शंकर, हरीश्वर, शम्भु, ब्रह्मेश, सूर्य, मित्रावरुण, प्राग्वंशकाय, भूतादि, महाभूत, ऊर्ध्वकर्मा, कर्त्ता, सर्वपापविमोचन एवं त्रिविक्रम हैं। आपको ॐ नमस्कार है।

पुलस्त्यजी बोले—ब्रह्मा एवं तपस्वियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर अद्भुत कर्म करनेवाले विष्णुने प्रपितामह देवसे कहा—अमलसत्त्ववृत्ते! (निर्मल सत्स्वरूपवाले) आप वर माँगिये। पितामहने प्रसन्नता-पूर्वक उनसे कहा—विभो! मुरारे! 'आप इस पवित्र रूपसे मेरे भवनमें स्थित रहें। मुझे यही वर प्रदान करें। इस प्रकार देवश्रेष्ठके वर माँगनेपर अव्ययात्मा प्रभुने उनसे कहा—ऐसा ही होगा। उसके बाद वे स्वयम्भूके भवनमें वामनरूपसे पूजित होते हुए रहने लगे। वहाँ अप्सराओंका समूह नृत्य करने लगा, सुरेन्द्रके गायक गान करने लगे, विद्याधर श्रेष्ठ तूर्य बजाने लगे एवं देव, असुर तथा सिद्धोंके समूह स्तुति करने लगे। विभुकी समाराधनाके पश्चात् देवेश पितामह ब्रह्मा पापरहित एवं शुद्ध हो गये। स्वर्गमें ब्रह्माने घरमेंसे सुन्दर पुष्पोंको लाकर उनसे विष्णुका पूजन किया।

स्वर्गे सहस्रं स तु योजनानां
विष्णोः प्रमाणेन हि वामनोऽभूत्।
तत्रास्य शक्रः प्रचकार पूजां
स्वयम्भुवस्तुल्यगुणां महर्षे॥ १७
एतत् तवोक्तं भगवांस्त्रिविक्रम-
श्चकार यद् देवहितं महात्मा।
रसातलस्थो दितिजश्चकार
यत्तच्छृणुष्वाद्य वदामि विप्र॥ १८

विष्णु स्वर्गमें वामन-रूपसे (वढ़कर) हजार योजन विस्तृत हो गये। महर्षे! वहाँ इन्द्रने ब्रह्माके समान गुणोंसे युक्त पदार्थोंसे उनकी पूजा की। विप्र! महात्मा भगवान् त्रिविक्रमने बलिको रसातलमें भेजकर देवताओंका जो कल्याण-साधन किया था, वह मैंने आपसे कहा। दैत्यने रसातलमें रहते हुए जो कार्य किया उसका वर्णन मैं अब कर रहा हूँ, उसे सुनिये—॥ १२—१८॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बानबेवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ९२॥

तिरानबेवाँ अध्याय

बलिका पातालमें वास, सुदर्शनचक्रका वहाँ प्रवेश, बलिद्वारा सुदर्शनचक्रकी स्तुति, प्रह्लादद्वारा विष्णुभक्तिकी प्रशंसा

पुलस्त्य उवाच

गत्वा रसातलं दैत्यो महार्हमणिचित्रितम्।
शुद्धस्फटिकसोपानं कारयामास वै पुरम्॥ १

तत्र मध्ये सुविस्तीर्णः प्रासादो वज्रवेदिकः।
मुक्ताजालान्तरद्वारो निर्मितो विश्वकर्मणा॥ २

तत्रास्ते विविधान् भोगान् भुञ्जन् दिव्यान् स मानुषान्।
नाम्ना विन्ध्यावलीत्येवं भार्याऽस्य दयिताऽभवत्॥ ३

युवतीनां सहस्रस्य प्रधाना शीलमण्डिता।
तया सह महातेजा रेमे वैरोचनिर्मुने॥ ४

भोगासक्तस्य दैत्यस्य वसतः सुतले तदा।
दैत्यतेजोहरः प्राप्तः पाताले वै सुदर्शनः॥ ५

चक्रे प्रविष्टे पातालं दानवानां पुरे महान्।
बभौ हलहलाशब्दः क्षुभितार्णवसंनिभः॥ ६

तं च श्रुत्वा महाशब्दं बलिः खड्गं समाददे।
आः किमेतदितीत्थं च पप्रच्छासुरपुङ्गवः॥ ७

पुलस्त्यजी बोले—(नारदजी!) रसातलमें जाकर दैत्यने बहुमूल्य मणियोंसे चित्रित शुद्ध स्फटिकके सोपानसे विभूषित नगर बनाया। विश्वकर्माने उसके बीचमें अत्यन्त विस्तृत वज्रमय वेदी बनायी तथा मोतीजड़ी खिड़कियोंके मध्य फाटकवाला महल बनाया। बलि भाँति-भाँतिके स्वर्गीय तथा मनुष्योंके योग्य भोगोंका उपभोग करते हुए वहाँ निवास करने लगा। विन्ध्यावली नामकी उसकी प्रिय पत्नी थी। मुने! वह हजारों युवतियोंमें प्रधान तथा एक शीलवती स्त्री थी। महातेजस्वी विरोचन-पुत्र बलि उसके साथ सुख करने लगा। एक दिन भोग भोगनेमें आसक्त दैत्यके सुतल लोकमें रहते समय दैत्योंके तेजका हरण करनेवाला सुदर्शनचक्र पातालमें प्रवेश किया॥ १—५॥

पातालमें सुदर्शनचक्रके प्रवेश करनेपर दानवोंके पुरमें क्षुब्ध हुए सागरके समान महान् हलहला शब्द उत्पन्न हुआ। उस महान् शब्दको सुनकर असुरश्रेष्ठ बलिने हाथमें एक तलवार ले ली और इस प्रकार पूछा—'अरे! यह क्या है'?

ततो विन्ध्यावली प्राह सान्त्वयन्ती निजं पतिम्।
कोशे खड्गं समावेश्य धर्मपत्नी शुचिव्रता॥ ८
एतद् भगवतश्चक्रं दैत्यचक्रक्षयंकरम्।
सम्पूजनीयं दैत्येन्द्र वामनस्य महात्मनः।
इत्येवमुक्त्वा चार्वङ्गी सार्घपात्रा विनिर्ययौ॥ ९
अथाभ्यागात् सहस्त्रारं विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम्।
ततोऽसुरपतिः प्रह्वः कृताञ्जलिपुटो मुने।
सम्पूज्य विधिवच्चक्रमिदं स्तोत्रमुदीरयत्॥ १०

बलिरुवाच

नमस्यामि हरेश्चक्रं दैत्यचक्रविदारणम्।
सहस्त्रांशुं सहस्त्राभं सहस्त्रारं सुनिर्मलम्॥ ११
नमस्यामि हरेश्चक्रं यस्य नाभ्यां पितामहः।
तुण्डे त्रिशूलधृक् शर्व आरामूले महाद्रयः॥ १२
आरेषु संस्थिता देवाः सेन्द्राः सार्काः सपावकाः।
जवे यस्य स्थितो वायुरापोऽग्निः पृथिवी नभः॥ १३
आरप्रान्तेषु जीमूताः सौदामिन्यृक्षतारकाः।
बाह्यतो मुनयो यस्य बालखिल्यादयस्तथा॥ १४
तमायुधवरं वन्दे वासुदेवस्य भक्तितः।
यन्मे पापं शरीरोत्थं वाग्जं मानसमेव च॥ १५
तन्मे दहस्व दीप्तांशो विष्णोश्चक्र सुदर्शन।
यन्मे कुलोद्भवं पापं पैतृकं मातृकं तथा॥ १६
तन्मे हरस्व तरसा नमस्ते अच्युतायुध।
आधयो मम नश्यन्तु व्याधयो यान्तु संक्षयम्॥
त्वन्नामकीर्तनाच्चक्र दुरितं यातु संक्षयम्॥ १७
इत्येवमुक्त्वा मतिमान् समभ्यर्च्याथ भक्तितः।
संस्मरन् पुण्डरीकाक्षं सर्वपापप्रणाशनम्॥ १८
पूजितं बलिना चक्रं कृत्वा निस्तेजसोऽसुरान्।
निश्चक्रामाथ पातालाद् विषुवे दक्षिणे मुने॥ १९
सुदर्शने निर्गते तु बलिर्विक्लवतां गतः।
परमामापदं प्राप्य सस्मार स्वपितामहम्॥ २०

उसके बाद पवित्रताका व्रत करनेवाली धर्मपत्नी विध्यावलीने अपने पतिको सान्त्वना देकर तथा तलवारको म्यानमें रखवाकर यह कहा—ऐश्वर्य आदि छः विभूतियोंवाले महान् आत्मा वामनका दैत्यसमूहका संहार करनेवाला यह आराधनीय चक्र है। इस प्रकार कहकर वह सुन्दरी अर्घ्यपात्रके साथ बाहर गयी। उसी समय विष्णुका हजारों अरोंवाला सुदर्शनचक्र आ पहुँचा। मुने! असुरपतिने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर विधिवत् चक्रका पूजन किया तथा यह स्तुति की॥ ६—१०॥

बलिने स्तुति की—दैत्य-समूहका संहार करनेवाले, अनन्त किरणोंसे युक्त हजारों प्रकारकी आभावाले, हजारों अरोंसे युक्त विष्णुके निर्मल सुदर्शनचक्रको मैं नमस्कार करता हूँ। विष्णुके उस चक्रको मैं नमस्कार करता हूँ, जिसकी नाभिमें पितामह, चोटीपर त्रिशूल धारण करनेवाले महादेव, अरोंके मूलमें महान् पर्वत, अरोंमें इन्द्र, सूर्य, अग्नि आदि देवता, वेगमें वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश, अरोंके किनारोंमें मेघ, विद्युत्, नक्षत्र एवं ताराओंके समूह तथा बाह्यभागमें बालखिल्य आदि मुनि स्थित हैं। मैं श्रद्धापूर्वक वासुदेवके उस श्रेष्ठ आयुधको नमस्कार करता हूँ। विष्णुके प्रदीप्त किरणवाले सुदर्शनचक्र! मेरे शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक पापोंका आप विनाश करें। अच्युतायुध! मेरे कुलमें हुए पैतृक एवं मातृक पापोंका शीघ्रतापूर्वक आप हरण करें। आपको नमस्कार है। मेरी सारी आधि-व्याधियोंका नाश हो जाय। चक्र! आपके नामका कीर्तन करनेसे पापोंका नाश हो जाय। इस प्रकार बुद्धिमान् (बलि)-ने श्रद्धापूर्वक चक्रकी पूजा की तथा समस्त पापोंका विनाश करनेवाले पुण्डरीकाक्ष भगवान्का स्मरण किया॥ ११—१८॥

मुने! बलिसे अर्चित हुआ चक्र असुरोंको तेजरहित करके पातालसे निकला और दक्षिण दिशाकी ओर चला गया। सुदर्शनके निकल जानेपर बलि अत्यन्त बेचैन हो गया। घोर संकट आनेपर उसने अपने पितामहको याद किया।

स चापि संस्मृतः प्राप्तः सुतलं दानवेश्वरः।
दृष्ट्वा तस्थौ महातेजाः सार्घपात्रो बलिस्तदा॥ २१

तमर्च्य विधिना ब्रह्मन् पितुः पितरमीश्वरम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत्॥ २२

संस्मृतोऽसि मया तात सुविषण्णेन चेतसा।
तन्मे हितं च पथ्यं च श्रेयोऽग्र्यं वद तात मे॥ २३

किं कार्यं तात संसारे वसता पुरुषेण हि।
कृतेन येन वै नास्य बन्धः समुपजायते॥ २४

संसारार्णवमग्नानां नराणामल्पचेतसाम्।
तरणे यो भवेत् पोतस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ २५

पुलस्त्य उवाच

एतद्वचनमाकर्ण्य तत्पौत्राद् दानवेश्वरः।
विचिन्त्य प्राह वचनं संसारे यद्धितं परम्॥ २६

प्रह्लाद उवाच

साधु दानवशार्दूल यत्ते जाता मतिस्त्वियम्।
प्रवक्ष्यामि हितं तेऽद्य तथाऽन्येषां हितं बले॥ २७

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम्।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम्॥ २८

ये संश्रिता हरिमनन्तमनादिमध्यं
नारायणं सुरगुरुं शुभदं वरेण्यम्।
शुद्धं खगेन्द्रगमनं कमलालयेशं
ते धर्मराजकरणं न विशन्ति धीराः॥ २९

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान्
प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम्॥ ३०

तथाऽन्यदुक्तं नरसत्तमेन
इक्ष्वाकुणा भक्तियुतेन नूनम्।
ये विष्णुभक्ताः पुरुषाः पृथिव्यां
यमस्य ते निर्विषया भवन्ति॥ ३१

स्मरण करते ही दैत्येश्वर (प्रह्लाद) सुतलमें आ गये। (उन्हें) देखते ही महातेजस्वी बलि तुरंत हाथमें अर्घ्य लिये उठ खड़ा हुआ। ब्रह्मन्! अपने समर्थ पितामहकी विधिपूर्वक पूजा करनेके बाद बलिने हाथ जोड़कर यह वचन कहा—तात! अत्यन्त शोकमग्न-चित्तसे मैंने आपका स्मरण किया है। अतः तात! मुझे हितकर, पथ्य एवं कल्याणकारी उत्तम उपदेश दें। तात! मनुष्योंको संसारमें रहते हुए क्या करना चाहिये, जिसके करनेसे उसे बन्धन न हो। संसार-समुद्रमें निमग्न हुए अल्पमति मनुष्योंको तरनेके लिये पोतस्वरूप क्या है, आप मुझसे इसे बतावें॥ १९—२५॥

पुलस्त्यजी बोले—अपने उस पौत्रके वचनको सुननेके बाद दानवेश्वर (प्रह्लाद)-ने विचारकर संसारमें कल्याणकर श्रेष्ठ वचन कहा—॥ २६॥

प्रह्लादने कहा—दानवश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, जो तुम्हें ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई। बले! अब मैं तुम्हारे और दूसरोंके लिये कल्याणकारी वचन कहता हूँ। संसाररूपी अगाध समुद्रमें डूबे हुए, द्वन्द्वरूपी वायुसे आहत, पुत्र, कन्या, पत्नी आदिकी रक्षाके भारसे दुःखी, नौकाके बिना भयंकर विषयरूपी जलमें डूबते हुए मनुष्योंके लिये विष्णुरूप नौका ही एकमात्र सहारा होता है। आदि, मध्य और अन्तसे रहित कल्याणप्रद, वरणीय, गरुड़वाहन, लक्ष्मीकान्त, पवित्र, देवगुरु, नारायण हरिका आश्रय ग्रहण करनेवाले धैर्यशाली मनुष्य यमराजके शासनमें नहीं पड़ते। यमराज हाथमें पाश लिये खड़े अपने दूतको देखकर उसके कानमें कहते हैं कि मधुसूदनकी शरणमें गये हुए मनुष्योंको छोड़ देना; क्योंकि मैं अन्य मनुष्योंका ही शासक हूँ, वैष्णवोंका नहीं॥ २७—३०॥

इसके सिवा श्रद्धायुक्त नरश्रेष्ठ इक्ष्वाकुने कहा था कि मृत्युलोकमें विष्णुभक्त व्यक्ति यमके शासन-विषयसे बाहर हैं।

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पितम्।
तावेव केवलं श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ॥ ३२
नूनं न तौ करौ प्रोक्तौ वृक्षशाखाग्रपल्लवौ।
न यौ पूजयितुं शक्तौ हरिपादाम्बुजद्वयम्॥ ३३
नूनं तत्कण्ठशालूकमथवा प्रतिजिह्विका।
रोगो वाऽन्यो न सा जिह्वा या न वक्ति हरेर्गुणान्॥ ३४
शोचनीयः स बन्धूनां जीवन्नपि मृतो नरः।
यः पादपङ्कजं विष्णोर्न पूजयति भक्तितः॥ ३५
ये नरा वासुदेवस्य सततं पूजने रताः।
मृता अपि न शोच्यास्ते सत्यं सत्यं मयोदितम्॥ ३६
शारीरं मानसं वाग्जं मूर्तामूर्तं चराचरम्।
दृश्यं स्पृश्यमदृश्यं च तत्सर्वं केशवात्मकम्॥ ३७

वही जिह्वा है जो हरिका गुणगान करती है, वही चित्त है जो उनमें लीन है, वे ही हाथ प्रशंसाके योग्य हैं जो उनकी अर्चना करते हैं। जो हाथ श्रीहरिके दोनों चरण-कमलोंकी अर्चना नहीं करते, वे हाथ नहीं हैं, अपितु वृक्षकी शाखामें लगे हुए आगेके पल्लव हैं। जो जिह्वा हरिके गुणोंका वर्णन नहीं करती, वह जिह्वा नहीं, अपितु कण्ठशालूक—जिह्वासे युक्त मेढकका कण्ठ (केवल दिखावेके लिये लगी हुई निकम्मी जीभ) अथवा अन्य कोई रोग है। श्रद्धापूर्वक विष्णुके चरण-कमलका अर्चन न करनेवाला मनुष्य जीता हुआ ही मरे हुएके समान है और बन्धुजनोंके लिये शोचनीय है। मैं यह सत्य कहता हूँ कि वासुदेवके पूजनमें सर्वदा रत रहनेवाले मनुष्य मरनेपर भी शोचनीय नहीं होते। समस्त शारीरिक, मानसिक, वाचिक, मूर्त, अमूर्त, जङ्गम, स्थावर, दृश्य, स्पृश्य एवं अदृश्य समस्त पदार्थ विष्णु-स्वरूप हैं॥ ३१—३७॥

येनार्चितो हि भगवान् चतुर्धा वै त्रिविक्रमः।
तेनार्चिता न संदेहो लोकाः सामरदानवाः॥ ३८
यथा रत्नानि जलधेरसंख्येयानि पुत्रक।
तथा गुणा हि देवस्य त्वसंख्यातास्तु चक्रिणः॥ ३९
ये शङ्खचक्राब्जकरं सशार्ङ्गिणं
खगेन्द्रकेतुं वरदं श्रियः पतिम्।
समाश्रयन्ते भवभीतिनाशनं
संसारगर्ते न पतन्ति ते पुनः॥ ४०
येषां मनसि गोविन्दो निवासी सततं बले।
न ते परिभवं यान्ति न मृत्योरुद्विजन्ति च॥ ४१
देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्नाः परायणम्।
न तेषां यमसालोक्यं न च ते नरकौकसः॥ ४२
न तां गतिं प्राप्नुवन्ति श्रुतिशास्त्रविशारदाः।
विप्रा दानवशार्दूल विष्णुभक्ता व्रजन्ति याम्॥ ४३
या गतिर्दैत्यशार्दूल हतानां तु महाहवे।
ततोऽधिकां गतिं यान्ति विष्णुभक्ता नरोत्तमाः॥ ४४

त्रिविक्रम भगवान्‌की चार प्रकारसे अर्चना करनेवाले मनुष्योंने निःसन्देह सुर और असुरसहित सम्पूर्ण लोकोंका पूजन कर लिया है। पुत्र! जिस प्रकार समुद्रके रत्न अनगिनत हैं, उसी प्रकार चक्र धारण करनेवाले विष्णुके गुण भी असंख्य हैं। हाथोंमें शङ्ख, चक्र, कमल एवं शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले गरुडध्वज, भवभीतिके नाश करनेवाले वरदानी लक्ष्मीपतिका आश्रय ग्रहण करनेवाले मनुष्य फिर संसाररूपी गड्ढेमें नहीं पड़ते। बले! जिनके मनमें गोविन्द निरन्तर निवास करते हैं, उनका अनादर नहीं होता और वे मृत्युसे आतङ्कित नहीं होते। मोक्ष-प्राप्ति करनेके श्रेष्ठ शरणस्थान शार्ङ्गधरदेव विष्णुकी शरणमें पहुँचे मनुष्योंको यमलोक या नरकमें नहीं जाना पड़ता। दानवश्रेष्ठ! वेदशास्त्रमें कुशल ब्राह्मणोंको वह गति नहीं प्राप्त होती जो गति विष्णुभक्त प्राप्त करते हैं। दैत्यश्रेष्ठ! महान् युद्धमें मारे गये व्यक्ति जो गति प्राप्त करते हैं, उस नरश्रेष्ठ विष्णुभक्तको उससे भी उत्तम गति प्राप्त होती है॥ ३८—४४॥

या गतिर्धर्मशीलानां सात्त्विकानां महात्मनाम्।
सा गतिर्गदिता दैत्य भगवत्सेविनामपि॥ ४५
सर्वावासं वासुदेवं सूक्ष्ममव्यक्तविग्रहम्।
प्रविशन्ति महात्मानं तद्भक्ता नान्यचेतसः॥ ४६
अनन्यमनसो भक्त्या ये नमस्यन्ति केशवम्।
शुचयस्ते महात्मानस्तीर्थभूता भवन्ति ते॥ ४७
गच्छन् तिष्ठन् स्वपञ् जाग्रत् पिबन्नश्नन्नभीक्ष्णशः।
ध्यायन् नारायणं यस्तु न ततोऽन्योऽस्ति पुण्यभाक्।
वैकुण्ठं खड्गपरशुं भवबन्धसमुच्छिदम्॥ ४८
प्रणिपत्य यथान्यायं संसारे न पुनर्भवेत्।
क्षेत्रेषु वसते नित्यं क्रीडन्नास्तेऽमितद्युतिः॥ ४९
आसीनः सर्वदेहेषु कर्मभिर्न स बध्यते।
येषां विष्णुः प्रियो नित्यं ते विष्णोः सततं प्रियाः॥ ५०
न ते पुनः सम्भवन्ति तद्भक्तास्तत्परायणाः।
ध्यायेद् दामोदरं यस्तु भक्तिनम्रोऽर्चयेत वा॥ ५१
न स संसारपङ्केऽस्मिन् मज्जते दानवेश्वर।
कल्यमुत्थाय ये भक्त्या स्मरन्ति मधुसूदनम्।
स्तुवन्त्यप्यभिशृण्वन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥ ५२
हरिवाक्यामृतं पीत्वा विमलैः श्रोत्रभाजनैः।
प्रहृष्यति मनो येषां दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥ ५३
येषां चक्रगदापाणौ भक्तिरव्यभिचारिणी।
ते यान्ति नियतं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः॥ ५४
विष्णुकर्मप्रसक्तानां भक्तानां या परा गतिः।
सा तु जन्मसहस्रेण न तपोभिरवाप्यते॥ ५५
किं जप्यैस्तस्य मन्त्रैर्वा किं तपोभिः किमाश्रमैः।
यस्य नास्ति परा भक्तिः सततं मधुसूदने॥ ५६
वृथा यज्ञा वृथा वेदा वृथा दानं वृथा श्रुतम्।
वृथा तपश्च कीर्तिश्च यो द्वेष्टि मधुसूदनम्॥ ५७

दैत्य! धर्मशील, सात्त्विक महात्माओंको जो गति प्राप्त होती है, भगवद्भक्तोंकी भी वही गति कही गयी है। अनन्यश्रद्धासे भगवान्‌की भक्ति करनेवाले सर्वावास, सूक्ष्म, अव्यक्त शरीरवाले महात्मा वासुदेवमें प्रवेश करते हैं। अनन्यमनसे श्रद्धापूर्वक केशवको नमन करनेवाले मनुष्य पवित्र एवं तीर्थस्वरूप होते हैं। चलते, खड़े, सोते, जागते एवं खाते-पीते हुए निरन्तर नारायणका ध्यान करनेवालेसे अधिक पुण्यका योग्य अधिकारी कोई नहीं होता। विधानानुकूल संसार-बन्धनका समुच्छेद करनेवाले खड्ग और परशु धारण करनेवाले वैकुण्ठदेवको नमस्कार करनेसे संसारमें पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता। क्षेत्रमें निवास करते हुए सर्वदा क्रीडा करनेवाला अमितकान्तिमान् कृष्णभक्त समस्त शरीरोंमें रहनेपर भी उनके कर्मोंके बन्धनमें नहीं पड़ता। विष्णु जिन्हें नित्य प्रिय हैं, वे सर्वदा विष्णुके प्रिय होते हैं। दामोदरका चिन्तन करनेवाले उनके भक्त, उनके शरणागत अथवा श्रद्धापूर्वक उनका अर्चन करनेवाले मनुष्य फिर जन्म ग्रहण नहीं करते। दानवेश्वर! प्रातःकाल उठकर श्रद्धापूर्वक मधुसूदनका चिन्तन करनेवाले मनुष्य इस संसाररूपी कीचड़में नहीं फँसते। उनका गुणगान करनेवाले एवं गुणोंको श्रवण करनेवाले मनुष्य कठिनाइयोंको पार कर जाते हैं॥ ४५—५२॥

विमल कर्णरूपी पात्रोंसे अमृतरूपी हरिके वचनोंका पान कर (श्रवण कर) जिनका मन अत्यन्त आह्लादित होता है वे कठिनाइयोंको पार कर जाते हैं। चक्र-गदाधारी विष्णुमें स्थिर श्रद्धा रखनेवाले मनुष्य निःसंदेह योगेश्वर हरिके स्थानमें जाते हैं। विष्णुकी सेवामें तत्पर रहनेवाले भक्तोंको जो श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है वह हजारों जन्मोंके भी तपसे नहीं प्राप्त हो सकती। मधुसूदनमें निरन्तर पराभक्तिसे रहित मनुष्योंके जप, मन्त्र, तप एवं आश्रमोंसे क्या लाभ? मधुसूदनसे द्वेष करनेवाले मनुष्योंके यज्ञ, वेद, दान, ज्ञान, तप एवं कीर्ति व्यर्थ हैं।

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने।
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥ ५८

विष्णुरेव गतिर्येषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥ ५९

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं वरेण्यं वरदं प्रभुम्।
नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत्॥ ६०

विष्टयो व्यतिपाताश्च येऽन्ये दुर्नीति सम्भवाः।
ते नामस्मरणाद्विष्णोर्नाशं यान्ति महासुर॥ ६१

तीर्थकोटिसहस्राणि तीर्थकोटिशतानि च।
नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ६२

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात्॥ ६३

प्राप्नुवन्ति न ताँल्लोकान् व्रतिनो वा तपस्विनः।
प्राप्यन्ते ये तु कृष्णस्य नमस्कारपरैर्नरैः॥ ६४

योऽप्यन्यदेवताभक्तो मिथ्यार्चयति केशवम्।
सोऽपि गच्छति साधूनां स्थानं पुण्यकृतां महत्॥ ६५

सातत्येन हृषीकेशं पूजयित्वा तु यत्फलम्।
सुचीर्णतपसां नृणां तत् फलं न कदाचन॥ ६६

त्रिसन्ध्यं पद्मनाभं तु ये स्मरन्ति सुमेधसः।
ते लभन्त्युपवासस्य फलं नास्त्यत्र संशयः॥ ६७

सततं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा हरिमर्चय।
तत्प्रसादात् परां सिद्धिं बले प्राप्स्यसि शाश्वतीम्॥ ६८

तन्मना भव तद्भक्तस्तद्याजी तं नमस्कुरु।
तमेवाश्रित्य देवेशं सुखं प्राप्स्यसि पुत्रक॥ ६९

आद्यं ह्यनन्तमजरं हरिमव्ययं च
ये वै स्मरन्त्यहरहर्नृवरा भुविस्थाः।
सर्वत्रगं शुभदं ब्रह्ममयं पुराणं
ते यान्ति वैष्णवपदं ध्रुवमक्षयञ्च॥ ७०

जनार्दनमें श्रद्धा रखनेवालोंको बहुत-से मन्त्रोंसे क्या लाभ? 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र सभी अर्थोंका सिद्ध करनेवाला है। जिनकी गति विष्णु हैं एवं जिनके हृदयमें नील कमलके समान श्याम वर्णवाले जनार्दन अवस्थित हैं, उनकी हार कहाँ सम्भव है? सभी मङ्गलोंके मङ्गलमूर्ति, वरेण्य, वरदानी प्रभु नारायणको नमस्कार कर समस्त कर्म करना चाहिये॥ ५३—६०॥

महासुर! विष्टियाँ, व्यतिपात एवं दुर्नीतिसे उत्पन्न हुई अन्य सभी आपत्तियाँ विष्णुके नामका स्मरण करनेसे विनष्ट हो जाती हैं। सौ करोड़ एवं हजारों करोड़ तीर्थ भी नारायणको प्रणाम करनेकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं। मृत्युलोकमें जितने तीर्थ और पवित्र स्थान—देवस्थान हैं, वे सभी विष्णुके नामके संकीर्तनसे प्राप्त होते हैं। श्रीकृष्णको नमन करनेवाले मनुष्य जिन लोकोंको प्राप्त करते हैं, उन्हें व्रत करनेवाले या तपस्या करनेवाले लोग नहीं प्राप्त करते। अन्य देवताका भक्त होते हुए केशवकी आडम्बरपूर्ण अर्चना करनेवाला मनुष्य भी पुण्यकर्म करनेवाले साधुओंके महान् स्थानको प्राप्त करता है। हृषीकेशके निरन्तर पूजनसे जो फल प्राप्त होता है घोर तप करनेवाले मनुष्योंको वह फल कभी नहीं प्राप्त होता। तीनों संध्याओंके समयमें पद्मनाभका स्मरण करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषोंको निस्संदेह उपवासका फल प्राप्त होता है॥ ६१—६७॥

बले! शास्त्रोंमें वर्णित कर्मद्वारा निरन्तर हरिका अर्चन करो। उनके प्रसादसे निरन्तर स्थिर रहनेवाली उत्तम सिद्धि प्राप्त करोगे। पुत्र! तुम तन्मना, तद्भक्त एवं उनका भजन करनेवाला होकर उन्हें नमन करो; उन देवेशका ही आश्रय ग्रहण कर तुम सुख प्राप्त करोगे। आद्य, अनन्त, अजर, सर्वत्रगामी, शुभदाता, ब्रह्ममय, पुराण, अव्यय हरिका दिन-रात स्मरण करनेवाले मृत्युलोकके वासी श्रेष्ठ मनुष्य ध्रुव एवं अक्षय वैष्णव पदको प्राप्त करते हैं।

ये मानवा विगतरागपरापरज्ञा
नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति।
ते धौतपाण्डुरपुटा इव राजहंसाः
संसारसागरजलस्य तरन्ति पारम्॥ ७१
ध्यायन्ति ये सततमच्युतमीशितारं
निष्कल्मषं प्रवरपद्मदलायताक्षम्।
ध्यानेन तेन हतकिल्बिषवेदनास्ते
मातुः पयोधररसं न पुनः पिबन्ति॥ ७२
ये कीर्तयन्ति वरदं वरपद्मनाभं
शङ्खाब्जचक्रवरचापगदासिहस्तम् ।
पद्मालयावदनपङ्कजषट्पदाख्यं
नूनं प्रयान्ति सदनं मधुघातिनस्ते॥ ७३
शृण्वन्ति ये भक्तिपरा मनुष्याः
संकीर्त्यमानं भगवन्तमाद्यम्।
ते मुक्तपापाः सुखिनो भवन्ति
यथाऽमृतप्राशनतर्पितास्तु ॥ ७४
तस्माद् ध्यानं स्मरणं कीर्तनं वा
नाम्नां श्रवणं पठतां सज्जनानाम्।
कार्यं विष्णोः श्रद्दधानैर्मनुष्यैः
पूजातुल्यं तत् प्रशंसन्ति देवाः॥ ७५
बाह्यैस्तथाऽन्तःकरणैरविक्लवै-
र्यो नार्चयेत् केशवमीशितारम्।
पुष्पैश्च पत्रैर्जलपल्लवादिभि-
र्नूनं स मुष्टो विधितस्करेण॥ ७६

जो आसक्तिहीन एवं पर और अपरके ज्ञाता मनुष्य निरन्तर गुरुदेव नारायणका चिन्तन करते हैं वे धुले हुए श्वेत पंखोंवाले राजहंसोंके समान विषय-रूपी जलसे भरे संसार-सागरको पार कर जाते हैं। जो मनुष्य उत्तम कमलदलके समान विस्तृत नेत्रोंवाले निर्दोष, नियमन करनेवाले अच्युतका निरन्तर चिन्तन करते हैं, वे उस ध्यानसे पाप-कष्टका नाश हो जानेपर फिर माताके पयोधरका रस नहीं पान करते (उनका पुनर्जन्म नहीं होता।) ॥ ६८—७२ ॥

हाथोंमें शङ्ख, कमल, चक्र, श्रेष्ठ धनुष, गदा तथा तलवार धारण करनेवाले, लक्ष्मीके मुखकमलके भ्रमर, वर देनेवाले पद्मनाभका कीर्तन करनेवाले मनुष्य निश्चय ही मधुसूदनका लोक प्राप्त करते हैं। अमृत पीनेसे तृप्त होनेवाले प्राणीके समान भक्तिपरायण मनुष्य आद्य भगवान्का कीर्तन सुनकर पापसे मुक्त एवं सुखी होते हैं। अतः श्रद्धाशील मनुष्यको विष्णुका ध्यान, स्मरण, कीर्तन अथवा पाठ करनेवाले मनुष्योंसे विष्णुके नामोंका श्रवण करना चाहिये। देवगण पूजाके समान उसकी प्रशंसा करते हैं। स्वस्थ, बाह्य तथा आन्तरिक इन्द्रियोंसे जो मनुष्य पुष्प, पत्र, जल एवं पल्लवादिद्वारा शासन करनेवाले केशवका अर्चन नहीं करता, निश्चय ही विधिरूपी तस्करने उसे लूट लिया है॥ ७३—७६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ९३

चौरानबेवाँ अध्याय

बलिका प्रह्लादसे प्रश्न, विष्णुकी पूजनादि-विधि, मासानुसार विविध दान-विधान, विष्णु-मन्दिर-निर्माण और विष्णुभक्त एवं वृद्धवाक्यकी महिमाका वर्णन

बलिरुवाच

भवता कथितं सर्वं समाराध्य जनार्दनम्।
या गतिः प्राप्यते लोके तां मे वक्तुमिहार्हसि॥ १

केनार्चनेन देवस्य प्रीतिः समुपजायते।
कानि दानानि शस्तानि प्रीणनाय जगद्गुरोः॥ २

उपवासादिकं कार्यं कस्यां तिथ्यां महोदयम्।
कानि पुण्यानि शस्तानि विष्णोस्तुष्टिप्रदानि वै॥ ३

यच्चान्यदपि कर्त्तव्यं हृष्टरूपैरनालसैः।
तदप्यशेषं दैत्येन्द्र ममाख्यातुमिहार्हसि॥ ४

प्रह्लाद उवाच

श्रद्दधानैर्भक्तिपरैर्यान्युद्दिश्य जनार्दनम्।
बले दानानि दीयन्ते तानूचुर्मुनयोऽक्षयान्॥ ५

ता एव तिथयः शस्ता यास्वभ्यर्च्य जगत्पतिम्।
तच्चित्तस्तन्मयो भूत्वा उपवासी नरो भवेत्॥ ६

पूजितेषु द्विजेन्द्रेषु पूजितः स्याज्जनार्दनः।
एतान् द्विषन्ति ये मूढास्ते यान्ति नरकं ध्रुवम्॥ ७

तानर्चयेन्नरो भक्त्या ब्राह्मणान् विष्णुतत्परः।
एवमाह हरिः पूर्वं ब्राह्मणा मामकी तनुः॥ ८

ब्राह्मणो नावमन्तव्यो बुधो वाप्यबुधोऽपि वा।
सोऽपि दिव्या तनुर्विष्णोस्तस्मात् तामर्चयेन्नरः॥ ९

तान्येव च प्रशस्तानि कुसुमानि महासुर।
यानि स्युर्वर्णयुक्तानि रसगन्धयुतानि च॥ १०

बलिने कहा—(तात!) आपने सब कुछ कह दिया। अब आप जनार्दनकी पूजा करनेसे प्राप्त होनेवाली गतिका कथन करें। किस प्रकारकी आराधना करनेसे वासुदेवको प्रसन्नता होती है? (उन) जगद्गुरुको प्रसन्न करनेके लिये किस प्रकारके दान करने चाहिये (कौन-सी वस्तुएँ प्रशंसित हैं)? किस तिथिमें उपवास आदि करनेसे महान् उन्नति होती है? विष्णुकी प्रीति उत्पन्न करनेवाले कौन-से पवित्र कार्य कहे गये हैं? दैत्येन्द्र! आलस्यसे रहित होकर प्रीतिपूर्वक करने योग्य अन्य कार्योंका भी वर्णन आप भलीभाँति मुझसे कीजिये॥ १—४॥

प्रह्लादने कहा—बले! श्रद्धासे भरे और भक्तिसे युक्त होकर जनार्दनके उद्देश्यसे जो दान दिये जाते हैं, उन्हें मुनियोंने कभी भी विनाश न होनेवाला (दान) कहा है। वे ही तिथियाँ प्रशंसनीय होती हैं, जिनमें मनुष्य विष्णुकी पूजा करनेके बाद उनमें चित्त एवं मन लगाकर उपवास करता है। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे जनार्दनकी (ही) पूजा होती है। उनसे वैर करनेवाले मूढ़ व्यक्ति निश्चय ही नरकमें जाते हैं। विष्णुमें अनुराग रखनेवाले भक्तिमान् मनुष्यको श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। पूर्वकालमें विष्णुने यह कहा था कि ब्राह्मण मेरे शरीर हैं। ज्ञानी (हो) अथवा अज्ञानी, (पर) ब्राह्मणका तिरस्कार (कभी) नहीं करना चाहिये। वह विष्णुका शरीर होता है। अतः उसकी पूजा करनी चाहिये। (जहाँतक विष्णुपूजाके लिये पुष्पका प्रश्न है,)

विशेषतः प्रवक्ष्यामि पुष्पाणि तिथयस्तथा।
दानानि च प्रशस्तानि माधवप्रीणनाय तु॥ ११

जाती शताह्वा सुमनाः कुन्दं बहुपुटं तथा।
बाणं च चम्पकाशोकं करवीरं च यूथिका॥ १२
पारिभद्रं पाटला च बकुलं गिरिशालिनी।
तिलकं च जपाकुसुमं पीतकं नागरं त्वपि॥ १३
एतानि हि प्रशस्तानि कुसुमान्यच्युतार्चने।
सुरभीणि तथान्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम्॥ १४
बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गमृगाङ्कयोः।
तमालामलकीपत्रं शस्तं केशवपूजने॥ १५
येषामपि हि पुष्पाणि प्रशस्तान्यच्युतार्चने।
पल्लवान्यपि तेषां स्युः पत्राण्यर्चाविधौ हरेः॥ १६
वीरुधां च प्रवालेन बर्हिषा चार्चयेत्तथा।
नानारूपैश्चाम्बुभवैः कमलेन्दीवरादिभिः॥ १७
प्रवालैः शुचिभिः श्लक्ष्णैर्जलप्रक्षालितैर्बले।
वनस्पतीनामर्च्येत तथा दूर्वाग्रपल्लवैः॥ १८
चन्दनेनानुलिम्पेत कुङ्कुमेन प्रयत्नतः।
उशीरपद्मकाभ्यां च तथा कालीयकादिना॥ १९
महिषाख्यं कणं दारु सिह्लकं सागरुं सिता।
शङ्खं जातीफलं श्रीशे धूपानि स्युः प्रियाणि वै॥ २०
हविषा संस्कृता ये तु यवगोधूमशालयः।
तिलमुद्गादयो माषा व्रीहयश्च प्रिया हरेः॥ २१
गोदानानि पवित्राणि भूमिदानानि चानघ।
वस्त्रान्नस्वर्णदानानि प्रीतये मधुघातिनः॥ २२
माघमासे तिला देयास्तिलधेनुश्च दानव।
इन्धनादीनि च तथा माधवप्रीणनाय तु॥ २३
फाल्गुने व्रीहयो मुद्गा वस्त्रकृष्णाजिनादिकम्।
गोविन्दप्रीणनार्थाय दातव्यं पुरुषर्षभैः॥ २४
चैत्रे चित्राणि वस्त्राणि शयनान्यासनानि च।
विष्णोः प्रीत्यर्थमेतानि देयानि ब्राह्मणेष्वथ॥ २५

महासुर! वर्ण, रस एवं गन्धसे युक्त पुष्प ही उत्तम होते हैं। अब मैं माधवकी प्रसन्नताके लिये कहे गये विशेष पुष्पों, तिथियों एवं दानोंका (स्पष्टतासे) वर्णन करता हूँ॥ ५—११॥

अच्युत (श्रीविष्णु)-की अर्चनाके लिये—मालती, शतावरी, चमेली, कुन्द, गुलाब, बहुपुट, बाण, चम्पा, अशोक, कनेर, जूही, पारिभद्र, पाटल, मौलसिरी, गिरिशालिनी, तिलक, अड़हुल, पीतक एवं नागर नामक पुष्प उत्तम हैं। इनके सिवा केतकीको छोड़कर अन्य सुगन्धित पुष्प भी श्रेष्ठ हैं। केशवके पूजनमें बिल्वपत्र, शमीपत्र, भृङ्ग एवं मृगाङ्कके पत्र, तमाल तथा आमलकीके पत्र प्रशंसनीय हैं। अच्युतके अर्चनमें जिन वृक्षोंके पुष्पोंका प्रयोग होता है उनके पल्लव एवं पत्र भी विष्णुके पूजनके लिये प्रशंसनीय होते हैं। वीरुधोंके किसलय एवं कुश तथा जलमें उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके कमल एवं इन्दीवरादिसे विष्णुका पूजन करना चाहिये। बले! वनस्पतियोंके चिकने, पवित्र एवं जलसे धोये हुए कोपलोंसे तथा दूबके अङ्कुरसे (विष्णुका) पूजन करना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक चन्दन, कुङ्कुम, उशीर (खश) पद्मक एवं कालीयक आदिसे विष्णुका अनुलेपन करना चाहिये। श्रीविष्णुको महिष नामक कण, दारु, सिह्लक, अगरु, सिता, शङ्ख एवं जातीफलका धूप प्रिय होता है॥ १२—२०॥

घृतसे संस्कृत जौ, गेहूँ, शालिधान्य, तिल, मूँग, उड़द और अन्न हरिको प्रिय हैं। हे निष्पाप! मधुसूदनको गौ, पवित्र भूमि, वस्त्र, अन्न और सोनेके दान प्रिय होते हैं। दानव! माघमासमें माधवकी प्रसन्नताके लिये तिल, तिलधेनु एवं इन्धनादिका दान करना चाहिये। महान् पुरुषोंको गोविन्दकी प्रीतिके लिये फाल्गुनमासमें चावल, मूँग, वस्त्र तथा कृष्णमृगचर्म दान करना चाहिये। चैत्रमासमें विष्णुकी प्रीतिके लिये ब्राह्मणोंकी भाँति-भाँतिके वस्त्र, शय्या एवं आसनोंका दान करना चाहिये।

गन्धमाल्यानि देयानि वैशाखे सुरभीणि वै।
देयानि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये॥ २६

उदकुम्भाम्बुधेनुं च तालवृन्तं सुचन्दनम्।
त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं साधुभिः सदा॥ २७

उपानद्युगलं छत्रं लवणामलकादिकम्।
आषाढे वामनप्रीत्यै दातव्यानि तु भक्तितः॥ २८

घृतं च क्षीरकुम्भाश्च घृतधेनुफलानि च।
श्रावणे श्रीधरप्रीत्यै दातव्यानि विपश्चिता॥ २९

मासि भाद्रपदे दद्यात् पायसं मधुसर्पिषी।
हृषीकेशप्रीणनार्थं लवणं सगुडोदनम्॥ ३०

तिलास्तुरङ्गं वृषभं दधि ताम्रायसादिकम्।
प्रीत्यर्थं पद्मनाभस्य देयमाश्वयुजे नरैः॥ ३१

रजतं कनकं दीपान् मणिमुक्ताफलादिकम्।
दामोदरस्य तुष्ट्यर्थं प्रदद्यात् कार्तिके नरः॥ ३२

खरोष्ट्राश्वतरान् नागान् यानयुग्यमजाविकम्।
दातव्यं केशवप्रीत्यै मासि मार्गशिरे नरैः॥ ३३

प्रासादनगरादीनि गृहप्रावरणादिकम्।
नारायणस्य तुष्ट्यर्थं पौषे देयानि भक्तितः॥ ३४

दासीदासमलङ्कारमन्नं षड्रससंयुतम्।
पुरुषोत्तमस्य तुष्ट्यर्थं प्रदेयं सार्वकालिकम्॥ ३५

यद्यदिष्टतमं किंचिद्यद्वाप्यस्ति शुचि गृहे।
तत्तद्धि देयं प्रीत्यर्थं देवदेवाय चक्रिणे॥ ३६

मधुसूदनकी प्रीतिके लिये वैशाखमासमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सुगन्धित गन्ध एवं माल्योंका दान करना चाहिये। त्रिविक्रमकी प्रीतिके लिये सज्जन व्यक्तिको ज्येष्ठमासमें जलका घड़ा, जलधेनु, ताड़का पंखा तथा सुन्दर चन्दनका दान करना चाहिये। भगवान् वामनकी प्रीतिके लिये आषाढ़मासमें भक्तिपूर्वक जूतेका जोड़ा, छत्र, लवण एवं आँवले आदिका दान करना चाहिये॥ २१—२८॥

बुद्धिमान् मनुष्यको श्रीधरकी प्रसन्नताके लिये श्रावणमासमें घी और दूधसे भरे घड़े, घृत, धेनु एवं फलोंका दान करना चाहिये। भाद्रपदमासमें हृषीकेशकी प्रसन्नताके लिये पायस, मधु, घी, नमक और गुड़से बनाये गये मीठे भातका दान करना चाहिये। मनुष्योंको पद्मनाभकी प्रसन्नताके लिये आश्विनमासमें तिल, घोड़ा, बैल, दही, ताँबा और लोहे आदिका दान करना चाहिये। मनुष्योंको दामोदरकी संतुष्टिके लिये कार्तिक-मासमें चाँदी, सोना, दीप, मणि, मुक्ता और फल आदिका दान करना चाहिये। मनुष्योंको केशवकी प्रीतिके लिये मार्गशीर्ष (अगहन)-मासमें खर, उष्ट्र, खच्चर, हाथी, सामान ढोनेवाला बकरा एवं भेड़का दान करना चाहिये। नारायणकी संतुष्टिके लिये पौषमासमें श्रद्धापूर्वक प्रासाद, नगर, गृह एवं ओढ़नेके वस्त्र आदिका दान करना चाहिये। पुरुषोत्तमकी संतुष्टिके लिये सभी समय दासी, दास, आभूषण एवं मधुर आदि षट् रसोंसे युक्त अन्नका दान करना चाहिये। चक्र धारण करनेवाले देवाधिदेवकी प्रसन्नताके लिये अपनी जो सबसे अधिक इच्छित वस्तु हो अथवा घरमें जो वस्तु पवित्र हो उसका दान करना चाहिये॥ २९—३६॥

यः कारयेन्मन्दिरं केशवस्य
पुण्याँल्लोकान् स जयेच्छाश्वतान् वै।
दत्त्वारामान् पुष्पफलाभिपन्नान्
भोगान् भुङ्क्ते कामतः श्लाघनीयान्॥ ३७

पितामहस्य पुरतः कुलान्यष्टौ तु यानि च।
तारयेदात्मना सार्धं विष्णोर्मन्दिरकारकः॥ ३८

केशवभगवान्का मन्दिर-निर्माण करानेवाला मनुष्य सतत स्थायी पुण्यलोकोंको प्राप्त करता है। फूल-फलवाले वाटिकाओंका दान करनेवाला इच्छानुसार प्रशंसनीय भोगोंका उपभोग करता है। विष्णुभगवान्के मन्दिरका निर्माण करानेवाला पुरुष अपने पितामहसे आगेके आठ कुलपुरुषोंका उद्धार करता है।

इमाश्च पितरो दैत्य गाथा गायन्ति योगिनः।
पुरतो यदुसिंहस्य ज्यामघस्य तपस्विनः॥ ३९
अपि नः स कुले कश्चिद् विष्णुभक्तो भविष्यति।
हरिमन्दिरकर्ता यो भविष्यति शुचिव्रतः॥ ४०
अपि नः सन्ततौ जायेद् विष्ण्वालयविलेपनम्।
सम्मार्जनं च धर्मात्मा करिष्यति च भक्तितः॥ ४१
अपि नः सन्ततौ जातौ ध्वजं केशवमन्दिरे।
दास्यते देवदेवाय दीपं पुष्पानुलेपनम्॥ ४२
महापातकयुक्तो वा पातकी चोपपातकी।
विमुक्तपापो भवति विष्ण्वायतनचित्रकृत्॥ ४३

दैत्य! पितरोंने यदुश्रेष्ठ योगी एवं तपस्वी ज्यामघके सामने इस गाथाका वर्णन किया था। क्या हमारे कुलमें पवित्र व्रत धारण करनेवाला इस प्रकारका कोई विष्णुभक्त उत्पन्न होगा जो हरिका मन्दिर बनवायेगा? क्या हमारी सन्ततिमें कोई विष्णुमन्दिरमें श्रद्धापूर्वक चूने आदिसे सफाई करानेवाला और झाड़ू देनेवाला धार्मिक उत्पन्न होगा? क्या हमारी सन्ततियोंमें ऐसा कोई होगा जो केशवके मन्दिरमें ध्वजाका दान करेगा और देवदेवेश्वरको दीप, पुष्प और सुगन्धित चन्दन आदि प्रदान करेगा? महापातकी, पातकी अथवा उपपातकी व्यक्ति विष्णुमन्दिरको भाँति-भाँतिके रंगोंसे सजाकर अथवा दिव्य चित्र बनाकर पापसे मुक्त हो जाता है॥ ३७—४३॥

इत्थं पितॄणां वचनं श्रुत्वा नृपतिसत्तमः।
चकारायतनं भूम्यां स्वयं च लिम्पतासुर॥ ४४
विभूतिभिः केशवस्य केशवाराधने रतः।
नानाधातुविकारैश्च पञ्चवर्णैश्च चित्रकैः॥ ४५
ददौ दीपानि विधिवद् वासुदेवालये वले।
सुगन्धितैलपूर्णानि घृतपूर्णानि च स्वयम्॥ ४६
नानावर्णा वैजयन्त्यो महारजनरञ्जिताः।
मञ्जिष्ठा नवरङ्गीयाः श्वेतपाटलिकाश्रिताः॥ ४७
आरामा विविधा हृद्याः पुष्पाढ्याः फलशालिनः।
लतापल्लवसंछन्ना देवदारुभिरावृताः॥ ४८
कारिताश्च महामञ्चाधिष्ठिताः कुशलैर्जनैः।
पौरोगवविधानज्ञै रत्नसंस्कारिभिर्दृढैः॥ ४९
तेषु नित्यं प्रपूज्यन्ते यतयो ब्रह्मचारिणः।
श्रोत्रिया ज्ञानसम्पन्ना दीनान्धविकलादयः॥ ५०
इत्थं स नृपतिः कृत्वा श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
ज्यामघो विष्णुनिलयं गत इत्यनुशुश्रुमः॥ ५१

असुर! पितृगणके इस प्रकारके वचनको सुनकर उस नृपश्रेष्ठने पृथ्वीपर मन्दिरका निर्माण करवाया। वह स्वयं उसमें चूने आदिसे सफाई तथा धोना-पोंछना आदि करता था। वह केशवकी विभूतियों, नाना प्रकारकी धातुओंसे निर्मित वस्तुओं तथा पाँच वर्णके तिलकोंसे पूजा करने लगा। बले! उसने वासुदेवके मन्दिरमें स्वयं विधिपूर्वक सुगन्धित तैल एवं घीसे भरे दीपकका दान किया। (उसने विष्णुमन्दिरमें) कुसुम्भ मजीठके रंगमें रँगे श्वेत एवं लाल वर्णके तथा नौ रंगोंवाले भाँति-भाँतिके ध्वजोंको आरोपित किया। (उसने) पुष्पों, फलों, लतापल्लवों तथा देवदारु आदि भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे पूर्ण उद्यानोंका निर्माण कराया। पाकशालाके अध्यक्षके विधानको जाननेवाले एवं रत्नोंसे अलंकृत करनेवाले अत्यन्त कुशल पुरुषोंसे अधिष्ठित बड़े-बड़े मञ्चोंका निर्माण करवाया। उनमें प्रतिदिन यतियों, ब्रह्मचारियों, श्रोत्रियों, ज्ञानियों, दीनों, अन्धों एवं विकलाङ्गों—लँगड़े-लूले आदि पुरुषोंका सत्कार होता था। हमलोगोंने सुना है कि ऐसा कार्य करनेसे श्रद्धावान् और जितेन्द्रिय राजा ज्यामघने विष्णुलोकको प्राप्त कर लिया॥ ४४—५१॥

तमेव चाद्यापि बले मार्गं ज्यामघकारितम्।
व्रजन्ति नरशार्दूल विष्णुलोकजिगीषवः॥ ५२
तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र कारयस्वालयं हरेः।
तमर्चयस्व यत्नेन ब्राह्मणांश्च बहुश्रुतान्।
पौराणिकान् विशेषेण सदाचाररताञ् शुचीन्॥ ५३
वासोभिर्भूषणै रत्नैर्गोभिर्भूकनकादिभिः।
विभवे सति देवस्य प्रीणनं कुरु चक्रिणः॥ ५४
एवं क्रियायोगरतस्य तेऽद्य
नूनं मुरारिः शुभदो भविष्यति।
नरा न सीदन्ति बले समाश्रिता
विभुं जगन्नाथमनन्तमच्युतम्॥ ५५

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा वचनं दितीश्वरो
वैरोचनं सत्यमनुत्तमं हि।
सम्पूजितस्तेन विमुक्तिमाययौ
सम्पूर्णकामो हरिपादभक्तः॥ ५६
गते हि तस्मिन् मुदिते पितामहे
बलेर्बभौ मन्दिरमिन्दुवर्णम्।
महेन्द्रशिल्पिप्रवरोऽथ केशवं
स कारयामास महामहीयान्॥ ५७
स्वयं स्वभार्यासहितश्चकार
देवालये मार्जनलेपनादिकाः।
क्रिया महात्मा यवशर्कराद्या
बलिं चकाराप्रतिमां मधुद्रुहः॥ ५८
दीपप्रदानं स्वयमायताक्षी
विन्ध्यावली विष्णुगृहे चकार।
गेयं स धर्म्यश्रवणं च धीमान्
पौराणिकैर्विप्रवरैरकारयत् ॥ ५९
तथाविधस्यासुरपुङ्गवस्य
धर्म्ये सुमार्गे प्रतिसंस्थितस्य।
जगत्पतिर्दिव्यवपुर्जनार्दन-
स्तस्थौ महात्मा बलिरक्षणाय॥ ६०

बले! विष्णुलोककी प्राप्तिकी कामना करनेवाले पुरुष आज भी राजा ज्यामघद्वारा प्रदर्शित उसी मार्गका आश्रय लेते हैं। इसलिये राजेन्द्र! तुम भी हरिका मन्दिर बनवाओ और प्रयत्नपूर्वक उन हरि, बहुश्रुत ब्राह्मणों एवं विशेष रूपसे सदाचारपरायण पवित्र पुराण जानने और प्रवचन करनेवालोंका पूजन करो। ऐश्वर्य रहनेपर वस्त्र, आभूषण, रत्न, गौ, पृथ्वी एवं स्वर्ण आदि (-के दान)-द्वारा चक्रधर विष्णुको प्रसन्न करो। तुम्हारे इस प्रकारकी क्रिया करनेमें तत्पर रहनेपर मुरारि निश्चय ही तुम्हारा कल्याण करेंगे। बले! विभु जगन्नाथ अनन्त अच्युतका आश्रय ग्रहण करनेवाले व्यक्ति दुःखी नहीं होते॥ ५२—५५॥

पुलस्त्यजी बोले—बलिसे इस प्रकार सत्य तथा श्रेष्ठ वचन कहनेके बाद विष्णुभगवान्‌के चरणोंमें अनुराग रखनेवाले सफलमनोरथ दितीश्वर प्रह्लाद बलिद्वारा किये गये सत्कारको ग्रहण कर मोक्षमार्गकी ओर प्रस्थित हो गये। पितामह प्रह्लादके प्रसन्न होकर चले जानेपर बलिका महल चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित होने लगा। महामहिम उस (बलि)-ने विश्वकर्मासे केशवका मन्दिर निर्मित करवाया। बलि स्वयं अपनी पत्नीके साथ उस देवालयमें मार्जन, लेपन आदि क्रियाएँ करने लगा। मधुसूदनके लिये महात्मा बलिने जौ एवं शक्कर आदिका उत्तम नैवेद्य निवेदित किया। विशालनयना विन्ध्यावली स्वयं विष्णुमन्दिरमें दीपदान करने लगी। बुद्धिमान् बलि पुराणवेत्ता श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे धार्मिक प्रवचन करवाने लगा॥ ५६—५९॥

उस प्रकारके धर्ममार्गमें स्थित रहनेवाले असुरोंमें श्रेष्ठ बलिकी रक्षाके लिये दिव्य शरीर धारण करनेवाले जगत्पति परमात्मा जनार्दन (वहाँ) विराजने लगे।

सूर्यायुताभं मुसलं प्रगृह्य
निघ्नन् स दुष्टानरियूथपालान्।
द्वारि स्थितो न प्रददौ प्रवेशं
प्राकारगुप्ते बलिनो गृहे तु॥ ६१
द्वारि स्थिते धातरि रक्षपाले
नारायणे सर्वगुणाभिरामे।
प्रासादमध्ये हरिमीशितार-
मभ्यर्चयामास सुरर्षिमुख्यम्॥ ६२
स एवमास्ते सुरराड् बलिस्तु
समर्चयन् वै हरिपादपङ्कजौ।
सस्मार नित्यं हरिभाषितानि
स तस्य जातो विनयाङ्कुशस्तु॥ ६३

वे द्वारपर रहते हुए दस हजार सूर्योंके समान तेजवाले मुसलको लेकर दुष्ट शत्रुओंके यूथपतियोंका संहार करते एवं प्राचीर (परकोटा)-से रक्षित बलिके भवनमें किसीको प्रवेश नहीं करने देते थे। सभी गुणोंसे सुन्दर लगनेवाले विधाता नारायणके द्वारपाल होनेपर बलि भी अपने महलके भीतर निरन्तर सुरों एवं ऋषियोंमें सर्वश्रेष्ठ नियमनकर्ता हरिका पूजन करने लगा। असुर-राज बलि इस प्रकार हरिके चरणकमलोंका अर्चन करते हुए नित्य हरिके वचनोंका स्मरण किया करता था। वह (नियम) उसके लिये विनयका अङ्कुश हो गया॥ ६०—६३॥

इदं च वृत्तं स पपाठ दैत्यराट्
स्मरन् सुवाक्यानि गुरोः शुभानि।
तथ्यानि पथ्यानि परत्र चेह
पितामहस्येन्द्रसमस्य वीरः॥ ६४
ये वृद्धवाक्यानि समाचरन्ति
श्रुत्वा दुरुक्तान्यपि पूर्वतस्तु।
स्निग्धानि पश्चान्नवनीतशुद्धा
मोदन्ति ते नात्र विचारमस्ति॥ ६५

आपद्भुजंगदष्टस्य मन्त्रहीनस्य सर्वदा।
वृद्धवाक्यौषधा नूनं कुर्वन्ति किल निर्विषम्॥ ६६

वृद्धवाक्यामृतं पीत्वा तदुक्तमनुमान्य च।
या तृप्तिजायते पुंसां सोमपाने कुतस्तथा॥ ६७

आपत्तौ पतितानां येषां वृद्धा न सन्ति शास्तारः।
ते शोच्या बन्धूनां जीवन्तोऽपीह मृततुल्याः स्युः॥ ६८

आपद्ग्राहगृहीतानां वृद्धाः सन्ति न पण्डिताः।
येषां मोक्षयितारो वै तेषां शान्तिर्न विद्यते॥ ६९

आपज्जलनिमग्नानां ह्रियतां व्यसनोर्मिभिः।
वृद्धवाक्यैर्विना नूनं नैवोत्तारं कथंचन॥ ७०

तस्माद् यो वृद्धवाक्यानि शृणुयाद् विदधाति च।
स सद्यः सिद्धिमाप्नोति यथा वैरोचनो बलिः॥ ७१

इन्द्रके समान श्रेष्ठ अपने पितामहके कल्याणप्रद इस लोक तथा परलोकमें कल्याणकारी एवं सुन्दर तथ्य वचनोंका स्मरण करते हुए वह वीर दैत्यराज इस वृत्तका पाठ (आवृत्ति) करता था। पूर्वमें कठोरतापूर्वक कहे गये और बादमें नवनीतके समान स्निग्ध (कोमल) एवं शुद्ध वृद्धवाक्योंका श्रवण कर तदनुसार आचरण करनेवाले निस्सन्देह आनन्द प्राप्त करते हैं। वृद्धवाक्यरूपी ओषधि आपत्तिरूपी सर्पसे दंशित मन्त्रहीन पुरुषको निस्सन्देह विषसे रहित कर देती है। वृद्धवचनरूपी अमृतको पीने एवं उनके कथनके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्योंको जो तृप्ति होती है वैसी तृप्ति सोमपानमें कहाँ है? वृद्धजन आपत्तिमें पड़े हुए जिन मनुष्योंका शासन (मार्गदर्शन) नहीं करते वे बन्धुओंके लिये शोचनीय तथा जीवित ही मरे हुएके समान होते हैं। आपत्तिरूपी ग्राहसे ग्रस्त जिन व्यक्तियोंको वृद्ध ज्ञानी लोग (उससे) मुक्त करानेवाले नहीं होते उन्हें शान्तिकी प्राप्ति नहीं होती। आपत्तिरूपी जलमें डूबे और व्यसनरूपी लहरोंके थपेड़े खानेवाले पुरुषोंका उद्धार वृद्ध वचनके सिवा अन्य किसी भी प्रकार नहीं हो सकता। अतः वृद्धवचनको सुनने एवं तदनुसार आचरण करनेवाला मनुष्य विरोचन-पुत्र बलिके समान शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है॥ ६४—७१॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ९४॥

पंचानबेवाँ अध्याय

पुराण-वाचन, श्रावण-श्रवण और पठनकी फलश्रुति

पुलस्त्य उवाच

एतन्मया पुण्यतमं पुराणं
तुभ्यं तथा नारद कीर्तितं वै।
श्रुत्वा च कीर्त्या परया समेतो
भक्त्या च विष्णोः पदमभ्युपैति॥ १
यथा पापानि पूयन्ते गङ्गावारिविगाहनात्।
तथा पुराणश्रवणाद् दुरितानां विनाशनम्॥ २
न तस्य रोगा जायन्ते न विषं चाभिचारिकम्।
शरीरे च कुले ब्रह्मन् यः शृणोति च वामनम्॥ ३
शृणोति नित्यं विधिवच्च भक्त्या
सम्पूजयन् यः प्रणतश्च विष्णुम्।
स चाश्वमेधस्य सदक्षिणस्य
फलं समग्रं परिहीनपापः॥ ४
प्राप्नोति दत्तस्य सुवर्णभूमे-
रश्वस्य गोनागरथस्य चैव।
नारी नरश्चापि च पादमेकं
शृण्वन् शुचिः पुण्यतमः पृथिव्याम्॥ ५
स्नाने कृते तीर्थवरे सुपुण्ये
गङ्गाजले नैमिषपुष्करे वा।
कोकामुखे यत् प्रवदन्ति विप्राः
प्रयागमासाद्य च माघमासे॥ ६
स तत्फलं प्राप्य च वामनस्य
संकीर्तयन् नान्यमनाः पदं हि।
गच्छेन्मया नारद तेऽद्य चोक्तं
यद् राजसूयस्य फलं प्रयच्छेत्॥ ७
यद् भूमिलोके सुरलोकलभ्ये
महत्सुखं प्राप्य नरः समग्रम्।
प्राप्नोति चास्य श्रवणान्महर्षे
सौत्रामणेर्नास्ति च संशयो मे॥ ८

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी! मैंने आपसे इस अत्यन्त पावन पुराणका कथन किया है। इसको सुननेसे मनुष्य उत्तम यश और भक्तिसे सम्पन्न होकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। जैसे गङ्गाजलमें स्नान करनेसे सारे पाप धुल जाते हैं, वैसे ही इस पुराणका श्रवण करनेसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मन्! वामनपुराणका श्रवण करनेवाले मनुष्यके शरीर एवं कुलमें रोग तथा अभिचार-कर्म (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि)-से उत्पन्न घातक प्रभाव नहीं होता। विनयपूर्वक विष्णुका अर्चन करते हुए श्रद्धासे विधानके अनुसार नित्य इस पुराणके सुननेवाले मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे दक्षिणाके सहित अश्वमेध-यज्ञ करने तथा सोना, भूमि, अश्व, गौ, हाथी तथा रथके दानका फल प्राप्त होता है। इस (पुराण)-का एक चरण (भाग) भी सुननेवाला पुरुष तथा स्त्री पृथ्वीमें पावन एवं अत्यन्त पुण्यवान् हो जाता है॥ १—५॥

ब्राह्मणलोग अत्यन्त पवित्र श्रेष्ठ तीर्थके जल, गङ्गाजल, नैमिषारण्य, पुष्कर, कोकामुख तथा माघमासमें प्रयागमें जाकर स्नान करनेसे जिस फलकी प्राप्तिका होना बतलाते हैं, एकाग्रमनसे वामनपुराणके एक चरणका कीर्तन करते हुए यात्रा करनेवाले पुरुषको (भी) वही फल प्राप्त होता है। नारदजी! मैंने आज आपसे उस पुराणको कहा है, जो राजसूययज्ञका फल देनेवाला है। महर्षे! मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसको सुननेसे मनुष्य पृथ्वी एवं देवलोकमें प्राप्त होने योग्य सारे महान् सुखोंको प्राप्तकर सौत्रामणि नामक यज्ञका फल प्राप्त करता है।

रत्नस्य दानस्य च यत्फलं भवेद्
यत्सूर्यस्य चेन्दोर्ग्रहणे च राहोः।
अन्नस्य दानेन फलं यथोक्तं
बुभुक्षिते विप्रवरे च साग्निके॥ ९
दुर्भिक्षसम्पीडितपुत्रभार्ये
यामी सदा पोषणतत्परे च।
देवाग्निविप्रर्षिरते च पित्रोः
शुश्रूषके भ्रातरि ज्येष्ठसाम्ने।
यत्तत्फलं सम्प्रवदन्ति देवाः
स तत् फलं लभते चास्य पाठात्॥ १०
चतुर्दशं वामनमाहुरग्र्यं
श्रुते च यस्याघचयाश्च नाशम्।
प्रयान्ति नास्त्यत्र च संशयो मे
महान्ति पापान्यपि नारदाशु॥ ११
पाठात् संश्रवणाद् विप्र श्रावणादपि कस्यचित्।
सर्वपापानि नश्यन्ति वामनस्य सदा मुने॥ १२
इदं रहस्यं परमं तवोक्तं
न वाच्यमेतद्धरिभक्तिवर्जिते।
द्विजस्य निन्दारतिहीनदक्षिणे
सहेतुवाक्यावृतपापसत्त्वे ॥ १३

नमो नमः कारणवामनाय
नारायणायामितविक्रमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥ १४

इत्थं वदेद् यो नियतं मनुष्यः कृष्णभावनः।
तस्य विष्णुः पदं मोक्षं ददाति सुरपूजितः॥ १५

वाचकाय प्रदातव्यं गोभूस्वर्णविभूषणम्।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कुर्वन् श्रवणनाशकम्॥ १६

त्रिसन्ध्यं च पठन् शृण्वन् सर्वपापप्रणाशनम्।
असूयारहितं विप्र सर्वसम्पत्प्रदायकम्॥ १७

देवगण रत्नदान, राहुद्वारा सूर्य एवं चन्द्रके ग्रस्त होनेके समय किये गये दान, भूखे, अग्निहोत्री, उत्तम ब्राह्मणको दिये गये अन्नदान, अकालसे पीडित, पुत्र, पत्नी एवं भाई-बन्धुके पोषणमें तत्पर पुरुषको दिये गये दान, देवता, अग्नि एवं ब्राह्मणकी सेवामें लगे रहनेवाले व्यक्तिको तथा माता-पिता और ज्येष्ठ भाईको दिये गये दानसे जिस फलका प्राप्त होना बतलाते हैं, वह फल मनुष्य इस (वामनपुराण)-का पाठ करनेसे प्राप्त कर लेता है॥ ९—१०॥

नारदजी! वामनपुराण पुराणोंमें चौदहवाँ उत्तम पुराण है। इसमें मुझे सन्देह नहीं है कि इसका श्रवण करनेसे पापोंका समुदाय एवं महापातक भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। मुने! ब्राह्मणदेव! वामनपुराणका पाठ कहने, सुनने एवं सुनानेसे सर्वदा सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। मैंने आपसे यह परम रहस्य कहा है। इसे भगवान्की भक्तिसे रहित व्यक्तिके एवं ब्राह्मणकी निन्दा करनेवाले आचारहीन तथा तर्कशील पापी मनुष्यके सामने नहीं कहना चाहिये। देवोंके कारण वामनरूप धारण करनेवाले अमित पराक्रमी श्रीनारायण भगवान्को नमस्कार है, नमस्कार है और शार्ङ्ग, चक्र, खड्ग तथा गदा धारण करनेवाले पुरुषोत्तमभगवान्को नमस्कार है। इस प्रकार जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णमें अपनी भावनाओंको समर्पित कर इस वामनपुराणका नित्य पाठ करता है, उसे देवताओंसे पूजित भगवान् विष्णु मोक्षपद प्रदान करते हैं। इस पुराणके बाँचनेवालेको (पुराणका पाठ करनेवालेको भी) गौ, पृथ्वी एवं स्वर्णके आभूषण प्रदान करने चाहिये। इसमें धनकी शठता (शक्तिसे कम दक्षिणा देना) नहीं करनी चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेसे सुननेके फलका नाश हो जाता है। विप्रदेव! जलन, ईर्ष्या, रोष आदि दोषोंसे रहित होकर तीनों संध्याओंके समय समस्त पापोंके विनाश करनेवाले इस पुराणका पाठ करने एवं श्रवण करनेसे सभी प्रकारकी सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं॥ ११—१७॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९५ ॥

॥ श्रीवामनपुराण समाप्त ॥

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित पुराण-साहित्य

श्रीमद्भागवतमहापुराण, व्याख्यासहित (कोड 26, 27) ग्रन्थाकार—श्रीमद्भागवत भारतीय वाङ्मयका मुकुटमणि है। भगवान् शुकदेवद्वारा महाराज परीक्षित्‌को सुनाया गया भक्तिमार्गका तो मानो सोपान ही है। इसके प्रत्येक श्लोकमें श्रीकृष्ण-प्रेमकी सुगन्धि है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थरत्न मूलके साथ हिन्दी-अनुवाद, पूजन-विधि, भागवत-माहात्म्य, आरती, पाठके विभिन्न प्रयोगोंके साथ दो खण्डोंमें उपलब्ध है। पत्राकारकी तरह बेड़िया **(कोड 1951, 1552)** सचित्र, सजिल्द, **(कोड 1552, 1553)** गुजराती, **(कोड 1678, 1735)** सानुवाद, मराठी, **(कोड 1739, 1740)**, कन्नड़, **(कोड 1577, 1744)** बँगला, **(कोड 1966, 1967, 1968)** तमिल, **(कोड 1831, 1832)** ओड़िआ, **(कोड 1975, 1976)** तेलुगु, **(कोड 564, 565)** अंग्रेजी-अनुवाद, **(कोड 25)** केवल हिन्दी बृहदाकार, बड़े टाइपमें, **(कोड 1945)** (वि० सं०) केवल हिन्दी **(कोड 1930)** केवल हिन्दी, **(कोड 1608)** केवल गुजराती, **(कोड 29)** मूल, मोटा टाइप, संस्कृत, ग्रन्थाकार **(कोड 1573)** मूल, मोटा टाइप, तेलुगु, ग्रन्थाकार **(कोड 124)** मूल मझला आकार, **(कोड 1855)** विशिष्ट सं० मूल, मझला संस्कृतमें भी।

संक्षिप्त शिवपुराण, मोटा टाइप (कोड 789) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। सचित्र, सजिल्द, विशिष्ट संस्करण **(कोड 1468)** हिन्दी एवं **(कोड 1286)** गुजरातीमें भी उपलब्ध।

संक्षिप्त पद्मपुराण (कोड 44) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें भगवान् विष्णुकी विस्तृत महिमाके साथ, भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके चरित्र, विभिन्न तीर्थोंका माहात्म्य, शालग्रामका स्वरूप, तुलसी-महिमा, गीता माहात्म्य, विष्णुसहस्रनाम, उपासना-विधि तथा विभिन्न व्रतोंका सुन्दर वर्णन है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण (कोड 539) ग्रन्थाकार—भगवतीकी विस्तृत महिमाका परिचय देनेवाले इस पुराणमें दुर्गासप्तशतीकी कथा एवं माहात्म्य, हरिश्चन्द्रकी कथा, मदालसा-चरित्र, अत्रि-अनसूयाकी कथा, दत्तात्रेय-चरित्र आदि अनेक सुन्दर कथाओंका विस्तृत वर्णन है। सचित्र, सजिल्द।

श्रीविष्णुपुराण, अनुवादसहित (कोड 48) ग्रन्थाकार—इसके प्रतिपाद्य भगवान् विष्णु हैं, जो सृष्टिके आदिकारण, नित्य, अक्षय, अव्यय तथा एकरस हैं। इसमें आकाश आदि भूतोंका परिमाण, समुद्र, सूर्य आदिका परिमाण, पर्वत, देवतादिकी उत्पत्ति, मन्वन्तर, कल्प-विभाग, सम्पूर्ण धर्म एवं देवर्षि तथा राजर्षियोंके चरित्रका विशद वर्णन है। सचित्र, सजिल्द **(कोड 1364)** केवल हिन्दी अनुवादमें भी उपलब्ध।

संक्षिप्त नारदपुराण (कोड 1183) ग्रन्थाकार—इसमें सदाचार-महिमा, वर्णाश्रम धर्म, भक्ति तथा भक्तके लक्षण, देवपूजन, तीर्थ-माहात्म्य, दान-धर्मके माहात्म्य और भगवान् विष्णुकी महिमाके साथ अनेक भक्तिपरक उपाख्यानोंका विस्तृत वर्णन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त स्कन्दपुराण (कोड 279) ग्रन्थाकार—यह पुराण कलेवरकी दृष्टिसे सबसे बड़ा है तथा इसमें लौकिक और पारलौकिक ज्ञानके अनन्त उपदेश भरे हैं। इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह, कार्तिकेय-जन्म, तारकासुर-वध एवं धर्म, सदाचार, योग, ज्ञान तथा भक्तिके सुन्दर विवेचनके साथ-साथ अनेक साधु-महात्माओंके सुन्दर चरित्र पिरोये गये हैं। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त ब्रह्मपुराण (कोड 1111) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें सृष्टिकी उत्पत्ति, पृथुका पावन चरित्र, सूर्य एवं चन्द्रवंशका वर्णन, श्रीकृष्णचरित्र, कल्पान्तजीवी मार्कण्डेय मुनिका चरित्र, तीर्थोंका माहात्म्य एवं अनेक भक्तिपरक आख्यानोंकी सुन्दर चर्चा की गयी है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त गरुडपुराण—(कोड 1189) ग्रन्थाकार—इस पुराणके अधिष्ठातृ देव भगवान् विष्णु हैं। इसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सदाचार, निष्काम कर्मकी महिमाके साथ यज्ञ, दान, तप, तीर्थ आदि शुभ कर्मोंमें सर्व-साधारणको प्रवृत्त करनेके लिये अनेक लौकिक एवं पारलौकिक फलोंका वर्णन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त भविष्यपुराण—(कोड 584) ग्रन्थाकार—यह पुराण विषय-वस्तु एवं वर्णन-शैलीकी दृष्टिसे अत्यन्त उच्च कोटिका है। इसमें धर्म, सदाचार, नीति, उपदेश, अनेक आख्यान, व्रत, तीर्थ, दान, ज्योतिष एवं आयुर्वेदशास्त्रके विषयोंका अद्भुत संग्रह है। वेताल-विक्रम-संवादके रूपमें कथा-प्रबन्ध इसमें अत्यन्त रमणीय है। इसके अतिरिक्त इसमें नित्यकर्म, सामुद्रिक शास्त्र, शान्ति तथा पौष्टिक कर्मका भी वर्णन है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त श्रीवराहपुराण (कोड 1361) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें भगवान् श्रीहरिके वराह-अवतारकी मुख्य कथाके साथ-साथ अनेक तीर्थ, व्रत, यज्ञ, दान आदिका विस्तृत वर्णन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराण (कोड 631) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें चार खण्ड हैं—ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, श्रीकृष्णजन्मखण्ड और गणेशखण्ड। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका विस्तृत वर्णन, अनेक रोचक एवं रहस्यमयी कथाएँ, श्रीराधाकी गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका सुन्दर विवेचन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

वामनपुराण, अनुवादसहित (कोड 1432) ग्रन्थाकार—यह पुराण मुख्यरूपसे त्रिविक्रम भगवान् विष्णुके दिव्य माहात्म्यका व्याख्याता है। इसमें भगवान् वामन, नर-नारायण, भगवती दुर्गाके उत्तम चरित्रके साथ-साथ भक्त प्रह्लाद तथा श्रीदामा आदि भक्तोंके बड़े रम्य आख्यान हैं। सचित्र, सजिल्द।

अग्निपुराण, केवल हिन्दी-अनुवाद (कोड 1362) ग्रन्थाकार—इसमें परा-अपरा विद्याओंका वर्णन, महाभारतके सभी पर्वोंकी संक्षिप्त कथा, रामायणकी संक्षिप्त कथा, मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंकी कथाएँ, वास्तु-पूजा, विभिन्न देवताओंके मन्त्र आदि अनेक उपयोगी विषयोंका अत्यन्त सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

मत्स्यमहापुराण, अनुवादसहित (कोड 557)—यह पुराण मत्स्यावतारके रूपमें भगवान् विष्णुकी लीलाओंका सुन्दर परिचायक है। इसमें मत्स्यावतारकी कथा, सृष्टि-वर्णन, मन्वन्तर तथा पितृवंश-वर्णन, ययाति-चरित्र, राजनीति, यात्राकाल, स्वप्नशास्त्र, शकुन-शास्त्र आदि अनेक विषयोंका सरल वर्णन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

कूर्मपुराण, अनुवादसहित (कोड 1131)—इस पुराणमें भगवान्‌के कूर्मावतारकी कथाके साथ-साथ सृष्टि वर्णन, वर्ण, आश्रम और उनके कर्तव्यका वर्णन, युगधर्म, मोक्षके साधन, तीर्थ-माहात्म्य, २८ व्यासोंकी कथाएँ, ईश्वर-गीता, व्यास-गीता आदि विविध विषयोंका अत्यन्त सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। विभिन्न दृष्टियोंसे इस पुराणका पठन-पाठन सबके लिये कल्याणकारी है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत-मोटा टाइप (कोड 1133) ग्रन्थाकार—यह पुराण परम पवित्र वेदकी प्रसिद्ध श्रुतियोंके अर्थसे अनुमोदित, अखिल शास्त्रोंके रहस्यका स्रोत तथा आगमोंमें अपना प्रसिद्ध स्थान रखता है। यह सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुकीर्ति, मन्वन्तर आदि पाँचों लक्षणोंसे पूर्ण है। पराम्बा भगवतीके पवित्र आख्यानोंसे युक्त इस पुराणका पठन-पाठन तथा अनुष्ठान भक्तोंके त्रितापोंका शमन करनेवाला तथा सिद्धियोंका प्रदाता है। सचित्र, सजिल्द (**कोड 1897, 1898**) अनुवादसहित (**कोड 1326**) गुजराती।

नरसिंहपुराण, अनुवादसहित (कोड 1113) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें दशावतारकी कथाएँ एवं सात काण्डोंमें भगवान् श्रीरामके पावन चरित्रके साथ-साथ सदाचार, राजनीति, वर्णधर्म, आश्रम-धर्म, योग-साधना आदिका सुन्दर विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें भगवान् नरसिंहकी विस्तृत महिमा, अनेक कल्याणप्रद उपाख्यानोंका वर्णन, भौगोलिक वर्णन, सूर्य-चन्द्रादिसे उत्पन्न राजवंशोंका वर्णन तथा अनेक स्तुतियोंका उल्लेख है। सचित्र, सजिल्द।

महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण, अनुवादसहित (कोड 38) ग्रन्थाकार— हरिवंशपुराण वेदार्थ-प्रकाशक महाभारत ग्रन्थका अन्तिम पर्व है। पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे हरिवंशपुराणके श्रवणकी परम्परा भारतवर्षमें चिरकालसे प्रचलित है। भगवान् श्रीकृष्णसे सम्बन्धित अगणित कथाएँ इसमें ऐसी हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। धार्मिक जन-सामान्यके कल्याणार्थ इसके अन्तमें सन्तानगोपाल-मन्त्र, अनुष्ठान-विधि, सन्तान-गोपाल-यन्त्र तथा संतान-गोपालस्तोत्र भी संगृहीत हैं। सचित्र, सजिल्द। (**कोड 1589**) केवल हिन्दीमें भी।

महाभागवत [देवीपुराण], अनुवादसहित (कोड 1610) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें मुख्य रूपसे भगवती महाशक्तिके माहात्म्य एवं उनके विभिन्न चरित्रोंका विस्तृत वर्णन है। इसमें मूल प्रकृति भगवतीके गङ्गा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, तुलसी आदि रूपोंमें विवर्तित होनेके मनोरम आख्यान हैं। सचित्र, सजिल्द।

लिङ्गमहापुराण, अनुवादसहित (कोड 1985) संस्कृत श्लोक एवं हिन्दी टीका—यह पुराण भगवान् शिवकी उपासना एवं महिमाका विस्तृत परिचायक है। इसमें शैवदर्शन, पाशुपतयोग, लिङ्ग-स्वरूप, लिङ्ग-माहात्म्य, लिङ्गार्चन एवं योगाचार्यों तथा शिव भक्तोंकी कथाओंका सरस वर्णन है। सचित्र, सजिल्द।